10.7.29



वाल्मीकीय रामायण

वैशेषिक-दर्शन ।

पं० राजाराम प्रोफेसर डी.ए.वी. कालेज लाहौर ।

कृत

सरल भाषाटीका संयुक्त

बाम्बे मैशीन प्रेस, लाहौर में छपा ।

प्रथमवार ६००]

[मूल्य २॥]



वाल्मीकिरामायण का विषयसूची *

भूमिका पृष्ठ १ से ६ तक

बालकाण्ड पृष्ठ ७ से ११२ तक

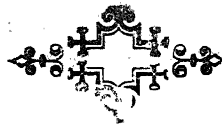
* १—इस सूची में दिये विषय सर्गों के साथ २ भी दिये गए हैं। कहीं कुछ थोड़ा सा भेद है।

१—सर्गों के अङ्क कहीं न्यून अधिक लगे हैं, वह वैसे ही यहां भी रख दिये हैं। केवल अङ्क लगानेमें अशुद्धि हुई है, यूं सर्ग क्रम सब ठीक है।

अयोध्याकाण्ड पृष्ठ ११३ से ४१८ तक

सर्ग	विषय	पृष्ठ

अरण्यकाण्ड पृष्ठ ४२१ से ५४६ तक



विषय सूची ।

किष्किन्धाकाण्ड पृष्ठ ५४७ से ६३७ तक

सुन्दरकाण्ड—पृष्ठ ६३८ से ७०६ तक।

युद्ध काण्ड पृष्ठ ७०७ से ८९५ तक।



संक्षिप्त महाभारत ।

अनावश्यक भाग छोड़ कर महाभारत मूल और इस का हिन्दी उल्था दोनों इकट्ठे छप रहे हैं। अनुवाद बड़ा सरल सरस और स्पष्ट हुआ है। इस पर योग्य विद्वानों ने जो सम्मतियां दी हैं, उन का संक्षेप यह है-'इन दिनों पं० राजाराम जी एक सटीक महाभारत निकाल रहे हैं, यह टीका बड़ी ही तहकीकात के साथ लिखी जा रही है। महाभारत के जितने तर्जुमे भाषा वा उर्दू में हुए हैं, उन में से किसी एक में भी इस तहकीकात का कोई अंश नहीं। पं० जी ने अपनी तहकीकात से बड़ी उत्तमता से असली ऐतिहासिक बातों की छान बीन की है, हर एक हिन्दु को इसे पढ़ना चाहिये, यह उनके लिए बड़ा उपयोगी है" ग्राहकों के सुभीते के लिये पर्व २ अलग २ छापा गया है। आदि पर्व मूल्य १।=) सभापर्व मूल्य ॥=)
वन पर्व) विराट पर्व) उद्योगपर्व) भीष्म पर्व)

पता

मैनेजर आर्षग्रन्थावलि लाहौर ।



भूमिका !

श्रीवाल्मीकि रामायण का गौरव ।

श्री वाल्मीकि रामायण इस योग्य है, कि हर एक घर में प्रतिदिन इसकी कथा हुआ करे । जिस घर में इसकी कथा होगी, उस घर के लोगों को यह कथा सिखलाएगी, कि तुम रामचन्द्र की तरह माता पिता के भक्त बनो । भाई भाई आपस में राम लक्ष्मण की जोड़ी बनो । दशरथ की तरह प्राण हार कर भी प्रण को मत हारो । धर्म्म पालन में जो विपत्ति आती है, उसको रामचन्द्र की तरह हंसते मुख से स्वीकार करो, और अपने पौरुष से हरएक संकट के पार पहुंचो । पत्नी पतिव्रता बने, विपदाएं सहती हुई भी, अपने पति से अन्य पुरुष को, मन से भी चिन्तन न करे । पुरुष स्त्रीव्रत हो, और अन्य स्त्री को मन से भी चिन्तन न करे । पति पत्नी में सीताराम का सा दम्पति-प्रेम हो । स्त्री पुरुष सब सत्यवादी हों, दयालु हों, उत्साह वाले हों, पुरुषार्थी हों । निदान मनुष्य को सारे उत्तम गुण सिखलाने वाली यह कथा है । श्रीसीता रामचन्द्र लक्ष्मण और भरत की जीवन कथा स्वतः ही जगत् को पवित्र करने वाली है, तिसपर श्रीवाल्मीकि मुनि के वर्णन ने सोने में सुगन्ध उत्पन्नकर दिया है । जिसतरह एक कवि ने कहा है, कि :—

पयसा कमलं कमलेन पयः पयसा कमलेन विभाति सरः ।
मणिना वलयं वलयेन मणिर्मणिना वलयेन विभाति करः ॥

जल मे कमल, कमल से जल, और जल और कमल दोनों से सरोवर शोभा पाता है। मणि से चूड़ी, चूड़ी से मणि, मणि और चूड़ी दोनों से (सुन्दरी) का हाथ शोभा पाता है।

ठीक इसी तरह सीतापति रामचन्द्र की कथा, और मुनिवर वाल्मीकि का वर्णन, इन दोनों के मेल से, श्रीवाल्मीकि रामायण बड़ी ही सुन्दर शोभावाला बन गया है। देखो. श्रीवाल्मीकि रामायण की पवित्र कथा और सुन्दर रचना पर मुग्ध होकर, प्रोफेसर ग्रिफ्त साहेब अपने अंग्रेज़ी अनुवाद की भूमिका में कैसा उत्तम लिखते हैं।

वाल्मीकि रामायण पर प्रोफेसर ग्रिफ्त की सम्मति

"जगत् में पद्य रचना की (नज़म में लिखी हुई) पुस्तकें बहुत हैं, पर आचरण की पवित्रता को और सुन्दर छन्द रचना को और कोई कवि ऐसी दृढ़ता, मनोहरता और रसिकता से नहीं बांध सका। इस प्रभावशाली ढङ्ग में धर्म की शिक्षा देना रामायण ही का काम है। केवल यही एक कविता है, जो हमारे दिलों में ऐसी उत्तमता से सचाई का प्यार उत्पन्न कर देती है। हम रामायण को पढ़कर कुछ के कुछ बन जाते हैं। हम में ऊंचे २ ख्याल रच जाते हैं। और वह गुण जो मनुष्य की उत्कृष्टता के भूषण हैं, हमारे सामने आकर खड़े होजाते हैं। सत्य का आचरण, पुत्रों में पितृभक्ति, पतिव्रत धर्म, पति का कर्त्तव्य, पिता माता का स्नेह, विनय, धैर्य, दयालुता-निदान मानुषी गुणों की कौनसी तस्वीर है, जिसका असली चित्र जादू भरी कलम से कवि ने इसमें नहीं खींचा।

सचाई का ऐसा प्यार सारे संसार में ढूंढकर देखो कि जिसने दशरथ को अपने प्यारे पुत्र और प्राण से वियुक्त कर दिया, पर जिसने बचन से नहीं हटने दिया। यह किसी और जगह नहीं मिलेगा।

राम अपने पिता के वचन को सच्चा करने के लिये घने जङ्गलों में घूमते हैं, सख्तियां सहते हैं, कष्ट उठाते हैं, कन्द मूल को जीवन का सहारा बनाते हैं,पर अपनी प्रतिज्ञा से नहीं टलते।

सीता पर विपत्तियें आती हैं, धमकियां दीजाती हैं, पर पति-भक्ति उसके हृदय से कोई दूर नहीं कर सकता।

रामायण जगत् में हर समय हर देश में हरएक क्रिया और आचार को बड़ी सफलता के साथ ललकारती है, और मनुष्य जीवन के उच्च आदर्श की जो यह पूर्ण और मनोहर तस्वीरें राम और सीता में दृष्टि आती हैं, और कहीं नहीं मिलेंगी"

हमारा काम

जब एक योरुप के महानुभाव की रामायण में इतनी भक्ति है,तो हम भारतवासियों की, जिनके, कि रामचन्द्र और वाल्मीकि पूर्व पुरुष थे, जितनी भक्ति हो, उचित है। हम भारतवासी रामायण के बहुत बड़े ऋणी हैं। इसने भारतवासियों को विपत्तियों में धर्म पर स्थिर रक्खा है। सीता सतवन्ती का जीवन ही इस देश की सतवन्तियों का आदर्श जीवन रहा है, जिसने उनको जीतेजी चिता पर चढ़ने के लिये तय्यार किया, पर अपने सतीत्व पर धब्बा नहीं लगने दिया। अतएव हम बहुत बड़े इस के ऋणी हैं। और इस का प्रचार हमारा काम है। हमारा धर्म है।

असली वाल्मीकि रामायण

पर यह शोक की बात है, कि वाल्मीकि रामायण, जैसा वाल्मीकि मुनि के मुख से निकला था, ज्यों का त्यों हमारे पास नहीं पहुंचा, इस में बहुत कुछ मिलावट हुई है, जिसके कि हमारे पास बहुत दृढ़ प्रमाण हैं। पुराने हस्तलिखित पुस्तकों के देखने से यह बात बड़ी आसानी से सिद्ध होजाती है, कतकव्याख्या और दूसरी व्याख्याओं में कुछ प्रक्षिप्तों का निर्णय भी किया है। वर्तमान रामायण में २४००० श्लोक हैं। पर हम नहीं कह सक्ते, कि इसमें कितने और कौन २ से असली हैं, और कौन २ प्रक्षिप्त हैं। ऐसा निर्णय करने के लिये बहुत बड़ी सामग्री लेकर बरसों अनुसन्धान करने की आवश्यकता है। हां कई ऐसे मनचले हैं, कि जो झटपट कह देते हैं, यह प्रक्षिप्त है वह प्रक्षिप्त है। पर वह प्रक्षिप्त कहते उसको हैं, जो उनकी समझ वा मत के विरुद्ध हो, बस जो बात वह आप न मानते हों, उसको प्रक्षिप्त कह देते हैं। पर यह उन के हृदय की दुर्बलता है। ऐसा करने से वह अपना और दूसरों का अनिष्ट करते हैं। हम किसी शास्त्र की सारी बातों को मानें वा न मानें, यह हमारा इख्तियार है। पर बिना प्रमाण प्रक्षिप्त कहना अनुचित है। प्रक्षिप्त तो वही होसक्ता है, कि ग्रन्थकार ने न लिखा हो, पीछे किसी ने डाल दिया हो। इसके लिये ऐसा प्रमाण चाहिये, कि जिससे यह सिद्ध होजाए, कि ग्रन्थकार ने यह नहीं लिखा था, और इस मनशा से पीछे किसी ने डाला है। अस्तु, मैं जानता हूं कि किस तरह असली रामायण को प्रक्षिप्त भाग से अलग किया जासक्ता है, पर मेरे पास इतनी सामग्री नहीं, इस लिये अभी एक दूसरा ज़रूरी काम आरम्भ किया जाता है।

और वह यह,कि रामायण को लोग आसानी के साथ पढ़ सकें। उसके लिये एक सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद किया गया है, जिससे सर्व साधारण पूरा २ लाभ उठा सकेंगे। इसमें वाल्मीकि रामायण के मूल श्लोक और भाषा अर्थ दोनों रहेंगे। पर यह पूरा २४००० श्लोक नहीं होगा। इतना पढ़ने में लोगों को अवकाश ही कहां है। इसलिये २४००० श्लोकों में से यह संक्षिप्त वाल्मीकि रामायण मथकर निकाला गया है। इसमें क्या है,और क्या नहीं है,इसका व्यौरा इसतरह है, कि स्पष्ट प्रक्षिप्त श्लोक छोड़े हैं और रामायणकी असली कथा सिलसिलावार सारीहै,असली कथा का कोई अंश नहीं छोड़ा गया,हां जो कथाएं प्रासङ्गिक आजाती हैं उनको छोड़ दिया गया है। जैसे ताडका राक्षसी को राम ने मारा है, इतना सम्बन्ध तो रामचन्द्र की कथा के साथ है,अतएव आवश्यक है। पर ताटका के जन्म आदि की कथा अनावश्यक है, उसके रहने में पढ़ने वालों को कोई लाभ नहीं, छोड़ने में उतना समय बचजाता है, जिसमें अगली ज़रूरी बात पढ़ी जा सकतीहै,अतएव वह छोड़ दी है। और दूसरा जो नगर बन आदि के लम्बे २ वर्णन हैं, उनमें से भी मनोहर और आवश्यक श्लोक रखकर शेष छोड़ दिये हैं। हां जो धर्म वा नीति के उपदेश हैं, वह लम्बे भी उसी तरह रखे गए हैं। बस इतना ही भेद है, और सारा रामायण ज्यों का त्यों है। कण्ठ करने योग्य उत्तम श्लोकों पर + यह निशान देदिया है। इन सारी बातों से ग्रन्थका सौन्दर्य और गौरव दोनों बढ़गये हैं। पढ़नेवाले स्वयं देख लेंगे।

वाल्मीकिरामायण की उत्पत्ति आदि } वाल्मीकि मुनि को जिस तरह रामायण रचने का विचार उत्पन्न हुआ और

उस के लिये जैसी २ उन को प्रेरणा हुई, और जिस तरह रामायण का प्रचार हुआ, यह सब भी रामायण के आरम्भ में लिखा गया है। उस का लिखने वाला वाल्मीकि से भिन्न ही कोई व्यक्ति होसक्ता है, जैसाकि उस की लेखप्रणाली से स्पष्ट प्रतीत होता है। चार सर्गों में यही बात है। वाल्मीकि की रचना पाञ्चवें सर्ग से आरम्भ होती है। सो हम ने पहले चार सर्गों का संक्षेप छोटे टाइप में दिया है। और उस का नाम प्रस्तावना रखा है। ऐसा होना बहुत उचित है। उस के आगे वाल्मीकि की रचना मोटे टाइप में है।

(सर्ग और श्लोकों के पते)

इस रामायण में हम ने सर्ग संख्या और श्लोक संख्या अपनी रखी है। पर वर्तमान रामायण के साथ पता मेलने के लिये अपनी सर्ग संख्या के आगे व० देकर वर्तमान रामायण की सर्ग संख्या देदी है। इस पते से वर्तमान रामायण में से सर्ग को देख सक्ते हैं। फिर हरएक श्लोक का मिलाना आसान है।

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकि कोकिलम्॥

कविता की शाखा पर चढ़कर 'राम, राम' ऐसी मधुर, मधुर अक्षरों वाली कू कू सुनाते हुए वाल्मीकि कोइल को वन्दना करता हूं॥



बालकाण्ड ।

प्रस्तावना ।

पहला सर्ग (मूल रामायण)

मूल—तपः स्वाध्याय निरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् ।
नारदं परि पप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनि-पुंगवम् ॥ १ ॥
कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्चवीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥ २ ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।
विद्वान् कः क समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥ ३ ॥

टीका-तप और स्वाध्याय में तत्पर, वेद जानने वालों में श्रेष्ठ, मुनि-वर नारद से तपस्वी वाल्मीकिजी पूछते भए ॥१॥ (हे भगवन् !) कौन इस समय इस लोक में गुणवान, शक्तिमान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी, अपने व्रत का पक्का॥२॥चरित्र (Charector) से युक्त प्राणिमात्र का हितैषी, विद्वान्, समर्थ, अद्वितीय, प्यारा लगने वाला

मूल—आत्मवान् को जित-क्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः ।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥ ४ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम् ॥ ५ ॥

टीका-(बलवान्-) आत्मवाला, क्रोध को जिसने जीता हुआहै, कान्ति वाला, और बिना असूया के है। हां कौन ऐसा है, कि युद्ध में जिस के क्रोध को देखकर देवता भी डरते हैं*॥४॥यह मैं सुनना चाहता हूं, मुझे बड़ा कौतूहल है, हे महर्षि! तुम ऐसे पुरुष को जानने के समर्थ हो

---

* यह अलङ्कार के तौर पर कहा है, जैसे किसी शूरवीर के सामने पृथिवी का कांपना कहा जाता है ।

मूल—श्रुत्वा चैतत् त्रिलोकज्ञो वाल्मीके र्नारदो वचः ।

श्रूयता मिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यम ब्रवीत ॥ ६ ॥
बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्त्तिता गुणाः ।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥ ७ ॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान्वशी ॥ ८ ॥

टीका—तीन लोकके जाननेवाले नारदजी वाल्मीकि के इसवचन को सुनकर 'सुनिये' ऐसा सम्बोधित करके प्रसन्न हो कहने लगे ॥६॥ हे मुनि ! आपने जो गुण कीर्त्तन किये हैं, वह बहुत हैं, और दुर्लभ हैं। पर मैं जानता हूं, बतलाऊंगा, इनगुणों से युक्त पुरुष जो है, वह सुनिये ॥७॥ इक्ष्वाकु वंश से प्रकट हुआ, राम नाम, लोगों में विख्यात, स्थिर मनवाला, बड़ी शक्तिवाला, कान्तिवाला धैर्यवाला और अपने आपको अपने बस में रखनेवाला ।८।

मूल—बुद्धिमान्नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः ।

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥ ९ ॥
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदमः ।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ॥ १० ॥
समः समविभक्तांगः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः ॥ ११ ॥

टीका—बुद्धिमान, नीतिमान, मधुर बोलनेवाला, शोभावाला, (बाहर और भीतर के) शत्रुओं का नाश करनेवाला, मोटे कन्धोंवाला, बड़ी भुजाओंवाला, शंख की तरह (तीन रेखा वाली) गर्दनवाला, बड़ी ठोड़ीवाला ॥९॥ विशाल छाती वाला, बड़े धनुषवाला, (मांस से) ढकी हुई दोनों हसलियों वाला, शत्रुओं का सिधाने वाला, गोड़ों तक लम्बी भुजावाला, समगोल सिरवाला, सुन्दर मस्तक

वाला, सुन्दर गतिवाला।१०।(सारी बनावट में) एक जैसा, एक जैसे अलग २ अङ्गोंवाला, स्निग्ध (गूढ़े) रङ्गवाला, प्रतापवाला, विशाल छातीवाला, विशाल नेत्रोंवाला, लक्ष्मीवाला, सब शुभ लक्षणों वाला

मूल—धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां चहिते रतः ।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ॥१२॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
वेदवेदांगतत्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥ १३ ॥
सर्वशास्त्रार्थ तत्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान् ।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥ १४ ॥
सर्वदाऽभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिंधुभिः ।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥ १५ ॥

टीका—धर्मज्ञ, सच्ची प्रतिज्ञा वाला, प्रजाओं के हित में रता हुआ, यशस्वी, ज्ञान में परिपूर्ण (बाहर अन्दर से) शुद्ध (बड़ों का) वशवर्ती, एकाग्र चित्त रहने वाला ॥१२॥ अपने धर्म का रक्षक, अपने जन का रक्षक, वेद वेदाङ्ग का तत्त्व जानने वाला, धनुर्वेद में पूरा गुणी ॥१३॥ सारे शास्त्रों के गूढ़ आशय को जाननेवाला, स्मृतिवाला और प्रतिभाशाली, * सारे लोकों का प्यारा, साधु (दूसरों के काम संवारने वाला), जिसका मन कभी दीन नहीं हुआ और बड़ा निपुण है ॥१४॥ नदियों से समुद्र की तरह सदा भले मनुष्यों से घिरा हुआ, (सच्चा) आर्य † सब में सम (एक जैसा बर्तन वाला) सदा ही प्यारे दर्शन वाला है ॥ १५ ॥

---

* स्मृति=जाने हुए का याद रखना, और प्रतिभा नया सूझना ।

† यह एक आर्य्य का आदर्श जीवन है, जो इन श्लोकों में वर्णन किया है ॥

मूल—सच सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
तमेवंगुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम् ॥ १६ ॥

टीका—वह सारे गुणों से युक्त कौशल्या का आनन्द बढ़ानेवाला हुआ। इसप्रकार गुणों से सम्पन्न सच्चे पराक्रमवाले रामको-

मूल—ज्येष्ठं ज्येष्ठगुणैर्युक्तं प्रियं दशरथः सुतम् ।
प्रकृतीनां हितैर्युक्तं प्रकृतिहितकाम्यया ॥ १७ ॥
यौवराज्येन संयोक्तु मैच्छत् प्रीत्या महीपतिः ।
तस्याभिषेकसंभारान् दृष्ट्वा भार्याऽथ कैकयी ॥ १८ ॥

टीका—जोकि सब से बड़ा, बड़ों के गुणों से युक्त, प्यारा पुत्र, सब लोगों की भलाई में तत्पर रहनेवाला था। उसको सब लोगों के हित की कामना से दशरथ ॥ १७ ॥ राजा ने प्रीति से युवराज बनाने की इच्छा की। (तब) उस के तिलक की सामग्री को देखकर रानी कैकेयी ने, ॥१८॥

मूल—पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत ।
विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम् ॥ १९ ॥

टीका—जिसको राजा पहले वर दे चुके हुए थे, यह वर मांगा, कि राम को वनवास हो, और भरत को तिलक ॥१९॥

मूल—स सत्यवचनाद्राजा धर्मपाशेन संयतः ।
विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम् ॥ २० ॥
स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन् ।
पितुर्वचननिर्देशात् कैकेय्याः प्रियकारणात् ॥ २१ ॥
तं व्रजन्तं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ।
स्नेहाद्विनयसम्पन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ २२ ॥
भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन् ।
रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राणसमा हिता ॥ २३ ॥

टीका—अपने वचनकी सत्यतासे, धर्म्म की फांस से बन्धा हुआ राजा दशरथ, प्यारे पुत्र राम को वनवास देता भया।२०।वह वीर पिता का वचन बतलाया जाने से, कैकेयी की भलाई के निमित्त, प्रतिज्ञा का पालन करता हुआ वन को चला गया॥२१॥(रामको) प्यार करनेवाला, सुमित्राके आनन्द को बढ़ाने वाला, भाई का प्यारा भाई विनीत लक्ष्मण, सुभ्रातृभाव का नमूना दिखलाता हुआ, स्नेह से, जाते हुए भाई के साथ गया। राम की प्यारी पत्नी, जो उसको प्राण के तुल्य (प्यारी) सदा हितकारिणी, ॥२२,२३॥

मूल—जनकस्य कुले जाता देवमायेव निर्मिता।
सर्वलक्षणसंपन्ना नारीणामुत्तमा वधूः ॥ २४ ॥
सीताप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा।
पौरै रनुगतो दूरं पित्रा दशरथेन च ॥ २५ ॥

टीका—जनक के कुल में जन्मी हुई, देवमाया की तरह बनी हुई, सारे लक्षणों से युक्त, नारियों में से उत्तम नारी।२४।सीता थी, वह भी राम के पीछे चली, जैसे रोहिणी (नक्षत्र) चन्द्र के पीछे चलती है। पुर के लोग और पिता दशरथ दूर तक उसके पीछे गये ॥२५॥

मूल—शृंगवेरपुरे सूतं गंगाकूले व्यसर्जयत्।
गुहमासाद्य धर्मात्मा निषादाधिपतिं प्रियम् ॥ २६ ॥
गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया।
ते वनेन वनं गत्वा नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः ॥ २७ ॥
चित्रकूट मनुप्राप्य भरद्वाजस्य शासनात्।
रम्यमावसथं कृत्वा रममाणा वने त्रयः ॥ २८ ॥
देवगन्धर्व संकाशास्तत्रा तेन्यवसन् सुखम्।
चित्रकूटगते रामे पुत्रशोकातुरस्तथा ॥ २९ ॥

टीका—धर्मात्मा राम गंगा के किनारे पर शृङ्गवेरपुर में, भीलों के स्वामी अपने मित्र गुह को मिले, और वहां गुह, सीता,

लक्ष्मण के साथ मिलकर राम ने सूत को वापिस लौटाया। अब वह (तीनों) बन से बन को जाकर, और बहुत जलवाली नदियों को पार करके ॥२६,२७॥ भरद्वाज के कहने से चित्रकूट में पहुंचकर वहां एक रमणीय कुटी बना उस बन में आनन्द मनाते वह तीनों—जोकि देव गन्धर्वों के सदृश हैं—सुख से रहने लगे। जब राम चित्रकूट को चलेगये तो पुत्र के शोक से आतुर हुआ-।२९।

मूल—राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन् सुतम् ।
गते तु तस्मिन् भरतो विसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः ॥ ३० ॥
नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद्राज्यं महाबलः ।
स जगाम वनं वीरो रामपादप्रसादकः ॥ ३१ ॥

टीका—राजा दशरथ पुत्र का विलाप करता हुआ स्वर्ग को पधार गया, उसके (स्वर्ग) जाने पर वसिष्ठ आदि द्विजों (तीन वर्ण के लोगों) ने भरत को ॥३०॥ राज्य करने के लिये प्रेरणा की, पर उस महाबली (=राज्य की रक्षा में समर्थ) ने भी केवल (सुभ्रातृभाव से) राज्य नहीं चाहा, किन्तु पूज्य राम को प्रसन्न करने के लिये बन को गया ॥ ३१ ॥

मूल—गत्वा तु स महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ।
अयाचद् भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृतः ॥ ३२ ॥
त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽब्रवीत् ।
रामोऽपि परमोदारः सुमुखः सुमहायशाः ॥ ३३ ॥
नचेच्छत्पितुरादेशाद्राज्यं रामो महाबलः ।
पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्वा पुनः पुनः ॥ ३४ ॥
निवर्तयामास ततो भरतं भरताग्रजः ।
स काममनवाप्यैव रामपादावुपस्पृशन् ॥ ३५ ॥

टीका-और सच्चे पराक्रमवाले महात्मा भाई राम के पास पहुंच कर, आर्यभाव का आदर करते हुए भरतजी बिनती करने लगे ॥३२॥ तू ही राजा धर्म का जाननेवाला है, यह उसने राम को वचन कहा। राम भी, परम उदार, प्रसन्न मुख, बहुत बड़े यशवाला ॥३३॥ महाबली, पिता की आज्ञा से राज्य को नहीं चाहता भया। तब भरत के उस बड़े भाई ने उसके राज्य के लिये बार बार खड़ाओं अपनी अमानत देकर भरत को लौटाया। सो वह अपनी कामना को बिनपाए ही राम के चरणों को छूकर-॥३४,३५॥

मूल-नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं रामागमनकाङ्क्षया।

गते तु भरते श्रीमान् सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥ ३६ ॥

रामस्तु पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च

तत्रागमन मेकाग्रो दण्डकान् प्रविवेश ह ॥ ३७ ॥

टीका-नन्दिग्राम में आ राम के आने की बाट देखता हुआ राज्य करने लगा। भरत के चले जानेपर, श्रीमान् सच्ची प्रतिज्ञावाला जितेन्द्रिय-॥३६॥ राम नगर के लोगों का वहां फिर आना सम्भव जानकर, सावधान हो दण्डकबन में प्रविष्ट हुआ ॥ ३७ ॥

मूल-प्रविश्य तु महारण्यं रामो राजीवलोचनः।

विराधं राक्षसं हत्वा शरभंगं ददर्श ह ॥ ३८ ॥

सुतीक्ष्णं चाप्यगस्त्यं च अगस्त्यभ्रातरं तथा।

अगस्त्यवचनाच्चैव जग्राहैन्द्रं शरासनम् ॥ ३९ ॥

खड्गं च परमप्रीतस्तूणी चाक्षय सायकौ।

वसतस्तस्य रामस्य वने वनचरैः सह ॥ ४० ॥

टीका-उस बड़े बन में प्रवेश करके कमलनेत्र राम ने विराध राक्षस को मारा, और शरभङ्ग मुनि के दर्शन किये ॥३८॥ तथा

सुतीक्ष्ण,अगस्त्य और अगस्त्य के भाई के(दर्शन किए)और अगस्त्य के वचन से बड़े प्रसन्न होकर, इन्द्र का एक धनुष, एक तलवार, और जिनमें बहुत तीर आजायें ऐसे दो भत्थे (तरकश) ग्रहण किये। वहां वन में रहनेवाले मुनियों के साथ रहते हुए राम के पास—

मूल—ऋषयोऽभ्यागमन् सर्वे वधायासुर रक्षसाम् ।
प्रतिज्ञातश्च रामेण वधः संयति रक्षसाम् ॥ ४१ ॥
तेन तत्रैव वसता जनस्थाननिवासिनी ।
विरूपिता शूर्पणखा राक्षसी कामरूपिणी ॥ ४२ ॥

टीका—असुर और राक्षसों के वध के लिये सब ऋषि इकट्ठे होकर आए। (उनकी बात सुनकर) राम ने युद्ध में राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा की ॥ ४१ ॥ और उसने वहीं * रहते हुए जनस्थान † की रहनेवाली प्यारे रूपवाली शूर्पणखा नाम राक्षसी बेरूप करदी ॥ ४२ ॥

मूल—ततः शूर्पणखावाक्यादुद्युक्तान् सर्वराक्षसान् ।
खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् ॥ ४३ ॥
निजघान रणे रामस्तेषां चैव पदानुगान् ।
ततो भ्रातिवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्छितः ॥ ४४ ॥
सहायं वरयामास मारीचं नाम राक्षसम् ।
अनादृत्य तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥ ४५ ॥
जगामसहमारीचस्तस्याश्रमपदं तदा ।
तेन मायाविना दूरमपवाह्य नृपात्मजौ ॥ ४६ ॥

टीका—तब शूर्पणखा के कहने से तय्यार हुए सारे राक्षसों अर्थात् खर त्रिशिरा और दूषण राक्षस को।४२।और उनके अनुचरों को

* दण्डक वन में ही पञ्चवटी स्थान में † जनस्थान, दण्डक में रावण की छावनी की जगह थी।

राम ने रण में मार डाला। तब अपने जाति भाइयों के बध को सुनकर रावण क्रोध से भरा हुआ ॥ ४४ ॥ मारीच नाम राक्षस को अपना साथी चुनता भया। और उस (मारीच) के वाक्य (ऐसा काम मत करो इस वाक्य) का अनादर करके रावण-जिस को काल प्रेर रहा है-उस समय मारीच को साथ ले राम के आश्रम को गया। और तब उस मायावी (इन्द्र जाली) द्वारा दोनों राजपुत्रों को दूर निकाल कर-॥ ४५,४६ ॥

मूल—जहार भार्यां रामस्य गृध्रं हत्वा जटायुषम्।
गृध्रं च निहतं दृष्ट्वा हृतां श्रुत्वा च मैथिलीम् ॥ ४७ ॥
राघवः शोकसन्तप्तो विललापाकुलेन्द्रियः।
ततस्तेनैव शोकेन गृध्रं दग्ध्वा जटायुषम् ॥ ४८ ॥

टीका—गृध्रजटायु को मारकर राम की पत्नी को हर लेगया। अब गृध्र को हत हुआ देखकर और सीता को हरागया सुनकर ॥ ४७ ॥ शोक से तपे हुए व्याकुल इन्द्रियों वाला राम विलाप करता भया। तिस पीछे उसी शोक से (भरे हुए) वह गृध्रजटायु को यथाविधि दाह करके-॥ ४८ ॥

मूल—मार्गमाणो वने सीतां राक्षसं संददर्शह।
कबन्धं नाम रूपेण विकृतं घोर-दर्शनम् ॥ ४९ ॥
तं निहत्य महाबाहु र्ददाह स्वर्गतश्चसः।
स चास्य कथयामास शबरीं धर्मचारिणीम् ॥ ५० ॥
श्रमणां धर्मनिपुणा मभिगच्छेति राघव।
सोऽभ्यागच्छन्महातेजाः शबरीं शत्रुसूदनः ॥ ५१ ॥
शबर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः।
पम्पातीरे हनुमता संगतो वानरेण ह ॥ ५२ ॥

टीका—बन में सीता को ढूंढते हुए, कबन्धनामी राक्षस को देखते भए, जो रूप से विकराल, भयंकर दर्शन वाला था ।४९। महा

बाहु रामने उस को मार कर उसका दाह किया और वह स्वर्ग को गया। और उसने (राम को) धर्म पर चलने वाली एक भीलनी का पता दिया ॥ ५० ॥ कि हे राघव! धर्म में निपुण उस तपस्विनी की ओर जाओ। तब वह शत्रुओं का मारने वाला बड़ा तेजस्वी उस भीलनी के पास आया ॥ ५१ ॥ भीलनी ने भली भान्ति पूजा की, फिर वह दशरथ सुत राम पम्पा के किनारे पर हनुमान वानर से मिले ॥ ५२ ॥

मूल—हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समागतः।
सुग्रीवाय च तत्सर्वं शंसद्रामो महाबलः ॥ ५३ ॥
आदितस्तद् यथावृत्तं सीतायाश्च विशेषतः।
सुग्रीव श्चापि तत्सर्वं श्रुत्वा रामस्य वानरः ॥ ६० ॥
चकार सख्यं रामेण प्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम्।
ततो वानरराजेन वैरानुकथनं प्रति ॥ ६१ ॥
रामायावेदितं सर्वं प्रणयाद् दुःखितेन च।
प्रतिज्ञातं च रामेण तदा वालिवधं प्रति ॥ ६२ ॥

टीका-और हनुमान्के वचनसे सुग्रीवसे मिले, और सुग्रीव को महाबली रामने, वह सब (अपना वृत्तान्त) बतलाया। ५३। जो आदिसे ले कर हुआ था, विशेष करके सीता का वृत्तान्त। वानर सुग्रीव भी राम की वह सारी कथा सुन कर—॥ ६० ॥ प्रसन्न होकर अग्नि को साक्षी करके (अग्नि को प्रज्वलित कर, उस में होम करके उस के सन्मुख) रामके साथ मित्रता करता भया। तब दुःखित वानरराज ने प्रेम से अपनी सारी (बालि के साथ) वैर की कथा राम को बतलाई। तब रामने वालि के वध के लिये प्रतिज्ञा की ॥ ६१, ६२ ॥

मूल—ततः प्रीतमनास्तेन विश्वस्तः स महाकपिः।
किष्किन्धां रामसहितो जगाम च गुहां तदा ॥ ६३ ॥

ततोऽगर्जद्धरिवरः सुग्रीवो हेमपिंगलः ।
तेन नादेन महता निर्जगाम हरीश्वरः ॥ ६४ ॥

टीका-तब सुग्रीव उससे प्रसन्नमन और विश्वासवाला होगया, और रामसहित किष्किन्धा गुफा की तर्फ गया।६३।और सोने की तरह पीला वह वानरश्रेष्ठ सुग्रीव वहां जाकर गर्जा,उसके इस सिंहनाद को सुन कर वानरों का राजा (बालि) बाहर आया ॥ ६४॥

अनुमान्य तदा तारां सुग्रीवेण समागतः ।
निजघान च तत्रैन शरेणैकेन राघवः ॥ ६५ ॥
ततः सुग्रीववचनाद् हत्वा वालिन माहवे ।
सुग्रीवमेव तद्राज्ये राघवः प्रत्यपादयत् ॥ ६६ ॥

टीका—तारा से अनुमति लेकर सुग्रीव के साथ आजुटा, वहां राम ने उस को एक तीर से मार डाला ॥ ६५ ॥ सो सुग्रीव के कहने से बाली को मार कर,राघव ने,सुग्रीव को ही उसके राज्य पर स्थापन किया ॥ ६६ ॥

मूल—सच सर्वान् समानीय वानरान् वानरर्षभः ।
दिशः प्रस्थापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजाम् ॥ ६७ ॥
ततो गृध्रस्य वचनात् संपाते र्हनुमान् बली ।
शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम् ॥ ६८ ॥
निवेदयित्वाऽभिज्ञानं प्रवृत्तिं विनिवेद्य च ।
रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायान्महाकपिः ॥ ६९ ॥
ततः सुग्रीवसहितो गत्वा तीरं महोदधेः ।
समुद्रं क्षोभयामास शरै रादित्य सन्निभैः ॥ ७० ॥

टीका—तब उस बानरश्रेष्ठ ने सारे बानरों को इकट्ठा करके सीता के देखने के लिये चारों दिशाओं को भेजा।६७उनमें से सम्पातिगृध्र के वचन से हनुमान् बली सौ योजन लम्बे समुद्र को उलांघ गया ॥६८॥ वह महावानर सीता को निशानी देकर

और समाचार कहकर, राम को प्यारी बात कहने के लिये फिर आया ।६९। तब सुग्रीव समेत राम महासागर के किनारे पर गये। और सूर्य के तुल्य तीरों से समुद्र को हलचल में डाल दिया ॥७०॥

मूल—दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितां पतिः ।
समुद्रवचनाच्चैव नलं सेतुमकारयत् ॥ ७१ ॥
तेन गत्वा पुरीं लङ्कां हत्वा रावणमाहवे ।
रामः सीता मनुप्राप्य परां व्रीडा मुपागमत् ॥ ७२ ॥
तामुवाच ततो रामः परुषं जनसंसदि ।
अमृष्यमाणा सा सीता विवेश ज्वलनं सती ॥ ७३ ॥

टीका—नदियों के पति समुद्र ने अपना आप उनके सामने दिखला दिया । समुद्र के कहने के अनुसार नल से पुल बन्धवाया*।७१।इस (पुल) से लङ्कापुरी में जाकर, युद्ध में रावण को मारकर, सीता को फिर प्राप्त होकर राम (लोकापवाद की शङ्का से) बड़ी लज्जा को प्राप्त हुए।७२।उस जन समुदाय में राम ने सीता को कठोर वचन कहा । सती सीता उसे न सहकर अग्नि में प्रविष्ट हुई ॥ ७३ ॥

मूल—ततोऽग्निवचनात् सीतां ज्ञात्वा विगतकल्मषाम् ।
कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ७४ ॥
सदेवर्षिगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः ।
बभौ रामः संप्रहृष्टः पूजितः सर्व-दैवतैः ॥ ७५ ॥

* यहां अलङ्कार से वर्णन है । सूर्य के सदृश तीर जिन से समुद्र की भीतरी दशा का पता लगाया । यही समुद्र का अपना आप दिखलाना और कहना है, कि यहां पुल बनाओ । गूढ आशय यह है, कि महापुरुष के कदम को आगे बढ़ने के लिये समुद्र और पहाड़ अपने आप रस्ता देते हैं ।

टीका—तब अग्नि के कहने से सीता को निष्पाप जान, ग्रहण किया * । महात्मा राघव के इस बड़े कर्म से तीनों लोक चर अचर सहित और देव ऋषियों के गणों समेत प्रसन्न हुए । राम सब देवताओं से पूजित हुए, प्रसन्न हुए, शोभायमान होते भये ॥ ७४-७५ ॥

मूल—अभिषिच्य च लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ।
कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह ॥ ७६ ॥
देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान् ।

---

* हमारे शास्त्र इस बात का विश्वास दिलाते हैं, कि जो सर्वथा शुद्धहृदय है, उस पर यदि झूठा दोष आरोप किया जाए, तो वह अग्नि के द्वारा अपनी परीक्षा देसक्ता है, अग्नि उस को दाह नहीं करेगी । स्मृतियों में यह बात दिव्य परीक्षा के प्रकरण में आती है । पर यह विश्वास स्मृतियों से भी और ऊंचा चढ़ कर उपनिषदों में भी पाया जाता है । छान्दोग्य उपनिषद् प्रपाठक ६ खण्ड १६ में उद्दालक अपने पुत्र श्वेतकेतु को बतलाते हैं, कि "हे सौम्य ! जिस तरह राज-पुरुष किसी का हाथ पकड़ कर ले आते हैं, कि इस ने चोरी की है । यदि उस पर चोरी का पूरा विश्वास हो, और वह इन्कारी हो, तो उस के लिये लोहा तपाते हैं और वह पकड़ता है । अब यदि वह सच्चा है, तो सचाई उस को आग से ढांपे रखती है,और वह बचजाता है । दूसरा,जो झूठ से अपने आप को ढांपने वाला है, वह नहीं बचता है । जो इसको दाह से बचाता है, वह इस जड़ में आत्मा है, हे श्वेतकतो" ! ॥ आश्चर्य यह है, कि उद्दालक ने श्वेतकेतु को आठ बार नए २ दृष्टान्तों से 'तत्त्वमसि' बतलाया, पर उस की समझ में पूरा नहीं आया । हां नवीं बार, इस आग वाले दृष्टान्त से उसको पूरा समझ में आगया । उपनिषद् कहती है "तद्धास्य विजज्ञौ, तद्धास्य विजज्ञौ" उसने जान लिया:हां उस ने जान लिया' । सो यह हमने शास्त्र का विश्वास बतलादिया है,अपनी सम्मति देने का हम कोई साहस नहीं करसक्के ॥

अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः ॥ ७७ ॥
भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः ।
भरतस्यान्तिके रामो हनुमन्तं व्यसर्जयत् ॥ ७८ ॥

टीका—लङ्का में राक्षसों के राजा विभीषण को तिलक देकर राम कृतकृत्य हुए, दूर हुए सन्ताप वाले, प्रसन्न भए ॥ ७६ ॥ देवताओं से वर (आशीर्वाद) पाकर, और वानरों को उठाकर, अपने मित्रों के समेत पुष्पक विमान द्वारा, अयोध्या को रवाना हुए॥ ७७॥ भरद्वाज के आश्रम में पहुंचकर, सच्चे पराक्रम वाले राम ने हनुमान् को भरत के पास भेजा ॥ ७८ ॥

मूल—पुनराख्यायिकां जल्पन् सुग्रीव सहितस्तदा ।
पुष्पकं तत्समारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥ ७९ ॥
नन्दिग्रामे जटा हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः ।
रामः सीता मनु प्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान् ॥ ८० ॥
प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः ।
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः ॥८१॥

टीका—सुग्रीव (आदि) के सहित फिर उस पुष्पक विमान पर चढ़कर, बीती कथाएं कहते हुए नन्दिग्राम में पहुंचे ॥ ७९ ॥ नन्दिग्राम में भाइयों समेत जटा त्यागकर, निष्पाप राम सीता को फिर पाकर, फिर राज्य को प्राप्त हुए ॥८०॥ सारी प्रजा प्रसन्न, मुदित, तुष्ट, पुष्ट, सुधार्मिक, आधि व्याधि से रहित, * दुर्भिक्ष (अकाल) के भय से रहित होगई † ।

---

* तुष्ट=अपने २ धर्मों में सन्तोषवाले, पुष्ट=धनबल आदि से भरपूर। आधि=मन के रोग=चिन्ता, उदासी, ईर्ष्या, असूया आदि, और व्याधि शरीर के रोग। † इस से यह जाना जाता है, कि जब राम रावण को मार कर राज्यशासन कर रहे थे, तब वाल्मीकि ने नारद के प्रति प्रश्न किया है।

दूसरा सर्ग (वाल्मीकि द्वारा रामायण की रचना)

मूल—नारदस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः ।
पूजयामास धर्मात्मा सहशिष्यो महामुनिम् ॥ १ ॥
स मुहूर्तं गते तस्मिन् देवलोकं मुनिस्तदा ।
जगाम तमसा तीरं जाह्नव्यास्त्वविदूरतः ॥ २ ॥
विचचारह पश्यंस्तत् सर्वतो विपुलं वनम् ॥ ३ ॥

टीका—नारद के इस वाक्य को सुनकर, वाक्य कहने में निपुण धर्मात्मा (वाल्मीकि), अपने शिष्यों के साथ उस महामुनि (नारद) की पूजा करते भए ॥१॥ और जब वह मुनि देवलोक को चले गए, तो उस के थोड़ी देर पीछे वाल्मीकि मुनि गंगा के निकट तमसा के किनारे पर गए ॥ २ ॥ और वहां किनारे पर बड़े बन की शोभा देखते हुए इधर उधर घूम रहे थे ॥ ३ ॥

मूल—तस्याभ्याशे तु मिथुनं चरन्तमनपायिनम् ।
ददर्श भगवांस्तत्र क्रौञ्चयोश्चारुनिःस्वनम् ॥ ४ ॥
तस्मात्तु मिथुनादेकं पुमांसं पापनिश्चयः ।
जघान वैरनिलयो निषादस्तस्य पश्यतः ॥ ५ ॥
तं शोणितपरीतांगं चेष्टमानं महीतले ।
भार्या तु निहतं दृष्ट्वा रुरोद करुणां गिरम् ॥ ६ ॥

टीका—कि वहां उन्होंने पास ही घूमता हुआ मीठी स्वरों वाला, कभी एक दूसरे से अलग न होने वाला चकवे चकवी का जोड़ा देखा॥४॥ मुनि के देखते देखते ही उस जोड़े में से, नर को बुरे निश्चय वाले अकारण बैरी एक भील ने मार डाला ॥ ५ ॥ अब रुधिर से भरे हुए अंगों वाले, पृथिवी तल पर लोटते हुए, मरते हुए, उस(पक्षी) को देखकर उसकी पत्नी बड़ी करुणाभरी बाणीसे रुदन करने लगी६

मूल—तथाविधं द्विजं दृष्ट्वा निषादेन निपातितम् ।
ऋषेर्धर्मात्मन स्तस्य कारुण्यं समपद्यत ॥ ७ ॥
ततः करुणवेदित्वादधर्मोऽयमिति द्विजः ।
निशम्य रुदतीं क्रौञ्चीमिदं वचन मब्रवीत् ॥ ८ ॥

टीका—ऐसी रसभरी अवस्था में भील से गिराए हुए उस पक्षी को देखकर, उस धर्मात्मा ऋषि को दया उत्पन्न हुई ॥ ७ ॥ तब दया का वेत्ता होने से वह ब्राह्मण, रोती हुई चकवी की पुकार का सुनकर, यह वचन बोला ॥ ८ ॥

मूल—मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥ ९ ॥

टीका—हे भील ! मत बहुत बरसों तक प्रतिष्ठा को प्राप्त हो, जब कि चकवी चकवे के जोड़े में से, काम से मोहित हुए एक को तूने मार डाला है ॥ ९ ॥

मूल—तस्येत्थं ब्रुवतश्चिन्ता बभूव हृदि वीक्षतः ।
शोकार्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया ॥ १० ॥
चिन्तयन् स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान् मतिम् ।
शिष्यं चैवाब्रवीद्वाक्यमिदं स मुनिपुंगवः ॥ ११ ॥

टीका—उसने जब ऐसा कहकर हृदय में दृष्टि डाली, तो उसको चिन्ता हुई, कि इस पक्षी के शोक से पीडित हुए मैंने यह (मुनिजन के अनुचित, तप के नाश करनेवाला, शाप वचन) क्या कहा ॥१०॥ उस बड़े दाना बुद्धिमान् मुनिश्रेष्ठ ने चिन्ता करते हुए यह निश्चय किया और शिष्य (भरद्वाज) को यह कहा ॥११॥

मूल—पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः ।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ॥ १२ ॥
तस्य बुद्धिरियं जाता महर्षे र्भावितात्मनः ।
कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम् ॥ १३ ॥

टीका—श्लोक के चार चरणों से बन्धा हुआ, अक्षरों में बराबर

(आठ२ अक्षर के एक २ चरण वाला) वीणा (के स्वर) और लय से युक्त यह श्लोक जो शोक से पीडित हुए मुझ से प्रवृत्त हुआ है, अब यह अन्यथा न हो*॥१२॥इस संस्कृतमनवाले महर्षि की यह बुद्धि हुई, कि सारा ही रामायण काव्य ऐसे (श्लोकों)से बनाउं १३

मूल—उदारवृत्तार्थपदैर्मनोरमैस्तदाऽस्य रामस्य चकारकीर्त्तिमान् ।
समाक्षरैः श्लोकशतैर्यशस्विनो यशस्करं काव्यमुदारदर्शनः ॥१४॥
तदुपगतसमाससन्धियोगं सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवर चरितं मुनि प्रणीतं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥१५॥

टीका—तब उदार दृष्टिवाले उस कीर्त्तिमान् ने, उदार वृत्तान्तरूपी अर्थ के बोधक, सुहावने पदों से. सम अक्षरोंवाले सैंकड़ों श्लोकों से, यशस्वी(राम)का यश प्रकट करनेवाला काव्य बनाया १४ सो समास सन्धि और (प्रकृति प्रत्यय के) योगवाले, सम, मधुर, और स्पष्ट अर्थों वाले, वाक्यों से बन्धे हुए. मुनि से रचे हुए, रघुवर के चरित और रावण के वध को सुनो ॥ †

---

* श्लोक यश को कहते हैं, श्लोक अन्यथा न हो, इस से यह अभिप्रेत है, कि यही श्लोक यश का हेतु बने। और इसलिये उन्हों ने इसी श्लोक को रामायण का आरम्भ समझा, और इसी श्लोक के परिमाण (वज़न) पर सारा रामायण रचा। यह श्लोक अनुष्टुप् छन्द में है, जिसका एक २ चरण आठ २ अक्षर का होता है, सो यह श्लोक वाल्मीकि और रामचन्द्र दोनों के यश का हेतु बना। इस बात के बोधन के लिये अगले श्लोक१४में वाल्मीकि का विशेषण कीर्तिमान् और राम का यशस्वी दिया है।

† रावण का वध, इस कहने से स्पष्ट है, कि रावण के वध तक ही वाल्मीकि ने रामायण रचा है। उत्तरकाण्ड पीछे का है। नारद ने जो वाल्मीकि को रामचरित बतलाया है, जो पहले सर्ग में लिख आए हैं, वह भी रावण के वध तक ही है। सीता का त्याग जो उत्तरकाण्ड में कहा है, उसका ज़िकर तक नहीं। महाभारत

सर्ग ३ (व० ५) कोशलदेश और अयोध्या।

मूल—कोशलो नाम मुदितःस्फीतो जनपदो महान्। निविष्टः सर-

में भी जो बनपर्व में रामचरित दिया है, वह भी रावण के बध तक ही है, यह स्पष्ट और पुष्कल प्रमाण इस बात के हैं, कि उत्तरकाण्ड पीछे का है। और इस में कोई सन्देह शेष नहीं रहता, जब हम पुराने टीकाकरों का यह नोट देखते हैं, कि उत्तरकाण्ड रामायण का खिलभाग (तितिम्मा) है, जैसा कि महाभारत का हरिवंश (देखो इसी श्लोक की व्याख्या में रामायण तिलक)। यद्यपि इससे आगे तीसरे और चौथे सर्ग में उत्तरकाण्ड का ज़िकर है,परन्तु तनिक ध्यान देने से यह और भी स्पष्ट होजायगा। कि तीसरा और चौथा सर्ग, उत्तरकाण्ड को रामयण का हिस्सा बनाने के लिए, पीछे डाले गये हैं। यह बात बड़ी स्पष्ट है। देखिये रामायण की प्रस्तावना इन दो सर्गों में पूर्ण होगई। वाल्मीकि के पूछने पर नारद ने वाल्मीकि को रामचन्द्र का जीवन चरित बतला दिया। "मा निषाद" इत्यादि श्लोक रामायण के बनने का सूत्रपात हुआ, और यह बतला दिया, कि मुनि ने सारा रामायण ऐसे ही श्लोकों में रचा। और अन्त में कहा, कि मुनि से रचे हुए रामचरित और रावण के बध को सुनो। अब यह सीधी बात है, कि इस से आगे रामायण आरम्भ होजाना चाहिए। पर रामायण आरम्भ पांचवें सर्ग से होता है, तीसरे का आरम्भ यह है "श्रुत्वा वस्तु समग्रं तद्धर्मार्थ सहितं हितम्। व्यक्त मन्वेषते भूयो यद्वृत्तं तस्य धीमतः"= धर्म्म और अर्थ से युक्त हितकारी संपूर्ण वृत्तान्त को सुनकर वाल्मीकि जी उस बुद्धिमान् (रामचन्द्र) का, जो इतिवृत्त है, उस को, फिर स्पष्ट ढूंढने लगे। अब यह स्पष्ट है, कि यहां यह बात सम्बन्ध नहीं खाती। पीछे रामायण का बनजाना कहकर, यह कहा है, कि इसको सुनो। अब फिर नए सिरे वृत्तान्त ढूंढने का क्या अर्थ,और क्या सम्बन्ध। तीसरे सर्ग में नए सिरेसे विषयों की अनुक्रमणिका दीगई है, जैसी कि पहले सर्ग में है। दुबारा अनुक्र-

यूतीरे प्रभूतधनधान्यवान् ॥ १ ॥ अयोध्या नाम नगरी तत्रासी-
ल्लोकविश्रुता । मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् ॥ २ ॥
आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी । श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा
सुविभक्तमहापथा ॥ ३ ॥ राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता ।
मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः ॥४॥

टीका—हर्ष से भरा हुआ, दिन पर दिन वृद्धि को प्राप्त होता हुआ,
धन धान्य से भरपूर, कोशल नाम महान् देश है ।१। उस में
जगत् प्रसिद्ध अयोध्या नाम नगरी है, जो नगरी कि मनुष्यों के
राजा मनु ने स्वयं बनाई थी ।२। वह महपुरी १२ योजन (४८कोस)
लम्बी और ३ योजन (१२ कोस) चौड़ी है, सारी ही शोभा वाली है,
और उसके महापथ (सड़कें बाजार और गलियां) बड़े खुले हैं ।३।
वह एक बहुत खुले बड़े राजमार्ग से सजी हुई है जिस पर कि सदा
फूल खिले रहते हैं, और जल छिड़का रहता है ॥ ४ ॥

मणी देने का तात्पर्य्य यह है, कि पहली अनुक्रमणी में जो उत्तर
काण्ड का नाम नहीं आया, वह भी आजाए । चौथे सर्ग में इसबात
का वर्णन है, कि वाल्मीकि मुनि ने रामायण बनाकर आश्रमवासी
कुश और लव को सिखाया, और वह नगर में गाते हुए श्रीरामचन्द्र
जी की दृष्टि पड़े, तब श्रीरामचन्द्र जी ने उनको दरबार में बुलाकर
उनसे रामायण सुना । इस चौथे सर्ग में भी उत्तरकाण्ड का कथन
है, यहां रामायण की श्लोक संख्या २४००० हजार कही है, जब
कि दूसरे सर्ग की समाप्ति में "सैंकड़ों श्लोकों से" इतना ही कहा
है । यहां कुश और लव को इकट्ठा मिलाकर कुशीलव कहा है,
किन्तु कोई हेतु नहीं, कि "कुशलवौ" न कहकर "कुशीलवौ" क्यों
कहा जाय । यह सम्भव है, कि नट का नाम जो कुशीलव है,
उसका व्युत्पादन इस प्रकार किया हो ॥

मूल—तस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित्सर्वसंग्रहः। दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः ॥५॥ इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वा धर्मपरो वशी। महर्षिकल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥६॥ यथा मनुर्महातेजा लोकस्य परिरक्षिता। तथा दशरथो राजा लोकस्य परिरक्षिता॥७॥ तस्मिन् पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुता। नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैर-लुब्धाः सत्यवादिनः॥८॥नाल्पसन्निचयः कश्चिदासीत्तस्मिन् पुरोत्तमे। कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान् ॥ ९ ॥

टीका—उस अयोध्यापुरी में वेदवेत्ता, सबका संग्राहक (कदरदान) दूरदर्शी, महातेजस्वी, पुर और देश के लोगों का प्यारा ।५। इक्ष्वाकुओं* का अतिरथ बड़ा शूरवीर=Great Warrior(fighting from a car) सोमयाजी धर्मपरायण जितेन्द्रिय, महर्षियों के तुल्य तीनों लोक में विख्यात राजऋषि ।६। राजा दशरथ सारी प्रजा का सब ओर से ऐसा रक्षक था, जैसा कि महातेजस्वी मनु अपनी प्रजा का परिरक्षक था।७। उस श्रेष्ठपुरी में सारे लोग हृष्ट (खुश), धर्मात्मा, बहुश्रुत (गुरुओं से शास्त्र का और वृद्धों से उनके अनुभव को बहुत सुने हुए), अपने २ धनों से सन्तुष्ट लोभ से रहित, सत्यवादी थे ।८। उस उत्तम पुर में कोई कुटुम्बी ऐसा न था, जिसके पास आवश्यक वस्तुओं

---

* रामचन्द्र के बड़ों में इक्ष्वाकु, पुरञ्जय और रघु बड़े प्रतापी राजे हुए हैं। जिन्होंने नाम पैदा किया है! इन में से पुरञ्जय को ककुत्स्थ पदवी मिली थी, इन नामी राजों के नाम पर सारे सूर्य्य वंशियों को बुलाया जाता था। इसलिये दशरथ वा राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इनके लिये ऐक्ष्वाक, काकुत्स्थ वा राघव शब्द आए हैं, और सूर्य्य वंशी सारी जाति के लिये इक्ष्वाकु वा रघु शब्द आए हैं।

का सञ्चय थोड़ा हो, जिसके काम अड़े रहते हों, वा जिसके पास गौ घोड़े और धनधान्य की बहुतायत न हो ॥ ९ ॥

मूल—कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्। द्रष्टुं शक्य मयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः ॥१०॥ सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः। मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः ११ नामृष्टभोजी नादाता नाप्यनङ्गदनिष्कधृक्। नाहस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान् ॥१२॥ नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः। कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न संकरः ॥ १३ ॥

टीका—अयोध्या में कहीं कामी (केवल काम में रत) कदर्य * (कंजूस). दुर्जन अविद्वान् वा नास्तिक पुरुष का देखना अशक्य था।१०। सारे नर नारी—धर्मशील, पूरे संयमी. मोद से भरे हुए, शील और बर्ताव में महर्षियों की तरह निर्मल थे।११। अयोध्या में न कोई अस्वच्छ भोजन करने वाला, न अदाता, न सोने के अङ्गद (बहादुरों का डौले का भूषण माला और कड़े न पहने हुए दिखलाई देता था और (साथ ही इन अमीरी में कोई अजितेन्द्रिय नहीं था), न कोई अग्निहोत्र से रहित, न सोमयाग से रहित, न क्षुद्र, न सदाचार से हीन न सङ्कर वर्ण था ॥१२,१३॥

---

* आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयेत्।
लोभाद्यः पितरौ भ्रातॄन् स कदर्य इति स्मृतः ॥

जो (धन के होते हुए) लोभ से युक्त हुआ अपने आप को, माता पिता पुत्र स्त्री और भाई बहिनों को तथा धर्मकार्य्य (देश जाति की सेवा वा धर्म के प्रचार) को तंग रखे (इनमें पूरा खर्च न करे) वह कदर्य कहा जाता है।

मूल—स्वकर्मनिरता नित्यं ब्रह्मणा विजितेन्द्रियाः । दानाध्ययन शीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे ॥१४॥नास्तिको नानृती वापि न कश्चिदबहुश्रुतः । नासूयको नाशक्तो नाविद्वान् विद्यते क्वचित्॥१५ कश्चिन्नरो वा नारी वा नाश्रीमान्नाप्यरूपवान् । द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नापि राजन्यभक्तिमान् ॥ १६ ॥

टीका—ब्राह्मण सदा अपने कर्म में रते हुए, इन्द्रियों को जीते हुए, दान देने और पढ़ने के स्वभाव वाले, और दान लेने में संकोच रखने वाले थे । १४ । न कहीं कोई नास्तिक, न झूठ बोलने वाला, न अबहुश्रुत (बहुत शास्त्र न सुना हुआ), न असूया वाला, न (अपने लोक परलोक के अर्थ साधन में) अशक्त, न अविद्वान् ।१५। अयोध्या में कोई ऐसा नर नारी नहीं दिखाता है, जो श्रीमान् न हो वा रूपवान् न हो, अथवा राजा में भक्तिमान् न हो । १६ ।

मूल—वर्णेष्वग्र्यचतुर्थेषु देवतातिथिपूजकाः । कृतज्ञाश्च वदान्याश्च शूराविक्रमसंयुताः॥१७॥दीर्घायुषो नराःसर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिताः। सहिताः पुत्रपौत्रैश्च नित्यं स्त्रीभिः पुरोत्तमे ॥ १८ ॥ क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद्वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः । शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन् वर्णानुपचारिणः ॥ १९ ॥

टीका—ब्राह्मणादि चारों वर्णों में लोग देवता और अतिथियों के पूजक, कृतज्ञ, बड़े दानी, शूरवीर और पराक्रम से युक्त थे ॥ १७ ॥ उस उत्तमपुर में सब लोग दीर्घ आयु वाले, धर्म और सत्य का सहारा पकड़े हुए पुत्रपोतों से और स्त्रियों से सदा युक्त थे । १८ । क्षत्रिय ब्रह्मप्रधान (ब्राह्मणों को प्रधान किये हुए) थे, वैश्य क्षत्रियों के अनुकूल थे, और शूद्र अपने कर्म में तत्पर हुए तीनों वर्णों के सेवक थे ॥१९॥

मूल—सा तेनेक्ष्वाकुनाथेन पुरी सुपरिरक्षिता । यथा पुरस्तान्मनुना मानवेन्द्रेण धीमता॥२०॥योधानामग्निकल्पानां पेशलानाममर्षिणाम । सम्पूर्णा कृतविद्यानां गुहा केसरिणामिव ॥२१॥ काम्बोज विषये जातैर्बाल्हीकैश्च हयोत्तमैः । वनायुजैर्नदीजैश्च पूर्णा हरिहयोत्तमैः ॥२२॥ विन्ध्यपर्वतजैर्मत्तैः पूर्णा हैमवतैरपि । मदान्वितैरतिबलैर्मातङ्गैः पर्वतोपमैः ॥ २३ ॥

टीका—इक्ष्वाकुओं का राजा उस पुरी की ऐसी ठीक२ रक्षा कर रहा था, जैसे पूर्वकाल में मनुष्यों के राजा बुद्धिमान् मनु ने की थी। २० । जो पुरी, अग्नि के तुल्य (भखते हुए चेहरों वाले), अकुटिल, (अनादर को) न सहने वाले, शस्त्रविद्या में बड़े निपुण योधों से भरी हुई, केसरी शेरों (बब्बर शेरों) की गुफा के सदृश थी ।२१। काम्बोज, बाल्हीक (बलख,बख्तर) और वनायु देशों में उत्पन्न हुए, और सिन्धुनद के समीप उत्पन्न हुए उच्चैश्रवा*जैसे उत्तम घोड़ों से पूर्ण थी । २२ । और विन्ध्याचल और हिमालय से उत्पन्न हुए, पर्वतों के तुल्य (महाकाय), बडे बलवाले,मद से भरे हुए मस्त हाथियों से पूर्ण थी ॥ २३ ॥

मूल—ऐरावतकुलीनैश्च महापद्मकुलैस्तथा । अञ्जनादपि निष्क्रान्तैर्वामनादपि च द्विपैः॥२४॥भद्रैर्मन्द्रैर्मृगैश्चैव भद्रमन्द्रमृगैस्तथा। भद्र मन्द्रैर्भद्रमृगैर्मृगमन्द्रैश्च सा पुरी ॥२५॥ नित्यमत्तैः सदा पूर्णा नागैरचलसंनिभैः । सा योजने द्वे च भूयः सत्यनामा प्रकाशते ॥ ॥२६॥ तां पुरीं स महातेजा राजा दशरथो महान् । शशास शमितामित्रो नक्षत्राणीव चन्द्रमाः ॥ २७ ॥

टीका—ऐरावत नसल के, महापद्म नसल के, अञ्जन नसल के

---

* उच्चैश्रवा इन्द्र का घोड़ा ।

और वामन नसल के हाथियों से.तथा भद्र, मन्द्र, मृग।२४। तथा भद्रमन्द्र, भद्रमृग, मन्द्रमृग और भद्रमन्द्रमृग*हाथियों से।२५। जोकि मदमत्त, पर्वत के तुल्य थे, ऐसे हाथियों स बाहर की तर्फ पूरे दो याजनों में सदा पूर्ण वह पुरी अपने नाम को सार्थक करती हुई† शोभा पा रही थी ॥ २६ ॥ उस पुरी को महातेजस्वी महान् राजा दशरथ, शत्रुओं को जीत कर नक्षत्रों में चन्द्र के तुल्य शासन कर रहा था ॥ २७ ॥

सर्ग ४ (व० ७) (राजा के मन्त्री)

मूल—अष्टौ बभूवुर्वीरस्य तस्यामात्या यशस्विनः। शुचयश्चानुरक्ताश्च राजकृत्येषु नित्यशः ।१। धृष्टिर्जयन्तो विजयो सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः। अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित् ॥ २ ॥ ऋत्विजौ द्वावभिमतौ तस्यास्तामृषिसत्तमौ। वसिष्ठो वामदेवश्च मन्त्रिणश्च तथापरे ॥ ३ ॥ सुयज्ञोऽप्यथ जाबालिः काश्यपोऽप्यथ गौतमः। मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुस्तथा कात्यायनो द्विजः ॥ ४ ॥ तेजः क्षमायशः प्राप्ताः स्मितपूर्वाभिभाषिणः। क्रोधात्कामार्थहेतोर्वा न ब्रूयुरनृतंवच ।५

टीका—आठ उस यशस्वी वीर के अमात्य थे, शुचि (ईमानदार) अनुरक्त (वफादार) और राजकृत्यों में सदा तत्पर॥१॥धृष्टि, जयन्त. विजय सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप,धर्मपाल और आठवां अर्थ का जानने वाला सुमन्त्र ॥२॥ दो ऋषिश्रेष्ठ उसके ऋत्विज थे वसिष्ठ और वामदेव. तथा और भी ऋत्विज थे, और यह सब मन्त्री

* हिमालय, विन्ध्याचल और सह्य पर्वत के हाथी क्रम से भद्र, मन्द्र और मृग कहलाते हैं। इनके मेल से भद्रमन्द्र, भद्रमृग, मन्द्रमृग और भद्रमन्द्र मृग बनते हैं ॥

† अयोध्या अर्थात् जिस से युद्ध न किया जासके।



भी थे ॥ ३ ॥ सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, दीर्घ आयुवाला मार्कण्डेय और द्विजन्मा कात्ययन ॥ ४ ॥ यह सब (अमात्य, ऋत्विज्) तेज क्षमा और यश को पाए हुए, हंसकर बात करनेवाले थे, जो क्रोध से, काम से वा किसी अर्थ के हेतु, कभी झूठ वचन न बोलें ॥ ५ ॥

मूल—तेषामविदितं किञ्चित् स्वेषु नास्ति परेषु वा । क्रियमाणं कृतं वापि चारेणापि चिकीर्षितम् ॥ ६ ॥ शुचीनामेकबुद्धीनां सर्वेषां संप्रजानताम् । नासीत्पुरे वा राष्ट्रे वा मृषावादी नरः क्वचित् ॥ ७ ॥ कश्चिन्न दुष्टस्तत्रासीत्परदाररतिर्नरः । प्रशान्तं सर्वमेवासीद्राष्ट्रं पुरवरं च तत् ॥ ८ ॥ ईदृशैस्तैरमात्यैश्च राजा दशरथोऽनघः । उपपन्नो गुणोपेतैरन्वशासद्वसुंधराम् ॥ ९ ॥ अवेक्ष्यमाणश्चारेण प्रजा धर्मेण रक्षयन् । प्रजानां पालनं कुर्वन्नधर्मं परिवर्जयन् ॥ १० ॥

टीका—उनको अपनों वा बेगानों में कुछ बे मालूम न था, यहां तक कि गुप्तचरों (जासूसों) द्वारा किया गया, किया जाता हुआ, वा करना चाहा हुआ भी बेमालूम न था ॥ ६ ॥ ऐसे शुद्ध, (परस्पर) एक बुद्धिवाले (पुर और देश का वृत्तान्त) ठीक २ जाननेवालों के पुर तथा देश में कहीं कोई मृषावादी (जअलसाज़) नर न था ॥ ७ ॥ न कहीं दुष्ट, न परनारी में रति वाला था, (उनकी जागृति से) वह पुरवर और सारा देश अमन चैन में था ॥ ८ ॥ ऐसे (उत्तम) गुणों से युक्त, उन मन्त्रियों के साथ निष्पाप राजा दशरथ पृथिवी का शासन कर रहा था ॥ ९ ॥ गुप्तचरों द्वारा देखकर, प्रजा की धर्म से रक्षा करता हुआ, प्रजा का पालन करता हुआ, और अधर्म को (उनसे) परे हटाता हुआ (शासन कर रहा था) ॥ १० ॥

सर्ग ५ (व० ८) यज्ञ करने का निश्चय ।

मूल—तस्य चैवंप्रभावस्य धर्मज्ञस्य महात्मनः सुतार्थं तप्यमानस्य नासीद्वंशकरः सुतः ॥१॥ चिन्तयानस्य तस्यैवं बुद्धिरासीन्महात्मनः सुतार्थं वाजिमेधेन किमर्थं न यजाम्यहम् ॥ २ ॥ स निश्चितां मतिं कृत्वा यष्टव्यमिति बुद्धिमान् । मन्त्रिभिः सह धर्मात्मा सर्वैरपि कृतात्मभिः ॥३॥ ततोऽब्रवीन्महातेजाः सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तम । शीघ्रमानय मे सर्वान्गुरूंस्तान्सपुरोहितान् ॥४॥ ततः सुमन्त्रस्त्वरितं गत्वा त्वरितविक्रमः । समानयत्स तान्सर्वान्समस्तान्वेदपारगान् ॥ ५ ॥

टीका—उस, ऐसे प्रभाववाले, धर्मज्ञ महात्मा का वंश चलाने वाला कोई पुत्र नहीं था, अतएव पुत्र के लिये वह संतप्त होरहा था ॥१॥ इसी सोच में पड़े हुए उस महात्मा को यह विचार उत्पन्न हुआ, कि पुत्र के लिये क्यों न अश्वमेध यज्ञ करूं ॥२॥ तब उस बुद्धिमान् धर्मात्मा ने सारे धार्मिक मन्त्रियों के साथ यह विचार निश्चित किया, कि यज्ञ अवश्य करना चाहिये ॥३॥ ऐसा निश्चय करके वह महातेजस्वी सुमन्त्र से बोला, हे मन्त्रिसत्तम ! पुरोहित समेत मेरे सारे गुरुओं को जल्दी बुला लाओ ॥ ५ ॥ आज्ञा पाते ही सुमन्त्र त्वरितगति हो तुरत पहुंचकर उन सब को साथ ले आया, जो सब के सब वेदपारग थे ॥ ५ ॥

मूल—सुयज्ञं वामदेवं च जाबालिमथ काश्यपम् । पुरोहितं वसिष्ठं च ये चाप्यन्ये द्विजोत्तमाः॥६॥तान्पूजयित्वा धर्मात्मा राजा दशरथस्तदा । इदं धर्मार्थसहितं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ मम तातप्यमानस्य सुतार्थं नास्ति वै सुखम् । तदर्थं हयमेधेन यक्ष्यामीति मतिर्मम ॥ ८ ॥ तदहं यष्टुमिच्छामि शास्त्रदृष्टेन कर्मणा । कथं प्राप्स्याम्यहं कामं बुद्धिरत्र विचिन्त्यताम् ॥९॥

टीका—सुयज्ञ,वामदेव,जाबालि,काश्यप,पुरोहित वसिष्ठ और दूसरे ब्राह्मण॥६॥धर्मात्मा राजा दशरथ उन सब को आदर करके धर्म अर्थ से युक्त यह वचन बोला ॥ ७ ॥ पुत्र के लिये संतप्त हूं, अत एव मुझे सुख नहीं, सो मैं इस प्रयोजन के लिये अश्वमेध यज्ञ करूं यह मेरा विचार है ॥ ८ ॥ मैं पूरी शास्त्रोक्त विधि से यज्ञ करना चाहता हूं. आप यह बुद्धि सोचें, कि किसतरह मैं अपने मनोरथ को पाऊं ॥ ९ ॥

मूल—ततः साध्विति तद्वाक्यं ब्राह्मणाः प्रत्य पूजयन् । वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे पार्थिवस्य मुखेरितम् ॥१०॥ऊचुश्च परमप्रीताः सर्वे दशरथं वचः । संभारः संभ्रियन्तां ते तुरगश्च विमुच्यताम् ॥११॥ सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् । सर्वथा प्राप्यसे पुत्रानभिप्रेतांश्च पार्थिव ॥ १२ ॥

टीका—राजा के मुख से निकले हुए इस वचन को वसिष्ठ आदि सब ब्राह्मणों ने 'साधु' ऐसा कहकर आदर दिया ॥ १० ॥ और बड़े प्रसन्न होकर दशरथ से यह वचन बोले, सारे संभार (सामग्री) तय्यार होवें, और घोड़ा छोड़ दिया जाए ॥ ॥११ ॥ सरयू के उत्तरी किनारे पर यज्ञ भूमि बने, हे पृथ्वीनाथ ! आप निःसन्देह मनोवाञ्छित पुत्रों को पाएंगे—॥ १२ ॥

मूल—यस्य ते धार्मिका बुद्धिरियं पुत्रार्थमागता । ततस्तुष्टोऽभवद्राजा श्रुत्वैतद्द्विजभाषितम् ॥ ॥१३ ॥ अमात्यानब्रवीद्राजा हर्षव्याकुललोचनः । संभारा संभ्रियन्तां मे गुरूणां वचनादिह ॥ १४ ॥ समर्थाधिष्ठितश्चाश्वः सोपाध्यायो विमुच्यताम् । सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् ॥ १५ ॥

टीका--जिस को पुत्र के लिये यह धार्मिक बुद्धि मिली है। तब ब्राह्मणों के इस वचन (अवश्य मनो वाञ्छित पुत्रों को पाएंगे) को सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १३ ॥ आनन्द के आंसुओं से भरे हुए नेत्रों वाला मन्त्रियों से बोला 'गुरुओं के वचनानुसार मेरे लिये संभार तैयार करो ॥१४॥ समर्थ पुरुषों के अधिकार में (स्वतन्त्र घूमने के लिये) घोड़ा छोड़ो, उपाध्याय साथ हो, और सरयू के उत्तरी किनारे पर यज्ञभूमि बनाओ॥१५॥

मूल--इत्युक्त्वा नृप शार्दूलः सचिवान् समुपस्थितान् । विसर्जयित्वा स्वं वेश्म प्रविवेश महामतिः ॥ १६ ॥ ततः स गत्वा ताः पत्नी नरेन्द्रो हृदयंगमाः । उवाच दीक्षां विशत यक्ष्येऽहं सुतकारणात् ॥ १७ ॥ तासां तेनातिकान्तेन वचनेन सुवर्चसाम् । मुखपद्मान्यशोभन्त पद्मानीव हिमात्यये ॥ १८ ॥

टीका--उपस्थित मन्त्रियों को यह आज्ञा देकर और विसर्जन करके वह महामति राजशार्दूल अपने महल में प्रविष्ट हुआ ॥ १६ ॥ और हृदय की प्यारी उन पत्नियों से जाकर बोला, तुम (यज्ञ की) दीक्षा में जाकर प्रविष्ट होवो, मैं पुत्र के अर्थ यज्ञ करूंगा ॥ १७ ॥ इस बड़े सुहावने वचन से उन सुहावनी कान्तिशालियों के मुख पद्म ऐसी शोभावाले होगये, जैसे जाड़े के लङ्घ जाने पर (वसन्त में) पद्म शोभावाले होते हैं ॥१८॥

सर्ग ६ (व० १३-१७) यज्ञ कर्म का पूरा होना ।

मूल--ततो वसिष्ठप्रमुखा सर्व एव द्विजोत्तमाः । ऋष्यश्रृङ्गंपुरस्कृत्य यज्ञकर्मारभंस्तदा ॥१॥ यज्ञवाटं गताः सर्वे यथाशास्त्रं यथाविधि । श्रीमांश्च सह पत्नीभि राजा दीक्षामुपाविशत् ॥२॥

कर्म कुर्वन्ति विधिवद् याजका वेदपारगाः । यथाविधि यथान्यायं परिक्रामन्ति शास्त्रतः ॥ ३ ॥ न चाहुतमभूत् तत्र स्खलितं वा न किञ्चन । दृश्यते ब्रह्मवत् सर्वं क्षेमयुक्तं हि चक्रिरे ॥ ४ ॥

टीका--तब वसिष्ठ आदि सारे ब्राह्मण ऋष्यशृङ्ग*को आगे करके यज्ञशाला में गये, और शास्त्रोक्त विधि से कर्म आरम्भ किया, श्रीमान् राजा पत्नियों सहित दीक्षा में प्रविष्ट हुआ ॥१-२॥ वेद के पार पहुंचे हुए याजक (यज्ञ करने वाले) विधि के अनुसार, युक्ति के अनुसार अपनी २ बारी शास्त्रानुसार कर्म करने लगे ॥ ३ ॥ न वहां अन्यथा होम हुआ, न कहीं किसी का फिसलना दीखता है, सब कुछ मन्त्रों से युक्त विघ्न रहित पूरा किया गया ॥ ४ ॥

मूल--दिवसे दिवसे तत्र संस्तरे कुशला द्विजाः । सर्वकर्माणि चक्रुस्ते यथा शास्त्रं प्रचोदिताः ॥ ५ ॥ क्रतुं समाप्य तु तदा न्यायतः पुरुषर्षभः । ऋत्विग्भ्यो हि ददौ राजा धरां तां कुलवर्धनः ॥ ६ ॥ + ऋत्विजस्त्वब्रुवन् सर्वे राजानं गतकिल्बिषम् । भवानेव महीं कृत्स्ना मेको रक्षितु मर्हति ॥ ७ ॥+न भूम्या कार्य मस्माकं न हि शक्ताः स्म पालने । रताः स्वाध्यायकरणे वयं नित्यं हि भूमिप ॥ ८ ॥

टीका--दिन २ वहां यज्ञ में निपुण ब्राह्मण यथाशास्त्र प्रेरे जाकर कर्मों को करते भए ॥ ५ ॥ तब ठीक २ यज्ञ को समाप्त करके कुल के बढाने की इच्छावाला वह राजा ऋत्विजों

---

* ऋष्यशृङ्ग एक बडे तपस्वी और वेदवेत्ता ऋषि थे, दशरथ के सखा अङ्गदेश के राजा लोमपादकी कन्या शान्ता इन से ब्याही थी ।

को (दक्षिणा में) पृथिवी देता भया ॥ ६ ॥ पर ऋत्विज सारे निष्पाप हुए राजा से बोले । आपही एक इस सारी पृथिवी की रक्षा करने योग्य हैं ॥ ७ ॥ हमें पृथिवी से काम नहीं, न हम इस के पालन में समर्थ हैं, क्योंकि हे राजन् ! हम सर्वदा स्वाध्याय के करने में रते हुए हैं ॥ ८ ॥

मूल--निष्क्रियं किञ्चिदेवेह प्रयच्छतु भवानिति । मणिरत्नं सुवर्णं वा गावो यद्वा समुद्यतम् ॥ ९ ॥ ततः प्रीतेषु विधिवद् द्विजेषु द्विजवत्सलः । प्रणाम मकरोत् तेषां हर्षव्याकुलितेन्द्रियः ॥ १० ॥ तस्याऽऽशिषोऽथ विविधा ब्राह्मणैः समुदाहृताः । ततोऽब्रवीद् ऋष्यशृङ्गं राजा दशरथस्तदा ॥ ११ ॥ कुलस्य वर्धनं तत्तु कर्त्तु मर्हसि सुव्रत । तथेति च स राजान मुवाच द्विज-सत्तमः ॥ १२ ॥ भविष्यन्ति सुता राजंश्चत्वारस्ते कुलोद्वहाः ।१३।

टीका--हमें कुछ उस का थोड़ा बहुत तबादला दे दीजिये, बहुमूल्य रत्न वा सुवर्ण वा गौएं, अथवा जो कुछ तय्यार हो॥९॥ तब यथाविधि (गौ आदि की दक्षिणा से) ब्राह्मणों के प्रसन्न होने पर ब्राह्मणों का प्यार करने वाले, आनन्द के आंसुओं से भरे हुए नेत्रोंवाले, उस राजा ने उनको प्रणाम किया ॥१०॥ उस समय ब्राह्मणों ने उस को विविध आशिर्वाद दिये, तब राजा दशरथ ऋष्यशृङ्ग से बोले ॥ ११ ॥ हे अच्छे व्रतों वाले आपकी कृपा हो, मेरे कुल की वृद्धि हो । उस ब्राह्मणवर ने उत्तर में 'तथास्तु' कहकर कहा ॥१२॥ होंगे हे राजन् ! चार पुत्र जो तेरे कुल को ऊंचा उठाएंगे (तेरे कुल का नाम पैदा करेंगे) ॥ १३ ॥

सर्ग ७ (व० १८) रामादि का जन्म और विश्वामित्र का आगमन

मूल--ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः । ततश्च द्वादशे

मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ॥ १ ॥ नक्षत्रेऽदितिदैवत्येस्वोच्च-संस्थेषु पञ्चसु । ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह ॥ २ ॥ कौशल्याऽजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम् । लोहिताक्षं महाबाहुं रक्तोष्ठं दुन्दुभिस्वनम् ॥ ३ ॥ भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्य-पराक्रमः । अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राऽजनयत्सुतौ ॥ ४ ॥

टीका—यज्ञ को समाप्त हुए छः ऋतु बीत चुके, तब बारहवें महीने चैत्रमास नवमी तिथि * ॥ १ ॥ अदिति देवतावाले (अर्थात् पुनर्वसु) नक्षत्र में, जब कि पांचों ग्रह अपने उच्चस्थानों में थे † और बृहस्पति चन्द्रमा के साथ था, उस समय कर्क लग्न में ॥२॥ कौशल्या ने दिव्य लक्षणों से युक्त राम को जन्म दिया, जिस के नेत्र लाल, भुजा बडी, होंठ लाल और ध्वनिदुन्दुभी के तुल्य थी ॥ ३ ॥ कैकेयी में सच्चे पराक्रमवाला भरत उत्पन्न हुआ, और सुमित्री ने लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न इन दो पुत्रों को जन्म दिया॥४॥

मूल--पुष्ये जातस्तु भरतो मीन लग्ने प्रसन्नधीः । सार्पे जातौ तु सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ ॥ ५ ॥ उत्सवश्च महानासी-द्योध्यायां जनाकुलः । रथाश्च जनसंबाधा नटनर्तकसंकुलाः ॥ ६ ॥गायनैश्च विराविण्यो वादनैश्च तथापरैः । विरेजुर्विपुलास्तत्र सर्वरत्नसमन्वताः ॥७॥ प्रदेयांश्च ददौ राजा सूतमागधबन्दिनाम् । ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं गोधनानि सहस्रसः ॥ ८ ॥

टीका—पुष्यनक्षत्र में मीन लग्न में निर्मल बुद्धिवाला भरत उत्पन्न हुआ, और अश्लेषा नक्षत्र में कर्क लग्न में सूर्य के उदय होते हुए सुमित्रा के दोनों पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ॥ ५ ॥

* यही तिथि इस महापुरुष की जन्मतिथि होने से अब रामनवमी के नाम से प्रसिद्ध है । † सूर्य, मङ्गल, शनि, बृहस्पति, शुक्र ग्रह मेष मकर तुला कर्क मीन में थे ।

अयोध्या में बड़ी भीड़ भाड़का महान् उत्सव हुआ, गलियां नट और नर्तकों से (नचैयों) से भरी हुई लोगों से भीड़ी हुई थी ॥ ६ ॥ वहां बड़ी खुली गलियें गवैयों और बाजों के शब्दों से गूंजती हुई, सब प्रकार के रत्नों से युक्त चमकती थीं ॥ ७ ॥ पुराण पढ़ने वालों, वंशावली पढ़ने वालों, और स्तुति पढ़ने वालों को राजा ने पारितोषिक दिये, और ब्राह्मणों को धन और बहुत सी गौएं दीं ॥ ८ ॥

मूल—अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथाकरोत् । ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकेयीसुतम् ॥ ९ ॥ सौमित्रिं लक्ष्मणमिति शत्रुघ्नमपरं तथा । वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कुरुते तदा ॥ १० ॥ ब्राह्मणान्भोजयामास पौरजानपदानपि । अददद्ब्राह्मणानां च रत्नौघममलं बहु ॥ ११ ॥ तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत् । सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे लोकहिते रताः ॥ १२ ॥

टीका—ग्यारह दिन बीतने पर उन का नाम-करण किया, सब से बड़े महात्मा का नाम राम, कैकेयी के पुत्र का नाम भरत, ॥ ९ ॥ सुमित्रा के पुत्रों का नाम लक्ष्मण और शत्रुघ्न । यह नाम परम प्रसन्न हुए वसिष्ठ ने उस समय किये॥१०॥ब्राह्मणों को भोजन दिया और पुर और देश के लोगों को भी, और ब्राह्मणों को बहुत से निर्मल रत्न दिये ॥ ११ ॥ जन्म से लेकर उन के सारे संस्कार वसिष्ठ ने कराए। सारे वेद के जानने वाले शूरवीर थे, सारे लोक के हित में रते हुए थे ॥ १२ ॥

मूल—सर्वे ज्ञानोपसम्पन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः । तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥ १३ ॥ इष्टः सर्वस्य लोकस्य

शशाङ्क इव निर्मलः । गजस्कंधेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु संमतः ॥१४॥ धनुर्वेदे च निरतः पितुः शुश्रूणुषणे रतः । बाल्यात्प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ॥ १५ ॥ रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः । सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः ॥१६।

टीका—सारे ज्ञान में पूर्ण, सारे गुणों में पूर्ण थे । और उन में से भी सच्चे पराक्रम वाला महातेजस्वी राम ॥१३॥ चन्द्र की तरह निर्मल और सारे लोक का प्यारा था । हाथी के कंधे पर, घोड़े की पीठ पर, और रथ की चालों में बड़ा निपुण था ॥१४॥ धनुर्वेद (शस्त्रास्त्र विद्या) में तत्पर, पिता की सेवा में रता हुआ था । लोक के प्यारे, बड़े भाई राम का इस लक्ष्मी बढ़ाने वाला लक्ष्मण बालकपन से लेकर बड़ा स्नेही था, अपने शरीर से भी बढकर उसका प्रिय करनेवाला था ॥ १५,१६ ॥

मूल—लक्ष्मणो लक्ष्मिसंपन्नो बहिः प्राण इवापरः । न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः ॥ १७ ॥ मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना । यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः ॥१८॥ अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन् । भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः ॥१९॥ प्राणैः प्रियतरो नित्यं तस्य चासीत्तथा प्रियः । यदा ज्ञानसम्पन्नाःसर्वे समुदिता गुणैः ॥२०॥ अथ राजा दशरथस्तेषां दारक्रियां प्रति । चिन्तयामास धर्मात्मा सोपाध्यायः सबान्धवः ॥२१॥ तस्य चिन्तयमानस्य मन्त्रिमध्ये महात्मनः । अभ्यागच्छन्महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ॥२२॥

टीका—लक्ष्मी से पूर्ण लक्ष्मण मानों उसका दूसरा बाहर का प्राण (प्राण की तरह प्यारा) था। वह पुरुषोत्तम उस के

विना नींद नहीं पाता था ॥१७॥ बिना उसके पास आए स्वच्छ भोजन को नहीं खाता था। जब राम घोड़े पर सवार हो शिकार को जाते॥१८॥तो यह धनुष धारकर (राम के शरीर की) रक्षा करता हुआ उनके पीछे चलता। भरत को भी शत्रुघ्न, जोकि लक्ष्मण का छोटा भाई था, प्राणों से अधिक प्यारा था, और उसको वह प्यारा था। वह जब सारे भाई ज्ञान में अमीर औरगुणों से भरपूर होगए ॥१९-२०॥ तब धर्मात्मा राजा दशरथ उनके विवाह के लिये पुरोहित और बान्धवों के साथ सोचने लगे ॥२१॥ जब वह महात्मा मन्त्रियों के मध्य में बैठे ऐसा सोच रहे थे,तब महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र वहां आए॥२२॥

मूल—स राज्ञो दर्शनाकांक्षी द्वाराध्यक्षानुवाच ह। शीघ्रमाख्यात मां प्राप्तं कौशिकं गाधिनः सुतम् ॥२३॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राज्ञो वेश्मप्रदुद्रुवुः। ते गत्वा राजभवनं विश्वामित्रमृषिं तदा ॥२४॥ प्राप्तमावेदयामासुर्नृपायेक्ष्वाकवे तदा। तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सपुरोधाःसमाहितः ॥२५॥प्रत्युज्जगाम संहृष्टो ब्रह्माणमिव वासवः। स दृष्ट्वा ज्वलितं दीप्त्या तापसं संशितव्रतम् ॥२६॥

टीका—वह राजा का दर्शन चाहते हुए द्वारपालों से बोले, शीघ्र जाकर मेरा आना बतलाओ। कुशिकवंशी गाधि का पुत्र आया है ॥२३॥ उनके इस वचन को सुनकर वह राजा के भवन की तर्फ भागे गए, और राजभवन में जाकर उन्होंने इक्ष्वाकुओं के राजा से निवेदन किया, कि ऋषि विश्वामित्र पधारे हैं। उनके इस वचन को सुनकर दशरथ एकाग्रचित्त हो पुरोहित समेत ॥२३-२४-२५॥ प्रसन्न हुए लेने को आगे बढ़े

जैसे इन्द्र बृहस्पति के (आदर में आगे बढ़ता है)। तेज से भखते हुए तीक्ष्ण व्रतोंवाले तपस्वी को देखकर ॥ २६ ॥

मूल—प्रहृष्टवदनो राजा ततोऽर्घ्यमुपहारयत्। स राज्ञः प्रतिगृह्यार्घ्यं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥२७॥ कुशलं चाव्ययं चैव पर्यपृच्छन्नराधिपम्। पुरे कोशे जनपदे बान्धवेषु सुहृत्सु च ॥ २८ ॥

टीका—प्रसन्न मुख हुए राजा अर्घ्य लिवा लाए, वह राजा से शास्त्रोक्त विधि से अर्घ्य स्वीकार करके ॥२७॥ पुर, कोश, देश, बन्धुओं और सुहृदों में कुशल और वृद्धि पूछते भए ॥२८॥

मूल—अपि ते संनताः सर्वे सामन्तरिपवो जिताः। दैवं च मानुषं चैव कर्म ते साध्वनुष्ठितम्॥२९॥ वसिष्ठं च समागम्य कुशलं मुनिपुंगवः। ऋषींश्च तान्यथान्यायं महाभाग उवाच ह॥३०॥ ते सर्वे हृष्टमनसस्तस्य राज्ञो निवेशनम्। विविशुः पूजितास्तेन निषेदुश्च यथार्हतः

टीका—क्या आपके आधीन राजे सब झुके हुए हैं, शत्रु सारे जीते हुए हैं, और दैव तथा मानुष कर्म (अग्निहोत्रादि और प्रजापालनादि) ठीक रहते हैं॥२९॥ फिर वह मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ से मिलकर और दूसरे ऋषियों से मिलकर यथाविधि उनसे कुशल पूछते भए ॥३०॥ वह सब प्रसन्नमन हुए उस राजा के मन्दिर में प्रविष्ट हुए, और राजा से आदर पाकर यथा योग्य बैठ गए ॥ ३१ ॥

मूल—अथ हृष्टमना राजा विश्वामित्रं महामुनिम्। उवाच परमोदारो हृष्टस्तमभिपूजयन्॥३२॥ यथाऽमृतस्य संप्राप्तिर्यथा वर्षमनूदके। यथा सदृशदारेषु पुत्रजन्माप्रजस्य वै ॥ ३३॥ प्रनष्टस्य यथा लाभो यथा हर्षो महोदयः। तथैवागमनं मन्ये स्वागतं ते महामुने॥ ३४

टीका—अब परम उदार राजा प्रसन्नमन हुआ महामुनि विश्वामित्र का बड़े हर्ष से आदर करता हुआ बोला॥३२॥ जैसे किसी को

अमृत की प्राप्ति हो, जैसे मरुभूमि में वर्षा हो। जैसे निःसन्तान के घर सदृश (वर्ण, रूप आयु और गुणों में तुल्य) स्त्री से पुत्र का जन्म हो ॥३३॥ जैसे खोई वस्तु का लाभ हो, और जैसा किसी उत्सव का हर्ष हो, वैसे आपका आगमन मानता हूं, हे महामुने! आपका आगमन शुभ हो॥ ३४ ॥

मूल—कं च ते परमं कामं करोमि किमु हर्षितः। पात्रभूतोऽसि मे ब्रह्मन्दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद ॥३५॥+अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्। यस्माद्विप्रेन्द्रमद्राक्षं सुप्रभाता निशा मम ॥३६ पूर्वं राजर्षिशब्देन तपसा द्योतितप्रभः। ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तः पूज्योऽसि बहुधा मया ॥३७॥ तदद्भुतमभूद्विप्र पवित्रं परमं मम। शुभक्षेत्रगतश्चाहं तव संदर्शनात्प्रभो ॥३८॥+ब्रूहि यत्प्रार्थितं तुभ्यं कार्यमागमनं प्रति। इच्छाम्यनुगृहीतोऽहंत्वदर्थं परिवृद्धये ॥३९॥

टीका—इस हर्ष से भरा हुआ मैं आप की कौनबड़ी कामना किस प्रकार पूरी करूं, हे ब्रह्मन्! आप मेरे पात्र (सब प्रकार की सेवा के योग्य) हैं, हे मान के देने वाले! आप मेरे भाग्य से आए हैं ॥३५॥ आज मेरा जन्म सफल हुआ है, आज मेरा जीवन सुजीवन हुआ है। क्योंकि आज एक उत्तम ब्राह्मण का दर्शन किया है, मेरी रात आज शुभ प्रभात वाली हुई है ॥३६॥ पहले आप राजऋषि शब्द से पुकारे जाकर, फिर तप से चमकते हुए तेज वाले होकर, ब्रह्मऋषिपन को प्राप्त हुए हैं, अतएव बहुत प्रकार से (राजऋषि के तौर और ब्रह्म ऋषि के तौर पर) मुझसे पूजा के योग्य हैं ॥३७॥ हे विप्र! यह आप का परमपवित्र मेरे पास आना बड़ा आश्चर्य हुआ है। हे प्रभो! आप के दर्शन से मैं शुभक्षेत्र (शुभशरीर) को प्राप्त हुआ हूं ॥३८॥ कहिये आप के

आने में जो कार्य अभिप्रेत है आप की आज्ञा से अनुगृहीत हुआ अपनी वृद्धि के लिये आपका अर्थ पूरा किया चाहता हूं ॥३९॥

मूल—कार्यस्य न विमर्शं च गन्तुमर्हसि सुव्रत । कर्ता चाहमशेषेण दैवतं हि भवान् मम ॥४०॥ इति हृदयसुखं निशम्य वाक्यं श्रुतिसुखमात्मवता विनीतमुक्तम् । प्रथितगुणयशा गुणैर्विशिष्टः परमऋषिः परमं जगाम हर्षम् ॥ ४१ ॥

टीका—हे सुव्रत ! आपको कार्य का विचार नहीं करना चाहिये मैं पूरी तरह करूंगा, आप मेरे देवता है * ॥४०॥ इस प्रकार उदारमन वाले राजा से नम्रता पूर्वक कहे हुए, हृदय के प्यारे-कानों के सुखदायक वाक्य को सुनकर, फैलेहुए गुण और यश वाला, गुणों में बढ़ा हुआ परमऋषि परम हर्ष को प्राप्त भया

सर्ग ८ (व० १८) दशरथ विश्वामित्र का सम्वाद

मूल—तच्छ्रुत्वा राजसिंहस्य वाक्यमद्भुतविस्तरम् । हृष्टरोमा महातेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥१॥ सदृशं राजशार्दूल तवैव भुवि नान्यतः । महावंशप्रसूतस्य वसिष्ठव्यपदेशिनः ॥२॥ यत्तु मे हृद्गतं वाक्यं तस्य कार्यस्य निश्चयम् । कुरुष्व राजशार्दूल भव सत्यप्रतिश्रवः ॥३॥ अहं नियममातिष्ठे सिद्ध्यर्थं पुरुषर्षभ । तस्य विघ्नकरौ द्वौ तु राक्षसौ कामरूपिणौ ॥४॥ व्रते तु बहुशश्चीर्णे समाप्त्यां राक्षसाविमौ । मारीचश्च सुबाहुश्च वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ ॥५॥

टीका—राजसिंह के इस अद्भुत सविस्तर वाक्य को सुन कर महा तेजस्वी विश्वामित्र पुलकित हो कहने लगे ॥१॥ हे राजशार्दूल!

---

* गृहस्थ को अतिथि देवता मानना चाहिये, जैसा कि श्रुति कहती है "अतिथि देवो भव"।

ऐसा वचन पृथिवी में आप ही के सदृश है दूसरे के नहीं, जो आप महावंश में जन्म लिये है, और वसिष्ठ के कहे में चलने वाले हैं ॥२॥ किन्तु जो बात मेरे हृदय की है, हे राजशार्दूल ! अब उस कार्य का निश्चय करो और सच्ची प्रतिज्ञा वाले बनो ॥ ३ ॥ सुनो हे पुरुषश्रेष्ठ ! मैं यज्ञ सिद्धि के लिये दीक्षा लेता हूं. उस में कामरूपी (इच्छा से भेस बदलने वाले) दो राक्षस विघ्न डालते हैं ॥४॥ मैंने बहुत बार व्रत किया है. पर सदा समाप्ति के समय मारीच और सुबाहु यह दो राक्षस जो बड़े वीर्य वाले और सुशिक्षित हैं ॥ ५ ॥

मूल—तौ मांसरुधिरौघेण वेदिं तामभ्यवर्षताम्। अवधूते तथाभूते तस्मिन्निश्चयमनिश्चये ॥ ६ ॥ कृतश्रमो निरुत्साहस्तस्माद्देशादपाक्रमे। न च मे क्रोधमुत्स्रष्टुं बुद्धिर्भवति पार्थिव ॥ ७ ॥ तथाभूता हि सा चर्या न शापस्तत्र मुच्यते। स्वपुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम् ॥ ८ ॥ काकपक्षधरं वीरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि। शक्तो ह्येष मया गुप्तो दिव्येन स्वेन तेजसा ॥ ९ ॥ राक्षसा ये विकर्तारस्तेषमपि विनाशने। श्रेयश्चास्मै प्रदास्यामि बहुरूपं न संशयः ॥१०॥

टीका—वेदि में मांस और रुधिर छिड़क देते हैं। इस तरह उस दीक्षा के निश्चय का अनादर होने पर ॥६॥ थककर निरुत्साह हो अब उस देश से निकल आया हूं और हे राजन् उनपर क्रोध फैंकने का मेरा विचार नहीं होता है ॥ ७ ॥ क्योंकि वह चर्या (अमल) ही ऐसी है, उस में शाप नहीं दिया जाता है * हे राजशर्दूल अपने बड़े पुत्र सच्चे पराक्रम वाले, काकपक्ष के धारने वाले राम को मुझे देने की कृपा कीजिये, मेरी रक्षा में रहता

---

* भाव यह है कि तंग आकर ऋषि शाप रूप में उन पर क्रोध फैंकते तो उनका नाश होजाता पर शाप उस यज्ञ में वार्जित है।

हुआ यह अपने तेज से उन राक्षसों के भी विनाश में समर्थ होगा, जो बिगाड़ करने वाले हैं। और निःसन्देह मैं भी इसको बहुत प्रकार का कल्याण (शस्त्रास्त्र विद्यादि) दूंगा ॥ ८, ९, १० ॥

मूल—त्रयाणामपि लोकानां येन ख्यातिं गमिष्यति। न च तौ राममासाद्य शक्तौ स्थातुं कथंचन ॥११॥ रामस्य राजशार्दूल न पर्याप्तौ महात्मनः। अहं ते प्रतिजानामि हतौ तौ विद्धि राक्षसौ ॥१२॥ यदि ते धर्मलाभं तु यशश्च परमं भुवि। स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र रामं मे दातुमर्हसि ॥१३॥ दशरात्रं हि यज्ञस्य रामं राजीवलोचनम्। नात्येति कालो यज्ञस्य यथायं मम राघव ॥१४॥ तथा कुरुष्व भद्रं ते मा च शोके मनः कृथाः। इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा धर्मार्थसहितं वचः ॥१५॥ विरराम महातेजा विश्वमित्रो महामतिः॥१६॥

टीका—जिस से तीनों लोकों में ख्याति को प्राप्त होगा। और न ही वह दोनों राम के सामने खड़ा होने के किसी तरह समर्थ हैं ॥११॥ हे राजशार्दूल! महात्मा राम की वह बराबरी नहीं कर सक्ते, मैं तुझे प्रतिज्ञा से कहता हूं, कि उन दोनों राक्षसों को मरा जान ॥१२॥ हे राजेन्द्र यदि आप धर्म का लाभ और पृथिवी पर परम यश स्थिर करना चाहते हैं, तो आप राम को मुझे दीजिये ॥१३॥ यज्ञ की दस रातें कमलनेत्र राम की आवश्यकता है, सो अब हे राघव जैसे यज्ञ का काल लंघ न जाय ॥१४॥ वैसे कीजिये आप का कल्याण हो, मन को संशय में न डालिये। इस प्रकार धर्म और अर्थ सहित वचन कह कर महामति महातेजस्वी धर्मात्मा विश्वामित्र जी चुप होगए ॥ १५, १६ ॥

सर्ग ९ (व०२०-२१) दशरथ, विश्वामित्र और वसिष्ठ का सम्वाद

मूल—तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलो विश्वामित्रस्य भाषितम्। मुहूर्तमिव निःसंज्ञः संज्ञावानिदमब्रवीत् ॥१॥ अहमेव धनुष्पाणिर्गोप्ता

समग्रमूर्धनि । निर्विघ्ना व्रतचर्या ते भविष्यति सुरक्षिता ॥ २ ॥ अहं तत्र गमिष्यामि न रामं नेतुमर्हसि । बालो ह्यकृतविद्यश्च न च वेत्ति बलाबलम् ॥३॥ न चास्त्रबलसंयुक्तो न च युद्धविशारदः। न चासौ रक्षसां योग्यः कूटयुद्धा हि राक्षसाः ॥ ४ ॥

टीका—विश्वामित्र के इस वचन को सुन कर कुछ काल के लिये राजा के होश उड़ गए, फिर होश में आकर बोला ॥ १ ॥ मैं ही धनुष हाथ में लेकर रण के मैदान में (यज्ञका) रक्षक बनूंगा। इस तरह सुरक्षित हुई आपकी वह व्रतचर्या निर्विघ्न पूरी होगी ॥२॥मैंवहां जाउंगा,रामको न लेजाइये।क्योंकि अशिक्षित(नातजर्बाकार)बालक है, बलाबल को नहीं जानता है ॥३॥ न अस्त्रबल से युक्त है न युद्ध में निपुण है। यह राक्षसों के योग्य नहीं होगा, राक्षस युद्ध में धोखे देते हैं ॥ ४ ॥

मूल—विप्रयुक्तो हि रामेण मुहूर्तमपि नोत्सहे। जीवितुं मुनिशार्दूल न रामं नेतुमर्हसि ॥५॥ यदि वा राघवं ब्रह्मन्नेतुमिच्छसि सुव्रत। चतुरङ्गसमायुक्तं मया सह च तं नय॥६॥ चतुर्णामात्मजानां हि प्रीतिः परमिका मम। ज्येष्ठे धर्मप्रधाने च न रामं नेतुमर्हसि॥७॥

टीका—और हे मुनिशार्दूल ! मैं राम से वियुक्त होकर एक मुहूर्त नहीं जीसक्ता, सो राम को न लेजाइये ॥५॥ और यदि हे सुव्रत ब्राह्मण ! राम को ही लेजाना चाहते हो,तो चतुरंग सेना (हाथी, घोड़े, रथ और प्यादों की सेना) के साथ और मेरे साथ उसको ले चलिये ॥६॥ क्योंकि चारों पुत्रों में से धर्मप्रधान बड़े में मेरी परमप्रीति है, आप राम को न लेजाइये ॥ ७ ॥

मूल—तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य स्नेहपर्याकुलाक्षरम्। समन्युः कौशिको वाक्यं प्रत्युवाच महीपतिम्॥८॥ +पूर्वमर्थं प्रतिश्रुत्य प्रतिज्ञां हातु-

मिच्छसि । राघवाणामयुक्तोऽयं कुलस्यास्य विपर्ययः ॥९॥ यदीदं ते क्षमं राजान्गमिष्यामि यथागतम्। मिथ्याप्रतिज्ञः काकुत्स्थ सुखी भव सुहृद्वृतः ॥१०॥ तस्य रोषपरीतस्य विश्वामित्रस्य धीमतः । चचाल वसुधा कृत्स्ना देवानां च भयं महत् ॥ ११ ॥

टीका–(पुत्र के) स्नेह से फिसलते हुए अक्षरों वाले उसके इस वचनको सुनकर क्रोध युक्त विश्वामित्र राजा से फिर बोला ॥ ८ ॥ पहले बात की प्रतिज्ञा करके अब प्रतिज्ञा को छोड़ना चाहते हो, रघुवंशियों के यह अयोग्य है, और इस कुल के विपरीत (उलटा) है ॥९॥ यदि आपको यही योग्य है, हे राजन् ! तो मैं जैसे आया हूं वैसा चला जाउंगा । हे ककुत्स्थ के वंशधर ! मिथ्या प्रतिज्ञा वाला होकर सुहृदों में घिरा हुआ तू सुखी हो ॥१०॥ इस बुद्धिमान् विश्वामित्र को रोष से भरा हुआ देखकर सारी पृथिवी कांप उठी और देवताओं को बड़ा भय हुआ॥११॥

मूल–त्रस्तरूपं तु विज्ञाय जगत्सर्वं महानृषिः । नृपतिं सुव्रतो धीरो वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥१२॥ + इक्ष्वाकूणां कुले जातः साक्षाद्धर्म इवापरः । धृतिमान्सुव्रतः श्रीमान्न धर्मं हातुमर्हसि॥१३॥ + त्रिषु लोकेषु विख्यातो धर्मात्मा इति राघवः । स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व नाधर्मं वोढुमर्हसि ॥१४॥+प्रतिश्रुत्य करिष्येति उक्तं वाक्यमकुर्वतः । इष्टापूर्तवधो भूयात्तस्माद्रामं विसर्जय ॥१५॥ कृतास्त्रमकृतास्त्रंवा नैनं शक्ष्यन्ति राक्षसाः । गुप्तं कुशिकपुत्रेण ज्वलनेनामृतं यथा ॥१६॥ एष विग्रहवान्धर्म एष वीर्यवतां वरः । एष विद्याधिको लोके तपसश्च परायणम् ॥ १७ ॥

टीका–सारे जगत् को भयभीत देखकर उत्तमव्रतों वाले बुद्धिमान् महर्षि वसिष्ठ राजा से यह वाक्य बोले ॥१२॥ इक्ष्वा-

कुओं के वंश में जन्म लेकर, मानों साक्षात् दूसरा धर्म, धैर्यवाला, अच्छेव्रतों वाला और श्रीमान् है आपको धर्म नहीं हारना चाहिये ॥१३॥ रघु की सन्तान धर्मात्मा है, यह बात तीनों लोक में विख्यात है। आप अपने धर्म को स्वीकार करें, आपको अधर्म नहीं उठाना चाहिये ॥१४॥ करूंगा ऐसी प्रतिज्ञा करके जो कहे वाक्य को नहीं करता है, उसके यज्ञ और दूसरी नेकियां नाश होजाती हैं, इसलिये राम को भेजो ॥१५॥ राम चाहे अस्त्रों में निपुण है वा नहीं, पर कुशिक वंशी (विश्वामित्र) से रक्षा किये हुए को राक्षस नहीं दबा सकेंगे, जैसे अग्नि से रक्षा किये हुए अमृत (हवि) को (राक्षस नहीं बिगाड़ते हैं) ॥१६॥ यह मूर्तिमान् धर्म है, यह शक्ति वालों में श्रेष्ठ है, यह जगत् के अन्दर विद्या में बड़ा है, यह तप का परम आश्रय है ॥ १७ ॥

मूल--एषोऽस्त्रान्विविधान्वेत्ति त्रैलोक्ये सचराचरे । नैनमन्यः पुमान्वेत्ति न च वेत्स्यन्ति केचन ॥१८॥ अपूर्वाणां च जनने शक्तो भूयश्च धर्मवित् । न रामगमने राजन्संशयं गन्तुमर्हसि ॥१९॥ तेषां निग्रहणे शक्तः स्वयं च कुशिकात्मजः । तव पुत्रहितार्थाय त्वामुपेत्याभियाचते ॥ २० ॥ ॥

टीका—यह इतने विविध अस्त्रों को जानता है, कि चराचर से भरी हुई त्रिलोकी में और कोई पुरुष नहीं जानता है, और न कोई जानेगें ॥१८॥ और इससे बढकर यह धर्मवेत्ता, नयों (नए अस्त्रों) के उत्पन्न करने में समर्थ है, सो हे राजन् ! राम के जाने में संशय में न पड़ ॥१९॥ यह कुशिक का पुत्र उन (राक्षसों) के दबाने में तो स्वयं समर्थ है, यह तो तेरे ही पुत्रों के कल्याण के लिये तेरे पास आकर याचना कर रहा है ॥ २० ॥

सर्ग १०(व०२२) राम लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ वन गमन

मूल—तथा वसिष्ठे ब्रुवति राजा दशरथः स्वयम्। प्रहृष्टवदनो राममाजुहाव सलक्ष्मणम्॥१॥कृतस्वस्त्ययनं मात्रा पित्रा दशरथेन च। पुरोधसा वसिष्ठेन मङ्गलैरभिमन्त्रितम्॥२॥ स पुत्रं मूर्ध्न्युपाघ्राय राजा दशरथस्तदा। ददौ कुशिकपुत्राय सुप्रीतेनान्तरात्मना॥३॥ विश्वामित्रो ययावग्रे ततो रामोमहायशाः। काकपक्षधरो धन्वी तं च सौमित्रिरन्वगात्॥४॥ तदा कुशिकपुत्रं तु धनुष्पाणी स्वलंकृतौ। बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ खड्गवन्तौ महाद्युती॥ ५॥ कुमारौ चारुवपुषौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ। अनुयातौ श्रिया दीप्तौ शोभयतामनिन्दितौ॥ ६॥

टीका—वसिष्ठ के ऐसा कहने पर प्रसन्नमुख हुए स्वयं राजा दशरथ ने लक्ष्मण सहित राम को बुलवाया॥ १॥ पहले माता ने और पिता दशरथ ने उनका स्वस्ति वाचन किया, फिर पुरोहित वसिष्ठ ने उन पर मंगलमन्त्र पढ़े॥ २॥ तब राजा दशरथ ने पुत्र के सिर को चूमकर प्रसन्न मन से कुशिक के पुत्रके हवाले किया॥ ३॥ अब विश्वामित्र आगे२ चले, उनके पीछे महा यशस्वी काकपक्षधारी राम धनुष धारण किये हुए चले, उनके पीछे लक्ष्मण चले॥४॥उस समय दोनों राजकुमार भाई राम और लक्ष्मण, हाथों में धनुष लिये हुए, सब प्रकार सजे हुए, गोह के चमड़े के अंगुलित्राण (अंगुलियों के दस्ताने) पहने हुए, तलवारें लगाए हुए, बड़ी कान्ति वाले, सुन्दर शरीर वाले, सर्वथा अनन्दित (जिन का कुछ भी निन्दा नहीं जासक्ता), शोभा मे चमकते हुए पीछे २ चलते हुए कुशिक के पुत्र की शोभा को बढ़ा रहे थे॥ ५–६॥

मूल—अध्यर्धयोजनं गत्वा सरय्वा दक्षिणे तटे। रामेति मधुरां वाणीं विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ ७ ॥ गृहाण वत्स सलिलं माभूत्कालस्य पर्ययः। मन्त्रग्रामं गृहाण त्वं बलामतिबलां तथा॥८॥ एतद्विद्याद्वये लब्धे न भवेत्सदृशस्तव। बला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ ॥९॥ क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम। बलामतिबलां चैव पठतस्तव राघव ॥१०॥ विद्याद्वयमधीयाने यशश्चाथ भवेद्भुवि। पितामहसुते ह्येते विद्ये तेजः समन्विते ॥ ११ ॥

टीका—डेढ़ योजन (छः कोस) चलकर सरयू के दक्षिणी किनारे पर पहुंच कर विश्वामित्र ने मधुरवाणी से कहा। 'हे राम! ॥ ७ ॥ वत्स! जल ले (आचमन कर), समय का उलंघन न हो (अर्थात् यह समय तुझे विद्याविशेष देने का है, यह टल न जाए) यह बला और अतिबला नाम की दो विद्याओं के मन्त्रसमूह मुझ से ग्रहण कर ॥ ८ ॥ जब तूने यह दोनों विद्याएं पालीं, तो फिर तेरी कोई बराबरी नहीं कर सकेगा, बला और अतिबला सर्वज्ञान की माताएं हैं ॥ ९ ॥ हे रघु की संतान! हे मनुष्यों में उत्तम राम! बला और अतिबला को पढ़ते हुए तुझे हे तात! भूख और प्यास नहीं होगी ॥ १० ॥ इन दोनों विद्याओं के पढ़ने पर सारी पृथिवी पर तेरा यश फैलेगा, ब्रह्मा की कन्याएं (ब्रह्मा ने जिनको प्रकट किया है) यह दोनों विद्याएं हैं, जो तेज से भरी हुई हैं ॥११॥

मूल—प्रदातुं तव काकुत्स्थ सदृशस्त्वं हि पार्थिव। कामं बहुगुणाः सर्वे त्वय्येते नात्र संशयः ॥ १२ ॥ तपसा संभृते चैते बहुरूपे भविष्यतः। ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः शुचिः॥१३॥

प्रतिजग्राह ते विद्ये महर्षेर्भावितात्मनः। विद्यासमुदितो रामः शुशुभे भीमविक्रमः ॥ १४ ॥ सहस्ररश्मिर्भगवाञ्शरदीव दिवाकरः। ऊषुस्तां रजनीं तत्र सरय्वां सुसुखं त्रयः ॥१५॥ दशरथनृपसूनुसत्तमाभ्यां तृणशयनेऽनुचिते तदोषिताभ्याम्। कुशिकसुतवचोनुलालिताभ्यां सुखमिव सा विबभौ विभावरीति ॥ १६ ॥

टीका—तुझे देना चाहता हूं, हे पृथिवी के मालिक! तू पात्र है, क्योंकि तुझमें बहुत गुण (जो इस विद्या के अधिकारी में होने चाहियें) खुले तौर पर हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ १२ ॥ तप से धारण की हुई यह दोनों विद्याएं बहुरूप होंगी (बहुत साधनों की जगह यही काम देंगी), तब राम आचमन कर शुद्ध हो, प्रसन्न-मुख हुए-॥१॥ शुद्ध हृदय वाले उस महर्षि से दोनों विद्याओं को ग्रहण करते भए। विद्या के सम्बन्ध से राम का पराक्रम प्रचण्ड होगया, और ऐसी शोभा को प्राप्त हुए ॥१४॥ जैसे शरत् ऋतु में भगवान् सूर्य होता है। उस रात उन तीनों ने वहीं सरयू के किनारे सुख से वास किया ॥१५॥ दशरथ राजा के दोनों श्रेष्ठ पुत्र यद्यपि तिनकों की अनुचित शय्या पर सोए, तथापि कुशिक के पुत्र (विश्वामित्र) के वचन से लालन किये हुए उन दोनों को रात बड़े सुख से प्रभात हुई ॥१६॥

सर्ग ११ (व० २३–२४) ताटकावन में प्रवेश

मूल—प्रभातायां तु शर्वर्यां विश्वामित्रो महामुनिः। अभ्यभाषत काकुत्स्थौ शयानौ पर्णसंस्तरे ॥१॥+कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते। उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं दैवमाह्निकम् ॥२॥+तस्यर्षेः परमोदारं वचःश्रुत्वा नरोत्तमौ। स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतुः परमं जपम् ॥३॥ कृताह्निकौ महावीर्यौ विश्वामित्रं तपोधनम्। अभिवाद्यातिसंहृष्टौ गमनायाभितस्थतुः ॥४॥

टीका--जब रात प्रभात हुई,तब विश्वामित्र महामुनि पत्तों के बिस्तरे पर सोए हुए उन दोनो से बोले॥१॥कौसल्या(तुझ पुत्र से)हे राम ! सुपुत्रवती है,(सो तेरे जैसे सुपुत्र को इस समय निद्रा उचित नहीं है, क्योंकि) प्रातः सन्ध्या प्रवृत्त हुई है । उठो हे नरशार्दूल ! दिन में करने वाला दैव कर्म (सन्ध्या और अग्निहोत्र) करो ॥२॥ उस ऋषि के परमउदार वचन को सुनकर वह दोनों नरोत्तम वीर स्नानकर,आचमन करके,परम जप(गायत्री जप) जपते भए ॥३॥ दैनिक(सवेरका स्नानजपादि)कर्म करकेवह दोनों महावीर,तपोधनी विश्वामित्र को प्रणाम करके जाने के लिये सम्मुख खड़े होगये ४

मूल--तौ प्रयान्तौ महावीर्यौ दिव्यां त्रिपथगां नदीम् । ददृशाते ततस्तत्र सरय्वाः संगमे शुभे ॥५॥ तत्राश्रमपदं पुण्यमृषीणां भावितात्मनाम् । इहाद्य रजनीं राम वसेम शुभदर्शन ॥६॥ पुण्ययोः सरितोर्मध्ये श्वस्तरिष्यामहे वयम् । इह वासः परोऽस्माकं सुखं वत्स्यामहे निशाम् ॥७॥ तेषां संवदतां तत्र तपोदीर्घेण चक्षुषा । विज्ञाय परमप्रीता मुनयो हर्षमागमन् ॥८॥ अर्घ्यं पाद्यं तथातिथ्यं निवेद्य कुशिकात्मजे। रामलक्ष्मणयोः पश्चादकुर्वन्नतिथिक्रियाम्॥९।

टीका--वह महावीर चलते २ जब दिव्य गंगानदी पर पहुंचे, वहां उन्होंने सरयू के शुभसंगम (गंगा सरयू के संगम)पर शुद्धात्मा ऋषियों का एक पुण्य आश्रम देखा। (विश्वामित्र बोले) हे राम हे शुभदर्शन ! आज रात यहां इन दोनों पवित्र नदियों के मध्य में रहें, कल हम पार होंगे, यहां हमारा रहना अच्छा होगा, आराम से रात रहेंगे ॥५,६,७॥ इस तरह जब वह आपस में बात चीत कर रहे थे, तो वहां के मुनि तप से दूर पहुंचने वाली दृष्टि द्वारा जान कर, परम प्रसन्न हुए हर्ष को प्राप्त भए॥८॥ वह पहले कुशिक के

पुत्र का अर्घ्य पाद्य और आतिथ्य करके पीछे राम और लक्ष्मण का अतिथिसत्कार करते भए ॥९॥

मूल—ततः प्रभाते विमले कृताह्निकमरिंदमौ । विश्वामित्रं पुरस्कृत्य नद्यास्तीरमुपागतौ ॥१०॥ ते च सर्वे महात्मानो मुनयः संशितव्रताः । उपस्थाप्य शुभां नावं विश्वामित्रमिहाब्रुवन् ॥११॥ आरोहतु भवान्नावं राजपुत्रपुरस्कृतः । अरिष्टं गच्छ पन्थानं मा भूत्कालस्य पर्ययः॥१२॥विश्वामित्रस्तथेत्युक्त्वा तानृषीन्प्रतिपूज्य च । ततार सहितस्ताभ्यां सरितं सागरंगमाम् ॥१३॥ स वनं घोरसंकाशं दृष्ट्वा नरवरात्मजः । अविप्रहतमैक्ष्वाकः पप्रच्छ मुनिपुंगवम् ॥१४॥ अहो वनमिदं दुर्गं झिल्लिकागणसंयुतम् । भैरवैः श्वापदैः कीर्णं शकुन्तैर्दारुणारवैः ॥१५॥ नानाप्रकारैः शकुनैर्वाश्यद्भिर्भैरवस्वनैः । सिंहव्याघ्रवराहैश्च वारणैश्चापि शोभितम् ॥१६॥

टीका--फिर निर्मल प्रभात में उठकर दैनिक कर्म समाप्त कर चुके हुए विश्वामित्र के पीछे २,दोनों भाई,जो शत्रुओं के सिधाने वाले हैं, नदी के किनारे पर आए ॥१०॥ वहां वह सारे तीक्ष्ण व्रतों वाले महात्मा मुनि शुभ नौका को उपस्थित कर विश्वामित्र से बोले ॥११॥ राजपुत्रों से पुरस्कृत हुए (आगे २ आप और पीछे दोनों राजपुत्र इस ढंग में शोभा पाते हुए) आप नौका पर सवार हो निर्विघ्न अपने मार्ग पर जाइये,समय का उल्लंघन न हो॥१२ विश्वामित्र जी "तथास्तु" कह कर, और उन ऋषियों का पूजन करके, उन दोनों के सहित उस नदी के पार उतरगए, जो समुद्र की ओर भागी जा रही है ॥१३॥ अब आगे एक भयंकर निर्जन वन को देखकर उस इक्ष्वाकुवंशी राजकुमार (राम) ने मुनि श्रेष्ठ से पूछा॥१४॥अहो ! यह बन दुर्गम,झींगरों (बींडों)के झुण्डों से युक्त,

भयङ्कर हिंस्रों(दरिन्दों)से भरा हुआ और दारुणध्वनि वाले बाजों से और बहुत से भयंकर ध्वनि वाले बोलते हुए नाना प्रकार के पक्षियों से भरा हुआ, और शेर, बाघ,सूअर, और हाथियों से शोभित ।१६।

मूल—धवाश्वकर्णैः ककुभैर्बिल्वतिन्दुकपाटलैः । संकीर्णं बदरीभिश्च किं न्विदं दारुणं वनम् ॥१७॥ तमुवाच महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः । एतौ जनपदौ स्फीतौ दीर्घकालमरिंदम ॥१८॥ मलदाश्च करूषाश्च मुदिता धनधान्यतः । कस्यचित्त्वथ कालस्य यक्षिणि कामरूपिणी ॥१९॥ ताटका नाम भद्रं ते भार्या सुन्दस्य धीमतः । मारीचो राक्षसः पुत्रो यस्य शक्रपराक्रमः॥२०॥इमौ जनपदौ नित्यं विनाशयति राघव । सेयं पन्थानमावृत्य वसत्यर्धयोजने ॥२१॥

टीका--धावे, असकर्ण, कौ, बिल्ल, तेंदे,पाटल और बेर के वृक्षों से भरा हुआ कौन सा यह दारुणवन है॥१७॥उसको महातेजस्वी महामुनि विश्वामत्र जी उत्तर देतेभए। हे शत्रुओं के दमन करने वाले! यहां बहुतकाल तक धन धान्य से बढ़े हुए हर्षसे भरे हुए,मलदा और करूष दो देश थे, कुछ काल से एक सुन्दरी ताटका नाम यक्षिणी (यक्षजाति की कन्या) ॥१८–१९॥ तुझे कल्याण हो, वह ताटका जो कि बुद्धिमान् सुन्द (राक्षस) की पत्नी है, और इन्द्र के तुल्य पराक्रमी मारीच राक्षस जिसका पुत्र है ॥२०॥ वह इन दोनों देशों को हे राघव ! विनाश (तबाह) कर रही है, वह यहां कुछ अधिक आधे योजन के अन्तर पर मार्ग को रोकर कर रहती है ॥२१॥

मूल--अत एव च गन्तव्यं ताटकाया वनं यतः। स्वबाहुबलमाश्रित्य जहीमां दुष्टचारिणीम्॥२२॥+मन्नियोगादिमं देशं कुरु निष्कण्टकं पुनः। एनां राघव दुर्वृत्तां यक्षीं परमदारुणाम्॥२३॥+ गोब्राह्मणहितार्थाय जहि दुष्टपराक्रमाम् । नहि ते स्त्रीवधकृते घृणा

कार्या नरोत्तम ॥२४॥ +चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना। नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात्॥२५॥ ।-पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा। राज्यभारनियुक्तानामेषधर्मः सनातनः ॥२६॥ अधर्म्यां जहि काकुत्स्थ धर्मो ह्यस्यां न विद्यते ॥२७॥

टीका—सो यहां से हमें उधर जाना चाहिये, जिधर ताटका का वन है, अपनी भुजबल के सहारे इस दुष्टचारिणी को मार ॥ २२ ॥ मेरी आज्ञा से फिर इस देश को निष्कण्टक बना। हे राघव! इस दुर्वृत्त परम दारुण दुष्ट पराक्रम वाली यक्षिणी को गौ ब्राह्मण के हितके अर्थ मार। हे नरोत्तम तुझे स्त्री वध के निमित्त घृणा नहीं करनी चाहिये ॥ २३--२४ ॥ क्योंकि राजपुत्र को चारों वर्णों के हितकी बात अवश्य करनी चाहिये। क्रूर हो वा अक्रूर, पातक (गोवधादि) हो वा दोषवाला कर्म हो * प्रजा की रक्षा के अर्थ, रक्षा करने वाले को सदा

* शास्त्र के अनुसार स्त्रीवध दोष है। पर पाप सारे अपनी २ जगह पर होते हैं, जिस पुरुष पर देश की रक्षा की ज़िम्मावारी है, उस को देशरक्षा के निमित्त देशघातिनी स्त्री का वध पाप ही नहीं। अतएव कहा है रक्षा की जिम्मावारी उठाए हुए को पातक वा दोष युक्त कर्म भी प्रजा की रक्षा के अर्थ कर लेना चाहिए॥ यहां 'पातक वा दोष वाला भी' उसे लोक प्रसिद्धि से कहा है, तत्वदृष्टि से तो वह ऐसे अवसर पर दोष वाला है ही नहीं, हां यह धोखा सब को होता है और इस धोखे से बचने वाला कोई विरला होता है। जैसे श्री कृष्ण जी कहते हैं "किं कर्म किमकर्मेति कवयो ऽप्यत्र-मोहिताः' क्या कर्म है और क्या अकर्म है पण्डित भी इसमें मोहित हैं [गीता ४। १६]। रामचन्द्र को विश्वामित्र जैसा और अर्जुन को श्रीकृष्ण जैसा उपदेष्टा राजा जयपाल को भी मिल जाता, वा यही विश्वामित्र का उपदेश ही उस को सुना देता, कि "नृशंसमनृशं

करना चाहिये। राज्य की ज़िम्मावारी उठाए हुओं का यही सनातन धर्म है ॥ २५--२६ ॥ हे काकुत्स्थ अधर्म की भरी हुई इस स्त्री को निःशंक मार, क्योंकि धर्म इस में नहीं है।

सर्ग १२ (व० २५) ताटका का वध

मूल—मुनेर्वचनमक्लीबं श्रुत्वा नरवरात्मजः। राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रत्युवाच दृढव्रतः ॥१॥ अनुशिष्टोऽस्म्ययोध्यायां गुरुमध्ये महात्मना। पित्रा दशरथेनाहं नावज्ञेयं हि तद्वचः॥२॥ सोऽहं पितुर्वचः श्रुत्वा शासनाद्ब्रह्मवादिनः। करिष्यामि न सन्देहस्ताटकावधमुत्तमम् ॥३॥+गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च। तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः ॥४॥ एवमुक्त्वा धनुर्मध्ये बध्वा मुष्टिमरिंदमः। ज्याघोषमकरोत्तीव्रं दिशःशब्देन नादयन्॥५॥ तं शब्दमभिनिध्याय राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता। श्रुत्वा चाभ्यपतत्क्रुद्धा यत्र शब्दो विनिस्सृतः ॥६॥ तं दृष्ट्वा राघवः क्रुद्धां विकृतां विकृताननाम्। प्रमाणेनातिवृद्धां च लक्ष्मणं सोऽभ्यभाषत ॥७॥

टीका—मुनि के अक्लीब (मरदाना)वचन को सुनकर दृढ़ व्रतों वाला राजपुत्र राघव हाथ जोड़कर बोला ॥१॥ अयोध्या में मुझे गुरुओं (वसिष्ठ आदि) के सामने पिता दशरथ ने आज्ञा दी है, कि आपके वचन की मुझे अवज्ञा नहीं करनी चाहिये ॥२॥ सो मैं पिता

वा प्रजारक्षणकारणात्। पातकं वा सदोषं वा कर्त्तव्यं रक्षता सदा। राज्यभारनियुक्तानामेष धर्म्मः सनातनः" तो गौओं की आड़ में जयपाल से न कोई शस्त्र छुडवा सकता,न जयपाल पर और देश पर हार का धब्बा लगता, और न उस समय उस थोड़ी सी गोहानि के पलटे इतनी बड़ी गोहानि सहनी पड़ती, जो उस समय से आज तक सही जा रही हैं।

के वचन को सुनकर और आप जो ब्रह्मवादी *हैं, उनकी आज्ञा से यह उत्तम काम, ताटका का वध, करूंगा, इसमें सन्देह नहीं ॥३॥ गौ ब्राह्मण के हित के लिये और देश के हित के लिये, आप जो (ज्ञान में) अथाह हैं, उनका वचन करने के लिये तय्यार हूं यह कहकर उन शत्रुओं के दबाने वाले ने धनुष के मध्य में मुट्ठी बांधकर चिल्ले की तीव्र ध्वनि की, जिससे सारी दिशाएं गूंज उठीं॥५॥ उस शब्द को सुनकर और उसको लक्ष्य में रखकर के क्रोध से पागल हुई वह राक्षसी वहां दौड़ती आई, जहां से शब्द निकला था ॥६॥ उस क्रुद्ध हुई विकरालरूप, विकराल मुख वाली और कद में बहुत बड़ी को देखकर राम लक्ष्मण से बोले ॥७॥

मूल—पश्य लक्ष्मण यक्षिण्या भैरवं दारुणं वपुः। भिद्येरन्दर्शनादस्या भीरूणां हृदयानि च ॥ ८ ॥ एवं ब्रुवाणे रामे तु ताटका क्रोधमूर्च्छिता। उद्यम्य बाहुं गर्जन्ती राममेवाभ्यधावत ॥९॥ उद्धुन्वाना रजो घोरं ताटका राघवावुभौ । रजोमेघेन महता मुहूर्तं सा व्यमोहयत् ॥ १० ॥ तामापतन्तीं वेगेन विक्रान्तामशनीमिव। शरेणोरसि विव्याध सा पपात ममार च *॥११॥

टीका—देख हे लक्ष्मण ! यक्षिणी का भयंकर दारुण शरीर, इस के देखने से भीरुओं के हृदय फटजाएं। ८ । राम के ऐसा कहते हुए क्रोध से पागल हुई ताटका भुजा उठाकर गर्जती हुई

---

* ब्रह्मवादी=वेदवादी । वेदवादी ऋषि की आज्ञा में धर्मविरुद्ध होने का संशय ही नहीं होता ।

* बम्बई निर्णयसागर वाली रामायण में "सा पपात ममारच" की जगह "पपात च ममारच" अपपाठ है। "सा" के बिना गिरना मरना राम का प्रतीत होगा, न कि ताटका का ।

राम की ओर दौड़ी । ९ । और भयंकर धूलि उड़ाकर धूलि के बड़े मेघ से राम लक्ष्मण को विमोहित कर दिया । १० । बिजली की तरह वेग से झपटती हुई उस बहादुर राक्षसी को राम ने तीर मार कर छाती में बींध दिया, वह गिर पड़ी और मरगई ॥११॥

मूल—ततो मुनिवरः प्रीतस्ताटकावधतोषितः । मूर्ध्नि राममुपाघ्राय इदं वचनमब्रवीत् ॥१२ ॥ इहाद्य रजनीं राम वसाम शुभदर्शन । श्वःप्रभाते गमिष्याम स्तदाश्रमपदं मम ॥१३॥ निहत्य तां यक्ष सुतां स रामःप्रशस्यमानः सुरसिद्धसंघैः । उवास तस्मिन् मुनिना सहैव प्रभातवेलां प्रतिबोध्यमानः ॥१४ ॥

टीका—तब वह मुनिवर ताटका के वध से प्रसन्न हो प्रीति के साथ रामको सिर पर चूमकर यह वचन बोले।१२।हे शुभदर्शन राम! आज यहां रात रहें, कल प्रभात के समय मेरे आश्रमपद की ओर जाएंगे ॥१३॥ उस यक्षकन्या को मारकर देवता और सिद्धगणों से प्रशंसा किये हुए राम मुनि के साथ वहीं रहे, और प्रभात के समय जागे ॥ १४ ॥

१३ (व ० २७) मुनि का राम को अस्त्र दान

मूल—अथ तां रजनीमुष्य विश्वामित्रो महायशाः । प्रहस्य राघवं वाक्यमुवाच मधुरस्वरम् ॥१॥ परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते राजपुत्र महायशः । प्रीत्या परमया युक्तो ददाम्यस्त्राणि सर्वशः ॥२॥ यैरमित्रान्प्रसह्याजौ वशीकृत्य जयिष्यसि । तानि दिव्यानि भद्रं ते ददाम्यस्त्राणि सर्वशः ॥ ३ ॥ दण्डचक्रं महद्दिव्यं तव दास्यामि राघव । धर्मचक्रं ततो वीर कालचक्रं तथैव च । ॥४॥ विष्णुचक्रं तथात्युग्रमैन्द्र मस्त्रं तथैव च । वज्रमस्त्रं नरश्रेष्ठ शैवं शूलवरं तथा

टीका—तब वह रात वहां रहकर महायशस्वी विश्वामित्र हंसकर

मधुरस्वर से राघव को यह वचन बोले ॥१॥ तुझपर प्रसन्न हुआ हूं, तेरा कल्याण हो, हे बड़े यशवाले राजपुत्र परम प्रीति से युक्त हुआ मैं तुझे बहुत से अस्त्र देता हूं ॥२॥ जिनसे तू संग्राम में सारे शत्रुओं को दबाकर बस में करके जीत सकेगा, वह दिव्य अस्त्र तुझे सारेके सारे देता हूं,॥३॥हे राम!तुझे एक बड़ा दिव्य* दण्डचक्र धर्मचक्र कालचक्र॥४॥विष्णुचक्र और बड़ा उग्र इन्द्र अस्त्र दूंगा और हे नरश्रेष्ठ राघव! वज्रास्त्र और शैव शूलवर ॥ ५ ॥

मूल—अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव ऐषीकमपि राघव । ददामि ते महाबाहो ब्रह्मस्त्रमनुत्तमम् ॥६॥ गदे द्वे चैव काकुत्स्थ मोदकी शिखरी शुभे । प्रदीप्ते नरशार्दुल प्रयच्छामि नृपात्मज ॥७॥ धर्म्मपाशमहं राम कालपाशं तथैव च । वारुणं पाशमस्त्रं च ददाम्यहमनुत्तमम् ॥८॥अशनी द्वे प्रयच्छामि शुष्कार्द्रे रघुनन्दन। ददामिचास्त्रं पैनाक मस्त्रं नारायणं तथा॥९॥आग्नेयमस्त्रं दयितं शिखरं नाम नामतः। वायव्यं प्रथनं नाम ददामि तव चानघ ॥१०॥ अस्त्रं हयशिरो नामक्रौञ्चमस्त्रं तथैव च। शक्तिद्वयं च काकुत्स्थ ददामि तव राघव॥

टीका--ब्रह्मशिर अस्त्र ऐषीक अस्त्र और हे महाबाहो! सबसे उत्तम ब्रह्म अस्त्र देता हूं॥६॥और हे काकुत्स्थ! दो शुभ गदा मोदकी औरशिखरी, जो बड़ी प्रचण्ड हैं हे नर शार्दूल! राजपुत्र तुझे देता हूं ॥७॥ तथा धर्मपाश, कालपाश और वरुणपाश जो उत्तमोत्तम अस्त्र हैं, तुझे देता हूं ॥८॥हे रघुनन्दन ! दो अशनी(बिजली) अस्त्र, शुष्क और आर्द्र। औरपिनाक अस्त्र, नारायण अस्त्र ॥९॥ और अग्नि का प्यारा अस्त्र (अग्नि अस्त्र)जिसका प्रसिद्ध नाम शिखर है,

* दण्डचक्र आदि भिन्न २ प्रकार के अस्त्रों के नाम हैं। इन अस्त्रों का विशेषज्ञान अब किसी पुस्तक में नहीं मिलता।

तथा हे निष्पाप ! वायु का प्रथन अस्त्र तुझे देता हूं ॥१०॥ हय-
शिर अस्त्र, और क्रौञ्च अस्त्र, और हे काकुत्स्थ हे राघव ! दो
शक्ति अस्त्र देता हूं ॥११ ॥

मूल—कङ्कालं मुसलं घोरं कापालमथ किङ्किणीम्।धारयन्त्यसुरा
यानि ददाम्येतानि सर्वशः ॥१२॥ वैद्याधरं महास्त्रं च नन्दनं नाम
नामतः । असिरत्नं महाबाहो ददामि नरवरात्मज।१३। गान्धर्वं मस्त्रं
दयितं मोहनं नाम नामतः। प्रस्वापनं प्रशमनं दद्मि सौम्यंचराघव।१४।

टीका—और कंकाल,मुसल,घोर कापाल,किंकिणी जिन को असुर
धारण करते हैं, यह सारे तुझे देता हूं ॥ १२ ॥ और विद्याधरों
का महान् अस्त्र जो नन्दन नाम से प्रसिद्ध है, वह जिस
से छुरे निकला करते हैं, हेनरवरसुत! तुझे देता हूं ॥१३ ॥
गन्धर्वों का प्यारा अस्त्र जो मोहन नाम से प्रसिद्ध है। हे राघव
कोमल और प्रस्वापन, और प्रशमन अस्त्र देता हूं॥ १४ ॥

मूल— वर्षणं शोषणं चैव संतापनविलापने । मादनं चैव दुर्धर्षं
कन्दर्पदयितं तथा॥१५॥ गान्धर्वमस्त्रं दयितं मानवं नाम नामतः।
पैशाचमस्त्रं दयितं मोहनं नाम नामतः॥१६॥ प्रतीच्छ नरशार्दूल
राजपुत्र महायशः । तामसं नरशार्दूल सौमनं च महाबलम् ॥१७॥

टीका—वर्षण, शोषण,संतापन,विलापन और काम का प्यारा किसी
से न दबनेवाला मदन नाम अस्त्र॥१५॥और गन्धर्वों का प्यारा
जो मानव नाम से प्रसिद्ध है, और पैशाच अस्त्र जो मोहन नाम
से प्रसिद्ध है ॥१६॥ हे बड़े यशवाले नरवर राजपुत्र ! इसको
ग्रहणकर और हे नर शार्दूल! तामस और बड़े बलवाला सौमन।१७

मूल—संवर्तं चैव दुर्धर्षं मौसलं च नृपात्मज।सत्यमस्त्रं महाबाहो तथा

मायामयं परम् ॥१८॥ सौरं तेजःप्रभं नाम परतेजोऽपकर्षणम् । सोमास्त्रं शिशिरं नाम त्वाष्ट्रमस्त्रं सुदारुणम् ॥१९॥ दारुणं च भगस्यापि शीतेषुमथ मानवम् ।एतान्राम महाबाहो कामरूपान्महाबलान् ॥२०॥ गृहाण परमोदारान्क्षिप्रमेव नृपात्मज । स्थितस्तु प्राङ्मुखोभूत्वा शुचिर्मुनिवरस्तदा ॥२१॥ ददौ रामाय सुप्रीतो मन्त्रग्रामपनुत्तमम् । सर्वसंग्रहणं येषां दैवतैरपि दुर्लभम् ॥२२॥ततः प्रीतमना रामो विश्वामित्रं महामुनिम् । अभिवाद्य महातेजा गमनायोपचक्रमे ॥ २३॥

टीका—तथा हे नृपसुत ! संवर्त और न दबनेवाला मौसल (यह असुरों के मुसल से अलग है)और हे महाबाहो ! सत्य अस्त्र और मायामय अस्त्र ॥१८॥ सूर्य का तेजःप्रभ नाम जो शत्रु के तेज का खींचनेवाला है, सोम का अस्त्र शिशिरनामी, और त्वष्टा का अस्त्र सुदारुण ॥१९॥ और भग का भयंकर अस्त्र और शीतेषु नामी मानव । इन बड़े बलवाले सारी इच्छाओं के पूरनेवाले परम उदार अस्त्रों को हे महाबाहो राजपुत्र ! जल्दी ही ग्रहणकर । तब मुनिवर शुद्ध हो पूर्वाभिमुख खड़ा होकर बड़ा प्रसन्न हो सब से उत्तम मन्त्र समूह राम को देता भया, जिन सब का संग्रह करना देवताओं को भी दुर्लभ है ॥२०,२१,२२॥ तब प्रसन्न मन महातेजस्वी राम महामुनि विश्वामित्र को अभिवादन करके यात्रा के लिये तय्यार हुए ॥ २३॥

सर्ग १४ (व० २८)अस्त्रों के संहारों का दान

मूल—प्रतिगृह्य ततोऽस्त्राणि प्रहृष्टवदनःशुचिः । गच्छन्नेव च काकुत्स्थो विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥१॥ गृहीतास्त्रोऽस्मि भगवन्दुराधर्षः सुरैरपि ।। अस्त्राणां त्वहमिच्छामि संहारान्मुनिपुंगव ॥२॥ एवं

ब्रुवति काकुत्स्थे विश्वामित्रो महातपाः। संहारान्व्याजहाराथ धृतिमान् सुव्रतः शुचिः॥३॥ सत्यवन्तं सत्यकीर्तिं धृष्टं रभसमेव च। प्रतिहारतरं नाम पराङ्मुखमवाङ्मुखम् ॥ ४ ॥ लक्षाक्षविषमौ चैव दृढनाभसुनाभकौ। दशाक्षशतवक्त्रौ च दशशीर्षशतोदरौ ॥५

टीका—अस्त्रों को ग्रहण करके राम प्रसन्नमुख शुद्ध हो चलते २ ही उन्होंने विश्वामित्र को कहा ॥१॥ हे भगवन् ! मैंने अस्त्र सब ग्रहण कर लिये हैं, अब देवता भी मुझे नहीं दबा सके, किन्तु हे मुनि श्रेष्ठ! अब मैं इन अस्त्रों के संहार(=इनको रोकनेवाले अस्त्र) जानना चाहता हूं ॥२॥ राम के ऐसा कहने पर महातपस्वी धैर्य-वाले, अच्छे व्रतोंवाले, शुचि विश्वामित्र संहार कहने लगे॥३॥(जिनके नाम यह हैं) सत्यवान्, सत्यकीर्ति, धृष्ट, रभस, प्रतिहारतर, परा-ङ्मुख, अवाङ्मुख ॥४॥ लक्षाक्ष, विषम, दृढ़नाभ, सुनाभ, दशाक्ष शतवक्त्र, दशशीर्ष, शतोदर ॥५॥

मूल—पद्मनाभमहानाभौ दुन्दुनाभस्वनभकौ। ज्योतिषं कृशनं चैव नैराश्यविमलावुभौ ॥६॥ यौगंधरविनिद्रौ च दैत्यप्रमथनौ तथा।शुचिबाहुर्महाबाहुर्निष्कलिर्विरुचिस्तथा। सार्चिमालि धृतिमाली वृत्तिमान् रुचिरस्तथा ॥७॥ पित्र्यः सौमनसश्चैव विधूतमकरावुभौ परवीरं रतिं चैव धनधान्यौ च राघव ॥८॥ कामरूपं कामरुचिं मोहमावरणं तथा। जृम्भकं सर्पनाथं च पन्थानवरुणौ तथा ॥९॥

टीका—पद्मनाभ, महानाभ, दुन्दुनाभ, स्वनाभ, ज्योतिष, कृशन, नैराश्य, विमल ॥६॥ यौगन्धर, विनिद्र, दोनों दैत्यप्रमथन शुचिबाहु, महाबाहु, निष्कलि, विरुचि, सार्चिमालि, धृतिमाली, वृत्तिमान् रुचिर ॥ ७ ॥ पित्र्य, सौमनस, विधूत, मकर, परवीर,

राति, धन, धान्य ॥८॥ कामरूप, कामरुचि, मोह, आवरण, जृम्भक, सर्पनाथ, पन्थान, वरुण, ॥९॥

मूल—कृशाश्वतनयान्राम भास्वरान्कामरूपिणः । प्रतीच्छ मम भद्रं ते पात्रभूतोऽसि राघव ॥१०॥ स च तान्राघवो ज्ञात्वा विश्वामित्रं महामुनिम् । गच्छन्नेवाथ मधुरं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥११॥ किन्न्वेतन्मेघसंकाशं पर्वतस्याविदूरतः । वृक्षखण्डमितो भाति परं कौतुहलं हि मे ॥१२॥ दर्शनीयं मृगाकीर्णं मनोहरमतीव च । नानाप्रकारैः शकुनैर्वल्गुनादैरलंकृतम् ॥१३॥ निःसृताः स्म मुनिश्रेष्ठ कान्ताराद्रोमहर्षणात् । अनया त्ववगच्छामि देशस्य सुखवत्तया ॥१४॥

टीका—हे राम ! यह सब जो कृशाश्व के पुत्र (कृशाश्व ऋषि के प्रकट किए हुए)चमकते हुए कामरूपी हैं,इन को मुझ से स्वीकार कर, तुझे कल्याण हो, हे राघव ! तू पात्र है ॥१०॥ राम उन सब को जान करके जाते २ विश्वामित्र महामुनि से यह मधुर स्पष्ट वचन बोले ॥११॥ (भगवन्) यह मेघ के तुल्य प्रतीत होता हुआ, पर्वत के निकट, वृक्षझुण्ड क्या है, इस के जानने का मुझे परम कौतूहल है ॥१२॥ बडा सुहावना है, हिरणों से युक्त, मन को अत्यन्त खींचने वाला है, मधुर गाते हुए पक्षियों से अनेक प्रकार से शोभायमान है।१३। यह ऐसा सुखदायी स्थान आजाने से मैं जानता हूं कि रोंगटे खडे करने वाले बन से अब हम निकल आए हैं ॥१४॥

सर्ग १९ (व० २९) सिद्धाश्रम प्रवेश

मूल—अथ तस्याप्रमेयस्य तद्वनं परिपृच्छतः विश्वामित्रो महातेजा व्याख्यातुमुपचक्रमे ।१। एष पूर्वाश्रमो राम वामनस्य

महात्मनः। सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धो ह्यत्र महातपाः ॥२॥ एनमाश्रममायान्ति राक्षसा विघ्नकारिणः अत्रैव पुरुषव्याघ्र हन्तव्या दुष्टचारिणः॥३॥अद्य गच्छामहे राम सिद्धाश्रममनुत्तमम् ।तदाश्रमपदं तात तवाप्येतद्यथा मम ॥४॥ इत्युक्त्वा परमप्रीतो गृह्य रामं सलक्ष्मणम्। प्रविशन्नाश्रमपदं व्यरोचत महामुनिः ॥५॥ तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे सिद्धाश्रमनिवासिनः। उत्पत्योत्पत्य सहसा विश्वामित्रमपूजयन् ॥६॥ यथार्हं चक्रिरे पूजां विश्वामित्राय धीमते। तथैव राजपुत्राभ्यामकुर्वन्नतिथिक्रियाम् ॥७॥

टीका—तब उस वन को पूछते हुए उस बड़ी शक्ति वाले राम को महातेजस्वी विश्वामित्र बतलाने लगे ॥१॥ हे राम यह महात्मा वामन का पूर्व आश्रम है, सिद्धाश्रम नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि वह महातपस्वी यहां सिद्ध हुआ था ॥२॥ इस आश्रम में वह विघ्नकारी राक्षस आते हैं, यहां हे पुरुषश्रेष्ठ! तूने दुष्ट चारियों को मारना है ॥३॥ आज हम इस परमोत्तम सिद्धाश्रम में आपहुंचे हैं, हे तात! यह आश्रमपद तेरा भी वैसा ही है, जैसा मेरा है ॥४॥ इतना कह परम प्रसन्न हुआ महामुनि राम लक्ष्मण को साथ ले आश्रमपद में प्रवेश करता हुआ शोभा देता भया ॥५॥ उस को देख करके सिद्धाश्रमवासी सारे मुनि झटपट उठ २ कर विश्वामित्र की पूजा करते भए ॥६॥ बुद्धिमान् विश्वामित्र की यथायोग्य पूजा करके वैसे ही दोनों राजपुत्रों का आतिथिसत्कार करते भए ॥७॥

मूल—मुहूर्त्तमिव विश्रान्तौ राजपुत्रावरिन्दमौ। प्राञ्जली मुनिशार्दूलमूचतू रघुनन्दनौ ॥८॥ अद्यैव दीक्षां प्रविशत्वं भद्रं ते मुनिपुंगव। सिद्धाश्रमोऽयं सिद्धः स्यात्सत्यमस्तु वचस्तव ॥९॥

एवमुक्तो महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः । प्रविवेश तदा दीक्षां नियतो नियतेन्द्रियः ॥१०॥ कुमारावपि तां रात्रिमुषित्वा सुसमाहितौ । प्रभातकाले चोत्थाय पूर्वां सन्ध्यामुपास्य च ॥११॥ स्पृष्टोदकौ शुची जप्यं समाप्य नियमेन च । हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम् ॥१२॥

टीका—थोड़ी देर विश्राम करके शत्रुओं के दमन करनेवाले

वह राजपुत्र रघुनन्दन हाथ जोड़ मुनिवर से कहने लगे ॥८॥ आज ही हे मुनिवर ! दीक्षा में प्रवेश करो, आपका कल्याण हो, यह सिद्धाश्रम सिद्ध हो, (यज्ञ की सिद्धि से यथार्थ नाम हो) आपका वचन (यहां तूने दुष्टचारियों को मारना है, मुझे कहा यह वचन) सत्य हो ॥९॥ महातेजस्वी जितेन्द्रिय, महामुनि को जब यह कहा गया, तब वह नियम धारकर दीक्षा में प्रविष्ट हुए ॥१०॥ वह दोनों भाई कुमारों (स्कन्द और विशाख) की तरह बड़ी सावधानी से रात्रि रहकर प्रभात समय उठे ॥११॥ पवित्र हुए, पूर्वा सन्ध्या उपासकर नियम से परम जप को समाप्त करके विश्वामित्र को अभिवादन करते भए जो कि अग्निहोत्र होमकर बैठे हुए हैं ॥१२॥

सर्ग १६ (व० ३०) मारीच और सुबाहु पर विजय

मूल—अथ तौ देशकालज्ञौ राजपुत्रावरिन्दमौ । देशेकाले च

वाक्यज्ञावब्रूतां कौशिकं वचः ।१। भगवञ्छ्रोतुमिच्छावोयस्मिन्काले निशाचरौ । संरक्षणीयौ तौ ब्रह्मन् नातिवर्तेत तत्क्षणम् ।२। एवं ब्रुवाणौ काकुत्स्थौ त्वरमाणौ युयुत्सया । सर्वे ते मुनयः प्रीताः प्रशशंसुर्नृपात्मजौ ।३। अद्यप्रभृति षड्रात्रं रक्षतां राघवौ युवाम् । दीक्षां गतो ह्येषमुनिर्मौनत्वं च गमिष्यति । ४ ।

टीका—तब शत्रुओंके दमन करनेवाले, देशकालके पहचाननेवाले, वाक्य के जाननेवाले वह दोनों राजपुत्र देशकाल के अनुसार विश्वामित्र से वचन बोले ।१। भगवन्? हम सुनना चाहते हैं, जिस समय हम दोनों ने वह राक्षस रोकने हैं, हे ब्रह्मन्! वह क्षण न टल जाए । २ ।जब उन दोनों ककुत्स्थवंशी राजपुत्रों ने युद्ध के उत्साह से जल्दी करते हुए ऐसे कहा तो वह सारे मुनि प्रसन्न हो राजपुत्रों को कहते भए ।३ । आज से छः रातें हे राघवो ! तुम दोनों रक्षा करो, यह मुनि इतने दिन मौनी (चुप) रहेगा, क्योंकि दीक्षा ले चुका है ॥ ४ ॥

मूल—तौ च तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रौ यशस्विनौ।अनिद्रं षडहोरात्रं तपोवनमरक्षताम्।५।अथ काले गते तस्मिन्षष्ठेऽहनि तथागते । सौमित्रिमब्रवीद्रामो यत्तो भव समाहितः ।६। रामस्यैवंब्रुवाणस्य त्वरितस्य युयुत्सया । मारीचश्च सुबाहुश्च तयोरनुचरास्तथा ॥७॥ आगम्य भीमसंकाशौ रुधिरौघानवासृजन् । तावापतन्तौ सहसा दृष्ट्वा राजीवलोचनः । ८ । मानवं परमोदारमस्त्रं परमभास्वरम् । चिक्षेप परमक्रुद्धो मारीचोरसि राघवः । ९ । विचेतनं विघूर्णन्तं शीतेषुबलपीडितम्। निरस्तं दृश्य मारीचं रामो लक्ष्मणमब्रवीत्१०

टीका—वह यशस्वी दोनों राजपुत्र उनके वचन को सुनकर छः दिन रात नींद छोड़कर तपोवन की रक्षा करते भए।५।जब और काल बीत गया और वह छटा दिन आया, तब रामने लक्ष्मण को कहा, वीर सावधान होकर तय्यार रहो।६।राम जब युद्ध की इच्छासे जल्दी करते हुए ऐसा कह ही रहे थे, कि भीममूर्त्ति मारीच और सुबाहु और उनके अनुचर आकर रुधिर के प्रवाह छिड़कने लगे । उन को एकदम आपड़ते हुए देखकर कमलनेत्र । ७,८ । राघव परम

क्रुद्ध हो अतीव चमकते हुए परम उदार मानव अस्त्र को मारीच की छाती पर फैंकते भए। ९। तब बेहोश हुए, घूर्ण हुए, और शीतेषु (ठंडे तीरों वाले मानव अस्त्र) के बल से पीड़ित हुए मारीच को परे फैंका हुआ देखकर राम लक्ष्मण से बोले। १०।

मूल—पश्य लक्ष्मण शीतेषुं मानवं मनुसंहितम्। मोहयित्वा नयत्येनं न च प्राणैर्वियुज्यते ॥ ११ ॥ इमानपि वधिष्यामि निर्घृणान्दुष्टचारिणः। राक्षसान्पापकर्मस्थान्यज्ञघ्नान्रुधिराशनान्। १२। इत्युक्त्वा लक्ष्मणं चाशु लाघवं दर्शयन्निव। विगृह्य सुमहच्चास्त्रमाग्नेयं रघुनन्दनः ॥ १३ ॥ सुबाहूरसि चिक्षेप सविद्धः प्रापतद्भुवि। शेषान्वायव्यमादाय निजघान महायशाः॥१४॥

टीका—हे लक्ष्मण! मनुष्य से प्रयोग किए हुए ठंडे तीरोंवाले मानव अस्त्र को देख, कि इसको बेहोश करके लिये जाता है, और यह प्राणों से वियुक्त नहीं होता है।११। अब इन दूसरे राक्षसों को भी मारता हूं, जोकि निर्दय, दुष्टचारी, पाप कर्म में स्थित, यज्ञ के नाशक, रुधिर भक्षण करने वाले हैं। १२। लक्ष्मण को यह कहकर जल्दी तेज़ी दिखलाते हुए राम ने बहुत बड़े आग्नेय अस्त्र को खींचकर।१३। सुबाहु की छाती पर फैंका, वह विधकर भूमि पर गिर पड़ा। फिर महा यशस्वी राम ने वायव्य अस्त्र लेकर शेषों को मार डाला। १४।

मूल—स हत्वा राक्षसान्सर्वान्यज्ञघ्नान्रघुनन्दनः। ऋषिभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा ॥ १५ ॥ अथ यज्ञे समाप्ते तु विश्वामित्रो महामुनिः। निरीतिका दिशो दृष्ट्वा काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥ १६ ॥ कृतार्थोऽस्मि महाबाहो कृतं गुरुवचस्त्वया। सिद्धाश्रम

मामिदं सत्यं कृतं वीर महायशः ॥ १७ ॥ स हि रामं प्रशस्यैवं ताभ्यां सन्ध्यामुपागमत् ॥ १८ ॥

टीका—वह रघुनन्दन यज्ञ के नाशक सारे राक्षसों को मारकर ऋषियोंसे पूजे गये, जैसे पूर्वकालमें अपने विजयमें इन्द्र पूजे गये थे।१५। अब यज्ञ के समाप्त होने पर महामुनि विश्वामित्र दिशाओं को उपद्रव रहित हुआ देखकर राम से बोले। १६। हे महाबाहो ! मैं कृतार्थ हुआ हूं, तूने गुरुओं के वचन को पूरा किया है, हे बड़े यशवाले वीर सचमुच ही तूने इस स्थान को सिद्धाश्रम बना दिया है। १७। वह राम की इस तरह प्रशंसा करके उन दोनों भाइयों को साथ ले सन्ध्या उपासते भए। १८।

सर्ग १७ (ब० ३१-३८) मिथला यात्रा

मूल—अथ तां रजनीं तत्र कृतार्थौ रामलक्ष्मणौ। ऊषतुर्मुदितौ वीरौ प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥१॥ प्रभातायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियौ। विश्वामित्रमृषींश्चान्यान्सहिताविभजग्मतुः॥२॥ अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं ज्वलन्तमिव पावकम्। ऊचतुः परमोदारं वाक्यं मधुरभाषिणौ ॥३॥ इमौ स्म मुनिशार्दूल किंकरौ समुपस्थितौ। आज्ञापय यथेष्टं वै शासनं करवाव किम् ॥४॥ एवमुक्ते तयोर्वाक्ये सर्व एव महर्षयः।विश्वामित्रं पुरस्कृत्य रामं वचनमब्रुवन्।

टीका—अब कृतार्थ हुए मोद से भरे हुए दोनों वीर राम लक्ष्मण प्रसन्न मन से वह रात वहां रहे ॥१॥ रात के प्रभात होने पर सवेरे का नित्यकर्म करके दोनों भाई इकट्ठे विश्वामित्र और दूसरे ऋषियों के सम्मुख गये।२। जलती हुई अग्नि की तरह (तपस्वी) मुनि श्रेष्ठ को अभिवादन करके मधुर बोलनेवाले वह दोनों भाई परम उदार वाक्य बोले।३। हे मुनिवर ! यह

दोनों सेवक उपस्थित हैं,जो इच्छा हो आज्ञा दीजिये(हे मुनि श्रेष्ठ!) क्या आज्ञा पूर्ण करें।४। जब उन दोनों ने यह वाक्य कहा, तो सारे महर्षि विश्वामित्र को आगे करके* राम से यह बचन बोले।

मूल—मैथिलस्य नरश्रेष्ठ जनकस्य भविष्यति। यज्ञः परम धर्मिष्ठ स्तत्र यास्यामहे वयम् ॥६॥ त्वं चैव नरशार्दूल सहास्माभिर्गमिष्यसि। अद्भुतं च धनूरत्नं तत्र त्वं द्रष्टुमर्हसि ॥७॥ तद्धि पूर्वं नरश्रेष्ठ दत्तं सदसि दैवतैः। अप्रमेयबलं घोरं मखे परमभास्वरम् ॥८॥ धनुषस्तस्य वीर्यं हि जिज्ञासन्तो महीक्षितः। न शेकुरारोपयितुं राजपुत्रा महाबलाः ॥९॥ तद्धनुर्नरशार्दूल मैथिलस्य महात्मनः। तत्र द्रक्ष्यामः काकुत्स्थ यज्ञं च परमाद्भुतम् ॥१०॥ इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलः कौशिकः स तपोधनः। उत्तरां दिशमुद्दिश्य प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥११॥ ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे। वासं चक्रुर्मुनिगणाः शोणाकूले समाहिताः ॥१२॥

टीका—हे नर श्रेष्ठ! मिथिलाधिपति जनक † के यहां परम धर्म वाला यज्ञ होगा, हम सब वहां जाएंगे।६। तुम भी हे नर शार्दूल! हमारे संग चलो, और वहां अद्भुत धनुष रत्न देखोगे। ७। हे नर श्रेष्ठ! अत्यन्त चमकता हुआ अप्रमेय बलवाला वह घोर धनुष पूर्वकाल में यज्ञ के अंदर ‡ (यज्ञशाला के) सभास्थान में बैठे हुए देवताओं ने दिया था।८। इस धनुष की शक्ति को जानना चाहते हुए महाबली राजपूत राजे नहीं चढ़ासके हैं।९। वह धनुष हे नर शार्दूल राम! मिथिलाधिपति महात्मा के वहां

---

* अर्थात् विश्वामित्र सारे ऋषियों की ओर से यह कहनेलगे।

† मिथला के राजा का जनक उपनाम होता था असली नाम अलग होता था जैसा कि इस जनक का नाम सीरध्वज था।

‡ देवरातनामी प्राचीन जनक के यज्ञ के अन्दर।

देखोगे, और परम अद्भुत यज्ञ देखोगे। १० । यह कहकर वह तपोधन मुनिवर विश्वामित्र उत्तर दिशा की ओर प्रस्थित(रवाना) हुए। ११ । वह मुनिगण दूर मार्ग जाकर सूर्य जब अस्त होने को हुआ,तो सावधान हो शोणानदी के किनारे वास करते भए १२

मूल—उपास्य रात्रिशेषं तु शोणाकूले महर्षिभिः। निशायां सुप्रभातायां विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥१३॥ सुप्रभाता निशा राम ! पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते गमनायाभि रोचय ॥१४॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कृतपूर्वाह्णिकक्रियः। गमनं रोचयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥१५॥ अयं शोणः शुभजलोगाधः पुलिनमण्डितः। कतरेण पथा ब्रह्मन्सन्तरिष्यामहे वयम् ॥१६॥ एवमुक्तस्तु रामेण विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम्। एष पन्था मयोद्दिष्टो येन यान्ति महर्षयः ॥१७॥

टीका—शोणा के किनारे पर महर्षियों के सहित रात बिताकर रात के प्रभात होने पर विश्वामित्र ने कहा। १३ । राम रात प्रभात हुई है, पूर्वा संध्या प्रवृत्त हुई है, उठो उठो हे भद्र! चलने के लिये तय्यार होवो। १४ । उसके इस वचन को सुनकर सवेरे का नित्यकर्म करके राम चलने के लिये तय्यार हुए और यह वचन बोले। १५ । यह शोण शुभ जलवाला बरेतों (बालू के टीलों) से भूषित गाध *है, किस मार्ग से हे ब्रह्मन्! हम पार होंगे। १६ । राम के ऐसा पूछने पर विश्वामित्र बोले, यह मार्ग मैंने निश्चित किया है, जिससे कि महर्षि जाया करते हैं।

मूल—ते गत्वा दूरमध्वानं गतेऽर्धेदिवसे तदा। जाह्नवीं सरितां श्रेष्ठां ददृशुर्मुनिसेविताम्॥१८॥तां दृष्ट्वा पुण्यसलिलां हंससारसमसेविताम्। बभूवुर्मुनयः सर्वे मुदिताः सहराघवाः॥१९॥तस्यास्तीरे तदा सर्वे चक्रुर्वासपरिग्रहम्। ततः प्रभाते विमले पुण्यां त्रिपथगां नदीम्

*गाध = पाओं से चलने योग्य। पदच्छेद आगाध भी होसक्ता है।

॥ २० ॥ संतारं कारयामास सर्षिसंघस्य कौशिकः । उत्तरंतीरमा-
साद्य संपूज्यर्षिगणं तदा ॥ २१ ॥ गंगाकूले निविष्टास्ते विशालां
ददृशुः पुरीम् । विशालां नगरीं रम्यां दिव्यां स्वर्गोपमां तदा ॥
टीका—वह दूर मार्ग जाकर आधा दिन बीते नदियों में श्रेष्ठ
गंगा को देखते भए, जिस पर मुनिजन बसते हैं। १८। पवित्र
जलवाली, हंस और सारसों से सेवित उस नदी को देखकर
राम लक्ष्मण समेत सब मुनि बड़े प्रसन्न भए। १९। तब उसके
किनारे पर उन सब ने वास ग्रहण किया। फिर प्रभात निर्मल
होने पर विश्वामित्र ऋषिसमूह सहित राम कोपवित्र गंगा नदी
से पार लेगये। उत्तरी किनारे पहुंचकर वहां रहनेवाले ऋषिगण
का पूजन करके ॥२०, २१॥ गंगा के किनारे डेरे डालकर वह
विशालापुरी को देखते भए। सुहावनी स्वर्ग के तुल्य दिव्य
उस विशाला नगरी में उस समय। २२।

मूल—आवसत्परमप्रख्यः सुमतिर्नाम दुर्जयः । सुमतिस्तु महा-
तेजा विश्वामित्रमुपागमत् ॥ २३ ॥ पूजां च परमां कृत्वा सोपा-
ध्यायः सबान्धवः। प्राञ्जलिः कुशलं पृष्ट्वा विश्वामित्रमथाऽब्रवीत्
॥ २४ ॥ इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ । परस्परेण सदृशौ
प्रमाणेङ्गितचेष्टितैः ॥ २५॥ किमर्थं च नरश्रेष्ठौ संप्राप्तौ दुर्गमे
पथि । वरायुधधरौ वीरौ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥२६ ॥
टीका—दुर्जय (जिसको कोई जीत नहीं सक्ता) वह परम
प्रसिद्ध सुमति राजा वास करता था। महातेजस्वी सुम-
ति विश्वामित्र के पास आया। २३। और पुरोहित तथा बन्धुओं
के साथ योग्य पूजा करके हाथ जोड़ कुशल पूछकर विश्वामित्र
से बोला। २४। यह दोनों कुमार, तेरा भला हो, जोकि देवों
के तुल्य पराक्रम वाले हैं, प्रमाण (कद) इंगित और चेष्टाओं

*ये आपस में एक सदृश हैं । २५ । यह दोनों नरश्रेष्ठ वीरश्रेष्ठ शस्त्र धारण किये हुए किसतरह इस दुर्गम मार्ग में आए हैं, यह मैं तत्त्व से सुनना चाहता हूं ॥ २६ ॥

मूल—तस्य तद्वचनं श्रुत्वा यथावृत्तं न्यवेदयत् । विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राजा परमविस्मितः ॥ २७ ॥ अतिथी परमं प्राप्तौ पुत्रौ दशरथस्य तौ । पूजयामास विधिवत्सत्कारार्हौ महाबलौ ॥२८॥ ततः परमसत्कारं सुमतेः प्राप्य राघवौ । उष्य तत्र निशामेकां जग्मतुर्मिथिलां ततः ॥२९॥ तां दृष्ट्वा मुनयः सर्वे जनकस्य पुरीं शुभाम् । साधु साध्विति शंसन्तो मिथिलां समपूजयन् ॥३०॥

टीका—उस के इस वचन को सुनकर विश्वामित्र ने पूरा वृत्त † निवेदन किया । विश्वामित्र के वचन को सुनकर राजा बड़ा विस्मित हुआ । २७ । अतिथिरूप से प्राप्त हुए परम आदरणीय महाबली दशरथ के उन पुत्रों की पूजा करता भया ॥ २८॥ वह दोनों राघव सुमति से परम आदर पाकर वहां एक रात रहकर मिथिला को चले गये ॥ २९ ॥ जनक की उस सुहावनी पुरी को देखकर सारे मुनि साधु २ कहते हुए मिथला का आदर करते भए । ३० ।

---

* इङ्गित अन्दर के भावका बोधक इशारा और चेष्टा बोलना चालना आदि । † अर्थात् यह दशरथकुमार हैं, यज्ञ का विघ्न दूर करने के लिए अयोध्या से मेरे साथ सिद्धाश्रम में आए है, और वहां विघ्नकरनेवाले राक्षसों को मारकर और मार्ग में ताटका को मारकर अब जनक का यज्ञ देखने की इच्छा से इधर हमारे साथ आए हैं ।

सर्ग १८ (व० ५०) मिथला में जनक से भेंट

मूल—ततः प्रागुत्तरां गत्वा रामः सौमित्रिणा सह। विश्वामित्रं पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत् ॥ १ ॥ रामस्तु मुनिशार्दूलमुवाच सहलक्ष्मणः। साध्वी यज्ञसमृद्धिर्हि जनकस्य महात्मनः ॥ २ ॥ बहूनीह सहस्राणि नानादेशनिवासिनाम्। ब्राह्मणानां महाभाग वेदाध्ययनशालिनाम् ॥ ३ ॥ ऋषिवाटाश्च दृश्यन्ते शकटीशत संकुलाः। देशो विधीयतां ब्रह्मन्यत्रवत्स्यामहे वयम् ॥ ४ ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः। निवासमकरोद्देशे विविक्ते सलिलान्वते ॥ ५ ॥ विश्वामित्रमनुप्राप्तं श्रुत्वास नृपतिस्तदा। शतानन्दं पुरस्कृत्य पुरोहितमनिन्दितम् ॥ ६ ॥

टीका * तब पूर्वोत्तर दिशा की ओर जाकर विश्वामित्र को आगे करके राम लक्ष्मण समेत यज्ञस्थान में आए। १। लक्ष्मण समेत राम मुनिवर से बोले। महात्मा जनक की यज्ञ समृद्धि बड़ी प्रशंसनीय है।२। यहां नाना देश के निवासी वेदाध्ययन करने वाले

---

*यहां हम ने अहल्या की प्रसिद्ध कथा छोड़ दी है, जो वर्तमान वाल्मीकि रामायण में है। छोड़ने का हेतु यह है, कि यह कोई असली वृत्तान्त नहीं, ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्द्र को 'अहल्यायैजार' कहा है। इस के तत्त्व को न समझ कर लोग भूले हैं, और यूं ही अहल्या और इन्द्र पर दोष लगाया है। यह बात तन्त्र वार्तिक के शिष्टाचार प्रकरण में श्रीकुमारिल भट्टाचार्य्य ने पूरी तरह स्पष्ट की है, कि "समस्ततेजाः परमैश्वर्य्यनिमित्तेन्द्रशब्दवाच्यः सवितैवाहनि लीयमानतया रात्रेरहल्याशब्दवाच्यायाः क्षयात्मकजरणहेतुत्वाज्जीर्यत्यस्मादनेनवोदितेनेत्यादित्य एवाहल्याजार इत्युच्यते नतु परस्त्रीव्यभिचारात्" भाव यह है, कि इन्द्र का अर्थ है परमैश्वर्य्य वाला, वह कौन है ? सूर्य्य, जिस का सारे तेज हैं। और

ब्राह्मण सहस्रों की संख्या में विद्यमान हैं ।३। ऋषिस्थान सैंकड़ों (अग्निहोत्र की सामग्री) के छकड़ों से भरे हुए दीखते हैं । स्थान निश्चित कीजिये हे ब्रह्मन् जहां हम सब रहेंगे ।४। राम के वचन को सुनकर विश्वामित्र महामुनि जल से युक्त एकान्त स्थान में निवास करते भए ।५। विश्वामित्र को प्राप्त हुआ सुनकर वह राजा उस समय प्रशंसनीय पुरोहित शतानन्द को आगे करके । ६ ।

मूल–प्रत्युज्जगाम सहसा विनयेन समन्वितः ॥७॥ ऋत्विजोऽपि महात्मान स्त्वर्घ्यमादाय सत्वरम् । विश्वामित्राय धर्मेण ददुर्मन्त्रपुरस्कृतम् ॥८॥ प्रतिगृह्य तु तां पूजां जनकस्य महात्मनः । पप्रच्छ कुशलं राज्ञो यज्ञस्य च निरामयम् ॥ ९॥ स तांश्चापि मुनीन्पृष्ट्वा सोपाध्यायपुरोधसः । यथार्हमृषिभिः सर्वैः समागच्छत्प्रहृष्टवत् ॥१०॥ अथ राजा मुनिश्रेष्ठं कृताञ्जलिरभाषत । धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगव ॥११॥ यज्ञोपसदनं ब्रह्मन् प्राप्तोऽसि मुनिभिः सह । इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ ॥ १२ ॥ गजसिंहगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ । अश्विनाविव रूपेण

अहल्या दो शब्दों से बना है । अह और ल्या । अह का अर्थ दिन, ल्या का छिपने वाली अर्थात् दिन में छिपने वाली । वह कौन ? रात। जार का अर्थ है, जीर्ण करने वाला । सो सूर्य्य रातको जीर्ण (क्षीण) करता है, इसलिये इन्द्र (सूर्य्य) अहल्या (रात) का जार (क्षीण करने वाला) कहा है, न कि परस्त्री से व्याभिचार के हेतु उसे जार कहा है । सो जिस लिये यह कथा सच्ची नहीं, और इसकी भूलको आर्य्यावर्त के एक नामी पण्डित और सुधारक महात्मा ने प्रकटकर दिया है, और अब यही तात्पर्य्य श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी वेदभाष्य भूमिका में खोला है । तब इस कल्पित कथा को छोड़ना ही उचित है ।

समुपस्थितयौवनौ ॥ १३ ॥ वरायुधधरौ वीरौ कस्य पुत्रौ महामुने । भूषयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्याविवाम्बरम् ॥ १४ ॥

टीका—नम्रता से युक्त हुआ झटपट आगे लेने को गया ।७। महात्मा ऋत्विज् भी जल्दी अर्घ लेकर के धर्म मर्यादा के साथ विश्वामित्र को देते भए ।८। महात्मा जनक की उस पूजा को स्वीकार करके (मुनि ने) राजा को कुशल पूछा और यज्ञ में निर्विघ्नता पूछी ।९। और उपाध्याय और पुरोहित समेत उन सारे मुनियों से कुशल पूछकर तब उन सब के साथ प्रसन्न होकर यथायोग्य मिले ।१०। अब राजा हाथ जोड़कर मुनिवर से बोला । मैं धन्य हूं अनुगृहीत हूं, हे मुनि श्रेष्ठ! ।११। हे ब्रह्मन्! आप मुनियों के साथ जिसके यज्ञ स्थान में आए हैं ।हे ब्रह्मऋषि ! हे देव तुल्य पराक्रम वाले यह दोनों कुमार तेरा भला हो । १२ । जोकि हाथी और शेर की चाल वाले शार्दूल और वृषभ के तुल्य (बड़े बलवान्), रूप में अश्विनी कुमारों के तुल्य भरे हुए यौवन वाले हैं ।१३। सुन्दर शस्त्रों को धारण किये हुए यह दोनों वीर हे महामुने ! किसके पुत्र हैं, जो इस स्थान को शोभायमान कर रहे हैं, जैसे सूर्य, चन्द्र आकाश को । १४ ।

मूल—परस्परस्य सदृशौ प्रमाणेङ्गितचेष्टितैः । काकपक्षधरौ वीरौ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१५॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा जनकस्य महात्मनः। न्यवेदयन्महात्मानौ पुत्रौ दशरथस्य तौ ॥१६॥ सिद्धाश्रमनिवासं च राक्षसानां वधं तथा । तत्रागमनमव्यग्रं विशालायाश्च दर्शनम् ॥ १७ ॥ एतत्सर्वं महातेजा जनकाय महात्मने । निवेद्य विररामाथ विश्वामित्रो महामुनिः ॥ १८ ॥

टीका—प्रमाण इंगित और चेष्टामें परस्पर एक दूसरे के सदृश काक पक्षधारी यह जो दो वीर हैं, इन को तत्व से सुनना चाहता हूं ।१५। जनक महात्मा के इस वचनको सुनकर मुनिने निवेदन किया यह दोनों महापुरुष दशरथ के पुत्र हैं । १६ । सिद्धाश्रम में उन का निवास, राक्षसों का वध, और वहां निर्भय आना और मार्ग में विशालापुरी को देखना ।१७। यह सब कुछ महात्मा जनक को निवेदन करके महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र चुप होगए ।१८।

मूल—जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच कुशिकात्मजम् । धन्योऽस्म्य- नुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगव ! ॥ १९ ॥ यज्ञं काकु- त्स्थसहितैः प्राप्तवानसि कौशिक । पावितोऽहं त्वया ब्रह्मन्दर्शनेन महामुने ॥ २० ॥ अप्रमेयं तपस्तुभ्यमप्रमेयं च ते बलम् । अप्र- मेया गुणाश्चैव नित्यं ते कुशिकात्मज ॥ २१ ॥ कर्मकालो मुनि- श्रेष्ठ लम्बते रविमण्डलम् । श्वः प्रभाते महातेजो द्रष्टुमर्हसि मां पुनः

टीका—अब जनक फिर हाथ जोड़कर विश्वामित्र से वचन बोला । मैं धन्य हूं, अनुगृहीत हूं, जिस के यज्ञ में हे मुनिवर कौशिक ! आप राम सहित पधारे हैं, हे ब्रह्मन् ! आपने अपने दर्शन से मुझे पवित्र किया है ।१९,२०। हे कुशिक की सन्तान ! अप्रमेय आपका तप है, अप्रमेय आपका बल है, और अप्रमेय सदा आपके गुण हैं । २१ । हे मुनि श्रेष्ठ ! सूर्य मण्डल नीचे चला गया है (अस्त होने को है) अब कर्म का समय है । हे महातेजस्वी कल प्रभात के समय फिर आप मुझे देखने योग्य हैं

मूल—स्वागतं जयतां श्रेष्ठ मामनुज्ञातुमर्हसि । एवमुक्तो मुनिवरः प्रशस्य पुरुषर्षभम् ॥२३॥ विससर्जाशु जनकं प्रीतं प्रीतमनास्तदा

टीका—हे स्वाध्यायवालों में श्रेष्ठ! आपका आना शुभ हो, अब मुझे आज्ञा दीजिये। ऐसा कहने पर मुनिवर ने प्रसन्नमन हो, प्रसन्न हुए नरश्रेष्ठ जनक की प्रशंसा करके उसे विसर्जन किया २३,२५

सर्ग १९ (व०६६) धनुष की महिमा

मूल—ततः प्रभाते विमले कृतकर्मा नराधिपः। विश्वामित्रं महात्मानमाजुहाव सराघवम् ॥ १ ॥ तमर्चयित्वा धर्मात्मा शास्त्रदृष्टेन कर्मणा। राघवौ च महात्मानौ तदा वाक्यमुवाच ह ॥ २॥ भगवन् स्वागतं तेऽस्तु किंकरोमि तवानघ। भवानाज्ञापयतु मामाज्ञाप्यो भवताह्यम् ॥४॥ एवमुक्तः स धर्मात्मा जनकेन महात्मना। प्रत्युवाच मुनिर्वीरं वाक्यं वाक्यविशारदः॥५॥ पुत्रौ दशरथस्येमौ क्षत्रियौ लोकविश्रुतौ। द्रष्टुकामौ धनुःश्रेष्ठं यदेतत्त्वयि तिष्ठति॥६

टीका—तब प्रभात के निर्मल होने पर राजा ने नित्यकर्म करके राम लक्ष्मण सहित महात्मा विश्वामित्र को बुलवाया। १। धर्मात्मा (जनक) शास्त्रानुसार उसको और महात्मा राम लक्ष्मण को पूज कर वचन बोले। २। भगवन् आपका आना शुभ हो, हे निष्पाप! मैं आपका क्या कार्य करूं, आज्ञा दीजिये मैं आपसे आज्ञा पाने योग्य हूं।३। महात्मा जनक ने जब उस धर्मात्मा को ऐसे कहा, तो वाक्यनिपुण उस मुनिश्रेष्ठ ने उत्तर में यह वाक्य कहा।४। दशरथ के यह दोनों पुत्र लोक विख्यात क्षत्रिय उस श्रेष्ठ धनुष को देखने की इच्छा रखते हैं, जो आप के यहां स्थित है

मूल—एवमुक्तस्तु जनकः प्रत्युवाच महामुनिम्। श्रूयतामस्य धनुषो यदर्थमिह तिष्ठति ॥ ६ ॥ देवरात इति ख्यातो निमेः षष्ठो महीपतिः। न्यासोऽयं तस्य भगवन्हस्ते दत्तो महा-

त्मनः ॥ ७ ॥ दक्षयज्ञवधेपूर्वं मस्माकं पूर्वजे विभौ ॥ ८ ॥ अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता मया । क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता ॥ ९ ॥ भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धत ममात्मजा । वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा ॥ १० ॥ भूतलादुत्थितां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम् । वरयामासुरागम्य राजानो मुनिपुंगव ॥११॥ तेषां वरयतां कन्यां सर्वेषां पृथिवीक्षिताम् । वीर्यशुल्केति भगवन्न ददामि सुतामहम् ॥ १२ ॥ ततः सर्वे नृपतयः समेत्य मुनिपुंगव । मिथिलामभ्युपागम्य वीर्यं जिज्ञासवस्तदा ॥ १३ ॥ तेषां जिज्ञासमानानां वीर्यं धनुरुपाहृतम् । न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेऽपि वा ॥ १४ ॥ तेषां वीर्यवतां वीर्यमल्पं ज्ञात्वा महामुने । प्रत्याख्याता नृपतयस्तन्निबोध तपोधन ॥ १५ ॥ तदेतन्मुनिशार्दूल धनुः परमभास्वरम् । रामलक्ष्मणयो श्चापि दर्शयिष्यामि सुव्रत ॥ १६ ॥

टीका—जनक यह सुन कर मुनि से बोला, सुनिये हे भगवन् ? यह धनुष अब जिस प्रयोजन के लिये यहां स्थित है । पूर्वकाल में दक्षयज्ञ के वध में राजा देवरात के हाथ में देवताओं से अमानत दिया गया था, जो कि राजा निमि से छटी * पीढ़ी हमारा पूर्वज एक बड़ा समर्थ राजा हुआ है ।७,८। अब मैं जब (अग्निचयन के लिये) खेत को कर्षण कर रहा था, तब हल के आगे से (एक कन्या) निकली, सो मैंने

*वेङ्कटेश्वर छापेखाने के रामायण में 'निमेर्ज्येष्ठः' निमिका बड़ा पुत्र अशुद्ध है । देवरात निमि का पुत्र न था, छटी पीढ़ी में था, यह रामायण से ही स्पष्ट है ।

क्षेत्र को जोतते हुए पाई थी इसलिये सीता † नाम से विख्यात हुई। ९। भूतल से निकली हुई, वह मेरी कन्या जब बड़ी हुई, तब मैंने इस अयोनिजा कन्या का मूल्य बहादुरी (उस धनुष को पूरने की शक्ति) ठहराई। १०। भूतल से निकली हुई उस मेरी कन्या को बड़ी होने पर हे मुनिश्रेष्ठ बहुत राजों ने आकर वरने की प्रार्थना की। ११। उन वरनेवाले सारे राजों को यह कन्या मैंने नहीं दी, क्योंकि हे भगवन्? बहादुरी इसका मूल्य है। १२। तब सारे राज हे मुनिश्रेष्ठ! मिलकर भी मिथिला में आये और अपना बल जानना चाहा। १३। उन जिज्ञासावालों के सामने यह शिव का धनुष रक्खा गया, वह उस धनुष को न उठा सके न तोल सके। १४। हे महामुने! उन बहादुरों की बहादुरी छोटी जानकर उनको नां किया गया है, हे तपोधन! यह जान। १५। सो यह हे मुनि परम तेजवाला धनुष है, अब हे सुव्रत! राम और लक्ष्मण को भी यह दिखलाऊंगा। १६।

सर्ग २० (व० ६७) धनुष का तोडना

मूल—जनकस्य वचः श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः। धनुर्दर्शय रामाय इति होवाच पार्थिवम् ॥१॥ ततः स राजा जनकः सचिवान्व्यादिदेश ह। धनुरानीयतां दिव्यं गन्धमाल्यविभूषितम् ॥२॥ जनकेन समादिष्टाः सचिवाः प्राविशन्पुरम्। मञ्जूषामष्टचक्रां तां समूहुस्ते कथंचन ॥३॥ तामादाय तु मञ्जूषामायसीं यत्र तद्धनुः। सुरोपमं ते जनकमूचुर्नृपतिमन्त्रिणः ॥ ४ ॥ इदं धनुर्वरं राजन्पूजितं सर्वराजभिः। मिथिलाधिप राजेन्द्र दर्शनीयं यदिच्छसि ॥५॥

† सीता हल की रेखा को कहते हैं। हल की रेखा से बाहर आने के हेतु सीता नाम से प्रसिद्ध हुई। यह कन्यारत्न किसतरह खेत में आई, रामायण में इसकी बाबत कुछ नहीं कहा।

टीका—जनक के वचन को सुनकर विश्वामित्र महामुनि ने राजा से कहा, कि धनुष राम को दिखलाइये।१। तब राजा जनक ने कर्मचारियों को आज्ञा दी, कि गन्धमाला से शोभायमान दिव्य धनुष को लेआओ।२। जनक से आज्ञा दिये हुए वह कर्मचारी पुरी में प्रविष्ट हुए, और आठ पहियों वाली उस पेटी को बड़ी कठिनता से खींचकर लाए।३। उस पेटी को लाकर जिसमें कि यह धनुष था, वह कर्मचारी देव तुल्य जनक से यह बोले।४। हे राजन्! यह धनुषवर है, जिसका सब राजाओं ने आदर किया है, हे मिथिला के स्वामी राजेन्द्र यह है जिनको आप देखना चाहते हैं ॥५॥

मूल—तेषां नृपो वचः श्रुत्वा कृताञ्जलिरभाषत। विश्वामित्रं महात्मानं तौ चोभौ रामलक्ष्मणौ ॥६॥ इदं धनुर्वरं ब्रह्मञ्जनकैरभिपूजितम्। राजभिश्च महावीर्यैरशक्तैः पूरितुं पुरा ॥७॥ तदेतद्धनुषां श्रेष्ठ मानीतं मुनिपुंगव। दर्शयैतन्महाभाग अनयो राजपुत्रयोः ॥

टीका—राजा जनक उन के वचन को सुनकर हाथ जोड़ महात्मा विश्वामित्र और दोनों रामलक्ष्मण से बोला।६। हे ब्रह्मन्! यह धनुषवर है, जिसका सारे जनक आदर करते आए हैं, और इससे पूर्व बड़े २ वीर राजे इसको पूर नहीं सके हैं।७। सो यह धनुष श्रेष्ठ हे मुनिवर यहां लाया गया है, हे महाभाग! यह इन राजपुत्रों को दिखलाइये ॥८॥

मूल—विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा श्रुत्वा जनकभाषितम्। वत्स! राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत् ॥९॥ महर्षेर्वचनाद्रामो यत्र तिष्ठति तद्धनुः। मञ्जूषां तामपावृत्य दृष्ट्वा धनुरथाब्रवीत् ॥१०॥ इदं धनुवरं ब्रह्मन् संस्पृशामीह पाणिना। यत्नवांश्च भविष्यामि तोलने पूरणेऽपि वा

धर्मात्मा विश्वामित्र जनक के वचन को सुनकर रामचन्द्र से बोले, वत्स राम धनुष को देखो ।९। राम ब्रह्मऋषि की आज्ञा पाकर जिस में वह धनुष स्थित था, उस पेटी को खोलकर धनुष को देखकर फिर बोला । १० । इस धनुषवर को हे ब्रह्मन् ! मैं हाथ डालता हूं, और इसके तोलने और पूरने (कान तक खींचने) में यत्न करता हूं ॥११॥

मूल—बाढमित्येव तद्राजा मुनिश्च समभाषत । लीलया स धनुर्मध्ये जग्राह वचनान्मुनेः ॥१२॥ पश्यतां नृसहस्राणां बहूनां रघुनन्दनः। आरोपयित्वा मौर्वीं च पूरयामास तद्धनुः॥१३॥तद्बभञ्ज धनुर्मध्येनरश्रेष्ठो महायशाः।तस्य शब्दो महानासीन्निर्घातसमनिःस्वनः॥१४॥

टीका—राजा ने और मुनि ने कहा हां । मुनि की आज्ञा पाकर उस रघु की सन्तान ने सहस्रों मनुष्यों के देखते हुए लीला से धनुष को मध्य में से पकड़ लिया । महायशस्वी नरश्रेष्ठ ने चिल्ला चढ़ाकर उस धनुष को कानों तक खींचा और मध्य में से दो टुकड़े कर दिया ॥ बिजली की कड़क के तुल्य उसका बड़ा भारी शब्द हुआ ॥ १२,१३,१४॥

मूल—भूमिकम्पश्च सुमहान्पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ १५ ॥ निपेतुश्च नराः सर्वे तेन शब्देन मोहिताः । वर्जयित्वा मुनिवरं राजानं तौ च राघवौ ॥ १६ ॥ प्रत्याश्वस्ते जने तस्मिन्राजा विगतसाध्वसः । उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं वाक्यज्ञो मुनिपुंगवम् ॥ १७ ॥ भगवन्दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः। अत्यद्भुतमचिन्त्यं च न तर्कितमिदं मया ॥१८॥ जनकानां कुले कीर्त्तिमाहरिष्यति मे सुता । सीता भर्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम् ॥१९॥ मम सत्या प्रतिज्ञा च वीर्यशुल्केति कौशिक। सीता प्राणैर्बहुमता देया रामाय मे सुता

टीका—और फटते हुए पर्वत की तरह आस पास की भूमि जोर से कांप गई।१५। विश्वामित्र जनक और राम लक्ष्मण के सिवाय और सब लोग दहल कर गिर पड़े।१६। लोगों के तसल्ली पकड़ने पर राजा जनक जिस का सारा भय मिट गया है, हाथ जोड कर वाक्य के जानने वाला मुनिवर से यह वचन बोला।१७। भगवन् दशरथ सुत राम की वीरता मैंने देख ली है, बडा अद्भुत और अचिन्त्य इस का बल है, मैं ऐसा ख्याल नहीं कर सका था।१८। मेरी पुत्री सीता दशरथ-सुत राम को भर्त्ता पा कर जनकों की कुल में यश लाएगी।१९। हे कौशिक! मेरी प्रतिज्ञा कि सीता का मूल्य बहादुरी है सत्य हुई, मेरी पुत्री सीता जो प्राणों से अधिक प्यारी है राम को दूंगा।२०।

मूल--भवतोऽनुमतेब्रह्मञ्शीघ्रं गच्छन्तु मन्त्रिणः। मम कौशिक भद्रं ते अयोध्यां त्वरिता रथैः॥२१॥ कौशिकस्तु तथेत्याह राजा चाभाष्य मन्त्रिणः। अयोध्यां प्रेषयामास धर्मात्मा कृतशासनान् ॥२२॥ यथावृत्तं समाख्यातुमानेतुं च नृपं तदा॥२३॥

टीका—आपकी अनुमति में हे ब्रह्मन्! तेरा भला हो, मेरे मंत्री अब शीघ्र रथों पर सवार हो अयोध्या को जावें।२१। विश्वामित्र ने "तथास्तु" कहा, तो धर्मात्मा राजा ने मंत्रियों को बुला कर उन को संदेश पत्र देकर अयोध्या की ओर भेजा।२२। कि वह यथावृत्त जाकर राजा (दशरथ) को बतलावें और लावें।२३।

सर्ग २१ (व० ६८) दूतों का दशरथ के पास पहुंचना

मूल—जनकेन समादिष्टा दूतास्ते क्लान्तवाहनाः। त्रिरात्रमुषिता मार्गे तेऽयोध्यां प्राविशन्पुरीम् ॥१॥ ते राजवचनाद्दूता राज-

वेश्म प्रवेशिताः। ददृशुर्देवसंकाशं वृद्धं दशरथं नृपम् ॥२॥ बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे दूता विगतसाध्वसाः। राजानं प्रश्रितं वाक्यमब्रुवन्मधुराक्षरम् ॥३॥ मैथिलो जनको राजा साग्निहोत्रपुरस्कृतः। मुहुर्मुहुर्मधुरया स्नेहसंरक्तया गिरा ॥४॥ कुशलं चाव्ययं चैव सोपाध्यायपुरोहितम्। जनकस्त्वां महाराज ! पृच्छते सपुरःसरम् ॥ ५ ॥ पृष्ट्वा कुशलमव्यग्रं वैदेहो मिथिलाधिपः। कौशिकानुमते वाक्यं भवन्तमिदमब्रवीत् ॥६॥ पूर्वं प्रतिज्ञा विदिता वीर्यशुल्का ममात्मजा। राजानश्च कृतामर्षा निर्वीर्या विमुखीकृताः ॥७॥

टीका—जनक से आज्ञा दिये हुए वह दूत तीन रातें मार्ग में रह कर अयोध्या में प्रविष्ट हुए, जिन के घोड़े थक गये हैं।१। दूत राजा की आज्ञा से राजमन्दिर में प्रवेश कराये गये, वहां उन्हों ने देवतुल्य वृद्ध दशरथ राजा को देखा।२। दूत सारे निर्भय हो हाथ जोड़ मधुर अक्षरों वाला यह नम्र वाक्य राजा से कहते भये।३। हे महाराज ! स्नेह से भरी हुई मधुर वाणी से पुरोहित सहित मैथिल राजा जनक ने आपका क्षेम कुशल, आपके पुरोहित उपाध्याय और नौकरों सहित बार २ पूछा है।४, ५। और कुशल पूछ कर धैर्य के साथ विदेहों के राजा मिथिलाधीश ने विश्वामित्र की अनुमति में आप से यह वाक्य कहा है।६। मेरी कन्या का मूल्य बहादुरी है; यह मेरी प्रतिज्ञा पूर्व विख्यात हो चुकी है जिस पर बहुत से राजे शक्तिहीन हो विमुख हो चुके हैं।७।

मूल—सेयं मम सुता राजन्विश्वामित्रपुरस्कृतैः। यदृच्छयागतै राजन्निर्जिता तव पुत्रकैः ॥ ८ ॥ तच्च रत्नधनुर्दिव्यं मध्य भग्नं महात्मना। रामेण हि महाबाहो महत्यां जनसंसदि ॥९॥ अस्मै देया मया सीता वीर्यशुल्का महात्मने। प्रतिज्ञा तर्तुमिच्छामि

तदनुज्ञातुमर्हसि ॥१०॥ सोपाध्यायो महाराज पुरोहितपुरःसरः । शीघ्रमागच्छ भद्रं ते द्रष्टुमर्हसि राघवौ ॥११॥ प्रीतिं च मम राजेन्द्र निर्वर्तयितुमर्हसि । पुत्रयोरुभयोरेव प्रीतिं त्वमुपलप्स्यते ॥१२॥

टीका—सो यह मेरी कन्या हे राजन्! विश्वामित्र के साथ यदृच्छा से आए हुए तेरे वीर पुत्र ने जीती है ।८। और हे महाबाहो ! वह दिव्य धनुष महात्मा रामने भरी सभा के अन्दर मध्य में से तोड़ डाला है ।९। इस महात्मा को मुझे अब वह सीता देनी है, जिस का मूल्य बहादुरी है, सो मैं प्रतिज्ञा के पार पहुंचना चाहता हूं, आप इस में अनुज्ञा देने योग्य हैं ।१०। हे महाराज उपाध्याय और पुरोहित समेत शीघ्र आइये, आपका कल्याण हो, आकर राम लक्ष्मण को देखने योग्य हैं ।११। महाराज मेरी प्रीति को पूरा करने योग्य हैं आप भी दोनों ही पुत्रों की प्रीति देखेंगे* ।१२

मूल—दूतवाक्यं तु तच्छ्रुत्वा राजा परमहर्षितः । वसिष्ठं वामदेवं च मन्त्रिणोऽन्यांश्च सोऽब्रवीत् ॥१३॥ दृष्टवीर्यस्तु काकुत्स्थो जनकेन महात्मना । संप्रदानं सुतायास्तु राघवे कर्तुमिच्छति ॥१४॥ यदि वो रोचते वृत्तं जनकस्य महात्मनः । पुरीं गच्छामहे शीघ्रं मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥१५॥ मन्त्रिणो बाढमित्याहुः सहसर्वैर्महर्षिभिः। सुप्रीतश्चाब्रवीद्राजा श्वो यात्रेति च मन्त्रिणः ॥१६॥

टीका—दूत के वाक्य को सुन कर राजा परम प्रसन्न हुआ वसिष्ठ वामदेव और दूसरे मन्त्रियों से बोला ।१३। महात्मा जनक ने राम के बल को देखा है, वह राम को अपनी कन्या देना चाहता

---

* इससे यह प्रतीत होता है कि जनक ने अपनी दूसरी कन्या ऊर्मिला को लक्ष्मणसे व्याहने का विचार कर लिया था ।

है । १४। आपको यदि महात्मा जनक का कुल शील पसन्द है, तो जल्दी उस पुरी को चलें, समय का विलम्ब न हो । १५ । सब मन्त्रियों ने सारे महर्षियों के साथ मिलकर 'बहुत अच्छा, ऐसा कहा, तिसपर राजा बड़ा प्रसन्न होकर मंत्रियों से बोला, कल यात्रा होगी । १६ ।

सर्ग २२ (व० ६९) दशरथ का मिथला गमन

मूल—ततो रात्र्यां व्यतीतायां सोपाध्यायः सबान्धवः । राजा दशरथो हृष्टः सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥ अद्य सर्वे धनाध्यक्षा धनमादाय पुष्कलम् । व्रजन्त्वग्रे सुविहिता नानारत्नसमन्विताः ॥ २ ॥ चतुरङ्गबलं चापि शीघ्रं निर्यातु सर्वशः । वासिष्ठो वामदेवश्च जावालिरथ काश्यपः ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुर्ऋषिः कात्यायनस्तथा । एते द्विजाः प्रयान्त्वग्रे स्यन्दनं योजयस्व मे ॥ ४ ॥ वचनाच्च नरेन्द्रस्य सेना च चतुरङ्गिणी । राजानमृषिभिः सार्धं व्रजन्तं पृष्ठतोऽन्वयात् ॥ ५ ॥ गत्वा चतुरहं मार्गं विदेहानभ्युपेयिवान् । राजा च जनकः श्रीमाञ्श्रुत्वा पूजामकल्पयत् ॥ ६ ॥ ततो राजानमासाद्य वृद्धं दशरथं नृपम् । उवाच च नरश्रेष्ठो नरश्रेष्ठं मुदान्वितम् ॥ ७ ॥

टीका—तब रात के बीतने पर उपाध्याय और बान्धवों समेत प्रसन्न हुआ राजा दशरथ, सुमन्त्र से यह बोला । १ । आज सारे धनाध्यक्ष [खज़ानची] पुष्कल धन ले कर नाना रत्नों से युक्त पूरे तय्यार हुए आगे चलें । २ । (हाथी, घोड़े, रथ और प्यादे) इन चार अंगों वाली सेना चारों ओरसे जल्दी चले । वसिष्ठ, वामदेव, जावालि, काश्यप । दीर्घायु मार्कण्डेय और ऋषि कात्यायन यह ब्राह्मण आगे चलें, और मेरा रथ जोड़ । ३, ४ । राजा की आज्ञा पाकर वह चार अङ्गों वाली सेना ऋषियों के साथ चलते हुए

राजा के पीछे चलो । ५ । चार दिन मार्ग चलकर विदेहों के देश में पहुंचे, श्रीमान् राजा जनक सुनकर उनकी पूजा तय्यार करते भए । ६ । तब वृद्ध राजा दशरथ को पाकर हर्ष से भरा हुआ वह नरश्रेष्ठ (जनक) नरश्रेष्ठ (दशरथ) से बोला । ७ ।

मूल—स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव । पुत्रयोरुभयोः प्रीतिं लप्स्यसे वीर्यनिर्जिताम् ॥ ८ ॥ दिष्ट्या प्राप्तो महातेजा वसिष्ठो भगवानृषिः । सह सर्वैर्द्विजश्रेष्ठैर्देवैरिव शतक्रतुः ॥ ९ ॥ दिष्ट्या मे निर्जिता विघ्ना दिष्ट्या मे पूजितं कुलम् । राघवैः सह संबन्धाद्वीर्यश्रेष्ठैर्महाबलैः ॥ १० ॥ ततः सर्वे मुनिगणाः परस्पर समागमे । हर्षेण महता युक्तास्तां रात्रिमवसन् सुखम् ॥११॥ राजा च राघवौ पुत्रौ निशाम्य परिहर्षितः । उवास परमप्रीतो जनकेनाभिपूजितः ॥१२॥ जनकोऽपि महातेजाः क्रिया धर्मेण तत्त्ववित् । यज्ञस्य च सुताभ्यां च कृत्वा रात्रिमुवास ह ॥ १३ ॥

टीका—महाराज आपका आना शुभ हो, हे राघव ! हमारे भाग्य से आए हो, अपने बल से जीती हुई दोनों पुत्रों की प्रीति (खुशी) लाभ करोगे।८।यह बड़ा तेजस्वी भगवान् वसिष्ठऋषि दूसरे श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ हमारे भाग्य से देवों के साथ इन्द्र की तरह आया है । ९। भाग्य से मेरे विघ्न जीते गए हैं, भाग्य से मेरा कुल पूजित होगया है, जब कि बल में श्रेष्ठ महात्मा राघवों के साथ सम्बन्ध हुआ है। १० । तब सारे मुनिगण परस्पर के समागम में बड़े हर्ष से युक्त हुए, वह रात आराम से रहे। ११ । राजा भी दोनों पुत्रों को देखकर जनक से पूजा हुआ परम प्रीति के साथ वास करता भया । १२ । तत्त्ववेत्ता महातेजस्वी जनक भी यज्ञ के अवशिष्ट कर्म को और दोनों कन्याओं के लिये (विवाह सम्बन्धि) कर्म को विधि पूर्वक करके रात को सोया ॥ १३ ॥

सर्ग २३ (व०७०) दशरथ की वंशावलि

मूल—ततः प्रभाते जनकःकृतकर्मा महर्षिभिः। उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः शतानन्दं पुरोहितम् ॥ १ ॥ भ्राता मम महातेजा वीर्यवानतिधार्मिकः । कुशध्वजइति ख्यातःपुरीमध्यवसच्छुभाम् ॥२॥ सांकाश्यांपुण्यसंकाशां विमानामिव पुष्कम् ॥३॥ तमहं द्रष्टुमिच्छामि यज्ञगोप्ता स मे मतः। प्रीतिं सोऽपि महातेजा इमां भोक्ता मया सह ॥४॥आज्ञया तु नरेन्द्रस्य आजगाम कुशध्वजः। सददर्श महात्मानं जनकं धर्मवत्सलम् ॥५॥ सोऽभिवाद्य शतानन्दं जनकं चातिधार्मिकम् । राजार्हं परमं दिव्यमासनं सोऽध्यरोहत ॥६॥ उपविष्टावुभौ तौ तु भ्रातरावमितद्युती । प्रेषयामासतुर्वीरौ मन्त्रिश्रेष्ठं सुदामनम् ॥ ७ ॥ गच्छ मन्त्रिपते शीघ्रमिक्ष्वाकुममितप्रभम् । आत्मना सह दुर्धर्षमानयस्व समन्त्रिणम् ॥८॥ औपकार्यां स गत्वा तु रघूणां कुलवर्धनम्। ददर्श शिरसा चैतमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ९ ॥ अयोध्याधिपते वीर विदेहो मिथिलाधिपः। स त्वां द्रष्टुं व्यवसितः सोपाध्यायपुरोहितम् ॥ १० ॥

टीका—तब प्रभात के समय जनक महर्षियों के साथ कर्म करके वाक्य के जानने वाला वह शतानन्द पुरोहित से वाक्य बोला । १ । मेरा छोटा भाई बड़ा तेजस्वी अतिधार्मिक कुशध्वज जो पुष्पक विमान की तरह स्थित स्वर्ग तुल्य सांकाश्य पुरी में रहता है । २ । ३ । मैं उसको देखना चाहता हूं, वह मेरे यज्ञ का रक्षक होगा, वह भी महातेजस्वी मेरे साथ इस प्रीति (खुशी) को भोगेगा ।४। तब राजा की आज्ञा से कुशध्वज आगया, और आकर धर्मवत्सल महात्मा जनक को मिला ।५। वह शतानन्द को और धर्मात्मा राजा को प्रणाम करके राजा के योग्य दिव्य

आसन पर बैठा । ६ । वह दोनों तेजस्वी शूरवीर भाई बैठ गए और सुदामा मन्त्री को भेजते भए। ७। हे मन्त्रिश्रेष्ठ! महातेजस्वी इक्ष्वाकुओं के राजा के पास शीघ्र जाओ, और बडे साहस वाले राजा को मन्त्रियों और पुत्रों सहित यहां लाओ । ८ । दशरथ की छावनी में जाकर उसने रघुओं के कुल बढ़ाने वाले (दशरथ) को देखा और सिर झुकाकर प्रणाम करके यह बोला । ९ । हे अयोध्याधिपतेवीर ! वैदेह राजा मिथिलाधिपति उपाध्याय और पुरोहित सहित आपके दर्शनों को चाहता है ।१० ।

मूल—मन्त्रिश्रेष्ठवचः श्रुत्वा राजा सर्षिगणस्तदा । सबन्धुरगमत्तत्र जनको यत्र वर्तते ॥ ११ ॥ राजा च मन्त्रिसहितः सोपाध्यायः सबान्धवः । वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो वैदेहमिदमब्रवीत् ॥ १२ ॥ विदितं ते महाराज इक्ष्वाकुकुलदैवतम् । वक्ता सर्वेषु कृत्येषु वसिष्ठो भगवानृषिः ।

टीका—मन्त्रिश्रेष्ठ के वचन को सुनकर राजा ऋषिगण और वन्धुओं समेत वहां गए जहां जनक था । ११ । वाक्य के जानने वालों में श्रेष्ठ वह राजा मन्त्रियों पुरोहित और बान्धवों सहित वैदेह राजा से यह वाक्य बोला । १२ । आपको विदित है, हे महाराज ! इक्ष्वाकुकुल का देवता (परम गुरु) भगवान् वसिष्ठ ऋषि हमारे सारे कार्य्यों में वक्ता है । १३ ।

मूल—एष वक्ष्यति धर्मात्मा वसिष्ठोऽयं यथाक्रमम् । तूष्णींभूते दशरथे वसिष्ठो भगवानृषिः ॥१४॥ उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो वैदेहं सपुरोधसम् । मनुः प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुश्च मनोः सुतः ॥ १५ ॥ तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धि पूर्वकम् । इक्ष्वाकोस्तु सुतः श्रीमान्कुक्षिरित्येव विश्रुतः ॥ १६ ॥ कुक्षेरथात्मजः

श्रीमान्विकुक्षिरुदपद्यत। विकुक्षेस्तु महातेजा बाणः पुत्रः प्रतावान् ॥

टीका—यह धर्मात्मा वसिष्ठ मेरे वंश को यथाक्रम कहेगा। दशरथ के चुप होने पर वाक्य के जाननेवाला भगवान् वसिष्ठ ऋषि पुरोहित सहित विदेह राजा से यह वाक्य बोला, कि मनु पहला प्रजापति, (प्रजा का मालिक राजा) हुआ है, इक्ष्वाकु मनु का पुत्र ॥ १४, १५ ॥ उस इक्ष्वाकु को अयोध्या में सब से पहला राजा जान, इक्ष्वाकु का पुत्र श्रीमान् कुक्षि हुआ ॥१६॥ कुक्षि का पुत्र श्रीमान् विकुक्षि, विकुक्षि का पुत्र बड़ा तेजस्वी प्रतापी बाण हुआ है ॥ १७ ॥

मूल—बाणस्य तु महातेजा अनरण्यः प्रतापवान् । अनरण्याद पृथुर्जज्ञे त्रिशङ्कुस्तु पृथोरपि ॥१८॥ त्रिशङ्कोरभवत्पुत्रो धुन्धुमारो महायशाः। धुन्धुमारान्महातेजा युवनाश्वो महारथः ॥ १९ ॥ युवनाश्वसुतश्चासीन्मान्धाता पृथिवीपतिः। मान्धातुस्तु सुतः श्रीमान्सुसन्धिरुदपद्यत ॥ २० ॥ सुसंधेरपि पुत्रौ द्वौ ध्रुवसन्धिः प्रसेनजित्। यशस्वी ध्रुवसन्धेस्तु भरतो नाम नामतः ॥ २१॥ भरतात्तु महातेजा असितो नाम जायत । यस्यैते प्रतिराजान उदपद्यन्त शत्रवः ॥ २२ ॥

टीका—बाण का बड़ा तेजस्वी प्रतापी अनरण्य, अनरण्य से पृथु हुआ, पृथु का पुत्र त्रिशंकु हुआ ।१८। त्रिशंकु का पुत्र महायशस्वी धुन्धुमार, धुन्धुमार से तेजस्वी युवनाश्व हुआ।१९। युवनाश्व का पुत्र राजा मान्धाता, मान्धाता का पुत्र श्रीमान् सुसन्धि हुआ ।२०। सुसन्धि के दो पुत्र ध्रुवसंधि और प्रसेनजित्, ध्रुवसन्धि का यशस्वी भरत हुआ।२१। भरत से महातेजस्वी असित हुआ, जिसके यह मुकाबिले के क्षत्रिय शत्रु उत्पन्न हुए ॥ २२॥

मूल-हैहयास्तालजङ्घाश्च शूराश्च शशबिन्दवः । तांश्च स प्रतियुध्यन्वै युद्धे राजा प्रवासितः ॥ २३ ॥ हिमवन्तमुपागम्य भार्याभ्यां सहितस्तदा । असितोऽल्पबलो राजा कालधर्ममुपेयिवान् २४ ॥ द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यौ बभूवतुरिति श्रुतिः । एका गर्भविनाशार्थं सपत्न्यै सगरं ददौ ॥ २५ ॥ ततः शैलवरे रम्ये बभूवाभिरतो मुनिः । भार्गवश्च्यवनो नाम हिमवन्तमुपाश्रितः ॥ २६ ॥ तत्र चैका महाभागा भार्गवं देववर्चसम् । तमृषिं साभ्युपागम्य कालिन्दी चाभ्यवादयत ॥ २७ ॥ स तामभ्यवदद्विप्रः पुत्रेप्सुं पुत्रजन्मनि । तव कुक्षौ महाभागे सुपुत्रः सुमहाबलः॥२८॥ महावीर्यो महातेजा अचिरात्संजनिष्यति ॥ २९ ॥ च्यवनं च नमस्कृत्य राजपुत्री पतिव्रता । पत्या विरहिता तस्मात्पुत्रंदेवी व्यजायत ॥ ३० ॥ सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया । सह तेन गरेणैव संजातः सगरोऽभवत् ॥ ३१ ॥

टीका—हैहय, तालजंघ, और बहादुर शशबिन्दु उनके साथ युद्ध में लड़ता हुआ राजा राज्य से निकाला गया । २३ । तब वह दो पत्नियों समेत हिमालय में आकर, वह थोड़े बल वाला असित राजा मरगया । २४ । उस समय उसकी दोनों पत्नियें गर्भवती थीं, उनमें से एक ने गर्भ के नाश के लिये सौतिन को विषवाला भोजन दिया । २५ । वहां उस रमणीय उत्तम पर्वत में प्रीतिवाला भृगुवंशी च्यवन नाम मुनि हिमालय में रहता था । २६ ॥ सो वह रानी कालिन्दी उस देवतुल्य तेजवाले भृगुवंशी ऋषि के पास आई, और उसकी वन्दना की। २७। उस ब्राह्मण ने उस पुत्र की इच्छा वाली को पुत्र जन्म के विषय में आशीर्वाद दिया, तेरी कुक्षि से हे महाभागे बहुत बड़ा बली, बड़ा पराक्रमी

बड़ा तेजस्वी सुपुत्र जल्दी उत्पन्न होगा। २८, २९। पति से रहित पतिव्रता वह राजपुत्री देवी च्यवन को नमस्कार करके उसके अनुग्रह से पुत्र को जन्म देती भई। ३०। सौतिन ने उसके गर्भ के नाश की इच्छा से विष दिया था, वह उस विष के साथ उत्पन्न हुआ इसलिये सगर * हुआ ॥ ३१ ॥

मूल—सगरस्यासमञ्जस्तु असमञ्जादथांशुमान् । दिलीपोऽशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः ॥ ३२ ॥ भगीरथात्ककुत्स्थश्च ककुत्स्थाच्च रघुस्तथा। रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्धः पुरुषादकः ॥ ३३ ॥ कल्माषपादोऽप्यभवत्तस्माज्जातस्तु शङ्खणः । सुदर्शनः शङ्खणस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात् ॥ ३४ ॥ शीघ्रगस्त्वग्निवर्णस्य शीघ्रगस्य मरुः सुतः। मरोः प्रशुश्रुकस्त्वासीदम्बरीषः प्रशुश्रुकात् ३५॥ अम्बरीषस्य पुत्रोऽभून्नहुषश्च महीपतिः। नहुषस्य ययातिस्तु नाभागस्तु ययातिजः ॥ ३६ ॥ नाभागस्य बभूवाज अजाद्दशरथोऽभवत्। अस्माद्दशरथाज्जातौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥३७॥रामलक्ष्मणयोरर्थे त्वत्सुतं वरये नृप । सदृशाभ्यां नरश्रेष्ठ सदृशे दातुमर्हसि ॥

टीका—सगर का असमञ्ज हुआ, असमञ्ज से अंशुमान, अंशुमान का पुत्र दिलीप हुआ, दिलीप का भगीरथ। ३२। भगीरथ से ककुत्स्थ, ककुत्स्थ से रघु, रघु का पुत्र तेजस्वी प्रवृद्ध, जो पुरुषादक और कल्माषपाद भी कहलाया है, उसका पुत्र शंखन हुआ, शंखन का सुदर्शन, सुदर्शन का अग्निवर्ण। ३३, ३४। अग्निवर्ण का शीघ्रग,शीघ्रग का मरु,मरु का प्रशुश्रुक, प्रशुश्रुक का अम्बरीष।३५। अम्बरीष का पुत्र राजा नहुष हुआ,

---

* विष का नाम गर है गर के साथ होने से सगर हुआ ॥

नहुष का ययाति, ययातिका नाभाग ।३६। नाभाग का अज,*
अज का दशरथ,इस दशरथ से यह दोनों भाई राम लक्ष्मण जन्मे हैं। ३७ । इन राम लक्ष्मण के अर्थ हे राजन् तेरी दोनों कन्याओं को वरता हूं, हे नरश्रेष्ठ इन (वंश, रूप, यौवन में) सदृशों को सदृश (कन्याएं) देने योग्य हो । ३८ ।

सर्ग २४ (व० ७१) जनक की वंशावलि

एवं ब्रुवाणं जनकः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः॥१॥ प्रदाने हि मुनिश्रेष्ठ कुलं निरवशेषतः । वक्तव्यं कुलजातेन तन्निबोध महामते॥२॥ राजाभूवत्रिषु लोकेषु विश्रुतः स्वेन कर्मणा।निमिः परमधर्मात्मा सर्वसत्ववतां वरः ॥ ३ ॥ तस्य पुत्रो मिथिर्नाम मिथिलायेन निर्मिता † । प्रथमो जनको नाम जनकादप्युदावसुः ॥ ४ ॥ उदावसोस्तु धर्मात्मा जातो वै नन्दिवर्धनः । नन्दिवर्धनसुतः शूरः सुकेतुर्नाम नामतः ॥५॥ सुकेतोरपि धर्मात्मा देवराता महाबलः । देवरातस्य राजर्षेर्बृहद्रथ इति स्मृतः ॥ ६ ॥ बृहद्रथस्य शूरोऽभून्महावीरः प्रतापवान् । महावीरस्य धृतिमान्सुधृतिः सत्यविक्रमः॥७॥ सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः सुधार्मिकः । धृष्टकेतोश्च राजर्षेर्हर्यश्व इति विश्रुतः ॥ ८ ॥

टीका—ऐसे कहते हुए (वसिष्ठ) से जनक हाथ जोड़कर बोले ।१। कन्यादान के समय हे मुनिश्रेष्ठ ! कुलीन पुरुष को अपना कुल पूरी तरह कहना चाहिये, सो हे महामुने ! सुनिये । २ । तीनों

---

* यह वंशावलि कालिदास के रघुवंश से और कई पुराणों से बहुत भेद रखती है, इतिहास के लिए उपयोगी होने से यहां ज्यों की त्यों लिख दी है, पर इसकी ठीक करने की आवश्यकता है।

† "मिथिलायेननिर्मिता" की जगह "जनको मिथि पुत्रकः" 'मिथि का पुत्र जनक हुआ' भी पाठान्तर है । इस में एक पीढ़ी का भेद पड़ता है, ठीक करने के लिये अनुसन्धान होना चाहिये ।

लोकों में अपने कर्म से विख्यात, सारे दिलेरों में चुना हुआ, परमधर्मात्मा राजा निमि हुआ है । ३ । उसका पुत्र मिथि हुआ, जिसने मिथला की नींव डाली, वही पहला जनक हुआ है (उसी के नाम से हमारे वंशीय जनक कहलाते हैं,) जनक से उदावसु हुआ । ४ । उदावसु से धर्मात्मा नन्दिवर्धन उत्पन्न हुआ, नन्दि-वर्धन का पुत्र सुकेतु नामी हुआ ।५। सुकेतु का भी धर्मात्मा देवरात हुआ (इसी के समयका यह धनुष था) राजऋषि देवरात का पुत्र बृहद्रथ, बृहद्रथ का प्रतापी सूरमा महावीर हुआ है, महावीर का बड़े धैर्य वाला सच्चे पराक्रम वाला सुधृति ।६,७। सुधृति का भी धर्मात्मा धृष्टकेतु जो बड़ा धार्मिक हुआ है, धृष्टकेतु राजऋषि का हर्यश्व हुआ है ।८।

मूल—हर्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरोःपुत्रः प्रतीन्धकः । प्रतीन्धकस्य धर्मात्मा राजा कीर्त्तिरथः सुतः ॥ ९ ॥ पुत्रः कीर्त्तिरथस्यापि देव-मीढ इति स्मृतः।देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य महीध्रकः॥ १० ॥ महीध्रकसुतो राजा कीर्तिरातो महाबलः। कीर्तिरातस्य राजर्षेर्महा-रोमा व्यजायत ॥ ११ ॥ महारोम्णस्तु धर्मात्मा स्वर्णरोमा व्यजायत । स्वर्णरोम्णस्तु राजर्षेर्ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥ १२ ॥ तस्य पुत्रद्वयं राज्ञो धर्मज्ञस्य महात्मनः । ज्येष्ठोऽहमनुजो भ्राता मम वीरः कुशध्वजः॥१३॥ मांतु ज्येष्ठं पिता राज्ये सोऽभिषिच्य पिता मम । कुशध्वजं समावेश्य भारं मयि वनं गतः ॥१४॥ वृद्धे पितरि स्वर्याते धर्मेण धुरमावहम् । भ्रातरं देवसंकाशं स्नेहात्पश्य-न्कुशध्वजम् ॥१५॥

टीका—हर्यश्व का पुत्र मरु, मरु का प्रतीन्धक, प्रतीन्धक का पुत्र धर्मात्मा राजा कीर्तिरथ।९। कीर्तिरथ का पुत्र देवमीढ़, देवमीढ का

विबुध, विबुध का महीध्रक। १०। महीध्रक का पुत्र महाबली कीर्तिरात, कीर्तिरात राजऋषि का महारोमा उत्पन्न हुआ ।११। महारोमा का धर्मात्मा स्वर्णरोमा उत्पन्न हुआ, स्वर्णरोमा ऋषि का ह्रस्वरोमा उत्पन्न हुआ ।१२। उस धर्मज्ञ महात्मा के दो पुत्र हुए, बड़ा मैं हूं मेरा छोटा भाई वीरकुशध्वज है ।१३। मुझ बड़े को पिता राजतिलक देकर और कुशध्वज को सौंपना करके बनको चले गए।१४। वृद्ध पिता का स्वर्गवास होने पर मैंने धर्म से राज्य की धुरा को उठाया, और देव तुल्य भाई कुशध्वज को स्नेह से देखता रहा ।१५।

मूल—कस्यचित्त्वथ कालस्य सांकाश्यादागतः पुरात् । सुधन्वा वीर्यवान्राजा मिथिलामवरोधकः ॥१६॥ स च मे प्रेषयामास शैवं धनुरनुत्तमम् । सीता कन्या च पद्माक्षी मह्यं वै दीयतामिति ॥१७॥ तस्याप्रदानाद् ब्रह्मर्षे युद्धमासीन्मया सह । स हतोऽभिमुखो राजा सुधन्वा तु मया रणे ॥१८॥ निहत्य तं मुनिश्रेष्ठ सुधन्वानं नराधिपम् । सांकाश्ये भ्रातरं शूरमभ्यषिञ्चं कुशध्वजम् ॥१९॥

टीका—कुछ समय के पीछे सांकाश्यपुर से बड़े बलवान् सुधन्वा राजा ने आकर मिथिला को घेर लिया । १६ । उसने मेरे पास दूत भेजे, कि अत्युत्तम शैवधनुष और पद्मतुल्य नेत्रों वाली अपनी कन्या सीता मुझे दीजये ।१७। किन्तु उसके न देने से हे ब्रह्मऋषि मेरे साथ युद्ध हुआ, वह राजा सुधन्वा रणमें सम्मुख लड़ता हुआ मुझसे मारा गया ।१८। हे मुनिश्रेष्ठ ! सुधन्वा राजा को मारकर सांकाश्य में अपने भाई वीरकुशध्वज को तिलक दिया॥

मूल—कनीयानेष मे भ्राता अहं ज्येष्ठो महामुने । ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुंगव ॥२०॥ सीतां रामाय भद्रं ते ऊर्मिलां लक्ष्म-

णाय च ॥ २१ ॥ वीर्यशुल्कां मम सुतां सीतां सुरसुतोपमाम् ।
द्वितीयामूर्मिलां चैव त्रिर्वदामि न संशयः ॥२२॥ रामलक्ष्म-
णयो राजन्गोदानं कारयस्व ह। पितृकार्यं च भद्रं ते ततो
वैवाहिकं कुरु ॥२३॥ मघा ह्यद्य महाबाहो तृतीयादिवसे प्रभो ।
फाल्गुन्यामुत्तरे राजंस्तस्मिन्वैवाहिकं कुरु ॥२४॥ रामक्ष्मणयोरर्थे
दानं कार्यं सुखोदयम् ॥२५॥

टीका—हे महामुने ! यह मेरा छोटा भाई है, और मैं बड़ा हूं, हे मुनिश्रेष्ठ ! परमप्रसन्न हुआ दो बहुएं तुझे देता हूं ।२०। सीताराम के लिये और ऊर्मिला लक्ष्मण के लिये ।२१। देवकन्या के तुल्य मेरी कन्या सीता जिसका बहादुरी मूल्य है, वह, और दूसरी ऊर्मिला देता हूं, तीनवार कहता हूं इस में संशय नहीं ।२२। हे राजन् ! रामलक्ष्मण का समावर्तन संस्कार कीजिये और पितृकार्य कीजिये, तदनन्तर विवाह सम्बन्धि कर्म कीजिये ।२३। आज मघा है, हे बड़ी भुजा वाले ! तीसरे दिन उत्तराफाल्गुनी में हे राजन् ! विवाह कीजिये ।२४। और हे राजन् ! रामलक्ष्मण से दान करवाइये, जो कि कल्याण का हेतु है ।२५।

सर्ग २९ (व० ७२) चारों के विवाह का निश्चय

मूल—तमुक्तवन्तं वैदेहं विश्वामित्रो महामुनिः । उवाच वचनं
वीरं वसिष्ठसहितो नृपम् ॥ १ ॥ अचिन्त्यान्यप्रमेयाणि कुलानि
नरपुंगव । इक्ष्वाकूणां विदेहानां नैषां तुल्योऽस्ति कश्चन
॥ २ ॥ सदृशो धर्मसम्बन्धः सदृशो रूपसंपदा । रामलक्ष्मणयो
राजन्सीत योर्मिलया सह ॥ ३ ॥ वक्तव्यं च नरश्रेष्ठ श्रूयतां वचनं
मम । भ्राता यवीयान्धर्मज्ञ एष राजा कुशध्वजः ॥ ४ ॥ अस्य
धर्मात्मनो राजन्रूपेणाप्रतिमं भुवि । सुताद्वयं नरश्रेष्ठ पत्न्यर्थं वर-

यामहे ॥ ५ ॥ भरतस्य कुमारस्य शत्रुघ्नस्य च धीमतः ॥ ६ ॥ पुत्रा दशरथस्येमे रूपयौवनशालिनः । लोकपालसमाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः ॥ ७ ॥

टीका—जब विदेह राजा ऐसा कह चुके तो वासिष्ठ सहित महामुनि विश्वामित्र उस वीर राजा से यह वचन बोले ।१। हे नरश्रेष्ठ ! इक्ष्वाकुओं के और विदेहों के कुल अचिन्त्य और अप्रमेय हैं, इन के तुल्य कोई नहीं है । २ । हे राजन् ! सीता और उर्मिला के साथ रामलक्ष्मण का धर्म सम्बन्ध अनुरूप है, और रूप की संपदा से सदृश है । ३ । पर हे नरश्रेष्ठ ! कुछ और भी कहना है, मेरा वचन सुनिये । आप का यह छोटा भाई धर्मज्ञ राजा कुशध्वज है । ४ । इस धर्मात्मा की हे राजन् ! दोनों कन्याएं जो इस भूमि में रूप से अतुल हैं, उन दोनों को हे नरश्रेष्ठ ! कुमार भरत और बुद्धिमान् शत्रुघ्न की पत्नी के अर्थ हम वरते हैं । ५, ६ । दशरथ के पुत्र रूपयौवन से शोभा वाले, सारे लोकपालों के तुल्य, देवतुल्य पराक्रम वाले हैं ।७ ।

मूल—उभयोरपि राजेन्द्र संबन्धेनानुबध्यताम् । इक्ष्वाकुकुलमव्यग्रं भवतः पुण्यकर्मणः ॥८॥ विश्वामित्रवचः श्रुत्वा वासिष्ठस्य मते तदा । जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच मुनिपुंगवौ ॥९॥ कुलं धन्यमिदं मन्ये येषां तौ मुनिपुङ्गवौ । सदृशं कुलसम्बन्धं यदाज्ञापयतः स्वयम् ॥ १० ॥ एवं भवतु भद्रं वः कुशध्वजसुते इमे । पत्न्यौ भजेतां सहितौ शत्रुघ्नभरतावुभौ ॥११॥ एकान्हा राजपुत्रीणां चतसृणां महामुने । पाणीन्गृह्णन्तु चत्वारो राजपुत्रा महाबलाः ॥ १२ ॥ तथा ब्रुवति वैदेहे जनके रघुनन्दनः । राजा दशरथो हृष्टः प्रत्युवाच महीपतिम् ॥१३॥ युवामसंख्येयगुणौ भ्रातरौ मिथिलेश्वरौ । ऋषयो राजसङ्घाश्च भवद्भ्यामभिपूजिताः ॥१४॥

टीका--तुम दोनों (भाइयों) के सम्बन्ध से हे राजन् ! इक्ष्वाकु का कुल, और आप जो पुण्यकर्मा हैं उनका कुल, पूरा सम्बन्ध वाला होजाए ।८। वसिष्ठके मत में विश्वामित्र के वचन को सुनकर जनक हाथ जोड़ मुनिवरों से बोला ।९। मैं इस कुल को धन्य समझता हूं, जिनके कुल सम्बन्ध को हे मुनिवरो ! आप स्वयं सदृश बतलाते हैं ।१०। ऐसे ही हो, आपका कल्याण हो, यह दोनों कुशध्वज की कन्याएं भरत और शत्रुघ्न की पत्नी हों ।११। एक ही दिन हे महामुने ! महाबली चारों राजपुत्र चारों राजपुत्रियों के हाथ पकड़ें । १२ । वैदेह जनक के ऐसा कहने पर रघु की संतान राजा दशरथ प्रसन्न हो राजा (जनक) से बोले । १३ ॥ आप दोनों भाई मिथिला के मालिक असंख्यात गुणों वाले हैं । आपने ऋषि और राज समूह पूजे हैं ॥ १४ ॥

मूल–स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गमिष्यामि स्वमालयम् । श्राद्धकर्माणि सर्वाणि विधास्यामीति चाब्रवीत् ॥ १५ ॥ तमापृष्ट्वा नरपतिं राजा दशरथस्तदा । मुनीन्द्रौ तौ पुरस्कृत्य जगामाशु महायशाः ॥१६॥ स गत्वा निलयं राजा श्राद्धं कृत्वा विधानतः । प्रभाते काल्यमुत्थाय चक्रे गोदानमुत्तमम् ॥ १७ ॥

टीका और कहा, आप को स्वस्ति प्राप्त हो, आप का भला हो, मैं अपने स्थान पर जाता हूं, और सारे श्राद्ध कर्म* करता हूं ॥१५॥ इस प्रकार उस राजा से आज्ञा लेकर महायशस्वी राजा दशरथ उस समय दोनों मुनियों को आगे करके शीघ्र चले गए । १६ । और घर जा विधि से श्राद्ध करके प्रभात के समय दिन खुलते ही उठकर वह राजा (पुत्रों का) उत्तम समावर्तन करते भए ॥

* विवाहोत्सव के आरम्भ में कर्तव्य ब्रह्म भोज ।

सर्ग २६ (व० ७३) विवाहविधि

मूल—यस्मिंस्तु दिवसे राजा चक्रे गोदानमुत्तमम् । तस्मिंस्तु दिवसे शूरो युधाजित्समुपेयिवान् ॥ १ ॥ पुत्रः केकयराजस्य साक्षाद्भरतमातुलः । दृष्ट्वा पृष्ट्वा च कुशलं राजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ केकयाधिपती राजा स्नेहात्कुशलमब्रवीत् । येषां कुशलकामोऽसि तेषां संप्रत्यनामयम् ॥ ३ ॥ स्वस्रीयं मम राजेन्द्र द्रष्टुकामो महापतिः । तदर्थमुपयातोऽहमयोध्यां रघुनन्दन ॥ ४ ॥

टीका—जिस दिन राजा ने उत्तम समावर्तन किया, उसी दिन केकय राजा का पुत्र, भरत का साक्षात् मामा सूरमा युधाजित् वहां आया, और मिलकर तथा कुशल पूछकर राजा से यह बचन बोला ॥ १, २ ॥ केकयदेश के अधिपति राजा ने स्नेह से आप के प्रति कुशल कहा है, जिनका आप कुशल चाहते हैं, उनका इस समय कुशल है । ३ । और हे राजेन्द्र राजा! (केकय) मेरे भानजे (भरत) को देखना चाहता है, इसलिए हे रघुनन्दन! मैं पहले अयोध्या में आया ॥ ४॥

मूल—श्रुत्वा त्वहमयोध्यायां विवाहार्थं तवात्मजान् । मिथिलामुपयातांस्तु त्वया सह महीपते ॥ ५ ॥ त्वरयाभ्युपयातोऽहं द्रष्टुकामः स्वसुः सुतम् । अथ राजा दशरथः प्रियातिथिमुपस्थितम् ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा परमसत्कारैः पूजनार्हमपूजयत् । ततस्तामुषितो रात्रिं सह पुत्रैर्महात्मभिः ॥ ७ ॥ प्रभाते पुनरुत्थाय कृत्वा कर्माणि कर्मवित् । ऋषींस्तदा पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत् ॥ ८ ॥

टीका—फिर अयोध्या में यह सुन कर कि आप के पुत्र हे राजन् ! आप के सहित मिथिला में गए हैं । ५ । भानजे को देखने की कामना से तुरंत यहां आया हूं । अब राजा

दशरथ प्राप्त हुए अपनी प्यारी के अतिथि ।६। पूजा के योग्य को परमसत्कारों से पूजते भए। तब महात्मा पुत्रों के सहित उस रात आनन्द से वास किया ॥ ७ ॥ प्रभात के समय फिर उठ कर वह कर्म का जानने वाला सारे कर्म करके ऋषियों को आगे कर यज्ञ स्थान में आया ॥ ८ ॥

मूल—युक्ते मुहूर्ते विजये सर्वाभरणभूषितैः । भ्रातृभिः सहितो रामः कृतकौतुकमङ्गलः ॥ ९ ॥ पितुः समीपमाश्रित्य तस्थौ भ्रातृप्रावृतः । वसिष्ठो भगवानेत्य वैदेहमिदमब्रवीत ॥ १० ॥ राजा दशरथो राजन्कृतकौतुकमङ्गलैः । पुत्रैर्नरवरश्रेष्ठो दातारमभिकाङ्क्षते ॥ ११ ॥ इत्युक्तः परमोदारो वसिष्ठेन महात्मना । प्रत्युवाच महातेजा वाक्यं परमधर्मवित् ॥ १२ ॥

टीका—और राम उचित विजय मुहुर्त में सारे भूषणों से भूषित भाइयों समेत कौतुक मङ्गल करके । ९ । भाइयों समेत पिता के समीप आखड़ा हुआ, अब वसिष्ठ विदेह राजा के पास जाकर यह बोले ॥ १० ॥ हे नरवरश्रेष्ठ हे राजन्! राजा दशरथ कौतुक मंगल कर चुके हुए पुत्रों सहित (प्रवेश के लिये) दाता [आप] की आज्ञा चाहता है ॥ ११ ॥ महात्मा वसिष्ठ ने जब उन जनक परम उदार को यह कहा, तो वह परम धर्म का जानने वाला महातेजस्वी उत्तर देता भया ॥ १२ ॥

मूल—कः स्थितः प्रतिहारो मे कस्याज्ञां संप्रतीक्षते । स्वगृहे को विचारोऽस्ति यथा राज्यमिदं तव ॥ १३ ॥ कृतकौतुकसर्वस्वा वेदिमूलमुपागताः । मम कन्या मुनिश्रेष्ठ दीप्ता वह्नेरिवार्चिषः ॥ १४ ॥ सज्जोऽहं त्वत्प्रतीक्षोऽस्मि वेद्यामस्यां प्रतिष्ठितः। अविघ्नं क्रियतां सर्वं किमर्थं हि विलम्ब्यते ॥ १५ ॥ तद्वाक्यं

जनकेनोक्तं श्रुत्वा दशरथस्तथा । प्रवेशयामास सुतान्सर्वानृषि-
गणानपि ॥ १६ ॥ ततो राजा विदेहानां वसिष्ठमिदमब्रवीत् ।
कारयस्व ऋषे सर्वामृषिभिः सह धार्मिक ॥ १७ ॥

टीका—कौन मेरा द्वारपाल खड़ा है, किस की आज्ञा की प्रतीक्षा
(उडीक, इन्तज़ारी) करते हैं, अपने घर में क्या विचार है,
जैसा वह राज्य आपका है वैसा यह भी है ॥ १३ ॥ विवाह
का सारा कौतुक (मङ्गल कर्म) करके हे मुनिवर ! अग्नि की
चमकती हुई किरणों की तरह मेरी कन्याएं वेदि के पास आई
हुई हैं ॥ १४ ॥ सो मैं तय्यार हो इस वेदि में खड़ा आपकी ही
प्रतीक्षा कर रहा हूं, अब महाराज बिना विलम्ब के कार्य करें,
किस लिए (द्वार पर ठहरकर) देर लगा रहे हैं ॥ १५ ॥ जनक
के कहे हुए वाक्य को सुनकर दशरथ ने पुत्रों को प्रवेश कराया,
और उन सारे ऋषि गणों को भी ॥ १६ ॥ तब विदेहों का
राजा वसिष्ठ से यह बोला, हे धार्मिक ऋषि! इन ऋषियों के साथ
सारा कर्म कराइये ॥ १७ ॥

मूल—तथेत्युक्त्वा तु जनकं वसिष्ठो भगवानृषिः। विश्वामित्रं पुर-
स्कृत्य शतानन्दं च धार्मिकम् ॥ १८ ॥ प्रपामध्ये तु विधिवद्वेदिं
कृत्वा महातपः । अलंचकार तां वेदिं गन्धपुष्पैः समन्ततः॥ १९ ॥
सुवर्णपालिकाभिश्च चित्रकुम्भैश्च सांकुरैः । अङ्कुराढ्यैः शरावैश्च
धूपपात्रैः सधूपकैः ॥२०॥ शङ्खपात्रैः स्रुवैः स्रुग्भिः पात्रैरर्घ्यादि-
पूरितैः । लाजपूर्णैश्चपात्रीभिरक्षतैरपि संस्कृतैः ॥ २१ ॥

टीका—तब महातपस्वी भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने जनक को "तथास्तु"
कह कर, विश्वामित्र को और धार्मिक शतानन्द को आगे
करके । १८ । मण्डप के मध्य में विधिपूर्वक वेदि बनाकर उस वेदि

को चारों ओर गन्ध पुष्पों मे सजाया । १९ । सुन्दरी रेखाओं मे और अंकुरों से युक्त विचित्र गमलों मे तथा अंकुरों से भरे हुए प्यालों से और धूप युक्त धूप के पात्रों मे । २० । शंखों से स्त्रुवों से स्रुचों से और अर्घ्यजल से पूरित पात्रों से, लाजा (फुल्लियों) से पूर्ण पात्रों से और संस्कार किये हुए अक्षतों से (सजा दिया) । २१ ।

मूल—दर्भैः समैः समास्तीर्य विधिवन्मन्त्रपूर्वकम् । अग्निमाधायवेद्यां तु विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ॥ २२ ॥ जुहावाग्नौ महातेजा वसिष्ठो भगवानृषिः । ततः सीतां समानीय सर्वाभरणभूषिताम् ॥ २३ ॥ समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखे तदा । अब्रवीज्जनको राजा कौशल्यानन्दवर्धनम् ॥२४॥इयं सीता मम सुता सह धर्मचरी तव । प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना॥२५॥पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा । इत्युक्त्वा प्राक्षिपद्राजा मन्त्रपूतं जलंतदा २६

टीका—एक तुल्य कुशाओं को यथाविधि बिछाकर मन्त्र पूर्वक अग्नि को वेदि में स्थापन करके महातेजस्वी भगवान् वसिष्ठ ऋषि अग्नि में होम करते भए, तब सारे भूषणों से भूषित सीता को लाकर ।२२, २३ । अग्नि के समक्ष राम के सम्मुख स्थापन करके राजा जनक कौशल्या के आनंद बढ़ाने वाले (=राम) से बोला । २४ । यह सीता मेरी कन्या तेरी सहधर्मचारिणी (साथ धर्मकार्य करनेवाली) हो, इसको स्वीकार करो, तुम्हारा कल्याण हो, हाथ को हाथ से पकड़ । २५ । पतिव्रता होकर यह महाभागा छाया की तरह सदा तेरी अनुगत रहेगी, यह कह कर राजा ने मन्त्र से पवित्र किया हुआ जल छोड़ दिया ॥ २६ ॥

मूल—साधु साध्विति देवानामृषीणां वदतां तदा । देवदुन्दुभिनिर्घोषः पुष्पवर्षो महानभूत् ॥ २७ ॥ एवं दत्त्वा सुतां सीतां

मन्त्रोदकपुरस्कृताम् । अब्रवीज्जनको राजा हर्षेणाभिपरिप्लुतः॥२८॥
लक्ष्मणागच्छ भद्रं ते ऊर्मिलामुद्यतां मया । प्रतीच्छ पाणिं गृणीष्व
मा भूत्कालस्य पर्ययः॥२९॥तमेवमुक्त्वा जनको भरतं चाभ्यभाषत।
गृहाण पाणिं माण्डव्याः पाणिना रघुनन्दनः ॥३०॥ शत्रुघ्नं चापि
धर्मात्मा अब्रवीन्मिथलेश्वरः । श्रुतकीर्तेमहाबाहो पाणिं गृणीष्व
पाणिना ॥३१॥ सर्वे भवन्तः सौम्याश्च सर्वे सुचरितव्रताः ।
पत्नीभिः सन्तु काकुत्स्था मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥ ३१ ॥

टीका—देवताओं और ऋषियों ने साधु २ कहा, देवताओं की दुन्दुभियें बजीं, और फूलों की बहुत बड़ी वर्षा हुई ।२७। इसप्रकार मंत्र और जल से आदर के साथ सीता का दान करके राजा जनक हर्ष से भरा हुआ फिर बोला ।२८। लक्ष्मण आओ, तुम्हारा कल्याण हो, ऊर्मिला को स्वीकार कर, इसका हाथ पकड़, समय का विलम्ब मत हो ।२९। जनक उसको ऐसा कह कर फिर भरत से बोला हे रघुनन्दन ! माण्डवी के हाथ को हाथ से ग्रहण कर ।३०। शत्रुघ्न को भी धर्मात्मा जनक बोला, हे महाबाहो श्रुतकीर्ति के हाथ को हाथ से ग्रहणकर ।३१। सारे आप सौम्य हैं, सारे ब्रह्मचर्य को पूरी तरह पालन किये हुए हैं, हे ककुत्स्थ वंशियो ! तुम पत्नियों के सहित होवो, समय का विलम्ब नहो।

मूल—जनकस्य वचः श्रुत्वा पाणीन्पाणिभिरस्पृशन् । चत्वारस्ते
चतसृणां वसिष्ठस्य मते स्थिताः ॥ ३३ ॥ अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा
वेदिं राजानमेव च । ऋषींश्चापि महात्मनः सहभार्या रघुद्वहाः।३४।
यथोक्तेन ततश्चक्रुर्विवाहं विधिपूर्वकम् । त्रिरग्निं ते परिक्रम्य ऊहु-
र्भार्या महौजसः ॥३५॥ अथोपकार्यां जग्मुस्ते सभार्या रघुनन्दनाः।
राजाप्यनुययौ पश्यन्सर्षिसङ्घः सबान्धवः ॥ ३६ ॥

टीका—जनक के वचन को सुनकर वसिष्ठ की आज्ञा में वह चारों अपने हाथों से उन चारों के हाथों को स्पर्श करते भए। ३३। अग्नि की, वेदि की, राजा की और ऋषियों की प्रदक्षिणा करके वह रघुवर महात्मा पत्नियों समेत।३४। शास्त्रोक्त प्रकार से विधि पूर्वक विवाह करते भए। तीन बार वह महापराक्रमी अग्नि की परिक्रमा करके स्त्रियों को ब्याहते भए। ३५। तब वह रघुनन्दन पत्नियों समेत अपनी छावनी को गये, राजा (जनक) भी ऋषि समूह के सहित और बान्धवों के सहित इस कल्याण सम्बन्ध को देखता हुआ उनके पीछे गया॥ ३६॥

सर्ग २७ (व० ७४) परशुराम का मिलना

मूल—अथ रात्र्यां व्यतीतायां विश्वामित्रो महामुनिः। आपृष्ट्वा तौ च राजानौ जगामोत्तरपर्वतम्॥ १॥ विश्वामित्रे गते राजा वैदेहं मिथिलाधिपम्। आपृष्ट्वैव जगामाशु राजा दशरथः पुरीम्।२॥ अथ राजा विदेहानां ददौ कन्याधनं बहु। दत्त्वा बहुविधं राजा समनुज्ञाप्य पार्थिवम्॥३॥ प्रविवेश स्वनिलयं मिथिलां मिथिलेश्वरः। राजाप्ययोध्याधिपतिः सह पुत्रैर्महात्मभिः॥ ४॥

टीका—अब रात के बीतने पर महामुनि विश्वामित्र उन दोनों राजाओं (जनक दशरथ) से आज्ञा लेकर उत्तर पर्वत की ओर चला गया। १। विश्वामित्र के चले जाने पर मिथिला के स्वामी जनक से आज्ञा लेकर राजा दशरथ अपनी पुरी की ओर चला।२। तब विदेहों के राजा ने बहुत सा कन्याधन (दहेज)दिया, अनेक प्रकार का धन (सोना चान्दी हाथी घोड़ा नौकर चाकर) देकर और दशरथ से आज्ञा लेकर। ३। मिथिला का स्वामी मिथिला में अपने घर प्रविष्ट हुआ,और अयोध्यापति राजा अपने महानुभाव पुत्रों के साथ।४।

मूल—ऋषीन्सर्वान्पुरस्कृत्य जगाम स बलान्वितः । ददर्श भीमसंकाशं जटामण्डलधारिणम् ॥ ५ ॥ भार्गवं जामदग्न्येयं राजा राजविमर्दनम् । ज्वलन्तमिव तेजोभिर्दुर्निरीक्ष्यं पृथग्जनैः ॥ ६॥ स्कन्धे चासज्य परशुं धनुर्विद्युद्गणोपमम् । प्रगृह्य शरमुग्रं च त्रिपुरघ्नं यथा शिवम् ॥ ७ ॥ तं दृष्ट्वा भीमसंकाशं ज्वलन्तमिव पावकम् । वसिष्ठप्रमुखा विप्रा जपहोमपरायणाः ॥ ८ ॥ संगता मुनयः सर्वे संजजल्पुरथोमिथः । कच्चित्पितृवधामर्षी क्षत्रं नोत्सादयिष्यति ॥९॥ पूर्वं क्षत्र वधं कृत्वा गतमन्युर्गतज्वरः क्षत्रस्योत्सादनं भूयो न खल्वस्य चिकीर्षितम् ॥१०॥ एवमुक्त्वार्घ्यमादाय भार्गवं भीमदर्शनम् । ऋषयो रामरामेति मधुरं वाक्यमब्रुवन् ॥११॥ प्रतिगृह्य तु तां पूजामृषीदत्तां प्रतापवान् । रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्योऽभ्यभाषत ॥ १२ ॥

टीका—ऋषियों को आगे करके सेना समेत जब आगे गया, तो राजा ने भयङ्कर दर्शनवाले, जटामण्डल धारी । ५ । राजाओं को कुचलने वाले जमदग्नि के पुत्र भार्गव (भृगुवंशी, परशुराम) को देखा, जो मानों तेजों से जाज्वल्यमान है, और साधारण पुरुष जिस की ओर आंख उठाकर देख नहीं सक्ते । ६ । बिजली की रेखा के तुल्य (चमकते हुए) कुल्हाड़े और धनुष को कन्धे पर डाले हुए है और हाथ में तीर लेकर त्रिपुर के मारने वाले शिव की तरह स्थित है । ७ । जलते अग्नि के तुल्य उस भीममूर्त्ति को देखकर वसिष्ठ आदि ब्राह्मण जो स्वाध्याय और होमपरायण हैं । ८ । वह सारे मुनि मिलकर आपस में कहने लगे, क्या पितृवध का बदला चुकाता हुआ क्षत्र बल को तो नहीं उखाड़ेगा । ९ । पहले क्षत्र वध करके इसका क्रोध और सन्ताप दूर होचुका था । फिर क्षत्र का उखाड़ना इसको अभीष्ट नहीं होना चाहिए । १० ।

ऐसा कहकर अर्घ्य लेकर भयङ्कर दर्शनवाले परशुराम को ऋषि-जन हे राम ! हे राम ! ऐसा मधुर वचन बोले ।११। ऋषियों से दी हुई उस पूजा को स्वीकार करके वह प्रतापी जमदग्नि का राम दशरथ के राम से बोला । १२ ।

सर्ग २८ (व० ७५) परशुराम पर विजय

मूल—राम दाशरथे राम वीर्यं ते श्रूयतेऽद्भुतम् । धनुषो भेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम् ॥१॥ तदद्भुतमचिन्त्यं च भेदनं धनुषस्तथा तच्छ्रुत्वाहमनुप्राप्तो धनुर्गृह्य परं शुभम् ॥ २ ॥ तदिदं घोरसंकाशं जामदग्न्यं महद्धनुः । पूरयस्व शरेणैव स्वबलं दर्शयस्व च ॥ ३ ॥ तदहं ते बलं दृष्ट्वा धनुषोऽप्यस्य पूरणे । द्वंद्वयुद्धं प्रदास्यामि वीर्यश्लाघ्यस्य राघव ॥४॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा दशरथस्तदा । विषण्णवदनो दीनः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥

टीका—राम हे दशरथ के राम तेरा बल बड़ा अद्भुत सुना जाता है, धनुष का तोड़ना भी मैंने सारा सुना है ।१। धनुष का तोड़ना तूने बड़ा अद्भुत और अचिन्त्य * काम किया है, यह सुनकर मैं एक दूसरा शुभ धनुष लेकर आया हूं । २। सो यह भयंकर प्रतीत होने वाला बड़ा भारी धनुष जो जमदग्नि (अपने पिता) से मेरे पास आया है, इसको तीर से पूर्ण कर, और अपना बल दिखला । ३ । इस धनुष के पूरने में तेरे बल को देख कर हे राघव ! बल में सराहनीय तुझको मैं द्वन्द्वयुद्ध †

* अचिन्त्य जो दूसरों के ख्याल में भी नहीं आसकता है।

† अभिप्राय यह है, कि जिस धनुष को मैं आसानी से चाढ़या करता हूं, यदि तू इसे न चढ़ा सका, तो फिर मैंने तेरे साथ क्या लड़ना है, इतने थोड़े बलवाला जो इस धनुष को न चढा सके, इस योग्य हो नहीं, कि मैं उसे द्वंद्वयुद्ध दूं । हां यदि तूने चढ़ा

दूंगा । ४ । उसके उस वचन को सुनकर राजा दशरथ खिन्न-मुख हुआ हाथ जोड़कर यह वचन बोला । ५ ।

मूल—क्षत्ररोषात्प्रशान्तस्त्वं ब्राह्मणश्च महातपाः । बालानां मम पुत्राणामभयं दातुमर्हसि ॥ ६ ॥ ब्रुवत्येवं दशरथे जामदग्न्यः प्रतापवान् । अनादृत्य तु तद्वाक्यं राममेवाभ्यभाषत ॥ ७ ॥ इदं च वैष्णवं राम धनुः परपुरंजयम् । ऋचीके भार्गवे प्रादाद्विष्णुः संन्यासमुत्तमम् ॥ ८॥ ऋचीकस्तु महातेजाः पुत्रस्याप्रतिकर्मणः । पितुर्मम ददौ दिव्यं जमदग्नेर्महात्मनः ॥ ९ ॥ न्यस्तशस्त्रे पितरि मे तपोबलसमन्विते । अर्जुनो विदधे मृत्युं प्राकृतां बुद्धिमास्थितः॥१०

टीका—क्षत्रियों पर क्रोध से अब तू शान्त हो चुका है, और महायशस्वी ब्राह्मण है, मेरे छोटे पुत्रों को तू अभय देने योग्य है । दशरथ यह कहता रहा, पर प्रतापी परशुराम उसकी बात की परवाह न करके राम से ही बोला । ६, ७ । यह वैष्णव धनुष हे राम ! शत्रुओं के किलों का जीतने वाला विष्णु ने भृगु के पुत्र ऋचीक के पास रखा था । ८ । महातेजस्वी ऋचीक ने यह दिव्य धनुष अपने पुत्र मेरे पिता महात्मा जमदग्नि को दिया, जिसके मुकाबिल में कोई खड़ा नहीं हो सकता था । ९ । तपोबल से युक्त मेरे पिता ने जब शस्त्र छोड़ दिये थे तो नीच बुद्धि का आश्रय ले कर अर्जुन (सहस्त्र बाहु) ने उसको मार डाला । १० ।

मूल—वधमप्रतिरूपं तु पितुः श्रुत्वा सुदारुणम् । क्षत्रमुत्सादयं रोषाज्जातं जातमनेकशः ॥ ११ ॥ पृथिवीं चाखिलां प्राप्य

लिया, तो तुझ द्वंद्वयुद्ध दूंगा । द्वंद्वयुद्ध=दो का आमने सामने युद्ध जिसमें और कोई किसी की सहायता नहीं दे सकता ।

कश्यपाय महात्मने। यज्ञस्यान्तेऽददं राम दक्षिणां पुण्यकर्मणे ॥१२
दत्त्वा महेन्द्रनिलयस्तपोबलसमन्वितः। श्रुत्वा तु धनुषो भेदं
ततोऽहं द्रुतमागतः ॥ १३ ॥ तदिदं वैष्णवं राम पितृपैतामहं
महत्। क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गृह्णीष्व धनुरुत्तमम् ॥ १४ ॥ योजय-
स्व धनुः श्रेष्ठे शरं परपुरंजयम्। यदि शक्तोऽसि काकुत्स्थ
द्वंद्वं दास्यामि ते ततः ॥ १५ ॥

टीका—पिता का बड़ा दारुण अयोग्य वध सुनकर क्रोध से मैंने अनेक बार उत्पन्न हुए क्षत्रबल को उखाड़ा। ११। और सारी पृथिवी जीतकर हे राम! यज्ञ (विश्वजित् यज्ञ) की समाप्ति में पुण्यकर्मा महात्मा कश्यप को देदी। १२। दे करके तपोबल से युक्त मैं महेन्द्र पर्वत पर रहने लगा, अब धनुष का तोड़ना सुनकर जल्दी वहां से आरहा हूं। १३। सो यह वैष्णव धनुष हे राम! जो पिता दादा से मेरे पास पहुंचा है इस उत्तम धनुष को क्षत्र धर्म का आदर करता हुआ तू ग्रहण कर। १४। और इस श्रेष्ठ धनुष में शत्रुओं के किलों का जीतनेवाला, तीर जोड़, यदि तू ऐसा करने में समर्थ है, तब हे राम! मैं तुझे द्वन्द्वयुद्ध दूंगा। १५।

सर्ग २९ (व० ७६) धनुष खींचकर तीर छोड़ना

मूल—श्रुत्वा तु जामदग्न्यस्य वाक्यं दाशरथिस्तदा। गौरवाद्य-
न्त्रितकथः पितू राममथाब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रुतवानस्मि यत्कर्म कृत-
वानसि भार्गव। अनुरुध्यामहे ब्रह्मन्पितुरानृण्यमास्थितः ॥ २ ॥
वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव। अवजानासि मे तेजः
पश्य मेऽद्यपराक्रमम् ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वा राघवः क्रुद्धो भार्गवस्य
वरायुधम्। शरं च प्रतिजग्राह हस्ताल्लघुपराक्रमः ॥ ४ ॥

टीका—तब दशरथ का पुत्र जमदग्नि के पुत्र के वाक्य को सुन कर पिता के गौरव से बातों में संकोच करके राम से इतना बोला ॥ १ ॥ हे भार्गव ! अपने पिता के ऋण को चुकाते हुए (पिता के मारने वालों से बदला लेते हुए) आपने जो कर्म (क्षत्रवध) किया है, वह मैंने सुना है, हे ब्रह्मन् ! हम उसे स्वीकार करते हैं (सूरमे को अवश्य वैर का बदला लेना ही चाहियें) ॥ २ ॥ पर हे भार्गव! क्षत्र धर्म से युक्त मेरे तेज को जो आप बलहीन अशक्त सा मान कर अपमान करते हैं, (यह मैं सहने को तैयार नहीं हूं) सो आज मेरे पराक्रम को देखिये ॥ ३ ॥ यह कहकर क्रुद्ध * हो तेज पराक्रम वाले राम ने परशुराम के हाथ से धनुष और तीर लेलिया ॥ ४ ॥

मूल—आरोप्य स धनू रामः शरं सज्यं चकार ह । जामदग्न्यं ततो रामं रामः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ ५ ॥ "ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च । तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम्" ॥ ६ ॥ जडीकृते तदालोके रामे वरधनुर्धरे । निर्वीर्यो जामदग्न्योऽसौ रामो राममुदैक्षत ॥ ७ ॥ तेजोभिर्गतवीर्यत्वा-ज्जामदग्न्यो जडीकृतः । रामं कमल पत्राक्षं मन्दमन्दमुवाच ह ॥८॥

टीका—राम ने धनुष को खींचा, और उसके चिल्ले में तीर को जोड़ दिया, और क्रुद्ध हुआ जमदग्नि के पुत्र राम से यह वाक्य बोला ॥ ५ ॥ "आप ब्राह्मण हैं, मेरे पूज्य हैं, इस हेतु से और विश्वामित्र के सम्बन्ध से † हे राम ! तेरे प्राण हरनेवाला तीर

* रामचन्द्र बड़े गंभीर और क्षमाशील थे, पर अपने तेज का अपमान होने पर क्रोध उत्पन्न होना, विशेषतः क्षत्रिय का स्वभाविक धर्म है । † परशुराम का पिता जमदग्नि विश्वामित्र की बहिन सत्यवती के पेट से था ॥

नहीं छोड़ सक्ता हूं" ॥ ६ ॥ राम उस चुने हुए धनुष को धारे हुए हैं, लोग हैरान होकर निश्चल खड़े हैं, और जमदग्नि का पुत्र राम निर्वीर्यसा होकर राम को देख रहा है ॥ ७ ॥ तेज से वीर्य्य (वीरता) दब जाने से परशुराम हैरान हो निश्चल खड़ा हुआ कमलनेत्र राम से धीरे २ बोला ॥ ८ ॥

मूल—शरमप्रतिमं राम मोक्तुमर्हसि सुव्रत । शरमोक्षे गमिष्यामि महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ॥ ९ ॥ तथा ब्रुवीत रामे तु जामदग्न्ये प्रतापवान् । रामो दाशरथिः श्रीमांश्चिक्षेप शरमुत्तमम् ॥ १० ॥ रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्यः प्रपूजितः । ततः प्रदक्षिणीकृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः ॥ ११ ॥

टीका—हे सुव्रत राम ! इस अतुल तीर को आप छोड़ने योग्य हैं, तीर के छोड़ने पर मैं महेन्द्र पर्वत को चला जाऊंगा ॥ ९ ॥ जमदग्नि के पुत्र राम ने जब ऐसा कहा, तो प्रतापी श्रीमान् दशरथ के पुत्र राम ने उत्तम तीर छोड़ा ॥ १० ॥ तब प्रभु जामदग्न्य राम दाशरथि राम की प्रशंसा करके और उसकी प्रदक्षिणा करके अपने स्थान को चला गया ॥ ११ ॥

सर्ग ३० [व ० ७७] दशरथ का अयोध्या पहुंचना

मूल—अभिवाद्य ततो रामो वसिष्ठप्रमुखानृषीन् । पितरं विह्वलं दृष्ट्वा प्रोवाच रघुनन्दनः ॥ १ ॥ जामदग्न्यो गतो रामः प्रयातु चतुरङ्गिणी । अयोध्याभिमुखी सेना त्वया नाथेन पालिता ॥२॥ गतो राम इति श्रुत्वा हृष्टः प्रमुदितो नृपः । पुनर्जातं तदा मेने पुत्रमात्मानमेव च ॥ ३ ॥ चोदयामास तां सेनां जगामाशु ततः पुरीम् । पताकाध्वजिनीं रम्यां तूर्योद्घुष्टनिनादिताम् ॥ ४ ॥

टीका—तब राम वसिष्ठ आदि ऋषियों को प्रणाम करके पिता

को घबराया हुआ देखकर बोला ॥ १ ॥ जामदग्न्य राम चला गया है, अब आप नाथ से रक्षा की हुई चतुरंगिणी सेना अयोध्या की ओर चले ॥ २ ॥ "राम चला गया" यह सुन कर राजा हर्षित हुआ और प्रमुदित हुआ, और तब अपने पुत्र को और अपने आप को फिर जन्मा हुआ मानता भया ॥ ३ ॥ उस सेना को चलने की आज्ञा दी, और जल्दी पुरी को चला गया जो झंडियों और झंडों से शोभायमान है, बाजों की ध्वनियों से गूंज रही है ॥ ४ ॥

मूल—सिक्तराजपथां रम्यां प्रकीर्णकुसुमोत्कराम्। राजप्रवेशसुमुखैः पौरैर्मङ्गलवादिभिः ॥ ५ ॥ संपूर्णां प्राविशद्राजा जनौघैः समलंकृताम्। पौरैः प्रत्युद्गतो दूरं द्विजैश्च पुरवासिभिः ॥ ६ ॥ पुत्रैरनुगतः श्रीमाञ्श्रीमद्भिश्च महायशाः। प्रविवेश गृहं राजा हिमवत्सदृशं प्रियम् ॥ ७ ॥ ततः सीतां महाभागामूर्मिलां च यशस्विनीम्। कुशध्वजसुते चोभे जगृहुर्नृपयोषितः ॥ ८ ॥

टीका—जिस के राजपथ छिड़के गए हैं, और फूलों का बिखेर जगह जगह पर है, राजा के प्रवेश से जिन के चहरे खिले हुए हैं और मंगल बोल रहे हैं, ऐसे पुरवासियों से भरी हुई और जमघटों से शोभायमान पुरी में प्रविष्ट हुआ। पुर के लोग और पुरवासी ब्राह्मण दूरतक जिस को आगे लेने के लिये गए।५,६। और श्रीमान् पुत्र जिस के पीछे हैं, वह महायशस्वी श्रीमान् राजा फिर हिमालय के तुल्य घर में प्रविष्ट हुआ ॥ ७ ॥ इसके पीछे राजपत्नियें महाभागा सीता को और यशोमति ऊर्मिला को और कुशध्वज की दोनों कन्याओं को ग्रहण करती भई।८।

मूल—अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तदा। रेमिरे मुदिताः

सर्वा भर्तृभिःसहिता रहः ॥९॥ कुमाराश्च महात्मानो रूपेणाप्रतिमा भुवि । कृतदाराः कृतास्त्राश्च सधनाः ससुहृज्जनाः ॥१०॥ शुश्रूषमाणाः पितरं वर्तयन्ति नरर्षभाः । कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा दशरथः सुतम् ॥११॥ भरतं कैकयीपुत्र मब्रवीद्रघुनन्दनः । अयं केकयराजस्य पुत्रो वसति पुत्रक ॥ १२ ॥

टीका—अभिवादन (नमस्कार) के योग्यों को अभिवादन कर के वह सब राजकन्याएं अपने २ पतिओं के साथ अलग २ आनन्द मनाती भई । ९ । महात्मा कुमार जो पृथिवी में अपने बल से अनुपम अस्त्रविद्या में निपुण हैं धन से युक्त सुहृदजनों समेत हैं, ।१०। वह नरश्रेष्ठ ! पिता की सेवा में तत्पर होगए । एक वार रघुनन्दन राजा दशरथ ने अपने पुत्र । ११ । कैकेयी के पुत्र भरत से कहा । हे बेटा ! यह केकयराज का पुत्र, हे वीर तेरा मामा युधाजित् तेरे लेने को आया हुआ है । दशरथ के इस वचन को सुनकर कैकेयीसुत भरत ॥११, १२, १३॥

मूल—त्वां नेतुमागतो वीरो युधाजिन्मातुलस्तव । श्रुत्वा दशरथस्यैतद्भरतः कैकयीसुतः ॥१३॥ गमनायाभिचक्राम शत्रुघ्नसहितस्तदा । आपृच्छय पितरं शूरो रामं चाक्लिष्टकारिणम् ॥४॥ गते च भरते रामो लक्ष्मणश्च महाबलः । पितरं देवसंकाशं पूजयामासतुस्तदा ॥१५॥ पितुराज्ञां पुरस्कृत्य पौरकार्याणि सर्वशः । चकार रामः सर्वाणि प्रियाणिच हितानि च ॥ १६ ॥

टीका--पिता से और किसी को भी क्लेश न देने वाले राम (और माताओं) से आज्ञा मांगकर यह सूरमा नरश्रेष्ठ शत्रुघ्न सहित चला गया ॥ १४ ॥ भरत के चले जाने पर राम और महाबली लक्ष्मण देव तुल्य पिता की पूजा में तत्पर हुए ॥१५॥

पिता की आज्ञा को आगे करके धर्मात्मा राम पुर के सारे कार्यों को करने लगा, जो उनके प्यारे और हित के हैं ॥ १६ ॥

मूल-मातृभ्यो मातृकार्याणि कृत्वा परमयन्त्रितः । गुरूणां गुरुकार्याणि काले कालेऽन्ववैक्षत ॥ १७ ॥ एवं दशरथः प्रीतो ब्राह्मणा नैगमास्तथा । रामस्य शीलवृत्तेन सर्वे विषयवासिनः ॥ १८ ॥ रामश्च सीतया सार्धं विजहार बहूनृतून् । मनस्वी तद्गतमनास्तस्या हृदि समर्पितः ॥ १९ ॥ प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति । गुणाद्रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोऽभिवर्धते ॥ २० ॥ तस्याश्च भर्ता द्विगुणं हृदय परिवर्तते । अन्तर्गमपिव्यक्तमाख्याति हृदयं हृदा ॥ २१ ॥

टीका-(बड़ों के विषय में) बड़े संकोच वाला होकर माताओं के लिये मातृ कार्यों को करके गुरुओं के लिये समय २ पर गुरु कार्यों का देखता था ॥ १७ ॥ इस प्रकार राम के शील और वर्ताव मे पिता दशरथ, और देशवासी ब्राह्मण और सौदागर बड़े प्रसन्न थे ॥ १८ ॥ मनस्वी राम ने सीता को मन दिये हुए, और सीता के हृदय में सदा समर्पित हुए सीता के साथ बहुत से ऋतु विहार किया ॥ १९ ॥ राम को सीता प्यारी थी, जिसका पितरों ने उसकी पत्नी बनाया है, वह उसके अन्दर के गुणों से और रूपगुण से राम की प्रीति अधिकाधिक बढ़ाती गई ॥ २० ० और उसके हृदय में भर्ता उससे भी दुगना घूमता था । अन्तर्गत भाव को भी हृदय हृदय * से स्पष्ट कर देता है ॥ २१ ॥

वालकाण्ड समाप्त हुआ

---

* हृदय हृदय का साक्षी होता है ।

अयोध्या काण्ड

सर्ग १ (व० १) राम के राजा होने के योग्य गुणकर्मस्वभाव

मूल—गच्छता मातुलकुलं भरतेन तदाऽनघः। शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नो नीतः प्रीतिपुरस्कृतः ॥ १ ॥ स तत्र न्यवसद्भ्रात्रा सह सत्कार-सत्कृतः। मातुलेनाश्वपतिना पुत्रस्नेहेन लालितः ॥ २ ॥ तत्रापि निवसन्तौ तौ तर्प्यमाणौ च कामतः। भ्रातरौ स्मरतां वीरौ वृद्धं दशरथं नृपम् ॥३॥ राजापि तौ महातेजाः सस्मार प्रोषितौ सुतौ। सर्व एव तु तस्येष्टाश्चत्वारः पुरुषर्षभाः॥४॥स्वशरीराद्विनिर्वृत्ताश्च-त्वार इव बाहवः। तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः ॥५॥

टीका—मामा के घर को जाता हुआ भरत शत्रुओं पर सदा विजय पाने वाले निष्पाप शत्रुघ्न को प्रीतिपूर्वक साथ ले गया ॥ १ ॥ वह वहां भाई के साथ आदरमान के साथ रहा, मामा अश्वपति उन को पुत्र स्नेह से लालन करता था ॥ २ ॥ यद्यपि वहां रहते हुए उन दोनों भाइयों की सारी इच्छाएं पूरी की जाती थीं, पर वह वृद्ध राजा दशरथ को कभी भूलते नहीं थे ॥ ३ ॥ उधर महातेजस्वी राजा भी परदेश गए हुए उन दोनों पुत्रों को स्मरण किया करता था। चारों ही पुत्र उसको प्यारे थे ॥ ४ ॥ जैसे अपने शरीर से निकली हुई चार भुजायें हों। उन में से भी महा-तेजस्वी राम पिता को अधिक प्रीतिदायक था ॥ ५ ॥

मूल—स हि रूपोपपन्नश्च वीर्यवाननसूयकः।भूमावनुपमः सूनुर्गुणैर्दश-रथोपमः ॥६॥ स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते। उच्य-मानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥७॥ कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति। न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥८॥ शील-वृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः। कथयन्नास्त वै नित्यमस्त्रयोग्यान्त-

रेष्वपि ॥९॥ बुद्धिमान्मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः । वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः ॥१०॥ न चानृतकथो विद्वान्वृद्धानां प्रतिपूजकः । अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरज्जते ॥

टीका—क्योंकि वह रूप से युक्त, शक्तिसम्पन्न, असूया से रहित गुणों में दशरथ के बराबर, पृथिवी भर में अनुपम पुत्र था ॥६॥ वह शान्तात्मा सदा नर्मी से बात करता था और कठोर सुनकर भी कठोर नहीं बोलता था ॥ ७ ॥ ऐसा बलवान् आत्मा रखता है, कि कदाचित् किये हुए एक उपकार से भी सन्तुष्ट होजाता है, और अपकार सौ भी भूल जाता है ॥ ८ ॥ अस्त्राभ्यास से अवकाश पाकर सदा शीलवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, और वयोवृद्ध सज्जनों के साथ शास्त्रकथा करता है ॥ ९ ॥ बुद्धिमान् मधुर बोलनेवाला, पहले बोलनेवाला, प्रिय बोलनेवाला, शक्तिमान् होकर भी अपनी बड़ी शक्ति से हैरान न होनेवाला ॥ १० ॥ झूठी बात न कहने वाला, विद्वान्, वृद्धों का पूजक, प्रजाओं से प्यार किया हुआ और प्रजाओं को प्यार करने वाला ॥ ११ ॥

मूल—सानुक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मणप्रतिपूजकः । दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवाञ्छुचिः ॥ १२ ॥ कुलोचितमतिः क्षात्रं स्वधर्मं बहु मन्यते । मन्यते परया कीर्त्या महत्स्वर्गफलं ततः ॥ १३ ॥ नाश्रेयसि रतो यश्च न विरुद्धकथारुचिः । उत्तरोत्तरयुक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा ॥ १४ ॥ अरोगस्तरुणो वाग्मी वपुष्मान्देशकालवित् । लोके पुरुषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः ॥ १५ ॥ स तु श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः । बहिश्चर इव प्राणो बभूव गुणतः प्रियः ॥ १६ ॥

टीका—दयावान् क्रोध को जीता हुआ.ब्राह्मणों का पूजक,दीनों पर दया करने वाला,धर्मज्ञ,सदा कदर करने वाला, शुद्ध ॥१२॥कुलके

फुरने) वाला, लौकिक कर्म में सामर्थ्य वाला, धर्म के आचार में निपुण ॥ १९ ॥ गम्भीर, आकार को ढांपे हुए, गुप्त मन्त्र वाला, साथियोंवाला, न निष्फल क्रोध और हर्षवाला, त्याग और संकोच के काल का जाननेवाला ॥२०॥

मूल—दृढभक्तिः स्थिरप्रज्ञो नासद्ग्राही न दुर्वचाः। निस्तन्द्रिरप्रमत्तश्च स्वदोषपरदोषवित्॥२१॥शास्त्रज्ञश्च कृतज्ञश्च पुरुषान्तरकोविदः। प्रग्रहानुग्रहयोर्यथान्यायं विचक्षणः ॥२२॥ सत्संग्रहानुग्रहणे स्थानविन्निग्रहस्य च। आयकर्मण्युपायज्ञः संदृष्टव्ययकर्मवित् ॥ २३ ॥ श्रैष्ठ्यं चास्त्रसमूहेषु प्राप्तो व्यामिश्रकेषु च। अर्थधर्मौ च संगृह्य सुखतन्त्रो न चालसः ॥ २४ ॥

टीका—(ईश्वर और गुरु आदि में) दृढ भक्तिवाला, स्थिर बुद्धिवाला न खोटों का ग्राहक, न दुर्वचन बोलनेवाला, आलस्य और प्रमाद से रहित, अपने दोष और परदोष को जाननेवाला, ॥ २१ ॥ शास्त्रज्ञ, कृतज्ञ, पुरुष पुरुष का भेद जाननेवाला, (मित्रादि के) स्वीकार और अनुग्रह में यथोचित करने में पण्डित ॥ २२ ॥ सत्पुरुषों के संग्रह करने और कदर करने में पण्डित, निग्रह (किसी पर दबाव डालने वा दण्ड देने) का अवसर जानने वाला। आयकर्म (आमदनी) के विषय में उपाय करने वाला, (शास्त्र में) देखे हुए व्ययकर्म (खर्चकरने) का जाननेवाला,॥ २३ ॥ सारे शास्त्रों के विषय में और व्यामिश्र (संस्कृत और दूसरी भाषाओं से मिले हुए नाटिक आदि) के विषय में श्रेष्ठता पाया हुआ, धर्म और अर्थ के संग्रह पूर्वक सुखसेवी (न कि केवल कामाधीन होकर सुखसेवी) (और कर्त्तव्यों के पूरा करने में) आलस्य रहित ॥ २४ ॥

मूल—वैहारिकाणां शिल्पानां विज्ञातार्थविभागवित्। आरोहे विनये चैव युक्तो वारणवाजिनाम् ॥ २५ ॥ धनुर्वेदविदां श्रेष्ठो लोकेऽतिरथसंमतः। अभियाता प्रहर्ता च सेनानयविशारदः ॥२६॥ एवं श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः। प्रियतस्त्रिषु लोकेषु वसुधायाः क्षमागुणैः ॥२७॥ तथा सर्वप्रजाकान्तैः प्रीतिसंजननैः पितुः गुणैर्विरुरुचे रामो दीप्तः सूर्य इवांशुभिः ॥ २८ ॥

टीका—खेल सम्बन्धी कारीगरियों (गाना बजाना नकशा वा तस्वीर खींचना इत्यादि) का जानने वाला, आय का विभाग जानने वाला। हाथी और घोड़ों पर सवारी करने में और उनके सिधाने में सावधान ॥ २५ ॥ धनुर्वेद के जानने वालों में श्रेष्ठ, लोक में अतिरथ माना हुआ, शत्रुओं पर चढ़ाई और प्रहार का जाननेवाला और सेना के व्यूह बांधने में निपुण ॥ २६ ॥ इस प्रकार श्रेष्ठ गुणों से युक्त और क्षमा में पृथिवी के तुल्य वह राजा का पुत्र तीनों लोक में प्रजा का प्यारा था ॥ २७ ॥ सारी प्रजा से पसन्द किये हुए, और अपने पिता की प्रीति को उत्पन्न करनेवाले गुणों से दीप्त हुआ ऐसा चमक रहा था, जैसे किरणों से सूर्य चमकता है ॥ २८ ॥

मूल—तमेवंवृत्तसंपन्नमप्रधृष्यपराक्रमम्। लोकपालोपमं नाथमकामयत मेदिनी ॥ २९ ॥ तं समीक्ष्य तदा राजा युक्तं समुदितैर्गुणैः। निश्चित्य सचिवैः सार्धं युवराजममन्यत ॥ ३० ॥ आत्मनश्च प्रजानां च श्रेयसे च प्रियेण च। प्राप्ते काले च धर्मात्मा भक्त्या त्वरितवान्नृपः ॥ ३१ ॥ नानानगरवास्तव्यान्पृथग्जानपदानपि। समानिनाय मेदिन्यां प्रधानान्पृथिवीपतीन् ॥३२॥ न तु केकय-

राजानं जनकं वा नराधिपः। त्वरया चानयामास पश्चात् तौ श्रोष्यतः प्रियम् ॥ ३३ ॥

टीका--इस प्रकार (आश्रितों की रक्षा रूपी) व्रत से युक्त; न दबने वाले, पराक्रम वाले, लोकपालों के तुल्य उस राम को पृथिवी अपना मालिक चाहती भई ॥ २९॥ ऐसे इकट्ठे हुए शुभगुणों से युक्त को देखकर महाराज ने मन्त्रियों के साथ निश्चय करके उसको युवराज बनाने का विचार किया ॥ ३० ॥ अपने और प्रजाओं के कल्याण के लिये, (राम में प्रजाओं की) प्रीति से ठीक समय के आजाने पर उस धर्मात्मा राजा ने भक्ति से जल्दी की * ॥ ३१ ॥ नाना नगरों में रहने वाले भिन्न २ देशों के स्वामी अपने (अधीन) प्रधान राजों को मंगवा लिया ॥ ३२ ॥ पर उस नरपति ने जल्दी के कारण राजा केकय और जनक को नहीं बुलाया, कि वह इस प्रिय को पीछे सुन ही लेंगे † ॥ ३३ ॥

---

* राजा दशरथ आयु भोग चुका था, अब जब कि उसके चारों पुत्रों का समावर्तन होकर विवाह भी होगया, तो उसको एकदम अपने परलोक सुधारने का विचार उत्पन्न हुआ, उधर राम ने राज कार्यों में हाथ डालते ही प्रजा को मुग्ध कर लिया था। राज्य का अधिकारी भी राम ही था। सो प्रजा की राम में भक्ति देखकर और अपना परलोक निकट देखकर राजा को एकाएक राम के युवराज बनाने का विचार प्रबल होगया। दैवयोग से वसन्तकाल था और पुष्य नक्षत्र बहुत निकट था जो राज्याभिषेक के लिए नियत हुआ करताथा। इस सारी बात ने राजा से जल्दी करवादी।

† पुष्य इतना निकट था, कि जल्दी में केकयदेशसे; कैकेयी के पिता राजा केकय को और मिथला से जनक को भी नहीं बुलवा

सर्ग २ (व० २) राजसभा में अभिषेक का निश्चय

मूल—ततः परिषदं सर्वामामन्त्र्य वसुधाधिपः । हितमुद्धर्षणं चैव मुवाच प्रथितं वचः ॥१॥ राजलक्षणयुक्तेन कान्तेनानुपमेन च । उवाच रसयुक्तेन स्वरेण नृपतिर्नृपान् ॥२॥ विदितं भवतामेतद्यथा मे राज्यमुत्तमम् । पूर्वकैर्मम राजेन्द्रैः सुतवत्परिपालितम् ॥ ३ ॥ मयाप्याचरितं पूर्वैः पन्थानमनुगच्छता । प्रजा नित्यमनिद्रेण यथा-शक्त्याभिरक्षिताः ॥ ४ ॥

टीका—तब पृथिवीपति सारी सभा को बुलाकर हितकारी और हर्ष जनक, फैला हुआ (सब को सुनाई देनेवाला) वचन बोला। १। राजा के लक्षणों से युक्त (स्निग्ध और गम्भीर) प्यारे, अनु-पम, रसयुक्त स्वर से, नरपतियों से बोला ॥२॥ आपको विदित है, कि मेरा यह उत्तम राज्य मेरे बड़े राजों ने पुत्रवत् पालन किया है ॥ ३ ॥ मैंने भी बड़ों के रस्ते पर पीछे २ चलते हुए वैसा आचरण किया है, सदा जाग्रत रहकर प्रजाओं की यथाशक्ति रक्षा की है ॥ ४ ॥

सका। इसी जल्दी से बिगाड़ हुआ। इतरथा यदि राजा केकय और उसके साथ भरत शत्रुघ्न आजाते, तो विघ्न का नाम भी न आता। पर धार्मिक राज्य का उस समय इतना बल था, कि राजा को यह विश्वास था, कि वह उनको भी प्रिय ही है, चाहे पीछे ही सुनेंगे, पर सुनेंगे तो प्रिय ही, और कैकयी भी धर्ममर्यादा को जानती थी, उस पर भी उसे अविश्वास न था। इसलिए परवाह नहीं की। पर उस को क्या मालूम था, कि मन्थरा का जादू कैकयी पर चल जायगा। रानी राजपुत्री हो, पर दासी तो दासी पुत्री ही है।

मूल—इदं शरीरं कृत्स्नस्य लोकस्य चरता हितम् । पाण्डुरस्यातपत्रस्य च्छायायां जरितं मया ॥५॥ राजप्रभावजुष्टां च दुर्वहामजितेन्द्रियैः । परिश्रान्तोऽस्मि लोकस्य गुर्वीं धर्मधुरं वहन् ॥६॥ सोऽहं विश्रममिच्छामि पुत्रं कृत्वा प्रजाहिते । संनिकृष्टानिमान्सर्वाननुमान्य द्विजर्षभान् ॥ ७ ॥ अनुरूपः स वो नाथो लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाग्रजः । त्रैलोक्यमपि नाथेन येन स्यान्नाथवत्तरम् ॥ ८ ॥

टीका—सारे लोक का हित आचरण करते हुए मैंने यह शरीर श्वेत छत्र की छाया में बूढ़ा किया है॥५॥राजप्रभाव(वाले राजों) से जो सेवन की जाती है, अजितेन्द्रिय पुरुषों से जो उठाई नहीं जाती, ऐसी बड़ी भारी लोकमर्यादा की धुरा को उठाए हुए अब मैं थक गया हूं ॥ ६ ॥ सो अब मैं यहां बैठे हुए सब द्विजवरों की अनुमति ले, पुत्र को प्रजा के हित में लगा, विश्राम चाहता हूं ॥७॥ वह लक्ष्मीवान् लक्ष्मण का बड़ा भाई तुम्हारा योग्य नाथ है, जिस नाथ से (न केवल तुम ही नाथ वाले होगे, अपितु) तीनों ही लोक नाथवत्तर होंगे ॥ ८ ॥

मूल—यदीदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम्। भवन्तो मेऽनुमन्यतां कथं वा करवाण्यहम् ॥ ९ ॥ यद्यप्येषा मम प्रीतिर्हितमन्यद्विचिन्त्यताम् । अन्या मध्यस्थचिन्ता हि विमर्दाभ्यधिकोदया ॥ १०॥

टीका—यदि यह मेरा विचार योग्य फल वाला है,मैंने ठीक सोचा है, तो आप इसमें अनुमति देवें,अथवा कैसे करूं यह कहें ॥९॥ यद्यपि मेरी प्रीति यह है, तथापि हित यदि कुछ और है, तो वह सोचो, क्योंकि मध्यस्थों का विचार कुछ और ही होता है, जो(वाद विवाद की)रगड़ से अधिक फलवाला बनजाता है॥

मूल—इति ब्रुवन्तं मुदिता प्रत्यनन्दन्नृपाः नृपम्। वृष्टिमन्तं महामेघं नदन्त इव बर्हिणः ॥११॥ स्निग्धोऽनुनादः संजज्ञे ततो हर्षसमीरितः। जनौघोद्घुष्टसंनादो विमानं कम्पयन्निव ॥ १२ ॥ तस्य धर्मार्थविदुषो भावमाज्ञाय सर्वशः। ब्राह्मणा बलमुख्याश्च पौरजानपदैः सह ॥ १३ ॥ समेत्य ते मन्त्रयितुं समतागतबुद्धयः। ऊचुश्च मनसा ज्ञात्वा वृद्धं दशरथं नृपम् ॥ १४ ॥ इच्छामो हि महाबाहुं रघुवीरं महाबलम्। गजेन महता यान्तं रामं छत्रावृताननम् ॥ १५ ॥ बहवो नृप कल्यणा गुणाः सन्ति सुतस्य ते। इक्ष्वाकुभ्योऽपि सर्वेभ्यो ह्यतिरिक्तो विशांपते ॥ १६ ॥ धर्मज्ञः सत्यसंधश्च शीलवाननसूयकः। क्षान्तः सान्त्वयिता श्लक्ष्णः कृतज्ञो विजितेन्द्रियः ॥ १७ ॥ मृदुश्च स्थिरचित्तश्च सदा भव्योऽनसूयकः। प्रियवादी च भूतानां सत्यवादी च राघवः ॥१८॥ बहुश्रुतानां वृद्धानां ब्राह्मणानामुपासिता। तेनास्येहातुला कीर्तिर्यशस्तेजश्च वर्धते ॥१९॥ देवासुरमनुष्याणां सर्वास्त्रेषु विशारदः। सम्यग्विद्याव्रतस्नातो यथावत्साङ्गवेदवित् ॥ २० ॥

टीका—ऐसा कहते हुए राजा को सब राजों ने प्रसन्न होकर इस तरह अंगीकार किया, जिसतरह वृष्टिवाले महामेघ को नाचते हुए मोर अंगीकार करते हैं ॥ ११ ॥ तब हर्ष से उच्चारण की हुई जनसमूह की ऊंची स्निग्ध गूंजती हुई ध्वनि उत्पन्न हुई, जिसने मानों सारे राजभवन को कंपा दिया ॥ १२ ॥ धर्म अर्थ के जाननेवाले उस राजा के भाव को पूरा २ जानकर ब्राह्मण और सेना के मुखिया राजों के साथ मिलकर विचारने लगे, अपने २ मन से निश्चय करके सब एक ही निश्चय पर पहुंचे हुए वह वृद्ध राजा दशरथ से बोले ॥ १३,१४ ॥ हां हम महाबाहु, महाबली रघुवीर राम को बड़े हाथी पर चढ़कर जाता

हुआ देखना चाहते हैं जब कि सिर पर झूलते हुए छत्र से उस का मुख ढका हो ॥ १५ ॥ हे राजन् ! तेरे पुत्र में बहुत से कल्याणवाले गुण हैं, हे प्रजा के मालिक ! राम सारे इक्ष्वाकुवंशियों में भी बढ़ा हुआ है ॥ १६ ॥ धर्मज्ञ, सच्ची प्रतिज्ञा वाला, शीलवान्, असूया से रहित, क्षमावाला, तसल्ली देनेवाला, साफ, कृतज्ञ, जितेन्द्रियः ॥ १७ ॥ नरम, स्थिरचित्त, सदा सभ्य, निन्दा से रहित, सब से मीठा बोलने वाला और सत्यवादी ॥१८॥ बहुश्रुत, वृद्ध ब्राह्मणों का सेवन करने वाला है, इस हेतु से लोक में इसकी अतुल कीर्त्ति यश और तेज बढ़ रहा है ॥ १९ ॥ देव मनुष्य और असुरों के सब प्रकार के अस्त्रों में निपुण । पूरा २ विद्यास्नात ठीक २ सामवेद का जानने वाला

मूल—पौरान् स्वजनवन्नित्यं कुशलं परिपृच्छति । पुत्रेष्वग्निषु दारेषु प्रेष्यशिष्यगणेषु च ॥ २१ ॥ व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः । उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति ॥ २२ ॥ सत्यवादी महेष्वासो वृद्धसेवी जितेन्द्रियः । स्मितपूर्वाभिभाषी च धर्मं सर्वात्मनाश्रितः ॥ २३ ॥ रामो लोकाभिरामोऽयं शौर्यवीर्यपराक्रमैः । प्रजापालनसंयुक्तो न रागोपहितेन्द्रियः ॥ २४ ॥ नास्य क्रोधः प्रसादश्च निरर्थोऽस्ति कदाचन । हन्त्येष नियमाद्वध्यानवध्येषु न कुप्यति ॥ २५ ॥

टीका—पुर के लोगों को सदा स्वजनों की तरह पुत्र, स्त्री, भृत्य अग्नियों में और शिष्यगणों के विषय में कुशल पूछता है ।२१। लोगों के व्यसन में अत्यन्त दुःखी होता है, और उत्सवों में पिता की तरह संतुष्ट होता है ॥ २२ ॥ सत्यवादी बड़ा धनुर्धारी, वृद्धों का सेवन करने वाला, जितेन्द्रिय, हंसकर पहले बोलने वाला, सारे बल से धर्म के आश्रित रहने वाला ॥२३॥

राम शौर्य वीर्य और पराक्रम के गुणों से सारे लोक का प्यारा है प्रजापालन के तत्त्व का जाननेवाला है, राग से उसके इन्द्रिय दूषित नहीं है ॥ २४ ॥ इसका क्रोध वा प्रसाद कभी निरर्थक नहीं होता है। जो वध्य हैं, उनको नियम से वध करता ही है और जो अवध्य हैं, उन पर क्रोध नहीं करता है ॥ २५ ॥

मूल—युनक्त्यर्थैः प्रहृष्टश्च तमसौ यत्र तुष्यति। वत्सः श्रेयसि जातस्ते दिष्ट्यासौ तव राघव ॥ २६ ॥ आशंसते जनः सर्वो राष्ट्रे पुरवरे तथा। आभ्यन्तरश्च बाह्यश्च पौरजानपदो जनः॥२७॥ तेषां तथाचितं देव त्वत्प्रसादात्समृद्ध्यताम्। पश्यामो यौवराज्यस्थं तव राजोत्तमात्मजम् ॥ २८ ॥

टीका—जिस पर प्रसन्न होता है, उसको निहाल कर देता है, हे राघव! तेरा यह बेटा तेरे भाग्य से कल्याण में बढ़ा हुआ है ॥ २६ ॥ देश और पुर के सारे लोग अन्दर बाहर के देशवासी जन सब (राम राज्य को) चाह रहे हैं ॥ २७ ॥ इनकी प्रार्थना हे देव! तेरी कृपा से फले, हे राजोत्तम! हम तेरे पुत्र को यौवराज्य में स्थित देखें ॥ २८ ॥

सर्ग ३ (व ३) अभिषेक की तैय्यारी

मूल—तेषामञ्जलिपद्मानि प्रगृहीतानि सर्वशः। प्रतिगृह्याब्रवीद्राजा तेभ्यः प्रियहितं वचः ॥ १ ॥ अहोऽस्मि परमप्रीतः प्रभावश्चातुलो मम। यन्मे ज्येष्ठं प्रियं पुत्रं यौवराज्यस्थमिच्छथ ॥ २ ॥ चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः। यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्प्यताम् ॥ ३ ॥ वसिष्ठं मुनिशार्दूलं राजा वचनमब्रवीत्। अभिषेकाय रामस्य यत्कर्म सपरिच्छदम् ॥ ४ ॥ तदद्य भगवन्सर्वमाज्ञापयितुमर्हसि। तच्छ्रुत्वा भूमिपालस्य

वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ ५ ॥ आदिदेशाग्रतो राज्ञः स्थितान्युक्ता-
न्कृताञ्जलीन् । सुवर्णादीनि रत्नानि बलीन्सर्वौषधीरपि ॥ ६ ॥

टीका—कमल फूल की तरह दोनों हाथ जोड़कर कहते हुओं के वचन को स्वीकार कर राजा प्रिय हित वचन बोला ॥ १ ॥ अहो मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूं, मेरा प्रताप अतुल है, जो मेरे प्यारे पुत्र को यौवराज्य में स्थित चाहते हो ॥ २ ॥ यह शोभा वाला पवित्र चैत्रमास फूले हुए वनों वाला है, राम के यौवराज्य के लिये सब कुछ तय्यार कीजिये ॥ ३ ॥ और मुनिवर वसिष्ठ को राजा ने यह वचन कहा, राम के अभिषेक के लिये जो कुछ करना है, वह सब सामग्रीसहित हे भगवन् ! आज्ञा दीजिये । राजा के इस वचन को सुनकर मुनिवर वसिष्ठ ॥ ४,५ ॥ राजा के आगे हाथ बांध कर खड़े हुए अधिकारियों से बोले, सुवर्ण आदि धातु, रत्न, बलियें, सब ओषधियें ॥ ६ ॥

मूल—शुक्लमाल्यानि लाजांश्च पृथक् च मधुसर्पिषी । अहतानि च
वासांसि रथं सर्वायुधान्यपि ॥ ७ ॥ चतुरङ्गबलं चैव गजं च
शुभलक्षणम् । चामरव्यजने चोभे ध्वजं छत्रं च पाण्डुरम् ॥ ८ ॥
शतं च शातकुम्भानां कुम्भानामग्निवर्चसाम् । हिरण्यशृङ्गमृषभं
समग्रं व्याघ्रचर्म च ॥ ९ ॥ यच्चान्यत्किञ्चिद्द्रव्यं तत्सर्वमुपक-
ल्प्यताम् । उपस्थापयत प्रातरग्न्यगारे महीपतेः ॥ १० ॥

टीका—श्वेत मालायें, लाजा, शहद और घी अलग २ नये वस्त्र रथ, सारे शस्त्र ॥ ७ ॥ चतुरङ्ग सेना और शुभ लक्षणोंवाला हाथी, दो श्वेत चंवरियें, ध्वजा और श्वेत छतर ॥ ८ ॥ और अग्नि के तुल्य कान्तिवाले सोने के सौ घड़े, सोना चढ़े हुए सींगोंवाला साण्ड, और (सिंहासन के लिये) सिंह की अखण्ड

छादो ॥ ९ ॥ राजा के अग्नि मन्दिर में प्रातःकाल उपस्थित करादो, और जो कुछ और भी चाहिये, वह सब तय्यार करो ।१०

मूल—अन्तः पुरस्य द्वाराणि सर्वस्य नगरस्य च । चन्दनस्रग्भिरर्च्यन्तां धूपैश्च घ्राणहारिभिः ॥११॥ सत्कृत्य द्विजमुख्यानां श्वः प्रभाते प्रदीयताम् । घृतं दधि च लाजाश्च दक्षिणाश्चापि पुष्कलाः ॥१२॥ सूर्येऽभ्युदितमात्रे श्वो भविता स्वस्तिवाचनम् । ब्राह्मणाश्च निमन्त्र्यन्तां कल्प्यन्तामासनानि च ॥१३॥ दीर्घासिबद्धयोधाश्च संनद्धा मृष्टवाससः । महाराजाङ्गनं शूराः प्रविशन्तु महोदयम्॥१४

टीका—अन्तःपुर के द्वार और नगर के द्वार चन्दन मालाओंसे और अति सुगन्धित धूप से सजा दो ।११। और कल प्रभात के समय ब्राह्मणों को सत्कार पूर्वक घृत, दधि, लाजा और भरपूर दक्षिणा दो ।१२। कल सूर्य के उदय होते ही स्वस्तिवाचन होगा, उसके लिये ब्राह्मणों को निमन्त्रण दो और आसन तय्यार करो ।१३। योधे वरदियें सजाकर, कवच पहनकर और तलवारें बांधकर महाराज के महोत्सववाले अङ्गण में प्रवेश करें ।१४।

मूल—ततः सुमन्त्रं द्युतिमान्राजा वचनमब्रवीत् । रामः कृतात्मा भवता शीघ्रमानीयतामिति ॥१५॥ स तथेति प्रतिज्ञाय सुमन्त्रो राजशासनात् । रामं तत्रानयांचक्रे रथेन रथिनां वरम् ॥१६॥ प्रासादस्थो रथगतं ददर्शायान्तमात्मजम् । गन्धर्वराजप्रतिमं लोके विख्यातपौरुषम् ॥१७॥ दीर्घबाहुं महासत्त्वं मत्तमातङ्गगामिनम् । रूपौदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारिणम् ॥१८॥

टीका—इसके अनन्तर तेजस्वी राजा सुमन्त्र से यह वचन बोला, आप धर्मात्मा राम को शीघ्र ले आइये ।१५। वह सुमन्त्र तथास्तु कहकर राजा के शासन से रथियों में श्रेष्ठ राम को वहां रथ से

ले आया ।१६। प्रासाद (राजमहल) पर स्थित राजा ने रथ पर आते हुए पुत्र को देखा, जो (सुन्दर स्वर से) गन्धर्वराज के तुल्य है, लोक में जिसका पौरुष विख्यात है ।१७। बड़ी भुजा-वाला, बड़ा दिलेर, मस्तहाथी की सी चाल वाला, रूप और उदारता के गुणों से पुरुषों के दृष्टि और चित्त को खींचनेवाला ।१८

मूल—घर्माभितप्ताः पर्जन्यं ह्लादयन्तमिव प्रजाः । न ततर्प समायान्तं पश्यमानो नराधिपः ॥१९॥ अवतार्य सुमन्त्रस्तु राघवं स्यन्दनोत्तमात् । पितुः समीपं गच्छन्तं प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽन्वगात् ॥२०॥ स तं कैलासशृङ्गाभं प्रासादं रघुनन्दनः । आरुरोह नृपं द्रष्टुं सह सूतेन राघवः ॥२१॥ स प्राञ्जलिरभिप्रेत्य प्रणतः पितुरन्तिके । नाम स्वं श्रावयन्रामो ववन्दे चरणौ पितुः ॥२२॥

टीका—जो घाम से तपी हुई प्रजाओं को मेघ की तरह प्रसन्न कर रहा है, राजा उस आते हुए का देख २ कर तृप्त नहीं होता था ।१९। सुमन्त्र उस राघव को उत्तम रथ मे उतारकर पिता के निकट जाते हुए के हाथ जोड़कर पीछे २ चला ।२०। कैलास की चोटी तुल्य उस प्रासाद पर वह नरश्रेष्ठ राघव सुमन्त्र के साथ राजा के दर्शन के लिये चढ़ गया ।२१। दोनों हाथ जोड़े हुए सम्मुख जाकर पिता के समीप झुककर अपना नाम सुनाते हुए राम ने पिता की चरणवन्दना की ।२२।

मूल—प्रणतं पार्श्वे तं दृष्ट्वा कृताञ्जलिपुटं नृपः । गृह्याञ्जलौ समाकृष्य सस्वजे प्रियमात्मजम् ॥२३॥ दिदेश राजा रुचिरं रामाय परमासनम् तदासनवरं प्राप्य व्यदीपयत राघवः ॥२४॥ तेन विभ्राजता तत्र सा सभाऽपि व्यरोचत । विमलग्रहनक्षत्रा शारदी द्यौरिवेन्दुना ॥२५॥ तं पश्यमानो नृपतिस्तुतोष प्रियमात्मजम् ।

अलंकृतमिवात्मानमादर्शतलसंस्थितम् ॥२६॥ स तं सस्मितमाभाष्य पुत्रं पुत्रवतांवरः । उवाचेदं वचो राजा देवेन्द्रमिव कश्यपः॥२७॥

टीका—उसको अपने पास हाथ जोड़े हुए झुका हुआ देखकर राजा अञ्जलि से पकड़कर प्यारे पुत्र को कण्ठ लगाता भया ॥ २३ ॥ राजा ने राम को सुन्दर आसन की आज्ञा दी, उस आसनवर को पाकर राम शोभायमान हुआ ॥ २४ ॥ वहां शोभा पाते हुए उससे वह सभा भी अधिक शोभा वाली बन गई, जैसे निर्मल ग्रह तारों से युक्त शरद ऋतु का आकाश चन्द्र से ॥ २५ उस प्यारे पुत्र को देखता हुआ राजा बड़ा प्रसन्न हुआ,मानों सजे हुए अपने आप को शीशे में देख रहा है ।२६ वह पुत्रवालों मे श्रेष्ठ राजा मुसकराता हुआ पुत्र को सम्बोधन करके यह वचन बोला, जैसे कश्यप देवेन्द्र को कहता हो ।२७।

मूल—ज्येष्ठायामसि मे पत्न्यां सदृश्यां सदृशः सुतः । उत्पन्नस्त्वं गुणज्येष्ठो मम रामात्मजः प्रियः ॥ २८ ॥ त्वया यतः प्रजाश्चेमाः स्वगुणैरनुरञ्जिताः । तस्मात् त्वं पुष्ययोगेन यौवराज्यमवाप्नुहि॥ २९ ॥ कामतस्त्वं प्रकृत्यैव विनीतो गुणवानिति । गुणवत्यपि तु स्नेहात्पुत्र वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ३० ॥ भूयो विनयमास्थाय भव नित्यं जितेन्द्रियः । कामक्रोधसमुत्थानि त्यजस्व व्यसनानि च ॥ ३१ ॥ परोक्षया वर्तमानो वृत्त्या प्रत्यक्षया तथा । तुष्टानुरक्तप्रकृतिर्यः पालयति मेदिनीम् ॥ ३२ ॥ तस्य नन्दन्ति मित्राणि लब्ध्वामृतमिवामराः । तस्मात् पुत्र त्वमात्मानं नियम्यैवं समाचर ॥

टीका—(कुल गुण से) सदृश मेरी बड़ी पत्नी में से हे राम ! तू सदृश पुत्र उत्पन्न हुआ है गुणों में श्रेष्ठ हे राम मेरा प्यारा पुत्र, ॥ २८ ॥ जिसलिये तूने यह सारी प्रजायें अपने गुणों से

प्रसन्न की हैं. इसलिये तू पुष्य योग में यौवराज्य को प्राप्त हो ॥ २९ ॥ स्वभाव से ही तू पूरी तरह विनीत है, गुणवान् है. पर गुणवान से भी हे पुत्र ! स्नेह से हित कहूंगा ॥ ३० ॥ (स्वभावतः विनीत हुआ भी) अधिक विनय का आश्रय करना, सदा जितेन्द्रिय रहना, काम क्रोध से उत्पन्न होने वाले व्यसनों को त्यागे रखना ॥३१॥ परोक्ष तथा प्रत्यक्ष वृत्ति से वर्तता हुआ स्वयं गुप्त रीति से वा गुप्तचरों द्वारा अपने वेगाने राष्ट्र के वृत्तांत को जानता हुआ और प्रत्यक्षरूप से सारे वृत्तांत जानता हुआ और सारे व्यवहारों को साधता हुआ) जो प्रकृतियों (अहल-कारों और प्रजाओं) को सन्तुष्ट और अनुरक्त (वफादार) बनाता हुआ पृथिवी को पालन करता है ॥ ३२ ॥ उसके मित्र आनन्द मनाते हैं, जैसे अमृत को पाकर देवता, इस लिये हे पुत्र ! तू भी अपने आपको वश में रखकर ही आचरणकर ।३३।

मूल—तच्छ्रुत्वा सुहृदस्तस्य रामस्य प्रियकारिणः । त्वरिता शीघ्र-मागत्य कौसल्यायै न्यवेदयन् ॥ ३४ ॥ सा हिरण्यं च गाश्चैव रत्नानि विविधानि च । व्यादिदेश प्रियाख्येभ्यः कौसल्या प्र-मदोत्तमा ॥ ३५ ॥ अथाभिवाद्य राजानं रथमारुह्य राघवः । ययौ स्वं द्युतिमद्वेश्म जनौघैः प्रतिपूजितः ॥ ३६ ॥

टीका—यह सुनते ही राम के प्रियकारी सुहृद तुरतगति हो तुरन्त पहुंचकर कौसल्या को बतलाते भए ॥ ३४ ॥ वह उत्तम स्त्री कौसल्या इस प्रिय कहनेवालों को सोना गौएं और विविध रत्न देती भई ॥ ३५ ॥ अब राम राजा को अभिवादन करके रथ पर चढ़कर जनसमूहों से आदर पाता हुआ अपने दीप्यमान मन्दिर को गया ॥ ३६ ॥

सर्ग ४ [व० ४] राम चन्द्रजी कौसल्या के भवन में

मूल—प्रविश्य चात्मनो वेश्म राज्ञादिष्टेऽभिषेचने। तत्क्षणादेव निष्क्रम्य मातुरन्तःपुरं ययौ ॥१॥ तत्र तां प्रवणामेव मातरं क्षौमवासिनीम्। वाग्यतां देवतागारे ददर्शायाचतीं श्रियम् ॥२॥ प्रागेव चागता तत्र सुमित्रा लक्ष्मणस्तथा। सीता चानायिता श्रुत्वा प्रियं रामाभिषेचनम् ॥३॥ तस्मिन्कालेहिकौसल्या तस्थावामीलितेक्षणा। सुमित्रयाऽन्वास्यमाना सीतया लक्ष्मणेन च ॥४॥

टीका—राजा से अभिषेक की आज्ञा दिये जाने पर (राम यह प्रिय सीता को कहने के लिए) अपने घर में प्रवेश करके (वहां सीता को न देख कर) तत्क्षण निकल कर माता के अन्तःपुर को गए ॥१॥ वहां उस ने माता को रेशमी वस्त्र पहने हुए अग्नि मन्दिर में झुक कर राम के लिये चुप चाप राज्यलक्ष्मी की याचना करती हुई देखा ॥२॥ वहां सुमित्रा और लक्ष्मण पहले ही आचुके हुए थे और राम का अभिषेक होगा—यह प्रिय सुन कर सीता को पहले ही वहां (कौसल्या ने) मंगवा लिया हुआ था ॥३॥ उस समय कौसल्या नेत्र बन्द किये स्थित थी, सुमित्रा लक्ष्मण और सीता उस के पीछे स्थित थे ॥४॥

मूल—श्रुत्वा पुष्ये च पुत्रस्य यौवराज्याऽभिषेचनम्। प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम् ॥५॥ तथा सनियमामेव सोऽभिगम्याभिवाद्य च। उवाच वचनं रामो हर्षयंस्तामिदं वचः ॥६॥ अम्ब पित्रा नियुक्तोऽस्मि प्रजापालनकर्मणि। भविता श्वोऽभिषेको मे यथा मे शासनं पितुः ॥७॥ सीतयाप्युपवस्तव्या रजनीयं मया सह। एवमृत्विगुपाध्यायैः सह मामुक्तवान्पिता ।८। यानि यान्यत्र योग्यानि श्वोभाविन्यभिषेचने। तानि मे मंगलान्यद्य

वैदेह्याश्चैव कारय ॥९॥ एतच्छ्रुत्वा तु कौसल्या चिरकालाभिकांक्षितम्। हर्षबाष्पकलं वाक्यमिदं राममभाषत ॥१०॥

टीका—और वह पुष्य में पुत्र के यौवराज्य में अभिषेक को सुन कर प्राणायाम से परम पुरुष का ध्यान कर रही थी ॥५॥ वैसे नियम वाली के पास जाकर और अभिवादन करके राम उस को प्रसन्न करता हुआ यह वचन बोला ॥६॥ हे अम्ब! पिता ने मुझे प्रजापालन के कर्म में नियुक्त किया है, कल मेरा अभिषेक होगा, जैसा कि मुझे पिता का शासन है ॥७॥ सीता ने भी यह रात मेरे साथ उपवास करना है, इस प्रकार ऋत्विज उपाध्यायों के साथ मुझे पिता ने कहा है ॥८॥ सो कल होनेवाले अभिषेक में जो २ मंगल कार्य योग्य हैं, वह २ मेरे और सीता के सारे करवाएं ॥९॥ चिरकाल से चाही हुई इस बात को सुन कर कौसल्या हर्ष के आंसुओं से अव्यक्त मधुर यह वचन बोली ॥१०॥

मूल—वत्स राम चिरंजीव हतास्ते परिपन्थिनः। ज्ञातीन्मे त्वं श्रिया युक्तः सुमित्रायाश्च नन्दय ॥११॥ इत्येवमुक्तो मात्रा तु रामो भ्रातरमब्रवीत्। प्राञ्जलिं प्रह्वमासीनमभिवीक्ष्य स्मयन्निव ॥१२॥ लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुंधराम्। द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता ॥१३॥ सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च। जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये ॥१४॥ इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामो मातरावभिवाद्य च। अभ्यनुज्ञाप्य सीतां च ययौ स्वं च निवेशनम् ॥१५॥

टीका—वत्स राम! चिरञ्जीव, तेरे शत्रु हत हों, लक्ष्मी से युक्त हुआ तू मेरे और सुमित्रा के बन्धुओं को आनन्दित कर ॥११॥ माता ने जब ऐसे कहा, तो राम हाथ जोड़ झुक कर बैठे हुए

भाई को देख कर के मुसकराता हुआ यह बचन बोला ॥१२॥ हे लक्ष्मण मेरे साथ इस पृथिवी का शासन कर, तू मेरा दूसरा अन्तरात्मा है, सो यह लक्ष्मी तुझे उपस्थित हुई है ॥१३॥ हे लक्ष्मण तू इष्ट भोगों को और राज्य के फलों को भोग, मैं तेरे लिए जीवन और राज्य को चाहता हूं ॥१४॥ लक्ष्मण को यह कह कर राम दोनों माताओं को अभिवादन कर के और सीता को आज्ञा दिला कर अपने भवन को गया ॥१५॥

सर्ग ५ (व० ५) अभिषेक से पूर्व के कर्तव्य

मूल—संदिश्य रामं नृपतिः श्वोभाविन्यभिषेचने । पुरोहितंसमाहूय वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥१॥ गच्छोपवासं काकुत्स्थं कारयाद्य तपोधन । श्रेयसे राज्यलाभाय वध्वा सह यतव्रत ॥२॥ तथेति च स राजानमुक्त्वा वेदविदां वरः । स्वयं वसिष्ठो भगवान्ययौ रामनिवेशनम् ॥३॥ ब्राह्मं रथवरं युक्तमास्थाय सुधृतव्रतः ॥४॥

टीका—उधर राजा ने कल होने वाले अभिषेक के विषय में राम को संदेश देकर, फिर पुरोहित वसिष्ठ को बुलाकर यह कहा॥१॥ हे दृढ़ व्रतों वाले तपोधन जाइये और राम को श्री, यश और राज्यलाभ के लिये पत्नी समेत उपवास कराइये ॥२॥ 'तथास्तु' कहकर वह वेद जाननेवालों में श्रेष्ठ सुदृढ़व्रतों वाला भगवान् वसिष्ठ ब्राह्म रथवर पर चढ़कर राम के घर गया ॥ ३, ४ ॥

मूल—तमागतमृषिं रामस्त्वरन्निव ससंभ्रमम् । मानयिष्यन् समानार्हं निश्चक्राम निवेशनात् ॥५॥ अभ्येत्य त्वरमाणोऽथ रथाभ्याशं मनीषिणः । ततोऽवतारयामास परिगृह्य रथात् स्वयम्॥६॥ स चैनं प्रश्रितं दृष्ट्वा संभाष्याभिप्रसाद्य च । प्रियार्हं हर्षयन्राममित्युवाच पुरोहितः ॥७॥ प्रसन्नस्ते पिता राम यत्त्वं राज्यमवाप्स्यसि । उपवासं भवानद्य करोतु सह सीतया ॥८॥

टीका—मानार्हऋषि के आने पर उसके मान के लिये राम गौरव के साथ जल्दी भवन से बाहर आया ॥ ५ ॥ और जल्दी उस विद्वान् के रथके पासजाकर स्वयं हाथ पकड़कर रथ से उतारा ॥६॥ पुरोहित जी राम को नम्र देख,उस से सम्भाषण कर और प्रसन्न करके, प्रिय वचन के योग्य को हर्ष देते हुए बोले ॥७॥ हे राम ! पिता आप पर प्रसन्न हैं, सो आप यौवराज्य को प्राप्त होंगे, आज आप सीता समेत उपवास करें ॥ ८ ॥

मूल—इत्युक्त्वा स तदा राममुपवासं यतव्रतः । मन्त्रवत्कारयामास वैदेह्या सहितं मुनिः ॥९॥ ततो यथावद्रामेण स राज्ञो गुरुरर्चितः । अभ्यनुज्ञाप्य काकुत्स्थं ययौ रामनिवेशनात् ॥१०॥ सुहृद्भिस्तत्र रामोऽपि महासीनः प्रियंवदैः । सभाजितो विवेशाथ ताननुज्ञाप्य सर्वशः ॥११॥ हृष्टनारीनरयुतं रामवेश्म तदा बभौ । यथा मत्त-द्विजगणं प्रफुल्लनलिनं सरः ॥ १२ ॥

टीका--यह कहकर दृढव्रतों वाले राम को सीता समेत मन्त्रों सहित उपवास कराता भया॥९॥ तब राम ने यथायोग्य गुरु की पूजा की,और वह राम से अनुज्ञा लेकर राम के भवन से वापिस गया ॥१०॥ राम भी वहां प्रियवादी मित्रों के साथ बैठा हुआ उन से पूजित हुआ उन सब को अनुज्ञा देकर भवन में प्रविष्ट हुआ ॥११॥ उस समय हर्ष से भरे हुए नरनारी से युक्त राम-भवन ऐसा शोभायमान था, जैसे मस्त पक्षिगणों से युक्त फूले हुए कमलों वाला सरोवर हो ॥ १२ ॥

मूल—स राजभवनप्रख्यात्तस्माद्रामनिवेशनात् । निर्गत्य ददृशे मार्गं वसिष्ठो जनसंवृतम् ॥ १३ ॥ जनवृन्दोर्मिसंघर्षहर्षस्वनवतस्तदा । बभूव राजमार्गस्य सागरस्येव निःस्वनः ॥ १४ ॥ प्रजालंकारभूतं

च जनस्यानन्दवर्धनम् । उत्सुकोऽभूज्जनोद्रष्टुं तमयोध्यामहोत्सवम् ॥१५॥ एवं तज्जनसंबाधं राजमार्गं पुरोहितः । व्यूहन्निव जनौघं तं शनै राजकुलं ययौ ॥ १६ ॥

टीका—इधर वसिष्ठजी राजभवन के सदृश रामभवन से निकलकर मार्ग को लोगों से भरा हुआ देखते भए ॥ १३ ॥ (पुरोहित को देखकर) राजमार्ग में स्थित लोगों की हर्ष ध्वनि मानों सागर की ध्वनि सी प्रकट हुई, जोकि लोगों के दलों के दल रूपी लहरों से प्रकट हुई ॥१४॥ प्रजा के भूषणभूत, लोगों के आनन्द बढाने वाले अयोध्या के उस महोत्सव को देखने के लिये लोग उत्सुक थे ॥१५॥ इसप्रकार लोगों से भरे हुए उस राजमार्गमें जनसमुदाय मे रस्ता लेता हुआ पुरोहित धीरे २ राजभवन को गया ॥ १६॥

मूल—समागतमभिप्रेक्ष्य हित्वा राजासनं नृपः । पप्रच्छस च तस्मै तत् कृतमित्यभ्यवेदयत् ॥१७॥ तेन चैव तदा तुल्यं सहासीनाः सभासदः । आसनेभ्यः समुत्तस्थुः पूजयन्तः पुरोहितम् ॥ १८ ॥ गुरुणा त्वभ्यनुज्ञातो मनुजौघं विसृज्य तम् । विवेशान्तः पुरं राजा सिंहो गिरिगुहामिव ॥ १९ ॥

टीका—उसको आता देख राजा राजासन से उठकर पूछते भए, तब पुरोहितने बतलाया, कि सारा कृत्य करा दिया है ॥ १७ ॥ राजा के साथ बैठे हुए सारे ही सभासद पुरोहित की पूजा करते हुए अपने२ आसनों से उठ खड़े हुए ॥१८॥गुरु से अनुज्ञा दिया हुआ राजा सब को विसर्जन करके अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ जैसे सिंह पर्वत की कन्दरा में ॥ १९ ॥

सर्ग ६ (व० ६) मन्थरा और कैकेयी की बातचीत

मूल—ज्ञातिदासी यतो जाता कैकेय्या सहोपिता । प्रासादं चन्द्र-

संकाशमारुरोह यदृच्छया ॥१॥ सिक्तराजपथां रम्यां प्रकीर्णकमलोत्पलाम् । अयोध्यां मन्थरा तस्मात्प्रासादादन्ववैक्षत ॥ २ ॥ पताकाभिर्वरार्हाभिर्ध्वजैश्च समलंकृताम् । संप्रहृष्टजनाकीर्णां ब्रह्मघोषानिनादिताम् ॥ ३ ॥ हृष्टप्रमुदितैः पौरैरुच्छ्रितध्वजमालिनीम् । अयोध्यां मन्थरा दृष्ट्वा परं विस्मयमागता ॥ ४ ॥

टीका—ज्ञातिदासी (मैकेदासी) जिसके जन्म का पता नहीं, किंतु कैकयी के साथ रही थी, वह चन्द्रतुल्य प्रसाद (महल) पर अचानक चढ़ी ॥१॥ उस मन्थरा ने प्रासाद से देखा, कि अयोध्या बड़ी सुहावनी बन रही है, उसके राजपथों में (सुगन्धित जलों का) छिड़काव होगया है और उन पर कमल फूल बिखरे हुए हैं ॥२॥ चुने हुए पुरुषों के योग्य झण्डियों से और झण्डों से शोभायमान है, हर्ष से भरे हुए लोगों से भरी हुई है, वेदध्वनि से गूंज रही है ॥ ३ ॥ हर्ष और मोद से भरे हुए पुरवासी उसमें ध्वजाएं ऊंची कर रहे हैं, अचानक अयोध्या की ऐसी धूमधाम को देखकर मन्थरा बड़े अचम्भे को प्राप्त भई ॥ ४ ॥

मूल—सा हर्षोत्फुल्लनयनां पाण्डुरक्षौमवासिनीम् । अविदूरे स्थितां दृष्ट्वा धात्रीं पप्रच्छ मन्थरा ॥५॥ उत्तमेनाभिसंयुक्ता हर्षेणार्थपरा सती । राममाता धनं किं नु जनेभ्यः संप्रयच्छति ॥६॥ अतिमात्रं प्रहर्षः किं जनस्यास्य च शंस मे । कारयिष्यति किं वापि संप्रहृष्टो महीपतिः ॥७॥ विदीर्यमाणा हर्षेण धात्रीतु परया मुदा । आचचक्षेऽथ कुब्जायै भूयसीं राघवे श्रियम् ॥८॥ श्वः पुष्येण जितक्रोधं यौवराज्येन चानघम् । राजा दशरथो राममभिषेक्ता हि राघवम् ॥९॥

टीका—तब मन्थरा ने हर्ष से खिले हुए नेत्रोंवाली, शुद्ध रेशमी वस्त्र पहने हुए निकट ही (कौसल्या के महल पर) स्थित (राम की)

धाया से पूछा ॥ ५ ॥ आज क्या है बड़े हर्ष से भरी हुई राम-माता तत्पर हुई लोगों को धन बांट रही है ॥ ६ ॥ लोगों का यह अतिमात्र प्रहर्ष कैसा है, और खुश २ राजा * क्या करना चाहता है, यह मुझे बतला ॥ ७ ॥ हर्ष से फूटती हुई धाया ने परम हर्ष के साथ कुब्जा को बतलाया कि राम को भूयसी राज्य लक्ष्मी दी जाने वाली है ॥ ८ ॥ कल पुष्य नक्षत्र में जीते हुए क्रोध वाले निष्पाप राम को राजा यौवराज्य में तिलक देगा

मूल—धात्र्यास्तु वचनं श्रुत्वा कुब्जा क्षिप्रममर्षिता । कैलासशिखराकारात्प्रासादादवरोहत ॥ १० ॥ सा दह्यमाना क्रोधेन मन्थरा पापदर्शिनी । शयानामेत्य कैकेयीमिदं वचनमब्रवीत ॥ ११ ॥ उत्तिष्ठ मूढे किं शेषे भयं त्वामभिवर्तते । उपप्लुतमघौघेन नात्मानमवबुध्यसे ॥ १२ ॥ अनिष्टे सुभगाकारे सौभाग्येन विकत्थसे । चलं हि तव सौभाग्यं नद्याःस्रोत इवोष्णगे ॥ १३ ॥ एवमुक्ता तु कैकेयी रुष्टया परुषं वचः । कुब्जया पापदर्शिन्या विषादमगमत्परम् ॥ १४ ॥ कैकेयी त्वब्रवीत्कुब्जां कच्चित्क्षेमं नु मन्थरे । विषण्णवदनां हि त्वां लक्षये भृशदुःखिताम् ॥ १५ ॥ सा विषण्णतरा भूत्वा कुब्जा तस्य हितैषिणी । विषादयन्ती प्रोवाच भेदयन्ती च राघवम् ॥ १६ ॥

टीका—धाया के वचन को सुन कर कुब्जा क्रोध से भरी हुई कैलास की चोटी के तुल्य महल से जल्दी उतर आई ॥ १० ॥ वह क्रोध से जलती हुई पापदर्शिनी मन्थरा लेटी हुई कैकयी के पास आ यह वचन बोली ॥ ११ ॥ उठ हे भोली, क्यों लेट रही है, भय तेरे सामने आ गया है, दुःख के समूह से घिरा

* राजा दरबार से उठकर पहले कौसल्या के भवन में गया है, जिसको खुश २ मन्थरा ने देखा ॥

हुआ तू अपने आप को नहीं समझती है ॥ १२ ॥ हे (अन्दर से राजा की) न प्यारी हे सौभाग्यवतियों की तरह भासने वाली ! क्या तू सौभाग्य से अपने आप को सराहा करती है (मेरा स्वामी सब से बढ़कर मुझ में अनुरक्त है, सदा मेरा प्रिय चाहता है, इत्यादि प्रकार से वृथा श्लाघा किया करती है) तेरा सौभाग्य क्षीण होने को है, जैसे गर्मी में नदी का प्रवाह ॥१३॥ इस प्रकार जब रुष्ट हुई पापदर्शिनी कुब्जा ने कैकेयी को कठोर वचन कहा, तो वह बड़े विषाद को प्राप्त भई ॥ १४ ॥ कैकेयी कुब्जा से बोली, क्या मन्थरे ! कुशल तो है, मैं तुझे उदास मुख और अत्यन्त दुःखी देखती हूं ॥१५॥ और भी अधिक उदास होकर कुब्जा जो कैकेयी की हितैषिणी है, कैकेयी को विषाद उत्पन्न करती हुई और दशरथ से भेद उत्पन्न करती हुई बोली ॥

मूल-अक्षयं सुमहद्देवि प्रवृत्तं त्वद्विनाशनम् ! रामं दशरथो राजा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥१७॥ साऽस्म्यगाधे भये मग्ना दुःखशोकसमन्विता । दह्यमानानलेनेव त्वद्धितार्थमिहागता ॥ १८ ॥ तव दुःखेन कैकेयी मम दुःखं महद्भवेत् । त्वद्वृद्धौ मम वृद्धिश्च भवेदत्र न संशयः ॥ १९ ॥ नराधिपकुले जाता महिषी त्वं महीपतेः । उग्रत्वं राजधर्माणां कथं देवि न बुध्यसे ॥ २० ॥ उपस्थितं प्रयुञ्जानस्त्वयि सान्त्वमनर्थकम् । अर्थेनैवाद्य ते भर्ता कौसल्यां योजयिष्यति ॥ २१ ॥

टीका-हे देवी ! किसी तरह पूरी न होने वाली बहुत बडी तेरी हानि होने लगी है, राजा दशरथ राम को युवराज बनाएगा ॥ १७॥ सो मैं दुःख शोक से युक्त हुई अगाध भय में डूब गई हूं आग से जलती हुई सी मैं तेरे हित के लिये यहां आई हूं १८

तेरे दुःख से हे कैकेयि ! मुझे बडा दुःख होगा और तेरी वृद्धि में मेरी वृद्धि होगी, इस में संशय नहीं ॥१९॥ राजा की कुल में उत्पन्न होकर और राजा की रानी होकर हे देवि ! तू राज-धर्मों की भयंकरता को क्यों नहीं समझती है ॥२०॥ हर एक अवसर पर व्यर्थ ही तुझे तसल्ली देता हुआ तेरा भर्ता अर्थ से आज कौसल्या को ही युक्त करेगा ॥२१॥

मूल–अपवाह्य तु दुष्टात्मा भरतं तव बन्धुषु । काल्ये स्थापयिता रामं राज्ये निहतकण्टके ॥ २२ ॥ सा प्राप्तकालं कैकेयि क्षिप्रं कुरु हितं तव । त्रायस्व पुत्रमात्मानं मां च विस्मयदर्शने ॥२३॥ मन्थराया वचः श्रुत्वा शयनात्सा शुभानना । उत्तस्थौ हर्षसंपूर्णा चन्द्रलेखेव शारदी ॥२४॥ अतीव सा तु संतुष्टा कैकेयी विस्मयान्विता । दिव्यमाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रददौ शुभम् ॥ २५ ॥

टीका–मन में खोट रख कर ही भरतको तेरे बन्धुओं में (नानके) निकाल कर अवसर पाकर निष्कण्टक राज्य में राम को स्थापन करेगा ॥२२॥ अभी समय है, हे कैकेयि ! जल्दी अपना हित कर, हे हैरानी देखने वाली पुत्र को, अपने आप को और मुझ को बचा ॥२३॥ मन्थरा के वचन को सुन कर लेटी हुई वह सुन्दरमुखवाली हर्ष से पूर्ण हुई शरद ऋतु की चन्द्र लेखा की तरह उठ बैठी ॥२४॥ अत्यन्त प्रसन्न हुई और आश्चर्य हुई कैकेयी ने एक शुभ भूषण उतार कर कुब्जा को दिया (और कहा) ॥२५॥

मूल–+इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यातं परमं प्रियम् । एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते ॥२६॥+रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये । तस्मात्तुष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति २७

+न मे परं किंचिदितो वरं पुनः प्रियं प्रियार्हे सुवचं वचोऽमृतम् । तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं वरं परं ते प्रददामि तं वृणु २८

टीका–हे मन्थरा यह तो मुझे तू परमप्रिय बात कह रही है, यह तूने मुझे प्रिय बतलाया है, कहो और क्या तुझे प्रीतिदान करूं ॥२६॥ राम में वा भरत में मैं कोई भेद नहीं देखती हूं, इस लिये प्रसन्न हुई हूं, कि राजा राम को तिलक देगा ॥२७॥ हे प्रीतिदान के योग्य ! यह तूने ऐसा वचन कहा है, इस से बढ़ कर तू मेरे लिए और कोई उत्तम वचन नहीं कह सकती है, सो इस प्रीतिदान के पीछे और तुझे उत्तम वर देती हूं, उस को मांग ले ॥२८॥

सर्ग ६ (व०६) मन्थरा की कैकयी को खोटी प्रेरणा

मूल–मन्थरा त्वभ्यसूयैनामुत्सृज्याभरणं हि तत् । उवाचेदं ततो वाक्यं कोपदुःखसमन्विता ॥१॥ हर्षं किमिदमस्थाने कृतवत्यसि बालिशे । शोकसागरमध्यस्थं नात्मानमवबुद्ध्यसे ॥२॥ मनसा प्रहसामि त्वां देवि दुःखार्दिता सती । यच्छोचितव्ये हृष्टासि प्राप्य त्वं व्यसनं महत् ॥३॥ भरतादेव रामस्य राज्यसाधारणाद्भयम् । तद्विचिन्त्य विषण्णास्मि भयं भीताद्धि जायते ॥४॥ लक्ष्मणो हि महाबाहू रामं सर्वात्मना गतः । शत्रुघ्नश्चापि भरतं काकुत्स्थं लक्ष्मणो यथा ॥५॥ प्रत्यासन्नक्रमेणापि भरतस्यैव भामिनि । राज्यक्रमो विप्रकृष्टस्तयोस्तावद्यवीयसोः ॥ ६ ॥

टीका–पर मन्थरा इस को दोष दृष्टि से देख कर उस भूषण को फैंक कर कोप और दुःख से युक्त हुई यह वाक्य बोली ॥१॥ हे भोलिये किस लिये अस्थान में (बेमौका) हर्ष कर रही है तू शोक सागर के मध्य में स्थित अपने आप को नहीं समझती है

॥२॥ हे देवि ! दुःख से पीड़ित हुई मैं मन से तेरे ऊपर हंसती हूं, जिस लिए तू इस भारी विपद् को पाकर शोक की जगह हर्ष मना रही है ॥३॥ राज्य के सांझा होने से राम को भरत से ही भय है, यह सोच कर मैं दुःखी हो रही हूं, क्योंकि भीत से भय उत्पन्न होता है(जो जिस से भीत है,वह उस के लिये भय खड़ा करता है) ॥४॥ क्योंकि महाबाहु लक्ष्मण तो पूरे तौर पर रामके आश्रय है और शत्रुघ्न उसी तरह भरत की ओर है, जैसे लक्ष्मण राम की ॥ ५ ॥ निकटता के क्रम से भी हे भामिनि ! भरत को ही राज्य क्रमप्राप्त है, दूसरे दोनों छोटे हैं, उनसे दूर जापड़ता है ॥

मूल–विदुषः क्षत्रचारित्रे प्राज्ञस्य प्राप्तकारिणः । भयात्प्रवेपे रामस्य चिन्तयन्ती तवात्मजम् ॥७॥ सुभगा खलु कौसल्या यस्याः पुत्रोऽभिषेक्ष्यते । उपस्थास्यसि कौसल्यां दासीव त्वं कृताञ्जलिः ॥८॥ एवं चत्वं सहास्माभिस्तस्याः प्रेष्या भविष्यसि पुत्रश्च तव रामस्य प्रेष्यभावं गमिष्यति ॥९॥तांदृष्ट्वा परम प्रीतां ब्रुवन्तीं मन्थरां ततः । रामस्यैव गुणान्देवी कैकेयी प्रशशंसह ॥

टीका–क्षत्रचारित्र (आपस में मिलाने फोड़ने आदि) में निपुण, दाना, मौका न चूकने वाले, राम से तेरे पुत्र के प्रति भावी अनर्थ को सोचती हुई मैं भय से कांप रही हूं ॥७॥ कौसल्या सच मुच सौभाग्यवती है, जिस के पुत्र को कल तिलक होगा, तू दासी की तरह हाथ बांध कर कौसल्या की सेवा में उपस्थित हुआ करेगी ॥८॥ इस तरह तू हमारे समेत उस की चाकर होगी और तेरा पुत्र राम का चाकर होगा ॥९॥ मन्थरा को बड़ी प्रसन्न बोलती हुई देख कर राम के ही गुणों को कैकेयी फिर सराहने लगी ॥१०॥

मूल—+धर्मज्ञो गुणवान्दान्तः कृतज्ञः सत्यवाक्छुचिः । रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति ॥११॥ भ्रातॄन्भृत्यांश्च दीर्घायुः पितृवत्पालयिष्याति । संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ॥१२॥+यथा मे भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपिराघवः । कौसल्यातोऽतिरिक्तं च स तु शुश्रूषते हि मां ॥१३॥+राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा । मन्यते हि यथात्मानं तथा भ्रातॄंस्तु राघवः ॥१४॥ कैकेय्या वचनं श्रुत्वा मन्थरा भृशदुःखिता । दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥१५॥

टीका—राम राजा का ज्येष्ठ पुत्र है, धर्मज्ञ, गुणवान, दमनशील कृतज्ञ, सत्यवादी और पवित्र है, इस लिये वह युवराज होने के योग्य है ॥११॥ वह दीर्घायु भाईयों को और भृत्यों को पितृवत् पालन करेगा, हे कुब्जे तू रामाभिषेक को सुन कर क्यों संतप्त हो रही है ॥१२॥ भरत जैसा मुझे मान्य है, राम उन से बढ़कर है और वह भी कौसल्या से बढ़कर मेरी सेवा करता है ॥१३॥ राज्य यदि राम का है, तो वह भरत का भी है, राम अपने भाईयों को अपने जैसा समझता है ॥१४॥ कैकेयी के वचन को सुन कर मन्थरा अत्यन्त दुःखित हुई लम्बा उष्ण सांस भर कर कैकेयी से यह वचन बोली ॥१५॥

मूल—अनर्थदर्शिनी मौर्ख्यान्नात्मानमवबुद्ध्यसे । शोकव्यसन विस्तीर्णे मज्जन्ती दुःखसागरे ॥ १६ ॥ भविता राघवो राजा राघवस्यानुयःसुतः । राजवंशात्तु भरतः कैकेयि परिहास्यते ॥१७ असावत्यन्तनिर्भग्नस्तव पुत्रो भविष्यति । अनाथवत्सुखेभ्यश्च राजवंशाच्च वत्सले ॥१८॥ साहं त्वदर्थे संप्राप्ता त्वं तु मां नाववुद्ध्यसे । सपत्निवृद्धौ या मे त्वं प्रदेयं दातुमिच्छसि ॥१९॥ ध्रुवं तु भरतं

रामः प्राप्य राज्यमकण्टकम् । देशान्तरं नाययिता लोकान्तरमथापि वा ॥२०॥ गोप्ता हि रामं सौमित्रिर्लक्ष्मणं चापि राघवः । तस्मान्न लक्ष्मणे रामः पापं किंचित्करिष्यति ॥२१॥

टीका—तू अनर्थ देखेगी, जो शोक विपद् के फैले हुए दुःखसागर में डूबती हुई तू अपने आप को नहीं समझती है ॥१६॥ राम राजा होगा राम के पीछे उस का पुत्र होगा। राजवंश से हे कैकेयि ! भरत अलग होजाएगा ॥१७॥ वह तेरा पुत्र सुखों से और राज वंश से अनाथ की तरह अत्यन्त दूर फैंका जाएगा ॥१८॥ सो मैं तेरे लिये प्राप्त हुई हूं, पर तू मुझे नहीं समझती है, सौतिन की वृद्धि में जो तू मुझे पारितोषिक देना चाहती है ॥१९॥ निःसन्देह राम अकण्टक राज्य को पाकर भरत को या तो देशान्तर में हांकेगा, वा लोकान्तर में पहुंचाएगा ॥२०॥ लक्ष्मण राम की रक्षा करेगा और राम लक्ष्मण की। इस लिये राम लक्ष्मण के विषय में कोई बुराई नहीं करेगा ॥२१॥

मूल—रामस्तु भरते पापं कुर्यादेव न संशयः । तस्माद्राजगृहादेव वनं गच्छतु ते सुतः ॥२२॥ एवं ते ज्ञातिपक्षस्य श्रेयश्चैव भविष्यति। यदि चेद्भरतो धर्मात्पित्र्यं राज्यमवाप्स्यति ॥२३॥ यदा हि रामः पृथिवीमवाप्स्यते ध्रुवं प्रणष्टो भरतो भविष्यति । अतो हि संचिन्तय राज्यमात्मजे परस्य चैवाद्य विवासकारणम् ॥२४॥

टीका—पर राम भरत के विषय में पाप करेगा इसमें कोई संशय ही नहीं। इस लिये तेरा पुत्र केकयराज के घर से ही वन को चला जाए ॥२२॥ इस प्रकार तेरे ज्ञातिपक्ष का भला होगा। अथवा (तब भला होगा) यदि भरत धर्म से पिता के राज्य को प्राप्त होगा ॥२३॥ आज ही जब राम राज्य को प्राप्त होगा, तो यह

अटल है, कि भरत नाश होजाएगा, इस लिये अपने पुत्र के लिये राज्य की और शत्रु को निकालने की चिन्ता कर ॥२४॥

सर्ग ७ (व० ९) कैकेयी का प्रेरा जाना

मूल–एवमुक्ता तु कैकेयी क्रोधेन ज्वलितानना। दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य मन्थरामिदमब्रवीत् ॥१॥ अद्य रामभितः क्षिप्रं वनं प्रस्थापयाम्यहम्। यौवराज्येन भरतं क्षिप्रमेवाभिषेचये ॥२॥ इदं त्विदानीं संपश्य केनोपायेन मन्थरे। भरतः प्राप्नुयाद्राज्यं न तु रामः कथंचन ॥३॥ एवमुक्ता तु सा देव्या मन्थरा पापदर्शिनी। रामार्थमुपहिंसन्ती कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥४॥

टीका–ऐसा कहने पर कैकेयी का मुख क्रोध से लाल हो गया, और वह लंबा गर्म सांस भरकर मन्थरा से यह बोली ॥ १ ॥ अभी मैं राम को जल्दी यहां से बन को भिजवाती हूं, और यौवराज्य में जल्दी ही भरत का अभिषेक करवाती हूं ॥ २ ॥ पर अब इस बात को देख हे मन्थरे! किस उपाय से भरत राज्य को प्राप्त हो, और राम किसी तरह न प्राप्त हो ॥ ३ ॥ जब रानी ने उसे ऐसा कहा, तो वह पापदर्शिनी मन्थरा राम के अर्थ को नाश करती हुई कैकेयी से यह बोली ॥ ४ ॥

मूल–हन्तेदानीं प्रपश्य त्वं कैकेयि श्रूयतां वचः। यथा ते भरतो राज्यं पुत्रः प्राप्स्यति केवलम् ॥५॥ किं न स्मरसि कैकेयि स्मरन्ती वा निगूहसे। यदुच्यमानमात्मार्थं मत्तस्त्वं श्रोतुमिच्छसि ॥६॥ मयोच्यमानं यदि ते श्रोतुं छन्दो विलासिनि। श्रूयतामभिधास्यामि श्रुत्वा चैतद्विधीयताम् ॥ ७ ॥ पुरा देवासुरे युद्धे सह राजर्षिभिः पतिः। अगच्छत् त्वामुपादाय देवराजस्य साह्यकृत् ॥८॥

टीका–हन्त! ध्यान देकर तू हे कैकेयि! मेरा वचन सुन, जिस

प्रकार कि तेरा पुत्र भरत ही अकेले राज्य को प्राप्त हो ॥ ५ ॥ क्या तुझे स्मरण नहीं है कैकेयी ! वा स्मरण करती हुई छिपाती है, जो तू मुझ से कहे हुए अपने प्रयोजन को सुनना चाहती है ॥ ६ ॥ हे विलासिनि ! यदि मुझ से कहा हुआ ही सुनने की तेरी इच्छा है, तो सुन, मैं कहती हूं, और सुन करके उस को विचार ॥ ७ ॥ पूर्व देवासुर युद्ध में राजऋषियों के साथ तेरा पति तुझे लेकर देवराज की सहायता के लिये गया था ॥ ८ ॥

मूल–दिशमास्थाय कैकेयि दक्षिणां दण्डकान्प्रति । वैजयन्तमिति ख्यातं पुरं यत्र तिमिध्वजः ॥९॥ स शम्बर इति ख्यातः शतमायो महासुरः । ददौ शक्रस्य संग्रामं देवसंघैरनिर्जितः ॥१०॥ तस्मिन्म हति संग्रामे पुरुषान्क्षतविक्षतान् । रात्रौ प्रसुप्तान्घ्नन्ति स्म तरसा-ऽपास्य राक्षसाः ॥११॥ तत्राकरोन्महद्युद्धं राजा दशरथस्तदा । असुरैश्च महाबाहुः शस्त्रैश्च शकलीकृतः ॥१२॥

टीका–दक्षिण दिशा में दण्डक के अन्दर वैजयन्तपुर में जहां मत्स्यध्वज राजा था ॥ ९ ॥ वह लोक में शम्बर नाम से प्रसिद्ध महादैत्य थ, जो कि पहले किसी से जीता नहीं गया था, उस ने देवसमूहों समेत इन्द्र को संग्राम दिया ॥ १० ॥ उस बड़े संग्राम में राक्षस लोग (दिन के युद्ध से थके हुए–) रात के समय सोए हुए क्षत विक्षत पुरुषों को बल से खींच लेजाकर मार डालते थे ॥ ११ ॥ वहां (रात के समय) महाबाहु राजा दशरथ ने असुरों के साथ बड़ा भारी युद्ध किया और शस्त्रों से (सारे अंगों में) क्षत हुआ–॥१२॥

मूल–अपवाह्य त्वया देवि संग्रामान्नष्टचेतनः । तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया ॥ १३ ॥ तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौ वरौ

शुभदर्शने । स त्वयोक्तः पतिर्देवि यदेच्छेयं तदा वरम्॥१४॥
गृह्णीयामिति तत् तेन तथेत्युक्तं महात्मना । अनभिज्ञा ह्यहं देवि
त्वयैव कथितं पुरा॥१५॥कथैषा तव तु स्नेहान्मनसा धार्यते मया।
रामाभिषेकसंभारान्निगृह्य विनिवर्तय ॥ १६ ॥ तौ वरौ याच भर्तारं
भरतस्याभिषेचनम्। प्रवासनं च रामस्य वर्षाणि हि चतुर्दश॥१७॥

टीका–अचेतन हो गया, तब वहां से हे देवि! शस्त्रों से क्षत हुए अपने पति को संग्राम से निकालकर अपना पति तूने ही बचाया था ॥ १३ ॥ हे शुभदर्शने! उस ने प्रसन्न होकर तब तुझे दो वर दिये थे, हे देवि! तब तूने पति को कहा था, कि जब मैं चाहूं, तब दोनों वर ॥१४॥ ले सकूं, तब उस महात्मा ने कहा, "तथास्तु' (यह कथा है) मुझे तो इस की खबर न थी, हे देवि! तूने ही मुझे कहा था ॥ १५ ॥ तेरे स्नेह से मैंने इस कथा को मन से धारण किया हुआ है। इस के बल से अब तू पति को जीत कर राम के अभिषेक के संभारों को पलट दे ॥ १६ ॥ वह दो वर भर्ता से यह मांग, कि भरत को अभिषेक हो, और राम को चौदह वर्ष बनवास हो ॥ १७ ॥

मूल–चतुर्दश हि वर्षाणि रामे प्रव्राजिते वनम्। प्रजाभावगतस्नेहः
स्थिरः पुत्रो भविष्यति ॥ १८ ॥ क्रोधागारं प्रविश्याद्य क्रुद्धेवाश्व-
पतेः सुते । शेष्वानन्तर्हितायां त्वं भूमौ मलिनवासिनी ॥ १९ ॥
दयिता त्वं सदा भर्तुरत्र मे नास्ति संशयः। त्वत्कृते च महाराजो
विशेदपि हुताशनम् ॥ २० ॥ न त्वां क्रोधयितुं शक्तो न क्रुद्धां
प्रत्युदीक्षितुम् । तव प्रियार्थं राजा तु प्राणानपि परित्यजेत्
॥ २१॥ न ह्यतिक्रमितुं शक्तस्तव वाक्यं महीपतिः। मन्दस्वभावे
बुध्यस्व सौभाग्यबलमात्मनः ॥ २२ ॥

टीका–जब राम चौदह बरस तक वन में निकाला गया, तो इतने में तेरे पुत्र का स्नेह प्रजा के हृदयों में खुभजाने से तेरा पुत्र स्थित हो जाएगा ॥१८॥ हे अश्वपति की कन्या क्रोधघर (क्रोधागार) में क्रुद्ध हुई की तरह प्रवेश कर, और मैले वस्त्र पहनकर बिनढ की भूमि पर लेट जा ॥१९॥ तू सदा भर्ता की प्यारी है इस में मुझे संशय नहीं, तेरे लिए महाराज अग्नि में कूद सक्ता है ॥२०॥ न वह तुझे क्रुद्ध कर सक्ता है न क्रुद्ध हुई देख सक्ता है, तेरे प्रिय के लिए राजा प्राणों को भी त्याग सक्ता है ॥२१॥ राजा तेरे वाक्य को उलांघ नहीं सक्ता, हे भोले स्वभाव वाली अपने सौभाग्यबल को समझ ॥२२॥

मूल–मणिमुक्तासुवर्णानि रत्नानि विविधानि च। दद्यादशरथो राजा मास्म तेषु मनः कृथाः॥२३॥यौ तौ देवासुरे युद्धे वरौ दशरथो ददौ। तौ स्मारय महाभागे सोऽर्थो न त्वा क्रमेदति ॥२४॥ यदा तु ते वरं दद्यात्स्वयमुत्थाप्य राघवः। व्यवस्थाप्य महाराजं त्वमिमं वृणुया वरम् ॥२५॥ रामं प्रव्राजयारण्ये नव वर्षाणि पञ्च च। भरतः क्रियतां राजा पृथिव्यां पार्थिवर्षभ ॥ २६ ॥ चतुर्दश हि वर्षाणि रामे प्रव्राजिते वनम्। रूढश्च कृतमूलश्च शेषं स्थास्यति ते सुतः ॥२७॥ एवं प्रव्राजितश्चैव रामोऽरामो भविष्यति। भरतश्च हतामित्रस्तव राजा भविष्यति ॥ २८ ॥

टीका–राजा दशरथ अनेक प्रकार के मणि, मोती, सोना, रत्न देगा, उन में मन मत देना ॥२३॥ किन्तु देवासुर युद्ध में जो वह दोनों वर तुझे महाराज ने दिये हैं, हे महाभागे! उन का स्मरण कराना, यह प्रयोजन तेरे हाथ से न निकल जाए ॥२४॥ जब दशरथ स्वयं उठा करके तुझे वर देवे, तब तू महाराज को

पक्का करके फिर उन से यह वर मांग ॥२५॥ राम को चौदह बरस वन में निकाल दे, और हे राजश्रेष्ठ! भरत को पृथिवी का राजा बना ॥२६॥ चौदह बरस जब राम बन में निकाला गया, तो तेरा पुत्र फैलेगा और जड़ पकड़ जाएगा, फिर आगे भी वही राजा रहेगा ॥२७॥ इस तरह निकाला जाने पर राम-राम नहीं रहेगा और तेरा भरत हतशत्रु होकर राजा होगा ॥२८॥

मूल—प्राप्तकालं तु मन्येऽहं राजानं वीतसाध्वसा। रामाभिषेकसंकल्पान्निगृह्य विनिवर्तय ॥२९॥ तथा प्रोत्साहिता देवी गत्वा मन्थरया सह। क्रोधागारं विशालाक्षी सौभाग्यमदगर्विता॥३०॥अवमुच्य वरार्हाणि शुभान्याभरणानि च। संविश्य भूमौ कैकेयी मन्थरामिदमब्रवीत्॥३१॥इह वा मां मृतां कुब्जे नृपायावेदयिष्यसि वनं वा राघवे प्राप्ते भरतः प्राप्स्यते क्षितिम् ॥३२॥ सुवर्णेन न मे ह्यर्थो न रत्नैर्नच भूषणैः।एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते

मूल—सो मैं तेरे लिए यह अवसर हाथ आया हुआ जानती हूं, निडर होकर राजा को हराकर राम के अभिषेक की सामग्री को पलट दे ॥२९॥ इस तरह उत्तेजना दी हुई विशाल नेत्रों वाली रानी मन्थरा के साथ क्रोध घर में जाकर सौभाग्य मद में गर्ववाली॥३०॥ कैकयी बहुमूल्य शुभ भूषणों को उतार कर पृथिवी पर लेट कर मन्थरा से यह बोली ॥३१॥ हे कुब्जे अब या तो मेरी बाबत राजा को बतलाएगी, कि वह मर गई, अथवा राम वन को जाएगा और भरत पृथिवी को प्राप्त होगा ॥३२॥ मुझे न सुवर्ण से न रत्नों से न भूषणों से प्रयोजन है, यह मेरे जीवन का अन्त है, यदि राम को तिलक हो ॥३३॥

सर्ग ८ (व० १०) राजा की कैकयी से प्रतिज्ञा

मूल—प्रियार्हां प्रियमाख्यातुं विवेशान्तःपुरं वशी। स कैकेय्या गृहं

श्रेष्ठं प्रविवेश महायशाः ॥ १ ॥ लतागृहैश्चित्रगृहैश्चम्पकाशोक-
शोभितैः। दान्तराजतसौवर्णवेदिकाभिः समायुतम् ॥ २ ॥ नित्य
पुष्पफलैर्वृक्षैर्वापीभिरुपशोभितम्। स प्रविश्य महाराजः स्वमन्तः
पुरमृद्धिमत् ॥ ३ ॥ न ददर्श स्त्रियं राजा कैकेयीं शयनोत्तमे।
अपश्यन्दयितां भार्यां पप्रच्छ विषसाद च॥४॥नहि तस्य पुरा देवी
तां वेलामत्यवर्तत। न च राजा गृहं शून्यं प्रविवेश कदाचन ॥५॥

टीका—इधर प्रिय के योग्या (पत्नी) को प्रिय कहने के लिये वह वशी दशरथ अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ, वह महायशस्वी कैकेयी के श्रेष्ठ घर में प्रविष्ट हुआ ॥१॥ जो बेलघरों से, चित्रघरों से और चम्पे और अशोक से शोभायमान है, हाथीदान्त, चांदी और सोने की वेदियों से युक्त है, सदा फल फूलवाले वृक्षों से और बावड़ियों से शोभायमान है, महाराज ऋद्धिवाले उस अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ ॥२,३॥ पर प्यारी कैकेयी को उत्तम शयन पर नहीं देखा, प्यारी भार्या को न देखते हुए राजा ने खिन्न होकर पूछा॥४॥ क्योंकि रानी ने इससे पहले कभी (राजा के आने के) समय को नहीं टाला था, और न कभी राजा शून्यघर में प्रविष्ट हुआ था॥५॥

मूल—प्रतीहारी त्वथोवाच संत्रस्ता सुकृताञ्जलिः।देव देवी भृशं क्रुद्धा
क्रोधागारमभिद्रुता॥६॥ प्रतीहार्या वचः श्रुत्वा राजा परमदुर्मनाः।
विषसाद पुनर्भूयो लुलितव्याकुलितेन्द्रियः ॥७ ॥ तत्र तां पतितां
भूमौ शयानामतथोचिताम्।प्रतप्त इव दुःखेनसोऽपश्यज्जगतीपतिः॥
८ ॥ स वृद्धस्तरुणीं भार्यां प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम्। अपापः
पापसंकल्पां ददर्श धरणीतले ॥९ ॥ परिमृश्य च पाणिभ्यामभि-
संत्रस्तचेतनः। कामी कमलपत्राक्षीमुवाच वनितामिदम् ॥ १० ॥

टीका—तब द्वारपालिका हाथ जोड़ भयभीत हुई बोली हे देव! देवी अत्यन्त क्रुद्ध हुई क्रोध घर में चली गई है ॥६॥ द्वारपालिका के

वचन को सुनकर राजा बड़ा दुर्मन हुआ और भी बढ़कर खिन्नहुआ (न देखनेका खेद,क्रोध को सुनकर और बढ़गया)और उसके इन्द्रिय सब घबरा गये ॥७॥ वहां (क्रोधागार में) उसको भूमी पर गिरी लेटी हुई-जो ऐसी अवस्था के योग्य नहीं-राजाने अत्यन्त दुःखित होकर देखा ॥८॥ उस वृद्ध ने तरुणी भार्या-जो प्राणों से बढ़कर प्यारी है-निष्पाप ने पापसंकल्पवाली को पृथिवीतल पर देखा ॥ ९ ॥ दोनों हाथों से स्पर्श करके, डरी हुई बुद्धिवाला कामी कमलनेत्रों वाली स्त्री से यह बोला ॥ १० ॥

मूल—न तेऽहमभिजानामि क्रोधमात्मनि संश्रितम् । देवि केनाभिशप्तासि केन वासि विमानिता॥११॥यदिदं मम दुःखाय शेषे कल्याणि पांसुषु । भूमौ शेषे किमर्थं त्वं मयि कल्याणचेतसि॥१२॥ न ते कंचिदभिप्रायं व्याहन्तुमहमुत्सहे । आत्मनो जीवितेनापि ब्रूहि यन्मनसि स्थितम् ॥१३ ॥ बलमात्मनि जानन्ती न मां शङ्कितुमर्हसि । करिष्यामि तव प्रीतिं सुकृतेनापि ते शपे ॥ १४ ॥

टीका—हे देवि ! मैं अपने आश्रित तेरा कोई क्रोध नहीं जानता हूं, किसने तुझे कठोर कहा है,वा अपमान किया है ॥११॥ जो यह मेरे दुःख के लिये हे कल्याणि ! तू धूल में लेट रही है,तू क्यों भूमि पर लेटी है,जबकि मैं तेरे लिये भला चित्त रखता हूं ॥ १२॥ मैं अपने जीवन के निमित्त भी तेरा कोई अभिप्राय नाश नहीं करसक्ताहूं, कहो जो तेरे मन में है ॥१३॥ अपने में (मेरे प्रेम रूप) बल को जानती हुई तुझे मेरे ऊपर शङ्का नहीं करनी चाहिये, तेरा प्रिय करूंगा अपने पुण्य की शपथ करता हूं ॥ १४ ॥

सर्ग ९ (व० १०, ११) कैकेयी का दोनों वर बतलाना

मूल—तथोक्ता सा समाश्वस्ता वक्तुकामा तदप्रियम् । परिपीडयितुं भूयो भर्तारमुपचक्रमे॥१॥नास्मि विप्रकृता देव केनचिन्नावमानिता

अभिप्रायस्तु मे कश्चित्तमिच्छामि त्वया कृतम्॥२॥ प्रतिज्ञां प्रतिजानीष्व यदि त्वं कर्तुमिच्छसि । अथ ते व्याहरिष्यामि यथाभिप्रार्थितं मया ॥३॥ तामुवाच महाराजः कैकेयीमीषदुत्स्मयः । अवलिप्ते न जानासि त्वत्तः प्रियतरो मम ॥४॥ मनुजो मनुजव्याघ्राद्रामादन्यो न विद्यते । तेन रामेण कैकेयि शपे ते वचनक्रियाम्

टीका—ऐसे कही हुई वह तसल्ली पकड़कर उस अप्रिय को कहना चाहती हुई भर्त्ता को अधिक पीडने का आरम्भ करती भई ॥१॥ हे देव ! न मेरा किसी ने बिगाडा है, न अपमान किया है, किन्तु मेरा कुछ अभिप्राय है, उस को आप से पूरा कराया चाहती हूं ॥२॥ यदि आप करना चाहते हैं तो प्रतिज्ञा कीजिये, तब मैं अभिप्राय कहूंगी ॥३॥ तब उस कैकयी को महातेजस्वी ने कुछ मुसकरा कर कहा, हे अभिमानिनि ! तू नहीं जानती है, कि मनुष्यों में श्रेष्ठ राम के सिवाय तुझ से बढ़ कर मुझे कोई और प्यारा नहीं है, * उस राम की हे कैकयी ! तेरे बचन को पूरा करने के लिए शपथ (सौगंद) करता हूं † ॥४, ५ ॥

मूल—बलमात्मनि पश्यन्तीन मां शङ्कितुमर्हसि । करिष्यामितव प्रीतिं सुकृतेनापि ते शपे ॥ ६ ॥ तेन वाक्येन संहृष्टा तमभिप्रायमात्मनः । व्याजहार महाघोरमभ्यागतमिवान्तकम् ॥७॥ स्मर राजन्पुरा वृत्तं तस्मिन्दैवासुरे रणे । यत्र त्वाऽच्यावयच्छत्रुस्तव जीवितमन्तरा ॥

टीका—अपने में (मेरे प्रेम के) बल को देखती हुई तुझे मुझपर शंका नहीं करनी चाहिये, तेरा प्रिय करूंगा, अपने पुण्य से भी

* कैसा सरल बचन है, राजा नहीं जानता कि अब कैकेयी राम के नाम से जल रही है ।

† अर्थात् यदि मैं तेरा बचन पूरा न करूं, तो मुझे राम का मुख देखना न मिले (पूरा करके भी तो यही फल मिला—सम्पादक) ॥

तेरे आगे शपथ करता हूं (अर्थात् मुझे पुण्य भी फलप्रद न हो, यदि तेरा प्रिय न करूं यह पहली शपथही फिर दुहराई है)॥६॥ इस वाक्य से सन्तुष्ट होकर वह सामने आए हुए यम की तरह,महा भयङ्कर अपना अभिप्राय कहनेलगी ॥ ७ ॥ स्मरणकर हे राजन् ! पूर्व वृत्तान्त को, वहां उस देवासुर संग्राम में (रात्रि युद्ध में) शत्रु ने तुझे ऐसा घायल किया, कि जीवन ही शेष रहगया था ॥ ८ ॥

मूल–तत्र चापि मया देव यत्त्वं समभिरक्षितः। जाग्रत्या यतमानायास्ततो मे प्राददा वरौ ॥ ९ ॥ तौ तु दत्तौ वरौ देव निक्षेपौ मृगयाम्यहम्। तवैव पृथिवीपाल सकाशे रघुनन्दन ॥ १० ॥ तत्प्रतिश्रुत्य धर्मेण न चेद्दास्यसि मे वरम्। अद्यैव हि प्रहास्यामि जीवितं त्वद्विमानिता ॥ ११ ॥ वाङ्मात्रेण तदा राजा कैकेय्या स्ववशं कृतः। प्रचस्कन्द विनाशाय पाशं मृग इवात्मनः ॥ १२॥ ततः परमुवाचेदं वरदं काममोहितम्। वरौ यौ तौ त्वया देव तदा दत्तौ महीपते ॥ १३ ॥ तौ तावदहमद्यैव वक्ष्यामि शृणु मे वचः। १४ ॥ अभिषेकसमारम्भो राघवस्योपकल्पितः। अनेनैवाभिषेकेण भरतो मेऽभिषिच्यताम् ॥ १५ ॥

टीका—हे देव! वहां मैंने आपको बचाया था, तब जागती हुई और यत्न करती हुई मुझको आपने दो वर दिये थे ॥ ९ ॥ वह दिये हुए दोनों वर हे देव हे पृथिवीपाल, हे सच्ची प्रतिज्ञावाले तेरे ही पास अमानत हैं, वही अब मैं लेने चाहती हूं ॥ १० ॥ सो धर्म से प्रतिज्ञा करके यदि मुझे वर नहीं देगा, तो आज ही तुझसे अपमानित हुई अपना जीवन त्याग दूंगी ॥ ११ ॥ इसतरह कैकेयी से अपने वश में किया हुआ राजा वाणिमात्र(हां हां करूंगा इस वाणी) से हिरण की तरह अपने नाश के लिये (कैकेयी से फैलाए) जाल में जापड़ा

१२ ॥ तब फिर काम से मोहित उस वरदाता से बोली, हे देव हे महीपते जो आपने दो वर मुझे दिये हुए हैं ॥ १३ ॥ वही अब कहती हूं, मेरे वचन को सुनिये ॥१४॥ यह अभिषेक की तय्यारी जो राम के लिये कीगई है, इसी अभिषेक से मेरे भरत को अभिषेक दीजिये ॥ १५ ॥

मूल–यो द्वितीयो वरो देव दत्तः प्रीतेन मे त्वया । तदा दैवासुरे युद्धे तस्य कालोऽयमागतः ॥ १६ ॥ नव पञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः । चीराजिनजटाधारी रामो भवतु तापसः ॥१७ ॥ एष मे परमः कामो दत्तमेव वरं वृणे । अद्यैव हि पश्येयं प्रयान्तं राघवं वने ॥१८॥ स राजराज भव सत्यसंगरः कुलं च शीलं च हि रक्ष जन्म च । परत्र वासे हि वदन्त्यनुत्तमं तपोधनाः सत्यवचो हितं नृणाम् ॥ १९ ॥

टीका–जो दूसरा वर हे देव तूने प्रसन्न होकर तब देवासुर संग्राम में मुझे दिया हुआ है, उसका काल यह आया है ॥ १६ ॥ राम-चीर, मृगछाला और जटाधारी तपस्वी बनकर चौदह वर्ष दण्डकवन में रहे ॥ १७ ॥ यह मेरी परम कामना है, मैं दिया हुआ ही वर मांगती हूं, आज ही राम को वन जाता हुआ देखूं ॥ १८ ॥ हे महाराज! आप सच्ची प्रतिज्ञावाले हैं, अपने कुल शील और जन्म (वंश) की रक्षा करें, परलोक वास में सत्य वचन ही मनुष्यों का सब से बढ़कर हितकारी होता है यह तपोधन जन कहते हैं ॥१९॥

सर्ग १० (व० १२) राजा की दीनता

मूल–ततः श्रुत्वा महाराजः कैकेय्या दारुणं वचः । चिन्तामभिसमापेदे मुहूर्तं प्रतताप च ॥१॥ प्रतिलभ्य ततः संज्ञां कैकेयी वाक्यतापितः । व्यथितो विक्लवश्चैव व्याघ्रीं दृष्ट्वा यथा मृगः ॥२॥ अहो धिगिति सामर्षो वाचमुक्त्वा नराधिपः । मोहमापे-

दित्वान्भूयः शोकोपहतचेतनः ॥३॥ चिरेण तु नृपः संज्ञां प्रति-
लभ्य सुदुःखितः । कैकेयीमब्रवीत्क्रुद्धो निर्दहन्निव चक्षुषा ॥४॥

टीका—तब महाराज कैकेयी के दारुण वचन को सुनकर चिन्तामें डूब गया, और कुछ देर के लिये मूर्छित होगया॥१॥इसके पीछे होश में आया, पर कैकेयी के वाक्य (के स्मरण) से तपाया हुआ वह इसतरह पीड़ित हुआ और घबरा गया जैसे व्याघ्री को देखकर हिरण॥२॥ बड़े क्रोध के साथ "शोक धिक्कार" इतना वचन कहकर राजा शोक से नष्ट हुई चेतना वाला फिर मूर्छित होगया ॥३॥ अब बड़े चिरसे होश में आकर बड़ा दुःखित हुआ राजा (लाल) नेत्र से दग्ध करते हुए की तरह क्रुद्ध होकर कैकेयी से यह वचन बोला ॥ ४ ॥

मूल—नृशंसे दुष्टचारित्रे कुलस्यास्य विनाशिनि । किं कृतं तव रामेण पापे पापं मयापि वा ॥५॥+यदा ते जननीतुल्यां वृत्तिं वहति राघवः । तस्यैव त्वमनर्थाय किंनिमित्तमिहोद्यता ॥६॥ जीव लोको यदा सर्वो रामस्याह गुणस्तवम् । अपराधं कमुद्दिश्य त्यक्ष्यामीष्टमहं सुतम् ॥७॥ परा भवति मे प्रीतिर्दृष्ट्वा तनयमग्रजम् । अपश्यतस्तु मे रामं नष्टं भवति चेतनम् ॥८॥

टीका—हे क्रूरे ! हे दुष्टचरित्रवाली ! हे इस कुल के नाश करने वाली! राम ने तेरा क्या किया है, अथवा हे पापे ! मैंने क्या अपराध किया है ॥५॥ जब राम तेरे प्रति माता के तुल्य बर्ताव करता है, तब उसी के अनर्थ के लिये तू किस तरह तय्यार होगई है ॥६॥ जब सभी लोग राम के गुणों की स्तुति करते हैं, तो मैं किस अपराध को लक्ष्य रखकर प्यारे पुत्र को त्यागूंगा ॥ ७ ॥ बड़े पुत्र राम को देखकर मुझे परम प्रीति होती है, और न देखते हुए की चेतना नष्ट होती है ॥८॥

मूल—तिष्ठेल्लोको विना सूर्यं सस्यं वा सलिलं विना । न तु रामं विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम् ॥९॥ तदलं त्यज्यतामेष निश्चयः पापनिश्चये । अपि ते चरणौ मूर्ध्ना स्पृशाम्येष प्रसीद मे ॥१०॥ इक्ष्वाकूणां कुले देवि संप्राप्तः सुमहानयम् । अनयो नयसंपन्ने यत्र ते विकृता मतिः ॥११॥ नहि किंचिदयुक्तं वा विप्रियं वा पुरा मम । अकरोस्त्वं विशालाक्षि तेन न श्रद्दधाम्यहम् ॥१२॥

टीका—दुनिया सूर्य के बिना रह सके, खेती पानी के बिना रह सके, पर राम के विना मेरा जीवन देह में नहीं रह सकता है ॥९॥ सो इस निश्चय को हे पापनिश्चयवाली ! सर्वथा छोड़दे तेरे पाओं पर सिर रखता हूं, यह मेरे ऊपर कृपा कर ॥ १० ॥ नीति से सम्पन्न इक्ष्वाकुओं की कुल में हे देवि ! वहुत बड़ी अनीति आगई, जब तेरी मति इस तरह बिगड गई ॥११॥ हे विशाल नेत्रों वाली ! तूने पहले कभी मेरा अयुक्त वा विप्रिय नहीं किया है, इस लिये मैं विश्वास नहीं करता हूं ॥१२॥

मूल—तस्य धर्मात्मनो देवि वने वासं यशस्विनः । कथं रोचयसे भीरु नववर्षाणि पञ्च च ॥१३॥ रोचयस्यभिरामस्य रामस्य शुभलोचने । तव शुश्रूषमाणस्य किमर्थं विप्रवासनम् ॥१४॥ रामो हि भरताद्भूयस्तव शुश्रूषते सदा । विशेषं त्वयि तस्मात्तु भरतस्य न लक्षये ॥१५॥ शुश्रूषां गौरवं चैव प्रमाणं वचनाक्रियाम् । कस्ते भूयस्तरं कुर्यादन्यत्र पुरुषर्षभात् ॥१६॥ ×सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम् । विद्या च गुरुशुश्रुषा ध्रुवाण्येतानि राघवे ॥१७॥+ न स्मराम्यप्रियं वाक्यं लोकस्य प्रियवादिनः । स कथं त्वत्कृते रामं वक्ष्यामि प्रियमप्रियम ॥१८॥ मम वृद्धस्य कैकेयि गतान्तस्य तपस्विनः । दीनं लालप्यमानस्य कारुण्यं कर्तुमर्हसि

टीका—कि किस तरह तू हे देवि ! उस धर्मात्मा यशस्वी का हे

भद्रे! चौदह वर्ष वनवास पसंद करती है ॥१३॥ हे सुहावने नेत्रों वाली! तेरी सेवा करने वाले उस सुन्दर राम का किस तरह तू देश का निकाला पसन्द करती है ॥१४॥ भरत से बढ़ कर राम सदा तेरी सेवा करता है, तेरे विषय में उस से भरत में कोई अधिकता नहीं देखता हूं ॥१५॥ राम से बढ़ कर और कौन तेरी सेवा, गौरव, प्रमाण और आज्ञा का मान करेगा १६ सचाई, दान, तप, त्याग, मित्रता, शुद्धि, सरलता, विद्या और गुरुओं की सेवा यह राम में सदा अटल हैं ॥१७॥ सारी दुनियां से प्रिय बोलने वाले राम का मैं एक भी अप्रिय वाक्य नहीं स्मरण करता हूं, तब किस तरह उस प्यारे राम को तेरे अर्थ अप्रिय कहूंगा ॥१८॥ मुझ वृद्ध बेचारे पर—जिस का अब अन्त काल निकट है और दीन होकर विलाप कर रहा है—हे कैकयी! तू दया करने योग्य है ॥१९॥

मूल—पृथिव्यां सागरान्तायां यत्किञ्चिदधिगम्यते। तत्सर्वं तव दास्यामि मा च त्वां मन्युराविशेत्॥२०॥अञ्जलिं कुर्मि कैकेयि पादौ चापि स्पृशामि ते। शरणं भव रामस्य माऽधर्मो मामिह स्पृशेत्॥२१

टीका—समुद्र पर्यन्त पृथिवी में जो कुछ पाया जाता है, वह सब तुझे दूंगा, मत तुझे शोक प्राप्त हो ॥२०॥ हे कैकेयि! हाथ जोड़ता हूं और पाओं छूता हूं, तू राम की रक्षक बन, मुझे यहां अधर्म न स्पर्श करे ॥२१॥

सर्ग ११ (व० १२) राजा का विलाप

मूल—इति दुःखाभिसंतप्तं विलपन्तमचेतनम्। घूर्णमानं महाराजं शोकेन समभिप्लुतम् ॥१॥ पारं शोकार्णवस्याशु प्रार्थयन्तं पुनः पुनः। प्रत्युवाचाथ कैकेयी रौद्रा रौद्रतरं वचः ॥२॥ यदि दत्वा वरौ राजन्पुनः प्रत्यनुतप्यसे। धार्मिकत्वं कथं वीर पृथिव्यां कथ-

यिष्यसि ॥३॥ यदा समेता बहवस्त्वया राजर्षयः सह। कथयिष्यन्ति धर्मज्ञ तत्र किं प्रतिवक्ष्यसि ॥४॥ यस्याः प्रसादे जीवामि या च मामभ्यपालयत्। तस्याः कृतं मया मिथ्या कैकेय्या इति वक्ष्यसि ॥५॥ किल्बिषं त्वं नरेन्द्राणां करिष्यसि नराधिप। यो दत्त्वा वरमद्यैव पुनरन्यानि भाषसे ॥६॥

टीका—इसप्रकार दुःखसे तपताहुआ विलाप करताहुआ अचेतनहोकर घूर्ण होता हुआ शोक से घेराहुआ महाराज! ।१। जो शोक समुद्र से पार लगानेकी बार २ प्रार्थना कर रहा है—उसको क्रूर कैकेयी क्रूरतर वचन बोली। २। यदि वर देके हे राजन् आप फिर पश्चाताप करते हैं, तो हे वीर पृथिवी में अपना धार्मिकपन कैसे कहेंगे। ३। जब बहुत राज ऋषि तेरे साथ मिलकर (मेरे वरदान के विषय में) पूछेंगे, तो आप क्या उत्तर देंगे। ४। क्या यह कहेंगे कि जिसके अनुग्रह से मैं जीता हूं, जिसने मुझे बचाया, उस कैकेयी को दियाहुआ वरदान मैंने मिथ्या किया है। ५। (अपने वंश के) राजों को हे राजन् आप अपयश का टीका लगा जाएंगे, जो वर देकर अभी फिर उलटा कहने लगे हैं ॥ ६ ॥

मूल—भवत्वधर्मो धर्मो वा सत्यं वा यदि वानृतम्। यत् त्वयासंश्रुतं मह्यं तस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥७॥ अहं हि विषमद्यैव पीत्वा बहु तवाग्रतः। पश्यतस्ते मरिष्यामि रामो यद्यभिषिच्यते ॥८॥ भरतेनात्मना चाहं शपे ते मनुजाधिप। यथा नान्येन तुष्येयमृते रामविवासनात् ॥९ एतावदुक्त्वा वचनं कैकेयी विरराम ह। तां हि वज्रसमां वाचमाकर्ण्य हृदयाप्रियाम् ॥१०॥ दुःखशोकमयीं घोरां राजा न सुखितोऽभवत्। स देव्या व्यवसायं च घोरं च शपथं कृतम् ११ ध्यात्वा रामेतिनिःश्वस्य च्छिन्नस्तरुरिवापतत्। दीनयाऽऽतुरया वाचा इति होवाच कैकयीम् ॥१२॥ अनर्थमिममर्थाभंकेन

त्वमुपदेशिता । शीलव्यसनमेतत्ते नाभिजानाम्यहम् पुरा ॥१३॥

टीका—चाहे धर्म हो वा अधर्म, सत्य हो वा झूठ, जो आपने मेरे लिये प्रतिज्ञा की है, उसका उल्लंघन नहीं होसक्ता है । ७ । मैं आज ही आप के सामने बहुत विष पीकर आपके देखते २ मरूंगी, यदि राम को तिलक दियागया ।८। हे राजन् ! तेरे सामने अपनी और भरत की शपथ करता हूं, कि राम के निकालने के सिवाय किसी और बात से सन्तुष्ट नहीं हूंगी । ९ । इतना वचन कहकर कैकेयी चुप होगई उस वज्रमयी, हृदय की अप्रिय, दुःख शोक से भरी हुई, बाणी को सुनकर राजा बड़ा दुःखी हुआ वह रानी के निश्चय को और भयंकर शपथ को किया हुआ । १०,११ । ध्यान करके "राम" ऐसा कह लम्बी आह भर के कटेहुए वृक्ष की तरह भूमि पर गिर पड़ा और दीन आतुरवाणी से कैकेयी से यह बोला ।१२। अर्थ की तरह प्रतीत होने वाला यह अनर्थ तुझे किसने सिखलाया है, यह तेरा भ्रष्ट चरित्र मैं पहले का नहीं जानता हूं ।१३।

मूल—कुतो वा ते भयं जातं या त्वमेवंविधं वरम् । राष्ट्रे भरतमासीनं वृणीषे राघवं वने ॥ १४ ॥ विरमैतेन भावेन त्वमेतेनानृतेन वा । यदि भर्तुः प्रियं कार्यं लोकस्य भरतस्य च ॥ १५ ॥ न कथंचिदृते रामाद्भरतो राज्यमावसेत् । रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम् ॥ १६ ॥ किं मां वक्ष्यन्ति राजानो नाना दिग्भ्यः समागताः । बालो बतायमैक्ष्वाकश्चिरं राज्यमकारयत् ॥ १७ ॥ यदा हि बहवो वृद्धा गुणवन्तो बहुश्रुताः । परिप्रक्ष्यन्ति काकुत्स्थं वक्ष्यामि किमहं तदा ।१८। कैकेय्या क्लिश्यमानेन पुत्रःप्रव्राजितो मया। यदि सत्यं ब्रवीम्येतत्तदसत्यं भविष्यति ॥१९॥ किं मां वक्ष्यति कौसल्या राघवे वनमास्थिते । किं चैनां प्रतिवक्ष्यामि कृत्वा विप्रियमीदृशम् ॥२०॥

टीका—अथवा किससे तुझे ऐसा भय हुआ है, जो तू इस प्रकार का

वर मांगती है, कि भरत राज्य पर बैठे और राम वन में जाए१४ यदि तुझे भर्ता का, लोकका, और भरत का प्रिय करना है, तो इस भाव से अथवा इस झूठ से अलग हो॥१५॥राम के विना भरत किसी तरह राज्य नहीं करेगा, उसको मैं राम से भी बढ़ कर धर्म से बलवान समझता हूं ॥१६॥ नाना दिशाओं से आए हुए राजे मुझे क्या कहेंगे, कि यह बालबुद्धि दशरथ किस तरह चिरतक राज्य करता रहा अहो खेद है ॥१७॥ जब बहुत से गुणी बहुश्रुत वृद्ध राम के विषय में पूछेंगे, तब मैं क्या कहूंगा ॥१८॥ कैकेयी से पीड़ित हुए मैंने राम को निकाला है, यदि यह सत्य कहता हूं, तो वह (राम को राज्य देने का वचन) झूठ हो जाएगा ॥१९॥ राम के वन जाने पर कौसल्या मुझे क्या कहेगी और मैं ऐसा विप्रिय करके उस को क्या उत्तर दूंगा ॥

मूल–विप्रकारं च रामस्य संप्रयाणं वनस्य च। सुमित्रा प्रेक्ष्य वै भीता कथं मे विश्वसिष्यति॥२१॥कृपणं बत वैदेही श्रोष्यति द्वयम प्रियम्। मां च पञ्चत्वमापन्नं रामं च वनमाश्रितम्॥२२ अनार्य इति मामार्याः पुत्रविक्रायकं ध्रुवम् । धिक्करिष्यन्ति रथ्यासु सुरापं ब्राह्मणं यथा ॥ २३ ॥ रममाणस्त्वया सार्धं मृत्युं त्वां नाभिलक्षये । बालो रहसि हस्तेन कृष्णसर्पमिवास्पृशम् ॥ २४ ॥ तं तु मां जीवलोकोऽयं नूनमाक्रोष्टुमर्हति । मयाह्यपितृकः पुत्रः स महात्मा दुरात्मना ॥

टीका–राम की (राज्य-) हानि और वन जाना देख कर डरी हुई सुमित्रा कैसे मेरे ऊपर विश्वास करेगी॥२१॥ हा खेद जानकी यह दो अप्रिय सुनेगी, मुझे मृत्यु को प्राप्त हुआ और राम को वन गया ॥२२॥ गली बाजारों में आर्यजन मुझे पुत्र का बेचने वाला (पुत्र के मूल्य से स्त्री सुख का खरीदने वाला) जान अनार्य कह कर धिक्कारेंगे, जैसे शराब पीने वाले ब्राह्मण को

धिक्कारते हैं ॥२३॥ तेरे साथ आनन्द मनाते हुए मैंने तुझे अपना मृत्यु नहीं लखा, बालक की तरह एकान्त में हाथ से काले नाग को स्पर्श किया ॥२४॥ वह महात्मा मुझ दुरात्मा पिता से सच मुच बिना पिता के है, ऐसे पिता पर सारी दुनियां की थूकाड़ होनी योग्य है ॥२५॥

मूल—वेदैश्च ब्रह्मचर्यैश्च गुरुभिश्चोपकर्शितः। भोगकाले महत्कृच्छ्रं पुनरेव प्रपत्स्यते ॥ २६ ॥ नालं द्वितीयं वचनं पुत्रो मां प्रतिभाषितुम्। स वनं प्रव्रजेत्युक्तो बाढमित्येव वक्ष्यति ॥ २७ ॥ यदि मे राघवः कुर्याद्वनं गच्छेति चोदितः। प्रतिकूलं प्रियं मे स्यान्न तु वत्सः करिष्यति ॥ २८ ॥ कौसल्यां च सुमित्रां च मां च पुत्रैस्त्रिभिः सह। प्रक्षिप्य नरके सा त्वं कैकेयि सुखिता भव॥२९

टीका—वेद के पढ़ने, ब्रह्मचर्य व्रतों के पालने और गुरुवास से दुबला हुआ वह अब भोग काल में बड़े क्लेश में जा पडेगा।२६। पुत्र मुझे दूसरी बात कह नहीं सकेगा, वन को जा, ऐसा कहने पर बहुत अच्छा ही कहेगा ॥२७॥ यदि वन को जा, ऐसा कहने पर राम मेरे उलट करे,तो मेरा प्रिय होजाए,पर वत्स(बरखुर्दार) ऐसा नहीं करेगा ॥२८॥ कौसल्या को सुमित्रा को और मुझ को हे कैकेयि ! नरक में फैंक कर तू सुखी हो ॥२९॥

मूल—प्रियं चेद्भरतस्यैतद्रामप्रव्राजनं भवेत्। मा स्म मे भरतः कार्षीत्प्रेतकृत्यं गतायुषः ॥ ३० ॥ मृते मयि गते रामे वनं पुरुषपुंगवे। सेदानीं विधवा राज्यं सपुत्रा कारयिष्यसि ॥ ३१॥ न जीवितं मेऽस्ति कुतः पुनः सुखं विनात्मजेनात्मवतां कुतः रतिः। ममाहितं देवि न कर्तुमर्हसि स्पृशामि पादावपि ते प्रसीद मे ॥ ३२ ॥ स भूमिपालो विलपन्ननाथवत्स्त्रिया गृहीतो हृदयेऽतिमात्रया। पपात देव्याश्चरणौ प्रसारितावुभावसंप्राप्य यथातुरस्तथा ॥ ३३ ॥

टीका—यह राम का निकालना यदि भरत को प्रिय हो, तो मेरे मरने पर वह मेरा प्रेतकृत्य (अन्त्येष्टि) मत करे ॥३०॥ मेरे मरने पर और पुरुषश्रेष्ठ राम के वन चले जाने पर तू अब विधवा होकर पुत्र सहित राज्य करेगी ॥३१॥ बिना पुत्र के मेरा जीवन ही नहीं, फिर सुख कहां, बिना पुत्र के जीते हुए को खुशी कहां, हे देवि तुझे मेरा अहित नहीं करना चाहिए, मैं तेरे पाओं पकड़ता हूं, मेरे ऊपर कृपा कर ॥३२॥ इस प्रकार वह भूमिपाल अनाथ की तरह विलाप करता हुआ मर्यादा उलांघी हुई स्त्री से हृदय में पकडा हुआ उस के फैलाए दोनों पाओं को बिनछुए (वहां तक न पहुंच कर) आतुर की तरह गिरा ॥

सर्ग १२ (व० १३, १४, १५) राजभवन में राम को बुलवाना

मूल—तथा विलपतस्तस्य परिभ्रमितचेतसः । अस्तमभ्यागमत्सूर्यो रजनीचाभ्यवर्तत ॥१॥ सा त्रियामा तथार्तस्य चन्द्रमण्डलमण्डिता । राज्ञो विलपमानस्य न व्यभासत शर्वरी ॥२॥ तथैवोष्णं विनिःश्वस्य वृद्धो दशरथो नृपः । विललापार्तवद्दुःखं गगनासक्तलोचनः ॥३॥ ततः प्रभातां रजनीमुदिते च दिवाकरे । पुण्यनक्षत्रयोगे च मुहूर्ते च समागते ॥४॥ वसिष्ठो गुणसम्पन्नः शिष्यैः परिवृतस्तदा । उपगृह्याशु सम्भारान्प्रविवेश पुरोत्तमम् ॥५॥

टीका—इस तरह विलाप करते हुए और घूमती हुई चेतना वाले को सूर्य अस्त होगया और रात्रि प्रवृत्त हुई ॥१॥ ऐसा आर्त होकर विलाप करते हुए राजा को चन्द्रमण्डल से भूषित वह रात्रि शोभायमान न हुई ॥२॥ वैसे ही लम्बे २ सांस भर कर वृद्ध दशरथ राजा आकाश में नेत्र लगा कर आर्त की तरह दुःखी विलाप करता रहा ॥३॥ तब रात के प्रभात होने पर और सूर्योदय के निकट आने पर पुण्य नक्षत्र योग और

(अभिषेक के) महूर्त के निकट आने पर ॥४॥ गुणवान् भगवान् वसिष्ठ शिष्यों समेत उस समय (अभिषेक के) संभार लेकर उस उत्तम पुरी में प्रविष्ट हुआ ॥५॥

मूल—सिक्तसंमार्जितपथां पताकोत्तमभूषिताम् । विचित्रकुसुमाकीर्णां नानास्रग्भिर्विराजिताम् ॥६॥ तां पुरीं समतिक्रम्य पुरन्दरपुरोपमाम् । ददर्शान्तःपुरं श्रीमान्नानाध्वजगणायुतम् ॥७॥ पौरजानपदाकीर्णं ब्राह्मणैरुपशोभितम् । तदन्तःपुरमासाद्य व्यतिचक्राम तं जनम् ॥८॥ वसिष्ठःपरमप्रीतः परमर्षिभिरावृतः । स त्वपश्यद्विनिष्क्रान्तं सुमन्त्रं नाम सारथिम् ॥९॥ तमुवाच महातेजाः सूतपुत्रं विशारदम् । वसिष्ठः क्षिप्रमाचक्ष्व नृपतेर्मामिहागतम्॥१०॥

टीका—जिस के राजपथ झाड़े हुए और सुगन्धित जलों से छिड़के हुए हैं, जो सुहावनी झंडियों से सजी हुई है, विचित्र फूलों से भरी हुई, अनेक प्रकार की मालाओं से शोभायमान है ॥६॥ इन्द्रपुर के तुल्य उस पुरी में से लंघकर उसने श्रेष्ठ अंतःपुर को देखा, जो अनेक द्विजगणों से युक्त, पुर और देश के लोगों से पूर्ण, ब्राह्मणों से शोभायमान है । महर्षियों से युक्त, परमप्रसन्न वसिष्ठ उस अन्तः पुर में पहुंच उन लोगों से आगे चला गया और वहां बाहर निकलते हुए सारथि को देखा ७,८ ९ ॥ महातेजस्वी वसिष्ठ ने उस निपुण सूतपुत्र को कहा, राजा को जल्दी जाकर यहां मेरा आना बतलाओ ॥१०॥

मूल—त्वरयस्व महाराजं यथा समुदितेऽहनि । पुष्ये नक्षत्रयोगे च रामो राज्यमवाप्नुयात् ॥११॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा सूतपुत्रो महाबलः । स्तुवन्नृपतिशार्दूलं प्रविवेश निवेशनम् ॥१२॥ तं तु पूर्वोदितं वृद्धं द्वारस्था राजसंमतम् । न शेकुरभिसंरोद्धुं राज्ञः प्रिय-

चिकीर्षवः ॥१३॥ स समीपस्थितो राज्ञस्तामवस्थां मजज्ञिवान् । वाग्भिः परमतुष्टाभिरभिष्टोतुं मचक्रमे ॥१४॥

टीका—महाराज को जल्दी कराओ ताकि पुण्य नक्षत्र योग में राम राज्य को प्राप्त हो ॥११॥ उस महात्मा के इस वचन को सुन कर सूतपुत्र राजवर की स्तुति करता हुआ प्रासाद में में प्रविष्ट हुआ ॥१२॥ (इसे कभी मत रोको ऐसा जिस के विषय में) पहले कहा हुआ है, उस के प्यारे वृद्ध मन्त्री को राजा का प्रिय चाहने वाले द्वारपाल नहीं रोक सके ॥१३॥ वह राजा के समीप स्थित हो, उस अवस्था को न जानता हुआ, परम प्रसन्न वाणियों से स्तुति करने लगा ॥१४॥

मूल—ततस्तु राजा तं सूतं सन्नहर्षः सुतं प्रति । शोकरक्तेक्षणः श्रीमानुद्वीक्ष्योवाच धार्मिकः ॥१५॥ यदा वक्तुं स्वयं दैन्यान्न शशाक महीपतिः । तदा सुमन्त्रं मन्त्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच ह ॥१६॥ सुमन्त्र राजा रजनीं रामहर्षसमुत्सुकः । प्रजागरपरिश्रान्तो निद्रावशमुपागतः ॥१७॥ तद्गच्छ त्वरितं सूतं राजपुत्रं यशस्विनम् । राममानय भद्रं ते नात्र कार्या विचारणा ॥१८॥ अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि। तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत् ॥ १९॥

टीका—तब पुत्र के विषय में दूर हुए हर्षवाला, शोक से लाल नेत्रों वाला, श्रीमान् राजा सूत की ओर देखकर बोला ॥१५ ॥ पर जब दीनता से राजा स्वयं न कह सका, तब मन्त्र के जाननेवाली कैकेयी सुमन्त्र से बोली ॥ १६ ॥ हे सुमन्त्र राजा राम के हर्ष से उत्सुक हुआ रात भर जागने से थका हुआ अब नींद के बस आगया है ॥१७॥ सो जल्दी जाकर तू यशस्वी राजपुत्र राम को ले आ, तेरा भला हो, इसमें विचार मत करो।१८।

'राजा के वचन को न सुनकर हे भामिनि! कैसे जाऊं"—मन्त्री के इस वाक्य को सुनकर, राजा मन्त्री से बोला ॥ १९ ॥

मूल--सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम्। स मन्यमानः कल्याणं हृदयेन ननन्द च॥२०॥स राजवचनं श्रुत्वा शिरसा प्रति पूज्य तम्। निर्जगाम नृपावासान्मन्यमानः प्रियं महत् ॥ २१ ॥ प्रपन्नो राजमार्गं च पताकाध्वजशोभितम्। हृष्टःप्रमुदितः सूतो जगामाशु विलोकयन् ॥२२॥ स सूतस्तत्र शुश्राव रामाधिकरणाः कथाः। अभिषेचनसंयुक्ताः सर्वलोकस्य हृष्टवत् ॥ २३ ॥ ततो ददर्श रुचिरं कैलाससदृशोपमम्। रामवेश्म सुमन्त्रस्तु शक्र-वेश्मसमप्रभम् ॥ २४ ॥

टीका–हे सुमन्त्र राम को देखूंगा, उस सुन्दर को जल्दी ला(यह सुन) वह कल्याण समझता हुआ हृदय से बड़ा प्रसन्न भया॥२०॥ वह राजा के वचन को सुनकर और सिर से राजा को पूज कर बड़ा प्रिय समझता हुआ राजमान्दिर से बाहर आया ॥२१॥ वह झण्डे और झण्डियों से शोभायमान राजमार्ग में प्रविष्ट होकर हृष्ट प्रमुदित हो शोभा देखता हुआ जल्दी जल्दी गया ॥२२॥ रस्ते में सूत ने सब लोगों को खुशी २ राम के अभिषेक की बात करते हुए सुना ॥२३॥ इसके पीछे कैलास की चोटी के तुल्य इन्द्रभवन के सदृश रामभवन को देखा ॥ २४ ॥

सर्ग १३ [अ० १६] राम का राज भवन को जाना

मूल–स तदन्तःपुरद्वारं समतीत्य जनाकुलम्। प्रविविक्तां ततः कक्ष्यामाससाद पुराणवित् ॥ १॥ प्रतिवेदितमाज्ञाय सूतमभ्यन्तरं पितुः। तत्रैवानाययामास राघवः प्रियकाम्यया ॥ २ ॥ तं वैश्रवणसंकाशमुपविष्टं स्वलंकृतम्। ददर्श सूतः पर्यङ्के सौवर्णे

सोत्तरच्छदे ॥ ३ ॥ स्थितया पार्श्वतश्चापि बालव्यजन हस्तया । उपेतं सीतया भूयश्चित्रया शशिनं यथा ॥ ४ ॥ तं तपन्तमिवादित्यमुपपन्नं स्वतेजसा । ववन्दे वरदं वन्दी विनयज्ञो विनीतवत् ॥ ५ ॥

टीका—वह पुराण का जानने वाला लोगों से भरे हुए अन्तःपुर के द्वार को लंघकर सब से अन्तिम ड्योढ़ी पर आया ॥१॥ (द्वारपालों से) जितलाए हुए पिता के अन्तरङ्ग सूत को (आया) जानकर (पिता के) प्रिय करने की इच्छा से राम उसे वहीं बुलवाता भया ॥२॥ सूत ने बहुमूल्य वस्त्र वाले सुनहरी पलंग पर कुबेर के तुल्य सज धजकर बैठे हुए, चंवर हाथ में लेकर पास स्थित सीता से युक्त-राम को बार २ देखा, जैसे चित्रा सहित चन्द्र को (लोग बार २ देखते हैं) ॥३,४॥ अपने तेज से युक्त, सूर्य की तरह तपते हुए उस वरदाता की विनय के जानने वाले सुमन्त्र ने विनीत की तरह स्तुति की ॥ ५ ॥

मूल—प्राञ्जलि स्तु सुखं पृष्ट्वा विहारशयनासने । राजपुत्रमुवाचेदं सुमन्त्रो राजसत्कृतः ॥ ६ ॥ कौशल्या सुप्रजा राम पिता त्वां द्रष्टुमिच्छति । महिष्या सह कैकय्या गम्यतां तत्र मा चिरम् ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तु संहृष्टो नरसिंहो महाद्युतिः । ततः संमानयामास सीतामिदमुवाच ह ॥८॥ + देवि देवश्च देवी च समागम्य मदन्तरे । मन्त्रयेते ध्रुवं किञ्चिदभिषेचनसंहितम् ॥९॥+लक्षयित्वा ह्यभिप्रायं प्रियकामा सुदक्षिणा । संचोदयति राजानं मदर्थं मदिरेक्षणे ॥१०॥ हन्त शीघ्रमितो गत्वा द्रक्ष्यामि च महीपतिम् । सह त्वं परिवारेण सुखमास्स्व रमस्व च ॥ ११ ॥

टीका—राजमानित सुमन्त्र हाथ जोड़ और गति स्थिति और

निद्रा के विषय में कुशल पूछकर राजपुत्र से यह बोला ॥ ६ ॥ कौसल्या तुझ से नेक सन्तान वाली है हे राम ! रानी कैकेयी सहित पिता आप को देखना चाहते हैं, वहां चालिए, विलम्ब न हो, ॥७॥ ऐसे कहा हुआ वह महातेजस्वी नरसिंह प्रसन्न हो उस वचन का सन्मान करता भया और सीता से यह बोला ॥८॥ हे देवि ! देव और देवी (राजा और रानी) मिल कर निःसंदेह मेरे अभिषेक की बाबत मन्त्रणा कर रहे हैं ॥९॥ हे मस्त नेत्रों वाली ! राजा के अभिप्राय को जान कर मेरा प्रिय चाहने वाली बडी सरल कैकेयी निःसंदेह मेरे लिए प्रेर रही है ॥१०॥ अहो मैं जल्दी यहां से जाकर राजा के दर्शन करता हूं, तू परिवार समेत यहां सुख से बैठ और आनन्द मना ।११।

मूल–पतिसंमानिता सीता भर्तारमसितेक्षणा । आ द्वारमनुवव्राज मङ्गलान्यभिदध्युषी ॥ १२ ॥ अथ सीतामनुज्ञाप्य कृतकौतुक-मङ्गलः । निश्चक्राम सुमन्त्रेण सह रामो निवेशनात् ॥ १३ ॥ लक्ष्मणं द्वारि सोऽपश्यत्प्रह्वाञ्जलिपुटं स्थितम् । अथ मध्यमकक्ष्यायां समागच्छत्सुहृज्जनैः ॥ १४ ॥ स सर्वानार्थिनो दृष्ट्वा समेत्य प्रतिनन्द्य च । ततः पावकसंकाशमारुरोह रथोत्तमम् ॥ १५ ॥

टीका–पति से संमानित हुई काले नेत्रों वाली सीता मङ्गल चिन्तन करती हुई द्वार तक भर्ता के पीछे आई ॥१२॥ (जब सीता से) राम के अभिषेक के उत्सव का मंगल किया गया, तो राम सीता से अनुज्ञा लेकर बाहर निकला ॥१३॥ उस ने हाथ जोड़ कर द्वार पर खड़े हुए लक्ष्मण को देखा, तब मध्य की डेवढ़ी में दूसरे सुहृज्जनों के साथ मिला ॥१४॥ वह सारे अर्थियों को देख, मिल, आनन्दित करके अग्नितुल्य (दीप्यमान) उत्तम रथ पर चढ़ गया ॥१५॥

मूल—चित्रचामरपाणिस्तु लक्ष्मणो राघवानुजः। जुगोप भ्रातरं भ्राता रथमास्थाय पृष्ठतः ॥१६॥ ततो वादित्रशब्दाश्च स्तुतिशब्दाश्च वन्दिनाम्। सिंहनादाश्च शूराणां ततः शुश्रुविरे पथि ॥१७॥ हर्म्यवातायनस्थाभिःभूषिताभिः समन्ततः। कीर्यमाणाः सुपुष्पौघैर्ययौ स्त्रीभिररिंदमः ॥१८॥ नूनं नन्दति ते माता कौसल्या मातृनन्दन। पश्यन्ती सिद्धयात्रं त्वां पित्र्यं राज्यमवस्थितम् १९ सर्वसीमन्तिनीभ्यश्च सीता सीमन्तिनी वरा। अमन्यन्त हि ता नार्यो रामस्य हृदयप्रियाम् ॥२०॥ तया सुचरितं देव्या पुरा नूनं महत्तपः। रोहिणीव शशाङ्केन रामसंयोगमाप या ॥२१॥

टीका—राम का छोटा भाई लक्ष्मण छत्र चंवर हाथ में लेकर पीछे रथ पर बैठ कर भाई भाई का रक्षक हुआ ॥१६॥ तब मार्ग में बाजों के शब्द, बन्दियों के स्तुति शब्द और शूरों के सिंह नाद सुनाई देने लगे ॥१७॥ मन्दिरों के झरोकों में स्थित सज धज कर आई हुई स्त्रियों से की हुई पुष्पों की बिखर सिर पर धारता हुआ वह शत्रुओं का जीतने वाला स्त्रियों के यह बचन सुनता हुआ गया ॥१८॥ हे मातृनन्दन! आज तेरी माता कौसल्या के आनन्द है जो तेरी इस यात्रा को-जिस से तू पित्र्य राज्य पर अवस्थित होगा, सफल देखती है ॥१९॥ सब नारियों में से सीता उत्तम नारी है, जो राम के हृदय की प्यारी हैं, ऐसा वह स्त्रियें मानती भई ॥२०॥ उस देवी ने पूर्व जन्म में निःसंदेह बड़ा भारी तप किया है, जो राम से संयुक्त हुई है, जैसे रोहिणी चन्द्र से ॥२१॥

सर्ग १४ (व० १७) राजपथ की शोभा में से राज भवन में पहुंचना

मूल—आशीर्वादान् बहूञ्श्रृण्वन् सुहृद्भिः समुदीरितान्। यथार्ह

चापि संपूज्य सर्वानेव नरान्ययौ ॥१॥ पितामहैराचरितं तथैव प्रपितामहैः । अद्योपादाय तं मार्गमभिषिक्तोऽनुपालय ॥२॥ यथा स्म लालितः पित्रा यथा पूर्वैः पितामहैः। ततः सुखतरं रामे वत्स्यामः सति राजनि॥३॥ ततो हि नः प्रियतरं नान्यत्किंचिद्भविष्यति यथाभिषेको रामस्य राज्येनामिततेजसः ॥४॥

टीका—सुहृदों से कहे हुए आशीर्वाद सुनता हुआ और सभी लोगों की यथा योग्य पूजा करता हुआ गया ।१। (यह आशीर्वाद कि) जिस मार्ग पर तेरे दादे परदादे चले हैं, उस मार्ग को पकड़ कर अभिषिक्त हुआ तू अब प्रजाओं का पालन कर।२। जैसे हम राम के पिता से और जैसे उस के बड़े दादों से पालन किये गए हैं, राम के राजा होने पर उस से बढ़ कर सुखी बसेंगे ३॥ इस से बढ़ कर हमारे लिए और कोई प्रिय नहीं होसकेगा जैसे अपरिमित तेजवाले राम का राज्य से अभिषेक ॥४॥

मूल—एताश्चान्याश्च सुहृदा मुदासीनः शुभाः कथाः। आत्मसंपूजनीः शृण्वन्ययौ रामो महापथम् ॥५॥ नहि तस्मान्मनः कश्चिच्चक्षुषी वा नरोत्तमात् । नरः शक्नोत्यपाक्रष्टुमतिक्रान्तेऽपि राघवे ॥६॥ + यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति । निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माप्येनं विगर्हते ॥७॥ सर्वेषु स हि धर्मात्मा वर्णानां कुरुते दयाम् । चतुर्णां हि वयःस्थानां तेन ते तमनुव्रताः ॥८॥ तत्पृथिव्यां गृहवरं महेन्द्रसदनोपमम् । राजपुत्रः पितुर्वेश्म प्रविवेश श्रिया ज्वलन् ॥९॥

टीका—इत्यादि सुहृदों से अपना मान करने वाली शुभ कथाएं उदासीन (निर्विकार) होकर सुनता हुआ राजमार्ग में से गया ॥५॥ राम के दूर चले जाने पर भी कोई भी पुरुष उस

नरोत्तम से मन और नेत्रों को नहीं खींच सकता था।६।उस समय जो राम को नहीं देखता है वा जिस को राम नहीं देखता है वह लोक में निन्दित हुआ ही बसता है, उस को अपना आत्मा भी धिकारता है ।७। जिस लिये वह धर्मात्मा धर्म में स्थिर चारों वर्णों के लोगों पर दया करता है, इस से वह सभी इस के पीछे चलने वाले हैं ॥८॥ इस तरह वह महेन्द्रभवन के तुल्य राजभवन में पहुंच कर शोभा से जाज्वल्यमान हुआ राजपुत्र पिता के भवन में प्रविष्ट हुआ॥९॥

मूल—स कक्ष्या धन्विभिर्गुप्तास्तिस्रोऽतिक्रम्य वाजिभिः । पदातिरपरे कक्ष्ये द्वे जगाम नरोत्तमः ॥ १० ॥ स सर्वाः समतिक्रम्य कक्ष्या दशरथात्मजः । संनिवर्त्य जनं सर्वं शुद्धान्तःपुरमभ्यगात ॥ ११ ॥ तस्मिन्प्रविष्टे पितुरन्तिकं तदा जनः स सर्वो मुदितो नृपात्मजे। प्रतीक्षते तस्य पुनर्विनिर्गमं यथोदयं चन्द्रमसः सरित्पतिः

टीका—धनुर्धारियों से रक्षा की हुई तीन डेवढ़ियों को घोड़ों से लंघकर वह नरोत्तम अगली दो डेवढियें पैदल गया ॥ १० ॥ वह दशरथपुत्र जब सारी डेवढियें लंघ गया, तो और सबको लौटा कर तब शुद्ध अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ ॥ ११ ॥ जब वह राजपुत्र पिता के निकट प्रविष्ट हुआ, तब सब लोग प्रमुदित भए उस के फिर निकलने की बाट देखने लगे, जैसे समुद्र चन्द्रमा के उदय की बाट देखता है ॥१२॥

सर्ग १५ (व० १८) वनवास की आज्ञा

मूल—स ददर्शासने रामो विषण्णं पितरं शुभे । कैकेय्या सहितं दीनं मुखेन परिशुष्यता ॥१॥ स पितुश्चरणौ पूर्वमभिवाद्य विनीतवत्। ततो ववन्दे चरणौ कैकेय्याः सुसमाहितः ॥२॥+ रामेत्युक्त्वा तु वचनं वाष्पपर्याकुलेक्षणः । शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभा-

पितुम् ॥३॥ तदपूर्वं नरपतेर्दृष्ट्वा रूपं भयावहम् । रामोऽपि भय-मापन्नः पदा स्पृष्ट्वेव पन्नगम् ॥ ४ ॥

टीका—रामने सूखते हुए मुख से दीन पिता को शुभ आसन पर कैकेयी समेत बैठा हुआ देखा ॥१॥ उसने एकाग्रचित्त हो विनीत वत पहले पिता के चरणों को अभिवादन करके फिर कैकेयीके चरण बन्दना किए ॥२॥ "राम" इतना बचन कहकर आंसुओंसे डुबडुबाते नेत्रों वाला नरपति दीन हुआ फिर न देख सका न बात कह सका ॥३॥ राजा के उस अपूर्व भयावने रूप को देखकर राम भी भय को प्राप्त हुआ, जैसे कोई पाओं से सांप को छूकर (एक दम डर जाता है) ॥ ४ ॥

मूल—इन्द्रियैरप्रहृष्टैस्तं शोकसंतापकर्शितम् । निःश्वसन्तं महा-राजं व्यथिताकुलचेतसम् ॥५॥ ऊर्मिमालिनमक्षोभ्यं क्षुभ्यन्तमिव सागरम् । उपप्लुतमिवादित्यमुक्तानृतमृषिं यथा ॥६॥ अचिन्त्य-कल्पं नृपतेस्तं शोकमुपधारयन् । बभूव संरब्धतरः समुद्र इव पर्वणि ॥७॥+ चिन्तयामास चतुरो रामः पितृहिते रतः । किंस्विदद्यैव नृपतिर्न मां प्रत्यभिनन्दति ॥८॥+ अन्यदा मां पिता दृष्ट्वा कुपितोऽपि प्रसीदति । तस्य मामद्य संप्रेक्ष्य किमायासः प्रवर्तते । ॥९॥ स दीन इव शोकार्तो विषण्णवदनद्युतिः । कैकेयीमभिवाद्यैव रामो वचनमब्रवीत् ॥१०॥+ कच्चिन्मया नापराद्धमज्ञानाद्येन मे पिता । कुपितस्तन्ममाचक्ष्व त्वमेवैनं प्रसादय ॥११॥+

टीका—उसने महाराज को अप्रसन्न इन्द्रियों के साथ शोक और संताप से दुर्बल हुआ, ठण्डे सांस लेता हुआ, दुःखिया घबराए हुए चित्तवाला देखा ॥५॥ जैसे कि क्षोभ में न आने योग्य समुद्र बड़ी २ लहरों की पंक्तियों से क्षोभ में आया हुआ हो,

वा जैसे सूर्य ग्रसा हुआ हो, या जैसे किसी ऋषि से झूठ बोला गया हो ॥६॥ चिन्ता में न आने वाले पिता के उस शोक को धारण करता हुआ राम पर्व (पूर्णमासी) में समुद्र की तरह बड़ा क्षुब्ध हुआ ॥७॥ तब पितृहित में रत चतुर राम सोचता भया, हैं ! यह क्या आज ही नरपति मेरे प्रति प्रसन्न नहीं हुआ है ॥ ८ ॥ आगे तो पिता कुपित हुआ भी (मुझे देख) प्रसन्न हो जाया करता है, उस को ही आज मेरी ओर देख कर यह कैसा क्लेश हो रहा है ॥९॥ वह राम शोक से पीडित हुआ, मुरझाए हुई मुख की शोभा वाला, कैकेयी को अभिवादन कर दीन की तरह यह वचन बोला ॥१०॥ क्या मैंने अज्ञान से कोई अपराध तो नहीं किया, जिस से मेरा पिता कुपित हुआ है, वह मुझे कह, और तू ही इन को प्रसन्न करा ॥११॥

मूल—शारीरो मानसो वापि कच्चिदेनं न बाधते । संतापो वाभितापो वा दुर्लभं हि सदा सुखम् ॥१२॥+कच्चिन्न किञ्चिद्भरते कुमारे प्रियदर्शने । शत्रुघ्ने वा महासत्वे मातॄणां वा ममाशुभम् ॥१३॥+अतोषयन्महाराजमकुर्वन्वा पितुर्वचः । मुहूर्तमपि नेच्छेयं जीवितुं कुपिते नृपे ॥१४॥+यतो मूलं नरः पश्येत् प्रादुर्भावमिहात्मनः । कथं तस्मिन्न वर्तेत प्रत्यक्षे सति दैवते ॥१५॥

टीका—क्या कोई शरीर सन्ताप वा मानस शोक तो इसे पीड़ा नहीं दे रहा, क्योंकि सुख सदा दुर्लभ है ॥१२॥ क्या कोई प्रिय दर्शन वाले कुमार भरत वा बडे दिलेर शत्रुघ्न वा मेरी माताओं के विषय में तो को अनिष्ट नहीं हुआ है ॥१३॥ महाराज को सन्तुष्ट न करता हुआ, वा पिता के वचन को न करता हुआ, मैं (असन्तुष्ट करने वा वचन के न करने से) राजा को

कुपित करके मुहूर्त भी जीना नहीं चाहता हूं ॥१४॥ जिस मूल से पुरुष अपना जन्म देखे, उस प्रत्यक्ष देवता के होते हुए कैसे उस में अनुकूलता से न बर्ते ॥१५॥

मूल—एवमुक्ता तु कैकेयी राघवेण महात्मना । उवाचेदं सुनिर्लज्जा धृष्टमात्महितं वचः ॥१६॥+न राजा कुपितो राम व्यसनं नास्य किञ्चन । किञ्चिन्मनोगतं त्वस्य त्वद्भयान्नानुभाषते ॥१७॥ +प्रियं त्वामप्रियं वक्तुं वाणी नास्य प्रवर्तते । तदवश्यं त्वया कार्यं यदनेनाश्रुतं मम ॥१८॥ एष मह्यं वरं दत्त्वा पुरा मामभिपूज्य च । स पश्चात्तप्यते राजा यथान्यः प्राकृतस्तथा ॥१९॥ अतिसृज्य ददानीति वरं मम विशां पतिः । स निरर्थं गतजले सेतुं बन्धितुमिच्छति ॥२०॥

टीका—जब महात्मा राम ने कैकेयी को ऐसे कहा, तब वह बड़ी निर्लज्ज होकर अपना हित वचन ढीठता से बोली॥१६॥हे राम राजा न कुपित हुआ है न इसे कोई दुःख विपद् है, किन्तु कुछ इस के मनका अभिप्राय है, जो तेरे भय से नहीं कहता है ॥ १७ ॥ तुझ प्रिय को अप्रिय कहने के लिये इसकी वाणी प्रवृत्त नहीं होती है, पर तुझे वह अवश्य करना चाहिये, जिसकी इसने मेरे साथ प्रतिज्ञा की है ॥१८॥ यह मुझ पहले वर दान से पूजकर—राजा होकर अब पश्चात्ताप कर रहा है, जैसे कोई और सामान्य पुरुष हो ॥१९॥ देता हूं यह मेरे साथ प्रतिज्ञा करके अब राजा जल के चले जाने पर व्यर्थ बंद बांधता है (वर पहले दे चुका हुआ है, अब उसको हटाने की चिन्ता व्यर्थ है) ॥ २० ॥

मूल—सत्यमूलमिदं राम विदितं च सतामपि । तत्सत्यं न त्यजेद्राजा कुपितस्त्वत्कृते यथा ॥२१॥ यदि तद्वक्ष्यते राजा शुभं वा यदि वा-

शुभम् । करिष्यसि ततः सर्वमाख्यास्यामि पुनस्त्वहम् ॥२२॥+ यदि त्वभीहितं राज्ञा त्वयि तन्न विपत्स्यते । ततोऽहमभिधास्यामि नह्येष त्वयि वक्ष्यति ॥२३॥+एतत्तु वचनं श्रुत्वा कैकेय्या समुदाहृतम् । उवाच व्यथितो रामस्तां देवीं नृपसंनिधौ ॥२४॥+ अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः । अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके ॥२५॥+भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं मज्जेयमपि चार्णवे। नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च ॥२६॥

टीका—हे राम यह सब सत्पुरुषों को विदित ही है, कि यह जगत् सत्यमूलक है, सो उस सत्य को राजा तेरे लिये (मेरे ऊपर) कुपित होकर जैसे न त्यागे वैसे कर (पिता को अधर्म से बचाना तेरा धर्म है) ॥२१॥ यदि राजा शुभ वा अशुभ जो कहे, उसे तू करे, तब फिर मैं सब कहूंगी ॥२२॥ यदि राजा से कहा हुआ तुझ में विफल न जाए, तो मैं कहूंगी, (तेरा अप्रिय है इसलिये) यह आप तुझे नहीं कहेगा ॥२३॥ कैकेयी से कहे हुए इस वचन को सुनकर दुःखित हुआ राम राजा के सामने उस देवी से यह कहने लगा ॥२४॥ अहोधिक् हे देवि ! तू मुझे ऐसा वचन (पिता की आज्ञा पालन में शंका वाला वचन) कहने योग्य नहीं है, मैं राजा के कहने से आग में कूद सकता हूं ॥ २५ ॥ तीक्ष्ण विष खा सक्ता हूं, और समुद्र में डूब सक्ता हूं, जब गुरु, पिता, राजा, हितैषी से आज्ञा दिया जाऊं ॥ २६ ॥

मूल—+तद्ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकांक्षितम् । करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥२७॥ तमार्जवसमायुक्तमनार्यासत्यवादिनम् । उवाच रामं कैकेयी वचनं भृशदारुणम् ॥ २८ ॥ पुरा दैवासुरे युद्धे पित्रा ते मम राघव । रक्षितेन वरौ दत्तौ सशल्येन

महारणे ॥२९॥ तत्र मे याचितो राजा भरतस्याभिषेचनम् । गमनं दण्डकारण्ये तव चाद्यैव राघव ॥३०॥ यदि सत्यप्रतिज्ञं त्वं पितरं कर्तुमिच्छसि । आत्मानं च नरश्रेष्ठ मम वाक्यमिदं शृणु ॥ ३१ ॥

टीका—हे देवि ! वह वचन कहो जो राजाको अभीष्ट है, करूंगा प्रतिज्ञा करता हूं, राम दो बार नहीं कहता है (जो कहागया वह कहा ही गया, उसके विरुद्ध फिर नहीं कह सकता है)॥२७॥ सरल स्वभावयुक्त उस सत्यवादी राम को कैकेयी तब अत्यन्त दारुण वचन बोली ॥२८॥ पूर्व देवासुर युद्ध में तेरे पिता ने हे राम ! जब मैंने उस महारण में शल्य निकालकर उसकी रक्षा की थी तब दो वर दिये थे॥२९॥उनमें से हे राम! एक से मैंने राजा से भरत का अभिषेक मांगा है, दूसरे से आज ही तेरा दण्डक बन में जाना॥३०॥सो हे नरश्रेष्ठ! यदि तू पिता को और अपने आप को सच्ची प्रतिज्ञावाला किया चाहता है, तो मेरा यह वाक्य सुन॥

मूल—संनिदेशे पितुस्तिष्ठ यथाऽनेन प्रतिश्रुतम् । त्वयारण्यं प्रवेष्टव्यं नव वर्षाणि पञ्च च॥३२॥अभिषेकमिमं त्यक्त्वा जटाचीरधरोभव। भरतः कोसलपतेः प्रशास्तु वसुधामिमाम् ॥ ३३ ॥ एतेन त्वां नरेन्द्रोऽयं कारुण्येन समाप्लुतः । शोकैः संक्लिष्टवदनो न शक्नोति निरीक्षितुम् ॥ ३४ ॥ एतत्कुरु नरेन्द्रस्य वचनं रघुनन्दन । सत्येन महता राम तारयस्व नरेश्वरम् ॥३५॥+इतीव तस्यां पुरुषं वदन्त्यां न चैव रामः प्रविवेश शोकम् । प्रविव्यथे चापि महानुभावो राजा तु पुत्रव्यसनाभितप्तः ॥ ३६ ॥

मूल—पिता के हुक्म में खडा हो, जैसी इसने प्रतिज्ञा की है, अब तुझे चौदह बरस वनमें प्रवेश करना चाहिये॥३२॥ तू इस अभिषेक को त्याग कर जटाचीरधारी हो, और भरत कोसलपति की

इस भूमि पर शासन करे ॥३३॥ इस दयाभाव से व्याप्त हुआ यह राजा तुझे देख नहीं सक्ता है, और शोकों से इसका चेहरा मुरझाया हुआ है ॥३४॥ हे रघुनन्दन ! राजा के इस वचन को पूराकर, हे राम बडे सत्य से नरपति को तार ॥ ३५ ॥ इसप्रकार उसके कठोर कहते हुए राम को न तो शोक हुआ, न दुःख हुआ, पर महानुभाव राजा पुत्र की विपद् में संतप्त हुआ शोक दुःख में डूब गया ॥ ३६ ॥

सर्ग १६ (व० १९) आज्ञा का स्वीकार

मूल—तदप्रियममित्रघ्नो वचनं मरणोपमम् । श्रुत्वा न विव्यथे रामः कैकेयींचेदमब्रवीत ॥१॥+एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहंत्वितः । जटाचीरधरो राज्ञःप्रतिज्ञामनुपालयन् ॥२॥ इदं तु ज्ञातुमिच्छामि किमर्थं मां महीपतिः । नाभिनन्दति दुर्धर्षो यथापूर्वमरिन्दमः ॥३॥ मन्युर्न च त्वया कार्यो देवि ब्रूमि तवाग्रतः । यास्यामि भव सुप्रीता वनं चीरजटाधरः ॥ ४ ॥

टीका—शत्रुओं को मारने वाला राम मृत्यु तुल्य उस अप्रिय वचन को सुन कर दुःखी नहीं हुआ और कैकेयी से यह बोला ॥ १ ॥ 'बहुत अच्छा' यहां से मैं जटाचीर धारण कर राजाकी प्रतिज्ञा को पालता हुआ वनवास को जाउंगा ॥२॥ किन्तु यह जानना चाहता हूं, किस लिये दुर्धर्ष शत्रुओं के दमन करने वाला (राजा) पूर्ववत् मुझे अभिनन्दन (खुशी से स्वीकार)नहीं करता है ॥३॥ हे देवि ! तुझे क्रोध नहीं करना चाहिये, तेरे सामने कहता हूं; कि जटा चीर धारी हो वन को जाउंगा, तू सुप्रसन्न हो अर्थात् (अवश्य जाउंगा, तुझे अन्यथा शंका नहीं करनी चाहिये । मैं इसलिये पिता से प्रेम पूर्वक भाषण नहीं चहता, कि मेरा जाना रुकजाए)॥४

मूल—+हितेन गुरुणा पित्रा कृतज्ञेन नृपेण च । नियुज्यमानो विस्रब्धः किं न कुर्यामहं प्रियम् ॥५॥ अलीकं मानसं त्वेकं हृदय दहतीव मे । स्वयं यन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम् ॥ ६ ॥ तदाश्वासय हीमन्तं किन्विदं यन्महीपतिः । वसुधासक्तनयनो मन्दमश्रूणि मुञ्चति ॥७॥+गच्छन्तु चैवानयितुं दूताःशीघ्रजवैर्हयैः। भरतं मातुलकुलादद्यैव नृपशासनात् ॥ ८ ॥

टीका—अपने हितैषी ,गुरु पिता, (तेरी सहायता के) कृतज्ञ, राजा से आज्ञा दिया हुआ मैं निःशंक होकर कौनसा प्रिय नहीं कर सक्ता हूं ॥५॥ मेरे हृदय को तो एक ही मानस दुःख दाह कर रहा है, कि जो स्वयं मुझे राजा भरत का अभिषेक नहीं कहते हैं ।६। सो तू राजा को तसल्ली दे,कि यह क्या ! जो पृथिवीपति पृथिवी की तर्फ नेत्र झुका कर मन्द मन्द आंसु बहा रहे हैं ॥७॥ अभी राजा की आज्ञा से भरत को मामा के घर से लाने के लिये दूत तेज घोड़ों से जावें ॥ ८ ॥

मूल—दण्डकारण्यमेषोऽहं गच्छाम्येव हि सत्वरः । अविचार्य पितुर्वाक्यं समा वस्तुं चतुर्दश ।९। सा हृष्टा तस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा रामस्य कैकयी । प्रस्थानं श्रद्दधाना सा त्वरयामास राघवम्।१०।एवं भवतु यास्यन्ति दूताः शीघ्रजवैर्हयैः। भरतं मातुलकुलादिहावर्तयितुं नराः॥

टीका—यह मैं पिता के वाक्य को बिन विचारे चौदह बरस वन में वसने के लिये जल्दी यहां से जाता हूं ।९। उसके उस वाक्य को सुन कर प्रसन्न हुई कैकेयी राम के चले जाने का विश्वास करती हुई राम को जल्दी कराती भई ।१०। 'बहुत अच्छा' भरत को मामा के घर से लाने के लिये दूत तेज घोड़ों से जाएंगे ॥११॥

मूल—तव त्वहं क्षमं मन्ये नोत्सुकस्य विलम्बनम् । राम तस्मादितः

शीघ्रं वनं त्वं गन्तुमर्हसि ।१२। व्रीडान्वितः स्वयं यच्च नृपस्त्वां नाभिभाषते । नैतत्किंचिन्नरश्रेष्ठ मन्युरेषोऽपनीयताम् ।१३। यावत्त्वं न वनं यातः पुरादस्मादतित्वरन् । पिता तावन्न ते राम स्नास्यते भोक्ष्यतेऽपि वा ।१४। धिक्कष्टमिति निःश्वस्य राजा शोकपरिप्लुतः । मूर्च्छितो न्यपतत्तस्मिन्पर्यङ्के हेमभूषिते ॥१५॥

टीका—पर तेरा विलम्ब करना तेरे उत्साह के युक्त नहीं जानती हूं, हे राम ! इस लिये तू यहां से जल्दी वनको जाने योग्य है ॥१२॥ लज्जा से युक्त हुआ राजा जो तुझे स्वयं नहीं कहता है हे नरश्रेष्ठ ! यह कुछ बात नहीं, इस शोक को दूर कर॥१३॥जब तक जल्दी करता हुआ तू इस पुर से वनको नहीं चला जाएगा, तब तक तेरा पिता हे राम! न न्हाएगा, न कुछ खाएगा ॥१४॥ (इतना सुन) धिक् कष्ट, यह कह आह भर कर शोक से घिरा हुआ राजा मूर्छित हो उस सुवर्ण भूषित पलंग पर गिरपड़ा ॥१५॥

मूल--रामोऽप्युत्थाप्य राजानं कैकेय्याभिप्रचोदितः । कशयेवाहतो वाजी वनं गन्तुं कृतत्वरः ॥१६॥+तदप्रियमनार्याया वचनं दारुणोदयम् । श्रुत्वा गतव्यथो रामः कैकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥१७॥ नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे । विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममास्थितम् ॥ १८ ॥ + यत्तत्रभवतः किंचिच्छक्यं कर्तुं प्रियं मया । प्राणानपि परित्यज्य सर्वथा कृतमेव तत् ॥१९॥+न ह्यतो धर्मचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम् । यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचन क्रिया ॥२०॥ +अनुक्तोऽप्यत्रभवता भवत्या वचनादहम् । वने वत्स्यामि विजने वर्षाणीह चतुर्दश ॥२१॥ + न नूनं मयि कैकेयि किंचिदाशंससे गुणान् । यद्राजानमवोचस्त्वं ममेश्वरतरा सती॥२२॥ यावन्मातरमापृच्छे सीतां चानुनयाम्यहम् । ततोऽद्यैव

गमिष्यामि दण्डकानां महद्वनम् ॥२३॥भरतः पालयेद्राज्यं शुश्रूषेच्च पितुर्यथा। तथा भवत्या कर्तव्यं स हि धर्मः सनातनः ॥ २४ ॥

टीका—राम भी राजा को उठाकर कैकेयी से प्रेरा हुआ चाबुक से ताड़े हुए घोड़े की तरह वन जाने में तेज़ी करने लगा ॥१६॥ अनार्या के उस अप्रिय दारुण फलने वाले वचन को सुन कर राम की सारी व्यथा दूर हो गई और वह कैकेयी से बोला ॥१७॥ हे देवि! मैं अर्थपरायण होकर लोक में नहीं रहना चाहता हूं, मुझे तू ऋषियों के तुल्य शुद्ध धर्म का आश्रय लिये हुए जान ॥१८॥ प्राणों को त्याग कर भी मैं जो कुछ अपने पूजनीय पिता का प्रिय कर सक्ता हूं, वह सर्वथा किया हुआ जान ॥१९ इस से बढ़ कर कोई धर्मानुष्ठान नहीं है, जैसे पिता की सेवा वा उस का वचन पूरा करना ॥२०॥ पूजनीय पिता से न कहा हुआ भी आप के वचन से मैं निर्जन वन में चौदह बरस बसूंगा ॥२१॥ निःसंदेह हे कैकेयि! तू मुझ में कोई गुण नहीं जानती है, जो तूने मेरी पूरी मालिक होकर भी (यह तुच्छ काम) राजा से कहा ॥२२॥ जब तक माता से आज्ञा लेता हूं और सीता को तसल्ली देता हूं (तब तक क्षमा कर) पीछे आज ही दण्डकों के बड़े वन को जाऊंगा ॥२३॥ अब भरत जैसे राज्य का पालन करे और पिता की सेवा करे, वैसे आपने करना, यह (पिता की सेवा और राजा होकर राज्य का पालन) सनातन धर्म है॥२४॥

सर्ग १७ (व० १९-२०) माता के घर जाना

मूल—वन्दित्वा चरणौ राज्ञो विसंज्ञस्य पितुस्तदा। कैकय्याश्चाप्यनार्याया निष्पपात महाद्युतिः ॥१॥ स रामः पितरं कृत्वा कैकेयीं च प्रदक्षिणम्। निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्स्वं ददर्श सुहृज्जनम्

॥ २ ॥+ न चास्य महतीं लक्ष्मीं राज्यनाशोऽपकर्षति । लोककान्तस्य कान्तत्वाच्छीतरश्मेरिव क्षयः ॥ ३ ॥+न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुंधराम् । सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया ॥ ॥४॥ +सर्वेऽप्यभिजनः श्रीमाञ्श्रीमतः सत्यवादिनः । नालक्षयत रामस्य कंचिदाकारमानने ॥५॥ जगाम सहितो भ्रात्रा मातुरन्तःपुरं वशी ॥ ६ ॥

टीका—बेहोश गिरे हुए राजा पिता के चरणों को और अनार्या कैकेयी के चरणों को प्रणाम करके वह महातेजस्वी बाहर निकला ॥ १ ॥ वह राम पिता की और कैकेयी की प्रदक्षिणा करके उस अन्तःपुर से बाहर निकल कर अपने सुहृद्जन को देखता भया ॥ २ ॥ सहज कान्तिवाला होने से राज्य का नाश उसकी बड़ी कान्ति को दूर नहीं कर सक्ता है, जैसे दुनिया के प्यारे चन्द्र की शोभा को (द्वितीया के दिन) उसका पतला होना ॥ ३ ॥ राज्य को त्यागकर वन को जाना चाहते हुए राम के चित्त में सारी दुनिया से आगे बढ़े हुए के चित्त की तरह कोई विकार नहीं प्रतीत होता है ॥ ४ ॥ चारों ओर के सभी लोग (राम राज्य के हर्ष से) शोभावाले हुए सत्यवादी शोभावाले राम के मुख पर कोई विकार न देखते भए ॥ ५ ॥ भाई के साथ वह वशी माता के अन्तःपुर में गया ॥ ६ ॥

मूल—सोऽपश्यत्पुरुषं तत्र वृद्धं परमपूजितम् । उपविष्टं गृहद्वारि तिष्ठतश्चापरान्बहून् ॥७॥ दृष्ट्वैव तु तदा रामं ते सर्वे समुपस्थिताः। जयेन जयतां श्रेष्ठं वर्धयन्ति स्म राघवम् ॥ ८ ॥ प्रविश्य प्रथमां कक्ष्यां द्वितीयायां ददर्श सः । ब्राह्मणान्वेदसम्पन्नान्वृद्धान्राजाभिसत्कृतान् ॥९॥ प्रणम्य रामस्तान्वृद्धांस्तृतीयायां ददर्श सः ।

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च द्वाररक्षणतत्पराः ॥१०॥ वर्धयित्वा प्रहृष्टास्ताः प्रविश्य च गृहं स्त्रियः। न्यवेदयन्त त्वरितं राममातुः प्रियं तदा ॥ ११ ॥ सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा। अग्निं जुहोतिस्म तदा मन्त्रवत् कृतमङ्गला ॥ १२ ॥

टीका—उस ने वहां द्वार पर बैठे हुए वृद्ध पुरुष को देखा, और दूसरे बहुत से खड़े हुओं को देखा॥७॥राम को देखते ही वह सब सहसा खड़े हो गये, और जीतने वालों में श्रेष्ठ राम को जय शब्द से बधाई देते भए॥८॥पहली डेवढ़ी से आगे दूसरी में जाकर उसने राजमानित वेदसम्पन्न वृद्ध ब्राह्मणों को देखा ॥ ९ ॥ उन वृद्धों को प्रणाम करके तीसरी डेवढ़ी में उस ने स्त्रियें वृद्ध और बालों को द्वाररक्षा में तत्पर देखा ॥ १० ॥ राम को बधाई देकर परम हर्ष से भरी हुई वह स्त्रियें अन्दर प्रवेश करके जल्दी २ जा यह प्रिय राम की माता को निवेदन करतीं भईं ॥ ११ ॥ वह रेशमी वस्त्र पहने हुए हर्ष से भरी हुई व्रतपरायण हुई उस समय और सब मङ्गल कार्य करके अग्निहोत्र कर रही थी

सर्ग १८ (व० २१) वृत्तान्त सुनकर माता का विलाप

मूल—प्रविश्य तु तदा रामो मातुरन्तःपुरं शुभम्। ददर्श मातरं तत्र हावयन्तीं हुताशनम् ॥ ॥ सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमागतम्। अभिचक्राम संहृष्टा किशोरं वडवा यथा ॥२॥ स मातरमुपक्रान्तामुपसंगृह्य राघवः। परिष्वक्तश्च बाहुभ्यामवघ्रातश्च मूर्धनि ॥३॥ तमुवाच दुराधर्षं राघवं सुतमात्मनः। कौसल्या पुत्रवत्सलय दिदं प्रियाहितं वचः ॥४॥+वृद्धानां धर्मशीलानां राजर्षीणां महात्मनाम्। प्राप्नुह्यायुश्च कीर्तिं च धर्मं चाप्युचितं कुले ॥५॥ सत्यप्रतिज्ञं पितरं राजानं पश्य राघव। अद्यैव त्वां स धर्मात्मा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥६॥

टीका—तब राम माता के शुभ अन्तःपुर में प्रवेश करके वहां माता को अग्नि में होम करवाती हुई देखता भया ॥१॥ वह चिर करके मातृनन्दन को आया देख हर्षित हो उसकी तरफ झुकी, जैसे घोड़ी बछेरे की तर्फ ॥२॥ राम ने पास आई माताके चरण ग्रहण किये, माता ने दोनों भुजाओं में लेलिया और मस्तक चूमा । ३ । अपने पुत्र उस दुराधर्ष राम को कौसल्या पुत्र के प्रेम से यह प्रिय हित वचन बोली ॥४॥ वृद्ध, धर्मशील, महात्मा राजऋषियों की आयु और कीर्ति को प्राप्त हो, और कुल में उचित धर्म को प्राप्त हो ॥५॥ हे राघव ! सच्ची प्रतिज्ञावाले अपने पिता राजा के जाकर दर्शन कर, आजही तुझे वह धर्मात्मा यौवराज्य में अभिषेक देगा।(माताने पिता के पास जा आने आदि के अज्ञान से ऐसे कहा है)

मूल—दत्तमासनमालभ्य भोजनेन निमन्त्रितः । मातरं राघवः किञ्चित्प्रसार्याञ्जलिमब्रवीत् ॥७॥ स स्वभावविनीतश्च गौरवाच्च तथानतः । प्रस्थितो दण्डकारण्यमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥८॥ देवि नूनं न जानीषे महद्भयमुपस्थितम् । इदं तव च दुःखाय वैदेह्या लक्ष्मणस्य च ॥९॥ +गमिष्ये दण्डकारण्यं किमनेनासनेन मे । विष्टरासनयोग्यो हि कालोऽयं मामुपस्थितः ॥१०॥चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने । कन्दमूलफलैर्जीवन्हित्वा मुनिवदामिषम् ॥११॥ भरताय महाराजो यौवराज्यं प्रयच्छति । मां पुनर्दण्डकारण्यं विवासयति तापसम् ॥१२॥

टीका—माता से दिये हुए आसन को स्पर्श करके (न कि पाओं रखकर) भोजन से निमन्त्रित हुआ राम हाथ जोड़कर माता से बोला ।७। वह स्वभाव से विनीत और (माता के) गौरव से अधिक झुका हुआ दण्डक वन को प्रस्थित हुआ पूछने लगा।८।

हे देवि ! तू बड़ा भय सामने आया नहीं जानती है, यह तेरे, सीता के और लक्ष्मण के दुःख के लिये है ।९। मैं दण्डक वन को जाऊंगा, मुझे इस आसन से क्या, विष्टरासन (कुशा के आसन) के योग्य मुझे यह समय प्राप्त हुआ है ।१०। मुनियों की तरह भोग छोड़ चौदह वरस मैं निर्जन वन में शहद से और कन्द मूल और फलों से जीवन करूंगा ।११। महाराज भरत को यौवराज्य देते हैं, और मुझे तपस्वी बनाकर दण्डक वन में भेजते हैं ।

मूल–सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने। पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता ॥१३॥ तामदुःखोचितां दृष्ट्वा पतितां कदलीमिव। रामस्तूत्थापयामास मातरं गतचेतसम् ॥१४॥ सा राघवमुपासीनमसुखार्ता सुखोचिता। उवाच पुरुषव्याघ्रमुपशृण्वति लक्ष्मणे ॥१५॥ यदि पुत्र न जायेथा मम शोकाय राघव। न स्म दुःखमतो भूयः पश्येयमहमप्रजाः ॥१६॥

टीका–वह देवी वन में कुल्हाड़ी से कटी हुई साल की लकड़ी की तरह सहसा गिर पड़ी, जैसे स्वर्ग से देवता ।१३। दुःखों के अयोग्य माता को मूर्च्छित होकर कदली की तरह गिरा हुआ देख कर राम उठाता भया ॥१४॥ सुख के योग्य असुख से पीडित हुई वह माता पास बैठे हुए पुरुषश्रेष्ठ राम को लक्ष्मण के सुनते हुए यह बोली ॥१५॥ हे पुत्र ! यदि तू मेरे शोक के लिए जन्म न लेता, तो मैं बन्ध्या हुई इस से (बंध्यापन से) अधिक (पुत्र वियोग का) दुःख न देखती ॥ १६ ॥

मूल–एक एव हि बन्ध्यायाः शोको भवति मानसः। अप्रजास्मीति संतापो न ह्यन्यः पुत्र विद्यते ॥१७॥ न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पति पौरुषे। अपि पुत्रे विपश्येयमिति रामास्थितं मया ॥१८॥

सा बह्वन्यमनोज्ञानि वाक्यानि हृदयच्छिदाम् । अहं श्रोष्ये सपत्नीनामवराणां परा सती ॥१९॥ अतो दुःखतरं किं नु प्रमदानां भविष्यति । मम शोको विलापश्च यादृशोऽयमनन्तकः ॥२०॥ तद्क्षयं महद्दुःखं नोत्सहे सहितुं चिरात् । विप्रकारं सपत्नीनामेवं जीर्णापि राघव ॥२१॥ अपश्यन्ती तव मुखं परिपूर्णशशिप्रभम् । कृपणा वर्तयिष्यामि कथं कृपणजीविकाम् ॥२२॥

टीका–क्योंकि बन्ध्या को एक ही मानस शोक होता है, कि मैं निःसन्तान हूं, हे पुत्र उसे और सन्ताप नहीं होता है ॥१७॥ पति के पौरुष में जो पहले मैंने कल्याण वा सुख नहीं देखा है, वह पुत्र के पौरुष में देखूंगी, इस आशा पर हे राम मैं खड़ी हूं ।१८।सो अब मैं हृदय को चीरनेवाली, सौतिनों के-बड़ी होकर छोटियों के बहुत से अप्रिय वाक्य सुनूंगी ॥ १९ ॥ इस से बढ़कर स्त्रियों को और क्या दुःख होगा, जैसा कि यह न मिटने वाला मेरा शोक और विलाप है ॥२०॥ सौतिनों से अनादर जोकि अक्षय दुःख है उसे हे राम अब इस तरह बूढी होकर देर तक नहीं सह सकती हूं ॥२१॥ पूर्णचन्द्र तुल्य तेरे मुख को न देखती हुई कैसे मैं कृपण होकर कृपण जीना जिउंगी॥

मूल–उपवासैश्च योगैश्च बहुभिश्च परिश्रमैः । दुःख संवर्धितो मोघं त्वं हि दुर्गतया मया ॥२३॥ स्थिरं नु हृदयं मन्ये ममेदं यन्न दीर्यते। प्रावृषीव महानद्या स्पृष्टं कूलं नवाम्भसा ॥२४॥ इदं तु दुःखं यदनर्थकानि मे व्रतानि दानानि च संयमाश्च हि । तपश्च तप्तं यदपत्यकाम्यया सुनिष्फलं बीजमिवोप्तमूषरे ॥२५॥ यदिह्यकाले मरणं यदृच्छया लभेत कश्चिद्गुरुदुःखकर्शितः । गताहमद्यैव परेतसंसदं विना त्वया धेनुरिवात्मजेन वै ॥२६॥

टीका–मैं दुर्भागिन ने उपवास, देवता का ध्यान और बहुत

से परिश्रमों से व्यर्थ ही तुझे दुःख से बढ़ाया है (मेरे सारे परिश्रम व्यर्थ गये) ॥ २३ ॥ मैं अपने हृदय को बड़ा सख्त समझती हूं, जोकि फट नहीं जाता है, जैसे बरसात में नए पानी से छुआ हुआ महानदी का किनारा ॥ २४ ॥ यह बडे दुःख की बात है, कि मेरे व्रत, दान, संयम और जो सन्तान के कारण तप तपे हैं, वह सब कालरी भूमि में बोए हुए बीज की तरह निष्फल हुए हैं ॥ २५ ॥ यदि कोई भारी दुःख से तंग आकर बिना समय अपनी इच्छा से मौत लाभ कर सके, तो आज ही पुत्र से वियुक्त हुई धेनु की तरह तेरे बिना मैं यम के घर पहुंची हुई होती ।२६

सर्ग १९ (व० २१) लक्ष्मण का क्रोध ।

मूल-तथा तु विलपन्तीं तां कौसल्यां राममातरम्। उवाच लक्ष्मणो दीनस्तत्कालसदृशं वचः ॥ १॥ नास्यापराधं पश्यामि नापि दोषं तथाविधम् । येन निर्वास्यते राष्ट्राद्वनवासाय राघवः ॥२॥+न तं पश्याम्यहं लोके परोक्षमपि यो नरः । स्वमित्रोऽपि निरस्तोऽपि योऽस्य दोषमुदाहरेत् ॥३ +देवकल्पमृजुं दान्तं रिपूणामपि वत्सलम् । अवेक्षमाणः को धर्मं त्यजेत्पुत्रमकारणात् ॥ ४ ॥ तदिदं वचनं राज्ञः पुनर्बाल्यमुपेयुषः । पुत्रः को हृदये कुर्याद्राजवृत्तमनुस्मरन् ॥ ५ ॥ यावदेव न जानाति कश्चिदर्थमिमं नरः । तावदेव मया सार्धमात्मस्थं कुरु शासनम् ॥ ६ ॥ निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ । करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्यदि स्थास्यति विप्रिये॥

टीका-इस प्रकार विलाप करती हुई राम की माता कौसल्या से दीन हुआ लक्ष्मण उस काल के सदृश वचन बोला ॥ १ ॥ मैं इसका कोई अपराध नहीं देखता हूं, न कोई ऐसा दोष देखता हूं, जिससे कि राम राज्य से बनवास के लिये निकाला जाता है ।२

मैं तो (राम का) भारी शत्रु भी वा उससे निकाला हुआ पुरुष भी कोई ऐसा नहीं देखता हूं. जो पीछे भी इसका दोष कहे ॥३॥ देवता के तुल्य, सरल, दमनशील, शत्रुओं को भी जो प्यारा हो ऐसे पुत्र को कौन धर्म पर दृष्टि रखनेवाला बिनाकारण के त्याग सकता है॥ ४ ॥ सो राजा जो फिर बालकपन को प्राप्त होगया है उस के ऐसे वचन को राजों की चाल का स्मरण करता हुआ कौन पुरुष हृदय में जगह देगा ॥५॥ अतः जब तक कोई पुरुष इस बात को नहीं जानता है, तब तक ही मेरे साथ शासन अपने हाथ में ले ।६। हे पुरुषश्रेष्ठ ! मैं इस सारी अयोध्या को तेज़ तीरों से विना मनुष्योंके कर दूंगा, यदि कोई तेरे विरोध में खड़ा होगा ।७।

मूल-भरतस्याथ पक्ष्यो वा यो वास्य हितमिच्छति । सर्वांस्तांश्च वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते ॥८॥+अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः । सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे ॥ ९ ॥+दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति । प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ॥१०॥हरामि वीर्याद्दुःखं ते तमः सूर्य इवोदितः । देवी पश्यतु मे वीर्यं राघवश्चैव पश्यतु ॥ ११ ॥

टीका--भरत के पक्ष का अथवा जो कोई इसका हित चाहता है, उन सबको मार डालूंगा, नर्म मनुष्य ही दबाया जाता है ॥८॥ मैं अपने हृदय से हे देवि ! भाई पर पूरा२ अनुरक्त हूं, मैं सत्य की, धनुष की, और यज्ञ दान की शपथ करता हूं ॥९॥ राम यदि जलती हुई अग्नि में वा (जलते हुए) वन में प्रवेश करेगा, तो हे देवि! मुझे वहां पहले प्रविष्ट हुआ जान ॥१०॥ अपनी शक्ति से तेरे दुःख को इसतरह दूर करता हूं. जिसतरह उदय हुआ सूर्य अन्धेरे को दूर करता है, देवी मेरी शक्ति को देखे, और राम देखे ॥११॥

मूल--एतत्तु वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य महात्मनः। उवाच रामं कौसल्या रुदती शोकलालसा ॥१२॥ भ्रातुस्ते वदतः पुत्र लक्ष्मणस्य श्रुतं त्वया। यदत्रानन्तरं कार्यं कुरुष्व यदि रोचते ॥ १३॥ न चाधर्म्यं वचः श्रुत्वा सपत्न्या मम भाषितम्। विहाय शोकसंतप्तां गन्तुमर्हसि मामितः ॥१४॥ धर्मज्ञ यदि धर्मिष्ठो धर्मं चरितुमिच्छसि। शुश्रूष मामिहस्थस्त्वं चर धर्ममनुत्तमम् ॥१५॥ शुश्रूषुर्जननीं पुत्र स्वगृहे नियतो वसन्। परेण तपसा युक्तः काश्यपस्त्रिदिवं गतः ॥

टीका--महात्मा लक्ष्मण के इस वचन को सुनकर शोक से भरी हुई कौसल्या रोती हुई राम से यह बोली ॥ १२ ॥ हे पुत्र! लक्ष्मण की बातको तूने सुना है, अब इसके अनन्तर जो योग्य है, वह कर, यदि पसन्द है ॥ १३ ॥ पर मेरी सपत्नी के कहे हुए अधर्मयुक्त वचन को सुनकर, मुझे शोक से तपी हुई छोड़कर यहां से तुझे जाना नहीं चाहिये ॥ १४ ॥ हे धर्मज्ञ यदि तू धर्मनिष्ठ हो, धर्म करना चाहता है, तो यहां रहकर तू मेरी सेवा कर, इस उत्तम धर्म का आचरण कर ॥ १५ ॥ हे पुत्र! अपने घर में नियम से रहकर माता की सेवा करता हुआ परम तप से युक्त हुआ काश्यप स्वर्ग को प्राप्त हुआ ॥

मूल--यथैव राजा पूज्यस्ते गौरवेण तथा ह्यहम्। त्वां साहंनानुजानामि न गन्तव्यमितो वनम् ॥ १७ ॥ त्वद्वियोगान्न मे कार्यं जीवितेन सुखेन च। त्वया सह मम श्रेयस्तृणानामपि भक्षणम् ॥ १८ ॥ यदि त्वं यास्यसि वनं त्यक्त्वा मां शोकलालसाम्। अहं प्रायमिहासिष्ये न च शक्ष्यामि जीवितुम्। १९ ॥

टीका--जैसे राजा गौरव (गुरु होने) से तेरा पूज्य है, वैसे ही मैं हूं, मैं तुझे अनुज्ञा नहीं देती हूं, सो यहां से बनको मत जाओ ॥१७॥ तुझसे अलग होकर न मुझे जीने से न सुख से प्रयो-

जन है, तेरे साथ मुझे तिनकों को खाना भी अच्छा है ॥ १८ ॥ यदि तू शोक से भरी हुई मुझको छोड़कर बन को चला जाएगा, तो मैं बिना खाने पीने के मर जाऊंगी, जी नहीं सकूंगी ॥१९॥

सर्ग २० (व० २१) राम का उत्तर

मूल–विलपन्तीं तथा दीनां कौसल्यां जननीं ततः । उवाच रामो धर्मात्मा वचनं धर्मसंहितम् ॥ १ ॥+नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम । प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ॥ २ ॥+तदेतत्तु मया कार्यं क्रियते भुवि नान्यथा । पितुर्हि वचनं कुर्वन्न कश्चिन्नाम हीयते ॥ ३ ॥ तामेवमुक्त्वा जननीं लक्ष्मणं पुनरब्रवीत् ॥ ४ ॥ तव लक्ष्मण जानामि मयि स्नेहमनुत्तमम् । विक्रमं चैव सत्त्वं च तेजश्च सुदुरासदम् ॥ ५ ॥

टीका–इसप्रकार दीन हो विलाप करती हुई माता कौसल्या को धर्मात्मा राम धर्मयुक्त वचन बोला ॥ १ ॥ पिता का वाक्य उलांघने की मेरी शक्ति नहीं है, तुझे सिर झुकाकर प्रसन्न करता हूं, मैं बन को जाना चाहता हूं ॥ २ ॥ सो यह मैं करने योग्य कर रहा हूं, पृथिवी में मैं कोई निराला काम नहीं कर रहा, पिता का वचन करता हुआ कोई भी पुरुष हीन नहीं होता (चाहे वह किसी दूसरी भलाई को छोड़ कर भी पूरा करना पड़े, जैसे यहां माता की सेवा छोड कर) ॥३॥ माता को ऐसा कह कर फिर लक्ष्मण से बोला ॥४॥ हे लक्ष्मण तेरे इस अत्युत्तम स्नेह को जो मेरी ओर है-जानता हूं, और तेरे पराक्रम दिलेरी और न दबने वाले तेज को जानता हूं ॥५॥

मूल–धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् । धर्मसंश्रितमेतच्चापितुर्वचनमुत्तमम् ॥६॥+संश्रुत्य च पितुर्वाक्यं मातुर्वा ब्राह्मणस्य वा । न

कर्तव्यं वृथा वीर धर्ममाश्रित्य तिष्ठता॥७॥+सोऽहं न शक्ष्यामि पितु-र्नियोगमतिवर्तितुम्। पितुर्हि वचनाद्वीर कैकेय्याऽहं प्रचोदितः॥८॥ तदेतां विसृजानार्यां क्षत्रधर्माश्रितां मतिम्। धर्ममाश्रय मा तैक्ष्ण्यं मद्बुद्धिरनुगम्यताम्॥९॥ तमेवमुक्त्वा सौहार्दाद्भ्रातरं लक्ष्मणाग्रजः। उवाच भूयः कौसल्यां प्राञ्जलिः शिरसा नतः॥१०॥

टीका—पर धर्म ही लोक में सब से उत्तम है, धर्म में सचाई स्थित है, पिता का यह उत्तम वचन धर्म के आश्रित है॥६॥ हे वीर! जो धर्म के सहारे खड़ा है, उसे पिता माता वा ब्राह्मण के वाक्य को अंगीकार करके कभी वृथा नहीं करना चाहिए॥७॥ सो मैं पिता की आज्ञा को नहीं उलांघ सक्ता हूं। पिता के वचन से हे वीर! मुझे कैकेयी ने प्रेरा है॥८॥ सो तू इस क्षत्रधर्म के (आभास के) आश्रित अनार्या मति को त्याग, धर्म का आश्रय ले, नकि तीक्ष्णता का, मेरी बुद्धि के पीछे चल॥९॥ लक्ष्मण का बडा भाई भाई को सौहार्द से ऐसा कह कर फिर हाथ जोड सिर झुका कर कौसल्या से बोला॥१०॥

मूल—अनुमन्यस्व मां देवि गमिष्यन्तमितो वनम्। शापितासि मम प्राणैः कुरु स्वस्त्ययनानि मे॥११॥ शोकः संधार्यतां मातर्हृदये साधु मा शुचः। वनवासादिहैष्यामि पुनः कृत्वा पितुर्वचः॥१२॥+त्वया मया च वैदेह्या लक्ष्मणेन सुमित्रया। पितुर्नियोगे स्थातव्यमेष धर्मः सनातनः॥१३॥ अम्ब संहृत्य सम्भारान्दुःखं हृदि निगृह्य च। वनवासकृता बुद्धिर्मम धर्म्यानुवर्त्यताम्॥१४॥

टीका—हे देवि! यहां से वन जाते हुए मुझे अनुज्ञा दे, मेरे प्राणों की शपथ है, मेरे स्वस्त्ययन कर॥११॥ हे माता शोक को हृदय में धारण कर, मत शोक कर, पिता के वचन को

पूरा करके बनवास से फिर यहां आऊंगा ॥१२॥ तुझ को, मुझ को, और जानकी को, लक्ष्मण को और सुमित्रा को पिता की आज्ञा में रहना चाहिए, यह सनातन धर्म है ॥१३॥ हे माता (अभिषेक के) सम्भारों को हटा कर और दुःख को हृदय में रोक कर, वनवास में हुई मेरी धर्म युक्त बुद्धि के अनुकूल हो।

मूल–एतद्वचस्तस्य निशम्य माता सुधर्म्यमव्यग्रमविक्लवं च। मृतेव संज्ञां प्रतिलभ्य देवी समीक्ष्य रामं पुनरित्युवाच ॥१५॥ +यथैव ते पुत्र पिता तथाहं गुरुः स्वधर्मेण सुहृत्तया च। न त्वानुजानामि न मां विहाय सुदुःखितामर्हसि पुत्र गन्तुम् ॥१६॥ किं जीवितेनेह विना त्वया मे लोकेन वा किं स्वधयामृतेन। श्रेयो मुहूर्तं तव संनिधानं ममेह कृत्स्नादपि जीवलोकात् ॥१७॥+ स मातरं चैव विसंज्ञकल्पामार्तं च सौमित्रिमभितप्तम्। धर्मे स्थितो धर्म्यमुवाच वाक्यं यथा स एवार्हति तत्र वक्तुम् ॥१८॥ अहं हि ते लक्ष्मण नित्यमेव जानामि भक्तिं च पराक्रमं च। मम त्वभिप्रायमसंनिरीक्ष्य मात्रा सहाभ्यर्दसि मां सुदुःखम् ॥१९॥

टीका–पुत्र के इस धर्मयुक्त, धैर्य युक्त और अकायर वचन को सुन कर माता मूर्छित हुई, फिर होश सम्भाल कर राम को देखती हुई यह बोली ॥१५॥ हे पुत्र! जैसे तुझे पिता है, वैसे अपने धर्म (पालनादि) से और स्नेह से मैं गुरु हूं, किन्तु मैं तुझे जाने की अनुज्ञा नहीं देती हूं, मुझे इस तरह दुखिया छोड़ कर तू जाने योग्य नहीं है ॥१६॥ तेरे बिना मुझे यहां जीवन से क्या है, अथवा दुनिया से स्वधा से और अमृत से क्या है मुझे थोड़ी देर भी तेरा पास होना सारे जीवलोक से बढ़ कर है।१७। बेचैन हुई माता को और तपे हुए आर्त लक्ष्मण को धर्म में स्थित

हुआ राम धर्म युक्त यह वाक्य बोला जैसा कि वहीं ऐसे अव-सर पर कहने के योग्य है ॥१८॥ हे लक्ष्मण मैं तेरी भक्ति और पराक्रम को सदा जानता हूं, किन्तु तू मेरे अभिप्राय को न जान कर माता के साथ मुझे पूरी तरह पीड़ित कर रहा है ॥

मूल-गुरुश्च राजा च पिता च वृद्धःक्रोधात् प्रहर्षादथवापि कामात्
यद्व्यादिशेत्कार्यमवेक्ष्य धर्मं कस्तं न कुर्यादनृशंसवृत्तिः ॥२०॥
न तेन शक्नोमि पितुःप्रतिज्ञामिमां न कर्तुं सकलां यथावत् । स
ह्यावयोस्तात गुरुर्नियोगे देव्याश्च भर्ता स गतिः स धर्मः ॥२१॥
तस्मिन्पुनर्जीवति धर्मराजे विशेषतः स्वे पथि वर्त्तमाने । देवी मया
सार्धमितोऽभिगच्छेत् कथं स्विदन्या विधवेव नारी ॥२२॥

टीका-राजा गुरु है, पिता है, वृद्ध है, वह क्रोध से, हर्ष से अथवा काम से भी जो कुछ करने की आज्ञा देवे, कौन अक्रूर स्वभाववाला पुरुष धर्म को ख्याल करके उस को न करे ।२०। पिता की इस सम्पूर्ण प्रतिज्ञा को ठीक २ न करना मैं नहीं कर सकता, हे तात ! वह हम दोनों को आज्ञा देने में गुरु है और माता का भर्ता है, वही गति है धर्म है ॥२१॥ उस धर्मराज के जीते हुए और विशेषतः अपने पथ पर वर्तमान होते हुए माता मेरे साथ किस तरह जासकती है, जिस तरह कि और विधवा नारी हो

मूल-सा मानुमन्यस्व वनं व्रजन्तं कुरुष्व नः स्वस्त्ययनानि देवि ।
यथा समाप्ते पुनराव्रजेयं यथा हि सत्येन पुनर्ययातिः ॥२३॥+
यशो ह्यहं केवलराज्यकारणान्न पृष्ठतः कर्तुमलं महोदयम् ।
अदीर्घकालेन तु देवि जीविते वृणेऽवरामद्य महीमधर्मतः ॥२४॥

टीका-सो हे देवि ! वन को जाते हुए मुझे अनुज्ञा दे, मेरे स्वस्त्य-यन कर, जिस से कि बनवास के समाप्त होने पर फिर आऊं,

जैसे सचाई से फिर ययाति ॥२३॥ मैं केवल राज्य के कारण बड़े फल वाले यश को पीछे नहीं कर सक्ता हूं, हे देवि ! इस अदीर्घकाल जीवन के निमित्त अधर्म द्वारा इस तुच्छ पृथ्वी को कभी नहीं वरूंगा ॥२४॥

सर्ग २१ (ब० २२) राम का कैकेयी को निर्दोष ठहराना

मूल—अथ तं व्यथया दीनं सविशेषममर्षितम् । सरोषमिव नागेन्द्रं रोषविस्फारितेक्षणम् ॥ १ ॥ आसाद्य रामः सौमित्रिं सुहृदं भ्रातरं प्रियम् । उवाचेदं स धैर्येण धारयन्सत्त्वमात्मवान् ॥ २ ॥ निगृह्य रोषं शोकं च धैर्यमाक्रम्य केवलम् । अवमानं निरस्यैनं गृहीत्वा हर्षमुत्तमम् ॥३॥ उपक्लृप्तं यदेतन्मे अभिषेकार्थमुत्तमम् । सर्वं निवर्तय क्षिप्रं कुरु कार्यं निरामयम् ॥४॥ सौमित्रे योऽभिषेकार्थे मम संभारसम्भ्रमः । अभिषेकनिवृत्त्यर्थे सोऽस्तु सम्भारसम्भ्रमः ॥ ५ ॥ यस्या मदभिषेकार्थे मानसं परितप्यति । माता नः सा यथा न स्यात्सविशङ्का तथा कुरु ॥ ६ ॥

टीका—इस के पीछे व्यथा से दीन हुए, विशेष करके (राम की हानि को) न सहारते हुए, क्रुद्ध हुए हाथी की तरह सांस लेते हुए, क्रोध से फैलाए हुए नेत्रों वाले सुहृद प्यारे भाई लक्ष्मण को मनस्वी राम अभिमुख करके चित्त का अविकार प्रकट करता हुआ धैर्य से यह वचन बोला॥१,२॥हे भाई रोष और शोक को रोक कर केवल धैर्य को आश्रय करके, इस अपमान को दूर करके, बड़े हर्ष के साथ जो कुछ कि अभिषेक के लिये तय्यार किया है, उस सब को परे हटाकर, जल्दी कार्य को निर्विघ्न बना ॥ ३, ४ ॥ हे लक्ष्मण तेरा जो उत्साह मेरे अभिषेक की तय्यारी के लिये था, वही (तय्यारी का उत्साह) अब अभिषेक की

निवृत्ति (रूप वनवास) के लिये हो ॥ ५ ॥ मेरे अभिषेक के अर्थ जिसका मन संतप्त हो रहा है, वह हमारी माता (कैकेयी) जिस तरह शङ्का वाली न रहे, वैसे कर ॥ ६ ॥

मूल–+तस्या शङ्कामयं दुःखं मुहूर्तमपि नोत्सहे। मनसि प्रतिसंजातं सौमित्रेऽहमुपेक्षितुम् ॥७॥+न बुद्धिपूर्वं नाबुद्धं स्मरामीह कदाचन मातृणां वा पितुर्वाऽहं कृतमल्पं च विप्रियम् ॥८॥ सत्यः सत्याभिसंधश्च नित्यं सत्यपराक्रमः। परलोकभयाद्भीतो निर्भयोऽस्तु पिता मम ॥ ९ ॥ तस्यापि हि भवेदस्मिन्कर्मण्यप्रतिसंहृते। सत्यं नेति मनस्तापस्तस्य तापस्तपेच्च माम् ॥ १० ॥ अभिषेकविधानं तु तस्मात्संहृत्य लक्ष्मण। अन्वगेवाहमिच्छामि वनं गन्तुमितः पुरः ॥

टीका–हे लक्ष्मण! मैं उस के मन में उत्पन्न हुए शङ्कामय दुःख को मुहूर्त भी उपेक्षा नहीं कर सकता हूं ॥ ७ ॥ मैं न जान बूझकर न बिन जाने स्मरण करता हूं, कि कभी मैंने माताओं का वा पिता का ज़रा सा भी विप्रिय किया हो ॥ ८ ॥ किञ्च सच्चा, सच्ची प्रतिज्ञा वाला, सदा सच्चे पराक्रम वाला, मेरा पिता जो परलोक के भय से भीत हो रहा है, वह निर्भय हो ॥ ९॥ उसको भी जब तक यह (अभिषेक का) कर्म समाप्त न होगा (तबतक मेरा वरदान) सत्य नहीं हुआ, यह मन का सन्ताप होगा, उस का सन्ताप मुझे तप्त करेगा ॥ १० ॥ इस लिये हे लक्ष्मण ! अभिषेक का विधान हटाकर अभी इस नगर से वन को जाना चाहता हूं ॥ ११ ॥

मूल–बुद्धिःप्रणीता येनेयं मनश्च सुसमाहितम्। तं तु नार्हामि संक्लेष्टुं प्रव्रजिष्यामि मा चिरम् ॥ १२ ॥ कृतान्त एव सौमित्रे द्रष्टव्यो मत्प्रवासने। राज्यस्य च वितीर्णस्य पुनरेव निवर्तने ॥ १३ ॥ कैकेय्याः प्रतिपत्तिर्हि कथं स्यान्मम वेदने। यदि तस्या न भावो-

ऽयं कृतान्तविहितो भवेत् ॥ १४ ॥ जानासि हि यथा सौम्य न मातृषु ममान्तरम् । भूतपूर्वं विशेषो वा तस्या मयि सुतेऽपि वा ॥ १५ ॥ सोऽभिषेकनिवृत्त्यर्थैः प्रवासार्थैश्च दुर्वचैः । उग्रैर्वाक्यैरहं तस्या नान्यद्दैवात्समर्थये ॥१६॥ कथं प्रकृतिसम्पन्ना राजपुत्री तथागुणा। ब्रूयात्सा प्राकृतेव स्त्री मत्पीड्यं भर्तृसंनिधौ ॥ १७ ॥

टीका–जिस (दैव) ने (कैकेयी की) बुद्धि को प्रेरा है, और मन को पक्का किया है, मैं उस (दैव) को तंग नहीं करूंगा, बिना देरी किये जाऊंगा ॥१२॥ दैव ही हे सौमित्रे मेरे निकालने में और दिये हुए राज्य के फिर लौटाने में कारण जानना चाहिये ॥ १३ ॥ कैकेयी का भी मेरे तंग करने में कैसे निश्चय होता, यदि उस का यह निश्चय दैव से किया हुआ न होता ॥१४॥ हे सौम्य तू जानता ही है, कि मेरा अपनी सारी माताओं में कोई भेद नहीं है, वा उस का भी इस से पहले मुझ में वा अपने पुत्र में कभी कोई भेद नहीं हुआ है ॥१५॥ सो मैं उस के ऐसे दुर्वच उग्र वाक्यों से–जो मेरे अभिषेक की निवृत्ति और प्रवास के अर्थ (राजा को कहे गये) हैं, दैव से बिना कोई और कारण नहीं समझता हूं ॥ १६ ॥ (अन्यथा यदि दैव से प्रेरा हुई न हो, तो) वह वैसे गुणों वाली अपने असली स्वभाव से युक्त हुई राजपुत्री कैसे प्राकृत स्त्री की तरह मेरे पीड़ित करने वाला वाक्य कहती और वह भी पति के पास ॥१७॥

मूल–कश्च दैवेन सौमित्रे योद्धुमुत्सहते पुमान् । यस्य नु ग्रहणं किञ्चित्कर्मणोऽन्यन्न दृश्यते ॥१८॥ असंकल्पितमेवेह यदकस्मात्प्रवर्तते । निवर्त्यारब्धमारम्भैर्ननु दैवस्य कर्म तत् ॥ १९ ॥ एतया तत्त्वया बुद्ध्या संस्तभ्यात्मानमात्मना । व्याहतेऽप्यभिषेके मे परि-

तापो न विद्यते ॥ २० ॥ तस्माद्परितापः संस्त्वमप्यनुविधाय माम् । प्रतिसंहारय क्षिप्रमाभिषेचनकीं क्रियाम् ॥२१ ॥नचा च लक्ष्मण संतापं कार्षीलक्ष्म्या विपर्यये । राज्यं वा वनवासो वा वनवासो महोदयः ॥ २२ ॥ न लक्ष्मणास्मिन्मम राज्यविघ्ने माता यवीयस्यभिशङ्कितव्या । दैवाभिपन्ना न पिता कथंचिज्जानासि दैवं हि तथाप्रभावम् ॥ २३ ॥

टीका–कौन दैव के साथ लक्ष्मण ! युद्ध कर सकता है, जिसका पता बिना फल के कु नहीं लगता है ।१८। बड़े प्रयत्न से आरम्भ किये हुए कार्य को ाकर जो चिन्तन न किया हुआ ही अकस्मात प्रवृत्त होता है, निःसन्देह वह दैव का फल है ।१९। इस सच्ची बुद्धि द्वारा आत्मा से आत्मा को थामकर अभिषेक के दूर होने पर भी मुझे सन्ताप नहीं है ।२०। इसलिये तू भी सन्ताप रहित होकर मेरे अनुसार चलकर इस अभिषेक के कर्म को जल्दी दूर कर ।२१। और मत हे लक्ष्मण ! लक्ष्मी के उलट फेर में सन्ताप कर, राज्य वा वनवास इन दोनों में से वनावास ही बड़े फलवाला है ।२२। हे लक्ष्मण ! मेरे इस राज्यविघ्न में छोटी माता पर शङ्का मत कर, वह दैव के बस में है । और पिता पर भी कोई शंका न कर, तू जानता ही है, दैव का प्रभाव ऐसा ही है।२३।

सर्ग २३ (श्लो० २३) लक्ष्मण का अपने ऊपर भरोसा

मूल–इति ब्रुवति रामे तु लक्ष्मणोऽवाक्शिरा इव । ध्यात्वा मध्यं जगामाशु सहसा दुःखहर्षयोः ॥१॥ तदा तु बध्वा भ्रुकुटीं भ्रुवोर्मध्ये नरर्षभः । निःशश्वास महासर्पो बिलस्थ इव रोषितः ॥२॥ तस्य दुष्प्रतिवीक्ष्यं तद् भ्रुकुटीसहितं तदा । बभौ क्रुद्धस्य सिंहस्य मुखस्य सदृशं मुखम् ॥३॥ तिर्यगूर्ध्वं शरीरे च पातयित्वा शिरो-

धराम । अग्राक्ष्णा वीक्षमाणस्तु तिर्यग्भ्रातरमब्रवीत् ॥४॥

टीका—राम के ऐसा कहते हुए लक्ष्मण नीचे सिर करके सोचकर, मन से दुःख और हर्ष के मध्य को प्राप्त हुआ। (राम का धर्म में धैर्य देखकर हर्ष, और राज्यभ्रंश देखकर दुःख)।१। तब वह नर-श्रेष्ठ ! भवों के मध्य में भृकुटी बान्धकर इसतरह सांस लेने लगा, जैसे क्रुद्ध किया हुआ बिल में स्थित महासर्प ॥२॥ उसका वह भृकुटी सहित मुख, जिसके सामने दृष्टि नहीं ठहर सक्ती, तब क्रुद्ध हुए शेर के मुख के सदृश शोभा पाता हुआ ॥ ३ ॥ ग्रीवा को टेढ़ा और ऊपरकी ओर फेरकर, नेत्र के अग्रभाग से भाईको तिरछा देखता हुआ यह बोला । ४ ।

मूल—कथं ह्येतदसंभ्रान्तस्त्वद्विधो वक्तुमर्हति । किं नाम कृपणं दैव-मशक्तमभिशंससि ॥५॥ कथं त्वं कर्मणा शक्तः कैकेयीवशवर्तिनः । करिष्यसि पितुर्वाक्यमधर्मिष्ठं विगर्हितम् ॥६॥ यद्यपि प्रतिपत्तिस्ते दैवी चापि तयोर्मतम् । तथाप्युपेक्षणीयं ते न मे तदपि रोचते ॥७॥ विक्लवो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते । वीराः संभावितात्मानो न दैवं पर्युपासते ॥८॥

टीका—कैसे न घबराने वाला आप जैसा पुरुष यह बात कह सकता है, आप किस लिये इस बेचारे असमर्थ दैव की स्तुति करते हैं ॥५॥ कैसे आप कर्म से समर्थ होकर कैकेयी के वशवर्त्ती पिता के अधर्मिष्ठ निन्दित वाक्य को करेंगे ।६। यद्यपि आपके मतसे उनकी यह बुद्धि दैव से की हुई हो, तौ भी आपका उपेक्षा करना मुझे पसन्द नहीं है ।७। जो घबरा जानेवाला है, वीर्यहीन है, वही दैव के पीछे चलता है, अपने आत्मा का मान करनेवाला वीर पुरुष दैव का सेवन नहीं करते हैं । ८ ।

मूल—दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम् । न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति ॥९॥ द्रक्ष्यन्ति त्वद्य दैवस्य पौरुषं पुरुषस्य च । दैवमानुषयोरद्य व्यक्ता व्यक्तिर्भविष्यति ॥१०॥ अद्य मे पौरुषहतं दैवं द्रक्ष्यन्ति वै जनाः । यैर्दैवादाहतं तेऽद्य दृष्टं राज्याभिषेचनम् ॥११॥ अत्यङ्कुशमिवोद्दामं गजं मदजलोद्धतम् । प्रधावितमहं दैवं पौरुषेण निवर्तये ॥१२॥

टीका—जो अपने पौरुष से दैव को दूर करने को समर्थ है, वह दैव से अपने अर्थ की हानि करके दुःखी नहीं होता है । ९ । आज लोग दैव का और पुरुष के पौरुष का बल देखेंगे. आज दैव और मानुष का स्वरूप प्रकट होगा ।१०। आज वही लोग मेरे पौरुष से दैव को हत हुआ देखेंगे, जिन्होंने आज तेरे राज्याभिषेक को दैव से विघ्नित हुआ देखा है ।११। आज मैं अङ्कुश से बेपरवाह हो, ज़ञ्जीर को तोड़कर भागते हुए मदमत्त हाथी की तरह भागे हुए दैव को अपने पौरुष से लौटाता हूं । १२ ।

मूल—अहं तदाशां धक्ष्यामि पितुस्तस्याश्च या तव । अभिषेकविघातेन पुत्रराज्याय वर्तते ॥१३॥ प्रतिजाने च ते वीर माभूवं वीरलोकभाक् । राज्यं च तव रक्षेयमहं वेलेव सागरम् ॥१४॥ मङ्गलैरभिषिञ्चस्व तत्र त्वं व्यापृतो भव । अहमेको महीपालानलं वारयितुं बलात् ॥१५॥ न शोभार्थाविमौ बाहू न धनुर्भूषणाय मे । नासिराबन्धनार्थाय न शराः स्तम्भहेतवः ॥ १६ ॥

टीका—मैं पिता की उस आशा को और उस (माता) की आशा को जला दूंगा, जो तेरे अभिषेक को हटाकर पुत्र के राज्य के लिये प्रवृत्त हुई है ॥१३॥ हे वीर ! प्रतिज्ञा करता हूं, कि जैसे समुद्र मर्यादा को पालता है, वैसे तेरे राज्य की रक्षा करूंगा, अ-

न्यथा मैं वीरलोक का भागी न होऊं ॥१४॥ आप मङ्गलकार्यों से अपने आपके अभिषेक करने के कार्य्य में लगें, मैं अकेला अपने बल से सब राजों के रोकने के समर्थ हूं ॥१५॥ मेरी यह दोनों भुजाएं शोभा के लिये नहीं हैं, धनुष भूषण के लिये नहीं, तलवार बांधने के लिये नहीं, तीर थामने के लिये नहीं ॥१६॥

मूल—अमित्रमथनार्थाय सर्वमेतच्चतुष्टयम् । न चाहं कामयेऽत्यर्थं यः स्याच्छत्रुर्मतो मम ॥१७॥ खड्गनिष्पेषनिष्पिष्टैर्गहना दुश्चरा च मे । हस्त्यश्वरथिहस्तोरुशिरोभिर्भविता मही ॥१८॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणे प्रगृहीतशरासने । कथं पुरुषमानी स्यात्पुरुषाणां मयि स्थिते ॥१९॥ अद्य मेऽस्त्रप्रभावस्य प्रभावः प्रभविष्यति । राज्ञश्चाप्रभुतां कर्तुं प्रभुत्वं च तव प्रभो ॥ २० ॥ अद्य चन्दनसारस्य केयूरामोक्षणस्य च । वसूनां च विमोक्षस्य सुहृदां पालनस्य च ॥ २१ ॥ अनुरूपाविमौ बाहू राम कर्म करिष्यतः। अभिषेचनविघ्नस्य कर्तॄणां ते निवारणे ॥ ॥ २२ ॥ ब्रवीहि कोऽद्यैव मया वियुज्यतां तवासुहृत्प्राणयशः सुहृज्जनैः। यथा तवेयं वसुधा वशा भवेत्तथैव मां शाधि तवास्मि किंकरः ॥२३॥ विसृज्य बाष्पं परिसान्त्व्य चासकृत्स लक्ष्मणं राघववंशवर्धनः। उवाच पित्रोर्वचने व्यवस्थितं निबोध मामेष हि सौम्य सत्पथः ॥ २४ ॥

टीका—यह चारों के चारों शत्रुओं के दमन के लिये हैं, जो मेरा शत्रु माना गया है,उसकी मैं देर तक स्थिति नहीं चाहता हूं॥१७॥ मेरी तलवार के आघातों से टुकड़े हुए हाथियों के सूंड,घोड़ों के जांघ और रथियों के सिरों से पृथिवी गहना और दुश्चरा होगी॥१८॥ गोह का दस्ताना पहन,धनुष पकड़कर पुरुषों के मध्य में मेरे खड़ा होने पर कौन पुरुषमानी होसकता है ? ॥ १९ ॥ आज

मेरे अस्त्रों के सामर्थ्य का प्रभाव हे प्रभो! राजा की अप्रभुता और आपकी प्रभुता करने के लिये समर्थ होगा ॥ २० ॥ आज हे राम! यह दोनों भुजाएं चन्दन के लेप के, बाहु बन्द धारने के, धन के त्याग के, और सुहृदों के पालन के योग्य कर्म करेंगी, जब कि तेरे अभिषेक के विघ्नकारियों को परे हटा देंगी ॥२१,२२॥ कहो कौन ऐसा तेरा शत्रु है, जिसको प्राण यश और सुहृद्जनों से अभी वियुक्त करदूं, जिससे कि यह पृथिवी तेरे वश में हो, वैसे मुझे शासन कर, मैं तेरा नौकर हूं॥२३॥ (यह सब सुन) रघुवंश का बढ़ानेवाला (राम) लक्ष्मण के आंसू पोंछकर और बार २ तसल्ली देकर कहने लगा, मुझे पिता के वचन में ठहरा हुआ जान, हे सौम्य यही भलों का मार्ग है ॥ २४॥

सर्ग २३ (व० २४) माता को प्रेरणा

मूल—तं समीक्ष्य व्यवसितं पितुर्निर्देशपालने। कौसल्या बाष्प संरुद्धा वचो धर्मिष्ठमब्रवीत् ॥१॥ अदृष्टदुःखो धर्मात्मा सर्वभूत-प्रियंवदः। मयि जातो दशरथात्कथमुञ्छेन वर्तयेत् ॥ २ ॥ यस्य भृत्याश्च दासाश्च मृष्टान्यन्नानि भुञ्जते। कथं स भोक्ष्यतेऽनाथो वने मूलफलान्ययम् ॥३॥ क एतच्छ्रद्दधेच्छ्रुत्वा कस्य वा न भवेद्भयम्। गुणवान्दयितो राज्ञः काकुत्स्थो यद्विवास्यते ॥ ४ ॥

टीका—पिता की आज्ञापालन में उसे निश्चित देखकर आंसुओंसे रुके हुए कण्ठवाली कौसल्या धर्मात्मा (राम) को यह बचन बोली ॥१॥ दुःखों को न देखा हुआ, धर्मात्मा, सब भूतों को मीठा बोलने वाला, दशरथ से मुझमें उत्पन्न होकर कैसे उञ्छ से (दाना२चुनकर) जीविका करेगा ॥२॥ जिसके भृत्य और दास उत्तम बने हुए अन्न खाते हैं, कैसे वह वन में अनाथ हो फलमूल खाएगा ॥ ३ ॥ कौन

इस बात पर विश्वास करेगा, वा किसको सुनकर भय नहीं होगा, कि गुणवान् राजा का प्यारा राम निकाला गया है ॥ ४ ॥

मूल—नूनं तु बलवांल्लोके कृतान्तः सर्वमादिशन् । लोके रामाभिरामस्त्वं वनं यत्र गमिष्यसि ॥५॥ त्वया विहीनामिह मां शोकाग्निरतुलो महान् । प्रधक्ष्यति यथा कक्ष्यं चित्रभानुर्हिमात्यये ॥६॥ कथं हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तन्नानुगच्छति । अहं त्वानुगमिष्यामि यत्र वत्स गमिष्यसि॥७॥तथा निगदितं मात्रा तद्वाक्यं पुरुषर्षभः।श्रुत्वा रामोऽब्रवीद्वाक्यं मातरं भृशदुःखिताम् ॥ ८ ॥

टीका—निःसन्देह लोक में सब कुछ (सुख दुःख आदि की) आज्ञा देता हुआ दैव बलवान् है, जब कि लोक में सब का प्यारा हे राम! तू वन को जाएगा ॥५॥ तुझ से वियुक्त हुई मुझको अतुल महान् शोकाग्नि दग्ध करेगा, जैसे ग्रीष्म में अग्नि जङ्गल को दग्ध करता है ॥६॥ कैसे धेनु जाते हुए अपने बछड़े के पीछे नहीं जाती है,मैं तेरे पीछे जाऊंगी,हे पुत्र!जहां तू जाएगा ॥७॥माता से कहे हुए इस वाक्य को सुनकर पुरुषश्रेष्ठ राम अत्यन्त दुःखी हुई माता से यह वचन बोला ॥ ८ ॥

मूल—कैकेय्या वञ्चितो राजा मयि चारण्यमाश्रिते । भवत्या च परित्यक्तो न नूनं वर्तयिष्यति ॥९॥ भर्तुः पुनः परित्यागो नृशंसः केवलं स्त्रियाः । स भवत्या न कर्तव्यो मनसापि विगर्हितः ॥१०॥यावज्जीवति काकुत्स्थः पिता मे जगतीपतिः । शुश्रूषा क्रियतां तावत्स हि धर्मः सनातनः॥११॥मया चैव भवत्या च कर्तव्यं वचनं पितुः।राजा भर्ता गुरुः श्रेष्ठः सर्वेषामीश्वरः प्रभुः ॥ १२ ॥ इमानि तु महारण्ये विहृत्य नव पञ्च च । वर्षाणि परमप्रीत्या स्थास्यामि ते वचने तव॥१३

टीका—हे माता कैकेयी से ठगा हुआ राजा मेरे वन चले जाने

पर आप से छोड़ा हुआ निःसन्देह जीता नहीं रहेगा ॥९॥ और भर्त्ता का त्याग स्त्री को निरा क्रूर कर्म है,ऐसा निन्दित कर्म आप को मनमें भी नहीं लाना चाहिये ॥ १० ॥ पृथिवी का पति मेरा पिता काकुत्स्थ जब तक जीता है, तब तक आपको उन्हीं की सेवा करनी चाहिये यह सनातन धर्म है ॥ ११ ॥ तुझको और आपको पिता का वचन पालना चाहिये, राजा भर्त्ता है,गुरु है, श्रेष्ठ है, सब का मालिक है,प्रभु है ॥१२॥ यह चौदह बरस महा बनमें सैर करके फिर परम प्रेमके साथ तेरी आज्ञा में ठहरूंगा १३

मूल--एवमुक्ता प्रियं पुत्रं बाष्पपूर्णानना तदा । उवाच परमार्ता तु कौसल्या सुतवत्सला ॥१४॥ नय मामपि काकुत्स्थ वनं वन्यां मृगीमिव । यदि ते गमने बुद्धिः कृता पितुरपेक्षया ॥ १५ ॥ तां तथा रुदतीं रामोऽरुदन्वचनमब्रवीत् । जीवन्त्या हि स्त्रिया भर्ता दैवतं प्रभुरेव च ॥१६॥ भवत्या मम चैवाद्य राजा प्रभवति प्रभुः । न ह्यनाथा वयं राज्ञा लोकनाथेन धीमता ॥१७॥ भरतश्चापि धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः । भवतीमनुवर्तेत स हि धर्मरतः सदा ॥१८ यथा मयि तु निष्क्रान्ते पुत्रशोकेन पार्थिवः । श्रमं नावाप्नुयात्किञ्चिदप्रमत्ता तथा कुरु ॥१९॥ दारुणश्चाप्ययं शोको यथैनं न विनाशयेत् । राज्ञो वृद्धस्य सततं हितं चर समाहिता ॥ २० ॥

टीका—ऐसे कही हुई आंसुओं से पूर्ण मुखवाली सुतवत्सला कौसल्या अत्यन्त पीड़ित हुई प्यारे पुत्र से बोली ॥१४॥ हे राम ! यदि पिता की अपेक्षा से जाने का निश्चय किया है, तो मुझे भी जङ्गली हरिणीकी तरह बन को लेचल ॥१५॥ इसप्रकार रोती हुई से राम न रोता हुआ यह वचन बोला। स्त्री को जीते जी भर्त्ता देवता है, भर्त्ता प्रभु है॥१६॥आपका भी और मेरा भी राजा आज

मालिक है। उस सारे लोक के नाथ बुद्धिमान् राजा के होते हुए हम अनाथ नहीं हैं ॥१७॥ धर्मात्मा भरत भी जो सब से प्रिय बोलनेवाला है, वह आपके अनुसार चलेगा, वह सदा धर्मरत है ॥ १८ ॥ जिसतरह से कि मेरे चले जाने पर राजा पुत्रशोक से कुछ दुःख न उठाए, वैसे सावधान होकर करो ॥१९॥ यह दारुण शोक जिस तरह इन को नाश न करे, वैसे आप एकचित्त हो कर वृद्ध राजा का लगातार हित आचरण करें ॥२०॥

मूल--व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा । भर्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेत् ॥२१॥ भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्ग मुत्तमम् । अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देवपूजनात् ॥ २२ ॥ शुश्रूषामेव कुर्वीत भर्तुः प्रियहिते रता । एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः ॥२३॥ अग्निकार्येषु च सदा सुमनोभिश्च देवताः । पूज्यास्ते मत्कृते देवि ब्राह्मणाश्चैव सुव्रताः ॥ २४ ॥ एवं कालं प्रतीक्षस्व ममागमनकांक्षिणी । नियता नियताहारा भर्तृ-शुश्रूषणे रता ॥२५॥ प्राप्स्यसे परमं कामं मयि पर्यागते सति । यदि धर्मभृतां श्रेष्ठो धारयिष्यसि जीवितम् ॥ २६ ॥

टीका—जो परम उत्तम नारी व्रत उपवास में लगी हुई पति के अनुसार नहीं चलती है, वह पाप गति वाली होती है ॥२१॥ भर्त्ता की सेवा से ही नारी उत्तम स्वर्ग को प्राप्त होती है, चाहे नमस्कार से रहित और देवपूजन से निवृत्त हो ॥२२॥ भर्ता के प्रिय हित में रत होकर सेवा ही करे, यह धर्म पूर्वकाल में वेद में देखा गया है और स्मृति में माना गया है ॥२३॥ मेरे लिए हे देवि! सदा अग्निकार्यों में पुष्पों से देवताओं और अच्छे व्रतों वाले ब्राह्मणों को पूजना ॥२४॥ इस प्रकार नियमों वाली,

नियत आहार वाली, भर्ता की सेवा में रत हुई मेरा आना चाहती हुई तू समय की प्रतीक्षा कर ॥२५॥ मेरे लौट आने पर अपनी परम कामना को प्राप्त होगी, यदि धर्मधारियों में से श्रेष्ठ (राजा) जीवन को धारेगा ॥२६॥

सर्ग २४ (व० २४, २५,) माता का राम को विदा देना

मूल--एवमुक्ता तु रामेण बाष्पपर्याकुलेक्षणा । कौसल्या पुत्रशोकार्ता रामं वचनमब्रवीत् ॥१॥ गच्छ पुत्र त्वमेकाग्रो भद्रं तेऽस्तु सदा विभो । पुनस्त्वयि निवृत्ते तु भविष्यामि गतक्लमा ॥२॥ प्रत्यागते महाभागे कृतार्थे चरितव्रते । पितुरानृण्यतां प्राप्ते स्वप्स्ये परमं सुखम् ॥३॥ गच्छेदानीं महाबाहो क्षेमेण पुनरागतः । नन्दयिष्यसि मां पुत्र साम्ना वाक्येन चारुणा ॥४॥ अपीदानीं स कालः स्याद्वनात् प्रत्यागतं पुनः । यत्त्वां पुत्रक पश्येयं जटावल्कलधारिणम् ॥५॥

टीका--राम से ऐसे कही हुई आंसुओं से भरे हुए नेत्रों वाली पुत्र शोक से पीड़ित कौसल्या राम से यह वचन बोली ।१। जा हे पुत्र ! तेरा सदा कल्याण हो, फिर तेरे लौटने पर मेरे सारे क्लेश दूर होंगे ।२। अब हे महाभाग अपने व्रत को सम्पूर्ण कर पिता का अनृणी हो कृतार्थ होकर तेरे लौटने पर मैं सुखकी नींद सोऊंगी ॥३॥ जा अब हे पुत्र ! हे महाबाहो ! कुशल से फिर वापिस आकर हे पुत्र मुझे मीठे सुन्दर वाक्य से आनन्दित करना ॥ ४ ॥ हां अब वह समय आवे, जब कि बन से फिर वापिस आए हुए तुझे हे पुत्र ! जटा वल्कल धारण किये हुए देखूंगी ॥ ५ ॥

मूल--सा विनीय तमायासमुपस्पृश्य जलं शुचिः । चकार माता

रामस्य मंगलानि मनस्विनी ॥६॥+न शक्यसे वारयितुं गच्छेदानीं रघूत्तम । शीघ्रं च विनिवर्तस्व वर्तस्व च सतां क्रमे ॥७॥ यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च । स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु ॥८॥ यानि दत्तानि तेऽस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता । तानि त्वामभिरक्षन्तु गुणैः समुदितं सदा ॥९॥

टीका–फिर वह मनस्विनी माता उस सारे खेद को हटाकर पवित्र जल से आचमन करके राम का मङ्गल करने लगी ॥ ६ ॥ तुझे रोका नहीं जा सकता है, हे रघुवर ! अब जा, सत्पुरुषों के मार्ग पर चल, और शीघ्र लौटकर आ ॥ ७ ॥ धैर्य से और नियम से जिस धर्म का तू पालन करता है, वह धर्म हे राघवशार्दूल ! तेरी रक्षा करे ॥ ८ ॥ जो अस्त्र बुद्धिमान् विश्वामित्र ने तुझे दिये हैं, वह सद्गुणों से युक्त तेरी सदा रक्षा करें ॥ ९ ॥

मूल--पितृशुश्रूषया पुत्र मातृशुश्रूषया तथा । सत्येन च महाबाहो चिरं जीवाभिरक्षितः ॥१०॥ लोकपालाश्च ते सर्वे वासवप्रमुखास्तथा । ऋतवः षट् च ते सर्वे मासः सम्वत्सरः क्षपाः ॥११॥ दिनानि च मुहूर्ताश्च स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा । श्रुतिः स्मृतिश्च धर्मश्च पातु त्वां पुत्र सर्वतः॥१२॥ आगमास्ते शिवाः सन्तु सिध्यन्तु च पराक्रमाः । सर्वसम्पत्तयो राम स्वस्तिमान् गच्छ पुत्रक ॥१३॥

टीका–पिता की सेवा से हे पुत्र ! तथा माता (यहां कैकेयी से अभिप्राय है) की सेवा से और सत्य के पालन से रक्षा किया हुआ हे महाबाहो ! चिरंजीव ॥ १० ॥ इन्द्रादि सारे लोकपाल, ऋतु, पक्ष, महीने, बरस, रातें ॥ ११ ॥ दिन, और मुहूर्त सदा तुझे कल्याण दें, स्मृति धैर्य और धर्म हे पुत्र ! सब तरफ से तेरी रक्षा करें ॥ १२ ॥ मार्ग तेरे लिये कल्याणकारी हों, तेरे पराक्रम फलें,

तेरे लिये सारी सम्पत्तियें हों,हे पुत्र राम !कल्याण युक्त हुआ जा

मूल–ज्वलनं समुपादाय ब्राह्मणेन महात्मना । हावयामास विधिना राममङ्गलकारणात् ॥ १४ ॥ उपाध्यायः सविधिना हुत्वा शान्तिमनामयम् । हुतहव्यावशेषेण बाह्यं बलिमकल्पयत् ॥ १५ ॥ मधुदध्यक्षतघृतैः स्वस्तिवाच्यं द्विजांस्ततः । वाचयामास रामस्य वने स्वस्त्ययनक्रियाम् ॥१६ ॥ आनम्य मूर्ध्नि चाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनी । अवदत्पुत्रसिद्धार्थो गच्छ राम यथासुखम् ॥ १७ ॥

टीका–फिर (होम के लिये) अग्नि तय्यार करके राम के मङ्गल के अर्थ महात्मा ब्राह्मण से विधि सहित हवन करवाती भई ॥१४॥ उपाध्याय ने विधिवत् हवन करके बचे हुए हवन द्रव्य से (होम स्थान से) बाहर बलिकर्म किया ॥ १५ ॥ तब स्वस्तिवाचन के उद्देश्य से शहद, दही, घी और अक्षत द्वारा ब्राह्मणों से वन में राम का स्वस्त्ययन (कल्याण से रहने के लिये स्वस्तिवाचन) करवाया ॥१६॥ फिर वह यशस्विनी राम को झुकाकर माथे पर चूमकर और कण्ठ लगाकर बोली, पुत्र राम ! सफल प्रयोजनों वाला हुआ सुख से जा ॥ १६ ॥

मूल–मङ्गलैरुपसम्पन्नो वनवासादिहागतः । वध्वाश्च मम नित्यं त्वं कामान् वर्धय याहि भोः॥८॥इतीव चाश्रुप्रतिपूर्णलोचना समाप्य च स्वस्त्ययनं यथाविधि । प्रदक्षिणं चापि चकार राघवं पुनः पुनश्चापि निरीक्ष्य सस्वजे ॥ १९ ॥ तया हि देव्या च कृतप्रदक्षिणो निपीडय मातुश्चरणौ पुनः पुनः । जगाम सीतानिलयं महायशाःस राघवः प्रज्वलितः स्वया श्रिया ॥ २० ॥

टीका–मङ्गलों से युक्त हुआ वनवास से फिर यहां आकर मेरी वधू की कामनाओं को वर्धितकर, हे पुत्र जा ॥ १८ ॥ इसप्रकार

आंसुओं से पूर्ण नेत्रोंवाली,(माता)यथाविधि स्वस्त्ययन को समाप्त करके राम की प्रदक्षिणा करती भई * और फिर २ उस को घुट कर कण्ठ लगाती भई ॥१९॥ उस देवी से प्रदक्षिणा किया हुआ माता के चरणों को पकड़ कर नमस्कार करके वह महा-यशस्वी अपनी शोभा से चमकता हुआ सीता के घर गया ॥२०॥

सर्ग २५ (व० २६)रामका सीता से बनवास की विदा मांगना

मूल–वैदेही चापि तत्सर्वं न शुश्राव तपस्विनी । तदेव हृदि तस्याश्च यौवराज्याभिषेचनम् ॥१॥ देवकार्यं स्वयं कृत्वा कृतज्ञा हृष्टचेतना । अभिज्ञा राजधर्माणां राजपुत्री प्रतीक्षते ॥२॥ प्रविवेशाथ रामस्तु स्ववेश्म सुविभूषितम् । प्रहृष्टजनसंपूर्णं ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखः ॥३॥ अथ सीता समुत्पत्य वेपमाना च तं पतिम् । अपश्यच्छोकसंतप्तं चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियम् ॥४॥ तां दृष्ट्वा स हि धर्मात्मा न शशाक मनोगतम् । तं शोकं राघवः सोढुं ततो विवृततां गतः ॥५॥

टीका–सीता बेचारी ने भी वह सब नहीं सुना था, उस के हृदय में वही यौवराज्य का अभिषेक था ॥ १ ॥ कृतज्ञ (परमात्मा के दिये राज्य से परमात्मा की कृतज्ञ) सीता प्रसन्न चित्त हो स्वयं देवकार्य करके राज्यधर्मों के जानने वाली वह राजपुत्र की प्रतीक्षा में थी ॥ २ ॥ उधर राम उस सुन्दर सजे हुए प्रसन्नजनों से भरे हुए मन्दिर में लज्जा से कुछ नीचे मुख किये हुए प्रविष्ठ हुआ ॥ ३ ॥ तब सीता जल्दी उठकर कांपती हुई पति को शोक

---

*राम के गिर्द घूमी ! माता से प्रदक्षिणा करना रक्षा के लिये है (तिलक) ।

से संतप्त और चिन्ता से व्याकुल इन्द्रियोंवाला देखती भई*॥४॥ उस को देख कर धर्मात्मा राघव अपने मनोगत शोक को नहीं सहसका इस से (वह शोक) प्रकट हो गया ॥५॥

मूल–विवर्णवदनं दृष्ट्वा तं प्रस्विन्नममर्षणम् । आह दुःखाभि संतप्तं किमिदानीमिदं प्रभो ॥६॥ अद्य बार्हस्पतः श्रीमान्युक्तः पुष्येण राघव । प्रोच्यते ब्राह्मणैः प्राज्ञैः केन त्वमसि दुर्मनाः॥७॥ न ते शत शलाकेन जलफेननिभेन च । आवृतं वदनं वल्गु च्छत्रेणाभि-विराजते ॥८॥ व्यजनाभ्यां च मुख्याभ्यां शतपत्रनिभेक्षणम् । चन्द्रहंसप्रकाशाभ्यां वीज्यते न तवाननम् ॥९॥ वाग्मिनो वन्दिन-श्चापि प्रहृष्टास्त्वां नरर्षभ । स्तुवन्तो नाद्य दृश्यन्ते मंगलैः सूत-मागधाः ॥१०॥

टीका–सीता ने उस को देखा, कि चेहरे पर रौनक नहीं, और पसीना आ रहा है, (किसी अन्तरीय दुःख को) न सहारते हुए की तरह है, तब वह दुःख से सन्तप्त हुई बोली, हे प्रभो ! यह अब क्या है ॥ ६ ॥ आज बृहस्पति देवतावाला पुण्य नक्षत्र बुद्धिमान् ब्राह्मणों ने कहा है (जो आप के अभिषेक का दिन है) तो फिर आप क्यों दुर्मन है ॥७॥आपका सुन्दर मुख बहुत सलाईयों वाले, जल की झाग के तुल्य श्वेत छत्र से नहीं ढका हुआ है ॥८॥ चन्द्र और हंसकी तरह श्वेत दो मुख्य चंवर आप के मुखकमल पर नहीं झूल रहे हैं ॥९॥ हे नरश्रेष्ठ ! सुन्दर बाणी वाले बन्दी सूत और

---

* सीता बड़े चाव से उठी, पर राम के साथ राजचिन्ह न देख कर कांप गई, सीता की यह दशा देख, और यह ध्यान कर, कि इतने लम्बे वियोगमें इस पतिप्राणा का क्या हाल होगा, रामके चेहरे पर भी सीता के दुःख का ध्यान कर शोक आगया ।

मागध प्रसन्न हो मङ्गलों से तेरी स्तुति करते हुए नहीं दीखते हैं

मूल—न त्वां प्रकृतयः सर्वाः श्रेणीमुख्याश्च भूषिताः । अनुव्रजितुमिच्छन्ति पौरजानपदास्तथा ॥११॥ चतुर्भिर्वेगसम्पन्नै र्हयैः काञ्चनभूषणैः । मुख्यः पुष्परथो युक्तः किं न गच्छति तेऽग्रतः ॥१२॥ न हस्ती चाग्रतः श्रीमान्सर्वलक्षणपूजितः । प्रयाणे लक्ष्यते वीर कृष्णमेघगिरिप्रभः ॥१३॥ न च काञ्चनचित्रं ते पश्यामि प्रियदर्शन । भद्रासनं पुरस्कृत्य यान्तं वीर पुरःसरम् ॥१४॥ अभिषेको यदा सज्जः किमिदानीमिदं तव । अपूर्वो मुखवर्णश्च न प्रहर्षश्च लक्ष्यते ॥१५॥

टीका—सारे अहल्कार और श्रेणियों के मुखिये पुर और देश के लोग सज धजकर आदर के साथ आपके पीछे नहीं चल रहे हैं ॥ ११ ॥ सुवर्ण से भूषित, वेगवाले चार घोड़ों से युक्त मुखिया पुष्परथ तेरे आगे २ क्यों नहीं चल रहा है ॥ १२ ॥ न ही हे वीर ! अच्छे लक्षणों वाला काले मेघ और पर्वत के तुल्य श्रीमान् हाथी चलने में तेरे आगे चल रहा है ॥ १३ ॥ और न ही हे प्रियदर्शन ! वीर पुरुषों से आदर किया हुआ सुवर्ण से चित्रित तेरा भद्रासन उठाकर आगे चलता हुआ किसी पुरुष को देखती हूं ॥ १४ ॥ जब अभिषेक तय्यार था, तो क्या यह तेरे मुख का वर्ण (मुख की कान्ति) अपूर्व (आगे न देखी हुई) है, और प्रहर्ष नहीं प्रतीत होता है ॥ १५ ॥

मूल—इतीव विलपन्तीं तां प्रोवाच रघुनन्दनः । सीते तत्रभवांस्तातः प्रव्राजयति मां वनम् ॥ १६ ॥ कुले महति संभूते धर्मज्ञे धर्मचारिणि । शृणु जानकि येनेदं क्रमेणाभ्यागतं मम ॥ १७ ॥ राज्ञा सत्यप्रतिज्ञेन पित्रा दशरथेन च । कैकेय्यै मम मात्रे तु पुरा दत्तौ

महावरौ ॥ १८ ॥ तयाद्य मम सज्जेऽस्मिन्नभिषेके नृपोद्यते । प्रचोदितः स समयो धर्मेण प्रतिनिर्जितः ॥ १९ ॥ चतुर्दश हि वर्षाणि वस्तव्यं दण्डके मया । पित्रा मे भरतश्चापि यौवराज्ये नियोजितः ॥ २० ॥ सोऽहं त्वामागतो द्रष्टुं प्रस्थितो विजनं वनम् ॥

टीका—इस प्रकार विलाप करती हुई उसको राम ने कहा, हे सीता ! पूजनीय पिता मुझे वन को भेजते हैं ॥ १६ ॥ हे बड़ी कुल में उत्पन्न हुई, हे धर्म जानने वाली, हे धर्म पर चलने वाली जानकी! सुन, जिस क्रम से यह मुझे प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥ सच्ची प्रतिज्ञावाले राजा पिता दशरथ ने मेरी माता कैकयी को पहिले दो बड़े वर दिये थे ॥ १८ ॥ उसने आज जबकि राजा से मेरा अभिषेक तैयार हुआ, तो वह सङ्केत याद दिलाया और धर्म्म से उसे जीत लिया १९॥ सो मैंने चौदह वर्ष वन में रहना है, और मेरे पिता ने भरत को यौवराज्य में नियुक्त किया है ॥ २० ॥ सो मैं निर्जन वन को रवाना हुआ तुझे पूछने के लिये आया हूं ॥ २१ ॥

मूल—तस्मै दत्तं नृपतिना यौवराज्यं सनातनम् । स प्रसाद्यस्त्वया सीते नृपतिश्चैव विशेषतः ॥ २२ ॥ अहं चापि प्रतिज्ञां तां गुरोः समनुपालयन् । वनमद्यैव यास्यामि स्थिरीभव मनस्विनि ॥ २३ ॥ याते च मयि कल्याणि वनं मुनिनिषेवितम् । व्रतोपवासपरया भवितव्यं त्वयाऽनघे ॥ २४॥ कल्यमुत्थाय देवानां कृत्वा पूजां यथाविधि । वन्दितव्यो दशरथः पिता मम जनेश्वरः ॥ २५ ॥ माता च मम कौसल्या वृद्धा सन्तापकर्शिता । धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वत्तः संमानमर्हति ॥ २६ ॥ वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः । स्नेहप्रणयसंभोगैः समा हि मम मातरः ॥ २७ ॥ भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः । त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम ॥

विप्रियं च न कर्तव्यं भरतस्य कदाचन।स हि राजा च वैदेहि देशस्य च कुलस्यच ॥ २९ ॥ अहं गमिष्यामि महावनं प्रिये त्वया हि वस्तव्यमिहैव भामिनि। यथा व्यलीकं कुरुषे न कस्यचित्तथा त्वया कार्यमिदं वचो मम ॥ ३० ॥

टीका—उस को राजा ने सनातन यौवराज्य दिया है सो हे सीते ! उसे प्रसन्न रखना,और राजा को उससे भी बढ़कर ॥२२॥ मैं भी पिता की उस प्रतिज्ञा को पालन करता हुआ आज ही बनको जाऊंगा, हे मनस्विनि! स्थिर हो॥२३॥ हे कल्याणि मुनियों से सेवित वन को चले जाने पर तूने हे निष्पाप सदा व्रतउपवासपरायण रहना ॥ २४ ॥ सवेरे उठकर यथाविधि देवताओं की पूजा करके मेरे पिता राजा दशरथ की वन्दना करना ॥ २५ ॥ और मेरी वृद्धा माता कौशल्या सन्ताप से दुर्बल हुई धर्म को ही आगे करके तुझ से संमान के योग्य है ॥ २६ ॥ और मेरी बाकी माताओं को भी सदा वन्दना करना, क्योंकि स्नेह प्रणय और सेवा में मुझे सदा सारी माताएं बराबर हैं ॥२७॥ भरत और शत्रुघ्न को भी तूने विशेष करके भाई और पुत्र के तुल्य देखना वह दोनों मुझे प्राणों से अधिक प्यारे हैं ॥२८॥ और भरत का कभी विप्रिय नहीं करना, क्योंकि वह देश का और हमारे कुल का राजा है, प्रभु है।२९। हे प्रिये मैं महावन को जाऊंगा, हे भामिनि ! तुम यहीं बसो और जैसाकि तूने आगे मेरे किसी वचन को झूठा नहीं किया है, वैसे ही तू यह मेरा वचन पूरा कर॥३०॥

सर्ग २६ (व० २७) सीता की बिनती

मूल--एवमुक्ता तु वैदेही प्रियार्हा प्रियवादिनी। प्रणयादेव संक्रुद्धा भर्त्तारमिदमब्रवीत् ।१। किमिदं भाषसे राम वाक्यं लघुतया ध्रुवम्

त्वया यदपहास्यं मे श्रुत्वा नरवरात्मज ॥२॥+आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा । स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाः स्वंस्वं भाग्यमुपासते ॥३॥+भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ। अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि ॥४॥

टीका—प्रिय बोलने वाली और प्रिय के योग्या सीता को जब यह कहा गया, तो अतिप्रेम से ही क्रुद्ध हुई भर्त्ता से यह बोली ॥१॥ हे राम ? क्या यह निश्चित हल्का वाक्य कहते हो, हे नरवरात्मज ! जिस वाक्य को तुझ से सुन कर मुझे हंसी आती है ॥२॥ हे आर्य्य ! पुत्र ! पिता माता भाई पुत्र और स्नुषा अपने २ पुण्यों को भोगते हुए अपने भाग्य का सेवन करते हैं ॥३॥ पर हे पुरुषवर ! यह केवल भार्या (स्त्री) है, जो भर्त्ता के भाग्य को प्राप्त होती है, इस लिए 'बन में बसो' यह आज्ञा मुझे भी दी ही गई है ॥४॥

मूल—न पिता नात्मजो वात्मा न माता न सखीजनः। इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ॥५॥+यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव । अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान् ॥६॥+ प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा । सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशिष्यते ॥७॥+अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम् । नास्मि संप्रति वक्तव्या वर्तितव्यं यथा मया ८

टीका—न पिता न पुत्र न माता न सखीजन न अपना आप किन्तु इस लोक और परलोक में नारी का एक पति ही सदा गति है ॥५॥ हे राम ! आप यदि अभी दुर्गम बन को रवाना हुए हैं, तो मैं आप के आगे कुशा और कांटों को मर्दन करती हुई चलूंगी ॥६॥ महल की चोटी पर वा आकाश मार्ग से

विमान के ऊपर चढ़कर सब अवस्थाओं में भर्त्ता की पाद छाया हुई ही उत्तम होती है ॥७॥ मुझे माता ने और पिता ने भिन्न २ सम्बन्धों के विषय में पहले ही शिक्षा दी हुई है, अब मुझे कहने की आवश्यकता नहीं, जैसा मुझे वर्तना है ॥८॥

मूल—अहं दुर्गं गमिष्यामि वनं पुरुषवर्जितम् । नानामृगगणाकीर्णं शार्दूलवृकसेवितम्॥९॥+सुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितुः। अचिन्तयन्ती त्रींल्लोकांश्चिन्तयन्ती पतिव्रतम् ॥१०॥ शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी । सह रंस्ये त्वया वीर वनेषु मधु गन्धिषु ॥११॥ त्वं हि कर्तुं वने शक्तो राम संपरिपालनम्। अन्यस्यापि जनस्येह किं पुनर्मम मानद ॥ १२ ॥ साऽहं त्वया गमिष्यामि वनमद्य न संशयः। नाहं शक्या महाभाग निवर्तयितुमुद्यता

टीका—मैं मनुष्यों से वर्जित नाना मृग गणों से भरे हुए, चीते और भेड़ियों से सेवित दुर्गम वन में जाऊंगी ॥ ९ ॥ और बन में ऐसे आनन्द से रहूंगी जैसे पिता के घर में, तीनों लोकों की परवाह न करती हुई, केवल पातिव्रत की परवाह करती हुई ॥ १० ॥ तेरी सदा सेवा करती हुई नियमों वाली ब्रह्मचारिणी होकर हे वीर ! मधु से सुगन्धित बनों में तेरे साथ रमण करूंगी ॥ ११ ॥ हे राम ! आप बन में दूसरे लोगों का भी पालन करने को समर्थ हैं, क्या फिर मेरा हे मान के देनेवाले ! ॥ १२ ॥ आप के साथ आज बन को जाऊंगी इसमें सन्देह नहीं, हे महाभाग तय्यार हुई मुझ को कोई लौटा नहीं सक्ता है ॥ १३ ॥

मूल—फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः । न ते दुःखं करिष्यामि निवसन्ती त्वया सदा ॥ १४॥+ अग्रतस्ते गमिष्यामि भोक्ष्ये भुक्तवति त्वयि ॥ १५ ॥ इच्छामि सरितः शैलान्प-

स्थलानि सरांसिच । द्रष्टुं सर्वत्र निर्भीता त्वया नाथेन धीमता ॥ १६ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णाः पद्मिनीः साधुपुष्पिताः । इच्छेयं सुखिनी द्रष्टुं त्वया वीरेण संगता ॥१७ ॥ अभिषेकं करिष्यामि तासु नित्यमनुव्रता । सह त्वया विशालाक्ष रंस्ये परमनदिन्नी ॥

टीका—मैं नित्य फल मूल खाऊंगी इसमें संशय नहीं, आप के साथ रहती हुई आप को दुःखी नहीं करूंगी ॥ १४ ॥ आपके आगे २ चलूंगी और आपको खिलाकर खाउंगी ॥ १५ ॥ तुझ बुद्धिमान नाथ के साथ सर्वत्र निर्भय हुई नदियों पर्वतों तालाबों और बनों को देखना चाहती हूं ॥ १६ ॥ हंस और बतखों से युक्त सुन्दर फूले हुए पद्मों वाली नदियों को हे वीर ! आपके साथ मिलकर सुख से देखना चाहती हूं ॥ १७ ॥ उनमें सदा व्रत युक्त होकर स्नान करूंगी, हे विशालनेत्र ! परम आनन्द से आपके साथ रमण करूंगी ॥ १८ ॥

मूल—स्वर्गेऽपि च विना वासो भविता यदि राघव । त्वया विना नरव्याघ्र नाहं तदपि रोचये ॥ १९ ॥ अहं गमिष्यामि वनं सुदुर्गमं मृगायुतं वानरवारणैश्च । वने निवत्स्यामि यथा पितुर्गृहे तवैव पादावुपगृह्य संमता ॥ २० ॥ अनन्यभावामनुरक्तचेतसं त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम् । नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनां नातो मया ते गुरुता भविष्यति ॥ २१ ॥

टीका—हे राघव ! यदि आपके बिना स्वर्ग में भी वास हो, तो हे राम ! मैं उसे भी पसन्द नहीं करती हूं ॥१९॥ मैं मृग वानर और हाथियों से युक्त बड़े दुर्गम बन में जाउंगी, आपके चरणों में संयम से रहती हुई बन में इसतरह रहूंगी, जैसे पिता के घर में ॥ २० ॥ जिसकी भावना आपको छोड़ और कहीं नहीं, जिसका

चित्त आप में अनुरक्त है, जो आपसे वियुक्त होकर मरने के लिये निश्चित है, उस मुझको आप साथ लेचलें, मेरी विनती मानिये, मेरा आप को कोई बोझ नहीं होगा ॥ २१ ॥

सर्ग २७ (व० २८) राम का वनवास के दोष बतलाना

मूल—स एवं ब्रुवतीं सीतां धर्मज्ञां धर्मवत्सलः । न नेतुं कुरुते बुद्धिं वने दुःखानि चिन्तयन् ॥ १ ॥ सान्त्वयित्वा ततस्तां तु बाष्पदूषितलोचनाम् । निवर्तनार्थे धर्मात्मा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥ सीते महाकुलीनासि धर्मे च निरता सदा । इहाचरस्व धर्मं त्वं यथा मे मनसः सुखम् ॥ ३ ॥ सीते विमुच्यतामेषा वनवासकृता मतिः । बहुदोषं हि कान्तारं वनमित्यभिधीयते ॥ ४ ॥ हितबुद्ध्या खलु वचो मयैतदभिधीयते । सदा सुखं न जानामि दुःखमेव सदा वनम् ॥ ५ ॥

टीका—ऐसा कहती हुई धर्मज्ञा सीता को धर्मवत्सल राम बन में दुःखों का चिन्तन करता हुआ लेजाना नहीं चाहता है ॥ १ ॥ आंसुओं से डुबडुबाते नेत्रोंवाली सीता को फिर तसल्ली देकर उस के हटाने के लिये वह धर्मात्मा यह वाक्य बोला ॥ २ ॥ हे सीते तू महाकुलीना है, और सदा धर्म में रत है, यहां ही धर्मका आचरण कर, जैसे मेरे मन का सुख हो ॥ ३ ॥ हे सीते ! वनवास के ख्याल को छोड़, गहन बन बड़े दोषों वाला कहा जाता है ॥ ४ ॥ हितबुद्धि से मैं तुझे यह बचन कहता हूं, बन में सदा सुख नहीं जानता हूं बन सदा दुःखरूप ही है ॥ ५ ॥

मूल—गिरि निर्झरसंभूता गिरिनिर्दरिवासिनाम् । सिंहानां निनदा दुःखं श्रोतुं दुःखमतो वनम् ॥ ६ ॥ संग्राहाः सरितश्चैव पङ्कवत्यस्तु दुस्तराः । मत्तैरपि गजैर्नित्यमतो दुःखतरं वनम् ॥ ७ ॥ लताकण्टकसंकीर्णाः कृकवाकूपनादिताः । निरपाश्च सुदुःखाश्च मार्गा दुःखमतो वनम् ॥

८॥ सुप्यते पर्णशय्यासु स्वयंभग्नासु भूतले। रात्रिषु श्रमखिन्नेन तस्माद्दुःखतरं वनम् ॥ ९ ॥ अहोरात्रं च संतोषः कर्तव्यो नियतात्मना। फलैर्वृक्षावपतितैः सीते दुःखमतो वनम् ॥ १० ॥

टीका—पर्वतों के झरनों से मिलकर प्रभूत हुई, पर्वतों की कन्दरों में रहनेवाले शेरों की गर्जनाएं सुनना दुःखदायी है, इसलिये बन दुःखरूप है ॥ ६ ॥ तेन्दुओं से भरी हुई दलदल वाली नदियें होती हैं, जो कि मत्त हाथियों से भी दुस्तर हैं, इसलिये बन दुःखतर है ॥ ७ ॥ बेलों और कांटों से भरे हुए, जङ्गली कुक्कड़ों से गूंजते हुए मार्ग जल से शून्य बड़े दुःखदायी होते हैं, इसलिये बन दुःखरूप है ॥ ८ ॥ रात के समय श्रम से थककर पृथिवी पर अपने आप टूटे हुई पत्तों की शय्या पर सोना होता है, इसलिये बन दुःखतर है ॥ ९ ॥ और नियतात्मा होकर वृक्षों से अपने आप गिरे हुए फलों पर सन्तोष करना होता है, इसलिये हे सीते ! बन दुःखरूप है १० ॥

मूल—अतीव वातस्तिमिरं बुभुक्षा चास्ति नित्यशः। भयानि च महान्त्यत्र अतो दुःखतरं वनम् ॥ ११ ॥ पतङ्गा वृश्चिकाः कीटा दंशाश्च मशकैः सह। बाधन्ते नित्यमबले सर्वं दुःखमतो वनम् ॥१२ द्रुमाःकण्टकिनश्चैव कुशाः काशाश्च भामिनि। वने व्याकुलशाखाग्रास्तेन दुःखमतो वनम् ॥ १३ ॥ तदलं ते वनं गत्वा क्षेमं नहि वनं तव। विमृशन्निव पश्यामि बहुदोषकरं वनम् ॥ १४ ॥

टीका—प्रबल वायु, अन्धेरा और भूख वहां सदा रहता है, और वहां बड़े भय होते हैं, इसलिये बन दुःखतर है ॥ ११ ॥ कीट पतंग विच्छु डांस और मच्छर सदा तंग करते हैं, इसलिये हे अबले बन दुःख ही है ॥ १२ ॥ बन में कांटोंवाले वृक्षों की

शाखाएं और कुशा काही के अग्र एक दूसरे से जकड़े हुए होते हैं (जिनमें से लंघना अतीव कठिन होता है) इसलिये बन दुःखतर है ॥ १३ ॥ सो तुझे बन को नहीं जाना चाहिये, बन तेरे योग्य नहीं, मैं विचारता हुआ तेरे लिये बन को बहुत अधिक दोषों वाला देखता हूं ॥ १४ ॥

सर्ग २८ (व० २९) सीता का उन दोषों को गुण बतलाना

मूल—एतत्तु वचनं श्रुत्वा सीता रामस्य दुःखिता । प्रसक्ताश्रुमुखी मन्दमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १॥ + ये त्वया कीर्तिता दोषा वने वस्तव्यतां प्रति। गुणानित्येव तान्विद्धि तव स्नेहपुरस्कृतान् ॥२॥ मृगाः सिंहा गजाश्चैव शार्दूलाः शरभास्तथा। चमराः सृमराश्चैव ये चान्ये वनचारिणः ॥ ३ ॥ अदृष्टपूर्वरूपत्वात्सर्वे ते तव राघव। रूपं दृष्ट्वापसर्पेयुर्भये सर्वे हि बिभ्यति ॥ ४ ॥ + त्वया च सह गन्तव्यं मया गुरुजनाज्ञया । त्वद्वियोगेन मे राम त्यक्तव्यमिह जीवितम् ॥ ५ ॥

टीका—परसीता राम के इस वचन को सुनकर दुःखित हुई, मुख पर आंसु बहाती हुई धीरे से यह वचन बोली ॥१॥ वनवास के विषय में जो आपने दोष कहे हैं, आपके प्रेम को आगे करके उन सब को गुण ही जान ॥२॥ मृग, शेर, हाथी, चीते, शरभ, चमर और सृमर और जो और भी बनचारी हैं ॥३॥ पहले न देखे हुए तेरे रूप को देखकर हे राघव ! सभी भाग जाएंगे, क्योंकि भय में सभी डरते हैं (आपके शस्त्र उनके भय का हेतु होंगे)॥४॥मुझे गुरुजन (पिता) की (सदा छाया की तरह भर्ता के अनुगत रहना इस) आज्ञा से आपके साथ अवश्य जाना है, आपके वियोग से हे राम ! मैं जीवन त्याग दूंगी ॥ ५ ॥

मूल—+वनवासे हि जानामि दुःखानि बहुधा किल । प्राप्यन्ते

नियतं वीर पुरुषैरकृतात्मभिः ॥ ६ ॥ कृतक्षणाहं भद्रं ते गमनं प्रति राघव । वनवासस्य शूरस्य चर्या हि मम रोचते ॥७॥+शुद्धात्मन् प्रेमभावाद्धि भविष्यामि विकल्मषा । भर्तारमनुगच्छन्ती भर्त्ता हि मम दैवतम्॥८॥ प्रेत्यभावे हि कल्याणः संगमो मे सदा त्वया । श्रुति र्हि श्रूयते पुण्या ब्राह्मणानां तपस्विनाम् ॥९॥ इहलोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महाबल । अद्भिर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा

टीका—हे वीर ! मैं निश्चित जानती हूं, कि वनवास में अनेक दुःख हैं, पर उन दुःखों को वह पुरुष प्राप्त होते हैं, जो जितेन्द्रिय न हों ॥६॥ हे राघव ! जाने के लिए मैं उत्साह युक्त हूं, आप का कल्याण हो, बन में रहते हुए तुझ शूरबीर की सेवा मुझे पसन्द है ॥७॥ हे शुद्धात्मन् ! मैं अपने प्रेमभाव से अपने भर्ता के पीछे चलती हुई निर्दोष हूंगी, भर्ता ही मेरा देवता है ॥८॥ मर कर फिर जन्मने में भी आपके साथ मेरा कल्याण संगम होगा, जैसा कि तपस्वी ब्राह्मणों की श्रुति है ॥९॥ इस लोक में जो स्त्री पितरों ने जलों के साथ धर्ममर्यादा से जिस को दी है, हे महाबल ! वह परलोक में भी उसी की होती है ॥१०॥

मूल—एवमस्मात्स्वकां नारीं सुवृत्तां हि पतिव्रताम् । नाभिरोचयसे नेतुं त्वं मां केनेह हेतुना ॥ ११ ॥+ भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः । नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम् ॥१२ + यदि मां दुःखितामेवं वनं नेतुं न चेच्छसि । विषमग्निं जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात् ॥ १३ ॥ एवं बहुविधं तं सा याचते गमनं प्रति । नानुमेने महाबाहुस्तां नेतुं विजनं वनम् ॥ १ ॥ एवमुक्त्वा तु सा चिन्तां मैथिली समुपागता । स्नापयन्तीव गामुष्णैरश्रुभि-

नयनच्युतैः ॥ १८ ॥ चिन्तयन्तीं तदा तां तु निवर्तयितुमात्मवान्। ताम्रोष्ठीं स तदा सीतां काकुत्स्थो बहु सान्त्वयत् ॥ १६ ॥

टीका—जब ऐसे है, तो फिर आप अपनी पतिव्रता सदाचारिणी नारी को यहां से साथ ले जाना किस हेतु से पसन्द नहीं करते हैं ॥११॥ भक्तिमती, पतिव्रता, दीन, सुख दुःख में सम, एक सुख दुःख वाली मुझ को हे काकुत्स्थ! आप ले चलने योग्य हैं ॥१२॥ यदि इस प्रकार दुखिया को वन में ले जाना नहीं चाहोगे, तो मैं मृत्यु के अर्थ जल अग्नि वा विष को स्वीकार करूंगी ॥१३॥ इस तरह अनेक प्रकार से जाने के लिए वह याचना करती भई, पर महाबाहु ने फिर भी उस को निर्जन बन में जाने की अनुमति न दी ॥ १४ ॥ मैथिली को जब इस तरह फिर रोका गया, तो वह चिन्ता में डूब गई और नेत्रों से बहती हुई गर्म आंसुओं की धारा से मानों पृथिवी को स्नान कराती भई ॥१५॥ इस तरह सोच में डूबी हुई लाल होटों वाली सीता को रोकने के लिए जितेन्द्रिय राम बहुत सी तसल्ली देता भया ॥१६॥

सर्ग २९ (ब० ३०] सीता के पति पर दावे के वचन

मूल—सान्त्व्यमाना तु रामेण मैथिली जनकात्मजा। वनवासनिमित्तार्थं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥१॥ सा तमुत्तमसंविग्ना सीता विपुलवक्षसम्। प्रणयाच्चाभिमानाच्च परिचिक्षेप राघवम् ॥२॥+किं त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः। राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम्॥३॥ अनृतं बत लोकोऽयमज्ञानाद्यदि वक्ष्यति। तेजो नास्ति परं रामे तपतीव दिवाकरे ॥४॥ किं हि कृत्वा विषण्णस्त्वं कुतो वा भयमस्ति ते। यत्परित्यक्तुकामस्त्वं माम-

न्यपरायणाम् ॥५॥ द्युमत्सेनसुतं वीरं सत्यवन्तमनुव्रताम् । सावित्रीमिव मां विद्धि त्वमात्मवशवर्तिनीम् ॥ ६ ॥

टीका—राम से तसल्ली दी जाती हुई जनकसुता मैथिली बनवास के निमित्त भर्ता से यह बोली ॥१॥ अतीव कांपती हुई सीता अतीव प्रेम और अभिमान (अपना पति होने का जो अभिमान है, उस) से बिशाल छाती वाले राम पर आक्षेप करती भई ॥ २ ॥ मेरे पिता मिथिलाऽधिपति वैदेह ने तुझ जामाता को पाकर क्या समझा था, जो कि पुरुष का शरीर धारण किए स्त्री है ॥ ३ ॥ दुनिया यदि ऐसा कहेगी, कि तपते हुए सूर्य में तेज की तरह राम में तेज है, तो वह झूठ क्यों नहीं होगा ॥४॥ क्या सोच कर आप को विषाद होरहा है, अथवा किस से आपको भय है, जो आप मुझ अनन्य परायणा को छोड़ने की कामना करते हैं ॥५॥ द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् के पीछे चलने वाली सावित्री की तरह आप मुझे जानें, हे वीर ! मैं आप के वशवर्तिनी हूं ॥६॥

मूल—न त्वहं मनसा प्यन्यं द्रष्टास्मि त्वदृतेऽनघ । त्वया राघव गच्छेयं यथाऽन्या कुलपांसनी ॥७॥+स मामनादाय वनं न त्वं प्रस्थितुमर्हसि । तपो वा यदि वाऽरण्यं स्वर्गो वा मे सह त्वया ॥८॥ न च मे भविता तत्र कश्चित्पथि परिश्रमः । पृष्ठतस्तव गच्छन्त्या विहारशयनेष्विव ॥९॥+ कुशकाशशरेषीका ये च कण्टकिनो द्रुमाः । तूलाजिनसमस्पर्शा मार्गे मम सह त्वया ॥१०॥+ महावात समुद्भूतं यन्मामवकरिष्यति । रजो रमण तन्मन्ये परार्ध्यमिव चन्दनम् ॥११॥+ शाद्वलेषु यदा शिश्ये वनान्तर्वनगोचरा । कुथास्तरणयुक्तेषु किं स्यात्सुखतरं ततः ॥१२॥

टीका—हे निष्पाप मैं किसी और कुलकलंकिनी की तरह नहीं

हूं, मैं तेरे विना मन से भी दूसरे को नहीं देखूंगी (इस लिए आपके साथ जाऊंगी) ॥७॥ सो मुझे न ले जाकर आप बन को रवाना होने योग्य नहीं हैं, तप वा वन वा स्वर्ग जो कुछ हो मेरा आप के साथ है ॥८॥ वहां मार्ग में आपके पीछे चलती हुई मुझे आराम की शय्या पर सोई हुई की तरह कोई परिश्रम नहीं होगा ॥९॥ कुशा काही और सरकण्डे और जो कांटों वाले वृक्ष हैं, वह आप के साथ मेरे मार्ग में रूई और पश्म के तुल्य स्पर्श वाले होंगे ॥१०॥ बड़ी आंधी से उत्पन्न हुई धूलि जो मेरे ऊपर गिरेगी हे रमण ! मैं उसे सब से बढ़िया चन्दन समझूंगी ॥११॥ वन में जाकर बन के अन्दर जब हरे घास पर सोऊंगी, तो नर्म पश्मी-ने के आस्तरण वाले पलंगों पर उस से बढ़ कर क्या सुख होगा

मूल—पत्रं मूलं फलं यत्तु अल्पं वा यदि वा बहु । दास्यसे स्वय-माहृत्य तन्मेऽमृतरसोपमम् ॥१३॥+ न मातुर्न पितुस्तत्र स्मरि-ष्यामि न वेश्मनः । आर्तवान्युपभुञ्जाना पुष्पाणि च फलानि च ॥१४॥ यस्त्वया सह स स्वर्गो निरयो यस्त्वया विना । इति जानन्परां प्रीतिं गच्छ राम मया सह ॥१५॥ इमं हि सहितुं शोकं मुहूर्तमपि नोत्सहे । किं पुनर्दशवर्षाणि त्रीणि चैकं च दुःखिता ॥१६॥ इति सा शोकसंतप्ता विलप्य करुणं बहु । चुक्रोश पतिमायस्ता भृशमालिङ्ग्य सस्वरम् ॥१७॥ तस्याः स्फाटिकसं-काशं वारि संतापसंभवम् । नेत्राभ्यां परिसुस्राव पङ्कजाभ्यामिवोदकम्

टीका—पत्र फल मूल जो कुछ थोड़ा वा बहुत आप मुझे लाकर देंगे, वह मुझे अमृतरस के तुल्य है ॥ १३ ॥ मौसमी फूल फलों को उपभोग करती हुई न वहां माता को, न पिता को, न घर को स्मरण करूंगी ॥१४॥ (अधिक क्या) जो आपके साथ है, वह

स्वर्ग है, जो आपके बिना है, वह नरक है, यह जानते हुए आप हे राम ! मेरे साथ परम प्रीति को प्राप्त हों ॥ १५ ॥ इस शोक को हे राम ! मुहूर्त भी नहीं सह सक्ती हूं, क्या फिर चौदह वर्ष दुःखित हुई ॥ १६ ॥ इतना कह शोक से तपी हुई वह बहुत करुण विलाप करके तंग हुई पति को गाढ़ आलिंगन करके सशब्द रोती भई ॥ १७ ॥ संताप से उत्पन्न हुआ स्फटिक की तरह निर्मल जल उसके नेत्रों से इस तरह बहने लगा, जैसे कमलों से पानी ॥

सर्ग ३० (व० ३०) सीता को साथ चलने की आज्ञा

मूल—तां परिष्वज्य बाहुभ्यां विसंज्ञामिव दुःखिताम् । उवाच वचनं रामः परिविश्वासयंस्तदा ॥ १ ॥ न देवि तव दुःखेन स्वर्गमप्यभिरोचये ॥२॥ तव सर्वमभिप्रायमविज्ञाय शुभानने । वासं न रोचये ऽरण्ये शक्तिमानपि रक्षणे॥३॥ तत्सृष्टासि मया सार्धं वनवासाय मैथिलि । न विहातुं मया शक्या कीर्त्तिरात्मवता यथा४।

टीका—ऐसी दुःखिता होकर विचेतन सी हुई उसको राम दोनों भुजाओं से आलिंगन करके तसल्ली देता हुआ यह वचन बोला ॥ १॥ हे देवि तेरे दुःख से मैं स्वर्ग को भी पसन्द नहीं करता हूं ॥२॥ तेरे सारे अभिप्राय को जाने बिना हे सुन्दरमुखि ! बन में तेरे वास को पसन्द नहीं करता था, चाहे रक्षा में शक्तिमान् भी हूं ॥३॥ सो हे मैथिलि ! मेरे साथ बनवास की तुझे आज्ञा है, मैं तुझे छोड़ नहीं सक्ता हूं, जैसे उच्चहृदय अपनी कीर्ति को नहीं छोड़ सक्ता है ॥ ४ ॥

मूल—न खल्वहं न गच्छेयं वनं जनकनन्दिनि । वचनं तन्नयति मां पितुः सत्योपबृंहितम् ॥५॥+एवं धर्मश्च सुश्रोणि पितुर्मातुश्च वश्यता । अतश्च तं व्यतिक्रम्य नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ६ ॥+ न

सत्यं दानमानौ वा यज्ञो वाप्याप्तदक्षिणः। तथा बलकरः सीते यथा सेवा पितुर्मता ॥ ७ ॥ +स्वर्गो धनं वा धान्यं वा विद्या पुत्राः सुखानि च। गुरुवृत्त्यनुरोधेन न किञ्चिदपि दुर्लभम् ॥८॥

टीका—हे जनक नन्दिनि! मैं बन को न जाउं ऐसा नहीं होसक्ता है, पिता का सचाई से पुष्ट वचन मुझे लेजाता है ॥५॥ यह धर्म है हे सुश्रोणि! पिता के और माता के वशवर्ती होना, इसलिये उसे उल्लंघन करके मैं जी नहीं सक्ता हूं॥६॥ न सचाई न दान मान न पूरी दक्षिणा वाले यज्ञ वैसा बल पैदा करने वाले हैं हे सीते! जैसे पिता की सेवा हितकारी है ॥७॥ बड़ों की वृत्ति के अनुसार चलने से स्वर्ग, धन, धान्य, विद्या, पुत्र और सुख, कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है॥८

मूल—देवगन्धर्वगोलोकान्ब्रह्मलोकांस्तथापरान्। प्राप्नुवन्ति महात्मानो मातापितृपरायणाः ॥ ९ ॥ स मां पिता यथाशास्ति सत्य धर्मपथे स्थितः। तथा वर्त्तितुमिच्छामि स हि धर्मः सनातनः १० मम सन्ना मतिः सीते नेतुं त्वां दण्डकावनम्। वसिष्यामीति सा त्वं मामनुयातुं सुनिश्चिता ॥११॥ सा हि सृष्टानवद्याङ्गि वनाय मादिरेक्षणे। अनुगच्छस्व मां भीरु सहधर्मचरी भव ॥१२॥

टीका—मातापितृपरायण पुरुष देव लोकोंको गन्धर्व लोकों को गो लोकों को तथा ब्रह्मलोकों को प्राप्त होते हैं ॥९॥ सो सत्यधर्म के पथ पर स्थित पिता मुझे जैसी आज्ञा देता है, वैसे वर्तना चाहता हूं, यह सनातन धर्म है ॥१०॥ हां हे सीते! तुझे दण्डक बन को लेजाने का मेरा विचार फिसला हुआ था, पर तू 'मैं बनवास लूंगी' इस प्रकार मेरे साथ जाने को पक्के निश्चय वाली है॥११॥सो हे सुन्दर अंगों वाली हे मस्त आंखों वाली! तुझे बन जाने की अनुज्ञा है, हे भीरु मेरे साथ चल और मेरी सहधर्मचारिणी हो

मूल—सर्वथा सदृशं सीते मम स्वस्य कुलस्य च । व्यवसायमनुक्रान्ता कान्ते त्वमतिशोभनम् ॥१३॥ आरभस्व शुभश्रोणि वनवासक्षमाः क्रियाः । नेदानीं त्वदृते सीते स्वर्गोऽपि मम रोचते ॥१४॥ ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि भिक्षुकेभ्यश्च भोजनम् । देहि चाशंसमानेभ्यः संत्वरस्व च मा चिरम् ॥१५॥ भूषणानि महार्हाणि वरवस्त्राणि यानि च । रमणीयाश्च ये केचित् क्रीडार्थाश्चाप्युपस्कराः १६ शयनीयानि यानानि मम चान्यानि यानि च । देहि स्वभृत्यवर्गस्य ब्राह्मणानामनन्तरम् ॥१७॥ अनुकूलं तु सा भर्तुर्ज्ञात्वा गमनमात्मनः। क्षिप्रं प्रमुदिता देवी दातुमेव प्रचक्रमे ॥ १८ ॥

टीका—सर्वथा हे सीते ! तू मेरी और अपनी कुल के सदृश निश्चय पर पहुंची है, हे कान्ते ! तेरा निश्चय बड़ा शोभन है ॥ १३ ॥ हे सुश्रेणि ! वनवास के योग्य कर्मों को आरम्भ कर, नहीं अब तेरे बिना हे सीते ! स्वर्ग भी मुझे पसन्द है ॥१४॥ ब्राह्मणों को रत्न और मांगने वाले भिक्षुकों को भोजन दे, जल्दी कर, अब देर न हो ॥१५॥ और बहुमूल्य भूषण, उत्तम वस्त्र,और रमणीय खेल के जो सामान हैं, शयन और और भी जो मेरी वस्तुएं हैं, वह ब्राह्मणों के पीछे अपने भृत्यवर्ग को दे ॥ १६, १७ ॥ अब वह देवी अपना जाना पति के अनुकूल जानकर बड़ी प्रमुदित हो जल्दी २ बांटने लगी ॥ १८ ॥

सर्ग ३१ (व० ३१) लक्ष्मण का आज्ञा मांगना

मूल—एवं श्रुत्वा तु संवादं लक्ष्मणः पूर्वमागतः । बाष्पपर्याकुलमुखः शोकं सोढुमशक्नुवन् ॥१॥ स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः । सीतामुवाचातियशा राघवं च महाव्रतम् ॥२॥ यदि गन्तुं कृता बुद्धिर्वनं मृगगजायुतम् । अहं त्वानुगमिष्यामि वनमग्रे

धनुर्धरः ॥ ३ ॥ मया समेतोऽरण्यानि रम्याणि विचरिष्यसि । पक्षिभिर्भृंगयूथैश्च संघुष्टानि समन्ततः ॥ ४ ॥

टीका—इस सम्वाद को सुनकर पहले आया हुआ लक्ष्मण आंसुओं से व्याप्त मुख वाला शोक को न सहार सक्ता हुआ ॥१॥ भाई के चरणों को पकड़कर वह परमयशस्वी रघुसन्तान सीता से और महाव्रती राम से यों बोला॥२॥यदि मृग और हाथियोंसे युक्त वन को जानेका निश्चय कर लिया है,तो मैं धनुष पकड़कर आपके साथ आपके आगे वन को जाउंगा॥३॥मेरे साथ आप बहुत वनोंमें विचरेंगे, जहां पक्षी और भौरों के समूह चारों ओर गूंज रहे हैं ॥ ४ ॥

मूल—+ न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे । ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना ॥५॥ एवं ब्रुवाणः सौमित्रिर्वनवासाय निश्चितः । रामेण बहुभिः सान्त्वैर्निषिद्धः पुनरब्रवीत् ॥६॥ अनुज्ञातस्तु भवता पूर्वमेव यदस्म्यहम् । किमिदानीं पुनरपि क्रियते मे निवारणम् ॥७॥+यदर्थं प्रतिषेधो मे क्रियते गन्तुमिच्छतः । एतदिच्छामि विज्ञातुं संशयो हि ममानघ ॥ ८ ॥

टीका—आपके बिना न मैं देवलोक में पहुंचना न अमर होना मांगता हूं, न सारे लोकों का ऐश्वर्य चाहता हूं ॥ ५ ॥ इस प्रकार जब लक्ष्मण ने वनवास के लिये निश्चित होकर कहा,तो राम ने बहुत बड़ी तसल्ली देकर रोका, (जिसको सुनकर) वह फिर बोला ॥६॥ जब आपने पहले ही मुझे अनुमति*दे दी है, तो अब फिर यह आप मुझे क्यों रोकते हैं॥७॥ क्यों मुझे जाना चाहते हुए को यह रोक है, यह जानना चाहता हूं हे निष्पाप ! मुझे संशय है ॥८॥

मूल—ततोऽब्रवीन्महातेजा रामो लक्ष्मणमग्रतः । स्थितं प्राग्गामिनं

* पूर्व २१ । २१ में उसे अनुमति दी है ।

वीरं याचमानं कृताञ्जलिम् ॥ ९ ॥ + स्निग्धो धर्मरतो वीरः सततं सत्पथे स्थितः । प्रियः प्राणसमो वश्यो भ्राताचापि सखा च मे ॥ ॥ १० ॥ मयाद्य सह सौमित्रे त्वयि गच्छति तद्वनम् । को भजिष्यति कौसल्यां सुमित्रां वा यशस्विनीम् ॥ ११ ॥ तामार्यां स्वयमेवेह राजानुग्रहणेन वा । सौमित्रे भर कौसल्यामुक्तमर्थममुंचर ॥ ॥१२॥ एवं मयि च ते भक्तिर्भविष्यति सुदर्शिता । धर्मज्ञ गुरुपूजायां धर्मश्चाप्यतुलो महान् ॥ १३ ॥

टीका—तब महातेजस्वी राम हाथ जोड़कर आगे खड़े हुए आगे २ चलने की याचना करते हुए वीर लक्ष्मण से बोला ॥९॥ तू स्नेह से भरा हुआ, धर्मरत, निरन्तर सन्मार्ग में स्थित, प्यारा, प्राणतुल्य, वशवर्ती भाई और सखा है ॥ १० ॥ पर मेरे साथ आज तेरे वन जाने पर कौसल्या का और यशस्विनी सुमित्रा का कौन सेवन करेगा॥११॥उस आर्या को और कौसल्या को हे लक्ष्मण ! आप स्वयं वा राजा के अनुग्रह से पालन कर, यह काम कर ॥ १२ ॥ इस प्रकार मुझ में तेरी भक्ति पूरी दर्शित होगी और हे धर्मज्ञ गुरुपूजा में धर्म भी अतुल होगा ॥ १३ ॥

मूल—एवं कुरुष्व सौमित्रे मत्कृते रघुनन्दन । अस्माभिर्विप्रहीणाया मातुर्नो न भवेत् सुखम् ॥१४ ॥ एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः श्लक्ष्णया गिरा । प्रत्युवाच तदा रामं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम्॥१५ तवैव तेजसा वीर भरतः पूजयिष्यति । कौसल्यां च सुमित्रां च प्रयतो नात्र संशयः॥१६॥कौसल्या विभृयादार्या सहस्रं मद्विधानपि यस्याः सहस्रं ग्रामाणां संप्राप्तमुपजीविनाम् ॥ १७ ॥ तदात्मभरणे चैव मम मातुस्तथैव च । पर्याप्ता मद्विधानां च भरणाय मनस्विनी ॥

टीका—हे रघुनन्दन लक्ष्मण मेरे वास्ते ऐसा कर, क्योंकि हम दोनों

से वियुक्त हुई हमारी माता को सुख नहीं होगा ॥ १४ ॥ जब स्पष्ट वाणी से राम ने लक्ष्मण से ऐसे कहा, तो वह वाक्य का जानने वाला वाक्य के जानने वाले को उत्तर देता भया ॥१५॥ तेरे ही तेज से हे वीर ! कौसल्या को और सुमित्रा को भरत शुद्ध मन से पूजेगा, इस में संशय नहीं ॥ १६ ॥ और आर्या कौसल्या मेरे जैसे सहस्रोंका पालन कर सक्ती है, जिसके नौकरों को सहस्र गाओं मिले हुए हैं ॥ १७ ॥ वह यशस्विनी अपने पालन में, मेरी माता के पालन में और मेरे जैसों के पालन में समर्थ है ॥ १८ ॥

मूल—कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते । कृतार्थोऽहं भविष्यामि तवचार्थः प्रकल्प्यते ॥१९॥ धनुरादाय सशरं खनित्रपिटकाधरः । अग्रतस्ते गमिष्यामि पन्थानं तव दर्शयन् ॥ २० ॥ आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि च फलानि च । वन्यानि च तथान्यानि स्वाहार्हाणि तपस्विनाम् ॥२१॥ भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यते । अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते ॥२२॥

टीका—सो मुझे अपना अनुचर बनावें, इस में कोई उलट नहीं, (क्योंकि यहां का सारा काम मेरे बिना चल जाएगा)आपकी सेवा होगी और मैं कृतार्थ हूंगा ॥१९ ॥ धनुषबाण लिये, (कन्दमूल खोदने और डालने के लिये) खनित्र और पिटारी को धारण किये हुए मार्ग दिखलाता हुआ आपके आगे चलूंगा॥२०॥नित्य आप के लिये फलफूल लाउंगा,और दूसरी जंगली वस्तुएं भी जो तपस्वियों के होम के योग्य होती हैं ॥२१॥ आप जानकी के साथ पर्वत की चोटियों पर रमण करेंगे, मैं आपके जागते और सोते सब कुछ करूंगा ॥ २२ ॥

मूल—रामस्त्वनेन वाक्येन सुप्रीतः प्रत्युवाच तम् । व्रजापृच्छस्व सौमित्रे सर्वमेव सुहृज्जनम् ॥२३॥ ये च राज्ञो ददौ दिव्ये महात्मा वरुणः स्वयम् । जनकस्य महायज्ञे धनुषी रौद्रदर्शने ॥ २४॥ अभेद्य कवचे दिव्ये तूणी चाक्षय्यसायकौ । आदित्यविमलाभौद्वौ खड्गौ हेमपरिष्कृतौ ॥२५॥ सत्कृत्य निहितं सर्वमेतदाचार्यसद्मनि सर्वमायुधमादाय क्षिप्रमाव्रज लक्ष्मण ॥२६ ॥ स सुहृज्जनमामन्त्र्य वनवासाय निश्चितः । इक्ष्वाकुगुरुमागम्य जग्राहायुधमुत्तमम्।२७। तद्दिव्यं राजशार्दूलः सत्कृतं माल्यभूषितम् । रामाय दर्शयामास सौमित्रिः सर्वमायुधम् ॥ २८ ॥

टीका—राम इस वाक्य से बड़ा प्रसन्न हुआ उसे उत्तर देता भया, जा हे लक्ष्मण ! सारे ही सुहृद्जनों से आज्ञा ले आ ॥२३॥और वह दोनों भयङ्कर धनुष जो महात्मा वरुण ने स्वयं राजा जनक को महायज्ञ में दिये थे ॥२४॥ और दोनों अभेद्य कवच, और अनखुट तीरों वाले दोनों भत्थे, और सोने की मुठीवालीं सूर्य की तरह चमकती हुई दोनों तलवारें ॥ २५ ॥ यह सब सत्कार पूर्वक आचार्य के घर में रक्खा हुआ है, सो तू शस्त्र ले करके हे लक्ष्मण जल्दी आ ॥२६॥वनवास के लिये निश्चित हुआ लक्ष्मण सुहृद्जनों से आज्ञा ले, इक्ष्वाकुओं के गुरु के पास जा, लक्ष्मण शस्त्र को ग्रहण करता भया ॥२७॥ फिर उस क्षत्रियश्रेष्ठ लक्ष्मण ने माला से भूषित दिव्य शस्त्र लाकर राम को दिखलाए।२८॥

मूल—तमुवाचात्मवान्रामः प्रीत्या लक्ष्मणमागतम् । काले त्वमागतः सौम्य कांक्षिते मम लक्ष्मण ॥२९॥ अहं प्रदातुमिच्छामि यदिदं मामकं धनम् । ब्राह्मणेभ्यस्तपस्विभ्यस्त्वया सह परंतप ॥ ३० ॥ वसन्तीह दृढं भक्त्या गुरुषु द्विजसत्तमाः । तेषामपि च मे भूयः

सर्वेषां चोपजीविनाम् ॥३१॥वसिष्ठपुत्रं तु सुयज्ञमार्यं त्वमानयाशु प्रवरं द्विजानाम् । अपि प्रयास्यामि वनं समस्तानभ्यर्च्य शिष्टानपरान्द्विजातीन् ॥ ३२ ॥

टीका—तब उदार हृदय राम ने प्रीति से आए लक्ष्मण को यह कहा 'हे सौम्य लक्ष्मण ! मेरे चाहे हुए समय पर आया है ॥ २९ ॥ हे परंतप ! मैं अपना सारा धन तेरे साथ मिलकर तपस्वी ब्राह्मणों को देना चाहता हूं ॥३०॥ यहां गुरुओं के पास दृढ़ भक्ति से जो ब्राह्मण वास करते हैं, उनको भी और फिर अपने सारे नौकरों को भी (देना चाहता हूं) ॥३१॥ सो वसिष्ठ के पुत्र द्विजवर आर्य सुयज्ञ को यहां जल्दी ले आ, और भी सारे ब्राह्मणों को पूजकर मैं वन को जाऊंगा ॥ ३२ ॥

सर्ग ३२ (व० ३२) राम का धनादि दान

मूल—तमागतं वेदविदं प्राञ्जलिः सीतया सह । सुयज्ञमभिचक्राम राघवोऽग्निमिवार्चितम्॥१॥ जातरूपमयैर्मुख्यैरङ्गदैः कुण्डलैःशुभैः। सहेमसूत्रैर्मणिभिः केयूरैर्वलयैरपि ॥२॥ अन्यैश्च रत्नैर्बहुभिः काकुत्स्थः प्रत्यपूजयत् । सुयज्ञं स तदोवाच रामः सीताप्रचोदितः ॥३॥ हारं च हेमसूत्रं च भार्यायै सौम्य हारय । रशनां चाथ सा सीता दातुमिच्छति ते सखे ॥४॥

टीका—जब वह वेद को जानने वाला सुयज्ञ आया, तो राम हाथ जोड़ सीता सहित पूजित अग्नि की तरह उस की प्रदक्षिणा करता भया ॥१॥ और सोने के सुन्दर बाहुबन्द, शुभकुण्डल, सोने के सूत्र (जञ्जीर) में प्रोये हुए रत्न केयूर और कङ्कणों से ॥२॥ और और भी बहुत रत्नों से उस की पूजा की और फिर सीता से प्रेरे हुए राम ने सुयज्ञ को यह कहा ॥३॥ (सीता का

यह) हार और हेमसूत्र हे सौम्य ! स्त्री के लिए लेजा और हे सखे ! यह सोने की तडागी सीता देना चाहती है ॥४॥

मूल–अङ्गदानि च चित्राणि केयूराणि शुभानि च । प्रयच्छति सखे तुभ्यं भार्यायै गच्छती वनम् ॥५॥ पर्यङ्कमग्र्यास्तरणं नानारत्नविभूषितम् । तमपीच्छति वैदेही प्रतिष्ठापयितुं त्वयि ॥६॥ नागः शत्रुंजयो नाम मातुलो यं ददौ मम । तं ते निष्कसहस्रेण ददामि द्विजपुङ्गव ॥७॥ इत्युक्तः स तु रामेण सुयज्ञः प्रतिगृह्य तत् । रामलक्ष्मणसीतानां प्रयुयोजाशिषः शिवाः ॥८॥

टीका–विचित्र बाहुबन्द और शुभ केयूर हे सखे ! बन को जाती हुई सीता तेरी भार्या को देना चाहती है ॥५॥ उत्तम बिस्तर से युक्त, नाना रत्नों से भूषित यह पलंग भी जानकी तुझे देना चाहती है ॥६॥ और यह शत्रुंजय हाथी जो मेरे मामा ने दिया है, वह हज़ार मुहर के साथ हे द्विजपुंगव ! आपको देता हूं ॥७। राम से ऐसे कहा हुआ सुयज्ञ उस को स्वीकार कर राम लक्ष्मण और सीता को शुभ आशीर्वाद देता भया ॥८॥

मूल–अथाब्रवीद्बाष्पगलांस्तिष्ठतश्चोपजीविनः । स प्रदाय बहुद्रव्यमेकैकस्योपजीवनम् ॥९॥ लक्ष्मणस्य च यद्वेश्म गृहं च यदिदं मम अशून्यं कार्यमेकैकं यावदागमनं मम ॥१०॥ इत्युक्त्वा दुःखितं सर्वं जनं तमुपजीविनम् । उवाचेदं धनाध्यक्षं धनमानीयतां मम ॥११॥ ततोऽस्य धनमाजह्रुः सर्व एवोपजीविनः । स राशिः सुमहांस्तत्र दर्शनीयो ह्यदृश्यत ॥१२॥ ततः स पुरुषव्याघ्रस्तद्धनं सहलक्ष्मणः । द्विजेभ्यो बालवृद्धेभ्यः कृपणेभ्यो ह्यदापयत् ॥१३॥

टीका–अब पास खड़े हुए आंसुओं से रुके हुए गले वाले नौकरों में से एक २ को बहुत सी जीविका देकर बोला ॥९॥ मेरे आने

तक मेरे और लक्ष्मण के घरों को कभी खाली न छोड़ना ॥१०॥ यह उन सारे दुःखित उपजीवी वर्ग (नौकरों चाकरों) को कह कर फिर धनाध्यक्ष से बोला, कि मेरा खज़ाना ले आओ ॥११॥ तब उपजीवीजन उस के सारे धन को ले आए, वह वहां बड़ा ढेर दर्शनीय दिखलाई देता था ॥१२॥ तब वह पुरुष श्रेष्ठ लक्ष्मण समेत उस धन को ब्राह्मणों को और दीन बाल वृद्धों को देता भया

मूल—तत्रासीत्पिङ्गलो गार्ग्यस्त्रिजटो नाम वै द्विजः। क्षतवृत्तिर्वने नित्यं फालकुद्दाललाङ्गली ॥१४॥ तं वृद्धं तरुणी भार्या बाला-नादाय दारकान्। अब्रवीद् ब्राह्मणं वाक्यं दारिद्र्येणाभिपीड़िता ॥१५॥ अपास्य फालं कुद्दालं कुरुष्व वचनं मम। रामं दर्शय धर्मज्ञ यदि किञ्चदवाप्स्यसे ॥१६॥+ स भार्याया वचः श्रुत्वा शाटीमाच्छाद्य दुश्छदाम्। स प्रातिष्ठत पन्थानं यत्र रामनिवेशनम्

टीका—वहां एक भूरे रङ्ग का गर्ग गोत्री त्रिजट नामी ब्राह्मण था,जो फाल कुदाल और लम्बा दण्ड लेकर बन में निर्वाह किया करता था ॥१४॥ उस वृद्ध ब्राह्मण को उसकी तरुणी भार्या गरीबी से तंग आई हुई छोटे बच्चों को सामने लाकर यह वाक्य बोली ॥१५॥ फाल कुदाल को छोड़कर मेरे वचन को कीजिये, धर्मज्ञ राम के पास जाओ, यदि कुछ मिलजाए ॥१६॥ वह भार्या की बात मान, फटी फूटी धोती पहन राम के घर गया ॥१७॥

मूल—भृग्वाङ्गिरःसमं दीप्त्या त्रिजटं जनसंसदि। आपञ्चमायाः कक्ष्याया नैनं कश्चिदवारयत ॥१८॥ स राममासाद्य तदा त्रिजटो वाक्यमब्रवीत्। निर्धनो बहुपुत्रोऽस्मि राजपुत्र महाबल ॥१९॥ तमुवाच ततो रामः परिहाससमन्वितम् ॥२०॥ गवां सहस्रमप्येकं न च विश्राणितं मया। परिक्षिपासि दण्डेन यावत्तावदवाप्स्यसे।

टीका—तेज में वह भृगु और अङ्गिरा के तुल्य था, अतएव इतने बड़े जनसमुदाय में से पांचवीं डेवढ़ी तक उसे कोई रोक नहीं सका ॥ १८ ॥ राजपुत्र के पास आकर त्रिजट यह वाक्य बोला, हे राजपुत्र महाशय ! मैं बहुत पुत्रों वाला निर्धन हूं ॥ १९ ॥ उसको राम ने हंसी से यह कहा ॥ २० ॥ अभी गौओं का एक सहस्र भी मैंने नहीं दिया है, सो तू अपने दण्ड को जितनी दूर फैंक सकेगा, उतनी गौएं तेरी होंगी ॥ २१ ॥

मूल—स शाटीं परितः कट्यां संभ्रान्तः परिवेष्ट्य ताम् । आविद्धय दण्डं चिक्षेप सर्वप्राणेन वेगतः ॥२२॥ स तीर्त्वा सरयूपारं दण्डस्तस्य कराच्च्युतः । गोव्रजे बहुसाहस्रे पपातोक्षाणसंनिधौ ॥२३॥ तं परिष्वज्य धर्मात्मा आवाप्य सरयूतटात् । आनयामास ता गावस्त्रिजटस्याश्रमं प्रति ॥२४॥ उवाच च तदा रामस्तं गार्ग्यमभिमान्त्वयन् । मन्युर्न खलु कर्तव्यः परिहासो ह्ययं मम २५

टीका—वह बड़ी तेज़ी के साथ धोती को कमर में लपेटकर दण्ड को घुमाकर पूरे जोर के साथ वेग से फैंकता भया ॥ २२॥ दण्ड उसके हाथ से छूटते ही सरयू के पार निकलकर अनेक सहस्रों (गौओं)वाले गोव्रज में बैल के सामने जापड़ा॥२३॥धर्मात्मा (राम) ने उसे गले लगा लिया, और सरयू के किनारे तक जितनी गौएं थीं, वह त्रिजट के आश्रम में पहुंचादीं ॥२४॥ और उस गार्ग्य को तसल्ली देता हुआ राम यह बोला, आप इस बात का क्रोध न करें, क्योंकि यह एक हंसी की बात थी ॥ २५ ॥

मूल—इदं हि तेजस्तव यद्दुरत्ययं तदेव जिज्ञासितुमिच्छता मया। इमं भवानर्थमभिप्रचोदितो वृणीष्व किं चेदपरं व्यवस्यसि ॥२६॥ ततः सभार्यस्त्रिजटो महामुनिर्गवामनीकं प्रतिगृह्य मोदितः । यशो-

बलप्रीतिसुखोपबृंहिणीस्तदाशिषः प्रत्यवदन्महात्मनः ॥ २७ ॥ स चापि रामः प्रतिपूर्णमानसो महाधनं धर्मबलैरुपार्जितम् । नियोजयामास सुहृज्जने चिराद्यथार्थसंमानवचःप्रचोदितः ॥ २८ ॥ द्विजः सुहृद्भृत्यजनोऽथवा तदा दरिद्रभिक्षाचरणश्च यो भवेत् । न तत्र कश्चिन्न बभूव तर्पितो यथार्थसंमाननदानसंभ्रमैः ॥ २९ ॥

टीका—यह जो आपका सारी दुनिया को अपने सामने झुकाने वाला तेज है उसी को जानना चाहते हुए मैंने इस बात के लिये आपको प्रेरणा की, अब कहिये यदि कुछ आप और भी चाहते हैं ॥२६॥ तब वह स्त्री सहित महामुनि त्रिजट गौओं के समूह को लेकर प्रसन्न हुआ महात्मा (राम) को यश बल प्रीति और सुख के बढ़ाने वाले आशीर्वाद देता भया ॥२७॥ वह राम भी जिनका मन भरा हुआ है धर्मबल से कमाए हुए अपने बड़े धन को यथायोग्य सन्मान के वचनों से प्रेरा हुआ जल्दी ही सुहृद्जनों में लगा देता भया॥२८॥ ब्राह्मण, सुहृद्, भृत्यजन, गरीब और भिक्षुक उस समय कोई ऐसा नहीं था,जो यथायोग्य सन्मान दान और संभ्रम (सत्कार) से तृप्त न किया गया हो ॥२९॥

सर्ग ३३ (व० ३३) बन को जाते हुए पिता के दर्शन को जाना

मूल—दत्त्वा तु सह वैदेह्या ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु । जग्मतुः पितरं द्रष्टुं सीतया सह राघवौ ॥ १ ॥ न हि रथ्याः स्म शक्यन्ते गन्तुं बहुजनाकुलाः । आरुह्य तस्मात्प्रासादान् दीनाःपश्यन्ति राघवम् ॥ २ ॥ पदातिं सानुजं दृष्ट्वा ससीतं च जनास्तदा । ऊचुर्बहुजना वाचः शोकोपहतचेतसः ॥३॥ यं यान्तमनुयाति स्म चतुरङ्गबलं महत् । तमेकं सीतया सार्धमनुयाति स्म लक्ष्मणः ॥ ४ ॥

टीका—जानकी के साथ ब्राह्मणों को बहुत सा धन दे करके यह दोनों राघव सीता सहित पिता के दर्शन को गए ॥१॥ बहुत जनों से भरी हुई गलियों में चलना अशक्य था, इस लिए लोग महलों के ऊपर चढ कर बड़े दीन हो राम को देखने लगे ॥२॥ छोटे भाई और सीता के साथ राम को पैदल देख कर उस समय लोग शोक से दबे हुए चित्तवाले अनेक प्रकार की बातें कहते भये ॥३॥ जिस के चलने पर उन के पीछे बड़ी भारी चतुरङ्ग सेना चलती थी, आज सीता सहित उस अकेले के पीछे केवल लक्ष्मण चल रहा है ॥ ४ ॥

मूल—ऐश्वर्यस्य रसज्ञः सन्कामिनां चैव कामदः। नेच्छत्येवानृतं कर्तुं पितरं धर्मगौरवात् ॥५॥ या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि। तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गगता जनाः ॥६॥ अङ्गरागोचितां सीतां रक्तचन्दनसेविनीम्। वर्षमुष्णं च शीतं च नेष्यत्याशु विवर्णताम् ॥७॥ + आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः। राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम् ॥ ८ ॥ तस्मादस्यापघातेन प्रजाः परम पीडिताः। औदकानीव सत्त्वानि ग्रीष्मे सलिलसंक्षयात् ॥९॥

टीका—ऐश्वर्य के रस का जानने वाला और अर्थियों के अर्थों का पूरने वाला होकर भी धर्म के गौरव से पिता को झूठा करना नहीं चाहता है ॥५॥ जिसको आकाश में चलनेवाले जीव भी पहले नहीं देख सक्ते थे, उस सीता को आज राजमार्ग में स्थित लोग देख रहे हैं ॥६॥ अङ्गराग के योग्य, रक्त चन्दन के सेवन करने वाली सीता के रंग को वर्षा गर्मी और सर्दी बदल देगी ॥७॥ अहिंसा, दया, शास्त्र, शील, शम, दम, यह छः गुण पुरुषश्रेष्ठ राम को शोभायमान कर रहे हैं ॥८॥ इस लिए इस की पीडा से सारी प्रजाएं पीड़ित हुई हैं जैसे ग्रीष्म में जल के क्षय से जलजीव ॥९॥

मूल–पीडया पीडितं सर्वं जगदस्य जगत्पतेः । मूलस्येवोपघातेन वृक्षः पुष्पफलोपगः ॥१०॥ ते लक्ष्मण इव क्षिप्रं सपत्न्यः सहबान्धवाः । गच्छन्तमनुगच्छामो येन गच्छति राघवः ॥११॥ उद्यानानि परित्यज्य क्षेत्राणि च गृहाणि च । एक दुःखसुखा राममनुगच्छाम धार्मिकम् ॥१२॥ वनं नगरमेवास्तु येन गच्छति राघवः । अस्माभिश्च परित्यक्तं पुरं संपद्यतां वनम् ॥१३॥

टीका–इस जगत्पति की पीड़ा से सारा जगत ही पीड़ित हो रहा है, जैसे मूल पर चोट से फल पुष्प समेत सारा वृक्ष पीडित होता है ॥१०॥ सो हम भी लक्ष्मण की तरह जल्दी पत्नियों समेत और बान्धवों समेत जाते हुए के पीछे जायेंगे, जिस मार्ग से राम जाएगा ॥११॥ बगीचे, क्षेत्र, और घर छोड़ कर एक दुःख सुख वाले हुए हम धार्मिक राम के पीछे जाऐंगे॥१२॥वन नगर ही होजाएगा, जहां से राम जायगा और हम से छोड़ा हुआ पुर वन बनेगा ॥१३॥

मूल–राघवेण वयं सर्वे वने वत्स्याम निर्वृताः॥१४॥ इत्येवं विविधा वाचो नानाजनसमीरिताः । शुश्राव राघवः श्रुत्वा न विचक्रेऽस्य मानसम्॥१५॥ प्रतीक्षमाणोऽभिजनं तदार्तमनार्तरूपः प्रहसन्निवाथ। जगाम रामः पितरं दिदृक्षुः पितुर्निदेशं विधिवच्चिकीर्षुः ॥१६॥ पितुर्निदेशेन तु धर्मवत्सलो वनप्रवेशे कृतबुद्धिनिश्चयः । स राघवः प्रेक्ष्य सुमन्त्रमब्रवीन्निवेदयस्वागमनं नृपाय मे ॥१७॥

टीका–हम राम के साथ चैन से वन में रहेंगे ॥१४॥ इत्यादि विविध वाणियें अनेक लोगों से उच्चारण की हुई राम सुनता भया और सुन कर उस के मन में कोई विकार नहीं हुआ ॥१५॥ देखता हुआ भी उन लोगों को जो पीडित हो रहे हैं, स्वयं पीडित न हुआ हंसता हुआ राम पिता की आज्ञा को विधिवत् करना चाहता हुआ

पिता के दर्शन को गया ॥१६॥ वह धर्म का प्यारा राम-जिस ने पिता की आज्ञा से वन प्रवेश में अपना बुद्धि निश्चय कर लिया है सुमन्त्र को देख कर बोला, राजा को मेरा आना निवेदनकीजिए।

सर्ग ३४ (व० ३४) राम का पिता से विदा मांगना

मूल—स रामप्रेषितः क्षिप्रं संतापकलुषेन्द्रियम्। प्रविश्य नृपतिं सूतो निःश्वसन्तं ददर्श ह॥१॥ आबोध्य च महाप्राज्ञः परमाकुलचेतनम्। राममेवानु शोचन्तं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥२॥ अयं स पुरुष व्याघ्रो द्वारि तिष्ठति ते सुतः। ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्वा सर्वं चैवोपजीविनाम् ॥३॥ स त्वां पश्यतु भद्रं ते रामः सत्यपराक्रमः। सर्वान्सुहृद आपृच्छ्य त्वा मिदानीं दिदृक्षते ॥४॥

टीका—राम से भेजा हुआ सूत जल्दी प्रवेश करके संताप से व्याकुल इन्द्रियों वाले राजा को आहें भरते हुए देखता भया ॥१॥ वह महाप्राज्ञ सूत (हे महाराज!) ऐसे सम्बोधन करके राम को ही शोक करते हुए अत्यन्त व्याकुल चेतना वाले राजा से हाथ जोड़ कर बोला ॥२॥ यह वह पुरुष श्रेष्ठ आप का पुत्र ब्राह्मणों को और अपने उपजीवियों को सारा धन देकर के आप के द्वार पर खड़ा है ॥३॥ वह सच्चे पराक्रम वाला राम आप के दर्शन करे, सारे सुहृद्जनों को पूछ कर अब आप के दर्शन चाहता है ॥४॥

मूल—गमिष्यति महारण्यं तं पश्य जगतीपते। वृतं राजगुणैःसर्वैरादित्यमिव रश्मिभिः॥५॥स सत्यवाक्यो धर्मात्मा गाम्भीर्यात् सागरोपमः। आकाश इव निष्पङ्को नरेन्द्रः प्रत्युवाच तम् ॥६॥ सुमन्त्रानय मे दारान्ये केचिदिह मामकाः। दारैः परिवृतः सर्वैर्द्रष्टुमिच्छामि राघवम् ॥७॥ सोऽन्तःपुरमतीत्यैव स्त्रियस्ता वाक्यमब्रवीत्। आर्या ह्वयति वो राजा गम्यतां तत्र मा चिरम् ॥८॥

टीका—अब वह महावन की ओर जाने को है, हे पृथिवी के मालिके! उस को देख, जोकि रश्मियों से सूर्य की तरह सारे राजगुणों से युक्त है ॥५॥ (यह सुन) वह सच्ची वाणी वाला धर्मात्मा राजा जो गंभीरता में समुद्र के तुल्य है और आकाश की तरह निर्लेप है उनसे यह बोला ॥६॥ हे सुमन्त्र मेरी स्त्रियों को लेआ और जो कोई और भी वहां मेरे अपने हैं, उन सब से युक्त हो उस धार्मिक को देखना चाहता हूं ॥७॥ वह अन्तः पुर में बहुत जल्दी पहुंच कर उन स्त्रियों से बोला, हे आर्याओ ! आप को राजा बुलाते हैं, चलिये देर न हो ॥८॥

मूल—एवमुक्ताः स्त्रियः सर्वाः सुमन्त्रेण नृपाज्ञया । प्रचक्रमुस्तद्भवनं भर्तुराज्ञाय शासनम् ॥९॥ आगतेषु च दारेषु समवेक्ष्य महीपतिः । उवाच राजा तं सूतं सुमन्त्रानय मे सुतम् ॥१०॥ स सूतो राममादाय लक्ष्मणं मैथिलीं तथा । जगामाभिमुखस्तूर्णं संकाशं जगतीपतेः ॥११॥ स राजा पुत्रमायान्तं दृष्ट्वा चारात्कृताञ्जलिम् उत्थायासनात्तूर्णमार्त्तः स्त्रीजनसंवृतः ॥१२॥

टीका—राजा की आज्ञा से सुमन्त्र द्वारा ऐसे कही हुई वह सब स्त्रियें भर्ता की आज्ञा मान कर उस भवन को गईं ॥९॥ स्त्रियों के आजाने पर उन को देख कर पृथिवीपति राजा ने सूत को कहा सुमन्त्र मेरे पुत्र को लेआ ॥१०॥ तब वह सूत राम लक्ष्मण और सीता को साथ लेकर जल्दी पृथिवीपति के सम्मुख गया ॥११॥ वह राजा अपने पुत्र को हाथ जोड़ निकट आता देख कर पीड़ित हो स्त्री जनों के साथ जल्दी आसन से उठा ॥१२॥

मूल—सोऽभिदुद्राव वेगेन रामं दृष्ट्वा विशांपतिः । तमसंप्राप्य दुःखार्तः पपात भुवि मूर्च्छितः ॥१३॥ तं रामोऽभ्यपतात्क्षिप्रं

लक्ष्मणश्च महारथः । विसंज्ञमिव दुःखेन सशोकं नृपतिं तदा ॥१४॥ तं परिष्वज्य बाहुभ्यां तावुभौ रामलक्ष्मणौ । पर्यङ्के सीतया सार्धं रुदन्तः समवेशयन् ॥१५॥ अथ रामो मुहूर्तस्य लब्धसंज्ञं महीपतिम् । उवाच प्राञ्जलिर्बाष्पशोकार्णवपरिप्लुतम् ॥१६॥

टीका—वह प्रजाओं का मालिक राम को देख कर जल्दी आगे बढ़ा, पर उस के पास पहुंचने से पहले ही दुःख से पीडित हुआ मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा ॥१३॥ तब राम और महारथ लक्ष्मण जल्दी दुःख से अचेतनसे हुए सशोक राजा के पास पहुंचे ॥१४॥ दोनों भाइयों ने भुजाओं से उस को गले लगा कर सीता सहित रोते हुओं ने पलंग पर लिटाया ॥१५॥ तब थोड़ी देर के पीछे जब राजा को होश आई, तो शोकसागर में डूबे हुए उस राजा से राम यह बोला ॥१६॥

मूल—आपृच्छे त्वां महाराज सर्वेषामीश्वरोऽसि नः । प्रस्थितं दण्डकारण्यं पश्य त्वं कुशलेन माम् ॥१७॥ लक्ष्मणं चानुजानीहि सीता चान्वेतु मां वनम् । कारणैर्बहुभिस्तथ्यैर्वार्यमाणौ न चेच्छतः ॥१८॥ नव पञ्च च वर्षाणि वनवासे विहृत्य ते । पुनः पादौ ग्रहीष्यामि प्रतिज्ञान्ते नराधिप ॥१९॥ रुदन्नार्तः प्रियं पुत्रं सत्यपाशेन संयतः । कैकय्या चोद्यमानस्तु मिथो राजा तमब्रवीत् ॥२०॥

टीका—आज्ञा मांगता हूं, हे महाराज ! आप हम सब के मालिक हैं, अब दण्डक बन को जाते हुए मुझ पर कुशल दृष्टि डालिए ॥१७॥ लक्ष्मण को भी अनुज्ञा दीजिए, और सीता को भी साथ जाने की आज्ञा दीजिये, बहुत सच्चे हेतुओं से इन को रोका भी गया है, पर यह नहीं रुकते हैं ॥१८॥ चौदह बरस बन में सैर करके प्रतिज्ञा के अन्त में हे नरपते फिर आप के चरण

ग्रहण करूंगा ॥१९॥ कैकेयी से एकान्त में प्रेरा हुआ सत्य की फांस मे बंधा हुआ राजा आर्त हो रोता हुआ प्यारे पुत्र से बोला

मूल–श्रेयसे वृद्धये तात पुनरागमनाय च। गच्छस्वारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम् ॥२१॥ अद्य त्विदानीं रजनीं पुत्र मा गच्छ सर्वथा। एकाहं दर्शनेनापि साधु तावच्चराम्यहम् ॥२२॥ मातरं मां च संपश्यन् वसेमामद्य शर्वरीम्। तर्पितः सर्वकामैस्त्वं श्वः काल्ये साधयिष्यसि ॥२३॥ दुष्करं क्रियते पुत्र सर्वथा राघव प्रिय। मत्प्रियार्थं प्रियांस्त्यक्त्वा यद्यासि विजनं वनम् ॥२४॥

टीका–कल्याण के लिए, वृद्धि के लिए और फिर आने के लिए जाओ हे तात! तुम्हारा मार्ग तुम्हारे लिए पाप दुःख से रहित हो और कहीं से भय लाने वाला न हो ॥२१॥ किन्तु आज की रात हे पुत्र सर्वथा न जा, एक दिन भी और देख कर जी ठण्डा कर लूंगा ॥२२॥ माता की तर्फ और मेरी तर्फ देखते हुए आज की रात रहो, सारी कामनाओं से तुझे तृप्त करेंगे, कल समय पर (आज बेमौका भी हो गया है) चले जाना॥२३॥ सर्वथा हे प्यारे पुत्र राघव तू दुष्कर काम कर रहा है, जो मेरे प्रिय के लिए प्यारों को छोड़ कर निर्जन बन को जा रहा है ॥

मूल–वञ्चना या तु लब्धा मे तां त्वं निस्तर्तुमिच्छसि। अनया वृत्तसादिन्या कैकेय्याभिप्रचोदितः ॥२५॥ न चैतदाश्चर्यतमं यत् त्वं ज्येष्ठः सुतो मम। अपानृतकथं पुत्र पितरं कर्तुमिच्छसि॥२६॥ अथ रामस्तदा श्रुत्वा पितुरार्तस्य भाषितम्। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा दीनो वचनमब्रवीत् ॥२७॥ +प्राप्स्यामि यानद्य गुणान्को मे श्वस्तान् प्रदास्यति। अपक्रमणमेवातः सर्वकामैरहं वृणे ॥२८॥

टीका–वृत्त के नाश करने वाली इस कैकेयी से प्रेरे हुए मैंने जो

धोखा खाया है तू उस से मेरा निस्तारा चाहता है ॥२५॥ यह कोई आश्चर्यमय नहीं है, जो तू मेरा ज्येष्ठ पुत्र होकर हे पुत्र पिता को झूठे वचन से बचाया चाहता है ॥ २६ ॥ तब राम पिता के इस भाषण को सुन कर दीन हुआ भाई लक्ष्मण के साथ यह वचन बोला ॥२७॥ आज जिन गुणों को प्राप्त हूंगा, कल वह मुझे कौन देगा, इस लिये यहां से निकलना ही सारी कामनाओं से मैं स्वीकार करता हूं ॥२८॥

मूल—यस्तु युद्धे वरो दत्तः कैकय्यै वरद त्वया। दीयतां निखिलेनैव सत्यस्त्वं भव पार्थिव ॥२९॥ अहं निदेशं भवतो यथोक्त मनुपालयन्। चतुर्दश समा वत्स्ये वने वनचरैः सह ॥३० ॥ मा विमर्शो वसुमती भरताय प्रदीयताम्। नाहि मे कांक्षितं राज्यं सुख मात्मनि वा प्रियम् ॥३१॥ यथानिदेशं कर्तुं वै तवैव रघुनन्दन ३२

टीका—जो प्रसन्न होकर हे वर के देने वाले आपने कैकेयी को वर दिया हुआ है, वह पूरा हो, हे पृथिवीपते! आप सच्चे बनिये ॥२९॥ मैं आप की आज्ञा को यथोक्त पालन करता हुआ वनचरों के साथ चौदह वर्ष वन में रहूंगा ॥३०॥ मत सोच कीजिये, पृथिवी भरत को दीजिए, मुझे राज्य की इच्छा नहीं, न अपने लिए वैसी सुख वा प्रिय की इच्छा है ॥३१॥ जैसी कि आप की आज्ञा पूरी करने की इच्छा है हे रघुनन्दन ॥३२॥

मूल—अपगच्छतु ते दुःखं मा भूर्बाष्पपरिप्लुतः। नहि क्षुभ्यति दुर्धर्षः समुद्रः सरितांपतिः ॥३३॥ नैवाहं राज्यमिच्छामि न सुखं न च मेदिनीम्। नैव सर्वानिमान्कामान्न स्वर्गं न च जीवितम् ३४ त्वामहं सत्यमिच्छामि नानृतं पुरुषर्षभ। प्रत्यक्षं तव सत्येन सुकृतेन

च ते शपे ॥३५॥ न च शक्यं मया तात स्थातुं क्षणमपि प्रभो। स शोकं धारयस्वेमं नहि मेऽस्ति विपर्ययः ॥३६॥

टीका—आप का दुःख दूर हो, आप आंसुओं से परिप्लुत न हों, नदियों का पति दुर्धर्ष समुद्र कभी क्षुब्ध नहीं होता है ॥३३॥ न मैं राज्य को चाहता हूं, न सुख, न पृथिवी को, न इन सारी कामनाओं को, न स्वर्ग को, न जीवन को ॥३४॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! मैं आप को सच्चा हुआ चाहता हूं, न कि झूठा हुआ, आपके सामने सचाई और पुण्य की शपथ करता हूं॥३५॥ हे तात हे प्रभो! मैं यहां क्षण भी नहीं ठहर सक्ता हूं, सो आप शोक को थामिए मुझ से अब उलट नहीं हो सकता है ॥३६॥

मूल—अर्थितो ह्यस्मि कैकेय्या वनं गच्छेति राघव। मया चोक्तं व्रजामीति तत्सत्यमनुपालये ॥३७॥ मा चोत्कण्ठां कृथा देव वने रंस्यामहे वयम्। प्रशान्तहरिणाकीर्णे नानाशकुनिनादिते ॥३८॥ पिता हि दैवतं तात देवतानामपि स्मृतम्। तस्माद्दैवतमित्येव क-रिष्यामि पितुर्वचः ॥ ३९ ॥ चतुर्दशसु वर्षेषु गतेषु नृपसत्तम पुनर्द्रक्ष्यसि मां प्राप्तं संतापोऽयं विमुच्यताम् ॥४०॥

टीका—"वन को जा" यह बात कैकेयी ने मुझ से मांगी है और हे राघव! मैंने कहा है 'जाता हूं' सो इस सत्य को पालता हूं ॥३७॥ हे देव! आप मेरे लिए उत्कण्ठा मत कीजिये, हम शान्त हरिणों से भरे हुये नाना पक्षियों से सुरीले हुए बन में आनन्द मनाएंगे ॥३८॥ हे तात! पिता देवताओं का देवता माना गया है, सो देवता का वचन जान कर ही मैं पिता का वचन करूंगा ॥३९॥ चौदह बरस के बीतने पर हे नर श्रेष्ठ! आप फिर मुझे यहां आया हुआ देखेंगे, सो इस संताप को दूर कीजिए ॥४०॥

मूल—येन संस्तम्भनीयोऽयं सर्वो बाष्पगलो जनः । स त्वं पुरुषशार्दूल किमर्थं विक्रियां गतः ॥४१॥ फलानि मूलानि च भक्षयन्वने गिरींश्च पश्यन्सरितः सरांसि च । वनं प्रविश्यैव विचित्रपादपं सुखी भविष्यामि तवास्तु निर्वृतिः ॥४२॥ एवं स राजा व्यसनाभिपन्नस्तापेन दुःखेन च पीड्यमानः । आलिङ्ग्य पुत्रं सुविनष्टसंज्ञो भूमिं गतो नैव विचेष्ट किंचित् ॥४३॥ देव्यः समस्ता रुरुदुः समेतास्तां वर्जयित्वा नरदेवपत्नीम् । रुदन्सुमन्त्रोऽपि जगाम मूर्छां हाहाकृतं तत्र बभूव सर्वम् ॥ ४४ ॥

टीका—इन सब रोते हुए जनों को जिसने थामना है वही आप हे पुरुषशार्दूल ! किस लिये विकार को प्राप्त हुए हैं ॥४१॥ बन में फल मूल को भक्षण करता हुआ पर्वत नदियों और सरोवरों को देखता हुआ विचित्र वृक्षों वाले बन में प्रवेश करके सुखी हूंगा, आप को शान्ति हो ॥४२॥ तब वह राजा दुःख से घिरा हुआ शोक और मोह से मुरझाया हुआ पुत्र को आलिङ्गन कर चेतनता के नाश से मूर्छित होगया, और फिर कुछ चेष्टा नहीं की ॥४३॥ तब कैकेयी के सिवाय सब रानियें रोने लगीं, सुमन्त्र भी रोता हुआ मूर्छा को प्राप्त हुआ और वहां सारे हाहाकार मचगया ॥ ४४ ॥

सर्ग ३५ (व० ३५) सुमन्त्र का कैकेयी को रोकना

मूल—वाक्यवज्रैरनुपमैर्निर्भिन्दन्निव चाशुगैः । कैकेय्या सर्वमर्माणि सुमन्त्रः प्रत्यभाषत ॥१॥ नह्यकार्यतमं किञ्चित्तव देवीह विद्यते । पतिघ्नीं त्वामहं मन्ये कुलघ्नीमपि चान्ततः ॥२॥ यन्महेन्द्रमिवाजय्यं दुष्प्रकम्प्यमिवाचलम् । महोदधिमिवाक्षोभ्यं संतापयसि कर्मभिः ॥३॥ मावमंस्था दशरथं भर्त्तारं वरदं पतिम् । भर्तुरिच्छा हि नारीणां

पुत्रकोट्या विशिष्यते ॥४॥ यथावयो हि राज्यानि प्राप्नुवन्ति नृपक्षये । इक्ष्वाकुकुलनाथेऽस्मिंस्तल्लोपयितुमिच्छसि ॥५॥

टीका—तब तीरों के तुल्य कठोर वाक्यवज्रों से कैकेयी के सारे मर्मों को बींधता हुआ सुमन्त्र बोला ॥१॥ हे देवि ! तेरे लिये इस संसार में कुछ भी अकर्त्तव्य नहीं है, मैं तुझे पति का घात करनेवाली और अन्ततः कुल का घात करनेवाली समझता हूं ॥ २ ॥ जो तू इन्द्र की तरह न जीता जाने वाले, पर्वत की तरह न हिलाए जाने वाले, और समुद्र की तरह न क्षोभ में आनेवाले (राजा) को अपने कर्मों से संतप्त कर रही है ॥ ३ ॥ वर के देने वाले, धारण पोषण करनेवाले, अपने मालिक दशरथ का अपमान मत कर, भर्त्ता की इच्छा स्त्रियों के लिये पुत्र कोटि से बढ़कर है ॥४॥ राजा के मरने पर आयु के अनुसार राज्य को प्राप्त होते हैं। सो तू इक्ष्वाकुकुल के मालिक के होते हुए इस (बात) को लुप्त करना चाहती है ॥ ५ ॥

मूल—राजा भवतु ते पुत्रो भरतः शास्तु मेदिनीम् । वयं तत्र गमिष्यामो यत्र रामो गमिष्यति ॥६॥ न च ते विषये कश्चिद्ब्राह्मणो वस्तुमर्हति । तादृशं त्वममर्यादमद्य कर्म करिष्यसि ॥७॥ आश्चर्यमिव पश्यामि यस्यास्ते वृत्तमीदृशम् । आचरन्त्या न विदृता सद्यो भवति मेदिनी ॥८॥ नैवं भव गृहाणेदं यदाह वसुधाधिपः । भर्तुरिच्छामुपास्वेह जनस्यास्य गतिर्भव ॥ ९ ॥ मा त्वं प्रोत्साहिता पापैर्देवराजसमप्रभम् । भर्तारं लोकभर्तारमसद्धर्ममुपादधाः ॥१०॥

टीका—तेरा पुत्र राजा बने, भरत पृथिवी का शासन करे, पर हम वहां जाएंगे, जहां राम जाएगा ॥६॥ तेरे अधिकृत देश में कोई ब्राह्मण नहीं बसेगा, इसप्रकार का तू आज बेमर्याद कर्म

किया चाहती है ॥७॥ मैं आश्चर्य की तरह देख रहा हूं, कि तेरे ऐसा आचरण करते हुए पृथिवी फट नहीं जाती है ॥ ८ ॥ ऐसी मत हो, वह बात ग्रहणकर, जो राजा ने कही है, भर्त्ता की मर्ज़ी पर चल, और इन लोगों की शरण बन ॥ ९ ॥ मत तू पापों से प्रेरी जाकर देवराज के तुल्य सारे लोक के पालने वाले भर्त्ता को असद् धर्म का ग्रहण करवा ॥ १० ॥

मूल–परिवादो हि ते देवि महांल्लोके चरिष्यति । यदि रामो वनं याति विहाय पितरं नृपम् ॥११॥ रामे हि यौवराज्यस्थे राजा दशरथो वनम् । प्रवेक्ष्यति महेष्वासः पूर्ववृत्तमनुस्मरन् ॥१२॥ इति सान्त्वैश्च तीक्ष्णैश्च कैकेयीं राजसंसदि । भूयः संक्षोभयामास सुमन्त्रस्तु कृताञ्जलिः ॥१३॥ नैव सा क्षुभ्यते देवी न च स्म परिदूयते । न चास्या मुखवर्णस्य लक्ष्यते विक्रिया तदा ॥ १४ ॥

टीका–हे देवि ! लोक में तेरी बड़ी निन्दा फैल जाएगी, यदि राम मनुष्यों के पालक पिता को (घर) छोड़ कर बन को गया ॥११॥ राम के यौवराज्य पर स्थित होजाने पर महाधनुर्धारी राजा दशरथ बड़ों की चाल का स्मरण करता हुआ बन में प्रवेश करेगा ॥१२॥ इसप्रकार नर्म और तीक्ष्ण वाक्यों से राजसभा में सुमन्त्र हाथ जोड़कर कैकेयी को अत्यन्त क्षुब्ध करता भया ॥१३॥ पर वह देवी न क्षुब्ध होती है, न संतप्त होती है, और न इसके मुख का रंग फीका पड़ता है ॥ १४ ॥

सर्ग ३६ (व० ३६) सुमन्त्र का कैकेयी को फिर कथन

मूल–ततः सुमन्त्रमैक्ष्वाकः पीडितोऽत्र प्रतिज्ञया । सबाष्पमतिनिःश्वस्य जगादेदं पुनर्वचः ॥१॥ सूत! रत्नसुसंपूर्णा चतुर्विधबला चमूः राघवस्यानुयात्रार्थं क्षिप्रं प्रतिविधीयताम् ॥२॥ ये चैनमुपजीवन्ति

रमते यैश्च वीर्यतः । तेषां बहुविधं दत्त्वा तानप्यत्र नियोजय ॥३॥ धान्यकोशश्च यः कश्चिद्धनकोशश्च मामकः । तौ राममनुगच्छेतां वसन्तं निर्जने वने ॥४॥ यजन् पुण्येषु देशेषु विसृजंश्चाप्तदक्षिणाः । ऋषिभिश्चापि संगम्य प्रवत्स्यति सुखं वने ॥५॥ भरतश्च महाबाहुरयोध्यां पालयिष्यति । सर्वकामैः पुनः श्रीमान्रामः संसाध्यतामिति ॥६॥

टीका—तब इक्ष्वाकुओं का राजा अपनी प्रतिज्ञा से पीड़ित हुआ आंसुओं सहित लम्बा सांस भरके सुमन्त्र से फिर यह बोला ।१। हे सूत रत्नों से पूर्ण चार प्रकार की सेना राघव की अनुयात्रा (साथ चलने) के लिए जल्दी तय्यार कीजिए ॥२॥ जो इस के नौकर चाकर हैं और जिन के साथ बल पराक्रम से रमण करता है, उन को भी बहुत कुछ देकर साथ चलने की आज्ञा दो ॥३॥ मेरा जो अनाज का कोश और धन का कोश है, वह भी निर्जन वन में बसते हुए राम के साथ जावे ॥४॥ पुण्य स्थानों में यज्ञ करता हुआ और प्रयाप्त दक्षिणाएं देता हुआ ऋषियों के साथ मिल कर वन में सुख से बसेगा ॥५॥ भरत महाबाहु अयोध्या का पालन करेगा, और श्रीमान् राम को सारी कामनाओं के साथ रवाना करो ॥६॥

मूल—एवं ब्रुवति काकुत्स्थे कैकेय्या भयमागतम् । मुखं चाप्यगमच्छोषं स्वरश्चापि न्यरुध्यत ॥७॥ सा विषण्णा च संत्रस्ता मुखेन परिशुष्यता । राजानमेवाभिमुखी कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥८॥ तवैव वंशे सगरो ज्येष्ठपुत्रमुपारुधत् । असमञ्ज इति ख्यातं तथायं गन्तुमर्हति ॥९॥ एवमुक्तो धिगित्येव राजा दशरथोऽब्रवीत् । व्रीडितश्च जनः सर्वः सा च तन्नावबुध्यत ॥१०॥

तत्र वृद्धो महामात्रः सिद्धार्थो नाम नामतः । शुचिर्बहुमतो राज्ञः कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥११॥ असमञ्जो गृहीत्वा तु क्रीडतः पथि-दारकान् । सरय्वां प्रक्षिपन्नप्सु रमते तेन दुर्मतिः ॥१२॥

टीका–दशरथ के ऐसा कहते हुए कैकेयी को बड़ा भय हुआ, मुंह सूख गया और स्वर रुक गया ॥७॥ वह उदास हुई और डरी हुई कैकेयी सूखते हुए मुख से राजा को ही अभिमुख कर के बोली ॥८॥ आप के ही वंश में राजा सगर ने बड़े पुत्र असमञ्ज को भोगों से रोक दिया था, वैसे यह जाने योग्य है ॥९॥ ऐसा कहने पर राजा दशरथ ने उसे धिक्कारा, (कैकेयी के पक्ष के) लोग सब लज्जित होगए, पर वह नहीं समझी १० तब सिद्धार्थ नामी प्रधान जो शुचि और राजा का बड़ा आदर दिया हुआ था, वह कैकेयी से बोला ॥११॥ असमञ्ज मार्ग में खेलते हुए बच्चों को पकड़ कर सरयू के जल में फैंक कर आनन्द मनाता था, इस लिए वह दुर्मति था ॥१२॥

मूल–तं दृष्ट्वा नागराः सर्वे क्रुद्धा राजानमब्रुवन् । असमंजं वृणी ष्वैकमस्मान्वा राष्ट्रवर्धन ॥१३॥ तानुवाच ततो राजा किंनिमित्त मिदं भयम् । ताश्चापि राज्ञा संपृष्टा वाक्यं प्रकृतयोऽब्रुवन् १४ क्रीडतस्त्वेष नः पुत्रान् बालानुद्भ्रान्तचेतसः । सरय्वां प्रक्षिपन्मौ-र्ख्यादतुलां प्रीतिमश्नुते ॥१५॥ स तासां वचनं श्रुत्वा प्रकृतीनां नराधिपः । तं तत्याजाहितं पुत्रं तासां प्रियचिकीर्षया ॥१६॥ तं यानं शीघ्रमारोप्य सभार्यं सपरिच्छदम् । यावज्जीवं विवास्यो-ऽयमिति तानन्वशात्पिता ॥१७॥ सफालपिटकं गृह्य गिरिदुर्गाण्य-लोकयत् । दिशः सर्वास्त्वनुचरन्स यथापापकर्मकृत् ॥१८॥

टीका–उस को देख कर नगरवासीजन क्रुद्ध हुए राजा के पास

जाकर बोले,हे राज्य के बढ़ाने वाले ! या तो आप अकेले असमंज को स्वीकार करें या हमें स्वीकार करें ॥१३॥ तब राजा ने उन को कहा, यह भय आप को किस निमित्त से है, राजा से पूछे हुए वह लोग यह वाक्य बोले ॥१४॥ यह खेलते हुए हमारे छोटे लड़कों को मूर्खता से सरयू में फैंकता हुआ अतुल प्रीति को भोगता है ॥१५॥ राजा उन लोगों के इस वचन को सुनकर उन के प्रिय करने की इच्छा से उस अहिती पुत्र को त्याग देता भया ॥१६॥ जल्दी उस को रथ पर चढ़ा कर सहित स्त्री के और सहित सामान (पिटारी आदि) के उस को सारी आयु के लिए निकालने की पिता ने आज्ञा दी ॥१७॥ वह फाला पिटारी लेकर अपने पाप कर्म के अनुसार पर्वतों के दुर्गों में और चारों दिशाओं में घूमता रहा ॥१८॥

मूल—इत्येनमत्यजद्राजा सगरो वै सुधार्मिकः । रामः किमकरोत्पापं येनैवमुपरुध्यते ॥१९॥ नहि कञ्चन पश्यामो राघवस्यागुणं वयम् । दुर्लभो ह्यस्य निरयः शशाङ्कस्येव कल्मषम् ॥२०॥ अथवा देवि त्वं कञ्चिद्दोषं पश्यसि राघवे । तमद्य ब्रूहि तत्वेन तदा रामो विवास्यते ॥२१॥ अदुष्टस्य हि संत्यागः सत्पथे निरतस्य च । निर्दहेदपि शक्रस्य द्युतिं धर्मविरोधवान् ॥२२॥ तदलं देवि रामस्य श्रिया विहतया त्वया । लोकतोऽपि हि ते रक्ष्यः परिवादः शुभानने ॥२३॥

टीका—इस प्रकार उसे सुधार्मिक राजा सगर ने त्यागा था पर राम ने क्या पाप किया है, जिस से इस को इस तरह तंग किया जाए ॥१९॥ राम का हम कोई अवगुण नहीं देखते हैं, चन्द्र में मैल की तरह इस में दोष दुर्लभ है ॥२०॥ अथवा हे देवि ! यदि

तू कुछ राम में दोष देखती है, तो तू ही ठीक कहो, जिस से राम को निकाला जाए ॥२१॥ जो निर्दोष है और सन्मार्ग में स्थित है, उस का त्यागना इन्द्र के भी तेज को जला देता है, क्योंकि वह धर्म की पीड़ा है ॥२२॥ इस लिए हे देवि राम की राज्यलक्ष्मी में विघ्न डालना तुझे उचित नहीं है, हे शुभानने! लोक से भी अपनी निन्दा बचानी चाहिये ॥२३॥

सर्ग ३७ (व० ३७) राम लक्ष्मण और सीता का मुनिवेषधारण

मूल—महामात्रचः श्रुत्वा रामो दशरथं तदा । अभ्यभाषत वाक्यंतु विनयज्ञो विनीतवत् ॥ १ ॥ त्यक्तभोगस्य मे राजन्वने वन्येन जीवतः । किं कार्यमनुयात्रेण त्यक्तसङ्गस्य सर्वतः ॥२॥ यो हि दत्वा द्विपश्रेष्ठं कक्ष्यायां कुरुते मनः । रज्जुस्नेहेन किं तस्य त्यजतः कुंजरोत्तमम् ॥३॥ तथा मम सतां श्रेष्ठ किं ध्वजिन्याजगत्पते सर्वाण्येवानुजानामि चीराण्येवानयन्तु मे ॥४॥ खनित्र पिटके चोभे समानयत गच्छत । चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वसतोमम ५

टीका—प्रधान के वचन को सुनकर विनय के जाननेवाला राम विनीत की तरह दशरथ से यह वाक्य बोला ॥१॥ हे राजन् ! भोग को त्यागकर वन में जंगली फलों से निर्वाह करते हुए मुझे अनुयात्रा से क्या प्रयोजन जबकि सारे ही संग छोड़ दिये ॥२॥ जो उत्तम हाथी को देकर तंग में मन लगाता है, उस उत्तम हाथी के त्यागनेवालेको रस्मी के स्नेह से क्या फल ॥३॥ इसीप्रकार हे सत् पुरुषों में श्रेष्ठ हे जगत्पते मुझे सेना से क्या फल, मैं सब को ही सम्मति देता हूं, चीर ही मेरे लिये लावें ॥४॥ मैं चौदह बरस बनवास को जाता हूं, जाओ मेरे लिये खनित्र और पिटारी लाओ ॥ ५ ॥

मूल—अथ चीराणि कैकेयी स्वयमाहृत्य राघवम् । उवाच परिधत्स्वेति जनौघे निरपत्रपा ॥६॥ स चीरे पुरुषव्याघ्रः कैकेय्याः

प्रतिगृह्य ते । सूक्ष्मवस्त्रमवक्षिप्य मुनिवस्त्राण्यवस्त ह ॥७॥ लक्ष्मण श्चापि तत्रैव विहाय वसने शुभे । तापसाच्छादने चैव जग्राह पितुरग्रतः ॥८॥ अथात्मपरिधानार्थं सीता कौशेयवासिनी । संप्रेक्ष्य चीरं संत्रस्ता पृषती वागुरामिव ॥ ९ ॥ सा व्यपत्रपमाणेव प्रगृह्य च सुदुर्मनाः । कैकेय्याः कुशचीरं ते जानकी शुभलक्षणा ॥ १० ॥ अश्रुसंपूर्णनेत्रा च धर्मज्ञा धर्मदर्शिनी । गन्धर्वराजप्रतिमं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥११॥ कथंनु चीरं बध्नन्ति मुनयो वनवासिनः । इति ह्यकुशला सीता सा मुमोह मुहुर्मुहः ॥१२॥ कृत्वा कण्ठे स्म सा चीरमेकमादाय पाणिना । तस्थौ ह्यकुशला तत्रव्रीडिता जनकात्मजा ॥१३॥ तस्यास्तत्क्षिप्रमागत्य रामो धर्मभृतां वरः । चीरं बबन्ध सीतायाः कौशेयस्योपरि स्वयम् ॥ १४ ॥

टीका—उसी समय कैकेयी आप चीर लाकर उस जनसमुदायमें निर्लज्ज होकर बोली, यह लो पहनो ॥ ६ ॥ उस पुरुष श्रेष्ठ ने कैकेयी से वह दोनों चीर लेकर के सूक्ष्म वस्त्रों को फैंककर मुनियों के वस्त्र पहने ॥७॥ लक्ष्मण भी वहीं दोनों शुभ वस्त्रों को त्यागकर पिता के सामने तपस्वियों के वस्त्र पहनता भया ॥८॥ तब रेशमी वस्त्र पहने हुई सीता अपने पहनने के लिये चीर को देखकर डर गई जैसे हिरणी फांस को देखकर ॥९॥ वह शुभ लक्षणों वाली जानकी बड़ी दुर्मन हुई और लज्जित सी हुई कैकेयी से दो कुशचीरि लेकर ॥१०॥ आंसुओं से भरे हुए नेत्रोंवाली धर्मज्ञा धर्म के देखने वाली गन्धर्वराज के तुल्य भर्त्ता से यह बोली ॥११॥ वनवासी मुनि किसतरह चीर बांधते हैं । इस प्रकार अनजान सीता बार २ घबराई ॥१२॥ एक चीर को कण्ठ में करके और दूसरे को हाथ में पकड़ कर अनजान जनकसुता लज्जित

होकर खड़ी की खड़ी रह गई ॥१३॥ तब राम ने जल्दी आकर सीता के रेशमी वस्त्र के ऊपर वह चीर बान्ध दिया ॥ १४ ॥

मूल—रामं प्रेक्ष्य तु सीताया बध्नन्तं चीरमुत्तमम् । अन्तःपुरचरा नार्यो मुमुचुर्वारि नेत्रजम् ॥१५॥ ऊचुश्च परमायत्तं रामं ज्वलिततेजसम् । वत्स नैवं नियुक्तेयं वनवासे मनस्विनी ॥१६॥ पितुर्वाक्यानुरोधेन गतस्य विजनं वनम् । तावद्दर्शनमस्या नः सफलं भवतु प्रभो ॥१७॥ लक्ष्मणेन सहायेन वनं गच्छस्व पुत्रक । नेयमर्हति कल्याणी वस्तुं तापसवद्वने ॥१८॥ तासामेवंविधा वाचः शृण्वन्दशरथात्मजः । बबन्धैव तथा चीरं सीतया तुल्यशीलया ॥१९॥ चीरे गृहीते तु तया सबाष्पो नृपतेर्गुरुः । निवार्य सीतां कैकेयीं वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥

टीका—सीता को चीर बान्धते हुए राम को देखकर अन्तःपुर की सब स्त्रियों के नेत्रों से पानी चल गया ॥१५॥ और बड़ी दुःखी हुई प्रदीप्त तेज वाले राम से बोलीं, वत्स इस मनस्विनी को वनवास की आज्ञा नहीं दीगई है ॥१६॥ पिता के अनुरोध से आप निर्जन वन में जाते हैं, तो इसका दर्शन तो हे प्रभो हमारे नेत्रों को सफल करे ॥१७॥ हे पुत्रक लक्ष्मण को साथ लेकर वन को जाओ, यह कल्याणी तपस्वियों की तरह वन में बसने योग्य नहीं है ॥१८॥ उनकी इस प्रकार की विविध बातों को सुनते हुए रामने तुल्य शीलवाली सीता को चीर बांध दिया ॥१९ सीता से दोनों चीर ग्रहण किये हुए देखकर राजा का गुरु वसिष्ठ सीता को रोककर कैकेयी से यह वाक्य बोला ॥२०॥

मूल—न गन्तव्यं वनं देव्या सीतया शीलवर्जिते । अनुष्ठास्यति रामस्य सीता प्रकृतमासनम् ॥२१॥ आत्मा हि दाराः सर्वेषां

दारसंग्रहवर्तिनाम् । आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम् ॥
२२ ॥ अथ यास्यति वैदेही वनं रामेण संगता । वयमप्यनुयास्यामः
पुरं चेदं गमिष्यति ॥२३॥ भरतश्च सशत्रुघ्नश्चीरवासा वनेचरः ।
वने वसन्तं काकुत्स्थमनुवत्स्यति पूर्वजम् ॥ २४ ॥

टीका—हे शीलहीने ! सीता देवी बनको नहीं जाएगी, वह रामके प्रकृत आसन की अधिष्ठात्री होगी ॥२१॥ सब गृहस्थों के लिये स्त्री अपना रूप हुआ करती है। यह राम का अपना रूप है, इस लिए पृथिवी का पालन करेगी ॥२२॥ और यदि राम के साथ सीता वन को जाएगी, तो हम भी साथ चलेंगे और यह सारा पुर चलेगा ॥२३॥ भरत भी शत्रुघ्न के साथ चीर पहन कर वनचारी बन बन में बसते हुए बड़े भाई राघव के साथ बसेगा ॥

मूल—ततः शून्यां गतजनां वसुधां पादपैः सह । त्वमेका शाधि
दुर्वृत्ता प्रजानामहिते स्थिता ॥२५॥ नहि तद्भविता राष्ट्रं यत्र
रामो न भूपतिः । तद्वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति ।२६।
+नह्यदत्तां महीं पित्रा भरतः शास्तुमर्हति । त्वयि वा पुत्रवद्वस्तुं
यदि जातो महीपतेः ॥२७॥+यद्यपि त्वं क्षितितलाद्गगनं चोत्प-
तिष्यसि । पितृवंशचारित्रज्ञः सोऽन्यथा न करिष्यति ॥२८॥

टीका—तब सब लोगों के निकल जाने पर पौधों समेत इस उजाड़ पृथिवी पर अकेली हकूमत करना जो ऐसी तू वृत्त को त्यागी हुई और प्रजाओं के अहित में स्थित है ॥२५॥ वह राष्ट्र नहीं होगा जहां राम राजा नहीं होगा, किन्तु वह वन राष्ट्र होगा जहां राम निवास करेगा ॥२६॥ भरत जो राजा का पुत्र है, तो वह न राजा से बिन दी पृथिवी पर शासन करेगा, न तुझ में पुत्र की तरह बर्तेगा ॥२७॥ यदि तू पृथिवी से आकाश को

उड़ जाएगी, पर वह पितृवंश के चरित्र को जानने वाला अन्यथा नहीं करेगा ॥२८॥

मूल—तत्त्वया पुत्रगर्धिन्या पुत्रस्य कृतमप्रियम् । लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः ॥२९॥ अथोत्तमान्याभरणानि देवि देहि स्नुषायै व्यपनीय चीरम् । न चीरमस्याः प्रविधीयतेति न्यवारयत्तद्रसनं वसिष्ठः ॥३०॥ एकस्य रामस्य वने निवासस्त्वया वृतः केकयराजपुत्रि । विभूषितेयं प्रतिकर्मनित्या वसत्वरण्ये सह राघवेण ॥३१॥ यानैश्च मुख्यैः परिचारकैश्च सुसंवृता गच्छतु राजपुत्री । वस्त्रैश्च सर्वैः सहितैर्विधानैर्नेयं वृता ते वरसंप्रदाने ।३२। तस्मिंस्तथा जल्पति विप्रमुख्ये गुरौनृपस्याप्रतिमप्रभावे । नैवस्म सीता विनिवृत्तभावा प्रियस्य भर्तुःप्रतिकारकामा ॥३३॥

टीका—सो तूने पुत्र की लालसा में पुत्र का अप्रिय कर डाला है लोक में कोई ऐसा है नहीं, जो राम के अनुसार न हो ॥२९॥ हे देवि ! चीरों को दूर हटा और उत्तम भूषण अपनी स्नुषा (सीता) को दे, चीर इस के योग्य नहीं हैं, इस प्रकार वसिष्ठ ने जानकी का वह पहरावा रोका ॥३०॥ हे कैकेयराजपुत्रि ! तूने अकेले राम का वनवास वरा है, सो यह भूषित हुई श्रृङ्गार करती राम के साथ बन में रहेगी ॥३१॥ यह राजपुत्री मुख्य रथों और सेवकों से सब प्रकार के वस्त्रों और दूसरे साधनों से युक्त हुई जावे तूने वरदान में इस को नहीं वरा है ॥३२॥ अतुल प्रभाव वाले राजा के गुरु विप्रवर के ऐसा कहते हुए सीता पति का सादृश्य चाहती हुई (चीरों के स्वीकार से) अलग भावना वाली नहीं हुई ॥३३॥

सर्ग ३८ व० ३८) दशरथ का कैकेयी को रोकना

मूल—तस्यां चीरं वसानायां नाथवत्यामनाथवत् । प्रचुक्रोश जनः सर्वो धिक्त्वां दशरथं त्विति ॥ १ ॥ तेन तत्र प्रणादेन दुःखितः स महीपतिः । स निःश्वस्योष्णमैक्ष्वाकस्तां भार्यामिदमब्रवीत् ॥२॥ सुकुमारी च बाला च सततं च सुखोचिता । नेयं वनस्य योग्येति सत्यमाह गुरुर्मम ॥ ३ ॥ इयं हि कस्यापि करोति किञ्चित्तपस्विनी राजवरस्य पुत्री । या चीरमासाद्य जनस्य मध्ये स्थिता विसंज्ञा श्रमणीव काचित्॥४॥चीराण्यपास्याज्जनकस्य कन्या नेयं प्रतिज्ञा मम दत्तपूर्वा । यथासुखं गच्छतु राजपुत्री वने समग्रा सह सर्वरत्नैः

टीका—नाथ वाली सीता जब इस तरह अनाथ की तरह चीर पहन रही थी, तो लोग चिल्ला उठे, कि धिक्कार है तुझ दशरथ को (यह बात वर में तो मांगी नहीं, फिर यह कैकेयी को ऐसा करने से रोकता क्यों नहीं, यह लोगों की निन्दा का हेतु हुआ) ॥ १ ॥ उस आवाज़ से वहां दुःखी हुआ राजा गर्म सांस भरकर उस स्त्री से यह बोला ॥ २ ॥ कि सुकुमारी और बाला, और सदा सुखों में पली हुई यह बन के योग्य नहीं, यह बात मेरे गुरु ने सत्य कही है ॥ ३ ॥ यह बेचारी राजवर की पुत्री किसी का क्या करती है, जोकि चीर पहन कर भिखारनी की तरह बन को जाए, जो कि चीर को देखकर घबरा गई है ॥ ४ ॥ जनक की कन्या चीरों को त्याग देवे, यह प्रतिज्ञा मैंने पूर्व नहीं दी है, इसलिये राजपुत्री सारे रत्नों के साथ जैसे उसको सुख हो वन को जावे ॥ ५ ॥

मूल—रामेण यदि ते पापे किंचित्कृतमशोभनम् । अपकारः क इह ते वैदेह्या दर्शितोऽधमे ॥ ६ ॥ मृगीवोत्फुल्लनयना मृदुशीला मन-

स्विनी । अपकारं कमिव ते करोति जनकात्मजा ॥ ७ ॥ ननु पर्याप्तमेवं ते पापे रामविवासनम् । किमेभिः कृपणैर्भूयः पातकैरपि ते कृतैः ॥ ८ ॥ प्रतिज्ञातं मया तावत्त्वयोक्तं देवि शृण्वता । रामं यदभिषेकाय त्वमिहागतमब्रवीः ॥ ९ ॥ तत्त्वेतत्समतिक्रम्य निरयं गन्तुमिच्छसि । मैथिलीमपि या हि त्वमीक्षसे चीरवासिनीम् ॥ १०

टीका—राम ने यदि हे पापिने ! तेरा कोई अपराध किया है, तौ भी सीता ने हे अधर्मे ! तेरा क्या अपराध किया है ॥ ६ ॥ हिरणी की तरह खिले हुए नेत्रोंवाली मृदुशीला मनीस्विनी जानकी तेरा कौन सा अपराध कर रही है ॥ ७ ॥ राम का निकालना ही तेरे लिये हे पापिनि ! पर्याप्त (भारी पातक) है, बसकर अब और इन नीच पातकों के करने से ॥ ८ ॥ वह तो मैंने प्रतिज्ञा की हुई थी जो तूने हे देवि अभिषेक के लिये आए राम को मेरे सुनते हुए कही ॥ ९ ॥ सो उसको उल्लंघ कर तू अब नरक को जाना चाहती है, जोकि तू जानकी को भी चीर पहने हुए देखती है ॥ १० ॥

मूल—एवं ब्रुवन्तं पितरं रामः संप्रस्थितो वनम् । अवाक्शिरसमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥ इयं धार्मिक कौसल्या मम माता यशस्विनी । वृद्धा चाक्षुद्रशीला च न च त्वां देव गर्हते ॥ १२ ॥ मया विहीनां वरद प्रपन्नां शोकसागरम् । अदृष्टपूर्वव्यसनां भूयः संमन्तुमर्हसि ॥ १३ ॥

टीका—पिता के ऐसा कहते हुए ही बन को रवाना हुआ राम नीचे सिर करके बैठे हुए पिता से यह बोला ॥ ११ ॥ यह यशस्विनी कौशल्या मेरी माता वृद्धा है, और उदारशीला है (आप की आज्ञा से मेरे बन को जाने पर भी आप को निन्दती

नहीं है क्योंकि जानती है, कि सत्य की रक्षा धर्म है) ॥ १२ ॥ सो हे वरदातः ! मुझ से हीन हुई शोकसागर में पड़ी हुई इस को आप अधिक संमान करने के योग्य है, पहले इसने कभी दुःख नहीं देखा है ॥ १३ ॥

सर्ग ३९ (व० ३९) कौसल्या का सीता को उपदेश

मूल–रामस्य तु वचः श्रुत्वा मुनिवेषधरं च तम्। समीक्ष्य सह भार्याभी राजा विगतचेतनः॥१॥संज्ञां तु प्रतिलभ्यैव मुहूर्तात् स महीपतिः। नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ औपवाह्यं रथं युक्त्वा त्वमायाहि हयोत्तमैः। प्रापयैनं महाभागमितो जनपदात्परम् ॥३॥ एवं मन्ये गुणवतां गुणानां फलमुच्यते। पित्रा मात्रा च यत्साधुर्वीरो निर्वास्यते वनम् ॥४॥ राज्ञो वचनमाज्ञाय सुमन्त्रः शीघ्रविक्रमः। योजयित्वा ययौ तत्र रथमश्वैरलंकृतम् ॥ ५ ॥ तां भुजाभ्यां परिष्वज्य श्वश्रूर्वचनमब्रवीत् । अनाचरन्तीं कृपणं मूर्ध्न्युपाघ्राय मैथिलीम् ॥ ६ ॥

टीका–राम के वचन को सुनकर और उसको मुनिवेषधारी देख कर स्त्रियों के साथ राजा अचेतन होगया ॥ १ ॥ थोड़ी देर के पीछे राजा पृथिवीपति होश में आकर आंसुओं से भरे हूए नेत्रों से सुमन्त्र को यह बोला ॥२॥ आराम से ले जाने वाले रथ को उत्तम घोड़ों से जोडकर लेआ, इस महाभाग को इस जनपद के पार लेजा ॥३॥ जब पिता और माता से एक साधु वीर पुरुष वन को निकाला जारहा है, तो मैं समझता हूं, कि गुणवालों के गुणों का फल ऐसा ही कहा है (अत्यन्त दुःख से यह वचन राजाने कहा है)॥४॥ राजा के वचन को जानकर सुमन्त्र जल्दी जा घोड़ों से सजे हुए रथ को जोडकर वहां ले आया ॥ ५ ॥ अब उदार

आचरण करती हुई मिथिलाऽधिपति की कन्या सीता को गले लगा कर और सिर चूमकर सास यह बोली ॥ ६ ॥

मूल–साध्वीनां हि स्थितानां तु शीले सत्ये श्रुते स्थिते । स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते ॥७॥ स त्वया नावमन्तव्यः पुत्रः प्रव्राजितो वनम् । तव दैवतमस्त्वेष निर्धनः सधनोऽपि वा ॥ ८ ॥ विज्ञाय वचनं सीता तस्या धर्मार्थसंहितम् । कृत्वाञ्जलिमुवाचेदं श्वश्रूमभिमुखे स्थिता ॥११॥+करिष्ये सर्वमेवाहमार्या यदनुशास्ति माम् । अभिज्ञास्मि यथा भर्तुर्वर्तितव्यं श्रुतं च मे ॥ १० ॥+न मामसज्जनेनार्या समानयितुमर्हति । धर्माद्विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिवप्रभा ॥ ११ ॥ नातन्त्री विद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः । नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा ॥ १२ ॥

टीका–पतिव्रता स्त्रियें जोकि शील, सत्य, शास्त्र और मर्यादा में स्थित हैं, उनके लिये एक पति ही परम पवित्र सबसे बढकर है ॥७॥ सो तूने मेरे पुत्र की कभी अवज्ञा न करना, जब कि वह वनवास दिया गया है, चाहे निर्धन हो, वा सधन हो, वह तेरा देवता है ॥८॥ धर्म अर्थ से युक्त उसके वचन को जानकर सम्मुख स्थित हुई सीता हाथ जोडकर सास से बोली ॥ ९ ॥ वह सब कुछ करूंगी, जैसे मुझे आर्या आज्ञा देती है, मैंने शास्त्र से सुना है और जानती हूं, जैसे भर्ता के साथ बर्तना चाहिये ॥ १० ॥ आर्या मुझे किसी असज्जन की तरह न समझे, मैं चन्द्र से प्रभा की तरह धर्म से कभी विचल नहीं हूंगी ॥ ११ ॥ विना तार के वीणा नहीं बजती है, बिना चक्र के रथ नहीं चलता है, बिना पति के सुखी हुई नहीं बढती है, चाहे सौ पुत्रवाली भी हो ॥१२॥

मूल–+मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः । अमितस्य

तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥१३॥ साहमेवंगता श्रेष्ठे श्रुतधर्मपरावरा । आर्ये किमवमन्येयं स्त्रिया भर्त्ता हि दैवतम् ॥ १४ ॥ सीतायाः वचनं श्रुत्वा कौसल्या हृदयंगमम् । शुद्धसत्वा मुमोचाश्रु सहसा दुःखहर्षजम् ॥१५॥ तां प्राञ्जलिरभिप्रेक्ष्य मातृमध्येऽतिसत्कृताम् । रामः परमधर्मात्मा मातरं वाक्यमब्रवीत् ॥ १६ ॥ अम्ब मा दुःखिता भूत्वा पश्येस्त्वं पितरं मम । क्षयोऽपि वनवासस्य क्षिप्रमेव भविष्यति ॥ १७ ॥ सुप्तायास्ते गमिष्यान्ति नव वर्षाणि पञ्च च । समग्रमिह संप्राप्तं मां द्रक्ष्यसि सुहृद्वृतम् ॥ १८ ॥

टीका—क्योंकि पिता मिना हुआ देता है, भाई मिना हुआ देता है, पुत्र मिना हुआ देता है, बिन मिना देनेवाले भर्ता को कौन नहीं पूजे ॥ १३ ॥ सो हे श्रेष्ठे ! मैं ऐसा जानती हूं, धर्म के सामान्य विशेष रूप को मैंने सुना है, हे आर्ये ! मैं कैसे कभी अवज्ञा कर सकती हूं, क्योंकि पति तो स्त्रियों का देवता है ॥ १४ ॥ सीता के इस प्यारे उत्तर को सुनकर शुद्ध हृदयवाली कौशल्या के दुःख और हर्ष से उत्पन्न हुए आंसू सहसा निकल पड़े ॥ १५ ॥ अब परम धर्मात्मा राम हाथ जोड़कर पास जा माताओं के मध्य में अति सत्कृता माता से यह वाक्य बोला ॥ १६ ॥ अम्ब मत दुःखी हो, मेरे पिता की तर्फ देखना, वनवास की समाप्ति जल्दी ही होजायगी ॥ १६ ॥ सोई हुई की तरह तुझे चौदह बरस बीत जाएंगे और तू मुझे सब के साथ यहां आया हुआ सुहृदों से घिरा हुआ देखेगी ॥ १७ ॥

सर्ग ४० (व० ४०) राम का वन गमन

मूल—अथ रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः । उपसंगृह्य राजानंचक्रुर्दीनाः प्रदक्षिणम् ॥१॥ तं चापि समनुज्ञाप्य धर्मज्ञःसह

सीतया । राघवः शोकसंमूढो जननीमभ्यवादयत् ॥ २ ॥ अन्वक्षं लक्ष्मणो भ्रातुः कौसल्यामभ्यवादयत् । अपि मातुः सुमित्राया जग्राह चरणौ पुनः ॥३॥ तं वन्दमानं रुदती माता सौमित्रिमब्रवीत् । हितकामा महाबाहु मूर्ध्न्युपाघ्राय लक्ष्मणम् ॥४॥

टीका–अब राम लक्ष्मण और सीता हाथ जोड़ कर राजा के चरणों को ग्रहण करके (माता पिता के शोक से) दीन हुए प्रदक्षिणा करते भए ॥१॥ उस (पिता) से अनुज्ञा लेकर संमूढ़ हुआ राम सीता के समेत माता को अभिवादन करता भया ।२। भाई के अनन्तर लक्ष्मण ने कौसल्या को अभिवादन किया और फिर माता सुमित्रा के चरण पकड़े ॥३॥ वन्दना करते हुए महाबाहु लक्ष्मण को हितकामना वाली माता सिर पर चूमकर रोती हुई बोली ॥४॥

मूल–सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने । रामे प्रमादं मा कीर्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति ॥५॥+ व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघ । एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत् ॥६॥ +इदं हि वृत्तमुचितं कुलस्यास्य सनातनम् । दानं दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृधेषु हि ॥७॥+रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् । अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ८

टीका–तुझे वनवास के लिए आज्ञा दी गई है, तू अपने सुहृज्जन में पूरा अनुरक्त है, हे पुत्र अपने भाई राम के चलते हुए कभी प्रमाद न करना (सदा सावधान रहना) ॥५॥ विपद् में हो, वा समृद्धि में हो, हे निष्पाप ! यह तेरा आश्रय है, लोक में भलों का यही धर्म है, कि बड़े के वशगामी हो ॥६॥ यह इस कुल का उचित सनातन आचरण है। तथा दान, यज्ञों में दीक्षा और युद्धों

में शरीर का त्याग (कुल धर्म है) ॥७॥ राम को दशरथ जान और जनकसुता को मेरा रूप (माता) जान और वन को अयोध्या जान, हे तात आनन्द से जा ॥८॥

मूल–तं रथं सूर्यसंकाशं सीता हृष्टेन चेतसा। आरुरोह वरारोहा कृत्वालङ्कारमात्मनः ॥९॥ वनवासं हि संख्याय वासांस्याभरणानि च। भर्त्तारमनुगच्छन्त्यै सीतायै श्वसुरो ददौ ॥१०॥ तथैवायुधजातानि भ्रातृभ्यां कवचानि तु। रथोपस्थे प्रविन्यस्य सचर्म कठिनं च यत् ॥११॥ अथो ज्वलनसंकाशं चामीकरविभूषितम्। तमारुरुहतुस्तूर्णं भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१२॥

टीका–अब सूर्य सदृश उस रथ पर प्रसन्न मन से वरारोहा सीता अपना अलङ्कार करके आरूढ हुई॥९॥वनवास की गिनती करके वस्त्र और भूषण भर्त्ता के पीछे जाती हुई सीता को श्वशुर ने दिये ॥१०॥ और दोनों भाईयों के लिए बहुत से शस्त्र कवच पेटी और खनित्र रथ में रखा दिये ॥११॥ इस के पीछे अग्नि के सदृश सुवर्ण से भूषित रथ पर दोनों भाई राम और लक्ष्मण आरूढ हुए ॥१२॥

मूल–सीतातृतीयानारूढान्दृष्ट्वा रथमचोदयत्। सुमन्त्रः संमतानश्वान्वायुवेगसमाजवे ॥१३॥ ततः सबालवृद्धा सा पुरी परमपीड़िता। राममेवाभिदुद्राव घर्मातः सलिलं यथा ॥१४॥ पार्श्वतः पृष्ठतश्चापि लम्बमानास्तदुन्मुखाः। बाष्पपूर्णमुखाः सर्वेतमूचुर्भृशानिःस्वना ॥१५॥

टीका–तब बाल वृद्धों समेत वह सारी पुरी परम पीड़ित हुई राम की ही ओर दौड़ी, जिस तरह घाम से पीडित पुरुष जल की ओर दौडते हैं ॥१४॥ आस पास से और पीछे से उस की

तर्फ दौडते हुए आंसुओं से पूर्ण मुख वाले सब ऊंचे स्वर से सूत को बोले ॥१५॥

मूल—संयच्छ वाजिनां रश्मीन् सूत याहि शनैः शनैः। मुखं द्रक्ष्याम रामस्य दुर्दर्शं नो भविष्यति ॥१६॥ कृतकृत्या हि वैदेही छायेवानुगता पतिम्। न जहाति रता धर्मे मेरुमर्कप्रभा यथा ॥१७॥ अहो लक्ष्मण सिद्धार्थः सततं प्रियवादिनम्। भ्रातरं देवसंकाशं यस्त्वं परिचरिष्यसि ॥१८॥ महत्येषा हि ते बुद्धिरेष चाभ्युदयो महान्। एष स्वर्गस्य मार्गश्च यदेनमनुगच्छसि ॥१९॥ एवं वदन्तस्ते सोढुं न शेकुर्बाष्पमागतम्। नरास्तमनुगच्छन्तः प्रियमिक्ष्वाकुनन्दनम् ॥२०॥ अथ राजा वृतः स्त्रीभिर्दीनाभिर्दीनचेतनः। निर्जगाम प्रियं पुत्रं द्रक्ष्यामीति ब्रुवन् गृहात् ॥२१॥

टीका—हे सूत घोड़ों की बागों को रोक, धीरे २ चल, हम राम का मुख देखेंगे, जो हमें देखना दुर्लभ होगा ॥ १७ ॥ कृतकृत्या है सीता जो धर्म में रती हुई छाया की तरह पति के अनुगत हुई साथ नहीं छोड़ती है, जैसे मेरु को सूर्य की प्रभा ॥ १७ ॥ अहो लक्ष्मण तू कृतकृत्य है, जो देवसदृश प्रियवादी भाई की सेवा करेगा ॥ १८ ॥ यह तेरी बड़ी बुद्धि है यह बडा अभ्युदय है, यह स्वर्ग का मार्ग है, जो तू इसके पीछे जाता है ॥ १९ ॥ ऐसा कहते हुए, प्यारे राम के पीछे चलते हुए, वह लोग निकलती हुई आंसुओं को नहीं थाम सके ॥ २० ॥ इधर राजा भी स्त्रियों से युक्त, दीन चेतनावाला, 'प्यारे पुत्र को देखूंगा' यह कहता हुआ घर से बाहर निकला ॥ २१ ॥

मूल—रामो याहीति तं सूतं तिष्ठेति च जनस्तथा। उभयं नाशकत्सूतः कर्तुमध्वनि चोदितः ॥२२॥ दृष्ट्वा तु नृपतिः श्रीमानेकचित्तगतं

पुरम् । निनिपातैव दुःखेन कृत्तमूल इव द्रुमः ॥२३॥ ततो हलहला-
शब्दो जज्ञे रामस्य पृष्ठतः । नराणां प्रेक्ष्य राजानं सीदन्तं भृश-
दुःखितम् ॥२४॥ अन्वीक्षमाणो रामस्तु विषण्णं भ्रान्तचेतसम् ।
राजानं मातरं चैव ददर्शानुगतौ पथि ॥२५॥ पदातिनौ च याना-
र्हावदुःखार्हौसुखोचितौ । दृष्ट्वा संचोदयामास शीघ्रं याहीति
सारथिम् ॥२६॥

टीका—राम सूत को कहता है 'चलो' और लोग कहते हैं 'ठहरो' इस प्रकार मार्ग में प्रेरा हुआ सूत दोनों बातें न कर सका ॥ २२ ॥ श्रीमान् नरपति पुर को एक चित्त हुआ देखकर दुःख से कटी हुई जड वाले वृक्ष की तरह नीचे गिर पड़ा ॥ २३ ॥ तब मनुष्यों के राजा को अत्यन्त दुःखित हो फिसलता हुआ देखकर राम के पीठ की ओर शोर पड़ गया ॥ २४ ॥ राम ने मुड़कर देखा कि उदास हुआ घबराया हुआ राजा और माता दोनों मार्ग में पीछे आरहे हैं ॥ २५ ॥ राम ने दुःख के अयोग्य, सुखी रहनेवाले, सवारी के योग्य माता पिता को प्यादा आते देखा, तो सारथि को प्रेरा, कि जल्दी चलो ॥ २६ ॥

मूल—नाहि तत्पुरुषव्याघ्रो दुःखजं दर्शनं पितुः । मातुश्च सहितुं
शक्तस्तोत्रैर्नुन्न इव द्विपः ॥२७॥ प्रत्यागारमिवायान्ती सवत्सा
वत्सकारणात् । बद्धवत्सा यथा धेनू राममाताभ्यधावत ॥२८॥
तिष्ठेति राजा चुक्रोश याहि याहीति राघवः । सुमन्त्रस्य बभूवा-
त्मा चक्रयोरिव चान्तरा ॥२९॥ यमिच्छेत्पुनरायान्तं नैनं दूर
मनुव्रजेत् । इत्यमात्या महाराजमूचुर्दशरथं वचः ॥३०॥ तेषां
वचः सर्वगुणोपपन्नः प्रस्विन्नगात्रः प्रविषण्णरूपः । निशम्य राजा
कृपणः सभार्यो व्यवस्थितस्तं सुतमीक्षमाणः ॥३१॥

टीका—क्योंकि वह पुरुषश्रेष्ठ माता पिता को इसतरह देख नहीं सका, अंकुश से पीडित हाथी की तरह दुःखी हुआ ॥ २७ ॥ (रथ को दौड़ता देख) राम की माता इसतरह दौड़ी, जैसे बन्धे हुए बछडेवाली, गौ बछड़े के लिये बन्धन स्थान को दौड़ती है ॥२८ राजा कहता है ठहरो, और राम कहता है चलो,इस प्रकार सूत का हाल दो पहियों के मध्य में आए पुरुष की तरह था। २९। उस समय मन्त्रियों ने महाराज दशरथ को यह बचन कहा, 'जिस का फिर आना चाहते हो उस के पीछे दूर तक नहीं जाना चाहिये' ॥३०॥ उनके वचन को सुन कर सर्व गुणों से युक्त राजा जिसके सारे अङ्गों पर पसीना आया हुआ और रूप मुरझाया हुआ है, दीन हो पुत्र को देखता हुआ स्त्रियों समेत ठहर गया ॥

सर्ग ४१ (व० ४२) राम को विदा कर घर जाना

मूल—यावत्तु निर्यतस्तस्य रजोरूपमदृश्यत। नैवेक्ष्वाकुवरस्तावत्संजहारात्मचक्षुषी ॥१॥ न पश्यति रजोऽप्यस्य यदा रामस्य भूमिपः। तदार्तश्च विषण्णश्च पपात धरणीतले ॥२॥ अथ रेणुसमुद्ध्वस्तं समुत्थाप्य नाराधिपम्। न्यवर्तत तदा देवी कौसल्या शोककर्शिता ॥ ३ ॥ अथ गद्गदशब्दस्तु विलपन्वसुधाधिपः। उवाच मृदु मन्दार्थं वचनं दीनमस्वरम् ॥ ४ ॥ कौसल्यागृहं शीघ्रं राममातुर्नयन्तु माम्। नह्यन्यत्र ममाश्वासो हृदयस्य भविष्यति ॥५ ॥ इति ब्रुवन्तं राजानमनयन्द्वारदर्शिनः। कौसल्याया गृहं तत्र न्यवेशयत विनीतवत् ॥ ६ ॥

टीका—निकलते हुए राम (के रथ) की धूलि जब तक दिखलाई देती रही, तब तक इक्ष्वाकुवर ने अपने नेत्र नहीं हटाए ॥१॥ पर जब राम की धूलि को भी राजा नहीं देखता है, तब उदास

और आर्त होकर पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ २ ॥ तब धूलि मे लिबड़े हुए उस नरपति को उठाकर शोक मे मुरझाई हुई देवी कौशल्या वापिस लौटी ॥ ३ ॥ तब मनुष्यों का अधिपति गद्गद वाणी से विलाप करता हुआ, बड़ा नर्म, स्वर से हीन अस्पष्ट वचन बोला ॥ ४ ॥ जल्दी मुझे राम की माता कौसल्या के घर ले चलो और कहीं मेरे हृदय को तसल्ली नहीं होगी ॥ ५ ॥ ऐसा कहते हुए राजा को द्वारपाल कौसल्या के घर ले गये, वहां वह विनीत की तरह लिटाया गया ॥ ६ ॥

मूल–ततस्तत्र प्रविष्टस्य कौसल्याया निवेशनम् । अधिरुह्यापि शयनं बभूव लुलितं मनः ॥ ७ ॥ पुत्रद्वयविहीनं च स्नुषया च विवर्जितम् । अपश्यद्भवनं राजा नष्टचन्द्रमिवाम्बरम् ॥ ८ ॥ तच्च दृष्ट्वा महाराजो भुजमुद्यम्य वीर्यवान् । उच्चैः स्वरेण प्राक्रोशद्धा राम विजहासि मां ॥ ९ ॥ सुखिता बत तं कालं जीविष्यन्ति नरोत्तमाः । परिष्वजन्तो ये रामं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम् ॥ १० ॥ अथ रात्र्यां प्रपन्नायां कालरात्र्यामिवात्मनः । अर्धरात्रे दशरथः कौसल्यामिदमब्रवीद ॥ ११ ॥ न त्वां पश्यामि कौसल्ये साधु मां पाणिना स्पृश । रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते । १२ तं राममेवानुविचिन्तयन्तं समीक्ष्य देवी शयने नरेन्द्रम् । उपोपविश्याधिकमार्तरूपा विनिःश्वसन्तं विललाप कृच्छ्रम् ॥ १३ ॥

टीका–कौसल्या के घर प्रवेश करके भी, पलंग पर लेट कर भी उस का मन व्याकुल ही रहा ॥७॥ दोनों पुत्रों से हीन और स्नुषा से रहित वह घर राजा को ऐसा दिखता था, जैसे चांद के छिप जाने से आकाश ॥८॥ यह देख कर वीर्यवान् महाराज भुजा उठा कर ऊंचे स्वर से पुकारता भया, हा राम तू मुझे छोड़ता

है ॥९॥ भाग्यवाले उत्तम पुरुष उस समय तक जियेंगे, जो गले लगाते हुए, राम को फिर आया हुआ देखेंगे ॥१०॥ अब अपनी कालरात्रि जैसी रात्रि आने पर आधीरात के समय दशरथ ने कौसल्या को कहा ॥११॥ हे कौसल्ये ! तू मुझे दीखती नहीं है मुझे भली भान्ति हाथ से स्पर्श कर, राम के पीछे गई हुई मेरी दृष्टि अभी भी नहीं लौटती है ॥१२॥ शय्या पर राम का ही चिन्तन करते हुए राजा को देखकर देवी अधिक पीड़ित हुई पास बैठ कर लम्बे सांस भरती हुई दुःखी हो विलाप करती भई ॥१३॥

सर्ग ४२ (वा० ४३, ४४) कौसल्या का विलाप

मूल—गजराजगतिर्वीरो महाबाहुर्धनुर्धरः । वनमाविशते नूनं सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥१॥ अपीदानीं स कालः स्यान्मम शोकक्षयः शिवः सहभार्यं सह भ्रात्रा पश्येयमिह राघवम् ॥२॥ कदा प्रेक्ष्य नरव्याघ्रावरण्यात्पुनरागतौ । भविष्यति पुरी हृष्टा समुद्र इव पर्वणि ३ निःसंशयं मया मन्ये पुरा वीर कदर्यया । पातुकामेषु वत्सेषु मातॄणां शातिताः स्तनाः ॥४॥

टीका—गजराज की गतिवाला महाबाहु धनुर्धारी ! वीर स्त्री और लक्ष्मण समेत वन को चला गया है ॥१॥ हे जगदीश्वर मेरे शोक के क्षय करने वाला वह शुभ समय आवे, जब मैं स्त्री और भाई सहित राम को यहां देखूं ॥२॥ कब वन से फिर आये उन दोनों नर श्रेष्ठों को देख कर पुरी प्रसन्न होगी, जैसे पर्व में समुद्र ॥३॥ निःसन्देह मैं जानती हूं कि पूर्व जन्म में हे वीर (दशरथ) मैं पापनि ने दूध पीना चाहते हुए बछड़ों की माताओं के थन काट डाले हैं ॥४॥

मूल–साहं गौरिव सिंहेन विवत्सा वत्सलाकृता। कैकेय्या पुरुषव्याघ्र बालवत्सेव गौर्बलात् ॥५॥ विलपन्तीं तथा तां तु कौसल्यां प्रमदोत्तमाम्। इदं धर्मे स्थिता धर्म्यं सुमित्रा वाक्यमब्रवीत् ॥६॥ +तवार्ये सद्गुणैर्युक्तः स पुत्रः पुरुषोत्तमः। किं ते विलपितेनैवं कृपणं रुदितेन वा ॥७॥ + यस्तवार्ये गतः पुत्रस्त्यक्त्वा राज्यं महाबलः। साधु कुर्वन्महात्मानं पितरं सत्यवादिनम् ॥८॥

टीका–सो मैं शेर से गौ की तरह प्यारे पुत्रवाली बिना पुत्र के की गई हूं ॥५॥ इस प्रकार विलाप करती हुई उत्तम नारी कौसल्या को धर्म में स्थित सुमित्रा यह धर्म वाक्य बोली ॥६॥ हे आर्ये तेरा पुत्र सद्‌गुणों से युक्त पुरुषोत्तम है, तुझे ऐसे विलाप से और दीन रुदन से क्या ॥७॥ जो तेरा महाबली पुत्र हे आर्ये राज्य को त्याग कर महात्मा पिता को भली भांति सत्यवादी बनाता हुआ गया है ॥८॥

मूल–शिष्टैराचरिते सम्यक्शश्वत्प्रेत्य फलोदये। रामो धर्मे स्थितः श्रेष्ठो न स शोच्यः कदाचन ॥९॥ + कीर्तिभूतां पताकां यो लोके भ्रामयति प्रभुः। धर्मसत्यव्रतपरः किं न प्राप्तस्तवात्मजः ॥१०॥+नार्हा त्वं शोचितुं देवि यस्यास्ते राघवः सुतः। नहि रामात्परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः ॥११॥ अभिवादयमानं तं दृष्ट्वा ससुहृदं सुतम्। मुदाश्रु मोक्ष्यसे क्षिप्रं मेघरेखेव वार्षिकी ॥१२॥ निशम्य तल्लक्ष्मणमातृवाक्यं रामस्य मातुर्नरदेवपत्न्याः। सद्यः शरीरे विननाश शोकः शरद्गतो मेघ इवाल्पतोयः ॥१३॥

टीका–शिष्टों से आचरण किए हुए और भली भांति सदा परलोक में फल देने वाले धर्म में स्थित श्रेष्ठ राम कभी शोक के योग्य नहीं है ॥९॥ क्या तुझे धर्म पराक्रम और सत्यव्रत परायण

पुत्र नहीं मिला जो अपनी कीर्त्ति का झण्डा सारे लोक में फिराएगा ॥१०॥ हे देवि ! तू शोक करने के योग्य नहीं है, जिस का राम पुत्र है, राम से बढ़ कर लोक में कोई सन्मार्ग में स्थित नहीं है ॥११॥ वह समय दूर नहीं है जब तू सुहृदों समेत अपने पुत्र को अभिवादन करता हुआ फिर देख कर बरसाती मेघमाला की तरह आनन्द से आंसुएं छोड़ेगी ॥१२॥ लक्ष्मण की माता के इस वाक्य को सुनकर नरदेव की पत्नी राम की माता का शोक शरदऋतु के थोड़े जल वाले मेघ की तरह तत्क्षण दूर होगया ॥१३॥

सर्ग ४३ (व० ४५) पुरवासियों का राम के साथ जाना

मूल—अनुरक्ता महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् । अनुजग्मुः प्रयान्तं तं वनवासाय मानवाः ॥ १ ॥ अयोध्यानिलयानां हि पुरुषाणां महायशाः । बभूव गुणसंपन्नः पूर्णचन्द्र इव प्रियः ॥ २ ॥ अवेक्षमाणः सस्नेहं चक्षुषा प्रपिबन्निव । उवाच रामः सस्नेहं ताः प्रजाः स्वाः प्रजा इव ॥ ३ ॥ या प्रीतिर्बहुमानश्च मय्ययोध्यानिवासिनाम् । मत्प्रियार्थं विशेषेण भरते सा विधीयताम् ॥ ४ ॥ स हि कल्याणचारित्रः कैकेय्यानन्दवर्धनः। करिष्यति यथावद्वः प्रियाणि च हितानि च ॥ ५ ॥ ज्ञानवृद्धो वयोबालो मृदुर्वीर्युगुणान्वितः । अनुरूपः स वो भर्ता भविष्यति भयापहः ॥ ६ ॥

टीका—सच्चे पराक्रम वाले महात्मा राम में अनुराग वाले (अयोध्यावासी) लोग वनवास के लिये जाते हुए के पीछे गए ॥१॥ क्योंकि अयोध्यावासियों को गुणों से सम्पन्न महायशस्वी राम पूर्णचन्द्र की तरह प्यारा था ॥२॥ स्नेह से देखता हुआ मानों नेत्रों से पीता हुआ राम अपने पुत्रों की तरह उन प्रजाओं को

स्नेह से यह वाक्य बोला ॥ ३ ॥ जो प्रीति और बहुमान मुझ में अयोध्या वासियों का है, मेरे प्रिय के लिये इस से बढकर उसे भरत में लगाओ। ८ ।पवित्र आचरणवाला कैकेयी का आनन्द बढाने वाला, वह तुम्हारा ठीक २ प्रिय और हित करेगा ॥५॥ आयु में छोटा पर ज्ञान में बड़ा हुआ, वीर्य के गुणों से युक्त पर मृदु, वह तुम्हारा योग्य स्वामी तुम्हारे भयों का मिटाने वाला होगा ॥ ६ ॥

मूल—स हि राजगुणैर्युक्तो युवराजः समीक्षितः। अपि चापि मया शिष्टैः कार्यं वो भर्तृशासनम् ॥७॥ न संतप्येद्यथा चासौ वनवासं गते मयि। महाराजस्तथा कार्यो मम प्रियचिकीर्षया ॥ ८ ॥ यथा यथा दाशरथिर्धर्म एव स्थितोऽभवत्। तथा तथा प्रकृतयो रामं पतिमकामयन् ॥ ९ ॥ बाष्पेण पिहितं दीनं रामः सौमित्रिणा सह। चकर्षेव गुणैर्बद्धं जनं पुरनिवासिनम् ॥ १० ॥ ते द्विजास्त्रिविधं वृद्धा ज्ञानेन वयसौजसा। वयःप्रकम्पशिरसो दूरादूचुरिदं वचः ॥ ११ ॥ वहन्तो जवना रामं भो भो जात्यास्तुरंगमाः। निवर्तध्वं न गन्तव्यं हिता भवत भर्तरि ॥ १२ ॥

टीका—वह राजगुणों से युक्त युवराज निश्चय किया गया है, हां वह मुझसे बढ़कर गुणों से युक्त है, अब आपको अपने मालिक का हुक्म मानना चाहिए ॥ ७ ॥ किञ्च मेरे बन जाने पर जैसे कि महाराज दुःखी न हों, वैसे आप को करना चाहिये इसी में मेरा प्रेम है ॥ ८ ॥ ज्यों २ राम धर्म में दृढता दिखलाता गया, त्यों त्यों लोग उसी को पति चाहते भए ॥ ९ ॥ लक्ष्मण सहित राम रोते हुए पुरवासी लोगों को मानों अपने गुणों से बांध कर खींच रहा था ॥ १० ॥ वह ब्राह्मण जो

ज्ञान से तप से और अवस्था से तीनों प्रकार से वृद्ध हैं, बडी आयु के हेतु जिनके सिर कांप रहे हैं, वह दूर से यह बचन बोले ॥ ११ ॥ हे वेग से राम को ले जाते हुए कुलीन घोडों लौट आओ, न जाओ, अपने मालिक के हितकारी बनो ॥१२॥

मूल—एवमार्तप्रलापांस्तान्वृद्धान्प्रलपतो द्विजान् । अवेक्ष्य सहसा रामो रथादवततार ह ॥ १३ ॥+पद्भ्यामेव जगामाथ ससीतःसह-लक्ष्मणः । संनिकृष्टपदन्यासो रामो वनपरायणः ॥ १४ ॥ गच्छ-न्तमेव तं दृष्ट्वा रामं संभ्रान्तमानसाः । ऊचुः परमसंतप्ता रामं वा-क्यमिदं द्विजाः ॥ १५ ॥+या हि नः सततं बुद्धिर्वेदमन्त्रानुसा-रिणी । त्वत्कृते सा कृता वत्स वनवासानुसारिणी ॥ १६ ॥+ हृदयेष्ववतिष्ठन्ति वेदा ये नः परं धनम् । वत्स्यन्त्यपि गृहष्वेव दाराश्चारित्ररक्षिताः ॥ १७ ॥ एवं विक्रोशतां तेषां द्विजातीनां निवर्तने । ददृशे तमसा तत्र वारयन्तीव राघवम् ॥ १८ ॥

टीका—इस प्रकार आर्त प्रलाप करते हुए उन वृद्ध ब्राह्मणों को देख कर राम रथ से झट पट उतर पड़ा ॥१३॥ और सीता और लक्ष्मण के साथ राम शनैः २ पाओं रखता हुआ पैदल गया, हां मुख वन की ओर ही रहा (रथ से जाने में पीछे आते वृद्ध ब्राह्मणों को क्लेश होगा और लौट कर तसल्ली देने में व्रतभंग होगा, इस लिए उतर कर वन को ही गया) ॥१४॥ जाते हुए ही राम को देख कर परम संतप्त हुए ब्राह्मण बड़े आदर के साथ यह वाक्य बोले ॥१५॥ जो हमारी बुद्धि सदा वेद मन्त्रों के अनुसार है, तेरे कारण हे बेटा वह हमने बनवास के अनुसार करली है ॥१६॥ वेद जो हमारा परम धन है, वह हमारे हृदयों में स्थित है और हमारी स्त्रियें अपने चारित्र से

रक्षा की हुई घरों में रहेंगी ॥१७॥ इस प्रकार पुकारते हुए उन ब्राह्मणों के लौटाने के लिये राम को मानों ठहराती हुई तमसा नदी आगई ॥१८॥

सर्ग ४४ (व० ४६) वन की पहली रात

मूल—ततस्तु तमसातीरं रम्यमाश्रित्य राघवः। सीतामुद्वीक्ष्य सौमित्रिमिदं वचनमब्रवीत् ॥१॥ इयमद्य निशा पूर्वा सौमित्रे प्रहिता वनम्। वनवासस्य भद्रं ते न चोत्कण्ठितुमर्हसि ॥२॥ अद्यायोध्या तु नगरी राजधानी पितुर्मम। सस्त्रीपुंसा गतानस्मान्शोचिष्यति न संशयः ॥३॥ अनुरक्ता हि मनुजा राजानं बहुभिर्गुणैः। त्वां च मां च नरव्याघ्र शत्रुघ्नभरतौ तथा ॥४॥ पितरं चानुशोचामि मातरं च यशस्विनीम्। अपि नान्धौ भवेतां नौ रुदन्तौ तावभीक्ष्णशः ॥५॥ भरतः खलु धर्मात्मा पितरं मातरं च मे। धर्मार्थकामसहितैर्वाक्यैराश्वासयिष्यति ॥६॥

टीका—तब तमसा के रमणीय तट पर आकर राम ने सीता और लक्ष्मण को देखकर कहा ॥ १ ॥ आज यह हे लक्ष्मण! वनवास की पहली रात वन में आई है, तुझे भद्र हो, तुझे अब (अयोध्या आदि का)स्मरण नहीं करना चाहिये ॥ २॥ आज अयोध्या नगरी जो मेरे पिता की राजधानी है, वह स्त्री पुरुषों समेत हमें शोक कर रही होगी, इस में संशय नहीं ॥ ३ ॥ वहां के सब लोग बहुत गुणों के हेतु से राजा में अनुरक्त हैं, और हे नरव्याघ्र! तेरे में, मेरे में, तथा भरत और शत्रुघ्न में अनुरक्त हैं ॥ ४ ॥ मैं पिता को और यशस्विनी माता की सोचमें हूं, वह अत्यन्त रोते हुए अन्धे न होजायें ॥५॥ धर्मात्मा भरत मेरे माता पिता को धर्म अर्थ और काम युक्त वाक्यों से तसल्ली देगा ॥६॥

मूल–भरतस्यानृशंसत्वं संचिन्त्याहं पुनः पुनः। नानुशोचामि पितरं मातरं च महाभुज ॥७॥ अद्भिरेव हि सौमित्रे वत्स्याम्यद्य निशामिमाम। एतद्धि रोचते मह्यं वन्येऽपि विविधे सति ॥८॥ गोकुलाकुलतीरायास्तमसाया विदूरतः। अवसत्तत्र तां रात्रिं रामः प्रकृतिभिः सह ॥९॥ उत्थाय च महातेजाः प्रकृतीस्ता निशाम्य च। अब्रवीद्भ्रातरं रामो लक्ष्मणं पुण्यलक्षणम् ॥१०॥ अस्मद्व्यपेक्षान्सौमित्रे निर्व्यपेक्षान्गृहेष्वपि। वृक्षमूलेषु संसुप्तान्पश्य लक्ष्मण सांप्रतम् ॥११॥ यथैते नियमं पौराः कुर्वन्त्यस्मन्निवर्तने। अपि प्राणानसिष्यन्ति न तु त्यक्ष्यन्ति निश्चयम् ॥१२॥

टीका–भरत के दयाभाव को फिर २ चिन्तन करके हे लक्ष्मण! मैं माता पिता के लिये शोक नहीं करता हूं ॥७॥ आज की रात हे लक्ष्मण! निरा जल पीकर ही रहूंगा, यही मेरी रुचि है, यद्यपि बन के नाना प्रकार के फल मूल भी यहां हैं ॥८॥ गौओं के समूहों से व्याप्त तमसा के कुछ दूर वह रात राम प्रकृतियों (अपने लोगों) के साथ सोया ॥९॥ वह महातेजस्वी राम (प्रभात के समय उठकर) उन प्रकृतियों को देख कर पुण्य लक्षणों वाले भाई आतुर लक्ष्मण से बोला ॥१०॥ हे लक्ष्मण अब वृक्षों के नीचे सोए हुए इन को देख, जो हमारी परवाह करते हुये घर से बेपरवाह होरहे हैं ॥११॥ यह पुर के लोग जिस तरह हमारे लौटाने में यत्न कर रहे हैं, यह प्राणों को छोड़ देंगे, पर अपने निश्चय को नहीं छोड़ेंगे ॥१२॥

मूल–यावदेव तु संसुप्तास्तावदेव वयं लघु। रथमारुह्य गच्छामः पन्थानमकुतोभयम् ॥१३॥ अतो भूयोऽपि नेदानीमिक्ष्वाकुपुरवासिनः। स्वपेयुरनुरक्ता मां वृक्षमूलेषु संश्रिताः ॥१४॥ +पौरा

ह्यात्मकृताद् दुःखाद्विप्रमोच्या नृपात्मजैः । न तु खल्वात्मना योज्या दुःखेन पुरवासिनः ॥ १५ ॥ अब्रवील्लक्ष्मणो रामं साक्षाद्धर्ममिव स्थितम् । रोचते मे तथा प्राज्ञ क्षिप्रमारुह्यतामिति ॥ १६ ॥ सूतस्ततः संत्वरितः स्यन्दनं तैर्हयोत्तमैः । योजयित्वा तु रामस्य प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत् ॥१७॥ तं स्यन्दनमधिष्ठाय राघवः सपरिच्छदः । शीघ्रगामाकुलावर्तां तमसामतरन्नदीम् ॥ १८ ॥

टीका—जो जब तक यह सोए हुए हैं, तभी तक हम जल्दी रथ पर चढ़कर निर्भय मार्ग को चलें ॥१३॥ इसके पीछे अब फिर भी इक्ष्वाकुपुर के वासी मेरे अनुराग में वृक्षोंके नीचे न सोएं॥१४॥ राजपुत्रों को चाहिये, कि पुर के लोगों को उनके दुःखों से छुड़ाएं, न कि उलटा अपने दुःखों से उनको युक्त करें ॥१५॥ साक्षात् धर्म की तरह स्थित राम को लक्ष्मण ने उत्तर दिया, हे प्राज्ञ ! यह बात मुझे भी पसन्द है, जल्दी सवार होजाइये ॥१६॥ उसी समय सुमन्त्र जल्दी उन उत्तम घोड़ों से जोड़कर रथ ले आया, और हाथ जोड़कर रामसे निवेदन किया ॥१७॥ राम तब सामान (कवचादि) के समेत उस रथ पर चढ़कर तेज चलती हुई—भँवरोंवाली तमसा नदी से पार हुआ ॥ १८ ॥

मूल—स संतीर्य महाबाहुः श्रीमाञ्शिवमकण्टकम् । प्रापद्यत महामार्गमभयं भयदर्शिनाम् ॥१९॥ मोहनार्थं तु पौराणां सूतं रामोऽब्रवीद्वचः । उदङ्मुखः प्रयाहि त्वं रथमारुह्य सारथे ॥२०॥ मुहूर्तं त्वरितं गत्वा निवर्तय रथं पुनः । यथा न विद्युः पौरा मां तथा कुरु समाहितः ॥ २१ ॥ रामस्य तु वचः श्रुत्वा तथा चक्रे च च सारथिः । प्रत्यागम्य च रामस्य स्यन्दनं प्रत्यवेदयत् ॥२२॥ तौ संप्रयुक्तं तु रथं समास्थितौ तदा ससीतौ रघुवंशवर्धनौ ।

प्रचोदयामास ततस्तुरंगमान्स सारथिर्येन पथा तपोवनम् ॥ २३ ॥

टीका—पार होकर वह महाबाहु श्रीमान् निष्कण्टक शुभ मार्ग में आया, जो भयदर्शियों के लिए भी अभय है (राजमार्ग है)॥१९॥ पुर के लोगों की भ्रान्ति के लिये राम ने सूत को यह वचन कहा. हे सारथे ! तू अकेला रथ पर चढ़कर उत्तराभिमुख जा (पुरवासियों को मेरे लौटने की भ्रान्ति हो, जिससे कि वह अयोध्या को लौट जाएं, इस हेतु से राम ने रथ को लौटाया, पर आप उसमें से उतर पड़े, कि व्रतभङ्ग न हो) ॥२०॥ थोड़ी दूर तेज़ जाकर फिर रथ को लौटा ला, जिससे कि पुर के लोग मुझे न जान सकें, सावधान होकर वैसा कर ॥ २१ ॥ राम की आज्ञा को सुनकर सारथि ने वैसा किया, और वापिस आकर राम को रथ निवेदन किया ॥ २२ ॥ तब वे दोनों रघुवंशवर्धन सीता समेत सज्जित रथ पर सवार हुए, तब सारथि ने घोड़ों को उधर हांका, जिस मार्ग से तपोवन आता है ॥ २३ ॥

सर्ग ४५ (व० ४७) पौर जनों का वापिस आना

मूल—प्रभातायां तु शर्वर्यां पौरास्ते राघवं विना । शोकोपहतनिश्चेष्टा बभूवुर्हतचेतसः ॥ १ ॥ शोकजाश्रुपरिद्यूना वीक्षमाणास्ततस्ततः । आलोकमपि रामस्य न पश्यन्ति स्म दुःखिताः ॥ २ ॥ ते विषादार्तवदना रहितास्तेन धीमता । कृपणाः करुणा वाचो वदन्ति स्म मनीषिणः ॥३॥ धिगस्तु खलु निद्रां तां ययापहृतचेतसः । नाद्य पश्यामहे रामं पृथूरस्कं महाभुजम् ॥ ४ ॥ यो नः सदा पालयति पिता पुत्रानिवौरसान् । कथं रघूणां स श्रेष्ठस्त्यक्त्वा नो विपिनं गतः॥५॥सा नूनं नगरी दीना दृष्ट्वास्मान्राघवं विना । भविष्यति निरानन्दा सस्त्रीबालवयोधिका ॥६ ॥ निर्या-

तास्तेन वीरेण सह नित्यं जितात्मनः । विहीनास्तेन च पुनः कथं द्रक्ष्याम तां पुरीम् ॥७॥ इतीव बहुधा वाचो बाहुमुद्यम्य ते जनाः विलपन्ति स्म दुःखार्ता विवत्सा इव धेनवः ॥ ८ ॥

टीका—रात के प्रभात होने पर राम के बिना उन पौर जनों का चित्त और चेष्टा शोक से नष्ट होगए ॥ १ ॥ शोक की आंसुओं मे खिन्न हुए,इधर उधर ढूंढते हुए, दुःखित हुए, राम का निशान भी नहीं देखते हैं । २ । उस बुद्धिमान् से बिछड़ने के हेतु उनके मुख मुरझा गए, और दीन करुण वाणियें बोलते भए । ३ । धिक्कार हो उस निद्रा को, जिसमे बेहोश हुए हम आज विशाल छातीवाले महाबाहु राम को नहीं देखते हैं । ४ । जो सदा हमारा इसतरह पालन करता है, जैसे पिता सगे पुत्रों का, कैसे वह रघु श्रेष्ठ हमें त्यागकर वन को गया है । ५ । वह दीन नगरी निःसन्देह हमें राम से बिना आया देखकर स्त्री बाल वृद्धों समेत शोक में डूब जाएगी । ६ । उस जितात्मा वीर के साथ निकलकर अब उससे बिना कैसे हम उस पुरी को देखेंगे । ७ । इस प्रकार वह जन भुजा उठाकर बछड़ों से हीन हुई धेनुओं की तरह दुःखार्त हुए अनेक प्रकार से विलाप करते भए । ८ ।

मूल—ततो मार्गानुसारेण गत्वा किंचित्ततः क्षणम् । मार्गनाशाद्विषादेन महता समभिप्लुताः ॥ ९ ॥ रथमार्गानुसारेणन्यवर्तन्त मनस्विनः । किमिदं किं करिष्यामो दैवेनोपहता इति ॥ १० ॥ तदा यथागतेनैव मार्गेण क्लान्तचेतसः । अयोध्यामगमन्सर्वे पुरीं व्यथितसज्जनाम् ॥११॥ चन्द्रहीनमिवाकाशं तोयहीनमिवार्णवम् । अपश्यन्निहतानन्दं नगरं ते विचेतसः ॥ १२ ॥ ते तानि वेश्मानि

महाधनानि दुःखेन दुःखोपहता विशन्तः । नैव प्रजग्मुः स्वजनं परं वा निरीक्षमाणाः प्रविनष्टहर्षाः ॥ १३ ॥

टीका—तब मार्ग के अनुसार कुछ काल चलकर फिर मार्ग के नाश से बड़े विषाद में डूब गए । ९ । रथ का मार्ग नाश होजाने से वह मनस्वी लौटे, यह क्या हुआ, अब क्या करें, दैव ने हमें मार डाला है ।१०। तब वह खिन्न चित्त हुए यथागत मार्ग से अयोध्यापुरी को वापिस आगए, जिसमें कि सब सज्जन पीड़ित होरहे हैं ।११। चन्द्र हीन आकाश की तरह, जल हीन समुद्र की तरह वह मूढ़ हुए आनन्द से शून्य नगर को देखते भए ।१२। दुःख के मारे हुए वह उन बड़े धन वाले घरों में दुःख से प्रवेश करते हुए देखते हुए अपने बेगानों को नहीं जानते भए, क्योंकि उन का हर्ष नष्ट हो चुका हुआ था ।१३।

सर्ग ४६ (व० ४९, ५०) राम की दूसरे दिन की यात्रा

मूल—रामोऽपि रात्रिशेषेण तेनैव महदन्तरम् । जगाम पुरुषव्याघ्रः पितुराज्ञामनुस्मरन् ॥१॥ तथैव गच्छतस्तस्य व्यपायाद्रजनी शिवा । उपास्य तु शिवां संध्यां विषयानत्यगाहत ॥२॥ ग्रामान्विकृष्टसीमान्तान्पुष्पितानि वनानि च । पश्यन्नतिययौ शीघ्रं शनैरिव हयोत्तमैः ॥३॥ ततो वेदश्रुतिं नाम शिववारिवहां नदीम् । उत्तीर्याभिमुखः प्रायादगस्त्याध्युषितां दिशम् ॥४॥ गत्वा तु सुचिरं कालं ततः शीतवहां नदीम् । गोमतीं गोयुतानूपामतरत्सागरंगमाम् ॥५॥

टीका—पुरुषश्रेष्ठ राम भी पिता की आज्ञा का स्मरण करता हुआ उसी रात्रि शेष से बहुत दूर निकल गया ।१। वैसे ही उसके चलतेहुए वह शुभ रात्रि बीत गई, तब कल्याणी सन्ध्या को उपास करके और देशों को लंघ गया ।२। खेतों से रहित हदोंवाले ग्रामों

को और फूले हुए वनों को देखते हुए उसे उत्तम घोड़ों से अति शीघ्र चलना भी मन्द २ प्रतीत हुआ । ३ । तब उत्तम जल के बहाने वाली वेदश्रुति नाम नदी को पार कर अगस्त्य से आश्रित (दक्षिण) दिशा की ओर गया । ४ । इसके पीछे बहुत देर तक चलकर शीत जलवाली समुद्र तक पहुंचने वाली गोमती नदी से पार हुआ, जिसके बेले गौओं से युक्त हैं । ५ ।

मूल—गोमतीं चाप्यतिक्रम्य राघवः शीघ्रगैर्हयैः । मयूरहंसाभिरुतां ततार स्यन्दिकां नदीम् ॥६॥ ततो धान्यधनोपेतान्दानशीलजनाञ्शिवान् । अकुतश्चिद्भयान्रम्यांश्चैत्ययूपसमावृतान् ॥ ७ ॥ उद्यानाम्रवणोपेतान्संपन्नसलीलाशयान् । तुष्टपुष्टजनाकीर्णान्गोकुलाकुलसेवितान् ॥८॥ रक्षणीयान्नरेन्द्राणां ब्रह्मघोषाभिनादितान् । रथेन पुरुषव्यघ्रः कोसलानत्यवर्तत ॥९॥ तत्र त्रिपथगां दिव्यां शीततोयामशैवलाम् । ददर्श राघवो गङ्गां रम्यां मुनिनिषेविताम्॥

टीका—शीघ्र जाने वाली गोमती को भी घोड़ों से पार करके मोर और हंसों से गूंजती हुई स्यान्दिका नदी से पार हुआ । ६ । तब धन धान्य से भरपूर, दान शील जनोंवाले, शुभ, सर्वतो निर्भय, चैत्य और यूपों से युक्त । ७ । बगीचों और आम्रवनों से युक्त, भरे हुए जलाशयों वाले, तुष्ट पुष्ट जनों से भरे हुए, गौओं के समूहों से सेवित । ८ । राजाओं की रक्षा के योग्य, वेद की ध्वनि से गूंजते हुए, कोसल देशों को वह पुरुषश्रेष्ठ रथ से पार हुआ । ९ । और वहां राघव ने शीत जलवाली, शैवाल से रहित ऋषियों से सेवित दिव्य जलवाली रमणीय गङ्गा को देखा ।१०।

मूल—कचित्तीररुहैर्वृक्षैर्मालाभिरिव शोभिताम् । कचित्फुल्लोत्पलच्छन्नां कचित्पद्मवनाकुलाम् ॥११॥ समुद्रमहिषीं गङ्गां सारसक्रौ-

अनादिताम् । आससाद महाबाहुः शृङ्गवेरपुरं प्रति ॥१२॥ तामूर्मिकलिलावर्तामन्ववेक्ष्य महारथः । सुमन्त्रमब्रवीत्सूतमिहैवाद्य वसामहे ॥१३॥ अविदूरादयं नद्या बहुपुष्पप्रवालवान् । सुमहानिंगुदीवृक्षो वसामोऽत्रैव सारथे ॥१४॥ रामोऽभियाय तं रम्यं वृक्षमिक्ष्वाकुनन्दनः । रथादवातरत्तस्मात्सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥१५॥ सुमन्त्रोऽप्यवतीर्याथ मोचयित्वा हयोत्तमान् । वृक्षमूलगतं राममुपतस्थे कृताञ्जलिः ॥१६॥

टीका—जो कहीं किनारे पर उत्पन्न हुए वृक्षों की मालाओं से शोभायमान है, कहीं फूले हुए कमलों से ढकी है, कहीं पद्मबनों से युक्त है । ११ । ऐसी समुद्र की पटरानी सारस और क्रौंचों की गूंज से गूंजती गङ्गा पर शृङ्गवेरपुर * के पास वह महाबाहु पहुंचा । १२ । उस लहरों और भँवरों वाली को देखकर, महारथ (राम) सुमन्त्र से बोला, आज यहीं रहते हैं । १३ । नदी के निकट ही बहुत फूल और कोंपलों वाला यह बहुत बड़ा इंगुदी का वृक्ष है, हे सारथे ! यहां ही रहते हैं । १४ । इक्ष्वाकुनन्दन राम उस सुहावने वृक्ष के पास जाकर पत्नी और लक्ष्मण समेत रथ से उतर पड़ा ।१५। सुमन्त्र भी उतर कर और उत्तम घोड़ों को खोल कर वृक्ष के मूल में बैठे राम के पास हाथ जोड़ उपस्थित हुआ ॥

सर्ग ४७ (व० ५१) दूसरी रात और गुह से मिलाप

मूल—तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा । निषादजात्यो बलवान्स्थपतिश्चेति विश्रुतः ॥ १ ॥ स श्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं रामं विषयमागतम् । वृद्धैः परिवृतोऽमात्यैर्ज्ञातिभिश्चाप्युपागतः ॥ २ ॥ ततो निषादाधिपतिं दृष्ट्वा दूरादुपस्थितम् । सह सौमित्रिणा रामः

---

* प्रयाग प्रान्त का सिंगरौर ही पुराना शृङ्गवेर है ।

समागच्छद्गुहेन सः ॥३॥ तमार्तः संपरिष्वज्य गुहो राघवमब्रवीत् । यथायोध्या तथेदं ते राम किं करवाणिते ॥ ४ ॥ ईदृशं हि महाबाहो कः प्राप्स्यत्यतिथिं प्रियं । ततो गुणवदन्नाद्यमुपादाय पृथग्विधम् ॥५॥ अर्घ्यं चोपानयच्छ्रीमान् वाक्यं चेदमुवाच ह॥६॥

टीका—वहां गुह नाम भील जातिय, भीलों का, बड़ा बलवान् राजा राम का प्राणतुल्य सखा था ॥ १ ॥ वह पुरुषश्रेष्ठ राम को अपने देश में आया सुन कर वृद्ध मन्त्रियों और ज्ञातियों के साथ आया ॥ २ ॥ तब दूर से ही भीलों के अधिपति को आया देख कर राम और लक्ष्मण गुह के साथ मिले ॥ ३ ॥ (राम के चीर देख कर) पीड़ित हुआ गुह राम को गले लगाकर बोला, जैसे अयोध्या है, वैसे यह पुर आप का है, कहिये आपके लिये क्या करूं ॥ ४ ॥ हे महाबाहो कौन ऐसे प्यारे अतिथि को प्राप्त होगा । तब गुण वाले नाना प्रकार के अन्नाद्य को लाकर ॥५॥ शीघ्र आर्घ्य लिवाकर यह वाक्य बोला

मूल—स्वागतं ते महाबाहो तवेयमखिला मही। वयं प्रेष्या भवान्भर्ता साधु राज्यं प्रशाधि नः ॥७॥भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चैतदुपस्थितम् । शयनानि च मुख्यानि वाजिनां खादनं च ते॥८॥गुहमेवं ब्रुवाणं तु राघवः प्रत्युवाच ह । अर्चिताश्चैव हृष्टाश्च भवता सर्वदा वयम् ॥ ९ ॥ पद्भ्यामभिगमाच्चैव स्नेहसंदर्शनेन च । भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां पीडयन्वाक्यमब्रवीत् ॥ १० ॥ दिष्ट्या त्वां गुह पश्यामि ह्यरोगं सह बान्धवैः । अपि ते कुशलं राष्ट्रे मित्रेषु च वनेषु च ॥११॥ यत्त्विदं भवता किंचित्प्रीत्या समुपकल्पितम् । सर्वं तदनुजानामि नहि वर्ते प्रतिग्रहे ॥ १२ ॥

टीका—हे महाबाहो आप का आना शुभ हो, यह सारी पृथिवी आप की है। हम नौकर हैं आप स्वामी हैं, भली भान्ति राज्य का शासन कीजिये ॥ ७ ॥ यह भक्ष्य भोज्य, पेय और लेह्य (खाने पीने चाटने की वस्तुएं) उपस्थित हैं, और यह उत्तम बिस्तरे और घोड़ों का खाना ॥ ८ ॥ ऐसा कहते हुए गुहको राघव ने उत्तर दिया, आप के पैदल आने से और (यह राज्य आपका ही है इत्यादि) स्नेह दिखलाने से हम पूजे ही गए हैं, और आप से सदा प्रसन्न हैं। फिर सुन्दर गोल भुजाओं से गले लगाता हुआ राम यह वाक्य बोला ॥ ९, १० ॥ भाग्य से हे गुह आपको बान्धवों सहित कुशल से देखता हूं, आपके राष्ट्र में, मित्रों में और वनों में कुशल है ? ॥ ११ ॥ जो कुछ आपने प्रीति से तय्यार किया है, वह सब कुछ मैं आदृत करता हूं पर बर्त नहीं सक्ता ॥ १२ ॥

मूल—कुशचीराजिनधरं फलमूलाशनं च माम्। विद्धि प्रणिहितं धर्मे तापसं वनगोचरम् ॥ १३ अश्वानां खादनेनाहमर्थी नान्येन केनाचित्। एतावतात्र भवता भविष्यामि सुपूजितः ॥ १४ ॥ +एते हि दयिता राज्ञः पितुर्दशरथस्य मे। एतैः सुविहितैरश्वैर्भविष्याम्यहमर्चितः ॥ १५॥ ततश्चीरोत्तरासङ्गः सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम्। जलमेवाददे भोज्यं लक्ष्मणेनाहृतं स्वयम् ॥ १६ ॥ तस्य भूमौ शयानस्य पादौ प्रक्षाल्य लक्ष्मणः। सभार्यस्य ततोऽभ्येत्य तस्थौ वृक्षमुपाश्रितः ॥ १७ ॥ गुहोऽपि सह सूतेन सौमित्रिमनुभाषयन्। अन्वजाग्रत्ततो राममप्रमत्तो धनुर्धरः ॥ १८ ॥

टीका—मुझे आप कुशा के चीर और मृगान पहिननेवाला, फलमूल खाने वाला, धर्म में तत्पर वनचारी जानें ॥ १३ ॥ हां

घोड़ों के दाने चारे की मुझे ज़रूरत है, और किसी वस्तु की नहीं, इतने ही से मैं आपसे यहां सुपूजित हूंगा ॥ १४ ॥ यह घोड़े मेरे पिता राजा दशरथ के प्यारे हैं, इनकी तृप्ति से मैं पूजित हूंगा ॥ १५ ॥ तब उसने ऊपर चीर लेकर पश्चिमासन्ध्या को उपास कर जल ही पान किया जो कि लक्ष्मण स्वयं ले आया था ॥ १६ तब साहित स्त्री के पृथिवी पर सोए हुए राम के पाओं छूकर समीप ही वृक्ष के नीचे लक्ष्मण खड़ा रहा ॥ १७ ॥ गुह भी सूतके साथ लक्ष्मण से बात चीत करता हुआ अप्रमत्त हो धनुष पकड़ कर जागता रहा ॥ १८ ॥

सर्ग ४८ (ब० ५२) सुमन्त्र और गुह को विदा करना

मूल—प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महायशाः । उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ १ ॥ भास्करोदयकालोऽसौ गता भगवती निशा । असौ सुकृष्णो विहगः कोकिलस्तात कूजति ॥ २ ॥ बर्हिणानां च निर्घोषः श्रूयते नदतां वने । तराम जाह्नवीं सौम्य शीघ्रगां सागरंगमाम् ॥ ३ ॥ स तु रामस्य वचनं निशम्य प्रतिगृह्य च । स्थपतिस्तूर्णमाहूय सचिवानिदमब्रवीत् ॥४॥ अस्य वाहनसंयुक्तां कर्णग्राहवतीं शुभाम् । सुप्रतारां दृढां तीर्थे शीघ्रं नावमुपाहर ॥ ५ ॥

टीका—रात के प्रभात होने पर विशाल छाती वाला बड़े यश वाला राम शुभ लक्षणों वाले लक्ष्मण से बोला ॥ १ ॥ सूर्योदय का समय है, रात बीत गई है, हे तात वह काला पंछी कोयल कूकू सुना रहा है ॥२॥ बोलते हुए मोरों की ध्वनि वन में सुनाई देती है, हे सौम्य समुद्र को जाने वाली तेज गंगा को पार करें ॥३॥ वह भीलपति राम के वचन को सुनकर और स्वीकार

करके मन्त्रियों को जल्दी बुला कर बोला ॥४॥ उत्तम चप्पुओं वाली योग्य मल्लाहों वाली सुख से पार उतारने वाली दृढ़ नौका को जल्दी घाट पर लाओ ॥५॥

मूल—ततः कलापान्संनह्य खड्गौ बद्ध्वा च धन्विनौ । जग्मतुर्येन तां गङ्गां सीतया सह राघवौ ॥ ६ ॥ राममेवं तु धर्मज्ञमुपागत्य विनीतवत् । किमहं करवाणीति सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ७ ॥ निवर्तस्वेत्युवाचैनमेतावद्धि कृतं मम । रथं विहाय पद्भ्यां तु गमिष्यामो महावनम् ॥८॥ इक्ष्वाकूणां त्वया तुल्यं सुहृदं नोपलक्षये । यथा दशरथो राजा मां न शोचेत्तथा कुरु ॥९॥ यद्यथा स महाराजो नालीकमधिगच्छति । न च ताम्यति शोकेन सुमन्त्र कुरु तत्तथा ॥१०॥ अदृष्टदुःखं राजानं वृद्धमार्यं जितेन्द्रियम् । ब्रूयास्त्वमभिवाद्यैव मम हेतोरिदं वचः ॥ ११ ॥

टीका—तब वह दोनों धनुर्धारी भाई भत्थे और तलवारें बांध कर सीता समेत गङ्गा की ओर गए॥६॥ऐसे (रथ छोड़कर पैदल चलने को तय्यार हुए) धर्मज्ञ राम के पास हो विनीत की तरह हाथ जोड़कर सूत बोला, मुझे क्या आज्ञा है॥७॥अब आप वापिस जावें, राम ने यह उसे कहा, मेरा काम पूरा किया गया है, अब हम रथ छोड़ कर पाओं से महावन में जाएंगे ॥८॥ आपके तुल्य मैं इक्ष्वाकुओं का कोई सुहृद् नहीं जानता हूं, सो जैसे राजा दशरथ मेरे लिये शोक न करें, वैसे करना ॥९॥ जैसे वह महाराज हे सुमन्त्र ! अप्रिय न देखे और न शोक से मुरझाए, वैसे करना ॥ १० ॥ जिसने कभी दुःख नहीं देखा है, उस जितेन्द्रिय वृद्ध आर्य राजा को मेरा अभिवादन करके मेरे लिये यह वचन कहो ॥ ११ ॥

मूल—न चाहमनु शोचामि लक्ष्मणो न च शोचति । अयोध्या-

याऽच्युताश्चेति वने वत्स्यामहेति वा ॥ १२ ॥ चतुर्दशसु वर्षेषु निवृत्तेषु पुनः पुनः । लक्ष्मणं मां च सीतां च द्रक्ष्यसे शीघ्रमागतान् ॥१३॥ एवमुक्त्वा तु राजानं मातरं च सुमन्त्र मे। अन्याश्च देवीः सहिताः कैकेयीं च पुनः पुनः ॥ १४ ॥ आरोग्यं ब्रूहि कौसल्यामथ पादाभिवन्दनम् । सीताया मम चार्यस्य वचनाल्लक्ष्मणस्य च ॥ १५ ॥ ब्रूयाश्चापि महाराजं भरतं क्षिप्रमानय । आगतश्चापि भरतः स्थाप्यो नृपमते पदे ॥ १६ ॥

टीका—इस बात का न मुझे शोक है, न लक्ष्मण को शोक है, कि हम अयोध्या से अलग हुए हैं, वा बन में रहेंगे ॥ १२ ॥ चौदह बरसों के बीत जाने पर शीघ्र आए हुए लक्ष्मण को, मुझको और सीता को आप फिर २ देखेंगे ॥ १३ ॥ राजा को ऐसा कह करके मेरी माता कौसल्या को और दूसरी देवियों को और कैकेयी को मेरा सीता का और लक्ष्मण का बार २ आरोग्य कहो, और हमारा पादाभिवन्दन कर ॥१४,१५॥ और महाराज को कहना कि भरत को जल्दी मंगवालें, और भरत को आते ही राजा से संमत पद पर स्थापन करना ॥ १६ ॥

मूल—भरतं च परिष्वज्य यौवराज्येऽभिषिच्य च । अस्मत्संतापजं दुःखं न त्वामाभिभविष्यति ॥ १७ ॥ भरतश्चापि वक्तव्यो यथा राजनि वर्तसे । तथा मातृषु वर्तेथाः सर्वास्वेवाविशेषतः ॥१८॥ निवर्त्यमानो रामेण सुमन्त्रः प्रतिबोधितः । तत्सर्वं वचनं श्रुत्वा स्नेहात्काकुत्स्थमब्रवीत् ॥ १९ ॥

टीका—भरत को गले लगाकर और यौवराज्य में तिलक देकर हमारे सन्ताप से उत्पन्न हुआ दुःख आपको नहीं दबाएगा ॥१७
भरत को भी कहना, जैसे तू राजा में बर्तता है, वैसे मारी ही

माताओं में अविशेष से वर्तना ॥१८॥ राम ने जब सुमन्त्र को लौटाते हुए जब ऐसे सिखाया, तो वह सारे वचन को सुनकर स्नेह से राम को यह बोला ॥ १९ ॥

मूल—कथं हि त्वद्विहीनोऽहं प्रतियास्यामि तां पुरीम् । तव तात वियोगेन पुत्रशोकातुरामिव ॥२०॥ दैन्यं हि नगरी गच्छेद्दृष्ट्वा शून्यमिमं रथम् । सूतावशेषं स्वं सैन्यं हतवीरमिवाहवे ॥ २१ ॥ दृष्टं तद्वै त्वया राम यादृशं त्वत्प्रवासने । प्रजानां संकुलं वृत्तं त्वच्छोकक्लान्तचेतसाम् ॥ २२ ॥ आर्तनादो हि यः पौरैरुन्मुक्तस्त्वत्प्रवासने । सरथं मां निशाम्यैव कुर्युः शतगुणं ततः ॥२३॥

टीका—कैसे आप के बिना उस पुरी को जाऊं, हे तात जो आप के वियोग से पुत्रशोक से पीड़ित की तरह है ॥२०॥ इस रथ को शून्य देखकर सारी नगरी दीन होजाएगी, जैसे शूर वीर के मरने से बाकी रहे सूत वाले रथ को देखकर अपनी सेना ॥२१॥ हे राम आपने देख लिया है, आपके प्रवास में आपके शोक से मुरझाए चित्तवाली प्रजाओं को जैसी घबराहट हुई थी ॥२२॥ जो आर्तनाद पुर के लोगों ने आपके प्रवासन के समय किया था, अब मुझे रथ सहित देखकर उससे सौगुणा करेंगे ॥२३॥

मूल—+अहं किं चापि वक्ष्यामि देवीं तव सुतो मया । नीतोऽसौ मातुलकुलं संतापं मा कृथा इति ॥ २४ ॥+असत्यमपि नैवाहं ब्रूयां वचनमीदृशम् । कथमप्रियमेवाहं ब्रूयां सत्यमिदं वचः ॥२५॥ +तव शक्ष्याम्यहं गन्तुमयोध्यां त्वदृतेऽनघ । वनवासानुयानाय मामनुज्ञातुमर्हसि ॥२६॥+ नहीदिच्छामि तेऽरण्ये भवितुं प्रत्यनन्तरः । प्रीत्याभिहितमिच्छामि भव मे प्रत्यनन्तरः ॥ २७ ॥

टीका—दूसरा यह कि मैं देवी (कौसल्या) को जाकर क्या कहूंगा, कि तेरे पुत्र को मामा के घर पहुंचा आया हूं, तू संताप न कर ॥२४॥ यह असत्य है मैं ऐसा वचन नहीं कह सकता, (और वन को पहुंचा आया हूं) यह सत्य भी अप्रिय है, यह भी कैसे कहूंगा ॥२५॥ इस लिये हे निष्पाप तेरे विना मैं अयोध्या को नहीं जासक्ता, सो आप वनवास में साथ जाने की मुझे आज्ञा देने योग्य हैं ॥२६॥ प्रसन्न हो, मैं वन में तेरा समीपी होना चाहता हूं, और "हो मेरा समीपी" यह आपसे प्रीति से कहा हुआ वाक्य सुनना चाहता हूं ॥२७॥

मूल—वनवासे क्षयं प्राप्ते ममैष हि मनोरथः । यदनेन रथेनैव त्वां वहेयं पुरीं पुनः ॥२८॥ एवं बहुविधं दीनं याचमानं पुनः पुनः । रामो भृत्यानुकम्पी तु सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥२९॥ जानामि परमं भक्तिमहं ते भर्तृवत्सल। शृणु चापि यदर्थं त्वां प्रेषयामि पुरीमितः ॥३०॥ नगरीं त्वां गतं दृष्ट्वा जननी मे यवीयसी । कैकेयी प्रत्ययं गच्छेदिति रामो वनं गतः ॥३१॥ विपरीते तुष्टिहीना वनवासं गते मयि । राजानं नातिशङ्केत मिथ्यावादीति धार्मिकम् ॥३२॥ एष मे प्रथमः कल्पो यदम्बा मे यवीयसी। भरतारक्षितं स्फीतं पुत्रराज्यमवाप्स्यते ॥३३॥ मम प्रियार्थं राज्ञश्च सुमन्त्र त्वं पुरीं व्रज । संदिष्टश्चापि यानर्थांस्तांस्तान्ब्रूयास्तथा तथा ॥३४॥ इत्युक्त्वा वचनं सूतं सान्त्वयित्वा पुनः पुनः । गुहं वचनमक्लीबो रामो हेतुमदब्रवीत् ॥३५॥

टीका—मेरा यही मनोरथ है, कि बनवास के क्षीण होने पर इसी रथ से आप को फिर पुरी में ले चलूं ॥२८॥ इस तरह अनेक प्रकार से बार २ दीन याचना करते हुए सुमन्त्र को अपने

भृत्यों पर दयालु रामने उत्तर दिया ॥२९॥ हे भर्तृवत्सल मैं आपकी परम भक्ति को जानता हूं, सुनिये आप को जिसलिये यहां से पुरी की ओर भेजता हूं ॥३०॥ आपको नगरी में गया देख कर मेरी छोटी माता कैकेयी को विश्वास होगा, कि राम वन को चला गया है ॥३१॥ ऐसा न होने से अप्रसन्न हुई देवी मेरे वनवास को चले जाने पर भी धार्मिक राजा पर मिथ्यावादी होने की शङ्का करेगी ॥३२॥ यह मेरा मुख्य प्रयोजन है, कि मेरी छोटी माता भरत से रक्षित समृद्धिमत पुत्रराज्य को प्राप्त हो, ॥३३॥ मेरे प्रिय के अर्थ और राजा के प्रिय के अर्थ हे सुमन्त्र तू पुरी को जा और जो २ बातें आप को सन्देश दी हैं, उन को वैसे २ कहो ॥३४॥ सूत को यह कह कर और तसल्ली देकर अकायर राम गुह से युक्ति युक्त वचन बोला ३५

मूल–नेदानीं गुह योग्योऽयं वासो मे सजने वने। अवश्यमाश्रमे वासः कर्तव्यस्तद्गतो विधिः ॥३६॥सोऽहं गृहीत्वा नियमं तपस्विजनभूषणम्। जटाः कृत्वा गमिष्यामिन्यग्रोधक्षीरमानय ॥३७॥ तत्क्षीरं राजपुत्राय गुहः क्षिप्रमुपाहरत्। लक्ष्मणस्यात्मनश्चैव रामस्तेनाकरोज्जटाः ॥३८॥ ततो वैखानसं मार्गमास्थितः सहलक्ष्मणः। व्रतमादिष्टवान्रामः सहायं गुहमब्रवीत् ॥३९॥ अप्रमत्तो बले कोशे दुर्गे जनपदे तथा। भवेथा गुह राज्यं हि दुरारक्षतमं मतम्

टीका–हे गुह अब मुझे सजन वन में रहना योग्य नहीं है, अवश्य आश्रम में रहना है, इस लिये वैसी विधि करनी चाहिये ॥३६॥ सो मैं (भूशयनादि) नियम ग्रहण करके तपस्विजनों का भूषण जटाएं बनाकर जाऊंगा बड़ का दूध ले आ ॥३७॥ वह दूध गुह ने राजपुत्र को जल्दी भेट कर दिया उस से राम ने लक्ष्मण

की और अपनी जटाएं बनाई ॥३८॥ और लक्ष्मण समेत वानप्रस्थ धर्म का आश्रय करके उसके नियमों को अङ्गीकार किया और अपने सहायक गुह से बोला ॥३९॥ हे गुह सेना में, कोश में किले में और देश में सदा सावधान रहो, राज्य की रक्षा बड़ा कठिन काम है ॥४०॥

मूल—ततस्तं समनुज्ञाप्य गुहमिक्ष्वाकुनन्दनः । जगाम तूर्णमव्यग्रः सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥४१॥ स तु दृष्ट्वा नदीतीरे नावमिक्ष्वाकुनन्दनः । तितीर्षुः शीघ्रगां गङ्गामिदं वचनमब्रवीत् ॥४२॥ आरोह त्वं नरव्याघ्र स्थितां नावमिमां शनैः । सीतां चारोपयान्वक्षं परिगृह्य मनस्विनीम् ॥४३॥ स भ्रातुः शासनं श्रुत्वा सर्वमप्रातिकूलयन् । आरोप्य मैथिलीं पूर्वमारुरोहात्मवांस्ततः ॥४४॥ अथारुरोह तेजस्वी स्वयं लक्ष्मणपूर्वजः । ब्रह्मवत्क्षत्रवच्चैव जजाप हितमात्मनः ॥४५॥

टीका—तब गुह को अनुज्ञा देकर वह इक्ष्वाकुनन्दन पत्नी और लक्ष्मण समेत शान्त मन से गया ॥४१॥ नदी के तीर पर नौका को देख कर वह इक्ष्वाकुनन्दन तेज़ चलने वाली गंगा से पार होना चाहता हुआ लक्ष्मण से यह बोला ॥४२॥ हे नरश्रेष्ठ इस नौका को पकड़ कर धीरे से मनस्विनी सीता को उस पर चढ़ा और फिर आप चढ़ ॥४३॥ वह भाई की आज्ञा सुन कर उसके अनुसार चलता हुआ पहले सीता को चढ़ा कर फिर आप चढ़ा ॥४४॥ तब लक्ष्मण का बड़ा भाई तेजस्वी स्वयं आरूढ़ हुआ और ब्राह्मण और क्षत्रिय के योग्य अपने हित (मन्त्र) जपता भया॥

मूल—अनुज्ञाय सुमन्त्रं च सबलं चैव तं गुहम् । आस्थाय नावं रामस्तु चोदयामास नाविकान् ॥४६॥ तीरं तु समनुज्ञाप्य नावं

हित्वा नरर्षभः। प्रातिष्ठत सह भ्रात्रा वैदेह्या च परंतपः ॥४७॥ अथाब्रवीन्महाबाहुः सुमित्रानन्दवर्धनम्। भव संरक्षणार्थाय सजने विजनेऽपि वा ॥४८॥ अवश्यं रक्षणं कार्यं मद्विधैर्विजने वने। अग्रतो गच्छ सौमित्रे सीता त्वामनुगच्छतु ॥४९॥

टीका—सुमन्त्र को और सेना समेत गुह को अनुज्ञा देकर के नौका पर सवार हो राम ने मल्लाहों को प्रेरा ॥४६॥ किनारे पर पहुंच कर नौका को छोड़कर शत्रुओं के तपाने वाला वह नरश्रेष्ठ भाई के और सीता के साथ रवाना हुआ ॥४७॥ तब वह महा-बाहु सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले से बोला, सजन में वा निर्जन में रक्षा के लिये सावधान रहो ॥४८॥ इस अहद्द निर्जन वन में अवश्य रक्षा करनी योग्य है, हे लक्ष्मण तू आगे २ चल और सीता तेरे पीछे चले ॥४९॥

मूल—पृष्ठतोऽनु गमिष्यामि सीतां त्वां चानु पालयन्। अन्योन्यस्य हि नो रक्षा कर्तव्या पुरुषर्षभ ॥५०॥ नहि तावदतिक्रान्ताऽसुकरा काचन क्रिया। अद्य दुःखं तु वैदेही वनवासस्य वेत्स्यति ॥५१॥ प्रणष्टजनसंबाधं क्षेत्रारामविवर्जितम्। विषमं च प्रपातं च वनमद्य प्रवेक्ष्यति ॥५२॥ श्रुत्वा रामस्य वचनं प्रतस्थे लक्ष्मणोऽग्रतः। अनन्तरं च सीताया राघवो रघुनन्दनः ॥५३॥

टीका—और पीछे २ मैं चलूंगा सीता की और तेरी रक्षा करता हुआ, यहां हमें आपही हे नर श्रेष्ठ! एक दूसरे की रक्षा करनी होगी ॥५०॥ अभी तक कोई कठिन काम नहीं आया है, अब वैदेही वनवास के दुःख को देखेगी ॥५१॥ आज सीता उस वन में प्रवेश करेगी, जहां लोगों की भीड नहीं, खेत और बगीचे नहीं,, जो ऊंचा नीचा है और फिसलाने वाला है॥५२॥

राम के वचन को सुनकर लक्ष्मण आगे चला, पीछे सीता और उस के पीछे राम ॥ ५३ ॥

मूल–गतं तु गङ्गापरपारमाशु रामं सुमन्त्रः सततं निरीक्ष्य । अध्वप्रकर्षाद्विनिवृत्तदृष्टिर्मुमोच बाष्पं व्यथितस्तपस्वी ॥५४॥ स लोकपालप्रतिमप्रभावस्तीर्त्वा महात्मा वरदो महानदीम् । ततः समृद्धाञ्छुभसस्यमालिनः क्रमेण वत्सान्मुदितानुपागमत् ॥५५॥ तौ तत्र हत्वा चतुरो महामृगान्वराहमृश्यं पृषतं महारुरुम् । आदाय मध्ये त्वरितं बुभुक्षितौ वासाय काले ययतुर्वनस्पतिम् ॥ ५६ ॥

टीका–राम को जल्दी गङ्गा के दूसरे पार गया हुआ देखकर सुमन्त्र ने अपनी दृष्टि मोड़ी, क्योंकि वह दूर मार्ग निकल गये थे और तब दुःखित हुए उस तपस्वी की छमाछम आंसुएं बरसीं ॥५४॥ वह लोकपालों के तुल्य प्रताप वाला वर देनेवाला महात्मा गङ्गा नदी के पार होकर तब क्रम से समृद्ध शुभ खेतों की मालाओं वाले मुदित वत्स देश में पहुंचे ॥५५॥ वहां वह वराह ऋष्य, पृषत, महारुरु इन चार मृगों को मार मेध्य (मांस) को जल्दी लेकर सायंकाल के वास के लिये एक वनस्पति के नीचे गये * ॥५६॥

सर्ग ४९ (व०५३,५४) भरद्वाज मुनि के आश्रम में जाना

मूल–स तं वृक्षंसमासाद्य सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम् । रामो रमयतां

* राजऋषियों का शिकार खेलना सारे इतिहास ग्रन्थों में पाया जाता है, सीता का छला जाना भी शिकार के हेतु ही हुआ । इस श्लोक को प्रक्षिप्त कहने वाले के पक्ष में अगले सर्ग में श्लोक १ में 'कहा उस वृक्ष के नीचे' और श्लोक ४ में कहा 'तस्मिन् महा वृक्षे=उस महावृक्ष के नीचे यह कथन असंगत होजाता है जबकि पहिले वृक्ष का वर्णन इस श्लोक के सिवाय है ही नहीं ॥

श्रेष्ठ इति होवाच लक्ष्मणम् ॥१॥ अद्येयं प्रथमा रात्रिर्याता जनपदाद्बहिः । या सुमन्त्रेण रहिता तां नोत्कण्ठितुमर्हसि ॥२॥ जागर्तव्यमतन्द्रिभ्यामद्यप्रभृति रात्रिषु । योगक्षेमौ हि सीताया वर्तते लक्ष्मणावयोः ॥३॥ ते तु तस्मिन्महावृक्षे उषित्वा रजनीं शुभाम् । विमलेभ्युदिते सूर्ये तस्माद्देशात्प्रतस्थिरे ॥४॥ यत्र भागीरथीं गङ्गां यमुनाभिप्रवर्तते । जग्मुस्तं देशमुद्दिश्य विगाह्य सुमहद्वनम् ॥ ते भूमिभागान्विविधान्देशांश्चापि मनोहरान् । अदृष्टपूर्वान्पश्यन्तस्तत्र तत्र यशस्विनः ॥ ६ ॥

टीका—उस वृक्ष के नीचे आ पश्चिम संध्या को उपासकर खुश रखने वालों में श्रेष्ठ राम लक्ष्मण से यह बोला ॥१॥ आज यह जनपद से बाहिर हमें पहिली रात आई है, जो सुमन्त्र से अलग होकर आई है, आपको अब उत्कण्ठा नहीं करनी चाहिये ॥२॥ आज से लेकर हमें रातें निरालस होकर जागना चाहिये, हे लक्ष्मण सीता का योग क्षेम हम दोनों के अधीन है ॥ ३ ॥ तब वह उस महावृक्ष के नीचे वह शुभ रात वास करके निर्मल सूर्य के उदय होने पर उस देश से रवाना हुए ॥४॥ जहां भागीरथी गङ्गा यमुना के साथ मिलती है, उस देश को लक्ष्य में रखकर बड़े वन को अवगाहन करके अनेक भूमि भागों को और मनोरम देश जो पहले नहीं देखे हुए थे उनको वहां देखते हुए वह यशस्वी गये ॥ ५, ६ ॥

मूल—यथा क्षेमेण संगच्छन् पश्यंश्चविविधान्द्रुमान् । निवृत्तमात्रे दिवसे रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ ७ ॥ प्रयागमभितः पश्य सौमित्रे धूममुत्तमम् । अग्नेर्भगवतः केतुं मन्ये सन्निहितो मुनिः ॥ ८ ॥ नूनं प्राप्ताः स्म संभेदं गङ्गायमुनयोर्वयम् । तथाहि श्रूयते शब्दो

वारिणोर्वारिघर्षजः ॥ ९ ॥ धन्विनौ तौ सुखं गत्वा लम्बमाने दिवाकरे । गङ्गायमुनयोः संधौ प्रापतुर्निलयंमुनेः ॥ १० ॥ स प्रविश्य महात्मानमृषिं शिष्यगणैर्वृतम् । संशितव्रतमेकाग्रं तपसा लब्धचक्षुषम् ॥ ११ ॥ हुताग्निहोत्रं दृष्ट्वैव महाभागः कृताञ्जलिः । रामः सौमित्रिणा सार्धं सीतयाचाभ्यवादयत् ॥ १२ ॥

टीका—चैन से जाता हुआ और विविधि वृक्षों को देखता हुआ राम दिन के अस्त होते ही लक्ष्मण से बोला ॥७॥ प्रयाग की तरफ हे लक्ष्मण ऊंचे चढ़े हुए धूम को देख जो कि भगवान् अग्नि का झण्डा है इस से समझता हूं कि मुनि निकट है ॥ ८ ॥ निःसन्देह हम गङ्गा और यमुना के संगम को प्राप्त हुए हैं, क्योंकि जलका जल से टकराया हुआ शब्द सुनाई देता है ॥ ९ ॥ वह दोनों धनुर्धारी आराम से चलते हुए सूर्यास्त के समय गङ्गा यमुना के सङ्गम पर मुनि के आश्रम में पहुंचे ॥ १० ॥ वहां प्रवेश करके शिष्यगणों से घिरे हुए, तीक्ष्ण व्रतोंवाले, एकाग्र, तप से दिव्य दृष्टि पाये हुए, अग्निहोत्र कर चुके हुए महात्मा ऋषि को देखते ही महाभाग राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ हाथ जोड़कर अभिवादन किया ॥ ११, १२ ॥

मूल—न्यवेदयत चात्मानं तस्मै लक्ष्मणपूर्वजः । पुत्रौ दशरथस्यावां भगवन्रामलक्ष्मणौ ॥ १३ ॥ भार्या ममेयं कल्याणी वैदेही जनकात्मजा । मां चानुयाता विजनं तपोवनमनिन्दिता ॥१४॥ पित्रा प्रव्राज्यमानं मां सौमित्ररनुजः प्रियः । अयमन्वगमद्भ्राता वनमेव धृतव्रतः ॥ १५ ॥ पित्रा नियुक्ता भगवन्प्रवेक्ष्यामस्तपोवनम् । धर्ममेवाचरिष्यामस्तत्र मूलफलाशनाः ॥ १६ ॥

टीका—और लक्ष्मण के बड़े भाई ने अपना आप उस से निवेदन किया, कि हे भगवन् हम दोनों राजा दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण हैं ॥१३॥ और यह कल्याणी सीता जनक की कन्या मेरी पत्नी है, यह अनिन्दिता मेरे पीछे इस निर्जन तपोवन में आई है ॥१४॥ पिता से भेजे हुए मेरे साथ यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण व्रतों को धार कर वन में आया है ॥१५॥ पिता से आज्ञा दिये हुए हम हे भगवन् तपोवन में प्रवेश करेंगे और वहां फल मूल खाते हुए धर्म का ही आचरण करेंगे ॥१६॥

मूल—तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः। नानाविधानन्नरसान् वन्यमूलफलाश्रयान् ॥१७॥ तेभ्यो ददौ तप्ततपा वासं चैवाभ्यकल्पयत्। राममागतमभ्यर्च्य स्वागतेनागतं मुनिः ॥१८॥ प्रतिगृह्य तु तामर्चामुपविष्टं स राघवम्। भरद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यं धर्मयुक्तमिदं तदा ॥१९॥ चिरस्य खलु काकुत्स्थं पश्याम्यहमुपागतम्। श्रुतं तव मया चैव विवासनमकारणम् ॥२०॥ अवकाशो विविक्तोऽयं महानद्योः समागमे। पुण्यश्च रमणीयश्च वसत्विह भवान्सुखम् ॥२१॥

टीका—उस बुद्धिमान् राजपुत्र के इस वचन को सुनकर तपस्वी मुनि ने आए राम को स्वागत से पूज कर जंगली मूल फलों के अश्रित नानाविधि अन्नरस उनको दिये, और वासस्थान दिया ॥ १७,१८ ॥ उस पूजा को स्वीकार करके बैठे हुए राम को भरद्वाज यह धर्मयुक्त वाक्य बोला ॥१९॥ हे राम चिर से तुझे आया देखता हूं, मैंने तेरा बिना कारण निकालाजाना सुना है ॥ २० ॥ महानदियों के सङ्गम पर यह स्थान एकान्त पवित्र और रमणीय है, यहां आप सुख से रहिये ॥ २१ ॥

मूल—एवमुक्तस्तु वचनं भरद्वाजेन राघवः। प्रत्युवाचशुभं वाक्यं रामः सर्वहिते रतः ॥२२॥ भगवन्नित आसन्नः पौरजानपदोजनः सुदर्शमिह मां प्रेक्ष्य मन्येऽहमिममाश्रमम् ॥२३॥ आगमिष्याति वैदेहीं मां चापि प्रेक्षको जनः। अनेन कारणेनाहमिहवासं न रोचये ॥२४॥ एकान्ते पश्य भगवन्नाश्रमस्थानमुत्तमम्। रमते यत्र वैदेही सुखार्हा जनकात्मजा ॥२५॥ एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरद्वाजो महामुनेः। राघवस्य तु तद्वाक्यमर्थग्राहकमब्रवीत् ॥२६॥

टीका—जब भरद्वाज ने राम को यह कहा, तो सब के हित में प्रीति करने वाला राम यह शुभ वाक्य कहता भया ॥ २२ ॥ हे भगवन्! यहां पुर और देश के लोग निकट हैं, मैं यह समझता हूं, कि इस आश्रम में मेरा देखना आसान जान ॥२४॥ मुझे और जानकी को देखने के लिये दर्शक लोग आवेंगे, इस कारण से मैं यहां रहना नहीं पसन्द करता हूं ॥२४॥ हे भगवन्! एकान्त में कोई उत्तम आश्रम स्थान देखिये, जहां सुखों के योग्य जनक पुत्री सीता रमण करे ॥२५॥ महामुनि भरद्वाज इस शुभ वाक्य को सुन कर राम के अर्थ का साधक वाक्य बोला ॥२६॥

मूल—दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यास्मिन्निवत्स्यासि। महर्षिसेवितःपुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः ॥२७॥ गोलांगूलानुचरितो वानरर्क्षनिषेवितः। चित्रकूट इतिख्यातो गन्धमादनसंनिभः ॥२८॥ यावता चित्रकूट स्य नरः श्रृंगाण्यवेक्षते। कल्याणानि समाधत्ते न मोहे कुरुते मनः ॥२९॥ प्रविविक्तमहं मन्ये तं वासं भवतः सुखम्। इह वा वनवा-सायं वस राम मया सह॥३०॥ सीतातृतीयः काकुत्स्थः परिश्रान्तः सुखोचितः। भरद्वाजाश्रमे रम्ये तां रात्रिमवसत्सुखम् ॥३१॥

टीका—दस कोस यहां से हे तात महर्षियों से सेवित, शुभदर्शन वाला वह पवित्र पर्वत है, जहां तू रहेगा ॥२७॥ लंगूर, वानर और रीछों से सेवित चित्रकूट नाम गन्धमादन पर्वत के तुल्य है ॥२८॥ ज्योंही कि चित्रकूट की चोटियों को मनुष्य देखता है। तो उस का मन कल्याणों में टिकता है, अज्ञान में नहीं जाता है ॥२९॥ वह ठीक एकान्त है, वहां आपका वास मैं सुखदायी समझता हूं अथवा यहां हे राम मेरे साथ वनवास के लिए बस ॥ ३० ॥ सुख के योग्य थका हुआ राम सीता लक्ष्मण समेत उस रम्य भरद्वाजश्रम में वह रात सुख से रहा ॥३१॥

सर्ग ५० व० ५५) चित्रकूट की यात्रा

मूल—उषित्वा रजनीं तत्र राजपुत्रावरिन्दमौ। महर्षिमभिवाद्याथ जग्मतुस्तं गिरिं प्रति॥१॥ तेषां स्वस्त्ययनं चैव महर्षिः स चकारह। प्रस्थितान्प्रेक्ष्य तांश्चैव पिता पुत्रानिवौरसान् ॥२॥ ततः प्रचक्रमे वक्तुं वचनं स महामुनिः। भरद्वाजो महातेजा रामं सत्यपराक्रमम् ॥३॥ गङ्गायमुनयोः सन्धिमादाय मनुजर्षभौ। कालिन्दी मनुगच्छेतां नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम् ॥४॥

टीका—शत्रुओं को दबाने वाले वह दोनों राजपुत्र वहां रात रहकर महर्षि को अभिवादन करके उस पर्वत को गए ॥१॥ उन को रवाना हुआ देख कर महर्षि ने उन का स्वस्त्ययन किया, जैसे पिता सगे पुत्रों का करता है ॥२॥ तब वह महातेजस्वी भरद्वाज मुनि सच्चे पराक्रम वाले राम को वाक्य कहने लगा ॥३॥ गङ्गा यमुना के सङ्गम पर पहुंच कर हे मनुष्य श्रेष्ठो ! पश्चिममुखी (गङ्गा) के आश्रित यमुना नदी के साथ २ जाओ ॥४॥

मूल—अथासाद्य तु कालिन्दीं शीघ्रस्रोतसमापगाम्। तस्यास्तीर्थं प्रचरितं प्रकामं प्रेक्ष्य राघवौ ॥५॥ तत्र यूयं प्लवं कृत्वा तरतांशुमतीं नदीम्। ततो न्यग्रोधमासाद्य महान्तं हरितच्छदम् ॥६॥ परीतं बहुभि र्वृक्षैः श्यामं सिद्धोपसेवितम्। क्रोशमात्रं ततो गत्वा नीलं प्रेक्ष्य च काननम् ॥७॥ स पन्थाश्चित्रकूटस्य गतः सुबहुशो मया। रम्यो मार्दवयुक्तश्च दावैश्चैव विवर्जितः ॥८॥

टीका—तब तेज़प्रवाह वाली यमुना नदी का एक पुराना घाट जहां लोगों का प्रायः आना जाना है, उस को देख कर हे राघवो ॥५॥ वहां तुला बनाकर यमुना से पार उतर हरे पत्ते वाले श्यामवट (श्यामनामी बड़) को जाओ, जो चारों ओर और बहुत से वृक्षों से घिरा हुआ है और जिस के नीचे सिद्धजन रहते हैं, फिर आगे कोस भर जाकर नील वन को देखोगे ६, ७ वह चित्रकूट का मार्ग है, मैं बहुत बार उस मे गया हूं, सुहावना कोमल, और बन की अग्नि से रहित है ॥८॥

मूल—इति पन्थानमादिश्य महर्षिः संन्यवर्तत। अभिवाद्य तथेत्युक्त्वा रामेण विनिवर्तितः ॥९॥ अथासाद्य तु कालिन्दीं शीघ्रस्रोतस्विनीं नदीम्। चिन्तामापेदिरे सर्वे नदीजलतितीर्षवः ॥१० तौ काष्ठसंघाटमथो चक्रतुः सुमहाप्लवम्। शुष्कैर्वंशैः समास्तीर्णं मुशीरैश्च समावृतम् ॥११॥ ततो वैतसशाखाश्च जम्बुशाखाश्च वीर्यवान्। चकार लक्ष्मणश्छित्वा सीतायाः सुखमासनम् ॥१२॥

टीका—इस प्रकार मार्ग बतलाकर महर्षि लौट आया जबकि तथास्तु कह कर अभिवादन करके राम ने लौटाया ॥९॥ तब तेज चलने वाली यमुना नदी पर पहुंच नदी के जल से पार होने की इच्छा से वह चिन्ता में पड गए ॥१०॥ तब उन्हों ने

बहुत सी लकाडियों को मेल कर एक बडा तुला बनाया सूखे बांसों का उस का तला बनाया गया और चारों ओर नड़ लगाए गए ॥११॥ तब वीर लक्ष्मण ने बैत की और जम्बू की डालियां काट कर सीता के लिए सुखदायी आसन बनाया ॥१२॥

मूल—तत्र श्रियामिवाचिन्त्यां रामो दाशरथिः प्रियाम् । ईषत्सलज्जमानां तामध्यारोपयत प्लवम् ॥१३॥ पार्श्वे तत्र च वैदेह्या वसने भूषणानि च । प्लवे कठिनिकाजं च रामश्चक्रे समाहितः॥१४॥ आरोप्य सीतां प्रथमं संघाटं परिगृह्य तौ । प्रतेरतुर्यत्तौ प्रीतौ वीरौ दशरथात्मजौ ॥१५॥ते तीर्णाःप्लवमुत्सृज्य प्रस्थाय यमुनावनात् । श्यामं न्यग्रोधमासेदुःशीतलं हरितच्छदम् ॥१६॥ क्रोशमात्रं ततो गत्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । बहून्मेध्यान्मृगान्हत्वा चेरतुर्यमुनावने ॥१७॥ विहृत्य ते बर्हिणपूगनादिते शुभे वने वारणवानरायुते । समं नदीवप्रमुपेत्य सत्वरं निवासमाजग्मुरदीनदर्शनाः ॥१८॥

टीका—वहां श्री की तरह अचिन्तनीय कुछ २ लजाती हुई उस प्रिया को दाशरथि राम ने तुला पर चढ़ाया ॥१३॥ और पास ही वहां तुला पर सीता के वस्त्र और भूषण और अपने खनित्र और पिटारी सहित शस्त्रों को रक्खा ॥१४॥ सीता को पहले चढ़ा कर पोरुषवान् वह दोनों दशरथसुत वीर प्रसन्न हूए तुला को लेकर उस से पार उतर गए ॥१५॥ वह पार जा तुला को छोड़ यमुना के बन में से चलते हुए हरे पत्तों वाले शीतल श्यामवट के पास पहुंचे ॥१६॥ उस से आगे कोस भर जाकर दोनों भाई राम लक्ष्मण यमुना के वन में बहुत से मेध्य मृगों को मार कर विचरते भए ॥ १७ ॥ मोरों के समूहों से गूंजते हुए बानर और हाथियों

से युक्त उस शुभ वन में सैर करके दीन न दीखने वाले वह सब नदी के सुन्दर किनारे पर रात्रिवास करते भये ॥

सर्ग ५१ (व० ५६) चित्रकूट में वास

मूल—तत उत्थाय ते सर्वे स्पृष्ट्वा नद्याः शिवं जलम् । पन्थानमृषिणादिष्टं चित्रकूटस्य तं ययुः ॥ १ ॥ ततः संप्रस्थितः काले रामः सौमित्रिणा सह । सीतां कमलपत्राक्षीमिदं वचनमब्रवीत् ॥२॥ आदीप्तानिव वैदेही सर्वतः पुष्पितान्नगान् । स्वैः पुष्पैः किंशुकान्पश्य मालिनः शिशिरात्यये ॥३॥ पश्य भल्लातकान् बिल्वान्नरैरनुपसेवितान् । फलपुष्पैरवनतान्नूनं शक्ष्याम जीवितुम् ॥ ४ ॥ पश्य द्रोणप्रमाणानि लम्बमानानि लक्ष्मण । मधूनि मधुकारीभिः संभृतानि नगे नगे ॥ ५ ॥ एष क्रोशति नत्यूहस्तं शिखी प्रतिकूजति । रमणीये वनोद्देशे पुष्पसंस्तरसंकटे ॥ ६ ॥

टीका—वहां से उठकर वह सारे नदी के शुभ जल को स्पर्श (अर्थात् स्नान सन्ध्या) करके ऋषि से बतलाए हुए चित्रकूट के उस मार्ग को गये ॥ १ ॥ उस समय लक्ष्मण के साथ चलता हुआ राम कमल जैसे नेत्रोंवाली सीता से यह वचन बोला ॥ २ ॥ हे वैदेहि ! सब ओर से फूले हुए मानो जलते हुए इन केसुओं को देख, जो वसन्त में अपने फूलों की मालाएं हाथ में लिये खड़े हैं ॥ ३ ॥ भलावों ओर बिल्लों को देख जो मनुष्यों से छेडे नहीं गये, फल और पत्तों से झुके हुए हैं, निःसन्देह हमारा यहां निर्वाह होगा ॥ ४ ॥ हे लक्ष्मण मधुमक्खियों से तय्यार किये हुए द्रोण द्रोण जितने, वृक्ष २ पर लटकते हुए शहद के इन छत्तों को देख ॥ ५ ॥ वन के इस सुहावने स्थान में जो फूलों के बिछौनों

से घना होरहा है, यहां एक ओर दात्यूह बोल रहा है, और उसके मुकाबिले दूसरी ओर मोर बोल रहा है ॥ ६ ॥

मूल—मातङ्गयूथानुसृतं पक्षिसंघानुनादितम् । चित्रकूटमिमं पश्य प्रवृद्धशिखरं गिरिम् ॥ ७ ॥ समभूमितले रम्ये द्रुमैर्बहुभिरावृते। पुण्ये रंस्यामहे तात चित्रकूटस्य कानने ॥ ८ ॥ ततस्तौ पादचारेण गच्छन्तौ सह सीतया । रम्यमासेदतुः शैलं चित्रकूटं मनोरमम् ॥ ९ ॥ अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकि मभिवादयन् । तान्महर्षिः प्रमुदितः पूजयामास धर्मवित् ॥ १० ॥ आस्यतामिति चोवाच स्वागतं विनिवेद्य च ॥ ११ ॥ ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः । संनिवेद्य यथान्यायमात्मानमृषये प्रभुः ॥ १२ ॥

टीका—ऊंची चोटियों वाले इस चित्रकूट पर्वत को देख, जिसमें हाथियों के यूथ घूम रहे हैं, और पक्षियों के समूह बोल रहे हैं ॥ ७ ॥ हे तात चित्रकूट का यह बन, जो सम भूतल वाला है, सुहावना है, बहुत से वृक्षों से घिरा हुआ है, पवित्र है, इसमें रमण करेंगे ॥ ८ ॥ तब वह सीता सहित पाओं से चलते हुए दोनों भाई सुहावने मनोरम चित्रकूट पर्वत पर पहुंचे ॥ ९ ॥ सारे आश्रम में जाकर वाल्मीकि को अभिवादन करते भए, धर्मज्ञ महर्षि बड़ा प्रसन्न भया और उन की पूजा की ॥ १० ॥ और स्वागत कहकर उनको बैठने की आज्ञा दी ॥ ११ ॥ तब महाबाहु लक्ष्मण के बड़े भाई प्रभु ने यथाविधि ऋषि को अपना आप बतलाया । और उसके पीछे लक्ष्मण को कहा ॥ १२ ॥

मूल—लक्ष्मणानय दारूणि दृढानि च वराणि च । कुरुष्वावसथं सौम्य वासे मेऽभिरतं मनः ॥ १३ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान्द्रुमान् । आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिन्दमः ॥ १४ ॥

रामः स्नात्वा तु नियतो गुणवाञ्जपकोविदः । संग्रहेणाकरोत्सर्वान्मन्त्रान्सत्रावसानिकान् ॥ १५ ॥ इष्ट्वा देवगणान्सर्वान्विवेशावसथं शुचिः । बभूव च मनोल्हादो रामस्यामित तेजसः॥१६॥ सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम् । ननन्द हृष्टवा मृगपक्षिजुष्टां जहौ च दुःखं पुरविप्रवासात् ॥१७॥

टीका—हे लक्ष्मण सुन्दर और दृढ़ लकड़ियें ला और कुटिया बना, हे सौम्य ! यहां रहने में मेरा मन प्रसन्न है ॥१३॥ उस के इस वचन को सुन कर शत्रुओं का दमन करनेवाला लक्ष्मण अनेक वृक्षों को काट लाया और उस से पर्णशाला (कुटिया) बानाई ॥१४॥ तब राम ने स्नान करके शुद्ध हो नियम सहित जप करके यज्ञ समाप्ति पर्यन्त मन्त्रों से (गृह प्रवेशादि) क्रिया ॥१५॥ सारे देवगणों को पूजकर पवित्र राम कुटिया में प्रविष्ट हुआ और उस अपरिमित तेजवाले राम का मन बड़ा प्रसन्न हुआ ॥१६॥ बड़े सुहावने चित्रकूट को और सुन्दर घाटवाली, मृगों और पक्षियों से सेवित माल्यवती नदी को पाकर राम प्रसन्न हुआ और पुर से प्रवास का सारा दुःख भूल गया ॥१७॥

*सर्ग ५२ (व० ५७) सारथि का अयोध्या में पहुंचना

मूल—कथयित्वा तु दुःखार्तः सुमन्त्रेण चिरं सह । रामे दक्षिणकूलस्थे जगाम स्वगृहं गुहः॥१॥ भरद्वाजाभिगमनं प्रयागे च सभाजनम् । आ गिरेर्गमनं तेषां तत्रस्थैरभिलक्षितम् ॥२॥ अनुज्ञातः सुमन्त्रोऽथ योजयित्वा हयोत्तमान् । अयोध्यामेव नगरीं प्रययौगाढ़दुर्मनाः ॥३॥ ततः सायान्हसमये द्वितीयेऽहनि सारथिः । अयोध्यां समनुप्राप्य निरानन्दां ददर्श ह ॥४॥

टीका—(इस प्रकार राम की स्थिति कहकर अब राम से भेजे हुए सुमन्त्र का काम कहते हैं)—राम के दक्षिण किनारे पर चले जाने पर गुह बड़ा पीड़ित हुआ सुमन्त्र के साथ देर तक बातें कर अपने घर को गया ॥ १ ॥ उनका प्रयाग में भरद्वाज के पास जाना और आदर पाना, और आगे पर्वत को जाना उन्होंने वहां ठहरकर (जासूसों द्वारा) मालूम किया॥२॥ * तब अनुज्ञा दिया हुआ सुमन्त्र उत्तम घोड़ों को जोडकर अतीव दुर्मन हुआ अयोध्या को ही गया ॥३॥ तब दूसरे दिन सायं समय वह सारथि अयोध्या में पहुंचकर उसे आनन्द से शून्य देखता भया ॥ ४ ॥

मूल—सुमन्त्रमभिधावन्तः शतशोऽथ सहस्रशः। क्व राम इति पृच्छन्तः सूतमभ्यद्रवन्नराः ॥५॥ तेषां शशंस गङ्गायामहमापृच्छ्य राघवम्। अनुज्ञातो निवृत्तोस्मि धार्मिकेण महात्मना ॥६॥ ते तीर्णा इति विज्ञाय बाष्पपूर्णमुखा नराः। अहो धिगिति निःश्वस्य हा रामेति विचुक्रुशुः ॥७॥ शुश्राव च वचस्तेषां वृन्दं वृन्दं च तिष्ठताम्। हताः स्म खलु ये नेह पश्याम इति राघवम् ॥८॥

---

* शृङ्गवेरपुर में राम सुमन्त्र और गुह को छोड़कर आगे गए। गुह ने उनके ठहरने का पता लगाने के लिए जासूस भेजे, राम जब प्रयाग में भरद्वाज के पास रहकर, सवेरे चित्रकूट पर जाकर वास करने का निश्चय करके चल दिए, तो उसी दिन उन जासूसों ने आकर गुह को पता दिया, सुमन्त्र भी पता लेने को वहां ठहरा हुआ था। पता लेकर सुमन्त्र उसी दिन चल दिया। राम अयोध्या से चलकर एक रात तमसा पर, दूसरी गंगा पर, तीसरी वन में, चौथी प्रयाग में, पांचवें दिन जासूस शृङ्गवेरपुर में वापिस आए, उसी दिन गुह अयोध्या को रवाना हुआ, और दूसरे दिन अयोध्या में पहुंचा, उसी रात को राजा का देहान्त हुआ।

टीका—सीधा (राज महल को) जाते हुए सुमन्त्र के "कहां राम है" ऐसा पूछते हुए सैंकड़ों और सहस्रों लोग पीछे दौड़े ॥५॥ उनको उस ने कहा, गंगा पर मैं राम से आज्ञा लेकर उस धार्मिक महात्मा से अनुज्ञा दिया हुआ लौटा हूं ॥६॥ "वह पार चले गये" ऐसा जानकर आंसुओं से पूर्ण मुखों वाले, लोग अहोधिक् ऐसा लम्बा सांस भरकर हा राम ऐसे पुकारते भए ७ वृन्द वृन्द बनकर खड़े हुए उन लोगों के इस वचन को सूत सुनता भया, हा हम हत होगये, जो यहां राम को नहीं देखते हैं ॥८॥

मूल—किं समर्थ जनस्यास्य किं प्रियं किं सुखावहम् । इति रामेण नगरं पित्रेव परिपालितम् ॥९॥ वातायनगतानां च स्त्रीणामन्वन्तरापणम् । राममेवाभितप्तानां शुश्राव परिदेवनम् ॥१०॥ स राजमार्गमध्येन सुमन्त्रः पिहिताननः । यत्र राजा दशरथस्तदेवोपययौ गृहम् ॥११॥ सोऽवतीर्य रथाच्छीघ्रं राजवेश्म प्रविश्य च ॥ कक्ष्याः सप्ताभिचक्राम महाजनसमाकुलाः ॥१२॥ स प्रविश्याष्टमीं कक्ष्यां राजानं दीनमातुरम् । पुत्र शोकपरिद्यूनमपश्यत्पाण्डुरे गृहे ॥१३॥ अभिगम्य तमासीनं राजानमभिवाद्य च । सुमन्त्रो रामवचनं यथोक्तं प्रत्यवेदयत् ॥१४॥ स तूष्णीमेव तच्छ्रुत्वा राजा विद्रुतमानसः । मूर्च्छितो न्यपतद्भूमौ रामशोकाभिपीडितः ॥१५॥ ततोऽन्तःपुरमाविद्धं मूर्च्छितं पृथिवीपतौ । उच्छ्रित्य बाहू चुक्रोश नृपतौ पतिते क्षितौ ॥१६॥

टीका—किस में लोगों की भलाई है, क्या इनको प्रिय है, किस से इनको सुख लाभ होता है, इस प्रकार (सोचते और करते हुए) राम ने नगर को पितृवत् पालन किया है ॥ ९ ॥ और बाज़ार में से जाता हुआ वह (सूत) झरोखों में स्थित, राम के

शोक से संतप्त स्त्रियों की पुकार भी सुनता भया ॥१०॥ सुमन्त्र राजमार्ग के मध्य में से मुख ढांपकर जहां राजा दशरथ था। उसी घर को गया ॥११॥ वह जल्दी रथ से राजमहल में प्रवेश कर बहुत मनुष्यों से भरी हुई, सात डेवढ़ियें लंघ गया ॥१२॥ आठवीं डेवढ़ी में प्रवेश करके उस ने धवलगृह में राजा को दीन आतुर पुत्र के शोक से मुरझाया हुआ देखा ॥ १३ ॥ बैठे हुए राजा के पास जाकर अभिवादन करके सुमन्त्र ने राम का वचन यथोक्त निवेदन किया ॥ १४ ॥ राजा उसको चुपचाप सुनकर राम के शोक से पीड़ित हुआ, मन के अत्यन्त डुलजाने से मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ा॥१५॥राजा के मूर्छित हो भूमि प गिर पड़ने पर सारा अन्तःपुर दुःखी हो भुजा उठाकर रोने लगा

मूल—सुमित्रया तु सहिता कौसल्या पतितं पतिम्। उत्थापयामास तदा वचनं चेदमब्रवीत् ॥१७॥ इमं तस्य महाभाग दूतं दुष्करकारिणः। वनवासादनुप्राप्तं कस्मान्न प्रतिभाषसे ॥१८॥ देव यस्या भयाद्रामं नानुपृच्छसि सारथिम्। नेह तिष्ठति कैकेयी विश्रब्धं प्रतिभाष्यताम् ॥१९॥ सा तथोक्त्वा महाराजं कौसल्या शोकलालसा। धरण्यां निपपाताशु बाष्पविप्लुतभाषिणी ॥२०॥

अर्थ—सुमित्रा सहित कौसल्या गिरे हुए पति को उठाती भई और यह वचन बोली ॥ १७ ॥ हे महाभाग उस दुष्कर काम करने वाले का दूत वनवास से आया है, क्यों इस से बात नहीं करते हो ॥१८॥ हे देव! जिसके भय से सारथि से राम की बात नहीं पूछते हो, वह कैकेयी यहां नहीं है, निःशंक इस से बात करो (शोक के वेग से ऐसा कहा है)॥१९॥शोक से

भरी हुई कौसल्या महाराज को ऐसा कह करके आंसुओं से गद्गद बोलती हुई पृथिवी पर गिर पड़ी ॥२०॥

सर्ग ५३ (व० ५८) राजा का राम का वृत्तान्त पूछना

मूल–प्रत्याश्वस्तो यदा राजा मोहात्प्रत्यागतस्मृतिः । तदाजुहाव तं सूतं रामवृत्तान्तकारणात् ॥१॥ राजा तु रजसा सूतं ध्वस्ताङ्गं समुपस्थितम् । अश्रुपूर्णमुखं दीनमुवाच परमार्तवत् ॥२॥ सुकुमार्या तपस्विन्या सुमन्त्र सह सीतया । राजपुत्रौ कथं पादैरवरुह्य रथाद्गतौ ॥ ३ ॥ किमुवाच वचो रामः किमुवाच च लक्ष्मणः । सुमन्त्र वनमासाद्य किमुवाच च मैथिली ॥४॥ इति सूतो नरेन्द्रेण चोदितः सज्जमानया । उवाच वाचा राजानं स बाष्पपरिबद्धया ५ अब्रवीन्मे महाराज धर्ममेवानुपालयन् । अञ्जलिं राघवः कृत्वा शिरसाभिप्रणम्य च ॥ ६ ॥ +सूत मद्वचनात्तस्य तातस्य विदितात्मनः । शिरसा वन्दनीयस्य वन्द्यौ पादौ महात्मनः ॥ ७ ॥+ सर्वमन्तःपुरं वाच्यं सूत मद्वचनात्त्वया । आरोग्यमविशेषेण यथार्हमभिवादनम् ॥८।+माता च मम कौसल्या कुशलं चाभिवादनम्। अप्रमादं च वक्तव्या ब्रूयाश्चैनामिदं वचः ॥९॥+धर्मनित्या यथाकालमग्न्यागारपरा भव । देवि देवस्य पादौ च देववत्परिपालय

टीका–जब राजा को कुछ तसल्ली हुई मूर्छा से फिर स्मृति हुई तब उस ने राम का वृत्तान्त जानने के लिए सूत को बुलाया ॥१॥ धूल से लिबड़े हुए अङ्गोंवाले, आंसुओं से पूर्ण मुखवाले, दीन सूत से राजा अत्यन्त दुःखिया की तरह बोला ॥२॥ हे सुमन्त्र ! सुकुमारी बेचारी सीता समेत कैसे वह दोनों राजपुत्र रथ से उतर कर पैदल गए ॥३॥ हे सुमन्त्र बन में पहुंच कर रामने क्या कहा, लक्ष्मण ने क्या कहा और सीता ने क्या कहा

॥४॥ ऐसे जब राजा ने फिसलती हुई वाणी से सूत को प्रेरा, तो आंसुओं से रुकती हुई वाणी के साथ उसने राजा को उत्तर दिया ॥५॥ हे महाराज धर्म का पालन करते हुए रामने (आप की ओर) हाथ जोड़कर और सिर से प्रणाम करके मुझे कहा॥६॥ हे सूत मेरे वचन से जगत् विख्यात, वन्दन के योग्य महात्मा पिता के चरणों पर सिर से प्रणाम करना ॥७॥ फिर सारे अन्तःपुर को हे सूत! मेरे वचन से आरोग्य कहना और यथा योग्य बिना किसी भेद के अभिवादन करना ॥८॥ इस के पीछे माता कौसल्या को कुशल कहना और अभिवादन करना, धर्म में प्रमाद से भी चूक न हो, इस के लिए कहना, और यह वचन कहना ॥ ९ ॥ धर्मप्रधान हो और ठीक समय पर अग्निहोत्र परायण हो और हे देवि! देवतावत् राजा के पाओं को पूज १०

मूल—भरतः कुशलं वाच्यो वाच्यो मद्वचनेन च। सर्वास्वेव यथान्यायं वृत्तिं वर्तस्व मातृषु ॥११॥ लक्ष्मणस्तु सुसंक्रुद्धो निःश्वसन्वाक्यमब्रवीत्। केनायमपराधेन राजपुत्रो विवासितः ॥१२॥ असमीक्ष्य समारब्धं विरुद्धं बुद्धिलाघवात्। जनयिष्यति संक्रोशं राघवस्य विवासनम् ॥१३॥ जानकी तु महाराज निःश्वसन्ती तपस्विनी। अदृष्टपूर्वव्यसना नैव मां किंचिदब्रवीत् ॥१४॥ उद्वीक्ष्यमाणा भर्तारं मुखेन परिशुष्यता। मुमोच सहसा बाष्पं प्रयान्तमुपवीक्ष्य सा ॥१५॥ उभाभ्यां राजपुत्राभ्यामथ कृत्वाहमञ्जलिम्। प्रस्थितो रथमास्थाय तद्दुःखमुपधारयन् ॥१६॥

टीका—भरत को कुशल कहना और मेरे वचन से कहना, कि सारी माताओं में न्याय से बर्ताव रखना ॥११॥ लक्ष्मण तो क्रुद्ध हुआ आह भर कर यह वाक्य बोला, किस अपराध से यह राज

पुत्र निकाला गया है ॥१२॥ यह बिन सोचे विरुद्ध काम किया गया है, राम का निकालना निन्दा उत्पन्न कर देगा ॥१३॥ जानकी बेचारी तो हे महाराज ! जिस ने कभी दुःख नहीं देखा, लम्बा सांस भर कर मुझ से कुछ न बोली ॥१४॥ हां बन की ओर चलते हुए भर्ता को देख कर उस का मुख सूखने लगा और एकाएक आंसु बहने लग गये ॥१५॥ तब दोनों राजपुत्रों को हाथ जोड़ कर उन के वियोग के दुख को धारण करता हुआ मैं रथ पर चढ़ कर रवाना हुआ ॥१६॥

मूल–गुहेन सार्धं तत्रैव स्थितोऽस्मि दिवसान्बहून् । आशया यदि मां रामः पुनः शब्दापयेदिति ॥१७॥ प्रविशन्तमयोध्यायां न कश्चिदभिनन्दति । नरा राममपश्यन्तो निःश्वसन्ति मुहुर्मुहुः ॥

टीका–गुह के साथ वहां बहुत दिन रहा हूं, इस आशा से कि कदाचित् राम मुझे फिर बुलाले ॥१७॥ अयोध्या में प्रवेश करते हुए मुझे कोई अभिनन्दन नहीं करता है लोग राम को न देखते हुए बार २ लम्बे सांस भर रहे हैं ॥१८॥

मूल–निरानन्दा महाराज रामप्रव्राजनातुरा । कौसल्या पुत्रहीनेव अयोध्या प्रतिभाति मे ॥१९॥ सूतस्य वचनं श्रुत्वा वाचा परमदीनया । बाष्पोपहतया सूतमिदं वचनमब्रवीत् ॥२०॥ भवितव्यतया नूनमिदं वा व्यसनं महत् । कुलस्यास्य विनाशाय प्राप्तं सूत यदृच्छया ॥२१॥ अतो नु किं दुःखतरं योऽहमिक्ष्वाकुनन्दनम् । इमामवस्थामापन्नो नेह पश्यामि राघवम् २२ हा राम रामानुज हा हा वैदेहि तपस्विनि । न मां जानीत दुःखेन म्रियमाणमनाथवत् ॥२३॥ यस्मिन् बत निमग्नोऽहं कौसल्ये राघवं विना । दुस्तरो जीवता देवि मयायं शोकसागरः ॥२४॥

टीका—राम के निकालने से आतुर हुई यह सारी अयोध्या हे महाराज मुझे पुत्र से वियुक्त हुई कौसल्या के तुल्य आनन्द से शून्य प्रतीत होती है ॥ १९ ॥ सूत के वचन को सुन कर राजा आंसुओं से उपहत परमदीन वाणी से सूत को यह वचन बोला ॥ २० ॥ निःसन्देह होनी ही ऐसी थी, जो हे सूत इस कुल के नाश के लिये अचानक यह बड़ा व्यसन प्राप्त हुआ है २१ इस से बढ़ कर और दुःख क्या होगा, जो मैं इस अवस्था को प्राप्त हुआ इक्ष्वाकुनन्दन राम को नहीं देखता हूं ॥२२॥ हा राम, हा लक्ष्मण, हा २ बेचारी जानकी, तुम मुझे इस दुःख से अनाथ की तरह मरता हुआ नहीं जानते हो ॥२३॥ हे कौसल्या मैं राम के बिना जिस शोकसागर में डूबा हुआ हुं, उस से अब हे देवि ! जीते जी पार होना अशक्य है ॥२४॥

सर्ग ५४ (व० ६१, ६२) कौसल्या और दशरथ का विलाप

मूल—कौसल्या रुदती चार्ता भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥ यद्यपि त्रिषु लोकेषु प्रथितं ते महद्यशः । सानुक्रोशो वदान्यश्च प्रियवादी च राघवः ॥ २ ॥ यत्त्वयाऽकरुणं कर्म व्यपोह्य मम बान्धवाः । निरस्ताः परिधावन्ति सुखार्हाः कृपणा वने ॥ ३ ॥ गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः । तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते ॥४॥ तत्र त्वं मम नैवासि रामश्च वनमाहितः । न वनं गन्तुमिच्छामि सर्वथा हा हता त्वया ॥ ५ ॥

टीका—कौसल्या अति पीड़ित हुई, रोकर भर्त्ता से यह बोली ।१। यद्यपि तीनों लोकों में आप का यश फैला हुआ है, कि राघव बड़ा दयावान, बड़ा उदार, और प्रियवादी है ॥ २ ॥ पर राज्य से हटाकर आप से निकाले हुए मेरे बन्धु सुखों के योग्य बेचारे

अब वन में दौड़ रहे हैं, यह आपने दया का काम नहीं किया ॥ ३ ॥ स्त्री का आश्रय एक पति होता है, दूसरा पुत्र, तीसरे ज्ञाति चौथा कोई नहीं है ॥ ४ ॥ सो आप तो मेरे हुए नहीं, राम वन में निकाला गया, और मैं (आपको छोड़) जाना नहीं चाहती, सर्वथा शोक ! आपने मुझे मार डाला है ॥ ५ ॥

मूल—एवं तु क्रुद्धया राजा राममात्रा सशोकया । श्रावितः परुषं वाक्यं कौसल्यामाह दुःखितः ॥ ६ ॥ प्रसादये त्वां कौसल्ये रचितोऽयं मयाञ्जलिः । वत्सला चानृशंसा च त्वं हि नित्यं परेष्वपि ॥ ७ ॥ भर्त्ता तु खलु नारीणां गुणवान्निर्गुणोऽपि वा । धर्मं विमृशमानानां प्रत्यक्षं देवि दैवतम् ॥ ८ ॥ सा त्वं धर्मपरा नित्यं दृष्टलोकपरावरा । नार्हसे विप्रियं वक्तुं दुःखितापि सुदुःखितम् ॥ ९ ॥ तद्वाक्यं करुणं राज्ञः श्रुत्वा दीनस्य भाषितम् । कौसल्या व्यसृजद्बाष्पं प्रणालीव नवोदकम् ॥ १० ॥

टीका—इस प्रकार शोक से भरी हुई क्रुद्ध हुई राममाता ने राजा को कठोर वाक्य सुनाया, तो वह दुःखित हुआ कौसल्या को कहने लगा ॥ ६ ॥ हे कौसल्या हाथ जोडकर तुझ से क्षमा मांगता हूं, तू सदा बेगानों पर दया रखनेवाली, और प्यार करने वाली है ॥ ७ ॥ भर्त्ता हे देवि ! चाहे निर्गुण हो, चाहे गुणवान् हो उन स्त्रियों का साक्षात् देवता होता है, जो धर्म को विचारती हैं ॥ ८ ॥ सो तू जोकि सदा धर्मपरायण रहनेवाली है, जिसने लोक में सब ऊंच नीच देखा है, तू दुःखी होकर भी मुझ दुःखिया को विप्रिय कहने योग्य नहीं है ॥ ९ ॥ दीन हो राजा से कहे इस करुण वाक्य को सुनकर कौसल्या

के इसतरह आंसु बहने लगे जिसतरह प्रणाली से नया जल (बरसाती पानी) बहता है ॥ १० ॥

मूल—सा मूर्ध्नि बद्ध्वा रुदती राज्ञः पद्ममिवाञ्जलिम् । संभ्रमादब्रवीत्त्रस्ता त्वरमाणाक्षरं वचः ॥ ११ ॥ प्रसीद शिरसा याचे भूमौ निपतितास्मि ते । याचितास्मि हता देव क्षन्तव्याहं नहि त्वया ॥ १२ ॥ नैषा हि सा स्त्री भवति श्लाघनीयेन धीमता । उभयोर्लोकयोर्लोके पत्या या संप्रसाद्यते ॥ १३ ॥ जानामि धर्मं धर्मज्ञ त्वां जाने सत्यवादिनम् । पुत्रशोकार्तया तत्तु मया किमपि भाषितम् ॥ १४ ॥ शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम् । शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः ॥ १५ ॥

टीका—वह रोती हुई पद्म की तरह दोनों हाथ माथे पर जोड़कर अतीव आदर से डरती हुई जल्दी २ वह वचन बोली ॥ ११ ॥ क्षमा करो, सिर झुका पृथिवी पर झुककर प्रार्थना करती हूं, हे देव ! आप के क्षमा मांगने से मैं मन्दभागिनी हुई हूं, आप मुझ से क्षमा मांगें, यह योग्य नहीं है ॥ १२ ॥ वह स्त्री ही नहीं है, जिससे दोनों लोकों में श्लाघनीय बुद्धिमान् अपना पति लोक में क्षमा मांगता है ॥ १३ ॥ हे धर्मज्ञ ! मैं धर्म को जानती हूं, और जानती हूं, कि आप सत्यवादी हैं, किन्तु पुत्रशोक से पीडित हुई मैंने वह कुछ कह दिया है ॥ १४ ॥ शोक धैर्य को नष्ट कर देता है, शास्त्र को भुला देता है, सब कुछ नाश कर देता है, शोक के तुल्य शत्रु नहीं है ॥ १५ ॥

मूल—शक्यमापतितः सोढुं प्रहारो रिपुहस्ततः । सोढुमापतितः शोकः सुसूक्ष्मोऽपि न शक्यते ॥ १६ ॥ वनवासाय रामस्य पञ्चरात्रोऽत्र गण्यते । यः शोकहतहर्षायाः पञ्चवर्षोपमो मम ॥ १७ ॥

तं हि चिन्तयमानायाः शोकोऽयं हृदि वर्धते । नदीनामिव वेगेन समुद्रसलिलं महत् ॥ १८ ॥ एवं हि कथयन्त्यास्तु कौसल्यायाः शुभं वचः । मन्दरश्मिरभूत्सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत ॥ १९ ॥ अथ प्रह्लादितो वाक्यैर्देव्या कौसल्यया नृपः । शोकेन च समाक्रान्तो निद्राया वशमेयिवान् ॥ २० ॥

टीका—शत्रु के हाथ से आया हुआ प्रहार सहारा जासकता है, पर शोक आया हुआ अति सूक्ष्म भी नहीं सहारा जासकता है ॥१६ राम को बनवास गए पांच रातें बीत चुकी हैं, जो शोक से दूर हुए हर्ष वाली को पांच बरसों के तुल्य बीती हैं ॥ १७ ॥ उसी का चिन्तन करते हुए मेरे हृदय में शोक बढ़ रहा है, जिस तरह नदियों के वेग से समुद्र का बडा जल ॥ १८ ॥ इस प्रकार कौसल्या के शुभ वचन कहते हुए सूर्य की किरणें मन्द हुईं और क्रमशः रातप्रवृत्त हुई ॥ १९ ॥ कौसल्या देवी से अपने वाक्यों से प्रसन्न किया हुआ और शोक से दबा हुआ उस समय राजा निद्रा के वश को प्राप्त हुआ ॥ २० ॥

सर्ग ५९ (व० ६३) श्रवण के मारने का स्मरण

मूल—प्रतिबुद्धो मुहूर्त्तेन शोकोपहतचेतनः । अथ राजा दशरथः स चिन्तामभ्यपद्यत ॥ १ ॥ स राजा रजनीं षष्ठीं रामे प्रव्राजिते वनम् । अर्धरात्रे दशरथः सोऽस्मरद्दुष्कृतं कृतम् ॥ २ ॥ स राजा पुत्र शोकार्तः स्मृत्वा दुष्कृतमात्मनः । कौसल्यां पुत्रशोकार्तामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ॥ ३ ॥ यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाऽशुभम् । तदेव लभते भद्रे कर्त्ता कर्मजमात्मनः ॥४॥ तदिदं मेऽनुसंप्राप्तं देवि दुःखं स्वयंकृतम् । संमोहादिह बालेन यथा स्याद्भक्षितं विषम् ॥ ५ ॥

टीका—कुछ देर पीछे जागा हुआ शोक से नष्ट हुई चेतना वाला राजा दशरथ सोचने लगा ॥१॥ राम को बन निकाले हुए इस छटी रात को आधीरात के समय उस राजा दशरथ को अपना किया दुष्कर्म याद आया ॥२॥ पुत्र के शोक से पीड़ित वह राजा अपने दुष्कर्म को याद करके पुत्र शोक से पीड़ित कौसल्या से यह वचन बोला ॥३॥ हे कल्याणि जो शुभ वा अशुभ कर्म पुरुष करता है, हे भद्रे उस अपने कर्मफल को अवश्य ही पाता है ॥४॥ सो हे देवि ! यह मुझे अपना ही उत्पन्न किया हुआ दुःख प्राप्त हुआ है, अज्ञान से जैसे बालक ने विष खालिया हो ॥५॥

मूल—देव्यनूढा त्वमभवो युवराजो भवाम्यहम् । ततः प्रावृडनुप्राप्ता मदकामविवर्धिनी ॥६॥ उष्णमन्तर्दधे सद्यः स्निग्धा ददृशिरे घनाः । ततो जहर्षिरे सर्वे भेकसारङ्गबर्हिणः ॥७॥ तस्मिन्नातिसुखे काले धनुष्मानिषुमान्रथी । व्यायामकृतसंकल्पः सरयूमन्वगान्नदीम् ॥८॥ निपाने महिषं रात्रौ गजं वाऽभ्यागतं मृगम् । अन्यद्वा श्वापदं किञ्चिज्जिघांसुरजितेन्द्रियः ॥९॥ अथान्धकारे त्वश्रौषं जले कुम्भस्य पूर्यतः । अचक्षुर्विषये घोषं वारणस्येव नर्दतः १० ततोऽहं शरमुद्धृत्य दीप्तमाशीविषोपमम् । शब्दं प्रति गजप्रेप्सुरभिलक्ष्यमपातयम् ॥११॥ तत्र वागुषसि व्यक्ता प्रादुरासीद्वनौकसः । हा हेति पततस्तोये बाणाद्व्यथितमर्मणः ॥१२॥

टीका—हे देवि ! तू अभी व्याही न थी, मैं युवराज था, तब मद और काम को बढाने वाली बरसात आई ॥६॥ गर्मी एकदम छिप गई, स्निग्ध मेघ दीखने लगे, तब मेंडक, पिपीहा, मोर सब प्रसन्न भए ॥७॥ उस अति सुखदायी काल में धनुषबाण

ले रथ पर चढ़ शिकार खेलने का संकल्प कर रात के समय जलाशय पर आए भैंसे वा हाथी वा मृग वा किसी और श्वापद (दरिन्दे) को मारने की इच्छावाला अजितेन्द्रिय मैं सरयू नदी के साथ २ गया ॥८,९॥ तब अन्धेरे में नेत्रों की की पहुंच से परे जल में भरे जाते हुए घड़े का शब्द मैंने सुना जैसे कि हाथी गर्ज रहा हो ॥१०॥ तब मैंने हाथी को पाने की इच्छा से नाग के तुल्य दीप्त बाण निकाल कर शब्द को लक्ष्य में रख कर फैंका ॥११॥ (जहां बाण गिरा) वहां बाण से दुःखित मर्मोंवाले पानी में गिरते हुए, वनवासी मनुष्य की ऐसी व्यक्त वाणी प्रकट हुई "हा! हा!!" ॥१२॥

मूल–प्रविविक्तां नदीं रात्रावुदाहारोऽहमागतः। इषुणाभिहतः केन कस्य वाऽपकृतं मया॥१३॥जटाभारधरस्यैव वल्कलाजिनवाससः। को बधेन ममार्थी स्यात्किंवास्यापकृतं मया ॥१४॥ नेमं तथानुशोचामि जीवितक्षयमात्मनः। मातरं पितरं चोभावनुशोचामि मद्वधे ॥१५॥ तदेतन्मिथुनं वृद्धं चिरकालभृतं मया। मयि पञ्चत्वमापन्ने कां वृत्तिं वर्तयिष्यति ॥१६॥ वृद्धौ च मातापितरावहं चैकेषुणा हतः। केन स्मनिहताः सर्वे सुबालेनाकृतात्मना ॥१७॥ तां गिरं करुणां श्रुत्वा मम धर्मानुकांक्षिणः। कराभ्यां सशरं चापं व्यथितस्यापतद्भुवि ॥१८॥ तं देशमहमागम्य दीनसत्वः सुदुर्मनाः। अपश्यमिषुणा तीरे सरय्वास्तापसं हतम् ॥१९॥

टीका–रात्रि के समय एकान्त नदी पर जल लेजाने के लिये आए हुये मुझ को किसने तीर से मार डाला है, किसका मैंने अपराध किया था ॥१३॥ (सिर पर) जटा भार को धारण किये हुए, (शरीर पर) वृक्षों की छाल और मृगान पहने

हुए हूं, ऐसे के बध मे कौन अर्थी है वा इस का मैंने क्या अपराध किया होगा ॥१४॥ मैं इस अपने जीवन के क्षय को शोक नहीं करता हूं, किन्तु मेरे वध में अपने माता और पिता पर शोक करता हूं ॥१५॥ वह वृद्ध जोड़ा जिस की मैंने चिरकाल तक सेवा की है, मेरे मरने पर वह किस तरह जिएगा ॥१६॥ बूढे माता पिता को और मुझे एक ही वाण से मारडाला, किस अजितेन्द्रिय बाल ने हम सब को मार डाला है" ॥ १७ ॥ उस करुण वाणी को सुनकर दुःखित हुए मुझे धर्माभिलाषी के हाथों से तीर समेत बाण गिरपड़ा ॥ १८ ॥ मैं उस जगह आया, और अत्यन्त दुर्मन दीनहृदय हुए मैंने सरयू के तीर पर एक तपस्वी हत हुआ देखा ॥ १९ ॥

मूल–अवकीर्णजटाभारं प्रविद्धकलशोदकम् । पांसुशोणितदिग्धाङ्गं शयानं शल्यवेधितम् ॥२०॥ स मामुद्वीक्ष्य नेत्राभ्यां त्रस्तमस्वस्थचेतनम् । इत्युवाच वचः क्रूरं दिधक्षन्निव तेजसा ॥२१॥ किं तवापकृतं राजन्वने निवसता मया । जिहीर्षुरम्भो गुर्वर्थं यदहं ताडितस्त्वया ॥२२॥ इयमेकपदी राजन्यतो मे पितुराश्रमः । तं प्रसादय गत्वा त्वं न त्वा संकुपितः शपेत् ॥२३॥ विशल्यं कुरु मां राजन्मर्म मे निशितः शरः । रुणद्धि मृदु सोत्सेधं तीरमम्बुरयो यथा ॥२४॥ ब्रह्महत्याकृतं तापं हृदयादपनीयताम् । न द्विजातिरहं राजन्मा भूत्ते मनसो व्यथा ॥२५॥ शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप । इतीव वदतः कृच्छ्राद्बाणाभिहतमर्मणः ॥२६॥ तस्य त्वाताम्यमानस्य तं बाणमहमुद्धरम् । स मामुद्वीक्ष्य संत्रस्तो जहौ प्राणांस्तपोधनः ॥२८॥

टीका—जिसका जटाभार बिखरा हुआ है, पानी का घड़ा ढुला हुआ है। धूल और लहू से जिसके अङ्ग लिबड़े हुए हैं, शल्य से बींधा हुआ लेटा हुआ है ॥ २० ॥ वह मुझे अपने नेत्रों से डरा हुआ और अस्वस्थ चित्त देख करके तेज से मानों दग्ध करता हुआ यह क्रूर वचन बोला ॥ २१ ॥ हे राजन् बन में बसते हुए मैंने तेरा क्या अपराध किया था, जो माता पिता के लिये जल लेने आए को तूने मार डाला है ॥ २२ ॥ अस्तु अब यह पगडण्डी है, हे राजन् जिधर मेरे पिता का आश्रम है, अब जाकर उसको प्रसन्न कर, ऐसा न हो, कि वह कुपित हुआ तुझे शाप दे ॥ २३ ॥ और हे राजन् मेरे शल्य को निकाल तीक्षण तीर मेरे मर्म को पीड़ित कर रहा है, जिस तरह नदी का वेग शिथिल ऊंचे किनारे को ॥ २४ ॥ ब्रह्महत्या का संताप हृदय से दूर करदे, हे राजन् मैं ब्राह्मण नहीं, तेरे मन को (ब्रह्महत्या की) व्यथा मत हो ॥ २५ ॥ हे नरवरों के स्वामी मैं शूद्रा में से वैश्य से उत्पन्न हुआ हूं। इस प्रकार बड़े क्लेश से बोलते हुए, बाण से पीड़ित मर्मों वाले ॥ २६ ॥ मुरझाए हुए उस मुनिपुत्र का खींचकर वह बाण मैंने निकाला, और मेरी ओर देखकर भीत उस तपस्वी कुमार ने प्राण त्याग दिये ॥ २७ ॥

सर्ग ५६ (व० ६४) श्रवण के माता पिता का वृत्तान्त कहना

मूल—ततस्तं घटमादाय पूर्णं परमवारिणा। आश्रमं तमहं प्राप्य यथाख्यातपथं गतः ॥ १ ॥ तत्राहं दुर्बलावन्धौ वृद्धावपरिणायकौ अपश्यं तस्य पितरौ लूनपक्षाविवद्विजौ ॥ २ ॥ शोकोपहतचित्तश्च भयसंत्रस्तचेतनः। तच्चाश्रमपदं गत्वा भूयः शोकमहं गतः ॥३॥ पदशब्दं तु मे श्रुत्वा मुनिर्वाक्यमभाषत। किं चिरायसि मे पुत्र

पानीयं क्षिप्रमानय ॥ ४ ॥ यन्निमित्तमिदं तात सलिले क्रीडितं त्वया । उत्कण्ठिता ते मातेयं प्रविश क्षिप्रमाश्रमम् ॥ ५ ॥

टीका—तब मैं उस घड़े को लेकर उत्तम जल से भर कर बतलाए मार्ग से आश्रम को गया ॥ १ ॥ वहां मैंने दुर्बल अन्धे बूढ़े कोई सहारा न रखने वाले उसके माता पिता को देखा, जैसे कटे हुए पंखों वाले दो पंछी हों ॥ २ ॥ मेरा चित्त पहले ही शोक से पीड़ित था, भय से चेतना उड़ी हुई थी, किन्तु उस आश्रम-पद में पहुंचकर मैं और अधिक शोक को प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ मेरे पाओं की आहट सुन कर मुनि यह वाक्य बोला, मेरे बेटा! क्यों विलम्ब किया है, पानी शीघ्र ला ॥४॥ मेरे प्यारे ! जिससे तू जल में इतना काल खेलता रहा, इससे यह तेरी माता बड़ी उत्कण्ठित हुई है, जल्दी आश्रम में प्रवेश कर ॥ ५ ॥

मूल—त्वं गतिस्त्वगतीनां च चक्षुस्त्वं हीनचक्षुषाम् । समासक्तास्त्वयि प्राणाः कथं त्वं नाभिभाषसे ॥ ६ ॥ मनसः कर्म चेष्टाभिरभिसंस्तभ्य वाग्बलम् । आचचक्षे त्वहं तस्मै पुत्रव्यसनजं भयम् ॥ ७ ॥ क्षत्रियोऽहं दशरथो नाहं पुत्रो महात्मनः । सज्जनावमतं दुःखमिदं प्राप्तं स्वकर्मजम् ॥ ८ ॥ भगवंश्चापहस्तोऽहं सरयूतीरमागतः । जिघांसुः श्वापदं किंचिन्निपाने वाऽऽगतं गजम् ॥९॥ ततः श्रुतो मया शब्दो जले कुम्भस्य पूर्यतः । द्विपोऽयमिति मत्वायं बाणेनाभिहतो मया ॥ १० ॥

टीका—तू ही हम बेसहारों का सहारा है, तू नेत्रहीनों का नेत्र है, हमारे प्राण तुझ में बन्धे हुए हैं, क्यों तू उत्तर नहीं देता है ॥ ६ ॥ तब मन के शोक को बाहर की चेष्टाओं से थाम कर वाणी के बल का आश्रय करके मैंने उस मुनि को उस के पुत्र की विपत्ति से

उत्पन्न हुआ भय बतलाया॥७॥(मैंने कहा) मैं क्षत्रिय हूं दशरथ, मैं महात्माजी का पुत्र नहीं हूं। आज मैंने सज्जनों से निन्दित यह पाप अपने कर्म से प्राप्त किया है ॥ ८ ॥ कि हे भगवन्! मैं धनुष हाथ में लेकर चश्मे पर आए किसी हिंस्र पशु वा हाथी को मारने की इच्छा से सरयू के किनारे पर आया ॥ ९ ॥ वहां मैंने जल से भरे जाते हुए घड़े का शब्द सुना और हाथी जानकर मैंने उसे बाण से मार डाला ॥ १० ॥

मूल—गत्वा तस्यास्ततस्तीरमपश्यमिषुणा हृदि । विनिर्भिन्नं गतप्राणं शयानं भुवि तापसम् ॥ ११ ॥ ततस्तस्यैव वचनादुपेत्य परितप्यतः । स मया सहसा बाण उद्धृतो मर्मतस्तदा ॥ १२ ॥ स चोद्धृतेन बाणेन सहसा स्वर्गमास्थितः । भगवन्तावुभौ शोचन्नन्धाविति विलप्य च ॥ १३ ॥ आज्ञानाद्भवतः पुत्रः सहसाभिहतो मया । शेषमेवं गते यत्स्यात्तत्प्रसीदतु मे मुनिः ॥ १४ ॥ स बाष्पपूर्णवदनो निःश्वसञ्शोकमूर्छितः । मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलि मुपस्थितम् ॥ १५ ॥

टीका—तब उसके किनारे पर जाकर मैंने तीर से बींधे हुए भूमि पर लेटे हुए मरते हुए एक तपस्वी को देखा ॥ ११ ॥ तब उसी दुःखिया के कहने से उस के पास जाकर वह बाण मैंने जल्दी उसके मर्म से निकाला ॥ १६ ॥ हे भगवन्तो ! वह बाण के निकालने से आप दोनों नेत्रहीनों का शोक करता हुआ विलाप करता हुआ स्वर्ग को चला गया ॥ १३ ॥ अज्ञान से मैंने सहसा आपके पुत्र को मार डाला है, ऐसी दशा में अब जो कुछ करना हो, उसके लिये मुनि मुझपर अनुग्रह करें ॥१४॥ सुनतेही उस के मुख पर आंसू बरसने लगे, उसने लम्बा सांस भरा और

शोक मे मूर्छित होगया, फिर वह महातेजस्वी हाथ जोडकर सामने खडे हुए मुझ से बोला ॥ १५ ॥

मूल—यद्येतदशुभं कर्म न स्म मे कथयेः स्वयम् । फलेन्मूर्धा स्म ते राजन्सद्यः शतसहस्रधा ॥ १६ ॥ सप्तधा तु भवेन्मूर्धा मुनौ तपसि तिष्ठति । ज्ञानाद्विसृजतः शस्त्रं तादृशे ब्रह्मवादिनि ॥ १७ ॥ आज्ञानाद्धि कृतं यस्मादिदं ते तेन जीवसे ॥ १८ ॥ नय नौ नृप तं देशमिति मां चाभ्यभाषत । अद्य तं द्रष्टुमिच्छावः पुत्रं पश्चिमदर्शनं ॥ १९ ॥

टीका—यदि यह अशुभ कर्म तू मुझे आप आकर न कह देता तो हे राजन् तेरा सिर सैकडों सहस्रों टुकडे होकर गिर पड़ता ॥ १६ ॥ तप में स्थित ऐसे ब्रह्मवादी मुनिपर यदि तूने जानकर शस्त्र छोड़ा होता, तो तेरा सिर सात टुकडे होकर गिर पड़ता ॥ १७ ॥ जिस लिये तूने यह आज्ञान से किया है, इसी लिये तू जीता है ॥ १८॥ और फिर उसने मुझे कहा, हे राजन् मुझे उस जगह लेचल, आज हम उस अन्तिम दर्शन वाले पुत्र को देखना चाहते हैं ॥ १९ ॥

सर्ग ५७ (व० ६१) राजा का मृत्यु

मूल—अथाहमेकस्तं देशं नीत्वा तौ भृशदुःखितौ अस्पर्शयमहं पुत्रं तं मुनिं सह भार्यया ॥ १ ॥ तौ पुत्रमात्मनः स्पृष्ट्वा तमासाद्य तपस्विनौ । निपेततुः शरीरेऽस्य पिता चैनमुवाच ह ॥ २ ॥ नाभिवादयसे माद्य न च मामभिभाषसे । किं च शेषे तु भूमौ त्वं वत्स किंकुपितो ह्यसि ॥ ३ ॥ नन्वहं ते प्रियः पुत्र मातरं पश्य धार्मिक । किं च नालिङ्गसे पुत्र सुकुमारं वचो वद ॥४॥

टीका—तब मैंने उन दोनों अत्यन्त दुःखियों को वहां लेजाकर भार्या के साथ उस मुनि का स्पर्श करवाया ॥१॥ वह दोनों तपस्वी अपने पुत्र को स्पर्श करके उस को पाकर उस के शरीर पर गिर पड़े और पिता उस को बोला ॥२॥ हे वत्स मुझे तू आज अभिवादन नहीं करता है और न ही बात करता है, क्यों तू भूमि पर लेट रहा है, क्यों तू कुपित हुआ है ॥३॥ हे पुत्र मैं तेरा प्यारा हूं, हे धार्मिक अपनी माता को देख, हे पुत्र तू क्यों मुझे आलिंगन नहीं करता है, हे पुत्र सुकुमार वचन बोल ॥४॥

मूल—कस्य वाऽपररात्रेऽहं श्रोष्यामि हृदयंगमम् ।। अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्यद्विशेषतः ॥५॥+को मां सन्ध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः । श्लाघयिष्यत्युपासीनः पुत्रशोकभयार्दितम् ॥६॥ कन्दमूलफलं हृत्वा यो मां प्रियमिवातिथिम् । भोजयिष्यत्यकर्मण्यमपरिग्रहमनायकम् ॥ ७ ॥ उभावपि च शोकार्तावनाथौ कृपथौ वने । क्षिप्रमेवं गमिष्यावस्त्वया हीनौ यमक्षयम् ॥८॥

टीका—अब पिछली रात को किस पढ़ते हुए का मधुर शास्त्र वा विशेष से और*(वेदादि) सुनूंगा कौन मुझे स्नान करके

* यहां "और" से वेद ही अभिप्रेत होसक्ता है, क्योंकि शास्त्र से बढ़ कर वेद का सुनना होसक्ता है, जैसाकि यहीं "विशेषतः" कहा है। यह बात कि "यह शूद्रा में से उत्पन्न हुआ था, इस लिए वेद पढना इस का बन नहीं सका" इस लिए ठीक नहीं कि यह पुराने उदार हृदय आर्यों का मन्तव्य नहीं था, जैसाकि यहां ही इस में अगले श्लोक में उस का सन्ध्योपासन और अग्निहोत्र करना भी लिखा है और इस में पूर्व सर्ग के श्लोक १७ में उस को स्पष्ट ब्रह्मवादी अर्थात् वेदवक्ता कहा है। यह स्पष्ट है। इस में कोई खींचतान नहीं। वस्तुतः वैदिक समय में वेद से सीधा शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार सब स्त्री पुरुष का था संकोच पीछे हुआ

सन्ध्या को उपास और अग्निहोत्र करके पास बैठकर, पुत्र के शोक और भय से पीड़ित मुझ को मलमल कर स्नान कराएगा ॥६॥ कोई काम न करने वाले कुछ पास न रखने वाले मुझ अनाथ को कौन अब कन्द मूल फल लाकर प्यारे अतिथि की तरह भोजन कराएगा ॥७॥ दोनों ही हम शोक से पीड़ित अनाथ दीन हुए जल्दी ही यम के घर को जाएंगे ॥८॥

मूल—यां हि शूरा गतिं यान्ति संग्रामेष्वनिवर्तिनः। हतास्त्वभिमुखाः पुत्र गतिं तां परमां व्रज ॥९॥ यां गतिं सगरः शैब्यो दिलीपो जनमेजयः। नहुषो धुन्धुमारश्च प्राप्तास्तां गच्छ पुत्रक ॥१०॥ या गतिः सर्वभूतानां स्वाध्यायात्तपसश्च या। भूमिदस्याहिताग्नेश्च एक पत्नीव्रतस्य च ॥११॥ गोसहस्रप्रदातॄणां गुरुसेवाभृतामपि। देहन्यासकृतां या च तां गतिं गच्छ पुत्रक ॥१२॥

टीका—संग्रामों में न लौटने वाले सामने लड़कर मरे हुए शूरवीर जिस गति को प्राप्त होते हैं, हे पुत्र उस उत्तम गति को प्राप्त हो ॥ ९ ॥ जिस गति को सगर शैब्य दिलीप जनमेजय

है। संकोच में भी पहले पहल शूद्र अधिकारी न था, पर शूद्रों में से उत्पन्न हुआ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य का पुत्र अधिकारी था, जैसा कि शूद्रा में से उत्पन्न हुआ इलूष ऋषि का पुत्र कवष वेद मंत्रों का द्रष्टा ऋषि होचुका है (देखो ऐतरेय ब्राह्मण २।३।१ में उस की कथा) ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचन कर्ता महिदास एक शूद्रा भार्या के पेट से ब्राह्मण का पुत्र था, ऐसा ही यहां भी शूद्रा पुत्र का सन्ध्योपासनादि एक साधारण बात की तरह कह दिया है, कोई इस को आश्चर्य नहीं माना। अतएव तिलककारने जो ब्रह्मवादी से ब्रह्मवादी के सम, अन्यत्=और, से पुराण अभिप्राय लिया है और सन्ध्योपासन तंत्र मार्ग से और अग्निहोत्र खाली नमस्कार मंत्र से कहा है, यह उस की स्पष्ट खींच बालमीकिके से आशय स्पष्ट विरुद्ध है

नहुष और धुन्धुमार प्राप्त हुए हैं, उस गति को हे पुत्र प्राप्त हो ॥ १० ॥ जोगति सब भूतों की है, जो गति स्वाध्याय से मिलती है, जो भूमि दान करने वाले की, आहिताग्नि की और एक पत्नीव्रत वाले की ॥ ११ ॥ सहस्र गौ देने वालों की, और देहत्याग करने वालों की है, हे पुत्रक उस गति को प्राप्त हो

मूल–एवं स कृपणं तत्र पर्यदेवयतासकृत् । तथोक्त्वा कर्तुमुदकं प्रवृत्तः सह भार्यया ॥१३॥ स कृत्वाथोदकं तूर्णं तापसः सह भार्यया । मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलि मुपस्थितम् ॥१४॥ अद्यैव जहि मां राजन्मरणे नास्ति मे व्यथा । यः शरेणैकपुत्रं मांत्वमकार्षीरपुत्रकम् ॥१५॥ पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम सांप्रतम् । एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन्कालं करिष्यसि ॥१६॥

टीका–इस प्रकार वह वहां बार २ दीन रुदन करता भया, वैसा कह कर भार्या के साथ उदककर्म करने लगा ॥ १३ ॥ वह तपस्वी महातेजस्वी भार्या के साथ उदककर्म करके हाथ जोड़कर सामने खड़े हुए मुझ से बोला ॥१४॥ इसी समय मुझे भी मार डालो । हे राजन् मरने में मुझे पीडा नहीं, जिसने तीर से मेरे एकले पुत्रसे मुझे पुत्रहीन बना दिया है ॥१५॥ जैसा अब यह मुझे पुत्र के व्यसन से दुःख हुआ है, इसी प्रकार तूभी हे राजन् पुत्र के शोक से काल करेगा ॥ १६ ॥

मूल–एवं शापं मयि न्यस्य विलप्य करुणं बहु । चितामारोप्य देहं तन्मिथुनं स्वर्गमभ्ययात् ॥१७॥ तदेतच्चिन्तयानेन स्मृतं पापं मया स्वयम् । तदा बाल्यात्कृतं देवि शब्दवेध्यनुकर्षिणा ॥१८॥ तस्यायं कर्मणो देवि विपाकः समुपस्थितः । अपथ्यैः सह संभुक्ते व्याधिरन्नरसे यथा ॥१९॥ तस्मान्मामागतं भद्रे तस्योदारस्य तद्वचः । यदहं पुत्रशोकेन संत्यजिष्यामि जीवितम् ॥२०॥

टीका—इस प्रकार मेरे ऊपर शाप छोड़कर और बहुत करुण विलाप करके, वह जोड़ा अपने देह को चिता पर चढाकर स्वर्ग को चला गया ॥ १७ ॥ सो यह सोचते हुए मुझे अपना पाप याद आया है, जो उस समय हे देवि ! शब्दवेधी बाण को खींचने वाले मैंने बालकपन से किया था ॥ १८ ॥ उस कर्म का हे देवि ! यह फल उपस्थित हुआ है, जैसे अपथ्य वस्तुओं के साथ खाए अन्नरससे रोग उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥ इस लिये हे भद्रे अब उस उदार पुरुष का वह वचन मेरे पास आया है, जो मैं आज पुत्र के शोक से जीवन को त्यागूंगा ॥ २० ॥

मूल—+न तन्मे सदृशं देवि यन्मया राघवे कृतम् । सदृशं तत्तु तस्यैव यदनेन कृतं मयि ॥ २१ ॥ सुगन्धि मम रामस्य धन्या द्रक्ष्यन्ति ये मुखम् । निवृत्तवनवासं तमयोध्यायां पुनरागतम् २२ वेदये नच संयुक्ताञ्शब्दस्पर्शरसानहम् । चित्तनाशाद्विपद्यन्ते-सर्वाण्येवेन्द्रियाणिमे ॥२३॥ अयमात्मभवःशोको मामनाथमचेतनम् । संसाधयति वेगेन यथा कूलं नदीरयः ॥२४॥

टीका—हे देवि ! यह मेरे सदृश नहीं था, जो मैंने राम से वर्ताव किया है, हां वह उसके ही सदृश है, जो उसने मेरे साथ वर्ताव किया है ॥ २१ ॥ वह लोग धन्य होंगे, जो मेरे राम के सुगन्धित मुख को देखेंगे, जब वह वनवास से निवृत्त होकर फिर अयोध्या में आएगा ॥ २२ ॥ अब मैं अपने इन्द्रियों से संयुक्त हुए शब्द स्पर्श और रसों को नहीं जानता हूं, चित्त के नाश से मेरे इन्द्रिय नष्ट हो रहे हैं ॥ २३ ॥ यह अपने अन्दर से उत्पन्न हुआ शोक मुझ अनाथ और अचेतन को वेग से नाश कर रहा है, जैसे नदी का वेग किनारे को ॥ २४ ॥

मूल—हा राघव महाबाहो हा ममायासनाशन । हा पितृप्रिय मे

नाथ हा ममासि गतः सुत ॥२५॥ हा कौसल्ये न पश्यामि हा सुमित्रे तपस्विनि । हा नृशंसे ममामित्रे कैकेयि कुलपांसिनि २६ इति मातुश्च रामस्य सुमित्रायाश्च संनिधौ । राजा दशरथः शोचञ्जीवितान्तमुपागमत् ॥२७॥ तथा तु दीनः कथयन्नराधिपः प्रियस्य पुत्रस्य विवासनातुरः । गतेऽर्धरात्रे भृशदुःखपीडितस्तदा जहौ प्राणमुदारदर्शनः ॥२८॥

टीका—हा राघव महाबाहो, हा मेरे क्लेशों के मिटाने वाले ! हा पिता के प्यारे मेरे नाथ हा मेरे पुत्र तू कहां चला गया है ॥२५ हा कौसल्ये ! मैं तुझे देखता नहीं हूं, हा सुमित्रे बेचारी, हा कैकेयि ! मेरी शत्रु कुलकलङ्किनि ॥ २६ ॥ इस प्रकार राम की माता के और सुमित्रा के पास राजा दशरथ शोक करता २ जीवित के अन्त को प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ प्यारे पुत्र के निकालने से आतुर हुआ वैसे दीन बातें कहता हुआ उदारदृष्टि राजा अत्यन्त दुःख से पीड़ित हुआ आधी रात के बीत जाने पर प्राणों को त्यागता भया ॥ २८ ॥

सर्ग ५८ (व० ६५, ६६) कौसल्या का विलाप

मूल—कौसल्या च सुमित्रा च दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च पार्थिवम् । हा भर्तेति परिक्रुश्य पेततुर्धरणीतले ॥ १ ॥ ततः सर्वा नरेन्द्रस्य कैकेयीप्रमुखाः स्त्रियः । रुदत्यः शोकसंतप्ता निपेतुर्गतचेतनाः ॥ २ ॥ ताभिः स बलवान्नादः क्रोशन्तीभिरनुद्रुतः । येन स्फीतीकृतो भूयस्तद्गृहं समनादयत् ॥ ३ ॥ सद्योनिपतितानन्दं दीनं विक्लवदर्शनम् । बभूव नरदेवस्य सद्म दिष्टान्तमीयुषः ॥ ४ ॥ तमग्निमिव संशान्तमम्बुहीनमिवार्णवम् । गतप्रभमिवादित्यं स्वर्गस्थं प्रेक्ष्य भूमिपम् ॥ ५ ॥

टीका—कौसल्या और सुमित्रा राजा को देखकर और स्पर्श कर

हा भर्तः ! पुकारती हुई पृथिवी तल पर गिर पड़ीं ॥१॥ उस से पीछे (आई) कैकयी आदि राजा की स्त्रियें (कैकेयी और उस की दासियें) रोती हुई शोक से संतप्त हुई बेहोश हो पृथिवी पर गिर पड़ीं ॥ २ ॥ वह बलवान् (पहला) नाद उन (पीछे आई) पुकारती हुई स्त्रियों के नाद से मिलकर अधिक बढ़ा हुआ उस मन्दिर को भर देता भया ॥३॥ कालधर्म को प्राप्त हुए राजा का मन्दिर तत्क्षण आनन्द से शून्य दीन और विक्लव दर्शनवाला होगया ।४। बुझी हुई अग्नि की तरह, जलहीन हुए समुद्र की तरह, नष्ट हुई प्रभावाले सूर्य की तरह, स्वर्गवासी उस राजा को देखकर ॥५॥

मूल—कौसल्या बाष्पपूर्णाक्षी विविधंशोककर्शिता । उपगृह्य शिरो राज्ञः कैकेयीं प्रत्यभाषत ॥ ६ ॥ सकामा भव कैकेयि भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् । त्यक्त्वा राजानमेकाग्रा नृशंसे दुष्टचारिणि ॥७ विहाय मां गतो रामो भर्ता च स्वर्गतो मम । विजने सार्थहीनेव नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ८ ॥ भर्तारं तु परित्यज्य का स्त्री दैवतमात्मनः । इच्छेज्जीवितुमन्यत्र कैकेय्यास्त्यक्तधर्मणः ॥ ९ ॥ न लुब्धो बुद्ध्यते दोषान्किंपाकमिव भक्षयन् । कुब्जानिमित्तं कैकेय्या राघवाणां कुलं हतम् ॥ १० ॥ स मामनाथां विधवां नाद्य जानाति धार्मिकः । रामः कमलपत्राक्षो जीवन्नाशमितो गतः ।११।

टीका—कौसल्या आंसुओं से पूर्ण मुखवाली अनेक प्रकार शोक से दुर्बल हुई राजा के सिर को पकड़कर कैकयी से बोली ॥६॥ तेरी कामना पूर्ण हो हे कैकयी ! हे दुर्जन दुष्टचारिणी राजा को त्यागकर अब एक चित्त हुई निष्कण्टक राज्य को भोग ॥७॥ मुझे छोड़कर राम चला गया है, और मेरा भर्ता स्वर्ग को चला गया है, बिखड़े मार्ग में साथ से बिछुड़ी हुई की तरह मैं अब जीना नहीं चाहती ॥८॥ धर्म को जिसने त्याग दिया है,

उस कैकेयी के सिवाय कौन स्त्री अपना भर्ता जो कि अपना देवता है, उसको त्यागकर जीना चाहेगी ॥ ९ ॥ लोभी किंपाक (विष भेद) को भक्षण करते हुए की तरह दोषों को नहीं देखता, कुब्जा के निमित्त कैकेयी ने राघवों का कुल नाश कर दिया ॥ १० ॥ वह कमलनेत्र धार्मिक राम आज मुझे अनाथा विधवा नहीं जानता है, वह यहां से जीता ही नाश हो गया ॥११॥

मूल—तां ततः संपरिष्वज्य विलपन्तीं तपस्विनीम् । व्यपनिन्युः सुदुःखार्तां कौसल्यां व्यावहारिकाः ॥ १२ ॥ तैलद्रोण्यां तदामात्याः संवेश्य जगतीपतिम् । राज्ञः सर्वाण्यथादिष्टाश्चक्रुः कर्माण्यनन्तरम् ॥ १३ ॥ न तु संकालनं राज्ञो विना पुत्रेण मन्त्रिणः । सर्वज्ञा कर्तुमीयुस्ते ततो रक्षन्ति भूमिपम् ॥ १४ ॥ निशा नक्षत्रहीनेव स्त्रीव भर्तृविवर्जिता । पुरी नाराजतायोध्या हीना राज्ञा महात्मना ॥ १५ ॥

टीका—(भर्त्ता को) आलिंगन करके इस प्रकार विलाप करती हुई, दुःख से अत्यन्त पीड़ित हुई उस तपस्विनी कौसल्या को घर में अधिकार रखनेवाले (उससे छुड़ाकर) अलग लेगये ॥१२॥ तब मन्त्री जन तेल के कड़ाहे में राजा को रखकर अनन्तर कर्तव्य (वसिष्ठादि की) आज्ञानुसार करते भए ॥ १३ ॥ सारे व्यवहार के जाननेवाले मन्त्रियों ने बिना पुत्र के राजा को निकालना नहीं चाहा, इस लिये राजा की रक्षा की ॥ १४ ॥ महात्मा राजा से हीन हुई वह अयोध्यापुरी नक्षत्र हीन रात की तरह भर्त्ताहीन नारी की तरह न सोहती भई ॥ १५ ॥

सर्ग ५९ (व० ६७) अराजकता के दोषवर्णन

मूल—व्यतीतायां तु शर्वर्यामादित्यस्योदये ततः । समेत्य राजकर्तारः सभामीयुर्द्विजातयः ॥१॥ मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च क-

श्यपः । कात्यायनो गौतमश्च जाबालिश्च महायशाः ॥ २ ॥ एते द्विजाः महामात्यैः पृथग्वाचमुदीरयन् । वसिष्ठमेवाभिमुखाः श्रेष्ठं राजपुरोहितम् ॥३॥ इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद्राजा विधीयताम् । अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात् ॥४॥ नाराजके जनपदे विद्युन्माली महास्वनः । अभिवर्षति पर्जन्यो महीं दिव्येन वारिणा ॥५॥ नाराजके जनपदे बीजमुष्टिः प्रकीर्यते । नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तते वशे ॥६॥ अराजके धनं नास्ति नास्ति भार्याप्यराजके । इदमत्याहितं चान्यत्कुतः सत्यमराजके ॥ ७ ॥

टीका—रात बीतकर सूर्य के उदय होने पर राजदर्बारी सब ब्राह्मण इकट्ठे हुए ॥१॥ मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, गौतम और महायशस्वी जाबालि ॥२॥ यह ब्राह्मण मन्त्रियों के सहित राजपुरोहित वसिष्ठ को अभिमुख करके बोले ॥३॥ इक्ष्वाकुओं में से बहुत जल्दी ही कोई राजा बनाना चाहिये, न हो कि बिना राजा के हमारा देश विनाश को प्राप्त हो ॥४॥ अराजक (बिना राजा के) देश में बिजली की माला वाला बड़ा गर्जता हुआ मेघ दिव्य जल से पृथिवी पर नहीं बरसता है ॥५॥ अराजक देश में बीज की मुट्ठी (खेती में) नहीं बिखेरी जाती है, न अराजक देश में पिता के पुत्र और पति के भार्या बस में रहती है ॥६॥ अराजक में धन नहीं, भार्या भी नहीं, यह और बड़ा उपद्रव है, कि अराजक में सचाई कहां ॥ ७ ॥

मूल—नाराजके जनपदे कारयन्ति सभां नराः । उद्यानानि च रम्याणि हृष्टाः पुण्यगृहाणि च ॥८॥ नाराजके जनपदे महायज्ञेषु यज्वनः । ब्राह्मणा वसुसम्पूर्णा विसृजन्त्याप्तदक्षिणाः ॥९॥ नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तकाः । उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धन्ते राष्ट्रवर्धनाः ॥१०॥ नाराजके जनपदे उद्यानानि समागताः । सायाह्ने क्रीडितुं यान्ति

कुमार्यो हेमभूषिताः ॥११॥ नाराजके जनपदे धनवन्तः सुरक्षिताः। शेरते विवृतद्वारा कृषिगोरक्षजीविनः ॥१२॥ नाराजके जनपदे वणिजो दूरगामिनः। गच्छन्ति क्षेममध्वानं वहुपण्यसमाचिताः॥१३॥

टीका—अराजक देश में लोग सभाएं नहीं वनवाते हैं, न रमणीय गृह, न पुण्यगृह ॥ ८ ॥ अराजक देश में यज्वा ब्राह्मण महा-यज्ञों में धन से पूर्ण पूरी दक्षिणाएं नहीं देते हैं (ऐसे यज्ञ नहीं कर सकते हैं) ॥ ९॥ अराजक देश में प्रसन्न हुए नट नर्तकों वाले मेले और देश के वढ़ानेवाले समाज नहीं वढ़ते हैं ॥१०॥ अराजक देश में सुवर्ण से भूषित कुमारियें सायंकाल को मिल-कर बगीचों में खेलने नहीं जाती हैं ॥ ११ ॥ अराजक देश में धनवान् सुरक्षित नहीं होते, और खेती और गोरक्षा से जीविका करने वाले द्वार खोलकर नहीं सोते हैं ॥१२॥ अराजक देश में सौदागर बहुत वस्तुओं को लेकर कुशल से मार्ग में नहीं जाते हैं ॥१३॥

मूल—नाराजके जनपदे चरत्येकचरो वशी । भावयन्नात्मनात्मानं यत्रसायंगृहो मुनिः ॥१४॥ यथा ह्यनुदका नद्यो यथा वाप्यतृणं वनम्। अगोपाला यथा गावस्तथा राष्ट्रमराजकम् ॥ १५ ॥

टीका—अराजक देश में अकेला विचरने वाला आत्मा से आत्मा का चिन्तन करता हुआ जहां रात हुई वहीं घर वाला मुनि नहीं विचरता है ॥ १४ ॥ जैसे नदियें विना जल के हों, जैसे बन विना घास के हों, वा जैसे गौएं विना गोपाल के हों, वैसे देश विना राजा के होता है ॥ १५ ॥

मूल—नाराजकेजनपदे स्वकं भवति कस्यचित्। मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम्॥१६॥यथा दृष्टिःशरीरस्य नित्यमेव प्रवर्तते। तथा नरेन्द्रो राष्ट्रस्य प्रभवः सत्यधर्मयोः ॥१७॥ राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम्। राजा माता पिता चैव राजा हितकरो

नृणाम् ॥१८॥ अहो तम इवेदं स्यान्न प्रज्ञायेत किञ्चन । राजा चेन्न भवेल्लोके विभजन्साध्वसाधुनी ॥ १९ ॥

टीका—अराजक देश में किसी की कोई मल्कीयत नहीं होती, मछलियों की तरह लोग सदा एक दूसरे को खाजाते हैं ॥१६॥ जैसे दृष्टि शरीर के (हित साधन में और अहित के निवारण में) सदा प्रवृत्त होती है, वैसे राजा देश के सत्य और धर्म का प्रभव है ॥१७॥ राजा सचाई है और धर्म है, राजा कुलवानों का कुल है, राजा माता और पिता है, राजा मनुष्यों का हितकारी है, ॥१८॥ अहो यह सब अन्धकारमय होजाए, कुछ पता ही न लगे, यदि लोक में भले वा बुरे का विवेक करनेवाला राजा न हो ॥ १९ ॥

सर्ग ६० (व० ६८) भरत को लाने के लिये दूतों का भेजना

मूल—तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठः प्रत्युवाच ह । मित्रामात्यजनान्सर्वान्ब्राह्मणांस्तानिदं वचः ॥ १ ॥ यदसौ मातुलकुले दत्तराज्यः परं सुखी । भरतो वसति सह भ्रात्रा शत्रुघ्नेन मुदान्वितः ॥ २ ॥ तच्छीघ्रं जवना दूता गच्छन्तु त्वरितं हयैः । आनेतुं भ्रातरौ वीरौ किं समीक्षामहे वयम् ॥३॥ गच्छन्त्विति ततः सर्वे वसिष्ठं वाक्यमब्रुवन् । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥ एहि सिद्धार्थ विजय जयन्ताशोकनन्दन । श्रूयतामितिकर्त्तव्यं सर्वानेव ब्रवीमि वः ॥ ५ ॥

टीका—उनके इस वचन को सुन कर वसिष्ठ ने मित्रों मंत्रियों और उन ब्राह्मणों को यह बचन कहा ॥१॥ कि जिसको राज्य दिया गया है, वह भरत खुशी से भरा हुआ भाई शत्रुघ्न के साथ मामा के घर बसता है ॥२॥ अतएव तेज़ दूत घोड़ों से जल्दी वहां जाएं, उन दोनों वीर भाईयों को लाने के लिए, हम क्या विचारते हैं

(अर्थात् यह विचार तो निश्चित होचुका हुआ है ढील क्या है) ॥३॥ तब वह सभी यह वाक्य बोले, कि हां जाएं, उनके इस वचन को सुन कर वसिष्ठ बोला ॥ ४ ॥ हे सिद्धार्थ, विजय, जयन्त और अशोकनंदन तुम सब को कहता हूं, अपना इति कर्तव्य सुनो ॥५॥

मूल—पुरं राजगृहं गत्वा शीघ्रं शीघ्रजवैर्हयैः । त्यक्तशोकैरिदं वाच्यः शासनाद्भरतो मम ॥६॥ पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः । त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया ॥ ७ ॥ मा चास्मै प्रोषितं रामं मा चास्मै पितरं मृतम् । भवन्तः शंसिषुर्गत्वा राघवाणामितः क्षयम् ॥८॥ कौशेयानि च वस्त्राणि भूषणानि वराणि च । क्षिप्रमादाय राज्ञश्च भरतस्य च गच्छत ॥ ९ ॥ ततः प्रास्थानिकं कृत्वा कार्यशेषमनन्तरम् । वसिष्ठेनाभ्यनुज्ञाता दूता संत्वरितं ययुः ॥ १० ॥

टीका—तेज चलने वाले घोड़ों पर जल्दी राजगृह पुर में जाकर शोक को त्यागकर मेरे वचन से भरत को यह कहना ॥ ६ ॥ पुरोहित और सारे मन्त्री तुझे कुशल कहते हैं, तेरे साथ जरूरी काम है, जल्दी चल ॥ ७ ॥ मत इसको आपने राम का निकाला जाना, मत पिता का मरना और मत इससे राघवों का नाश बतलाना ॥८॥ रेशमी वस्त्र और उत्तम भूषण केकयराज और भरत के लिये लेकर जल्दी जाओ ॥ ९ ॥ इसके पीछे प्रस्थान सम्बन्धी सारी तय्यारी करके वसिष्ठ से आज्ञा दिये हुए दूत जल्दी चले गए ॥ १० ॥

मूल—न्यन्तेनापरतालस्य प्रलम्बस्योत्तरं प्रति । निषेवमाणास्ते जग्मुर्नदीं मध्येन मालिनीम् ॥११॥ ते हास्तिनपुरे गङ्गां तीर्त्वा प्रत्यङ्मुखा ययुः । पञ्चालदेशमासाद्य मध्येन कुरुजाङ्गलम् ॥१२॥ सरांसि च सुफुल्लानि नदीश्च विमलोदकाः । निरीक्षमाणा जग्मु-

स्ते दूताः कार्यवशाद्द्रुतम् ॥१३॥ ते प्रसन्नोदकां दिव्यां नाना-
विहगसेविताम् । उपातिजग्मुर्वेगेन शरदण्डां जलाकुलाम् ॥१४॥
अभिकाले ततः प्राप्य तेजोभिभवनाच्च्युताः । पितृपैतामहीं पुण्यां
तेरुरिक्षुमतीं नदीम् ॥१५॥

टीका—अपरताल (पर्वत) के पश्चिम से प्रलम्ब (पर्वत) के उत्तर भाग में उसके मध्य में बहती हुई मालिनी नदी का सेवन करते हुए गए ॥ ११ ॥ वह हास्तिनपुर में गंगा से पार हो पश्चिममुख हुए पञ्चाल देश में पहुंचे, कुरुजंगल के मध्य से ॥ १२ ॥ फूले हुए सरोवरों और निर्मल जलवाली नदियों को देखते हुए वह दूत कार्यवश से जल्दी गये ॥ १३ ॥ वह निर्मल जलवाली अनेक पक्षियों से सेवित जल से भरी हुई दिव्य शरदण्डा नदी के पार जल्दी होगये ॥ १४ ॥ तब अभिकाल ग्राम में पहुंच, फिर तेजोऽभिभवन ग्राम से निकल कर (इक्ष्वाकुओं की) पिता पितामह सम्बन्धी पवित्र इक्षुमती नदी से पार हुए ॥ १५ ॥

मूल—अवेक्ष्याञ्जलिपानांश्च ब्राह्मणान्वेदपारगान् । ययुर्मध्येन
बाह्लीकान्सुदामानं च पर्वतम्॥१६॥विष्णोः पदं प्रेक्षमाणा विपाशां
चापि शाल्मलीम् । नदीर्वापीस्तटाकानि पल्वलानि सरांसि च
॥१७॥ पश्यन्तो विविधांश्चापि सिंहान्व्याघ्रान्मृगान्द्विपान् । ययुः
पथातिमहता शासनं भर्तुरीप्सवः ॥ १८ ॥ ते श्रान्तवाहना दूता
विकृष्टेन सता पथा । गिरिव्रजं पुरवरं शीघ्रमासेदुरञ्जसा ॥१९॥

टीका—बाह्लीक के मध्य से वेद के पारंगत अञ्जलिपान * ब्राह्मणों को देखकर सुदामा पर्वत पर गये १६ ॥ (सुदामा पर्वत पर) विष्णुपाद को देखते हुए, विपाशा और शाल्मली और

---

* अञ्जलिपान=अञ्जलि से पानी पीने वाले, अपने पास जलपात्र भी न रखने वाले । यह इस देश में प्रचारक ब्राह्मण थे ।

दूसरी नदियों, बावड़ी, तालाब, जोहड़ सरोवरों को ॥ १७ ॥ और अनेक शेर, बाघ, मृग और हाथियों को देखते हुए स्वामी (वसिष्ठ) की आज्ञा को पूरा करते हुए लम्बे मार्ग से गये ॥ १८ ॥ वह दूत थके हुए घोड़ों वाले दूर श्रेष्ठ मार्ग में से पुरवर गिरिव्रज † में शीघ्र पहुंचे ॥ १९ ॥

सर्ग ६१ (व० ७०) दूतों का पहुंचना और भरत का चलना

मूल–समागम्य च राज्ञा ते राजपुत्रेण चार्चिताः । राज्ञः पादौ गृहीत्वा च तमूचुर्भरतं वचः ॥ १ ॥ पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः । त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया ॥ २ ॥ इमानि च महार्हाणि वस्त्राण्याभरणानि च । प्रतिगृह्य विशालाक्ष मातुलस्य च दापय ॥३॥ प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं स्वनुरक्तः सुहृज्जने । दूतानुवाच भरतः कामैः संप्रतिपूज्य तान् ॥ ४ ॥ कच्चित्स कुशली राजा पिता दशरथो मम । कच्चिदारोग्यता रामे लक्ष्मणे च महात्मनि ॥ ५ ॥

टीका–राजा (केकय) से और राजपुत्र (युधाजित) से मिलकर उनसे आदर दिये हुए दूत राजा के पाओं पकड़कर भरत को यह वचन बोले ॥ १ ॥ पुरोहित और सारे मन्त्रियों ने आपको कुशल कहा है, आप से जरूरी काम है, जल्दी चलें ॥ २ ॥ और यह बहुमूल्य वस्त्र और भूषण लेकर हे विशालनेत्र ! मामा को दें ॥ ३ ॥ वह सारी वस्तु लेकर अपने सुहृद्जनों में प्रेमवाला भरत अभिमत वस्तुओं से उनको पूजकर यह बोला ॥ ४ ॥ क्या मेरा पिता राजा दशरथ कुशल से है और राम और महात्मा लक्ष्मण अरोग हैं ॥ ५ ॥

मूल–आर्या च धर्मनिरता धर्मज्ञा धर्मवादिनी अरोगा चापि । कौ-

† गिरिव्रज राजगृह का दूसरा नाम है ।

शल्या माता रामस्य धीमतः ॥ ६ ॥ कच्चित्सुमित्रा धर्मज्ञा जननी लक्ष्मणस्य या । शत्रुघ्नस्य च वीरस्य अरोगा चापि मध्यमा ॥ ७ ॥ अरोगा चापि मे माता कैकेयी किमुवाच ह ॥ ८ ॥ एवमुक्तास्तु ते दूता भरतेन महात्मना । ऊचुः संप्रश्रितं वाक्यमिदं तं भरतं तदा ॥ ९ ॥ कुशलास्ते नरव्याघ्र येषां कुशलमिच्छसि । श्रीश्च त्वां वृणुते पद्मा युज्यतां चापि ते रथः ॥ १० ॥

टीका—धर्म में प्रेमवाली, धर्म के जानने वाली, धर्म ही कहने वाली बुद्धिमान् राम की माता आर्या कौसल्या अरोग है ॥६ ॥ धर्म के जाननेवाली सुमित्रा जो लक्ष्मण की और वीर शत्रुघ्न की माता है, वह अरोग है ॥ ७ ॥ और मेरी माता कैकेयी अरोग है और उसने क्या कहा है ॥ ८ ॥ महात्मा भरत से ऐसे कहे हुए वह दूत भरत से यह नम्र वाक्य बोले ॥ ९ ॥ हे नरव्याघ्र वह सब कुशल से हैं, जिनका आप कुशल चाहते हैं, पद्मों की शोभा आपके चेहरे पर है, अपना रथ जोड़िए (इसी उत्साह से अभी चलना चाहिये) ॥ १० ॥

मूल—भरतश्चापि तान्दूतानेवमुक्तोऽभ्यभाषत । आपृच्छेऽहं महाराजं दूताः संत्वरयन्ति माम् ॥ ११ ॥ एवमुक्त्वा तु तान्दूतान्भरतः पार्थिवात्मजः । दूतैः संचोदितो वाक्यं मातामहमुवाच ह ॥१२ ॥ राजन्पितुर्गमिष्यामि सकाशं दूतचोदितः । पुनरप्यहमेष्यामि यदा मे त्वं स्मरिष्यसि ॥ १३ ॥ भरतेनैवमुक्तस्तु नृपो मातामहस्तदा । तमुवाच शुभं वाक्यं शिरस्याघ्राय राघवम्॥१४॥गच्छ तातानुजाने त्वां कैकेयी सुप्रजास्त्वया । मातरं कुशलं ब्रूयाः पितरं च परंतप ॥

टीका—ऐसा कहने पर भरत ने उन दूतों को कहा "मैं महाराज से आज्ञा लेता हूं, कि दूत मुझे जल्दी चलने को कहते हैं" ॥ ११ ॥ उन दूतों को ऐसा कहकर राजपुत्र भरत दूतों से प्रेरा हुआ

मातामह से यह बोला ॥१२॥ हे राजन्! मैं पिता के पास जाऊंगा, दूत मुझे प्रेरणा करते हैं, फिर जब आप स्मरण करेंगे, फिर आऊंगा ॥१३॥ जब भरत ने ऐसा कहा, तब उसका नाना राजा उस राघव को सिर पर चूम कर यह शुभ वाक्य बोला ॥१४॥ जाओ तात ! तुम्हें अनुज्ञा है, कैकयी तुझसे उत्तम सन्तान वाली है। हे परंतप ! माता को और पिता को कुशल कहना ॥१५॥

मूल--पुरोहितं च कुशलं ये चान्ये द्विजसत्तमाः। तौ च तात महेष्वासौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १६ ॥ तस्मै हस्त्युत्तमांश्चित्रान्कम्बलान्यजिनानि च । सत्कृत्य केकयो राजा भरताय ददौ धनम् ॥ १७ ॥ अन्तःपुरेऽतिसंवृद्धान्व्याघ्रवीर्यबलोपमान् । दंष्ट्रायुक्तान्महाकायाञ्शुनश्चोपायनं ददौ ॥ १८ ॥ रुक्मनिष्कसहस्रे द्वे षोडशाश्वशतानि च। सत्कृत्य केकयीपुत्रं केकयो धनमादिशत्।१९ तदामात्यानभिप्रेतान् विश्वास्यांश्च गुणान्वितान् । ददावश्वपतिः शीघ्रं भरतायानुयायिनः ॥ २० ॥ ऐरावतानैन्द्रशिरान्नागान् वै प्रियदर्शनान् । खराञ्शीघ्रान्सुसंयुक्तान्मातुलोऽस्मै धनं ददौ॥२१॥ स मातामहमापृच्छ्य मातुलं च युधाजितम् । रथमारुह्य भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ ॥ २२ ॥

टीका-पुरोहित और जो दूसरे उत्तमब्राह्मण हैं, उनको और महा धनुर्धारी राम लक्ष्मण को कुशल कहना ॥ १६ ॥ भरत को राजा केकय ने उत्तम हाथी, विचित्र कंबल और मृगान और धन सत्कारपूर्वक दिया ॥ १७ ॥ और अन्तःपुर में पले हुए, बाघ के बल के तुल्य बलवाले, बड़ी २ दाढ़ों वाले, बड़े शरीर वाले कुत्ते भेंट दिये ॥ १८ ॥ दो हजार मुहरें और सोलह सौ घोड़ा यह धन सत्कारपूर्वक केकयी पुत्र को दिया ॥ १९ ॥ तबअश्वपति ने भरत के साथ जाने के लिये अपने

अभिमत, विश्वास पात्र, गुणों वाले मन्त्री दिये ॥ २० ।, और मामा ने इसको इरावत और इन्द्राशिर पर्वतों के सुन्दर हाथी, और तेज चलने वाली खच्चरें दीं ॥ २१ ॥ नाना से और मामा युधाजित से आज्ञा लेकर भरत शत्रुघ्न सहित रथ पर चढ़कर चला गया ॥ २२ ॥

सर्ग ६२ (व० ७१) भरत की यात्रा

मूल—स प्राङ्मुखो राजगृहादभिनिर्याय वीर्यवान् । ततः सुदामां द्युतिमान्संतीर्यावेक्ष्य तां नदीम् ॥१॥ ह्लादिनीं दूरपारां च प्रत्यक्स्रोतस्तरंगिणीम् । शतद्रुमतरच्छ्रीमान्नदीमिक्ष्वाकुनन्दनः ॥२॥ ऐलधाने नदीं तीर्त्वा प्राप्य चापरपर्वतान् । शिलामाकुर्वतीं तीर्त्वा आग्नेयं शल्यकर्षणम् ॥ ३ ॥ सत्यसंधः शुचिर्भूत्वा प्रेक्षमाणः शिलावहाम् । अभ्यगात्स महाशैलान्वनं चैत्ररथं प्रति ॥४॥

टीका—वह वीर्यवान् राजगृह से निकल कर सुदामा नदी को देखकर और उससे पार होकर ॥१॥ दूर किनारे वाली पश्चिम को बहती हुई ह्लादिनी नदी से पार होकर वह श्रीमान् इक्ष्वाकुनन्दन शतद्रु से पार हुआ ॥२॥ ऐलधान ग्राम में नदी से पार हो, अपर पर्वत (देश) में पहुंच कर शिला और आकुर्वती नदी से पार हो आग्नेय और शल्यकर्षण दो ग्रामों के मध्य में ॥३॥ बहती हुई शिलवहा नदी को देखता हुआ वह सच्ची प्रतिज्ञा वाला शुद्ध होकर ऊंचे पर्वतों को लांघकर चैत्र रथ बनको गया

मूल—सरस्वतीं च गङ्गां च युग्मेन प्रतिपद्य च । उत्तरान्वीरमत्स्यानां भारुण्डं प्राविशद्वनम्॥५॥ वेगिनीं च कुलिङ्गाख्यां ह्लादिनीं पर्वतावृताम् । यमुनां प्राप्य संतीर्णो बलमाश्वासयत्तदा ॥ ६ ॥ राजपुत्रो महारण्यमनभीक्ष्णोपसेवितम् । भद्रो भद्रेण यानेन मारुतो

खमिवात्यगात् ॥७॥ भागीरथीं दुष्प्रतरां सोऽंशुधाने महानदीम्।
उपायाद्राघवस्तूर्णं प्राग्वटे विश्रुते पुरे॥ ८ ॥

टीका—सरस्वती और गंगा (यह कोई और सरस्वती गंगा है) दोनों के संगम को पाकर वीरमत्स्यों के उत्तर में भारुण्ड वन में प्रविष्ट हुआ ॥५॥ वेगवाली, गर्जवाली, पर्वतों से घिरी हुई कुलिङ्गा नदी से पार हो, यमुना नदी पर पहुंचकर सेना को विश्राम देता भया ॥६॥ फिर वह नेक उस महावन से—जिस में कि मनुष्य कभी २ प्रवेश करते हैं, आकाश से वायु की तरह उत्तम रथ से पार हुआ ॥७॥ वह राघव अंशुधान ग्राममें महानदी गङ्गा से पार उतरना कठिन जान विख्यात पुर प्राग्वट में जल्दी चला गया ॥ ८ ॥

मूल—स गङ्गां प्राग्वटे तीर्त्वा समायात्कुटिकोष्ठिकाम् । सबलस्तां स तीर्त्वाथ समगाद्धर्मवर्धनम् ॥९॥ तोरणं दक्षिणार्धेन जम्बूप्रस्थं समागमत् । वरूथं च ययौ रम्यं ग्रामं दशरथात्मजः ॥१०॥ तत्र रम्ये वने वासं कृत्वासौ प्राङ्मुखो ययौ । उद्यानमुज्जिहानायाः प्रियका यत्र पादपाः ॥११॥ स तांस्तु प्रियकान्प्राप्य शीघ्रानास्थाय वाजिनः । अनुज्ञाप्याथ भरतो वाहिनीं त्वरितो ययौ ॥१२

टीका—वह प्राग्वटमें गङ्गा से पार होकर कुटिकोष्ठिका नदी पर पहुंचा और सेना समेत उस से पार होकर धर्मवर्धन ग्राम में आया ॥९॥फिर तोरणग्राम के दक्षिण की ओर से जम्बूप्रस्थ में आया, फिर सुहावने वरूथ ग्राम में गया॥१०॥ वहां रमणीय बन में वास करके पूर्वाभिमुख हुआ उज्जिहाना नगरी के बाग को गया, जिस में प्रियक नामी वृक्ष हैं ॥११॥ वह उन प्रियकों को प्राप्त होकर भरत तेज घोड़ों पर सवार हो सेना को पीछे धीरे २ आने की आज्ञा देकर आप जल्दी चला गया (उज्जिहाना से

आगे अपना देश आगया था, इसलिये कोई भय न था) ।१२।

मूल—वासं कृत्वा सर्वतीर्थे तीर्त्वा चोत्तरगां नदीम् । अन्या नदीश्च विविधैः पार्वतीयैस्तुरंगमैः ॥१३॥ अयोध्यां मनुना राज्ञा निर्मितां स ददर्श ह । तां पुरीं पुरुषव्याघ्रः सप्तरात्रोषितः पथि ॥ १४ ॥ अयोध्यामग्रतो दृष्ट्वा सारथिं चेदमब्रवीत् । एषा नातिप्रतीता मे पुण्योद्याना यशस्विनी ॥ १५ ॥ अयोध्यायां पुराशब्दः श्रूयते तुमुलो महान् । समन्तान्नरनारीणां तमद्य न शृणोम्यहम् ॥१६॥

टीका—सर्वतीर्थ ग्राम में वास करके उत्तरगा नदी तथा और भी बहुतसी नदियों और पर्वतों से घोड़ों द्वारा पार उतर कर॥१३॥ राजा मनु से निर्माण की अयोध्या नगरी को देखता भया, जो मार्ग में सात रात बिता चुका है ॥ १४ ॥ अयोध्या को सामने देखकर सारथि से यह बोला, यह पवित्र बगीचोंवाली यशवाली पुरी आज बहुत प्रसन्न नहीं है ॥ १५ ॥ अयोध्या में चारों ओर नर नारियों का जो तुमल शब्द सुनाई देता था, वह आज नहीं सुनता हूं ॥ १६ ॥

मूल—उद्यानानि हि सायाह्ने क्रीडित्वोपरतैर्नरैः ... यानैर्दृश्यन्ते न गजैर्न च वाजिभिः । निर्यान्तो वाभियान्तो वा नरमुख्या यथा पुरा ॥ १७॥ सर्वथा कुशलं सूत दुर्लभं मम बन्धुषु । तथा ह्यमति संमोहे हृदयं सीदतीव मे ॥ १८ ॥ विषण्णः श्रान्तहृदयस्त्रस्तः संलुलितेन्द्रियः । भरतः प्रविवेशाशु पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम् ॥१९॥ द्वारेण वैजयन्तेन प्राविशच्छान्तवाहनः । द्वाःस्थैरुत्थाय विजयं पृष्टस्तैः सहितो ययौ ॥२०॥ तां शून्यशृङ्गाटकवेश्मरथ्यां रजोरुणद्वारकवाटयन्त्राम् । दृष्ट्वा पुरीमिन्द्रपुरीप्रकाशां दुःखेन संपूर्णतरो बभूव ॥२१॥ बभूव पश्यन्मनसोऽप्रियाणि यान्यन्यदा नास्य पुरे बभूवुः । अवाक्शिरा दीनमना न हृष्टः पितुर्महात्मा प्रविवेश वेश्म ॥२२॥

टीका—न आज यानों हाथियों और घोड़ों से आते जाते हुए नरवर दीखते हैं, जैसे हुआ करते थे ॥ १७ ॥ सर्वथा हे सूत मेरे बन्धुओं में कुशल दुर्लभ है, जैसा कि बिना मूर्छा के मेरा हृदय मानों गिर रहा है ॥ १८ ॥ उदास खिन्नचित्त, भीत, मुरझाए इन्द्रियोंवाला भरत इक्ष्वाकुओं से पालित पुरी में प्रविष्ट हुआ ॥ १९ ॥ वह थके हुए घोड़ों वाला वैजयन्त द्वार से प्रविष्ट हुआ, द्वारपालों ने खड़े होकर विजय पूछा, और फिर उनके साथ आगे गया ॥ २० ॥ इन्द्रपुरी के सदृश उस पुरी के आज चौरस्ते मन्दिर और गलियें शून्य देख कर दरवाजों के किवाड़ और यन्त्र धूल से धूसर देखकर दुःख से और भी भर गया॥२१॥ मन की यह अप्रिय बातें, जो और समय इस के पुर में कभी नहीं हुई थीं, इन को देखता हुआ वह महात्मा सिर नीचे किये दीन अप्रसन्न हुआ पिता के मन्दिर में प्रविष्ट हुआ ॥ २२ ॥

सर्ग ६३ (व० ७२) घर में माता के मुख से पिता की मृत्यु सुनना

मूल—अपश्यंस्तु ततस्तत्र पितरं पितुरालये। जगाम भरतो द्रष्टुं मातरं मातुरालये ॥१॥ अनुप्राप्तं तु तं दृष्ट्वा कैकयी प्रोषितंसुतम् उत्पपात तदा हृष्टा त्यक्त्वा सौवर्णमासनम् ॥२॥ समाविश्यैव धर्मात्मा स्वगृहं श्रीविवर्जितम्। भरतः प्रेक्ष्य जग्राह जनन्याश्चरणौ शुभौ ॥३॥ तं मूर्ध्नि समुपाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनम्। अङ्के भरतमारोप्य प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥४॥ अद्य ते कतिचिद्रात्र्य श्च्युतस्यार्यकवेश्मनः। अपि नाध्वश्रमः शीघ्रं रथेनापततस्तव ५

टीका—वहां पिता के घर में पिता को न देख कर माता के घर माता के दर्शन को गया ॥ १ ॥ उस अपने पुत्र को प्रवास से आया देख कर तब वह प्रसन्न हुई सोने के आसन से उठ खड़ी हुई ॥२॥ वह धर्मात्मा भरत श्रीविहीन अपने घर में प्रविष्ट होते

ई। माता के शुभ चरणों को ग्रहण करता भया ॥३॥ उस यशस्वी को माथे पर चूम कर और आलिङ्गन करके गोद में बिठलाकर पूछने लगी ॥४॥ आज तुझे नाना के घर से निकले को कितनी रातें हुई हैं, रथ से जल्दी आते हुए तुझ को मार्ग में थकावट तो नहीं हुई

मूल–आर्यकस्ते सुकुशली युधाजिन्मातुलस्तव। प्रवासाच्च सुखं पुत्र सर्वं मे वक्तुमर्हसि ॥६॥ एवं पृष्टस्तु कैकेय्या प्रियं पार्थिवनन्दनः। आचष्ट भरतः सर्वं मात्रे राजीवलोचनः ॥७॥ अद्य मे सप्तमी रात्रिश्च्युतस्यार्यकवेश्मनः। अम्बायाः कुशली तातो युधाजिन्मातुलश्च मे ॥८॥ यन्मे धनं च रत्नं च ददौ राजा परंतपः। परिश्रान्तं पथ्यभवत्ततोऽहं पूर्वमागतः ॥९॥ राजवाक्यहरैर्दूतैस्त्वर्यमाणोऽहमागतः। यदहं प्रष्टुमिच्छामि तदम्बावक्तुमर्हति १०

टीका–तेरा नाना और युधाजित मामा अच्छे कुशल वाले हैं, प्रवास से जो सुख हुआ हो, हे पुत्र वह सब मुझे कहने योग्य हो ॥६॥ इस प्रकार कैकेयी से पूछा हुआ वह कमलनेत्र राजपुत्र भरत माता को सब कुछ कहता भया ॥७॥ आज मुझे नाना के घर से निकले सातवीं रात है, अम्बा का पिता और मेरा मामा युधाजित कुशली हैं ॥८॥ जो कुछ मुझे धन और रत्न उस परन्तप राजा ने दिया है, वह अभी थकावट के हेतु मार्ग में है, मैं उस से पहले आगया हूं ॥९॥ राज्य का संदेश लेजाने वाले दूतों से जल्दी कराया हुआ मैं आया हूं, जो कुछ मैं पूछना चाहता हूं, उस के बतलाने की अम्बा कृपा करें १०

मूल–राजा भवति भूयिष्ठमिहाम्बाया निवेशने। तमहं नाद्य पश्यामि द्रष्टुमिच्छन्निहागतः ॥११॥ पितुर्ग्रहीष्ये पादौ च तं ममाख्याहि पृच्छतः। आहोस्विदम्बाज्येष्ठायाः कौसल्याया निवेशने ॥१२॥ तं प्रत्युवाच कैकेयी प्रियवद्घोरमप्रियम्। अजा

नन्तं प्रजानन्ती राज्यलोभेन मोहिता ॥१३॥ या गतिः सर्व-भूतानां तां गतिं ते पिता गतः। राजा महात्मा तेजस्वी यायजूकः सतां गतिः ॥१४॥ तच्छ्रुत्वा भरतो वाक्यं धर्माभिजनवाञ्छुचिः। पपात सहसा भूमौ पितृशोकबलार्दितः॥१५॥ बाष्पमुत्सृज्य कण्ठेन स्वात्मना परिपीड़ितः। जननीं प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृतः॥१६॥

टीका—राजा बहुधा यहां अम्बा के घर में हुआ करते हैं, उन को मैंने अभी नहीं देखा है, देखने की इच्छा से यहां आया हूं ॥११॥ मैं पिता जी के चरण ग्रहण करूंगा, उन का मुझे पता दीजिए, क्या वह बड़ी माता कौसल्या के महल में हैं ॥१२॥ राज्य के लोभ से मोहित हुई कैकयी न जानते हुए उस के प्रति भयंकर अप्रिय वाक्य प्रिय की तरह जानती हुई बोली ॥१३॥ जो अन्तिमगति सब भूतों की है, उस गति को महा तेजस्वी यज्ञशील सत्पुरुषों का आश्रय तेरा पिता प्राप्त हुआ है ॥१४॥ धार्मिक वंश वाला पवित्र भरत यह सुन कर पितृशोक के वेग से पीड़ित हुआ सहसा भूमि पर गिर पड़ा।१५। कण्ठ स्वर के साथ आंसु छोड़ कर अपने मन से पीड़ित हुआ बहुत शोकों से युक्त हुआ माता से यह बोला ॥१६॥

सर्ग ६४ (व० ७२) माता से राम का वनगमन सुनना

मूल—अभिषेक्ष्यति रामं तु राजा यज्ञं नु यक्ष्यते। इत्यहं कृत-संकल्पो हृष्टो यात्रामयासिषम् ॥१॥ तदिदं ह्यन्यथाभूतं व्यवदीर्णं मनोमम। पितरं यो न पश्यामि नित्यं प्रियहिते रतम् ॥२॥ अम्ब केनात्यगाद्राजा व्याधिना मय्यनागते। धन्या रामादयः सर्वे यैः पिता संस्कृतः स्वयम् ॥३॥ न नूनं मां महाराजः प्राप्तं जानाति कीर्तिमान्। उपाजिघ्रेत्तु मां मूर्ध्नि तातः संनाम्य सत्वरम् ॥४॥ क स पाणिः सुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः। यो हि मां रजसा

ध्वस्तमभीक्ष्णं परिमार्जति ॥५॥+यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य-
दासोऽस्मि संमतः । तस्य मा शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः६

टीका–राजाजी राम को तिलक देंगे और यज्ञ करेंगे, यह मन में धार प्रसन्न हुआ मैं इस यात्रा में चला था ॥ १ ॥ यह मेरा सोचा हुआ उलटा होगया है, मेरा मन टुकड़े २ होरहा है, जो मैं सदा प्रिय हित में रत हुए पिता को नहीं देखता हूं ॥ २ ॥ हे अम्ब! किस रोग से मेरे पहुंचने से पहिले ही राजा बीत गये, रामादि सब धन्य हैं, जिन्होंने अपने हाथों से पिता का संस्कार किया ॥ ३ ॥ निःसन्देह कीर्तिमान् महाराज मुझे आया हुआ नहीं जानते हैं, नहीं तो बड़ी जल्दी झुकाकर मुझे सिर पर चूमते ॥ ४ ॥ कहां वह शुभ कर्मोंवाले तात का सुख स्पर्श हाथ, जो मुझे धूल से लिबड़े हुए को बार २ पोंछे ॥ ५ ॥ जो मेरा पितृ-तुल्य बन्धु है, जिसका मैं माना हुआ दास हूं, उस शुभ कर्मों वाले राम का मुझे जल्दी पता दीजिये ॥ ६ ॥

मूल–+पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः । तस्य पादौ ग्रहीष्यामि सहीदानीं गतिर्मम ॥७॥ धर्मविद्धर्मशीलश्च महाभागो दृढव्रतः । आर्ये किमब्रवीद्राजा पिता मे सत्यविक्रमः ॥८॥ पश्चिमं साधुसंदेशमिच्छामि श्रोतुमात्मनः । इति पृष्टा यथातत्त्वं कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥९॥ रामेति राजा विलपन्हा सीते लक्ष्मणेति च । स महात्मा परं लोकं गतो मतिमतां वरः ॥१०॥ इतीमां पश्चिमां वाचं व्याजहार पिता तव । कालधर्मं परिक्षिप्तः पाशैरिव महागजः ॥११॥ सिद्धार्थास्तु नरा राममागतं सह सीतया । लक्ष्मणं च महाबाहुं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम् ॥१२॥

टीका–धर्म को पहचानते हुए आर्य का बड़ा भाई सचमुच पिता ही होता है, सो मैं उसके चरण पकड़ूंगा, वही अब मेरा आश्रय

है ॥ ७ ॥ और धर्मज्ञ, धर्मशील, सच्चे पराक्रम वाले दृढ़व्रत मेरे पिता राजा ने हे आर्ये ! क्या कहा ॥ ८ ॥ अपने लिये उस अन्तिम पवित्र सन्देश को सुनना चाहता हूं, ऐसा पूछने पर कैकेयी ठीक २ वाक्य बोली ॥ ९ ॥ "हा राम हा सीता हा लक्ष्मण इसप्रकार विलाप करता हुआ वह बुद्धिमानों में श्रेष्ठ महात्मा (तेरा पिता) परलोक को गया (कोई सन्देश नहीं कहा) ॥ १० ॥ फांसों से बन्धे हुए महागज की तरह कालधर्म को प्राप्त हुआ तेरा पिता यह अन्तिम वचन बोला ॥ ११ ॥ कि कृतकृत्य होंगे वह लोक, जो सीता के सहित राम को और महाबाहु लक्ष्मण को फिर आया हुआ देखेंगे ॥ १२ ॥

मूल–तच्छ्रुत्वा विषमादेव द्वितीयाप्रियशंसनात् । विषण्णवदनोभूत्वा भूयः पप्रच्छ मातरम् ॥ १३ ॥ क चेदानीं स धर्मात्मा कौसल्यानन्दवर्धनः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च समं गतः ॥१४ ॥ तथा पृष्टा यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे । मातास्य युगपद्वाक्यं विप्रियं प्रियशंकया ॥ १५ ॥ स हि राजसुतः पुत्र चीरवासा महावनम् । दण्डकान्सह वैदेह्या लक्ष्मणानुचरो गतः ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वा भरतस्त्रस्तो भ्रातुश्चारित्रशङ्कया । स्वस्य वंशस्य माहात्म्यात्प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥१७॥+ कच्चिन्न ब्राह्मणधनं हृतं रामेण कस्यचित् । कच्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसतः ॥ १८ ॥

टीका–यह दूसरा अप्रिय सुन कर उसका मन अत्यन्त डिगगया, चेहरा मुरझा गया और फिर माता से बोला ॥ १३ ॥ कहां अब वह धर्मात्मा कौसल्या का आनन्दवर्धन भाई लक्ष्मण के और सीता के साथ गया है ॥ १४ ॥ ऐसा पूछने पर उसकी माता असली बात उस को प्रिय के भ्रम से विप्रिय कहने लगी ॥१५॥ हे पुत्र वह राजपुत्र चीर पहिन सीता और लक्ष्मण के साथ

दण्डक महावन को गया है ॥ १६ ॥ यह सुनकर भाई के चरित्र की शङ्का से भीत हुआ भरत अपने वंश के माहात्म्य (वंश में असदाचार के न आने के माहात्म्य) से पूछने लगा ॥१७॥ क्या राम ने किसी ब्राह्मण का धन तो नहीं छीना है, वा क्या उसने किसी निरपराध धनी वा दरिद्र को तो नहीं मारडाला ॥१८॥

मूल—+कच्चिन्न परदारान्वा राजपुत्रोऽभिमन्यते। कस्मात्स दण्डकारण्ये भ्रूणहेव विवासितः ॥ १९ ॥ एवमुक्ता तु कैकेयी भरतेन महात्मना। उवाच वचनं हृष्टा वृथापण्डितमानिनी ॥२० ॥+न ब्राह्मणधनं किंचिद्धृतं रामेण कस्यचित्। कश्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः ॥ २१ ॥+ न रामः परदारान्स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति ॥ २२ ॥ मया तु पुत्र श्रुत्वैव रामस्येहाभिषेचनम्। याचितस्ते पिता राज्यं रामस्य च विवासनम्॥ २३॥ स स्ववृत्तिं समास्थाय पिता ते तत्तथाकरोत्। रामस्तु सहसौमित्रिः प्रेषितः सह सीतया ॥ २४ ॥ त्वया त्विदानीं धर्मज्ञ राजत्वमवलम्ब्यताम्। त्वत्कृते हि मया सर्वमिदमेवंविधं कृतम् ॥२५ ॥ मा शोकं मा च संतापं धैर्यमाश्रय पुत्रक। त्वदधीना हि नगरी राज्यं चैतदनामयम् ॥ २६ ॥

टीका—अथवा क्या राम ने परनारी की धर्षणा तो नहीं की, क्यों वह दण्डक वन में गर्भहत्यारे की तरह निकाला गया है। १९। महात्मा भरत से ऐसे कही हुई अपने आपको पण्डिता मानने वाली मूढ़ कैकेयी प्रसन्न होकर यह वचन बोली ॥ २० ॥ राम ने किसी ब्राह्मण का कोई धन नहीं छीना है, न ही उसने कोई निरपराधी धनी वा निर्धन मारा है ॥ २१ ॥ और परनारी को तो राम नेत्रों से भी नहीं देखता है ॥ २२ ॥ किन्तु मैंने हे पुत्र राम का अभिषेक सुनकर तेरे पिता से (तेरे लिये) राजा होना और राम का निकालाजाना मांग लिया ॥ २३ ॥ सो तेरे

पिता ने अपने धर्म को आश्रय कर वह वैसा कर दिया, राम को सीता के साथ और लक्ष्मण के साथ भेज दिया ॥ २४ ॥ परन्तु अब तुझे हे धर्मज्ञ राज्य को सहारा देना चाहिए, तेरे अर्थ ही मैंने यह सब इस प्रकार का किया है ॥ २५ ॥ मत शोक और मत सन्ताप कर, हे पुत्रक ! धैर्य धर, तेरे अधीन ही यह नगरी है और तेरे अधीन ही यह निरुपद्रव राज्य है ॥२६॥

सर्ग ६५ (व० ७३) भरत का विलाप

मूल—श्रुत्वा तु पितरं वृत्तं भ्रातरौ च विवासितौ । भरतो दुःख संतप्त इदं वचनमब्रवीत् ॥१॥ किं नु कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः । विहीनस्याथ पित्रा च भ्रात्रा पितृसमेन च ॥२॥ दुःखे मे दुःखमकरोर्व्रणे क्षारमिवाददाः । राजानं प्रेतभावस्थं कृत्वा रामं च तापसम् ॥३॥ त्वां प्राप्य हि पिता मेऽद्य सत्यसंधो महा-यशाः । तीव्रदुःखाभिसंतप्तो वृत्तो दशरथो नृपः ॥ ४ ॥

टीका—पिता का मरना और भाइयों का निकालजाना सुनकर भरत दुःख से संतप्त हुआ यह वचन बोला ॥ १ ॥ मुझ मन्दभाग्य को यहां राज्य से क्या कार्य है, जो शोक में पड़ा हूं, पिता से और पितृ-तुल्य भाई से विहीन हुआ हूं ॥ २ ॥ मेरे दुःख पर तूने दुःख उत्पन्न किया, व्रण पर मानों नमक छिड़का, राजा को मृत्युवश करके और राम को तपस्वी बनाकर ॥३॥ तुझे पाकर अब मेरा पिता महायशस्वी सच्ची प्रतिज्ञा वाला राजा दशरथ तीव्र दुःख से संतप्त होकर मरा है ॥ ४ ॥

मूल—कौसल्या च सुमित्रा च पुत्रशोकाभिपीड़िते । दुष्करं यदि जीवेतां प्राप्य त्वां जननीं मम ॥ ५ ॥ नन्वार्योऽपि च धर्मात्मा त्वयि वृत्तिमनुत्तमाम् । वर्तते गुरुवृत्तिज्ञो यथा मातरि वर्तते ॥६॥ तथा ज्येष्ठा हि मे माता कौसल्या दीर्घदर्शिनी । त्वयि धर्मं समा-

स्थाय भगिन्यामिव वर्तते ॥७॥ तस्याः पुत्रं महात्मानं चीरवल्कल-
वाससम् । प्रस्थाप्य वनवासाय कथं पापे न शोचसे ॥ ८ ॥

टीका—तुझ मेरी जननी को पाकर यदि कौसल्या और सुमित्रा पुत्रशोक से पीडित हुई जीती रहें, यह बड़ा दुष्कर है ॥५॥ तुझ से भी तो वह गुरुओं में बर्ताव के जानने वाला आर्य (राम) उत्तम बर्ताव करता था जैसा अपनी माता से ॥ ६ ॥ और वैसे ही मेरी जेठी माता दीर्घदर्शिनी कौसल्या धर्म का आश्रय कर तुझ से बहिन की तरह वर्तती थी ॥७॥ उसके पुत्र महात्मा को चीर और बकल के वस्त्र पहना कर वनवास के लिये भेजकर हे पापे तुझे किस तरह शोक नहीं होता है ॥ ८ ॥

मूल—अपापदर्शिनं शूरं कृतात्मानं यशस्विनम् । प्रव्राज्य चीरवसनं किं नु पश्यसि कारणम् ॥ ९ ॥ लुब्धाया विदितो मन्ये न तेऽहं राघवं यथा । तथा ह्यनर्थो राज्यार्थं त्वया नीतो महानयम् ॥१०॥ अहं हि पुरुषव्याघ्रावपश्यन्रामलक्ष्मणौ । केन शक्तिप्रभावेण राज्यं रक्षितुमुत्सहे ॥११॥ अथवा मे भवेच्छक्तिर्योगैर्बुद्धिबलेन वा । सकामां न करिष्यामि त्वामहं पुत्रगर्धिनीम् ॥१२॥

टीका—जिसके सामने कभी बुराई नहीं आई, ऐसे यशस्वी जितेन्द्रिय शूरवीर को चीर वस्त्रों से निकाल कर तू क्या लाभ देखती है ॥९॥ मैं जानता हूं, तुझ लोभन ने, जैसा मैं राम के लिये हूं, नहीं समझा, जिससे कि तू ने राज्य के अर्थ यह बड़ा अनर्थ कर दिया है ॥१०॥ मैं पुरुष श्रेष्ठ राम और लक्ष्मण को न देखता हुआ किस शक्तिबल से राज्य की रक्षा कर सक्ता हूं ॥११॥ अथवा उपायों से और बुद्धिबल से मेरी शक्ति हो भी, तौ भी तुझ पुत्र की लालसा वाली (न कि धर्म के देखने वाली) को मैं पूर्ण कामना वाली नहीं करूंगा (अन्यथा मैं भी लोक में दूषित होजाउं) ॥

मूल—+न मे विकाङ्क्षा जायेत त्यक्तुं त्वां पापनिश्चयाम्। यदि रामस्य नावेक्षा त्वयि स्यान्मातृवत्सदा ॥ १३ ॥ उत्पन्ना तु कथं बुद्धिस्तवेयं पापदर्शिनी । साधुचारित्रविभ्रष्टे पूर्वेषां नो विगर्हिता ॥१४॥ अस्मिन्कुले हि सर्वेषां ज्येष्ठो राज्येऽभिषिच्यते । अपरे भ्रातरस्तस्मिन्प्रवर्तन्ते समाहिताः ॥१५ ॥ सततं राजपुत्रेषु ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते । राज्ञामेतत्समं तत्स्यादिक्ष्वाकूणां विशेषतः॥१६॥

टीका—तुझ पाप निश्चय वाली को त्यागने की मेरी अनिच्छा न हो, यदि राम की मातृवत् दृष्टि तुझ में सदा न हो ॥ १३ ॥ हे साधु-चरित्र से गिरी हुई तुझ यह पापको देखने वाली बुद्धि कैसे उत्पन्न हुई, जो हमारे बड़ों से निन्दित है ॥१४॥ इस कुल में सब से बड़ा राज्य में अभिषिक्त किया जाता है,दूसरे भाई उसके साथ सावधान होकर रहते हैं॥१६॥सदा राजपुत्रों में बड़े को राज्याभिषेक होता है, यह बात सब राजाओं की बराबर है,इक्ष्वाकुओं की विशेष करके है॥

मूल—तेषां धर्मैकरक्षाणां कुलचारित्रशोभिनाम् । अद्य चारित्रशौटीर्यं त्वां प्राप्य विनिवर्तितम् ॥१७॥ तत्रापि सुमहाभागा जनेन्द्राः कुलपूर्वकाः । बुद्धिमोहः कथमयं संभूतस्त्वयि गर्हितः॥१८॥ न तु कामं करिष्यामि तवाहं पापनिश्चये । यया व्यसनमारब्धं जीवितान्तकरंमम॥१९॥ एष त्विदानीमेवाहमप्रियार्थं तवानघे । निवर्तयिष्यामि वनाद्भ्रातरं स्वजनप्रियम् ॥ २० ॥+निवर्तयित्वा रामं च तस्याहं दीप्ततेजसः । दासभूतो भविष्यामि सुस्थितेनान्तरात्मना

टीका—केवल धर्म की रक्षा करने वाले, कुल के चरित्र से शोभा वाले उन (इक्ष्वाकुओं) का अब चरित्र का अभिमान तुझे पाकर टूट गया है॥१७॥ तेरे भी कुल के बड़े २ भाग्यशाली राजे हुए हैं, फिर तुझे यह निन्दित बुद्धिमोह कैसे उत्पन्न हुआ १८॥ तेरी कामना को हे पापनिश्चयवाली मैं नहीं करूंगा,

जिसने मेरे जीवन का अन्त करने वाली विपत्ति आरम्भ की है ॥१९॥ अभी यह मैं, अपने जनों के प्यारे, अपने निरपराध भाई को बन से लौटा लाऊंगा ॥२०॥ राम को लौटाकर उस चमकते हुए तेज वाले का सुखी मन से दास होकर रहूंगा ।२१।

सर्ग ६६ (व० ७४) अधिक विलाप

मूल—तां तथा गर्हयित्वा तु मातरं भरतस्तदा । रोषेण महताविष्टः पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥१॥ किं नु तेऽदूषयद्रामो राजा वा भृशधार्मिकः । ययोर्मृत्युर्विवासश्च त्वत्कृते तुल्यमागतौ ॥२॥ त्वत्कृते मे पिता वृत्तो रामश्चारण्यमाश्रितः । अयशो जीवलोके च त्वयाऽहं प्रतिपादितः ॥३॥ कौसल्यां धर्मसंयुक्तां वियुक्तां पापनिश्चये । कृत्वा कं प्राप्यसे ह्यद्य लोकं निरयगामिनी ॥४॥ एकपुत्रा च साध्वी च विवत्सेयं त्वया कृता । तस्मात्त्वं सततं दुःखं प्रेत्य चेह च लप्स्यसे ॥५॥+ अहं त्वपचितिं भ्रातुः पितुश्च सकलामिमाम् । वर्धनं यशसश्चापि करिष्यामि न संशयः ॥६॥

टीका—भरत माता को इस तरह निंद कर बडे रोष से भरा हुआ फिर भी यह वचन बोला ॥१॥ रामने और सदा धार्मिक राजा ने तेरा क्या बिगाडा था, जिन का मृत्यु और निकालना तेरे अर्थ एक साथ आए ॥२॥ तेरे अर्थ मेरा पिता मरा, राम बन में निकाला गया, तूने जीवलोक में मुझे बड़ा अपयश दिलाया है ।३। हे पापनिश्चय वाली! तू धर्म वाली कौसल्या को (पुत्र से) वियुक्त करके किस लोकको प्राप्त होगी, तू अब नरकगामिनी होगी ॥४॥ एक पुत्र वाली पतिव्रता को तूने बिना पुत्र के कर दिया है, इस लिये तू इस लोक में भी और मर कर भी निरन्तर दुःख को प्राप्त होगी ॥५॥ मैं तो भाई और पिता की पूरी पूजा करूंगा और उन के यश को बढाऊंगा, इस में संशय नहीं ॥६॥

मूल—आनाय्य च महाबाहुं कोशलेन्द्रं महाबलम्। स्वयमेव प्रवेक्ष्यामि वनं मुनिनिषेवितम्॥७॥नत्वहं पापसंकल्पे पापे पापं त्वया कृतम्। शक्तोधारयितुं पौरैरश्रुकण्ठैर्निरीक्षितः ॥ ८ ॥ इति नाग इवारण्ये तोमराङ्कुशतोदितः । पपात भुवि संक्रुद्धो निःश्वसन्निव पन्नगः ॥

टीका—कोशल के मालिक महाबाहु महाबली को यहां लाकर स्वयमेव मुनियों से सेवित बन में प्रवेश करूंगा ॥७॥ हे पापे पाप संकल्प वाली तुझ से किये पाप को मैं उठा नहीं सक्ता, जब कि पुर के लोग आंसुओं से भरे कण्ठों से मेरी ओर देखें ॥८॥ इस प्रकार जंगल में तोमर और अंकस से पीडित हाथी की तरह पीडित हुआ क्रुद्ध हुए नाग की तरह सांस लेता हुआ भरत पृथिवी पर गिर पड़ा ॥९॥

सर्ग ६७ (व० ७५) कौसल्या के सन्मुख भरत की शपथें

मूल—दीर्घकालात्समुत्थाय संज्ञां लब्ध्वा स वीर्यवान् । नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां दीनामुद्वीक्ष्य मातरम् ॥ १ ॥ सोऽमात्यमध्ये भरतो जननीमभ्यकुत्सयत् । राज्यं न कामये जातु मन्त्रये नापि मातरम् ॥२॥ अभिषेकं न जानामि योऽभूद्राज्ञा समीक्षितः । विप्रकृष्टे ह्यहं देशे शत्रुघ्नसहितोऽभवम् ॥३॥वनवासं न जानामि रामस्याहं महात्मनः । विवासनं च सौमित्रेः सीतायाश्च यथाभवत् ॥ ४ ॥ तथैव क्रोशतस्तस्य भरतस्य महात्मनः । कौसल्या शब्दमाज्ञाय सुमित्रां चेदमब्रवीत् ॥५॥ आगतः क्रूरकार्यायाः कैकेय्या भरतः सुतः । तमहं द्रष्टुमिच्छामि भरतं दीर्घदर्शिनम् ॥ ६ ॥

टीका—दीर्घ काल के पीछे उठकर होश में आकर आंसु भरे नेत्रों से दीना माता की ओर देखकर, वह शक्तिमान् ॥ १ ॥ भरत मन्त्रियों के मध्य में माता की निन्दा करता भया, मैंने राज्य की कभी कामना नहीं की, इस में माता से मेरी सम्मति नहीं है ॥२॥

मैं उस अभिषेक को नहीं जानता हूं, जो राजा ने निश्चय किया था, मैं शत्रुघ्न समेत दूर देश में था ॥३॥ मैं महात्मा राम के, लक्ष्मण के और सीता के वनवास को नहीं जानता हूं, जैसे हुआ है ॥ ४ ॥ महात्मा भरत के इस प्रकार पुकारते हुए कौसल्या उसके शब्द को, सुनकर सुमित्रा से यह बोली ॥५॥ क्रूर कर्म वाली कैकेयी का पुत्र भरत आया है, मैं उस दीर्घदर्शी भरत को देखना चाहती हूं ॥६॥

मूल—एवमुक्त्वा सुमित्रां तां विवर्णवदना कृशा । प्रतस्थे भरतो यत्र वेपमाना विचेतना ॥७॥ स तु राजात्मजश्चापि शत्रुघ्नसहितस्तदा । प्रतस्थे भरतो येन कौसल्याया निवेशनम् ॥ ८ ॥ ततः शत्रुघ्नभरतौ कौसल्यां प्रेक्ष्य दुःखितौ । पर्यष्वजेतां दुःखार्तां पतितां नष्टचेतनाम् ॥ ९ ॥ रुदन्तौ रुदती दुःखात्समेत्यार्या मनस्विनी । भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता ॥१०॥ + इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम्। संप्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा ॥११॥+प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम् । कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी ॥ १२ ॥

टीका—सुमित्रा को ऐसा कहकर मुरझाए मुख वाली दुर्बल कांपती हुई चेतना से शून्य हुई वह भरत की तर्फ रवाना हुई ॥ ७ ॥ उधर वह राजपुत्र भरत भी शत्रुघ्न के सहित कौसल्या के घर आया ॥८॥ तब भरत और शत्रुघ्न कौसल्या को देख कर दुःखित हुए दुःख से पीड़ित हो बेहोश गिरी माता के गले लगे ॥९॥ दुःख से रोती हुई वह मनस्विनी आर्या रोते हुओं को गले लगाकर अत्यन्त दुःखित हो भरत से यह बोली ॥१०॥ यह तुझ राज्य कामना वाले को अकण्टक राज्य प्राप्त हुआ है, शोक जो कैकेयी ने क्रूर कर्म से शीघ्र प्राप्त किया है ॥ ११ ॥ मेरे पुत्र को चीर पहना बन में बसने के लिये निकालकर क्रूर देखने वाली कैकेयी इस में क्या गुण देखती है ॥ १२ ॥

मूल—+क्षिप्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति हिरण्यनाभो यत्रास्ते सुतो मे सुमहायशाः ॥१३॥+अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम् । अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य प्रस्थास्ये येन राघवः ॥१४॥ + कामं वा स्वयमेवाद्य तत्र मां नेतुमर्हसि । यत्रासौ पुरुषव्याघ्रस्तप्यते मे सुतस्ततः ॥१५॥ इदं हि तव विस्तीर्णं धनधान्यसमाचितम् । हस्त्यश्वरथसंपूर्णं राज्यं निर्यातितं तया ॥१६॥ एवं विलपमानां तां प्राञ्जलिर्भरतस्तदा । कौसल्यां प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृताम् ॥ १७ ॥

टीका—जल्दी कैकेयी मुझे भी वहां भेजने की कृपा करे, जहां सुनहरी नाभि वाला बड़े यश वाला मेरा पुत्र है ॥ १३ ॥ अथवा आपही सुमित्रा के साथ अग्निहोत्र को साथ लेकर सुख से वहां जाऊंगी, जहां राघव है ॥१४॥ भले ही तूही मुझे वहां लेचल जहां वह पुरुषश्रेष्ठ मेरा पुत्र तप तप रहा है ॥१५॥ धनधान्य से भरा हुआ, हाथी घोड़े रथों से पूर्ण, विस्तीर्ण राज्य उस (कैकेयी) ने तेरे लिए शोध दिया है ॥१६॥ इस प्रकार बहुत शोकों से घिरी हुई विलपती हुई उस कौसल्या को भरत हाथ जोड़कर यह उत्तर देता है

मूल—आर्ये कस्मादजानन्तं गर्हसे मामकल्मषम् । विपुलां च मम प्रीतिं स्थितां जानासि राघवे ॥१८॥ कृतशास्त्रानुगा बुद्धिर्मा भूत्तस्य कदाचन । सत्यसन्धः सतां श्रेष्ठो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥१९॥ प्रैष्यं पापीयसां यातु सूर्यं च प्रतिमेहतु । हन्तु पादेन गां सुप्तां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२०॥ कारयित्वा महत्कर्म भर्ता भृत्यमनर्थकम् । अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमते गतः

टीका—हे आर्ये तू क्यों बेखबर मुझ निरपराध को निन्दती है तू राम में स्थित मेरी विपुल प्रीति को जानती है ॥१८॥ सच्ची प्रतिज्ञावाले सत्पुरुषों में श्रेष्ठ आर्य(बड़ाभाई)जिसकी सम्मतिमें गया है उस की

बुद्धि कभी भी सीखे हुए शास्त्र के अनुसार न हो (इस से बढ़कर कोई अनर्थ है नहीं, इस लिए यह परम सौगन्द है, शेष इसी का विस्तार है)॥१९॥वह पापियों की नौकरी करे,सूर्यकी ओर मुखकरके प्रस्राव करे, सोई हुई गौ को पाओं से हनन करे,जिसकी आर्य्य अनुमति में गया है ॥२०॥ जो स्वामी नौकर से बड़ा कर्म करवाकर उसको फल न देवे, जो पाप उसको होता है,वह उसको हो, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥२१॥

मूल—परिपालयमानस्य राज्ञो भूतानि पुत्रवत् । ततस्तु द्रुह्यतां पापं यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२२॥ बलिषड्भागमुद्धृत्य नृपस्यारक्षितुः प्रजाः । अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमतेगतः ॥२३॥ हस्त्यश्वरथसंबाधे युद्धे शस्त्रसमाकुले । मा स्म कार्षीत्सतां धर्मं यस्यार्योनुमते गतः ॥२४॥ विश्वासात्कथितं किंचित्परिवादं मिथः क्वचित् । विवृणोतु स दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२५॥ अकर्त्ता चाकृतज्ञश्च त्यक्तश्चनिरपत्रपः । लोके भवतु विद्विष्टो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२६॥ पुत्रैर्दासैश्च भृत्यैश्च स्वगृहे परिवारितः । स एको मृष्टमश्नातु यस्यार्योऽनुमते गतः

टीका—पुत्र की तरह लोगों का पालन करते हुए राजा से द्रोह करने वालों को जो पाप होता है, वह उस को हो, जिस की आर्य अनुमति में गया है ॥२२॥ छटा भाग कर (मुआमला) लेकर प्रजा की रक्षा न करते हुए राजा को जो पाप होता है वह उस को हो, जिसकी आर्य अनुमति में गया है॥२३॥ हाथी घोड़े रथों की भीड़ वाले शस्त्रों से व्याप्त युद्ध में वह पुरुष सत् पुरुषों का धर्म (सन्मुख लड़ना) न करे, जिस की आर्य अनुमति में गया है ॥२४॥ एकान्त कहीं विश्वास से कही बात को वह दुष्टात्मा प्रकट करे,जिस की आर्य अनुमति में गया है॥२५॥ स्वयं

किसी पर उपकार न करने वाला, दूसरे के किये को न जानेन वाला सज्जनों से त्यागा हुआ निर्लज्ज लोक में घृणा दृष्टि से देखा गया हो, जिस की आर्य अनुमति में गया है ॥२६॥ अपने घर में पुत्रों से दासों से और दूसरे पोष्यजनों से घिरा हुआ वह अकेला स्वादु अन्न को खाए, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥२७॥

मूल—अप्राप्य सदृशान्दारानानपत्यः प्रमीयताम् । अनवाप्य क्रियां धर्म्यां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ २८ ॥ राजस्त्रीबालवृद्धानां वधे यत्पापमुच्यते । भृत्यत्यागे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम् ॥२९ संग्रामे समुपोढे च शत्रुपक्षभयङ्करे । पलायमानो बध्येत यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ ३० ॥ कपालपाणिः पृथिवीमटतां चीरसंवृतः । भिक्षमाणो यथोन्मत्तो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३१ ॥ मद्यप्रसक्तो भवतु स्त्रीष्वक्षेषु च नित्यशः । कामक्रोधाभिभूतश्च यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३२॥ मास्य धर्मे मनो भूयादधर्मं स निषेवताम् । अपात्रवर्षी भवतु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ ३३ ॥ उभे संध्ये शयानस्य यत्पापं परिकल्प्यते । तच्च पापं भवेत्तस्य यस्यार्योऽनुमते गतः॥

टीका—सदृश स्त्री को पाकर निःसन्तान मरे और विना धर्मकार्य (अग्निहोत्रादि) किये मरे, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥२८॥ राजा स्त्री बालक वृद्ध के वध में जो पाप कहा जाता है और पोष्य वर्ग के त्याग में जो पाप है, उस पाप को वह प्राप्त हो॥२९॥शत्रुपक्ष से भयङ्कर संग्राम के प्राप्त होने पर भागता हुआ वह मरे जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥३०॥ हाथ में खपर ले चीर पहन मांगता हुआ उन्मत्त की तरह पृथिवी पर घूमे, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥३१॥ मद्य में स्त्रियों में और जुए में सदा आसक्त हो, काम क्रोध के दबाव में रहे, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥३२॥ उस का मन धर्म में न हो, वह

अपात्र में दान देने वाला हो, जिस की आर्य अनुमति में गया है ॥३३॥ दोनों सन्ध्याओं में सोने वाले को जो पाप होता है वह उस को हो जिस की आर्य अनुमति में गया है ॥३४॥

मूल—यदाग्निदायके पापं यत्पापं गुरुतल्पगे। मित्रद्रोहे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम् ॥३५॥ देवतानां पितृणां च मातापित्रोस्तथैव च। मा स्म कार्षीत्स शुश्रूषां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३६॥ सतां लोकात्सतां कीर्त्याः सज्जुष्टात्कर्मणस्तथा। भ्रश्यतु क्षिप्रमद्यैव यस्यार्योऽनुमतेगतः ।३७। बहुभृत्यो दरिद्रश्च ज्वररोगसमन्वितः। समायात सततं क्लेशं यस्यार्योऽनुमतेगतः ॥३८॥ आशामाशंसमानानां दीनानामूर्ध्वचक्षुषाम्। अर्थिनां वितथां कुर्याद्यस्यार्योऽनुमते गतः ।३९। मायया रमतां नित्यंपुरुषःपिशुनोऽशुचिः।राज्ञोभीतस्त्व धर्मात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४०॥ विप्रलुप्तप्रजातस्यदुष्कृतं ब्राह्मणस्य यत्। तदेतत्प्रतिपद्येत यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४१॥ब्राह्मणायोद्यतां पूजां विहन्तु कलुषेन्द्रियः। बालवत्सां च गां दोग्धुर्यस्यार्योऽनुमतेगतः।४२। धर्मदारान्परित्यज्य परदारान्निषेवताम्। त्यक्तधर्मरतिर्मूढो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४३॥ पानीयदूषके पापं तथैव विषदायके। यत्तदेकः स लभतां यस्यार्योऽनुमते गतः ४४

टीका—जो पाप आग लगाने वाले को, और जो गुरुस्त्रीगामी को होता है, और जो मित्रद्रोह में पाप है, उस पाप को वह प्राप्त हो ॥३५॥ देवताओं की पितरों की और माता पिता की वह मत सेवा करे, जिस की आर्य अनुमति में गया है ॥३६॥ सत्पुरुषों के लोक से, सत्पुरुषों की कीर्त्ति से, और सत्पुरुषों से सेवित कर्म से वह भ्रष्ट हो, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥३७॥ बहुत भरणीय जनोंवाला होकर दरिद्र और ज्वर रोग से युक्त हुआ निरन्तर क्लेश को प्राप्त हो, जिसकी आर्य अनुमति में

गया है ॥ ३८ ॥ आशा रखते हुए दीन हो ऊपर नेत्र उठाए अर्थियों की आशा को वह व्यर्थ करे, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥३९॥ दुर्जन अशुचि राजा से भीत हुआ वह अधर्मात्मा पुरुष सदा छल से विचरे, जिसकी आर्य अनुमति में गया है॥४०॥बिगड़ी हुई सन्तानवाले ब्राह्मण को जो पाप होता है, उसको वह प्राप्त हो,जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥४१॥ ब्राह्मण के लिए तय्यार की पूजा को वह मलीन इन्द्रियों वाला हनन करे, और जो पाप कि बाल बछड़े वाली गौ के (सारा दूध) दोहलेने वाले को होता है (वह उसको हो) जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥४२॥ धर्मपत्नी को त्यागकर परस्त्री का सेवन करे, और सदा धर्म से प्रेम छोड़े हुए हो, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥४३॥ पानी को बिगाड़ने वाले और विष देनेवाले को जो पाप होता है, उसको वह अकेला प्राप्त हो, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥ ४४ ॥

मूल—तृषार्तं सति पानीये विप्रलम्भेन योजयन्। यत्पापं लभते तत्स्यायस्यार्योऽनुमते गतः ॥४५॥ एवमाश्वासयन्नेव दुःखार्तोऽनुपपात ह। विहीनां पतिपुत्राभ्यां कौसल्यां पार्थिवात्मजः ॥४६॥ तदा तं शपथैः कष्टैः शपमानमचेतनम्। भरतं शोकसंतप्तं कौसल्या वाक्यमब्रवीत् ॥४७॥ मम दुःखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते। शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणात्सि मे ॥४८॥ दिष्ट्या न चलितो धर्मादात्मा ते सहलक्षणः। वत्स सत्यप्रतिज्ञो हि सतां लोकानवाप्स्यसि॥४९॥ इत्युक्त्वा चाङ्कमानीय भरतं भ्रातृवत्सलम्। परिष्वज्य महाबाहुं रुरोद भृशदुःखिता ॥५०॥ लालप्यमानस्य विचेतनस्य प्रनष्टबुद्धेः पतितस्य भूमौ। मुहुर्मुहुर्निःश्वसतश्च दीर्घं सा तस्य शोकेन जगाम रात्रिः ॥५१॥

टीका—पानी के होते हुए तृषा से आतुर को धोखा देनेवाले को जो पाप होता है वह उसको हो, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥ ४५ ॥ इसप्रकार तसल्ली देता हुआ वह राजपुत्र दुःख से पीड़ित हुआ पति पुत्रसे हीन कौसल्या के सामने गिर पड़ा॥४६ तब बड़ी कठिन सौगन्दों से शपथ करते हुए शोक से तपे हुए अचेतन हुए भरत को कौसल्या यह वाक्य बोली ॥४७॥ हे पुत्र मुझे और अधिक दुःख होता है, क्योंकि ऐसी सौगन्दें खाता हुआ तू मेरे प्राणों को पीडा देता है॥४८॥भाग्य से शुभ लक्षणों वाला तेरा अन्तःकरण धर्म से विचल नहीं हुआ, हे वत्स सच्ची प्रतिज्ञावाला तू सत्पुरुषों के लोकों को प्राप्त होगा ॥ ४९ ॥ यह कहकर भाई के प्यारे महाबाहु भरतको कण्ठ लगाकर अत्यन्त दुःखित हुई रोती भई ॥ ५० ॥ इसप्रकार अत्यन्त विलाप करते हुए नष्ट बुद्धि वाले विचेतन हो भूमि पर गिरे हुए, बार २ दीर्घ सांस लेते हुए भरत को वह रात शोक से बीती ॥५१॥

सर्ग ६८ (व० ७६) दशरथ का दाह संस्कार

मूल—तमेवं शोक संतप्तं भरतं कैकयीसुतम् । उवाच वदतां श्रेष्ठो वसिष्ठःश्रेष्ठवागृषिः ॥१॥ अलं शोकेन भद्रं ते राजपुत्र महायशः । प्राप्तकालं नरपतेःकुरु संयानमुत्तमम् ॥२ ॥ वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा भरतो धरणीं गतः ।प्रेतकृत्यानि सर्वाणि कारयामास धर्मवित्॥ ३॥ उद्धृत्य तैलसंसेकात्स तु भूमौ निवेशितम् । आपीतवर्णवदनं प्रसुप्तमिव भूमिपम् ॥४॥संवेश्य शयने चाग्र्ये नानारत्नपरिष्कृते। ततो दशरथं पुत्रो विललाप सुदुःखितः ॥५॥क यास्यसे महाराज हित्वेमं दुःखितं जनम् । हीनं पुरुषसिंहेन रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥६॥ योगक्षेमं तु तेऽव्यग्रं कोऽस्मिन्कल्पयिता पुरे। त्वयि प्रयाते स्वस्तात रामेच बनमाश्रिते॥७॥एवं विलपमानं तं भरतं दीनमानसम् । अब्रवीद्वचनं

भूयो वसिष्ठस्तु महामुनिः ॥८॥ प्रेतकार्याणि यान्यस्य कर्तव्यानि विशांपतेः । तान्यव्यग्रं महाबाहो क्रियतामविचारितम् ॥९॥

टीका—(प्रातःकाल) इस प्रकार शोक से तपे हुए कैकेयीसुत भरत को बोलनेवालों में श्रेष्ठ श्रेष्ठ वाणी वाला ऋषि वसिष्ठ बोला ॥१॥बस है शोक से, तेरा भला हो हे राजपुत्र महायशस्वी,अब इस समय राजा का उत्तम संयान (बाहर निकालना) कर ॥२॥ वसिष्ठ के वचन को सुनकर भरत पृथिवी पर गिरा,और वह धर्मवित् सारे प्रेत कर्मों को करवाता भया ॥३॥तैल के कड़ाहे से निकालकर भूमि पर रखे हुए कुछ२ पीले रङ्ग के मुखवाले, मानों गहरी नींद सोये हुए राजा॥४॥दशरथ को नाना रत्नों से सजी हुई उत्तम शय्या पर लिटाकर अत्यन्त दुःखित हुआ पुत्र विलाप करता भया॥५॥हे महाराज शुभ कर्मोंवाले पुरुषवर राम से हीन इस दुःखित जन को छोड़कर कहां जाएंगे॥६॥हे महाराज तेरे इस पुर में प्रजाओं का योगक्षेम कौन उठाएगा,आप स्वर्ग को चले गये हैं रामवन में हैं॥७॥इस प्रकार विलपते हुए दीन मन वाले भरत को महामुनि वसिष्ठ फिर यह वचन बोला॥८॥राजा के जो प्रेत कार्य करने योग्य हैं,इनको सावधान होकर हे महाबाहो बिन विचारे कर ॥९॥

मूल—तथेति भरतो वाक्यं वसिष्ठस्याभिपूज्य तत् । ऋत्विक्पुरोहिताचार्यांस्त्वरयामास सर्वशः ॥ १० ॥ शिबिकायामथारोप्य राजानं गतचेतनम् । बाष्पकण्ठा विमनसस्तमूचुः परिचारकाः ॥११॥ हिरण्यं च सुवर्णं च वासांसि विविधानि च । प्रकिरन्तो जना मार्गं नृपतेरग्रतो ययुः ॥१२॥ चन्दनागुरुनिर्यासान्सरलं पद्मकं तथा । देवदारूणि चाहृत्य क्षेपयन्ति तथापरे ॥१३॥ गन्धानुच्चावचांश्चान्यांस्तत्र गत्वाथ भूमिपम् । तत्र संवेशयामासुश्चितामध्ये तमृत्विजः

॥१४॥तदा हुताशनं दत्त्वा जेपुस्तस्य तमृत्विजः । जगुश्च ते यथा-
शास्त्रं तत्र सामानि सामगाः ॥१५॥शिबिकाभिश्च यानैश्च यथार्हं
तस्य योषितः । नगरान्निर्ययुस्तत्र वृद्धैः परिवृतास्तथा ॥ १६ ॥
प्रसव्यं चापि तं चक्रुर्ऋत्विजोऽग्निचितं नृपम् । स्त्रियश्च शोकसं-
तप्ताः कौसल्याप्रमुखास्तदा ॥१७॥ ततो रुदन्त्यो विवशा विलप्य
च पुनः पुनः । यानेभ्यः सरयूतीरमवतेरुर्नृपाङ्गनाः ॥१८॥कृत्वो
दकं ते भरतेन सार्धं नृपाङ्गना मन्त्रिपुरोहिताश्च । पुरं प्रविश्या-
श्रुपरीतनेत्रा भूमौ दशाहं व्यनयन्त दुःखम् ॥ १९ ॥

टीका—'तथास्तु' इसप्रकार भरत वसिष्ठ के वाक्य को पूजकर ऋत्विज़ पुरोहित और आचार्य को जल्दी करवाता भया॥१०॥ तब गतचेतन राजा को पालकी में चढ़ाकर रुके कण्ठोंवाले परिचारक (सेवक) खिन्न मन हुए उसको उठाकर लेचले॥११॥सोना चांदी और अनेक प्रकार के वस्त्र मार्गमें राजा के आगे बिखेरते हुए उसे लेगए॥१२॥चन्दन, अगर, गुग्गल, पद्मक, और देवदार लाकर चितापर रखते भये॥१३॥और अनेक प्रकारके सुगन्धित पदार्थ रखते भये, वहां ऋत्विज जाकर राजा को चिता के मध्य में रखवाते भए॥१४॥वहां अग्नि को देकर उसके ऋत्विज़ (पैतृमेधिक मन्त्रों का) जप करते भए, और सामगानेवाले शास्त्रानुसार साम गाते भए॥१५॥यथायोग्य पालकियों में और यानों में उसकी स्त्रियें वृद्धों से घिरी हुइ बाहर निकलीं॥१६॥जिसने अग्निचयन किया है, उस राजा के गिर्द ऋत्विज़ अप्रदक्षिण घूमते भए, तथा शोक से संतप्त हुई कौसल्या आदि स्त्रियें घूमती भईं॥१७॥ तब रोती हुई बेबस फिर २ विलाप करके राजस्त्रियें यानों से सरयू के तीर उतरीं ॥१८॥ राजस्त्रियें और मन्त्री पुरोहित भरत के साथ उदक कर्म करके आंसुओं से भरे नेत्रों वाले वह पुर में प्रवेश करके भूमि पर दश दिन शोक मिटाते भए

सर्ग ६९ (व० ७७) अस्थि और भस्म का उठाना

मूल—ततो दशाहेऽतिगते कृतशौचो नृपात्मजः। द्वादशेऽहनि संप्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत् ॥१॥ ब्राह्मणेभ्यो धनं रत्नं ददावन्नं च पुष्कलम्। बास्तिकं बहु शुक्लं च गाश्चापि बहुशस्तदा ॥२॥ ततः प्रभातसमये दिवसे च त्रयोदशे। विललाप महाबाहुर्भरतः शोकमूर्छितः ॥ ३ ॥ शब्दापिहितकण्ठश्च शोधनार्थमुपागतः। चितामूले पितुर्वाक्यमिदमाह सुदुःखितः ॥४॥ तात यस्मिन्निसृष्टोऽहं त्वया भ्रातरि राघवे। तस्मिन्वनं प्रव्रजिते शून्ये त्यक्तोऽस्म्यहं त्वया ॥५॥ यस्या गतिरनाथायाः पुत्रः प्रव्राजितो वनम्। तामम्बां तात कौशल्यां त्यक्त्वा त्वं क गतो नृप ॥६॥ शत्रुघ्नश्चापि भरतं दृष्ट्वा शोकपरिप्लुतम्। विसंज्ञो न्यपतद्भूमौ भूमिपालमनुस्मरन् ॥७॥ उन्मत्त इव निश्चित्तो विललाप सुदुःखितः। स्मृत्वा पितुर्गुणाङ्गानि तानि तानि तदा तदा ॥८॥ तयोर्विलापितं श्रुत्वा व्यसनं चाप्यवेक्ष्यतत्। भृशमार्ततरा भूयः सर्व एवा नुगामिनः

टीका—तब दस दिन बीत जाने पर (ग्यारहवें दिन) शौच करके वह राजपुत्र बारहवें दिन श्राद्ध कर्म कराता भया।१। ब्राह्मणों को धन रत्न पुष्कल अन्न बकरियों का समूह बहुत सी चांदी और बहुत सी गौएं देता भया।२। तब तेरहवें दिन प्रभात के समय (भूमि) संशोधन*के लिये आया, महाबाहु भरत शोक से मूर्छित हुआ शब्दसे

* संशोधन से तात्पर्य्य भस्म उठाने का है, यह अस्थिसंचयन का ही अवशेष (बाकी बचा) कर्म है। यहां भूमि संशोधन अर्थात् भस्म उठाना दाह से तेरहवें दिन कहा है, आज कल अस्थि संचयन और भस्मोद्धार दोनों चौथे दिन होते हैं। रामायण के समय जो भस्मोद्धार का तेरहवें दिन प्रचार था, यह नहीं कहा जासका, कि वह सब ब्राह्मण क्षत्रियों में था, वा निरा क्षत्रियों में वा केवल इक्ष्वाकुओं में ही था ॥

रुके हुए कण्ठवाला पिता की चिता के पास बैठ विलाप करता भया और अतीव दुःखित हुआ यह बोला । ३,४। हे तात ! मुझे जिस को सौंपा था, उस भाई राघव को वन भेजकर मुझे आपने शून्य में त्याग दिया है । ५ । हे तात ! जिस अनाथा का आश्रय पुत्र वन को आपने निकाला, उस माता कौसल्या को छोड़कर आप कहां चले गये हैं ।६। शत्रुघ्न भी भरत को शोक से घिरा हुआ देखकर राजा को स्मरण करता हुआ अचेतन हो भूमि पर गिर पड़ा ।७। उन्मत्त की तरह चित्त से शून्य हुआ, पिता के उन २ गुण समूहों को स्मरण करके अत्यन्त दुःखित हुआ विलाप करता भया । ८ ।

मूल—ततः प्रकृतिमान्वैद्यः पितुरेषां पुरोहितः । वसिष्ठो भरतंवाक्य-मुत्थाप्य तमुवाच ह ॥ १० ॥ त्रयोदशोऽयं दिवसः पितुर्वृत्तस्य ते विभो । सावशेषास्थिनिचये किमिह त्वं विलम्बसे ॥ ११ ॥ त्रीणि द्वन्द्वानि भूतेषु प्रवृत्तान्यविशेषतः । तेषु चापरिहार्येषु नैवं भवितुमर्हसि ॥१२॥सुमन्त्रश्चापि शत्रुघ्नमुत्थाप्याभिप्रसाद्य च । श्रावयामास तत्त्वज्ञः सर्वभूतभवाभवौ ॥१३॥ उत्थितौ तौ नर-व्याघ्रौ प्रकाशेते यशस्विनौ । वर्षातपपरिग्लानौ पृथगिन्द्रध्वजा-विव ॥१४॥अश्रूणि परिमृद्नन्तौ रक्ताक्षौ दीनभाषिणौ । अमात्या-स्त्वरयन्ति स्म तनयौ चापराः क्रियाः ॥१५॥

टीका—इनके विलाप को सुनकर और इस व्यसन को देखकर सारे ही साथी फिर अतीव पीड़ित हुए ।९। तब प्रकृति में स्थित (जिस में शोक का कोई विकार नहीं हुआ), सर्वज्ञ, इनके पिता का पुरो-हित वसिष्ठ भरत को उठाकर यह वाक्य बोला ।१०। हे विभो ! तेरे पिता को दाह किये आज यह तेरहवां दिन है, अस्थिसञ्चयन का कर्म अभी सावशेष है, सो क्यों विलम्ब करते हो । ११ । तीन द्वन्द्व (सुख दुःख, हानि लाभ, जन्म मरण) सब जीवों में

एक जैसे प्रवृत्त होते है, यह अटल है, इनमें तुझे ऐसा (व्याकुल) नहीं होना चाहिये । १२ । सुमन्त्र भी शत्रुघ्न को उठाकर और शोक दूर करके सब जीवों की उत्पत्ति विनाश सुनाता भया ।१३। उठे हुए वह दोनों यशस्वी नरश्रेष्ठ वर्षा और धूप से मलिन हुई अलग २ दो इन्द्रध्वजों की तरह प्रतीत होते थे ।१४। तब आंसु पोंछते हुए लाल नेत्रोंवाले दीन बोलने वाले उन दोनों पुत्रों से दूसरे मन्त्रीजन कर्म(भूमि शोधनादि) जल्दी करवाते भए ।१५

सर्ग ७० (व० ७९) भरत का राम को लौटाने का निश्चय

मूल—ततः प्रभातसमये दिवसेऽथ चतुर्दशे । समेत्य राजकर्त्तारो भरतं वाक्यमब्रुवन् ॥१॥ गतो दशरथः स्वर्गं यो नो गुरुतरो गुरुः । रामं प्रव्राज्य वै ज्येष्ठं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥२॥ त्वमद्य भव नो राजा राजपुत्र महायशाः॥३॥ आभिषेचनिकं सर्वमिदमादाय राघव। प्रतीक्षते त्वां स्वजनः श्रेणयश्च नृपात्मज ॥४॥ आभिषेचनिकं भाण्डं कृत्वा सर्वं प्रदक्षिणम् । भरतस्तं जनं सर्वं प्रत्युवाच धृतव्रतः ॥५॥ ज्येष्ठस्य राजता नित्यमुचिता हि कुलस्य नः । नैवं भवन्तो मां वक्तुमर्हन्ति कुशला जनाः ॥६॥ रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यति महीपतिः । अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पञ्च च ॥७॥ युज्यतां महती सेना चतुरङ्गमहाबला । आनयिष्याम्यहं ज्येष्ठं भ्रातरं राघवं वनात् ॥८॥ आभिषेचनिकं चैव सर्वमेतदुपस्कृतम् । पुरस्कृत्य गमिष्यामि रामहेतोर्वनं प्रति ॥ ९ ॥

टीका—तब चौदहवें दिन प्रभात के समय सब राजदर्बारी मिलकर भरत से यह वाक्य बोले ॥१॥ दशरथ जो हमारा गुरुतर गुरु था, वह जेठे पुत्र राम को और महाबली लक्ष्मण को भेजकर स्वर्ग को चला गया॥२॥ अब तू हे महायशस्वी राजपुत्र हमारा राजा हो॥३॥ हे राजपुत्र राघव ! तेरे अपने जन (महामन्त्री आदि) और पुर के

लोग अभिषेक की सामग्री लेकर आपकी प्रतीक्षा में हैं ॥४॥ अभिषेक के बर्तनों को प्रदक्षिणा करके व्रतधारी भरत उन सब लोगों को यह उत्तर देता भया॥५॥हमारे कुल में सदा से बड़े भाई का राजा होना उचित रहा है, सो आप सब जानकार होकर मुझे ऐसा कहने योग्य नहीं है॥६॥हमारा बड़ा भाई राम ही पृथिवी का पति होगा,मैं (राम का प्रतिनिधि होकर) चौदह बरस वन में रहूंगा॥७॥चार अङ्गों (रथ, हाथी, घोड़े, पैदलों) वाली बड़ी सेना को तय्यार करो, मैं बड़े भाई राम को वन से लाऊंगा ॥८॥ यह जो अभिषेक के लिये सब कुछ सजा हुआ है, इसको आगे करके राम के हेतु वन को जाऊंगा॥९॥

मूल—तत्रैव तं नरव्याघ्रमभिषिच्य पुरस्कृतम्। आनयिष्यामि वै रामं हव्यवाहमिवाध्वरात्॥१०॥ क्रियतां तु शिल्पिभिः पन्थाः समानि विषमाणि च। रक्षिणश्चानुसंयान्तु पथि दुर्गविचारकाः॥ ११ ॥ एवं संभाषमाणं तं रामहेतोर्नृपात्मजम्। प्रत्युवाच जनः सर्वः श्रीमद्वाक्यमनुत्तमम् ॥१२॥ एवं ते भाषमाणस्य पद्मा श्रीरुपतिष्ठताम्। यस्त्वं ज्येष्ठे नृपसुते पृथिवीं दातुमिच्छसि ॥१३॥ अनुत्तमं तद्वचनं नृपात्मजाः प्रभाषितं संश्रवणं निशम्य च। प्रहर्षजास्तं प्रति बाष्पबिन्दवो निपेतुरार्याननेत्रसंभवाः ॥ १४ ॥

टीका—वहीं उस नरश्रेष्ठ का अभिषेक करके आदर पूर्वक उसे यहां लाऊंगा, जिसतरह यज्ञशाला से (पूज्य) अग्नि को लाया करते हैं१० शिल्पी रस्ते बनावें, ऊंचे नीचे स्थानों को सम करें, बिखड़े स्थानों के जानकार रक्षक बनकर साथ चलें॥११॥राम के हेतु इस प्रकार कहते हुए उस राजपुत्र को सब लोग शोभावाला उत्तम वाक्य बोले ।१२। इसप्रकार कहते हुए आपको पद्मा श्री प्राप्त हो, जो आप बड़े राजपुत्र को पृथिवी देना चाहते हैं॥१३॥रामके लाने की प्रतिज्ञा के विषय में राजपुत्र से कहे उस वचन को सुनकर उसके लिये परम हर्ष से उत्पन्न हुई आंसुओं की बूंदें सब आर्यजनों के नेत्रों से मुखों पर गिरीं

सर्ग ७९ (व० ८०) मार्ग का बनाना

मूल—अथ भूमिप्रदेशज्ञाः सूत्रकर्मविशारदाः । स्वकर्माभिरताःशूराः खनका यन्त्रकास्तथा ॥१॥ कर्मान्तिकाः स्थपतयः पुरुषा यन्त्रकोविदाः । तथा वर्धकयश्चैव मार्गिणो वृक्षतक्षकाः॥२॥ सूपकारासुधाकारा वंशचर्मकृतस्तथा। समर्था ये च द्रष्टारः पुरतश्च प्रतस्थिरे॥३॥ ते स्वभारं समास्थाय वर्त्मकर्मणि कोविदाः ।करणैर्विविधोपेतैः पुरस्तात्संप्रतस्थिरे।४।लता वल्लीश्च गुल्मांश्च स्थाणूनश्मन एव चाजनास्तं चक्रिरे मार्गं छिन्दन्तो विविधान्द्रुमान् ।५। बबन्धुर्बन्धनीयांश्च क्षोद्यान्संचुक्षुदुस्तथा । बिभिदुर्भेदनीयांश्च तांस्तान्देशान्नरास्तदा ॥६॥

टीका—तब भूमि के प्रदेशों के जानने वाले सूत्र कर्म(मापने बनाने)में चतुर खोदने वाले शूरवीर,यन्त्र बनाने वाले॥१॥मजदूर इञ्जीनियर यन्त्रों में पण्डित,बढई, मार्ग बनाने वाले,वृक्षों के काटने वाले ॥२॥ रसोईका काम करने वाले,चूना बनाने वाले,बांस और चमडे का काम करनेवाले,और जो समर्थ देखनेवाले हैं वह सब आगे चले॥३॥मार्ग के काम में निपुण वह सारे अनेक प्रकार के साधन लेकर अपने २ समूह में मिलकर आगे रवानाहुए॥४॥लताओं बेलों स्थाणुओं पत्थरों और विविध वृक्षों को काट२कर मार्ग बनाते भए॥५॥बांधने योग्य देशों में पुल बांध दिये,पीसने योग्यों को पीस डाला,और (जल निकलने के लिए) फोड़ने योग्यों को फोड़ डाला ॥ ६ ॥

मूल—निर्जलेषु च देशेषु खानयामासुरुत्तमान् । उदपानान्बहुविधान् वेदिकापरिमण्डितान् । ७ । ससुधाकुट्टिमतलः प्रपुष्पितमहीरुहः । मत्तोद्घुष्टद्विजगणः पताकाभिरलंकृतः।८।चन्दनोदकसंसिक्तो नानाकुसुमभूषितः। बह्वशोभत सेनायाः पन्थाः सुरपथोपमः । ९ । आज्ञाप्याथ यथाज्ञप्ति युक्तास्तेऽधिकृता नराः । रमणीयेषु देशेषु बहुस्वादुफलेषु च ।१०। यो निवेशस्त्वभिप्रेतो भरतस्य महात्मनः ।

भूयस्तं शोभयामासुर्भूषाभिर्भूषणोपमम् ।११।सचन्द्रतारागणमण्डितं यथा नभः क्षपायाममलं विराजते । नरेन्द्रमार्गः स तदा व्यराजत क्रमेण रम्यः शुभशिल्पिनिर्मितः ॥१२ ॥

टीका-निर्जल देशोंमें वेदियों से शोभायमान अनेकप्रकार के उत्तम जलाशय (कुआं बावड़ी आदि) खुदवा दिये ॥७॥ सेना का मार्ग, जिसमें ठहरने के स्थानों पर चूने गज फर्श बन्ध गए हैं,नाना पुष्पों से शोभित मत्त पक्षियों की गूञ्जवाला, झण्डियों से शोभायमान॥८ चन्दन के जल से छिडका हुआ नाना पुष्पों से सुशोभित सेनाका मार्ग देवपथ के तुल्य बहुत शोभावाला हुआ ॥९॥ (मार्ग बनाने के अनन्तर छावनियों के) अधिकारी आज्ञानुसार दूसरों को आज्ञा देकर बहुत स्वादु फलोंवाले रमणीय देशों में ॥१०॥ भरत को जैसे छावनियें अभिमेत थीं, वैसे ही उनको शोभाओं से भूषण के तुल्य सजाते भए ॥११॥ जैसे रात्रि में चन्द्र और तारागण से भूषित निर्मल आकाश शोभा पाता है, वैसे वह शुभ शिल्पियों से बनाया हुआ सुहावना राजमार्ग शोभायमान हुआ ॥१२॥

सर्ग ७२ (व० ८३, ८४) भरत की यात्रा शृङ्गवेर तक

मूल-ततःसमुत्थितःकल्यमास्थाय स्यन्दनोत्तमम् । प्रययौभरतःशीघ्रं रामदर्शनकाम्यया॥१॥अग्रतःप्रययुस्तस्य सर्वे मन्त्रिपुरोहिताः॥२॥ कैकेयी च सुमित्रा च कौसल्या च यशस्विनी । रामानयनसंतुष्टा ययुर्यानेन भास्वता ॥३॥ प्रयाताश्चार्यसंघाता रामं द्रष्टुं सलक्ष्मणम् । तस्यैव च कथाश्चित्राःकुर्वाणा हृष्टमानसाः ॥४॥ ते गत्वा दूरमध्वानं रथयानाश्वकुञ्जरैः । समासेदुस्ततो गङ्गां शृङ्गवेरपुरं प्रति ॥ ५ ॥ यत्र रामसखा वीरो गुहो ज्ञातिगणैर्वृतः । निवसत्यप्रमादेन देशं तं परिपालयन् ॥६॥ उपेत्य तीरं गङ्गायाश्चक्रवाकैरलंकृतम् । व्यवतिष्ठत सा सेना भरतस्यानुयायिनी ॥७ ॥ ततोनिविष्टां ध्वजिनीं गङ्गा

मन्वाश्रितां नदीम् । निषादराजो दृष्ट्वैव ज्ञातीन्सपरितोऽब्रवीत्॥८॥ भर्ता चैव सखा चैव रामो दाशरथिर्मम । तस्यार्थकामाः संनद्धा गङ्गानूपेऽत्र तिष्ठत ॥९॥ नावां शतानां पञ्चानां कैवर्तानां शतं शतम् संनद्धानां तथा यूनां तिष्ठन्त्वित्यभ्यचोदयत् ॥ १० ॥

टीका—तब भरत प्रातःकाल उठकर उत्तम रथ पर सवारहो राम के दर्शन की कामना से शीघ्र गया ॥१॥ उस के आगे सब मन्त्री और पुरोहित गण ॥२॥ कैकेयी सुमित्रा और यशस्विनी कौसल्या राम को लाने के लिए प्रसन्न हुईं चमकते हुए यान से गईं ॥३॥ लक्ष्मण सहित राम के दर्शन के लिए आर्यसमुदाय प्रसन्न मन हुए उसी की विचित्र कथाएं कहते हुए गए ॥४॥वहरथ यान घोड़े और हाथियों से दूर मार्ग जाकर शृङ्गवेरपुर में गंगा पर पहुंचे ५ जहां रामका सखा वीर गुह अपने भाइयों से युक्त हुआ सावधानता से उस देशका पालन करता हुआ निवास करता है ॥६॥ चकवों से शोभित गंगा के किनारे को पाकर भरत की अनुयायिनी वह सेना मर्यादा से स्थिर होगई ॥७॥ तब गंगा नदी के साथ छावनी डाल कर पड़ी सेना को देख कर भीलों का राजा (गुह) अपने ज्ञातियों से बोला ॥८॥ (तुम जानते हो) दाशरथि राम मेरा स्वामी है और सखा है, उसके हित के लिए तुम तय्यार होकर गंगा के बेले में यहां छिपे रहो ॥९॥ पांचसौ नौकाओं में सौ सौ जवान भील (शस्त्र अस्त्र से) तय्यार होकर ठहरें, यह उन को प्रेरा ॥१०॥

मूल—यदि तुष्टस्तु भरतो रामस्येह भविष्यति । इयं स्वस्तिमती सेना गङ्गामद्य तरिष्यति ॥११॥ इत्युक्त्वोपायनं गृह्य मत्स्यमांसमधूनि च अभिचक्राम भरतं निषादाधिपतिर्गुहः ॥१२॥ तमायान्तं तु संप्रेक्ष्य सूतपुत्रः प्रतापवान् । भरतायाचचक्षेऽथ समयज्ञो विनीतवत् ॥१३॥ एष ज्ञातिसहस्रेण स्थपतिः परिवारितः । कुशलो दण्डकारण्ये वृद्धो

भ्रातुश्च ते सखा ॥१४॥ तस्मात्पश्यतु काकुत्स्थ त्वां निषादाधिपो गुहः । असंशयं विजानीते यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥१५॥ एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुमन्त्राद्भरतः शुभम् । उवाच वचनं शीघ्रं गुहःपश्यतु मामिति ॥१६॥ लब्ध्वानुज्ञां संप्रहृष्टो ज्ञातिभिः परिवारितः । आगम्य भरतं प्रह्वो गुहो वचनमब्रवीत् ॥१७॥ निष्कुटश्चैव देशोऽयं वञ्चिताश्चापि ते वयम् । निवेदयाम ते सर्वं स्वके दाशगृहे वस ॥१८॥ आशंसे स्वाशिता सेना वत्स्यत्येनां विभावरीम् । अर्चितो विविधैः कामैः श्वः ससैन्यो गमिष्यसि ॥ १९ ॥

टीका—यदि भरत राम के विषय में शुद्ध हृदय होगा, तो यह सेना कल्याण से गङ्गाके पार उतर जाएगी (नहीं तो नौकाओंमें स्थितहो कर जलयुद्ध से इनको यहीं मारेंगे, यह आशय है)॥११॥ यह कह कर वह भीलों का अधिपति गुहमत्स्यमांस और शहद की भेंटलेकर भरत की ओर गया ॥१२॥ उसको आता देख कर अवसर के पहचानने वाले प्रतापी सूत ने विनय पूर्वक भरत से कहा ॥१३॥ यह बहुत से भाइयों से घिरा हुआ भीलों का पति, दण्डक वनकी खबर रखने वाला, वृद्ध तेरे भाई का सखा है ॥१४॥ इस लिए हे राघव यह भीलों का अधिपति गुह आपका दर्शन पाए,निसंदेह यह जानता है, जहां राम और लक्ष्मण हैं ॥१५॥ सुमन्त्र से इस वचन को सुनकर भरत शुभ वचन बोला, शीघ्र मुझे गुह देखे।१६। आज्ञा पाकर प्रसन्न हुआ ज्ञातियों से घिरा हुआ गुह आकर झुक करके भरत से वचन बोला ॥१७॥ यह देश घर के बगीचे की तरह है, (आपके चुपचाप आने से आप की सेवा से) हम वञ्चित हुए हैं, यह सब आपकी भेंट है, अपने दासगृह में निवास कीजिए ॥१८॥ यह प्रार्थना है कि भोजन करके आज रात आपकी सेना यहीं रहे अनेक कामनाओं से पूजे हुए आप कल सेना समेत जाएंगे

सर्ग ७३ (व० ८५) भरत और गुह की बात चीत

मूल-एवमुक्तस्तु भरतो निषादाधिपतिं गुहम्। प्रत्युवाच महाप्राज्ञो वाक्यं हेत्वर्थसंहितम् ॥१॥ ऊर्जितः खलु ते कामः कृतो मम गुरोः सखे। यो मे त्वमीदृशीं सेनामभ्यर्चयितुमिच्छसि ।२। इत्युक्त्वा स महातेजा गुहं वचनमुत्तमम्। अब्रवीद्भरतः श्रीमान्पन्थानं दर्शयन्पुनः ॥३॥ कतरेण गमिष्यामि भरद्वाजाश्रमं पथा। गहनोऽयं भृशं देशो गंगानूपो दुरत्ययः ॥४॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः। अब्रवीत्प्राञ्जलिर्भूत्वा गुहो गहनगोचरः ।५। दाशास्त्वानुगमिष्यन्ति देशज्ञाः सुसमाहिताः। अहं चानुगमिष्यामि राजपुत्र महाबल ।६।

टीका-ऐसे कहा हुआ महाप्राज्ञ भरत भीलों के अधिपति गुह को युक्तियुक्त वचन बोला ॥ १ ॥ हे मेरे गुरु (बड़े भाई) के मित्र तू जो इतनी बड़ी सेना को पूजना चाहता है, इसी से तूने अपनी उदार कामना को पूरा किया है (तेरे प्रेम से हम पूजित हुए हैं)।२। वह महातेजस्वी श्रीमान् भरत गुह को यह उत्तम वचन कह कर फिर आगे जाने वाले मार्ग की ओर अंगुलि करके यह बोला ।३। किस मार्ग से भरद्वाज के आश्रम को जाना होगा, गंगा का काछा यह देश अत्यन्त घना है पार होना कठिन है ।४। बुद्धिमान् राजपुत्र के इस वचन को सुन कर वन का जान्कार गुह हाथ जोड़ कर बोला ।५। देश के जानने वाले भील सावधान हो आप के साथ चलेंगे, और मैं हे महाबली राजपुत्र के साथ चलूंगा । ६ ।

मूल-कच्चिन्न दुष्टो व्रजसि रामस्याक्लिष्टकर्मणः। इयं ते महती सेना शङ्कां जनयतीव मे ७ तमेवमभिभाषन्तमाकाश इव निर्मलः। भरतः श्लक्ष्णया वाचा गुहं वचनमब्रवीत्॥८॥+मा भूत्स कालो यत्कष्टं न मां शङ्कितुमर्हसि। राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो मतः।९। तं निवर्तयितुं यामि काकुत्स्थं वनवासिनम्। बुद्धिरन्या न मे कार्या

गुह सत्यं ब्रवीमि ते ।१०। स तु संहृष्टवदनः श्रुत्वा भरतभाषितम्। पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं भरतं प्रति हर्षितः ॥११॥ धन्यस्त्वं न त्वयातुल्यं पश्यामि जगतीतले । अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वंत्यक्तुमिहेच्छसि १२ शाश्वती खलु ते कीर्तिर्लोकाननु चरिष्यति । यस्त्वं कृच्छ्रगतं रामं प्रत्यानयितुमिच्छसि ॥१३॥ एवं संभाषमाणस्य गुहस्य भरतं तदा । बभौ नष्टप्रभः सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत ॥१४॥

टीका—किन्तु आप शुभ कर्मों वाले रामकी ओर किसी दोष से तो नहीं जारहे, यह आपकी बड़ी सेना मुझे शंकासी उत्पन्न करती है। ७। ऐसा कहते हुए उस गुह को आकाश की तरह निर्मल भरत स्पष्ट वाणी से यह वचन बोला ।८। हा कष्ट वह समय मत हो, मुझे आप शंका की दृष्टि से देखनें योग्य नहीं है,वह राघव मेरा ज्येष्ठ भ्राता मेरे पितृतुल्य है।९। उस बनवासी राम को लौटाने के लिये जाता हूं, हे गुह तुझे मेरे विषय में और बुद्धि नहीं करनी चाहिये, तुझे सत्य कहता हूं ।१०। भरत के कथन को सुन कर प्रसन्नवदन हुआ वह हर्षित हो भरत से फिर वाक्य बोला ।११। आप धन्य हैं, आप के तुल्य मैं पृथिवी पर नहीं देखता हूं, जो बिना प्रयत्न से मिले राज्यको त्यागना चाहते हैं ।१२। लोक में आपकी कीर्ति सदा घूमती रहेगी, जो आप क्लेश में पड़े राम को फिर लाना चाहते हैं ।१३। भरत को गुह के ऐसा कहते हुए सूर्य अस्त हुआ और रात्रि प्रवृत्त हुई।१४

सर्ग ७४ (व० ८६) भरत के आगे लक्ष्मण के भ्रातृ प्रेम का वर्णन

मूल—आचचक्षेऽथ सद्भावं लक्ष्मणस्य महात्मनः । भरतायाप्रमेयाय गुहो गहनगोचरः ॥१॥ तं जाग्रतं गुणैर्युक्तं वरचापेषुधारिणम् । भ्रातृगुप्त्यर्थमत्यन्तमहं लक्ष्मणमब्रुवम् ॥२॥इयं तात सुखा शय्या त्वदर्थमुपकल्पिता । प्रत्याश्वसिहि शेष्वास्यां सुखं राघवनन्दन॥३॥ उचितोऽयं जनः सर्वो दुःखानां त्वं सुखोचितः। धर्मात्मंस्तस्य गुप्त्यर्थं

जागरिष्यामहे वयम्॥४॥नहि रामात्प्रियतरो ममास्ति भुवि कश्चन। अस्य प्रसादादाशंसे लोकेऽस्मिन्सुमहद्यशः ॥५॥ सोऽहं प्रियसखं रामं शयानं सह सीतया। रक्षिष्यामि धनुष्पाणिः सर्वैः स्वैर्ज्ञातिभिः सह ॥६॥ नहि मेऽविदितं किंचिद्वनेऽस्मिंश्चरतः सदा। चतुरङ्गं ह्यपि बलं प्रसहेम वयं युधि ॥ ७ ॥ एवमस्माभिरुक्तेन लक्ष्मणेन महात्मना। अनुनीता वयं सर्वे धर्ममेवानुपश्यता ॥ ८ ॥

टीका–अब वन के जानेन वाले गुह ने उदार भरत को महात्मा लक्ष्मण का सद्भाव बतलाया ॥१॥ वह गुणवान् लक्ष्मण जब भाई की रक्षा के लिये उत्तम धनुषबाण धारण किये जाग रहा था, तो मैंने उसे कहा ॥ २ ॥ हे तात यह आराम की शय्या, आपके लिये तय्यार है, हे राघवनन्दन आप तसल्ली कीजिये और इस पर लेट जाइये ॥३॥ यह जन (मैं)दुःखों का अभ्यास किये हुए है,आप सुख के योग्य हैं, हे धर्मात्मन् इसकी (रामकी) रक्षा के लिए हम जागेंगे ॥४॥ राम से बढ़कर मुझे कोई पृथिवी में प्यारा नहीं है, इसी की कृपा से मैं इस लोक में बहुत बड़े यश की आशा रखता हूं ॥ ५ ॥ सोमैं सीतासमेत सोए हुए अपने प्यारे सखाराम की धनुष हाथ मेंले कर अपने सारे ज्ञातियों के साथ रक्षा करूंगा॥६॥इस वनमें विचरते हुए मुझे कुछ अविदित नहीं है,हम चतुरंग सेना को युद्ध में जीत लेंगे ॥७॥ इस प्रकार हमारे कहने पर लक्ष्मण महात्मा ने धर्म पर ही दृष्टि रखते हुए ने हम सब को तसल्ली दी ॥ ८ ॥

मूल–कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया। शक्या निद्रा मया लब्धुं जीवितानि सुखानि वा ॥९॥ यो न देवासुरैः सर्वैः शक्यः प्रसहितुं युधि। तं पश्य गुह संविष्टं तृणेषु सह सीतया॥१०॥ महता तपसा लब्धो विविधैश्च परिश्रमैः। एको दशरथस्यैष पुत्रः सदृशलक्षणः॥११॥ अस्मिन्प्रव्राजिते राजा न चिरं वर्तयिष्यति। विधवा

मेदिनी नूनं क्षिप्रमेव भविष्यति ॥१२॥ परिदेवयमानस्य तस्यैवं हि महात्मनः। तिष्ठतो राजपुत्रस्य शर्वरी सात्यवर्तत॥१३।प्रभाते विमले सूर्ये कारयित्वा जटा उभौ। अस्मिन्भागीरथीतीरे सुखंसंतारितौमया

टीका—कैसे दशरथ के पुत्र रामके सीता सहित भूमि पर लेटे हुए,मैं नींद वा जीना वा सुख ले सक्ता हूं ॥९॥ जिसको देवता दैत्य युद्ध में नहीं सहार सक्ते हैं, उसको देख हे गुह सीता समेत तृणों पर लेटा हुआ है ॥१०॥ बड़े तप से अनेक परिश्रमों से दशरथ को यह एक ही पुत्र अपने सदृश लक्षणों वाला मिला है ॥११॥ इसके निकालने पर राजा देर तक जीता नहीं रहेगा, निःसंदेह पृथिवी जल्दी ही विधवा होजाएगी ॥ १२ ॥ उस राजपुत्र को इत्यादिक शोक की बातें कहते हुए खड़े ही वह रात बीती ॥ १३ ॥ सवेरे निर्मल सूर्य में उन दोनों भाइयों ने जटा बनाई, और मैंने उनको आराम से पार उतार दिया ॥ १४ ॥

सर्ग ७१ (व० ८७) भरत का शोक और रामशय्या का दर्शन

मूल—गुहस्य वचनं श्रुत्वा भरतो भृशमप्रियम्। ध्यानं जगाम तत्रैव यत्र तच्छ्रुतमप्रियम् ॥१॥ प्रत्याश्वस्य मुहूर्तं तु कालं परमदुर्मनाः। ससाद सहसा तोत्रैर्हृदि विद्ध इव द्विपः ॥ २ ॥ भरतं मूर्छितं दृष्ट्वा विवर्णवदनो गुहः। बभूव व्यथितस्तत्र भूमिकम्पे यथा द्रुमः ॥३॥ तदवस्थं तु भरतं शत्रुघ्नोऽनन्तरस्थितः। परिष्वज्य रुरोदोच्चैर्विसंज्ञः शोककर्शितः ॥४ ॥ ततः सर्वाःसमापेतुर्मातरो भरतस्य ताः। उपवासकृशा दीना भर्तृव्यसनकर्शिताः ॥ ५॥ ताश्च तं पतितं भूमौ रुदत्यः पर्यवारयन्। कौसल्या त्वनुसृत्यैनं दुर्मनाः परिषस्वजे ॥६ ॥ वत्सला स्वं यथा वत्समुपगुह्य तपस्विनी। परिपप्रच्छ भरतं रुदती शोकलालसा ॥ ७ ॥ त्वां दृष्ट्वा पुत्र जीवामि रामे सभ्रातृके गते। वृत्ते दशरथे राज्ञि नाथ एकस्त्वमद्य नः ॥८॥ कच्चिन्न लक्ष्मणे पुत्र

श्रुतं ते किंचिदप्रियम्। पुत्रे वा ह्येकपुत्रायाः सहभार्ये वनं गते ॥९॥ स मुहूर्तं समाश्वस्य रुदन्नेव महायशाः। कौसल्यां परिसान्त्व्येदं गुहं वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥ भ्राता मे क्वावसद्रात्रिं क्व सीता क्व च लक्ष्मणः। अस्वपच्छयने कस्मिन्किं भुक्त्वा गुह शंस मे ॥११॥

टीका—गुह से अतीव अप्रिय वचन को सुनकर भरत वहीं गोता खागया जहां यह अप्रिय सुना था ॥१॥ अत्यन्त दुर्मन हुआ थोड़ी देर लम्बा सांस भर के अंकस से हृदय में बींधे हुए हाथी की तरह सहसा घबरा गया ॥२॥ भरत को मूर्छित देख गुह के चेहरे का रंग फीका होगया, और वह इस तरह कांपा, जैसे भूकम्प में वृक्ष कांपता है ॥३॥ भरत को इस अवस्था में देखकर पास स्थित शत्रुघ्न शोक से दुर्बल हुआ अचेतनसा हुआ गले लगाकर ऊंचे २ रोने लगा ॥४॥ तब वह सारी भरत की माताएं वहां आ इकट्ठी हुई जो उपवास से दुर्बल हैं, दीन हैं, और पति की मृत्यु से दुर्बल हुई हैं ॥५॥ रोती हुई वह भूमि पर गिरे हुए के चारों ओर होगईं, कौसल्या तो अतीव दुर्मन हुइ इसको गले लगाती भई ॥६॥ प्यार से भरी हुई अपने जाए की तरह गले लगाकर वह बेचारी शोक से दुर्बल हुई रोती हुई भरत से पूछने लगी ॥७॥ हे पुत्र राम के भाइ सहित वन को चले जाने पर तुझे देखकर जीती हूं, राजा दशरथ के मरने पर तू ही एक अब हमारा नाथ है ॥८॥ क्या हे पुत्र कुछ लक्ष्मण के विषय में तो अप्रिय नहीं सुना, वा मुझ इकलौते बेटे वाली के बेटे के विषय में जो भर्या सहित वन को गया है ॥ ९ ॥ थोड़ी देर लम्बे सांस भरकर रोता हुआ वह महायशस्वी कौशल्या को तसल्ली देकर गुह से यह वचन बोला ॥१०॥ मेरा भाई रात कहां रहा, कहां सीता और कहां लक्ष्मण, क्या खाकर किस शय्या पर सोया, हे गुह ! मुझे बतला ॥११॥

मूल—सोऽब्रवीद्भरतं हृष्टो निषादाधिपतिर्गुहः। यद्विधं प्रतिपेदे च रामे प्रियहितेऽतिथौ॥१२॥ अन्नमुच्चावचं भक्ष्याः फलानि विविधानिच। रामायाभ्यवहारार्थं बहुशोपहृतं मया॥१३॥ तत्सर्वं प्रत्यनुज्ञासीद्रामः सत्यपराक्रमः। न हि तत्प्रत्यगृह्णात्स क्षत्रधर्ममनुस्मरन्॥१४॥लक्ष्मणेन यदानीतं पीतं वारि महात्मना। औपवास्यं तदाकार्षीद्राघवः सह सीतया॥१५॥ ततस्तु जलशेषेण लक्ष्मणोऽप्यकरोत्तदा। वाग्यतास्ते त्रयःसंध्यां समुपासन्त संहिताः॥१६॥ सौमित्रिस्तु ततः पश्चादकरोत्स्वास्तरं शुभम्। स्वयमानीय बर्हींषि क्षिप्रं राघवकाररणात्॥१७॥ तस्मिन्समाविशद्रामः स्वास्तरे सह सीतया। प्रक्षाल्य च तयोः पादौ व्यपाक्रामत्सलक्ष्मणः॥१८॥एतत्तदिंगुदीमूलमिदमेव च तत्तृणम्। अस्मिन्रामश्च सीता च रात्रिं तां शयितावुभौ॥१९॥

टीका—(भरत के भी लक्ष्मण की तरह इस सच्चे प्रेम को देखकर) प्रसन्न हुआ वह भीलों का अधिपति गुह प्यारे अतिथि राम के विषय में जैसा व्यवहार किया था भरत को बतलाता भया॥१२॥ कि अनेक प्रकार का अन्न भक्ष्य और विविध फल राम के भोजन के लिये मैं लाया॥१३॥ सच्चे पराक्रम वाले राम ने वह सब अंगीकार करके वापिस दे दिया, क्षत्रधर्म (प्रतिज्ञा पालन) का स्मरण करते हुए उसने स्वीकार नहीं किया॥१४॥ लक्ष्मण जब जल लाया तो वह उस महात्मा ने पीकर सीता समेत उपवास किया॥१५॥ तब जलशेष से लक्ष्मण ने भी उपवास किया, फिर वह तीनों वाणी को रोककर मिलकर सन्ध्या उपासते भए॥१६॥ तब पश्चात् लक्ष्मण ने राम के अर्थ स्वयं कुशा लाकर शुभ बिछाई बनाई॥१७॥ उस सत्थर पर राम ने सीता के सहित आराम किया, और लक्ष्मण उनके पाओं पोंछकर दूर जा खड़ा हुआ॥१८॥ यह वह गोंदी का मूल है, और यह वह तृण है, इस पर राम और सीता दोनों उस रात को सोए थे॥१८॥

सर्ग ७६ (व० ८८) भरत का शोक

मूल—तच्छ्रुत्वा निपुणं सर्वं भरतः सह मन्त्रिभिः । इंगुदीमूलमागम्य रामशय्यामवैक्षत ॥ १ ॥ अब्रवीज्जननीः सर्वा इह तस्य महात्मनः । शर्वरी शयिता भूमाविदमस्य विमर्दितम् ॥२॥ अजिनोत्तरसंस्तीर्णे वरास्तरणसंचये । शयित्वा पुरुषव्याघ्रः कथं शेते महीतले ॥ ३ ॥ न नूनं दैवतं किंचित्कालेन बलवत्तरम् । यत्र दाशरथी रामो भूमावेवमशेत सः॥४॥ यस्मिन्विदेहराजस्य सुता च प्रियदर्शना । दयिता शयिता भूमौ स्नुषा दशरथस्य च ॥५॥ हा हतोऽस्मि नृशंसोऽस्मि यत्सभार्यः कृते मम । ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाथवत् ॥६ ॥

टीका--यह सब सावधानी से सुनकर भरत मन्त्रियों के साथ गोंदी के नीचे आकर राम की शय्या को देखता भया ॥१॥ और सारी माताओं से बोला, यहां वह महात्मा भूमि पर सोया है, यह उसके अंगों से मर्दन किया हुआ स्थान है ॥२॥ गलीचों के ऊपर बिछे हुए उत्तम बिछौनों के समूहों पर सोकर के वह पुरुषश्रेष्ठ कैसे भूमितल पर सोता है ॥ ३ ॥ मैं जानता हूं, काल से बढ़कर कोई देवता नहीं है, जब कि दाशरथि राम इस तरह भूमिपर सोया॥४॥ और जब कि विदेह राज की सुता राजा दशरथ की प्यारी स्नुषा प्रियदर्शना सीता भूमि पर लेटी॥५॥हा मैं मन्दभाग्य हूं, बड़ा निर्दय हूं, जो मेरे लिये राघव सहित भार्या के इस तरह अनाथवत् सोया॥

मूल—धन्यः खलु महाभागो लक्ष्मणः शुभलक्षणः । भ्रातरं विषमे काले यो राममनुवर्तते ॥७॥ सिद्धार्था खलु वैदेही पतिं यानुगता वनम् । वयं संशयिताः सर्वे हीनास्तेन महात्मना ॥८॥ अकर्णधारा पृथिवी शून्येव प्रतिभाति मे । गते दशरथे स्वर्गे रामे चारण्यमाश्रिते ॥९॥+अद्यप्रभृति भूमौ तु शयिष्येऽहं तृणेषु वा । फलमूलाशनो नित्यं जटाचीराणि धारयन् ॥ १० ॥+तस्याहमुत्तरं कालं

निवत्स्यामि सुखं वने। तत्प्रतिश्रुतमार्यस्य नैव मिथ्या भविष्यति ॥११॥+अभिषक्ष्यन्ति काकुत्स्थमयोध्यायां द्विजातयः। अपि मे देवताः कुर्युरिमं सत्यं मनोरथम् ॥ १२

टीका—शुभ लक्षणों वाला महाभाग लक्ष्मण धन्य है जो विषम काल में भाई का साथ दे रहा है ॥७॥ वैदेही कृतकृत्या है, जो पति के पीछे बन को गई है, हम सब उन महात्मा से हीन हुए संशय में (दशरथ के स्वर्ग को चले जाने पर और राम के वन का आश्रय लेने पर) पड़े हैं ॥८॥ दशरथ के स्वर्ग को चले जाने और राम के बन का आश्रय लेने पर सारी पृथिवी बिना मल्लाह के बेड़ी की तरह मुझे प्रतीत होती है ॥९॥ आज से लेकर मैं सदा भूमि पर वा तिनकों पर ही सोऊंगा, नित्यप्रति फल मूल खाऊंगा, और जटा चीर धारण करूंगा ॥ १० ॥ अब उसका (वनवास का) अगला समय मैं बन में आनन्द से रहूंगा, जिससे कि वह आर्य का प्रतिज्ञा किया हुआ (वनवास) मिथ्या नहीं होगा ॥ ११ ॥ राम को अयोध्या में द्विजाति अभिषेक देंगे, ऐसा हो कि देवता मेरे इस मनोरथ को सत्य करें ॥१२॥

सर्ग ७७ (व० ८९) गङ्गा से पार उतरना

मूल—व्युष्य रात्रिं तु तत्रैव गङ्गाकूले स राघवः। काल्यमुत्थाय शत्रुघ्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥१॥ शत्रुघ्नोत्तिष्ठ किं शेषे निषादाधिपतिं गुहम्। शीघ्रमानय भद्रं ते तारयिष्यति वाहिनीम् ॥२॥ जागर्मि नाहं स्वपिमि तथैवार्यं विचिन्तयन्। इत्येवमब्रवीद्भ्राता शत्रुघ्नो विप्र चोदितः ॥ ३ ॥ इति संवदतोरेवमन्योन्यं नरसिंहयोः। आगम्य प्राञ्जलिः काले गुहो वचनमब्रवीत् ॥४॥ कच्चित्सुखं नदीतीरेऽवात्सीः काकुत्स्थ शर्वरीम्। कच्चिच्च सहसैन्यस्य तव नित्यमनामयम् ॥

टीका—रात वहीं गङ्गा के किनारे वास करके वह राघव प्रातःकाल

उठकर शत्रुघ्न से यह वचन बोला ॥१॥ हे शत्रुघ्न उठो क्यों सो रहे हो, जाकर भीलाधिपति गुह को शीघ्र बुला लाओ, तेरा भला हो, वह सेना को पार लंघाए ॥२॥ भाई से प्रेरा हुआ शत्रुघ्न बोला मैं जागता ही हूं, उसी तरह भाई को चिन्तन करता हुआ सोया नहीं हूं ॥३॥ इसप्रकार उन वीर पुरुषों के बात चीत करते हुए ही समय पर आकर गुह हाथ जोड़ कर बोला ॥४॥ हे राघव नदी के किनारे पर रात आराम से सोए, सहित सेना के आप सर्वथा अरोग है

मूल–गुहस्य तत्तु वचनं श्रुत्वा स्नेहादुदीरितम् । रामस्यानुवशो वाक्यं भरतोऽपीदमब्रवीत् ॥६॥ सुखा नः शर्वरी धीमन्पूजिताश्चापि ते वयम् । गङ्गां तु नौभिर्बह्वीभिर्दाशाः सन्तारयन्तु नः ॥७॥ ततः स्वस्तिकविज्ञेयां पाण्डुकम्बलसंवृताम् । सनन्दिघोषां कल्याणीं गुहो नावमुपाहरत् ॥८॥ तामारुरोह भरतःशत्रुघ्नश्च महाबलः । कौसल्या च सुमित्रा च याश्चान्या राजयोषितः ॥९॥ पताकिन्यस्तु ता नावः स्वयं दाशैरधिष्ठिताः । वहन्त्यो जनमारूढं तदा संपेतुराशुगाः ॥१०॥ नावश्चारुरुहुस्त्वन्ये प्लवैस्तेरुस्तथापरे । अन्ये कुम्भघटैस्तेरुरन्ये तेरुश्च बाहुभिः ॥११॥ सा पुण्या ध्वजिनी गङ्गां दाशैः सन्तारिता स्वयम् । मैत्रे मुहूर्ते प्रययौ प्रयागवन मुत्तमम् ॥ १२ ॥

टीका–स्नेह से कहे गुह के इस वाक्य को सुन कर राम के आधीन भरत भी यह वाक्य बोला ॥६॥ हे बुद्धिमान् रात हमें आराम से बीती, आपने हमारा बड़ा आदर किया है, किन्तु अब बहुत सी नौकाओं से मलाह हमें गङ्गा से पार उतारें ७ तब स्वस्तिक नामवाली श्वेत गलीचों से ढकी हुई उत्सव के बाजों से युक्त कल्याणी नौका को गुह (भरत के लिए) लाया ॥८॥ उस पर भरत और महाबली शत्रुघ्न, कौसल्या और सुमित्रा और जो दूसरी राजस्त्रियें हैं, वह आरूढ़ हुई ॥९॥ झंडियोंवाली वह सब नौकाएं जिन पर मलाह बैठे

हैं,सवार हुए लोगों को लेजाने वाली इकट्ठी मिलकर तेजी के साथ चल पड़ीं ॥१०॥ कई तो नौकाओं पर सवार हुए,कई तुलाओं से तरगये,कई सुराहियों से तरे और कई भुजाओं से ही तर कर पार उतर गए ॥११॥ उस पवित्र सेना को भीलों ने गङ्गा पार उतारा, और चार घड़ी दिन चढ़े पीछे वह उत्तम प्रयाग वन को गई ।१२।

सर्ग ७८ (व० ९०) भरत का भरद्वाज के आश्रम में रात्रिवास

मूल–भरद्वाजाश्रमं गत्वा क्रोशादेव नरर्षभः। जनं सर्वमवस्थाप्य जगाम सह मन्त्रिभिः ॥१॥ ततः संदर्शने तस्य भरद्वाजस्य राघवः । मन्त्रिणस्तानवस्थाप्य जगामानु पुरोहितम् ॥ २ ॥ वसिष्ठमथ दृष्ट्वैव भरद्वाजो महातपाः । संचचालासनात्तूर्णं शिष्यानर्घ्यमिति ब्रुवन् ॥३॥ समागम्य वसिष्ठेन भरतेनाभिवादितः। अबुध्यत महातेजाः सुतं दशरथस्यतम्॥४॥ताभ्यामर्घ्यं च पाद्यं च दत्वा पश्चात्फलानि च । आनुपूर्व्याच्च धर्मज्ञःपप्रच्छ कुशलं कुले॥५॥अयोध्यायां बले कोशे मित्रेष्वपि च मन्त्रिषु। जानन्दशरथं वृत्तं न राजानमुदाहरत्॥६॥वसिष्ठो भरतश्चैनं पप्रच्छतुरनामयम् । शरीरेऽग्निषु शिष्येषु वृक्षेषु मृगपक्षिषु ॥ ७ ॥ तथेति तु प्रतिज्ञाय भरद्वाजो महायशाः । भरतं प्रत्युवाचेदं राघवस्नेहबन्धनात् ॥८॥ किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रशासतः । एतदाचक्ष्व सर्वं मे न हि मे शुध्यते मनः ॥ ९ ॥ एवमुक्तो भरद्वाजं भरतःप्रत्युवाचह । पर्यश्रुनयनो दुःखाद्वाचा संसृज्यमानया ॥१०॥

टीका–भरद्वाज के आश्रम को जाकर कोस परे से ही वह नरश्रेष्ठ सब लोगों को ठहराकर आप मन्त्रियों के साथ गया॥१॥तब भरद्वाज के दर्शन के अवसर पर उन मन्त्रियों को भी ठहराकर पुरोहित के पीछे २ गया॥ २ ॥ वसिष्ठ को देखते ही महातपस्वी भरद्वाज शिष्यों को अर्घ्य (लाओ) कहता हुआ आसन से जल्दी उठा ॥३ वसिष्ठ से मिलने के पीछे भरतसे अभिवादन किया हुआ वह महा

तेजस्वी उसे दशरथसुत जानता भया ॥ ४ ॥ उन दोनों के लिये अर्घ्यपात्र और पीछे फल देकर वह मर्यादाको जानने वाला क्रम से (पहले ब्राह्मण को, पीछे क्षत्रिय को) कुल में कुशल पूछता भया ॥५॥ अयोध्या में, सेना में, कोश में, मित्रों में और मन्त्रियों में (सब में कुशल पूछा) दशरथ का मरना जानता था, इसलिये राजा का नाम नहीं लिया॥६॥वसिष्ठ और भरत ने उसको शरीर में,अग्नियों में,शिष्यों में,वृक्षोंमें,और मृगपक्षियों में, कुशल पूछा ॥ ७॥ सब कुशल है,यह कहकर महायशस्वी भरद्वाज रामके स्नेह के बन्धन से भरत को यह बोला ॥८॥ राज्य का शासन करते हुए आपका यहां आने में क्या काम है यह सब मुझे कहो,मेरा मन शुद्ध नहीं होता है ॥९॥ ऐसे कहा हुआ भरत दुःख से फिसलती हुई बाणी से आंसुओं से भरे नेत्रों से भरद्वाज से बोला ॥१०॥

मूल–हतोऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्यते। मत्तो न दोषमाशङ्केर्मैवं मामनुशाधि हि ॥११॥ न चैतादिष्टं माता मे यदवोचन्मदन्तरे। नाहमेतेन तुष्टश्च न तद्वचनमाददे॥१२॥अहं तु तं नरव्याघ्रमुपयातः प्रसादकः। प्रतिनेतुमयोध्यायां पादौ चास्याभिवन्दितुम् ॥ १३ ॥ वसिष्ठादिभिर्ऋत्विग्भिर्याचितो भगवांस्ततः। उवाच तं भरद्वाजः प्रसादाद्भरतं वचः ॥१४॥ त्वय्येतत्पुरुषव्याघ्र युक्तं राघववंशजे। गुरुवृत्तिर्दमश्चैव साधूनां चानुयायिता ॥१५॥ जाने चैतन्मनस्थं ते दृढीकरणमस्त्विति। अपृच्छं त्वां तवात्यर्थं कीर्त्तिं समभिवर्धयन्॥१६ जाने च रामं धर्मज्ञं ससीतं सहलक्ष्मणम्। अयं वसति ते भ्राता चित्रकूटे महागिरौ ॥१७॥श्वस्तु गन्तासि तं देशं वसाद्य सह मन्त्रिभिः। एतं मे कुरु सुप्राज्ञ कामं कामार्थकोविद ॥ १८ ॥

टीका–मैं बड़ा मन्द भाग्य हूं,यदि भगवान् भी मुझे ऐसा ही समझते हैं,मुझसे दोष की शङ्का नहीं है मुझे आप ऐसा न कहें॥११॥मुझे यह

इष्ट नहीं है,जो माता ने मेरे विषयमें किया है, मैं इससे प्रसन्न नहीं हुआ हूं,न उसके वचन को स्वीकार करता हूं ॥ १२ ॥ मैं तो उस नरश्रेष्ठ को प्रसन्न करनेके लिये,अयोध्यामें लौटा ले जानेके लिये और उसकी पाद वन्दना करनेके लिये आया हूं॥१३॥वासिष्ठ आदि ऋत्विजों से याचना किया हुआ भगवान् भरद्वाज प्रसन्नता से भरत को यह वचन बोला ॥ १४ ॥ तुझ राघववंश में उत्पन्न हुए में हे पुरुषश्रेष्ठ गुरु सेवा,अपनें आपको वसमें रखना,और भलों का अनुयायी होना युक्त ही है ॥१५॥ तेरे मन की इस बात को जानता हूं,तथा दृढ करने के लिये तेरी कीर्त्ति को अत्यन्त बढाते हुए मैंने तुझे पूछा है ॥ १६ ॥ और जानता हूं सीता और लक्ष्मण समेत धर्मज्ञ राम को,यह तेरा भाई महापर्वत चित्रकूट पर बसता है॥१७ कल उस जगह जाना,आज मन्त्रियों सहित यहां ही रहो,हे काम अर्थ के जानने वाले सुप्राज्ञ मेरी इस कामना को पूरा कर ॥१८॥

सर्ग ७१ (व० ९२) भरत का भरद्वाज से विदा होना

मूल–ततस्तां रजनीं व्युष्य भरतः सपरिच्छदः। कृतातिथ्योभरद्वाजं कामादभिजगाम ह ॥१॥ तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा भरतोऽभिप्रणम्य च। आश्रमादुप निष्क्रान्तमृषिमुत्तमतेजसम् ॥२॥ सुखोषितोऽस्मि भगवन्समग्रबलवाहनः। तर्पितः सर्वकामैश्च सामात्यो बलवान् त्वया ३ आमन्त्रयेऽहं भगवन्कामं त्वामृषिसत्तम। समीपं प्रस्थितं भ्रातुर्मैत्रेणेक्षस्व चक्षुषा ॥४॥ प्रयाणमिति च श्रुत्वा राजराजस्य योषितः। हित्वा यानानि यानार्हा ब्राह्मणं पर्यवारयन् ॥५॥ तत्र पप्रच्छ भरतं भरद्वाजो महामुनिः। विशेषं ज्ञातुमिच्छामि मातृणां तव राघव ६ एवमुक्तस्तु भरतो भरद्वाजेन धार्मिकः। उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वावाक्यं वचनकोविदः ॥७॥ यामिमां भगवन्दीनां शोकानशनकर्शिताम्। पितुर्हि महिषीं देवीं देवतामिव पश्यसि ॥८॥ एषा तं पुरुषव्याघ्रं सिंहविक्रान्तगामिनम्। कौसल्या सुषुवे रामं धातारमदितिर्यथा ९

टीका—तब आतिथ्य सत्कारसे सत्कृत कियाहुआ भरत वहांपरिवार सहित रात रहकर (सवेरे रामके मिलने की) कामना से भरद्वाजके पासगया॥१॥हाथ जोड़ कर प्रणाम करके भरत आश्रमसे निकलते हुए उस उत्तम तेजवाले ऋषि से बोला ॥२॥ हे भगवन् ! समग्र सेना और वाहनों के साथ मैं सुखसे रहाहूं और हे भगवन्! आपनेमन्त्रियों समेत मुझे सारी कामनाओंसे बडा तृप्त किया है ॥३॥ हे भगवन् ऋषिसत्तम अब आपसे आज्ञा मांगता हूं, भाई के पास रवाना हुए मुझको मित्रकी दृष्टि से देख।४।चलना है यह सुनकर राजाधिराज की स्त्रियें यानोंको छोड़कर ब्राह्मण (भरद्वाज) की प्रदक्षिणाकरती भई ५ तब महामुनि भरद्वाजने भरतसे पूछा, हे राघव तेरी माताओं की विशेषता जानना चाहता हूं ६ भरद्वाजसे से ऐसा कहा हुआ वचन (सुन) पंडित धार्मिक भरत हाथ जोडकर बोला॥७॥हे भगवन्! यह जो आप दीन, शोक और अनाहार से दुर्बल मेरे पिताकी पटरानी देवताकी तरह देखते हैं ८ यह कौसल्या है जिस ने सिंहकी चाल वाले पुरुषश्रेष्ठरामको जन्म दिया है जैसे अदिति ने धाता को ॥९

मूल—अस्या वामभुजं श्लिष्टा या सा तिष्ठति दुर्मनाः । इयं सुमित्रा दुःखार्ता देवी राज्ञश्च मध्यमा १० यस्या कृते नरव्याघ्रौ जीवनाशमितोगतौ । राजापुत्रविहीनश्च स्वर्गंदशरथो गतः ११ ममैतांमातरं विद्धि नृशंसां पापनिश्चयाम् । यतोमूलं हि पश्यामि व्यसनं महदात्मनः ॥१२॥ भरद्वाजो महर्षिस्तं ब्रुवन्तं भरतं तदा । प्रत्युवाच महाबुद्धिरिदं वचनमर्थवत् ॥१३॥ +न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया । रामप्रव्राजनं ह्येतत्सुखोदर्कं भविष्यति १४ +देवानां दानवानां च ऋषीणां भावितात्मनाम् । हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्राजनादिह॥१५॥ अभिवाद्य तु संसिद्धः कृत्वा चैनंप्रदक्षिणम् । आमन्त्र्य भरतः सैन्यं युज्यतामिति चाब्रवीत् ॥१६॥ गजकन्या

गजाश्चैव हेमकक्ष्याः पताकिनः । जीमूता इव घर्मान्ते सघोषाः संप्रतस्थिरे ॥१७॥ विविधान्यपि यानानि महान्ति च लघूनि च । प्रययुः सुमहार्हाणि पादैरपि पदातयः ॥१८॥

टीका—इस की बाईं भुजा के साथ लगी हुई जो दुर्मन हुई स्थित है, यह दुखार्ता सुमित्रा राजा की मध्यमा रानी है ॥१०॥ और जिस के लिए वह दोनों नरश्रेष्ठ यहां से जीवनाश को प्राप्त हुए हैं और राजा दशरथ पुत्रहीन हुआ स्वर्ग को गया है॥११॥उस इस क्रूर स्वभाववाली पाप निश्चय वाली को मेरी माता जानें, जिस मूल से मैं अपनी बडी विपद् देखता हूं ॥१२॥ भरत के ऐसा कहते हुए महा बुद्धि महर्षि भरद्वाज यह सार्थक वचन बोला ॥१३॥ "हे भरत कैकेयी को दोषदृष्टि से नहीं देखना, यह राम का वनवास अच्छे परिणाम वाला होगा ॥१४॥ राम के बनवास से शुद्धात्मा देवता दानव और ऋषियों का हित ही होगा" ॥१५॥ आशीर्वाद पाकर अभिवादन कर और प्रदक्षिणा करके भरत आज्ञा लेकर सेना से बोला तय्यार होजाओ ॥ १६ ॥ तब सोने के हौदोंवाले, और झण्डोंवाले हाथी हथिनियें बरसात में मेघों की तरह शब्द करते हुए चल पड़े ॥ १७ ॥ छोटे बड़े सब प्रकार के यान और बहुत बड़ों के योग्य यान चल पड़े और प्यादे पैदल ही चल पड़े॥१८॥

सर्ग ८० (व० ९३) भरत की चित्र कूट की यात्रा

मूल—तथा महत्या यायिन्या ध्वजिन्या वनवासिनः। अर्दिता यूथपा मत्ताः सयूथाः संप्रदुद्रुवुः ॥ १ ॥ स गत्वा दूरमध्वानं संपरिश्रान्तवाहनः। उवाच वचनं श्रीमान्वासिष्ठं मन्त्रिणां वरम् ॥ २ ॥ यादृशं लक्ष्यते रूपं यथा चैव मया श्रुतम् । व्यक्तं प्राप्ताःस्म तं देशं भरद्वाजो यमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अयं गिरिश्चित्रकूटस्तथा मन्दाकिनी नदी । एतत् प्रकाशते दूरान्नीलमेघनिभं वनम् ॥४॥ मुञ्चन्ति कुसमान्येते नगाः पर्वतसानुषु । नीला इवातपापाये तोयं तोयधरा घनाः ॥५॥

टीका—इस चलती हुई बड़ी सेना से वनवासी यूथपति मत्त हाथी पीडित हुए यूथों के सहित भाग गये ॥१॥ दूर भाग जाकर थके हुए घोड़ोंवाला वह श्रीमान् मन्त्रिवर वसिष्ठ से वचन बोला ॥ २ ॥ जैसा यह रूप दीखता है,जैसा मैंने सुना है,निःसन्देह हम उस जगह आगये हैं,जो भरद्वाज ने वतलाई थी ॥ ३ ॥ यह चित्रकूट पर्वत है, यह मन्दाकिनी नदी है,यह दूर से नील मेघ तुल्य वन दीखता है ॥४॥यह वृक्ष पर्वत की चोटियों पर फूल बरसा रहे हैं, जैसे बरसात में नीले घने मेघ जल बरसाते हैं ॥ ५ ॥

मूल—अतिमात्रमयं देशो मनोज्ञःप्रतिभाति मे । तापसानां निवासो-ऽयं व्यक्तं स्वर्गपथोऽनघ ॥६॥ साधुसैन्याः प्रतिष्ठन्तां विचिन्वन्तु च काननम् । यथा तौ पुरुषव्याघ्रौ दृश्येते रामलक्ष्मणौ ॥७॥ भरतस्य वचःश्रुत्वा पुरुषाःशस्त्रपाणयः विविशुस्तद्वनं शूरा धूमाग्रं ददृशुस्ततः ॥८॥ ते समालोक्य धूमाग्रमूचुर्भरतमागताः । नामनुष्ये भवत्यग्निर्व्य-क्तमत्रैव राघवौ॥९॥अथ नात्र नरव्याघ्रौ राजपुत्रौ परंतपौ । अन्ये रामोपमाः सन्ति व्यक्तमत्र तपस्विनः ॥१०॥

टीका—यह अतीव सुंदर देश मुझे बड़ा प्यारा लगता है, तपस्वियों का यह निवास स्थान है हे निष्पाप निःसंदेह यह स्वर्ग का मार्ग है ॥६॥ अब सैनिक जन यथायोग्य इधर उधर रवाना हो,वन को ढूंढें, जिससे पुरुषश्रेष्ठ राम लक्ष्मण का पता लगाएं ॥७॥ भरतके वचन को सुनकर शस्त्रधारी शूरवीर उस वन में प्रविष्ट हो धूप की शिखा देखते भये॥ ८ ॥ वह देख आकर भरत से धूम की शिखा वतलाते भए और कहा बिना मनुष्य के अग्नि नहीं होती है,निःसन्देह यहां ही राघव है ॥ ९ ॥ और यदि वह परन्तप नरश्रेष्ठ राजपुत्र न भी होंगे तथापि रामतुल्य और तपस्वी यहां अवश्य होंगे ॥१०॥

सर्ग ८१ (व० ९४) राम का सीता को पर्वतीय दृश्य दिखलाना

मूल—दीर्घकालोषितस्तस्मिन्गिरौ गिरिवरप्रियः । वैदेह्याः प्रियमा

कांक्षन्स्वं च चित्तं विलोभयन् ॥ १ ॥ अथ दाशरथिश्चित्रं चित्रकू-
टमदर्शयत् । भार्याममरसंकाशः शचीमिव पुरन्दरः ॥ २ ॥ न रा-
ज्यभ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः । मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं
गिरिम् ॥३॥ पश्येममचलं भद्रे नानाद्विजगणायुतम् । शिखरैः ख-
मिवोद्विद्धैर्धातुमद्भिर्विभूषितम् ॥ ४ ॥ पुष्पवद्भिः फलोपेतैश्छाया-
वद्भिर्मनोरमैः । एवमादिभिराकीर्णः श्रियं पुष्यत्ययं गिरिः ॥५ ॥
गुहासमीरणो गन्धान्नानापुष्पभवान्बहून् । घ्राणतर्पणमभ्येत्य कं नरं
न प्रहर्षयेत् ॥६॥+यदीह शरदोऽनेकास्त्वया सार्धमनिन्दिते । लक्ष्म
णेन च वत्स्यामि न मां शोकः प्रधर्षति ॥७॥+अनेन वनवासेन मम
प्राप्तं फलद्वयम् । पितुश्चानृण्यता धर्मे भरतस्य प्रियं तथा ॥ ८ ॥
इदमेवामृतं प्राहू राज्ञि राजर्षयः परे । वनवासं भवार्थाय प्रेत्य मे प्रपि
तामहाः ।९। शिलाः शैलस्य शोभन्ते विशालाः शतशोऽभितः ।
बहुला बहुलैर्वर्णैर्नीलपीतासितारुणैः ॥ १० ॥

टीका—(इधर) बहुत दिन से उस पर्वत में रहता हुआ पर्वतों का प्यार करनेवाला देवतुल्य राम जानकी का प्रिय चाहता हुआ और अपने चित्तको बहलाता हुआ आश्चर्यमय चित्रकूटको अपनी पत्नी को दिखलाने लगा, जैसे इन्द्र शची को (दिखलाये) ॥१, २॥ हे भद्रे इस रमणीय पर्वत को देखकर न राज्य से गिरना, न सुहृदों से अलग होना, मेरे मन को पीड़ा देता है ॥३॥ देख इस पर्वत को हे भद्रे जो नाना पक्षिगणों से युक्त है, और धातोंवाली चोटियां जो मानों आकाश को वींधकर ऊंची निकली हुई हैं, उनसे सुशो-भित है ॥४॥ फूलोंवाले फलोंवाले और छायावाले इसप्रकार के मनोरम वृक्षों से भरा हुआ यह पर्वत शोभा को पुष्ट कर रहा है ॥५॥ गुफा (के द्वार से निकला) वायु नाना पुष्पों के गन्धों को लाकर घ्राणको तृप्त करता हुआ किस पुरुष को आनन्दित नहीं करदेता है ॥६

॥ हे अनिन्दिते यदि यहां तेरे साथ और लक्ष्मण के साथ अनेक बरस भी रहूं तो मुझे कभी शोक न दबाये ॥७॥ इस बनवास से मैंने दो फल प्राप्त किये हैं, एक तो पिता की अनृणता, दूसरा भरत का प्रिय (पिता का ऋण चुकाना और भरत का भला होना) ॥८॥ हे रानी यह बनवास ही है, जिसको मेरे पूर्वज राजऋषि अमर होना कहते गये हैं क्योंकि परलोक में परमेश्वर की प्राप्ति के लिये है ॥९॥ पर्वत के चारों ओर सैंकड़ों विशाल शिलाएं, नीले पीले श्वेत, लाल अनेक प्रकार के रंगो से शोभा दे रही हैं ॥ १० ॥

मूल—निशि भान्त्यचलेन्द्रस्य हुताशनशिखा इव। ओषध्यः स्वप्रभालक्ष्म्या भ्राजमाना सहस्रशः ॥११॥ केचित्क्षयनिभा देशाः केचिदुद्यान संनिभाः। केचिदेक शिलाः भान्ति पर्वतस्यास्य भामिनि ॥१२॥ भित्त्वेव वसुधां भाति चित्रकूटः समुत्थितः। चित्रकूटस्य कूटोऽयं दृश्यते सर्वतः शुभः ॥१३॥

टीका—रात के समय इस पर्वत की बहुत सी ओषधियें अपनी प्रभा की शोभा से चमकती हुई अग्नि की शिखा की तरह प्रतीत होती हैं ॥११॥ हे भामिनि इस पर्वत के कई भाग घरों के तुल्य हैं, कई बगीचों के सदृश हैं, कई लम्बी२ एक शिला वाले हैं॥१२॥ चित्रकूट पृथिवी को मानों फोड़कर निकला हुआ प्रतीत होता है और चित्रकूट की यह चोटी (जिस पर हम हैं) सब ओर से शोभा वाली है १३

सर्ग ८२(व० ९५) सीता को नदी का दृश्य दिखलाना

मूल—अथ शैलाद्विनिष्क्रम्य मैथिलीं कोशलेश्वरः। अदर्शयच्छुभजलां रम्यां मन्दाकिनीं नदीम् ॥१॥ विचित्रपुलिनां रम्यां हंससारससेविताम् कुसुमैरुपसंपन्नां पश्य मन्दाकिनीं नदीम् ॥२॥ जटाजिनधराः काले वल्कलोत्तरवाससः। ऋषयस्त्ववगाहन्ते नदीं मन्दाकिनीं प्रिये ॥३॥ मारुतोद्धूतशिखरैः प्रनृत्त इव पर्वतः। पादपैः पुष्पपत्राढ्यै

मृजद्भिरभितो नदीम् ॥४॥ निर्धूतान्वायुना पश्य विततान्पुष्पसंचयान् । पोप्लूयमानानपरान्पश्य त्वं तनुमध्यमे ॥५॥ पश्यैतद्वल्गुवचसो रथाङ्गाह्वयना द्विजाः । अधिरोहन्ति कल्याणि निष्कूजन्तः शुभा गिरः॥६॥ दर्शनं चित्रकूटस्य मन्दाकिन्याश्च शोभने। अधिकं पुरवासाच्च मन्ये तव च दर्शनात् ॥७॥ विधूतकल्मषैः सिद्धैस्तपोदमशमान्वितैः । नित्यविक्षोभितजलां विगाहस्व मया सह ॥८॥

टीका—अब पर्वत से दृष्टि हटाकर वह कोशलाधिपति मैथिली को शुभ जल वाली सुहावनी मन्दाकिनी नदी का दृश्य दिखलाने लगा ॥१॥ हे मैथिलि ! विचित्र बरेतों (थलों) वाली हंस सारसों से सेवित, किनारों पर फूलों से सजी हुई सुहावनी मन्दाकिनी नदी को देख ॥२॥ हे प्रिये इस नदी में जटा और मृगान पहने हुए बक्लों की चादरें ओढ़े हुए समय पर ऋषिजन स्नान करते हैं ॥३॥ वायु से हिलाई चोटियों वाले और नदी के दोनों ओर पुष्प और पत्र बिखेरते हुए वृक्षों से मानों यह नृत्य कर रहा है ॥४॥ हे तनु मध्यमे ! यह और फूलों के गुच्छे वायु से कंपाए हुए वार २ जल में डूबते हुए देख ॥५॥ देख यह मीठी ध्वनि वाले चकवे पक्षी हे कल्याणि सुन्दर आवाज़ें देते हुए बरेतों पर बैठे हैं ॥६॥ चित्रकूट का देखना, और मन्दाकिनी का देखना, और हे शोभने तेरा देखना पुर के वास से अधिक समझता हूं ॥ ७ ॥ इस नदी में जिसमें कि दूर हुए पापों वाले तप दान और शम से युक्त सिद्ध जन सदा स्नान करते हैं, मेरे साथ स्नान किया कर ॥८॥

मूल—त्वं पौरजनवद्व्यालानयोध्यामिव पर्वतम् । मन्यस्व वनिते नित्यं सरयूवदिमां नदीम्॥९॥लक्ष्मणश्चैव धर्मात्मा मन्निदेशे व्यवस्थितः । त्वं चानुकूला वैदेहि प्रीतिं जनयती मम॥ १० ॥ उपस्पृशंस्त्रिषवणं मधुमूलफलाशनः। नायोध्यायै न राज्याय स्पृहये च त्वया सह ॥११॥

टीका—तू हाथियों को पुर के लोगों की तरह मान, पर्वत को अयोध्या की तरह मान और हे वनिते इस नदी को सरयू की तरह मान ॥९॥ धर्मात्मा लक्ष्मण मेरे पास स्थित है और तू हे वैदेहि मेरी प्रीति को उत्पन्न करती हुई मेरे अनुकूल है ॥१०॥ सो मैं तेरे साथ तीनों सवनों में स्नान करता हुआ मधुमूल और फल खाता हुआ न अयोध्या की और न राज्य की इच्छा करता हूं ॥११॥

सर्ग ८३ (व० ९६) भरत की सेना देख कर लक्ष्मण का क्रोध

मूल—एतस्मिन्नन्तरे त्रस्ताः शब्देन महता ततः। अर्दिता यूथपा मत्ताः स्वयूथाद्दुद्रुवुर्दिशः ॥१॥ स तं सैन्यसमुद्भूतं शब्दं शुश्राव राघवः। तांश्च विप्रद्रुतान्सर्वान्यूथपानन्ववैक्षत ॥२॥ तांश्च विप्रद्रुतान्दृष्ट्वा तं च श्रुत्वा महास्वनम्। उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥३॥ हन्त लक्ष्मण पश्येह सुमित्रा सुप्रजास्त्वया। भीमस्तनितगम्भीरं तुमुलः श्रूयते स्वनः ॥४॥ राजा वा राजपुत्रो वा मृगयामटते वने। अन्यद्वा श्वापदं किंचित्सौमित्रे ज्ञातुमर्हसि ॥५॥ स लक्ष्मणः संत्वरितः सालमारुह्य पुष्पितम्। प्रेक्षमाणो दिशः सर्वाः पूर्वां दिशमवैक्षत ॥६॥ उदङ्मुखः प्रेक्षमाणो ददर्श महतीं चमूम्। गजाश्वरथसंबाधां यत्तैर्युक्तां पदातिभिः ॥७॥ तामश्वरथसंपूर्णां रथध्वजविभूषिताम्। शशंस सेनां रामाय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

टीका—इस अवसर में महान् शब्द से भीत हुए पीड़ित हुए मत्त यूथपति अपने २ यूथ से इधर उधर भागने लगे ॥१॥ सैनिकों से उत्पन्न हुए उस शब्द को रामने सुना, और उन भागते हुए सब यूथपतियों को देखा ॥२॥ उनको भागता हुआ देखकर और उस बड़े शब्द को सुनकर रामने जलते हुए तेज वाले सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण को कहा ॥ ३ ॥ हां हे लक्ष्मण इधर देख, सुमित्रा तुझ से अच्छी सन्तान वाली है, भयंकर गर्ज की तरह गम्भीर तुमल ध्वनि

सुनाई देती है ॥ ४ ॥ यह कोई राजा वा राजपुत्र बन में शिकार खेलता है,वा कोई और श्वापद (दरिन्दा) है,हे लक्ष्मण इसे जानना चाहिये ॥५॥ वह लक्ष्मण तुरत फूले हुए साल वृक्ष पर चढ़ गया, सारी दिशाओं को देखते हुए उसने पहले पूर्व दिशा को देखा ॥६ उत्तराभिमुख होकर देखते हुए उस ने भारी सेना देखी, हाथी, घोड़े और रथों से भरी हुई और सजे हुए प्यादों से युक्त ॥ ७ ॥ घोड़े रथों से पूर्ण, रथों के झण्डों से शोभायमान सेना देखकर राम को बतलाई और यह वचन कहा ॥ ८ ॥

मूल—अग्निं संशमयत्वार्यः सीता च भजतां गुहाम्। सज्जं कुरुष्व चापं च शरांश्च कवचं तथा ॥९॥ तं रामः पुरुषव्याघ्रो लक्ष्मणं प्रत्युवाच ह। अङ्गावेक्षस्व सौमित्रे कस्येमां मन्यसे चमूम् ॥१०॥ एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्। दिधक्षन्निव तां सेनां रुषितः पावको यथा ॥११॥ संपन्नं राज्यमिच्छंस्तु व्यक्तं प्राप्याभिषेचनम् । आवां हन्तुमभ्येति कैकेय्या भरतः सुतः ॥१२॥ एष वै सुमहाञ्छ्रीमान्विटपी संप्रकाशते । विराजत्युज्ज्वलस्कन्धः कोविदारध्वजो रथे ॥१३॥ गृहीतधनुषावावां गिरिं वीर श्रयावहे। अथ वेहैव तिष्ठावः संनद्धावुद्यतायुधौ ॥१४॥ अपि नौ वशमागच्छेत् कोविदारध्वजो रणे। अपि द्रक्ष्यामि भरतं यत्कृते व्यसनं महत् ॥१५॥ अद्येमं संयतं क्रोधमसत्कारं च मानद। मोक्ष्यामि शत्रुसैन्येषु कक्षेष्विव हुताशनम् ॥१६॥ अद्यैव चित्रकूटस्य काननं निशितैः शरैः। छिन्दञ्छत्रुशरीराणि करिष्ये शोणितोक्षितम् ॥१७॥ शरैर्निर्भिन्नहृदयान्कुञ्जरांस्तुरगांस्तथा। श्वापदाः परिकर्षन्तु नरांश्च निहतान्मया॥

टीका—आप अग्नि को ठंडा करें, सीता गुफा में चली जाए,और आप धनुष बाण और कवच को तय्यार करें ॥९॥ पुरुषश्रेष्ठ राम ने लक्ष्मण को कहा, प्यारे लक्ष्मण ध्यान देकर देख, यह किस

की सेना समझता है ॥१०॥ राम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण, अग्नि की तरह मानों उस सेना को दग्ध करना चाहता हुआ क्रुद्ध हो यह वाक्य बोला ॥११॥ निःसन्देह अभिषेक को प्राप्त होकर पूर्ण राज्य को चाहता हुआ केकयीका पुत्र भरत हम दोनों को मारनेके लिये आया है ॥१२॥ यह जो उज्ज्वल कंधों वाला बहुत ऊंचा शोभायमान वृक्ष है इसके सामने रथ पर कोविदार झंडा है ॥१३ सो हम धनुष पकड़कर हे वीर पर्वत का आश्रय लें, अथवा यहां ही तय्यार हो शस्त्र उठाकर खडे रहें ॥१४॥ ऐसा हो कि कोवि-दार झंडा रण में हमारे हाथ आए, और हो, कि मैं भरत को देखूं, जिसके निमित्त यह भारी विपद् आपको प्राप्त हुई है ॥१५॥ आज मैं अपने इन रोकेहुए क्रोध और अपमान को हे मानके देने वाले शत्रुओं की सेना पर फूस पर अग्नि की तरह छोडूंगा॥१६॥ अभी तीक्ष्ण तीरों से शत्रुओं के शरीरों को छेदता हुआ चित्रकूट के वन को रुधिर से सिञ्चित कर दूंगा ॥१७॥ तीरों से फटे हुए हृदय वाले हाथियों और घोड़ों को तथा मुझसे मारे हुए मनुष्यों को श्वापद खींच २ लेजाएंगे ॥ १८ ॥

सर्ग ८४ (व० ९७) राम का लक्ष्मण को तसल्ली देना

मूल—सुसंरब्धं तु भरतं लक्ष्मणं क्रोधमूर्छितम् । रमस्तु परिसान्त्व्याथ वचनं चेदमब्रवीत॥१॥+किमत्र धनुषा कार्यमसिना वा सचर्मणा। महाबले महोत्साहे भरते स्वयमागते ॥ २ ॥+पितुः सत्यं प्रतिश्रुत्य हत्वा भरतमाहवे । किं करिष्यामि राज्येन सापवादेन लक्ष्मण॥३॥ +यद्द्रव्यं बान्धवानां वा मित्राणां वा क्षये भवेत । नाहं तत्प्रतिगृ-ह्णीयां भक्ष्यान्विषकृतानिव ॥४॥+धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण । इच्छामि भवतामर्थे एतत्प्रतिशृणोमि ते ॥५॥+भ्रातॄणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण । राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुध

मालभे ॥६॥+नेयं मम मही सौम्य दुर्लभा सागराम्बरा । नहीच्छे-
यमधर्मेण शक्रत्वमपि लक्ष्मण ॥ ७ ॥+यद्विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं
चापि मानद । भवेन्मम सुखं किंचिद्भस्म तत्कुरुतां शिखी ॥ ८ ॥
मन्येऽहमागतोऽयोध्यां भरतो भ्रातृवत्सलः । मम प्राणैः प्रियतरः
कुलधर्ममनुस्मरन् । ९॥ श्रुत्वाप्रव्राजितं मां हि जटावल्कलधारिणम् ।
जानक्या सहितं वीर त्वया च पुरुषोत्तम ॥ १० ॥

टीका—भरत के प्रति तय्यार हुए, क्रोध से मूर्छित हुए लक्ष्मण को राम तसल्ली देता हुआ यह वचन बोला ॥ १ ॥ यहां धनुष से वा ढाल सहित तलवार से क्या काम है,जब कि महाबली महोत्साही भरत स्वयं आया है ॥२॥पिता के सत्य को पालूंगा यह मैं प्रतिज्ञा करके अब भरत को युद्ध में मारकर निन्दा सहित राज्य से क्या करूंगा ॥३॥ जो द्रव्य बान्धवों के वा मित्रों के क्षय में प्राप्त हो मैं उसको विषयुक्त भक्ष्य की तरह कभी स्वीकार न करूं ॥ ४ ॥ हे लक्ष्मण मैं धर्म अर्थ काम और पृथिवी को आप सबके लिये ही चाहता हूं,यह प्रतिज्ञा करताहूं॥५॥हे लक्ष्मण मैं राज्य भी भाइयों के सुख के लिये चाहता हूं, सत्य से शस्त्र को छूता हूं ॥६॥ हे सौम्य समुद्र से ढकी हुई यह पृथिवी मेरे लिये दुर्लभ नहीं, पर हे लक्ष्मण मैं अधर्म से इन्द्रत्व भी नहीं चाहता हूं ॥७॥ हे मान देने वाले ! जो सुख भरत के तेरे और शत्रुघ्न के विना हो, उसको अग्नि भस्मसात् करदे॥८॥मैं समझता हूं,भ्रातृवत्सल भरत अयोध्या में आया है, और मेरे प्राणों से प्रियतर वह अपने कुल धर्म को स्मरण करता हुआ ॥ ९ ॥ मुझे जटा बकले धारकर जानकी और तेरे सहित बन को गया सुनकर—॥ १० ॥

मूल-+स्नेहेनाक्रान्तहृदयःशोकेनाकुलितेन्द्रियः । द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष
भरतो नान्यथाऽऽगतः॥११॥+अम्बां च कैकयीं रुष्य भरतश्चाप्रियं

वदन् । प्रसाद्य पितरं श्रीमान्राज्यं मे दातुमागतः॥१२॥+प्राप्तकालं यथैषोऽस्मान्भरतो द्रष्टुमर्हति । अस्मासु मनसाप्येष नाहितं किंचिदाचरेत् ॥ १३ ॥ विप्रियं कृतपूर्वं ते भरतेन कदा नु किम् । ईदृशं वा भयं तेऽद्य भरतं यद्विशङ्कसे ॥ १४ ॥ नाहं ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः । अहं ह्यप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते ॥ १५॥+कथं नु पुत्राः पितरं हन्युः कस्यांचिदापदि । भ्राता वा भ्रातरं हन्यात्सौमित्रे प्राणमात्मनः ॥१६॥यदि राज्यस्य हेतोस्त्वमिमां वाचं प्रभाषसे । वक्ष्यामि भरतं दृष्ट्वा राज्यमस्मै प्रदीयताम्॥ १७॥ उच्यमानो हि भरतो मया लक्ष्मणः तद्वचः । राज्यमस्मै प्रयच्छेति बाढमित्येव मंस्यते ॥ १८ ॥ तथोक्तो धर्मशीलेन भ्रात्रा तस्य हिते रतः । लक्ष्मणः प्रविवेशेव स्वानि गात्राणि लज्जया१९

टीका--स्नेहसे भरे हुए हृदयवाला शोक से घबराए इन्द्रियोंवाला,भरत हमें देखने के लिये आया है,अन्यथा नहीं आया है॥११॥ माता कैकयी को अप्रिय कहता हुआ रुष्ट करके और पिताको प्रसन्न करके श्रीमान् भरत मुझे राज्य देने की नियत से आया है॥१२॥भरत हमें देखने योग्य है, यही उचित है, हमारे विषय में यह मन से भी कुछ अहित चिन्तन नहीं करेगा ॥१३॥ क्या भरत ने कभी कोई तेरा विप्रिय किया है, वा तेरे लिये ऐसा कभी भयरूप हुआ है, जो आज तू भरत पर शङ्का करता है ॥१४॥ भरत को न तुझे कठोर कहना चाहिये, न अप्रिय वचन कहना चाहिये, भरत को अप्रिय कहने पर मुझे ही अप्रिय कहा हुआ होगा ॥१५॥ कैसे पुत्र किसी भी आपत्ति में पिता को मार सक्ते हैं, वा भाई भाई को मार सक्ता है, हे लक्ष्मण जो कि अपना प्राण होता है ॥१६॥ यदि राज्य के लिये तू यह बात कहता है तो मैं भरत को मिलकर कहूंगा, राज्य इसको देदो ॥१७॥ हे लक्ष्मण जब मैंने भरत को यह कहा

कि राज्य इसको देदो, तो वह 'हां' ऐसाही मानेगा ॥१८॥ धर्मशील भाई ने जब उसी के हित में रते हुए लक्ष्मण को ऐसा कहा, तो वह लज्जा से मानों अपने अङ्गों में प्रविष्ट होगया ॥ १९ ॥

मूल—तद्वाक्यं लक्ष्मणः श्रुत्वा व्रीडितः प्रत्युवाच ह । त्वा मन्ये द्रष्टुमायातः पिता दशरथः स्वयम्॥२०॥ व्रीडितं लक्ष्मणं दृष्ट्वा राघवः प्रत्युवाच ह । एष मन्ये महाबाहुरिहास्मान्द्रष्टुमागतः ॥२१॥ एतौ तौ संप्रकाशेते गोत्रवन्तौ मनोरमौ । वेयुवागसमौ वीरौ जवनौ तुरगोत्तमौ ॥२२॥ स एष सुमहाकायः कम्पते वाहिनीमुखे । नागः शत्रुंजयो नाम वृद्धस्तातस्य धीमतः ॥ २३ ॥ न तु पश्यामि तच्छत्रं पाण्डुरं लोकविश्रुतम् । पितुर्दिव्यं महाभाग संशयो भवतीह मे ॥ २४ ॥ वृक्षाग्रादवरोह त्वं कुरु लक्ष्मण मद्वचः । इतीव रामो धर्मात्मा सौमित्रिं तमुवाच ह ॥ २५ ॥ अवतीर्य तु सालाग्रात्तस्मात्स समितिंजयः । लक्ष्मणः प्राञ्जलिर्भूत्वा तस्थौ रामस्य पार्श्वतः ॥ २६ ॥

टीका—इस वाक्य को सुनकर लज्जित हुआ लक्ष्मण बोला, जानता हूं आपको देखने के लिये स्वयं पिता दशरथ आये हैं ॥२०॥ लक्ष्मण को लज्जित हुआ देखकर राम ने उत्तर दिया, यही समझता हूं, महाबाहु (राजा) हमें देखने आये हैं ॥ २१ ॥ यह वह दोनों वायु वेग के तुल्य वेगवाले मनोरम उत्तम कुलके उत्तम घोड़े प्रतीत हो रहे हैं ॥२२॥ वह सेना के आगे बहुत बड़े शरीरवाला शत्रुञ्जय नाम पिताका वृद्ध हाथी झूमता हुआ आरहा है॥२३॥पर लोकप्रसिद्ध पिता का वह दिव्य श्वेत छत्र हे महाभाग नहीं देखता हूं, इस से मुझे संशय होरहा है ॥२४॥ हे लक्ष्मण मेरा वचन कर, वृक्ष के नीचे उतरआ ॥२५॥तब युद्धों के जीतनेवाला लक्ष्मण उस साल के अग्र से नीचे उतरकर हाथ जोड़कर राम के पास खड़ा हुआ ॥ २६ ॥

सर्ग ८५ (बा० ९८) भरत का राम को जा मिलना

मूल—भरतेनाथ संदिष्टा संमर्दो न भवेदिति। समन्तात्तस्य शैलस्य सेनावासमकल्पयत् ॥ १ ॥ अध्यर्धमिक्ष्वाकुचमूर्योजनं पर्वतस्य ह। पार्श्वे न्यविशदावृत्य गजवाजिनराकुला ॥ २ ॥ निविष्टायां तु सेनायामुत्सुको भरतस्ततः। जगाम भ्रातरं द्रष्टुं शत्रुघ्नमनुदर्शयन् ॥३॥ ऋषिं वसिष्ठं संदिश्य मातॄर्मे शीघ्रमानय। इति त्वरितमग्रे स जगाम गुरुवत्सलः ॥४॥ सुमन्त्रस्त्वपि शत्रुघ्नमदूरादन्वपद्यत। रामदर्शनजस्तर्षो भरतस्येव तस्य च ॥ ५ ॥ गच्छन्नेवाथ भरतस्तापसालयसंस्थिताम्। भ्रातुः पर्णकुटीं श्रीमानुटजं च ददर्श ह ॥ ६ ॥

टीका—राम के आश्रम को पीड़ा न हो इस विचार से भरत से आज्ञा दी हुई सेना, उस पर्वत के चारों ओर (आश्रम से दूर) डेरे जमा लेती भई ॥१॥ हाथी घोड़े और मनुष्यों की भीड़ वाली वह इक्ष्वाकुओं की सेना पर्वत की पसलियों में छः कोस में डेरे डालती भई ॥२॥ सेना के डेरे डालने पर उत्कण्ठित भरत शत्रुघ्न को (आश्रम के चिन्हादि) दिखलाता हुआ भाई को देखने के लिये गया ॥३॥ ऋषि वसिष्ठ को संदेशा देकर, कि मेरी माताओं को जल्दी ले आइये, आप वह बड़ों का प्यारा जल्दी पहले गया ॥४॥ सुमन्त्र भी शत्रुघ्न के साथ दौड़ने लगा उसको भी भरत की तरह ही राम के दर्शन की इच्छा थी ॥५॥ चलते २ भरतने तपस्वियों के घरों की तरह बनी हुई भाई की पर्णकुटी और (सीता के रहने के लिये) उटज (दीवार और किवाड़ों वाला गृह) देखा ॥६

मूल—स लक्ष्मणस्य रामस्य ददर्शाश्रममेयुषः। कृतं वृक्षेष्वभिज्ञानं कुशचीरैः क्वचित् क्वचित् ॥७॥ गच्छन्नेव महाबाहुर्द्युतिमान्भरतस्तदा। शत्रुघ्नं चाब्रवीद्धृष्टस्तानमात्यांश्च सर्वशः ॥ ८ ॥ उच्चैर्बद्धानि चीराणि लक्ष्मणेन भवेदगम्। अभिज्ञानकृतः पन्था विकाले गन्तु-

मिच्छता ॥९॥ यमेवाधातुमिच्छन्ति तापसाः सततं वने। तस्यासौ दृश्यते धूमः संकुलः कृष्णवर्त्मनः॥१०॥ तत्राहं पुरुषव्याघ्रं गुरुसत्कारकारिणम्। आर्यं द्रक्ष्यामि संहृष्टं महर्षिमिव राघवम् ॥ ११ ॥

टीका—और उसने आश्रम में जाने के लिये राम और लक्ष्मण से कहीं २ वृक्षों पर कुश और चीरों के निशान धरे हुए देखे ॥ ७ ॥ पर चलते२ ही महाबाहु तेजस्वी भरत ने प्रसन्न होकर शत्रुघ्न को और मन्त्रियों को कहा॥८॥यह चीर ऊंचे२ लक्ष्मण ने बांधे होंगे, बेसमय (अन्धेरे में) जाने के लिये मार्ग का निशान किया है॥९॥ तपस्वी जन जिसको बन में स्थापन करना चाहते हैं, उस अग्नि का यह धूमपुंज दीखता है ॥ १० ॥ यहां मैं गुरुओं का सत्कार करने वाले महर्षि की तरह प्रसन्न पुरुषश्रेष्ठ आर्य राघव को देखूंगा॥

मूल—प्रागुदक्प्रवणां वेदिं विशालां दीप्तपावकाम् । ददर्श भरतस्तत्र पुण्यां रामनिवेशने ॥१२॥ निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम्। उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम् ॥१३॥ कृष्णाजिनधरं तं तु चीरवल्कलवाससम् । सिंहस्कन्धं महाबाहुं पुण्डरीकनिभेक्षणम्॥१४ तं दृष्ट्वा भरतः श्रीमान्दुःखमोहपरिप्लुतः। अभ्यधावत धर्मात्मा भरतः केकयीसुतः॥१५॥दुःखाभितप्तो भरतो राजपुत्रो महाबलः।उक्त्वार्येति सकृद् दीनं पुन र्नोवाच किंचन ॥१६॥ शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन्। तावुभौ च समालिङ्ग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत्

टीका—इतने में वहां राम की कुटिया में उसने पूर्व उत्तर को झुकी हुई जलती हुई अग्नि वाली विशाल पवित्र वेदि देखी ॥ १२ । अग्नि को देखकर थोड़ा काल पीछे भरत ने उस कुटिया में बैठे हुए जटामण्डलधारी गुरु राम को देखा ॥१३॥ काले हिरण का मृगान धारे हुए चीर और बकले के वस्त्र पहने हुए शेर के तुल्य कंधो वाले कमल सदृश नेत्रों वाले महाबाहु को (देखा)॥१४॥ उस

को देखकर धर्मात्मा केकयीसुत श्रीमान् भरत दुःख मोह से भरा हुआ भाग कर गया ॥ १५ ॥ दुःख से तपा हुआ महाबली राजपुत्र भरत एक बार दीन स्वर से 'आर्य' ऐसा कह कर फिर कुछ नहीं बोल सका ॥ १६ ॥ शत्रुघ्न ने भी रोते २ राम के चरणबन्दन किये, और उन दोनों को आलिंगन कर राम के आंसु प्रवाहित हुए

सर्ग ८६ (व० १०१) भरत और राम की बात चीत और भरत की याचना

मूल—जटिलं चीरवसनं प्राञ्जलिं पतितं भुवि । भ्रातरं भरतं रामः परिजग्राह पाणिना ॥ १ ॥ आघ्राय रामस्तं मूर्ध्नि परिष्वज्य च राघवम् । अङ्के भरतमारोप्य पर्यपृच्छत सादरम् ॥ २ ॥ कच्चिच्छुश्रूषसे तात पितुः सत्यपराक्रम । कच्चिद्दशरथो राजा कुशली सत्यसंगरः ॥ ३ ॥ स कच्चिद् ब्राह्मणो विद्वान् धर्मनित्यो महाद्युतिः । इक्ष्वाकूणामुपाध्यायो यथावत्तात पूज्यते ॥ ४ ॥ तात कच्चिच्च कौसल्या सुमित्रा च प्रजावती । सुखिनी कच्चिदार्या च देवी नन्दति कैकयी ॥ ५ ॥ कच्चिद्विनयसंपन्नः कुलपुत्रो बहुश्रुतः । अनसूयुरनुद्रष्टा सत्कृतस्ते पुरोहितः ॥ ६ ॥ इष्वस्त्रवरसंपन्नमर्थशास्त्रविशारदम् । सुधन्वानमुपाध्यायं कच्चित् त्वं तात मन्यसे ॥७॥ यन्निमित्तमिमं देशं कृष्णाजिनजटाधरः । हित्वा राज्यं प्रविष्टस्त्वं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥ इत्युक्तः केकयीपुत्रः काकुत्स्थेन महात्मना । प्रगृह्य बलवद्भूयः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥९॥ आर्य तातः परित्यज्य कृत्वा कर्म सुदुष्करम् । गतः स्वर्गं महाबाहुः पुत्रशोकाभिपीडितः ॥१०॥

टीका—जटा धारे चीर पहने हाथ जोड़े पृथिवी पर गिरे हुए भाई भरत को राम ने हाथ से पकड़ा ॥ १ ॥ उसको माथे पर चूम कर और गले लगा कर गोद में लेकर सादर पूछने लगा ॥२॥ क्या हे तात सच्चे पराक्रमवाले पिता की तू सेवा करता है, और वह सच्ची प्रतिज्ञा वाला राजा दशरथ कुशल से है॥३॥और क्या हे तात धर्म-

प्रधान महातेजस्वी ब्राह्मण जो इक्ष्वाकुओं का उपाध्याय (गुरु) है, उस (वसिष्ठ) को यथावत् पूजते हो ॥४॥ क्या हे तात! कौसल्या और नेकसन्तति वाली सुमित्रा सुख से है, और माननीय देवी केकयी आनन्द से है ॥५॥ और क्या विनययुक्त, बहुश्रुत, असूया से रहित, (तुम्हारे धर्म का) अनुद्रष्टा (निगहबान) कुलपुत्र अपने पुरोहित का सत्कार करते हो (इस में वसिष्ठ का पुत्र कोई जो भरत का पुरोहित चुना गया, उसका वर्णन है) ॥६॥ और अच्छे तीर और अस्त्रों से संपन्न अर्थशास्त्र में निपुण सुधन्वा उपाध्याय (धनुर्वेदाचार्य) को हे तात मान्य करते हो ॥७॥ जिस निमित्त तू राज्य को छोड कर मृगाजिन और जटा धारण कर इस जगह आया है वह सब कहने योग्य है ॥ ८ ॥ महात्मा राम से ऐसे कहा हुआ केकयीसुत फिर जोर से अपने आपको रोक कर हाथ जोड कर वाक्य बोला ॥९॥ हे तात महाबाहु पिता हमें छोड कर बडा कठिन काम करके पुत्र शोक से पीड़ित हुआ स्वर्ग को चला गया है॥१०

मूल—स्त्रिया नियुक्तः केकय्या मम मात्रा परंतप। चकार स महत्पाप मिदमात्मयशोहरम् ॥ ११ ॥ सा राज्यफलमप्राप्य विधवा शोककर्शिता । पतिष्यति महाघोरे नरके जननी मम ॥ १२ ॥ तस्य मे दासभूतस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि । अभिषिञ्चस्व चाद्यैव राज्येन मघवानिव ॥१३॥ इमाः प्रकृतयः सर्वा विधवा मातरश्च याः । त्वत्सकाशमनुप्राप्ताः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १४ ॥ तथानुपूर्व्या युक्तश्च युक्तं चात्मनि मानद । राज्यं प्राप्नुहि धर्मेण सकामान्सुहृदः कुरु ॥१५॥ एभिश्च सचिवैः सार्धं शिरसा याचितो मया । भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि॥१६॥ तदिदं शाश्वतं पित्र्यं सर्वं सचिवमण्डलम् । पूजितं पुरुषव्याघ्र नातिक्रमितुमर्हसि ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वा महाबाहुः सबाष्पः कैकयीसुतः । रामस्य शिरसा पादौ जग्राह भरतः पुनः॥१८॥

टीका—हे परंतप ! मेरी माता केकयी से प्रेरे हुए उसने अपने यश को हरने वाला यह भारी पाप किया॥११॥ वह मेरी माता राज्य-फल को न पाकर विधवा हुई शोक से दुर्बल हुई महाभयंकर नरक में गिरेगी ॥१२॥अब मुझ दास पर आप कृपा करने योग्य हैं,अभी राज्य से अपने आप को इन्द्र के तुल्य अभिषिक्त करो ॥ १३ ॥ यह सारी प्रकृतियें (अधिकारी और प्रजाजन) और विधवाएं मेरी माताएं आपके पास आई हैं, आप कृपा करने योग्य हैं ॥ १४ ॥ तथा आनुपूर्वी से आप अधिकारी हैं, हे मानद आपका अभिषेक युक्त है, सो आप धर्म से राज्य को प्राप्त हो, अपने सुहृदों की कामनाओं को पूरा करें ॥१५॥ इन मन्त्रियों समेत मैं आपको सिर से याचना करता हूं, भाई हूं, शिष्य हूं, मुझ पर कृपा करने योग्य हो॥१६॥सो परम्परा प्राप्त पिता के पूजित मन्त्रीमण्डल को आप नहीं उलांघेंगे ॥१८ यह कह कर महाबाहु केकयीसुत भरत रोता हुआ फिर भाई के चरणों पर सिर रखता भया ॥१८॥

सर्ग ८७ (१०१-१०३) राम का शोकादि ।

मूल—तं मत्तमिव मातङ्गं निःश्वसन्तं पुनःपुनः । भ्रातरं भरतं रामः परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥१॥ कुलीनः सत्वसंपन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः । राज्यहेतोः कथं पापमाचरेन्मद्विधो जनः ॥२॥ न दोषं त्वयि पश्यामि सूक्ष्ममप्यरिसूदन । न चापि जननीं बाल्यात् त्वं विगर्हितुमर्हसि ॥ ३ ॥ कामकारो महाप्राज्ञ गुरूणां सर्वदानघ । उपपन्नेषु दारेषु पुत्रेषु च विधीयते ॥४॥ वने वा चीरवसनं सौम्य कृष्णाजिनाम्बरम् । राज्ये वापि महाराजो मां वासयितुमीश्वरः ॥५॥ यावत् पितरि धर्मज्ञ गौरवं लोकसत्कृते। तावद्धर्मकृतां श्रेष्ठ जनन्यामपि गौरवम् ॥

टीका—मत्त हाथी की तरह बार २ सांस लेते हुए भाई भरत को राम गले लगा कर यह बोला ॥१॥ हे भाई कुलीन, दृढसंकल्प, तेजस्वी, ब्रह्मचर्य व्रत को पूरा किये हुए मेरे जैसा पुरुष कैसे राज्य के अर्थ

पाप का आचरण कर सक्ता है ॥२॥ हे अरिसूदन ! मैं तुझ में सूक्ष्म भी दोष नहीं देखता हूं, और न ही तुझे माता को निन्दना चाहिये यह बालकपन है ॥ ३ ॥ हे महाप्राज्ञ ! हे निष्पाप ! अपनी संमत स्त्रियों में और पुत्रों में गुरुओं (पति, वा पिता) की अपनी स्वतन्त्र इच्छा होती है ॥४॥ हे सौम्य ! महाराज मुझे चीर और मृगान पहना कर बन में, वा राज्य में बसाने में मालिक थे ॥ ५ ॥ और हे धर्मज्ञ जितना लोकमाननीय पिता में गौरव है, उतना ही हे धर्म करने वालों में श्रेष्ठ माता में भी है ॥ ६ ॥

मूल—एताभ्यां धर्मशीलाभ्यां वनं गच्छेति राघव । मातापितृभ्या-मुक्तोऽहं कथमन्यत्समाचरे ॥७॥ त्वया राज्यमयोध्यायां प्राप्तव्यं लोकसत्कृतम् । वस्तव्यं दण्डकारण्ये मया वल्कलवाससा ॥८॥ एवमुक्त्वा महाराजो विभागं लोकसंनिधौ । व्यादिश्य च महाराजो दिवं दशरथो गतः ॥९॥ स च प्रमाणं धर्मात्मा राजा लोकगुरुस्तव । पित्रा दत्तं यथा भागमुपभोक्तुं त्वमर्हसि ॥१०॥ किं करिष्याम्ययोध्यायां ताते दिष्टां गतिं गते । कस्तां राजवराद्धीनामयोध्यां पाल-यिष्यति ॥११॥ किं नु तस्य मया कार्यं दुर्जातेन महात्मना । यो मृतो मम शोकेन स मया न च संस्कृतः ॥१२॥ अहो भरत सिद्धार्थो येन राजा त्वयानघ । शत्रुघ्नेन च सर्वेषु प्रेतकृत्येषु सत्कृतः ॥ १३ ॥

टीका—सो हे राघव जब इन धर्मशील माता पिता ने आज्ञा दी है, कि बन को जा, तो कैसे मैं और आचरण करूं ॥७॥ तुझे अयोध्या में लोकसंमानित राज्य पाना चाहिये, और मुझे बकले पहन कर दण्डक बन में रहना चाहिये ॥८॥ महाराज दशरथ लोगों के सामने यह विभाग करके स्वर्ग को गए हैं ॥ ९ ॥ वह लोकगुरु धर्मात्मा राजा तुझे प्रमाण है, पिता से दिये अपने हिस्से को तू भोगने योग्य है ॥१०॥ शोक ! अयोध्या में क्या करूंगा, जब कि तात दैवगति को प्राप्त होगए हैं, कौन राजवर से हीन उस अयोध्या का पालन

करेगा ॥ ११ ॥ वृथा जन्मे मैंने उस महात्मा का क्या करना है, जब वह मेरे शोक से मरा, पर मैंने उस का संस्कार भी नहीं किया ॥ १२ ॥ अहो निष्पाप भरत तू कृतकृत्य है, जिस तूने और शत्रुघ्न ने प्रेतकार्यों में राजा का सत्कार किया ॥१३॥

मूल—समाप्तवनवासं मामयोध्यायां परंतप। कोऽनुशासिष्यति पुनस्ताते लोकान्तरे गते ॥१४॥ पुरा प्रेक्ष्य सुवृत्तं मां पिता यान्याह सान्त्वयन्। वाक्यानि तानि श्रोष्यामि कुतः कर्णसुखान्यहम् ॥१५ एवमुक्त्वाथ भरतं भार्यामभ्येत्य राघवः। उवाच शोकसंतप्तः पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥१६॥ सीते मृतस्ते श्वसुरः पितृहीनोऽसि लक्ष्मण। भरतो दुःखमाचष्टे स्वर्गतिं पृथिवीपतेः ॥ १७ ॥ सा सीता स्वर्गतं श्रुत्वा श्वशुरं तं महानृपम्। नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां न शशाकेक्षितुं प्रियम् ॥१८॥ सान्त्वयित्वा तु तां रामो रुदतीं जनकात्मजाम्। उवाच लक्ष्मणं तत्र दुःखितो दुःखितं वचः ॥१९॥ आनयेंगुदीपिण्याकं चीरमाहरचोत्तरम्। जलक्रियार्थं तातस्य गमिष्यामि महात्मनः॥२०॥

टीका—हे परंतप अब वनवासको समाप्त कर अयोध्या में आए मुझ को कौन अनुशासन करेगा जब कि पिता लोकान्तर को चले गए ॥ १४ ॥ और मुझे शुद्धाचारी देखकर पिता तसल्ली देते हुए जो वाक्य कहा करते थे, वह कानों के सुखदायी वाक्य अब किससे सुनूंगा ॥१५॥ भरतको यह कहकर राम पत्नी के पास आ शोक से तपा हुआ उस पूर्णचन्द्रतुल्यमुखी से बोला ॥१६॥ हे सीते! तेरा श्वशुर मर गया है, हे लक्ष्मण तू पितृहीन हुआ है, भरत पृथिवीपति की स्वर्गगति बतलाता है ॥१७॥ वह सीता श्वशुर की स्वर्ग गति को सुनकर आंसुओं से भरे नेत्रों से प्यारे को देख नहीं सकी ॥१८॥ रोती हुई उस जनकसुता को तसल्ली देकर राम दुःखित हुआ लक्ष्मण से दुःखित वचन बोला ॥१९॥ इंगुदी (गोंदी) का चूर्ण और उत्तर चीर ला, महात्मा तात की जल क्रिया के लिये जाऊंगा ॥२०॥

मूल—सीता पुरस्तादूव्रजतु त्वमेनामभितो व्रज। अहं पश्चाद्गमिष्यामि गतिर्ह्येषा सुदारुणा॥२१॥ततो मन्दाकिनीतीरं प्रत्युत्तीर्य स राघवः। पितुश्चकार तेजस्वी निर्वापं भ्रातृभिः सह ॥२२॥ ऐंगुदं बदरैर्मिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे। न्यस्य रामः सुदुःखार्तो रुदन्वचनमब्रवीत्॥२३ इदं भुङ्क्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम्। यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ॥२४॥ ततस्तेनैव मार्गेण प्रत्युत्तीर्य सरित्तटात्। आरुरोह नरव्याघ्रो रम्यसानुं महीधरम् ॥२५॥ अचिरप्रोषितं रामं चिरविप्रोषितं यथा। द्रष्टुकामो जनः सर्वो जगाम सहसाश्रमम् ॥२६ तान्नरान्बाष्पपूर्णाक्षान्समीक्ष्याथ सुदुःखितान्। पर्यष्वजत धर्मज्ञः पितृवन्मातृवच्च सः ॥२७॥

टीका—सीता आगे चले, तू इसके पीछे चल और मैं पीछे चलूंगा, यह शोक की चाल है (सब से आगे स्त्रियें, फिर छोटे, फिर बड़े) २१॥ तब मन्दाकिनी के तीर पर उतर कर उस तेजस्वी राघव ने भाईयों के साथ पिता का निर्वाप (जल और पिण्ड) किया॥ २२॥ गोंदी का चूर्ण बेरों से मिला हुआ दर्भ के सत्थर पर रख कर अत्यन्त दुःखित हुआ राम रोता हुआ यह वचन बोला॥ २३॥ हे महाराज प्रसन्न हुए आप इसको भोगें, जो कुछ कि हम खाते हैं। जिस अन्न वाला पुरुष होता है, उस अन्न वाले उसके देवता होते हैं॥ २४॥ तब उसी मार्ग से वह नरश्रेष्ठ ऊपर चढ़कर सुहावनी चोटियों वाले पर्वत .र चढ़ा॥ २५॥ जल्दी के परदेशी राम को देर के परदेशी की तरह (बड़ा) चाह से देखने की इच्छा वाले सभी लोग जल्दी आश्रम में आए॥ २६॥ आंसुओं से भरे हुए नेत्रों वाले अत्यन्त दुःखित उन लोगों को देखकर वह धर्मज्ञ पिता माता के तुल्य गले लगाता भया॥२७॥

सर्ग ८८ (व० १०४) वसिष्ठ और माताओं का आना।

मूल—वसिष्ठःपुरतः कृत्वा दारान्दशरथस्य च। अभिचक्राम तं देशं

रामदर्शनतर्षितः ॥१॥ राजपत्न्यश्च गच्छन्त्यो मन्दं मन्दाकिनीं प्रति। ददृशुस्तत्र तत्तीर्थं रामलक्ष्मणसेवितम् ॥२॥ कौसल्याबाष्पपूर्णेन मुखेन परिशुष्यता। सुमित्रामब्रवीद्दीनां याश्चान्या राजयोषितः ॥३॥ इदं तेषामनाथानां क्लिष्टमक्लिष्टकर्मणाम्। वने प्राक्कलनं तीर्थं ये ते निर्विषयीकृताः ॥४॥ इतः सुमित्रे पुत्रस्ते सदा जलमतन्द्रितः। स्वयं हरति सौमित्रिर्मम पुत्रस्य कारणात् ॥५॥ +जघन्यमपि ते पुत्रः कृतवान्नतु गर्हितः। भ्रातुर्यदर्थरहितं सर्वं तद्गर्हितं गुणैः ॥६॥ दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु सा ददर्श महीतले। पितुरिंगुदीपिण्याकं न्यस्तमायतलोचना ॥७॥ इदमिक्ष्वाकुनाथस्य राघवस्य महात्मनः। राघवेण पितुर्दत्तं पश्यतैतद्यथाविधि ॥८॥ अतो दुःखतरं लोके न किंचित्प्रतिभाति मे। यत्र रामः पितुर्दद्यादिंगुदीक्षोदमृद्धिमान् ॥ ९ ॥ रामेणेंगुदीपिण्याकं पितुर्दत्तं समीक्ष्य मे। कथं दुःखेन हृदयं न स्फोटति सहस्रधा ॥ १० ॥

टीका—राम दर्शन का प्यासा वसिष्ठ दशरथ की पत्नियों को आगे करके उस जगह पहुंचा। १। वह राजपत्नियें धीरे २ मन्दाकिनी पर पहुंचकर राम लक्ष्मण से सेवित उस घाट को देखती भई। २। कौसल्या आंसुओं से पूर्ण सूखते हुए मुख से दीन सुमित्रा को और दूसरी राजस्त्रियों को कहने लगी। ३। यह उन शुभ कर्म वाले अनाथों का जो देश से विदेश किये गए हैं वन में तंग सी पहली मलकीयत है। ४। यहां से हे सुमित्रे तेरा पुत्र सदा मेरे पुत्र के अर्थ निरालस हो स्वयं जल ले जाता है। ५। छोटा कर्म करता हुआ भी तेरा पुत्र निन्दित नहीं हुआ है, जो भाई के अर्थ से रहित है, वही हर एक काम गुणों से निन्दित है। ६। उस विशाल नेत्रों वाली ने पृथिवी पर जल के ऊपर दक्षिण की ओर अग्र वाले दर्भों पर पिता के लिये (राम से) गोंदी का चूर्ण रखा हुआ देखा। ७। (और कहा) इक्ष्वाकुओं के नाथ अपने पिता महात्मा राघव को

राम ने देखो यह (गोंदी का चूर्ण) यथाविधि दिया है ।८। इससे बढ़कर मुझे और कोई दुःख नहीं प्रतीत होता है, जबकि ऐश्वर्य का मालिक राम अपने पिता को गोंदी का चूर्ण देवे ।९। राम से पिता को गोंदी का चूर्ण दिया हुआ देखकर किस तरह दुःख से मेरा हृदय अनेक टुकड़े होकर न फटे । १० ।

मूल—श्रुतिस्तु खल्वियं सत्या लौकिकी प्रतिभाति मे । यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ॥११॥ एवमार्ता सपत्न्यस्ता जग्मुराश्वास्य तां तदा । ददृशुश्चाश्रमे रामं स्वर्गच्युतामिवामरम् ॥१२॥ तं भोगैः संपरित्यक्तं रामं संप्रेक्ष्य मातरः । आर्ता मुमुचुरश्रूणि सस्वरं शोककर्शिताः ॥१३॥तासां रामः समुत्थाय जग्राह चरणाम्बुजान् । मातॄणां मनुजव्याघ्रः सर्वासां सत्यसंगरः ॥ १४ ॥ ताः पाणिभिः सुखस्पर्शैर्मृद्वङ्गुलितलैः शुभैः । प्रममार्जू रजः पृष्ठाद्रामस्यायतलोचनाः

टीका—यह लौकिक कहावत मुझे सच्ची प्रतीत होती है, कि जिस अन्न वाला पुरुष होता है, उसी अन्न वाले उसके देवता होते हैं ।११ इस प्रकार आते हुई उसको तसल्ली देकर तब वह स्त्रियें आश्रम में राम को स्वर्ग से गिरे देवता की तरह स्थित देखती भई ।१२। भोगों से अलग हुए उस राम को देखकर सारी माताएं पीड़ित हुई शोक से दुर्बल हुई स्वर सहित आंसुएं छोड़ती भई ।१३। सच्ची प्रतिज्ञा वाले पुरुषश्रेष्ठ रामने उठकर उन माताओं के चरण कमल पकड़े ।१४ वह विशाल नेत्रों वालियें सुख स्पर्श वाले नर्म अंगुलिओं वाले शुभ हाथों से राम की पीठ से रज (धूल) को पोंछती भई । १५ ।

मूल—सौमित्रिरपि ताः सर्वा मातॄः संप्रेक्ष्य दुःखितः । अभ्यवादयदासक्तं शनै रामादनन्तरम् ॥१६॥ यथा रामे तथा तस्मिन्सर्वा वर्तन्तिरे स्त्रियः । वृत्तिं दशरथाज्जाते लक्ष्मणे शुभलक्षणे॥१७॥सीतापि चरणांस्तासामुपसंगृह्य दुःखिता । श्वश्रूणामश्रुपूर्णाक्षी संबभूवाग्रतः स्थिता ॥१८॥ तां परिष्वज्य दुःखार्ता माता दुहितरं यथा । वनवास-

कृतां दीनां कौसल्या वाक्यमब्रवीत् ॥२३॥ वैदेहराजन्यसुता स्नुषा दशरथस्य च। रामपत्नी कथं दुःखं संप्राप्ता विजने वने ॥२०॥ पद्ममातपसंतप्तं परिक्लिष्टमिवोत्पलम्। काञ्चनं रजसा ध्वस्तं क्लिष्टं चन्द्रमिवाम्बुदैः ॥२१॥ मुखं ते प्रेक्ष्य मां शोको दहत्यग्निरिवाश्रयम्। भृशं मनसि वैदेहि व्यसनारणिसंभवः ॥ २२ ॥

टीका—सुमित्रा का पुत्र भी उन सारी माताओं को देखकर दुःखित हुआ राम के पीछे स्नेह से धीरे २ प्रणाम करता भया ।१६। वह सब स्त्रियें दशरथ से उत्पन्न हुए शुभ लक्षणों वाले लक्ष्मण में भी राम के तुल्य बर्ताव करती भई।१७। सीता भी उन के पाओं पकड़ कर दुःखित हुई आंसुओं से भरे हुए नेत्रोंवाली अपनी सासों के सामने खड़ी हुई।१८। अपनी औरस कन्या की तरह उसको गले लगाकर दुःख से पीड़ित हुई कौसल्या वनवास से दीन हुई सीता को यह वाक्य बोली ।१९। वैदेहराज की कन्या दशरथ की स्नुषा, राम की पत्नी कैसे निर्जन वन में दुःखको प्राप्त हुई है धूम से मुरझाए पद्म की तरह, मैले हुए लाल कमल की तरह, धूल से मैले हुए सोने की तरह, मेघों से तंग किये चन्द्र की तरह ॥२१॥ तेरे मुख को देख कर हे वैदेहि! विपत् की अरणि से उत्पन्न हुआ शोक मेरे मन को ज़ोर से दग्ध कर रहा है, जैसे अग्नि अपने आश्रय को ॥ २२ ॥

मूल—ब्रुवन्त्यामेवमार्तायां जनन्यां भरताग्रजः। पादावासाद्य जग्राह वसिष्ठस्य च राघवः।२३। पुरोहितस्याग्निसमस्य तस्य वै बृहस्पतारिन्द्र इवामराधिपः। प्रगृह्य पादौ सुसमृद्धतेजसः सहैव तेनोपविवेश राघवः ॥२४॥ ततो जघन्यं सहितैः स्वमन्त्रिभिः पुरप्रधानैश्च तथैव सैनिकैः। जनेन धर्मज्ञतमेन धर्मवानुपोपविष्टो भरतस्तदाग्रजम् ॥२५॥ स राघवः सत्यधृतिश्च लक्ष्मणो महानुभावो भरतश्च धार्मिकः। वृताः सुहृद्भिश्च विरेजिरेऽध्वरे यथा सदस्यैः सहितास्त्रयोऽग्नयः ॥ २६ ॥

टीका—आर्त माता के ऐसा कहते हुए भरत का बड़ा भाई राघव आकर वसिष्ठ के पाद ग्रहण करता भया ॥२३॥ जैसे देवताओं का अधि-

पति इन्द्र बृहस्पति के, इस प्रकार अग्नि के तुल्य बहुत बड़े तेजवाले पुरोहित के चरण ग्रहण करके राम उनके साथ ही बैठ गया॥२४॥ तब धर्मात्मा भरत अपने मन्त्री, पुरके मुखिया, और सैनिकों के साथ इन सब धर्मज्ञतम लोगों के साथ बड़े भाई के पीछे बैठ गया॥२५॥ वह सच्चे धैर्यवाला राम, महानुभाव लक्ष्मण, और धार्मिक भरत सुहृदों से घिरे हुए ऐसे शोभायमान हुए जैसे यज्ञ में सदस्यों से युक्त तीनों अग्नियें होती है॥२६॥

सर्ग ८९ (व० १०१) भरत की याचना और राम का उसे उपदेश

मूल—ततः पुरुषसिंहानां वृतानां तैः सुहृद्गणैः। शोचतामेव रजनी दुःखेन व्यत्यवर्तत॥१॥ रजन्यां सुप्रभातायां भ्रातरस्ते सुहृद्वृताः। मन्दाकिन्यां हुतं जप्यं कृत्वा राममुपागमन्॥२॥ तूष्णीं ते समुपासीना न कश्चित्किंचिदब्रवीत्। भरतस्तु सुहृन्मध्ये रामं वचनमब्रवीत्॥३॥ सान्त्विता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम। तद्ददामि तवैवाहं भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम्॥४॥ महतेवाम्बुवेगेन भिन्नः सेतुर्जलागमे। दुरावारं त्वदन्येन राज्यखण्डमिदं महत्॥५॥ श्रेणयस्त्वां महाराज पश्यन्त्वग्र्याश्च सर्वशः। प्रतपन्तमिवादित्यं राज्यस्थितमरिंदमम्॥६॥ तस्य साध्वनुमन्यन्त नागरा विविधा जनाः। भरतस्य वचः श्रुत्वा रामं प्रत्यनुयाचतः॥७॥

टीका—तब सुहृद्गणों से घिरे हुए उन पुरुषसिंहों को शोक करते हुए ही वह रात्रि दुःख से बीती॥१॥ रात के प्रभात होने पर सुहृदों से युक्त वह भाई मन्दाकिनी पर होम स्वाध्याय करके राम के पास आए॥२॥ वह सब चुपचाप बैठ गए, कोई कुछ नहीं बोला किन्तु उन सुहृदों के मध्य में भरत राम से यह वचन बोला॥३॥ मेरी माता को (राज्य देने से राजा ने) तसल्ली देदी, और उस ने यह राज्य मुझे दे दिया है, सो मैं आप ही को देता हूं, इस अकण्टक राज्य को आप भोगें॥४॥ बहुत बड़े जल के वेग से

टूटे बन्ध की तरह यह बड़ा राज्यखण्ड आपके विना और किसी से नहीं सम्भाला जा सकता है ॥५॥ हे महाराज! सब मुख्य २ (लोगों की) श्रेणियें आपको तपते हुए सूर्य की तरह राज्य पर स्थित देखें ॥६॥ राम के प्रति याचना करते हुए भरत के वचन को सुनकर नगरवासी सभी जन साधु २ कहते भए ॥ ७ ॥

मूल—तमेवं दुःखितं प्रेक्ष्य विलपन्तं यशस्विनम् । रामः कृतात्मा भरतं समाश्वासयदात्मवान् ८ नात्मनः कामकारो हि पुरुषोऽयमनीश्वरः इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति ।९। +सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः । संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ।१०। यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद्भयम् । एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद्भयम् ॥११॥ यथाऽऽगारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वोपसीदति । तथावसीदन्ति नरा जरामृत्युवशं गताः ॥१२॥+ अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते । यात्येव यमुना पूर्णं समुद्रमुदकार्णवम् ॥१३॥ अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह । आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः ॥१४॥

टीका—उस यशस्वी भरत को इस तरह दुःखित विलाप करता हुआ देखकर शुद्ध हृदय जितेन्द्रिय राम तसल्ली देता भया ॥८॥ किसी की अपनी मर्ज़ी नहीं चलती है, यह पुरुष अनीश्वर है, इस को अपने किये कर्म का नतीजा इधर उधर खींचता है ॥९॥ सब संग्रहों का अन्त नाश है, उन्नतियों का अन्त पतन है, संयोगों का अन्त वियोग है, जीवन का अन्त मरण है ॥१०॥ जैसे पके हुए फलों का गिरना अवश्यंभावि है, इसी प्रकार जन्मे मनुष्य का मरना अवश्यम्भावि है, ॥११॥ जैसे दृढ़ खम्भोंवाला भी घर पुराना होकर गिर पड़ता है, इसीप्रकार मनुष्य जरा मृत्यु के वश को प्राप्त हुए गिरते हैं ॥१२॥ जो रात चली गई, वह फिर नहीं

लौटती है, यमुना जल के भरे समुद्र को जाती ही है (पीछे नहीं लौटती) ॥१३॥ दिन और रातें सब लोगों के आयु को क्षीण करते हुए चले जा रहे हैं, जैसे गर्मी में किरणें जल को ॥१४॥

मूल—+आत्मानमनुशोचत्वं किन्यमनुशोचसि। आयुस्तु हीयते यस्य स्थितस्याथ गतस्य च १५ सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति। गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते १६+यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे। समेत्य तु व्यपेयातां कालमासाद्य कंचन ॥१७॥ एवं भार्याच पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च। समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः ।१८। यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात्कश्चित्पथि स्थितः। अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति ॥१९॥ एवं पूर्वैर्गतो मार्गः पैतृपितामहैर्ध्रुवः। तामापन्नः कथं शोचेद्यस्य नास्ति व्यतिक्रमः॥२०॥वयसः पतमानस्य स्रोतसो वाऽनिवर्तिनः। आत्मा सुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः ॥ २१ ॥

टीका—तू किसी और पर क्या शोक करता है, अपने आप पर शोक कर, जिसका कि आयु बैठते चलते क्षीण होरहा है॥१५॥ मृत्यु साथ ही चलता है, साथ ही बैठता है, और बहुत लम्बा रस्ता चलकर साथ ही लौटता है, ॥१६॥ जैसे बड़े समुद्र में काष्ठ (गेली) और काष्ठ मिल जाएं, और कुछ काल मिलकर अलग होजाएं ॥१७॥ इस प्रकार स्त्री पुत्र ज्ञाति धन मिलकर अलग होते हैं, इनका अलग होना अटल है ॥१८॥ जैसे कोई रस्ते चलता पुरुष अपने साथ को कहे, मैं भी आपके पीछे आऊंगा ॥१९॥ इसी प्रकार अपने पूर्वज पिता पितामह से चले हुए मार्ग पर चलता हुआ कैसे शोक करे जिसका उलांघना हो नहीं सकता है ॥२०॥ न लौटने वाले प्रवाह की तरह आयु जारही है, इसलिये आत्मा को सच्चे सुख में लगाना चाहिए, सब लोग सच्चे सुख के भागी (हकदार) माने गये हैं ॥२१॥

मूल—धर्मात्मा शुभैः कृत्स्नैः क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः। न स शोच्यः पिता तात स्वर्गतः सत्कृतः सताम् ॥२२॥ स जीर्णं मानुषं देहं परित्यज्य पिता हि नः। दैवीमृद्धिमनुप्राप्तो ब्रह्मलोकविहारिणीम् । तं तु नैवंविधं कश्चित्प्राज्ञः शोचितुमर्हति । त्वद्विधोमद्विधश्चापि श्रुतवान्बुद्धिमत्तरः ॥२४॥स स्वस्थो भव मा शोको यात्वा चावस तां पुरीम् । तथा पित्रा नियुक्तोऽसि वशिना वदतां वर ॥ २५ ॥ यत्राहमपि तेनैव नियुक्तः पुण्यकर्मणा । तत्रैवाहं करिष्यामि पितुरार्यस्य शासनम् ॥२६॥ न मया शासनं तस्य त्यक्तुं न्याय्यमरिंदम । स त्वयापि सदा मान्यः स वै बन्धुः स नः पिता ॥२७॥ तद्वचः पितुरेवाहं संमतं धर्मचारिणाम् । कर्मणा पालयिष्यामि वनवासेन राघव ॥ २८ ॥ धार्मिकेणानृशंसेन नरेण गुरुवर्तिना । भवितव्यं नरव्याघ्र परलोकं जिगीषता ॥ २९ ॥

टीका—हे तात पिता धर्मात्मा जिसने पूरी दक्षिणा के साथ सारे शुभ यज्ञ किये हैं,वह सत्पुरुषों का माननीय स्वर्ग को प्राप्त हुआ शोक के योग्य नहीं है॥पिताहमारा जीर्ण मानुष देह को त्यागकर ब्रह्मलोक में भोग के योग्य दिव्य ऐश्वर्य को प्राप्त हुआ है ॥२३॥ उसको तेरे जैसा वा मेरे जैसा बुद्धिमान् शास्त्र का ज्ञाता शोक करने योग्य नहीं है ॥२४॥ सो तू स्वस्थ हो, मत शोक कर,उस पुरी में जाकर वास कर, हे बोलने वालों में श्रेष्ठ ! ऐसे ही तू जितेन्द्रिय पिता से आज्ञा दिया गया है ॥२५॥ और उसी पुण्यकर्मा ने मुझे भी जहां लगाया है, वहीं मैं आर्य पिता की आज्ञा पालूंगा ॥२६॥ हे शत्रुओं के दबानेवाले ! मैं उसके शासन को नहीं त्याग सकता हूं। तुझे भी सदा पिता माननीय है, वह हमारा बन्धु है, हमारा पिता है ॥ सो हे राघव मैं पिता के वचन को, जो धर्म पर चलने वालों के संमत है,वनवासद्वारा कर्म से पालन करूंगा ॥२८॥ हे नरश्रेष्ठ !

परलोक को जीतना चाहते हुए पुरुष को धार्मिक दयालु और गुरुओं का आज्ञाकारी होना चाहिए ॥ २९ ॥

सर्ग ९० (व० १०६) भरत की याचना

मूल—एवमुक्त्वा तु विरते रामे वचनमर्थवत् । उवाच भरतश्चित्रं धार्मिको धार्मिकं वचः ॥१॥ को हि स्यादीदृशो लोके यादृशस्त्वमरिंदम । न त्वां प्रव्यथयेद् दुःखं प्रीतिर्वा न प्रहर्षयेत् ॥२॥ अमरोपममस्त्वस्त्वं महात्मा सत्यसंगरः । सर्वज्ञः सर्वदर्शी च बुद्धिमांश्चासि राघव ॥३॥ प्रोषिते मयि यत्पापं मात्रा मत्कारणात्कृतम् । क्षुद्रया तदनिष्टं मे प्रसीदतु भवान्मम ॥४॥+कथं दशरथाज्जातः शुभाभिजनकर्मणः । जानन्धर्ममधर्मं च कुर्यां कर्म जुगुप्सितम् ॥५॥

टीका—राम अर्थ से भरा ऐसा वचन कहकर जब चुप होगए, तब धार्मिक भरत धर्म युक्त यह विचित्र वचन बोला ॥१॥ कौन लोक में ऐसा होसक्ता है, जैसे आप हैं, हे शत्रुओं के दबानेवाले ! आपको न दुःख दुःखित करता है, न सुख फुलाता है ॥ २ ॥ देवताओं के तुल्य धैर्यवाले सच्ची प्रतिज्ञावाले आप महात्मा सर्वज्ञ सर्वदर्शी बुद्धिमान् हैं ॥३॥ मेरे परदेश होने पर जो मेरे अर्थ क्षुद्रा माता ने पाप किया है, वह मुझे अनिष्ट है, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥४॥ शुभ वंश और शुभ कर्मों वाले दशरथ से उत्पन्न हुआ धर्म अधर्म को जानता हुआ किसतरह मैं ऐसा निन्दित कर्म करूं ॥५॥

मूल—कैकेयीं मां च तातं च सुहृदो बान्धवांश्च नः।पौरजानपदान्सर्वांस्त्रातुं सर्वमिदं भवान् ॥६॥ क्वारण्यं क्व च क्षात्रं क्व जटाः क्व च पालनम् । ईदृशं व्याहतं कर्म न भवान्कर्तुमर्हति ॥ ७ ॥ एष हि प्रथमो धर्मःक्षत्रियस्याभिषेचनम् । येन शक्यं महाप्राज्ञ प्रजानां परिपालनम् ॥८॥ अथक्लेशजमेव त्वं धर्मं चरितुमिच्छसि । धर्मेण चतुरो वर्णान्पालयन्क्लेशमाप्नुहि ॥९॥ श्रुतेन बालः स्था-

नेन जन्मना भवतो ह्यहम् । स कथं पालयिष्यामि भूमिं भवति तिष्ठति ॥१०॥ इदं निखिलमव्यग्रं राज्यं पित्र्यमकण्टकम् । अनुशाधि स्वधर्मेण धर्मज्ञः सह बान्धवैः ॥११॥ इहैव त्वाभिषिञ्चन्तु सर्वाः प्रकृतयः सह । ऋत्विजः सवसिष्ठाश्च मन्त्रविन्मन्त्रकोविदाः १२ अद्यार्य मुदिताः सन्तु सुहृदस्तेऽभिषेचने । अद्य भीताः पलायन्तु दुष्प्रदास्ते दिशो दश॥१३॥ अक्रोशं मम मातुश्च प्रमृज्य पुरुषर्षभ । अद्य तत्रभवन्तं च पितरं रक्ष किल्बिषात् ॥१४॥

टीका—सो कैकयी को, मुझको, पिता को, हमारे सुहृदों और बन्धुओं को और सारे पुर और देश के लोगों को इन सब को हे आर्य! अब आप बचाने योग्य हैं (राज्य को ग्रहण करने से आप हम सब पर भला करेंगे) ॥६॥ कहां वनवास कहां क्षात्र धर्म, कहां जटा, कहां प्रजा का पालन, ऐसा परस्पर विरुद्ध कर्म आपको नहीं करना चाहिये ॥७॥ क्षत्रिय का यही सब से पहला धर्म है, जो अभिषेक है, जिस से हे महाप्राज्ञ प्रजाओं का पालन होसकता है ॥८॥ यदि आप क्लेशसाध्य धर्म को ही करना चाहते हैं, तो धर्म से चारों वर्णों का पालन करता हुआ क्लेश को प्राप्त हो ॥९॥ शास्त्र से, दर्जे से, जन्म से आप से मैं छोटा हूं, सो आपकी विद्यमानता में मैं कैसे भूमि का पालन करूं ॥१०॥ इस पूर्ण निष्कण्टक उत्तम प्रिय राज्य को धर्मज्ञ आप बान्धवों के साथ धर्म से शासन करें ॥११॥ यहां ही हे मन्त्रवित् सब प्रकृतिजन और मन्त्रों के जाननेवाले ऋत्विज् और पुरोहित वसिष्ठ आपका अभिषेक करें॥१२॥आज आप के अभिषेक में हे आर्य ! आपके सुहृद आनन्दित हों, और शत्रु आपके भीत हुए दसों दिशाओं को भाग जाएं ॥१३॥ हे पुरुषश्रेष्ठ आज मेरी माता की निन्दा को पोंछकर पूजनीय पिताको पापसेबचा

मूल—शिरसा त्वाभियाचेऽहं कुरुष्व करुणां मयि । बान्धवेषु च

सर्वेषु भूतेष्विव महेश्वरः ॥ १५ ॥+अथवा पृष्ठतः कृत्वा वनमेव भवानितः । गमिष्यति गमिष्यामि भवता सार्धमप्यहम्॥१६॥ तथाभिरामो भरतेन ताम्यता प्रसाद्यमानः शिरसा महीपतिः । न चैव चक्रे गमनाय सत्त्ववान्मतिं पितुस्तद्वचने प्रतिष्ठितः ॥ १७ ॥+तदद्भुतं स्थैर्यमवेक्ष्य राघवे समं जनो हर्षमवाप दुःखितः । न यात्ययोध्यामिति दुःखितोऽभवत्स्थिरप्रतिज्ञत्वमवेक्ष्य हर्षितः ॥ १८ ॥ तमृत्विजो नैगमयूथवल्लभास्तथा विसंज्ञाश्रुकलाश्च मातरः । तथा ब्रुवाणं भरतं प्रतुष्टुवुः प्रणम्य रामं च ययाचिरे सह ॥ १९ ॥

टीका–सिर से आपको याचनाकरता हूं, मेरे ऊपर और सारे बन्धुओं के ऊपर दया कीजिये, जैसे सब लोगों पर परमात्मा दया करते हैं ॥१५॥ अथवा मेरी (प्रार्थना को) पीछे करके आप यहां से बन को ही जाएंगे, तो मैं भी आपके साथ जाउंगा ॥१६॥ इस प्रकार पीड़ित हुए भरत से सिर से प्रसन्न किया हुआ वह सुन्दर महीपति पिता के उसी वचन पर खड़ा हुआ मनस्वी जाने का ख्याल भी मन में नहीं लाया ।१७। राम में इस अद्भुत स्थिरता को देखकर दुःखित हुए लोग साथ ही हर्ष को भी प्राप्त हुए, अयोध्या को नहीं जाता है, इसीलिये तो दुःखित हुए, और स्थिर प्रतिज्ञा वाला होना देखकर हर्षित हुए ।१८। ऋत्विज् और श्रेणियों के मुखिया और चित्त शून्य और आंसुओं से पूर्ण माताएं यह सब भरत की प्रशंसा करते भए, और प्रणाम करके भरत के साथी बन राम से याचना करते भए ।१९।

सर्ग ९१ (व० १०७) राम का भरत को उत्तर ॥

मूल–पुनरेवं ब्रुवाणं तं भरतं लक्ष्मणाग्रजः । प्रत्युवाच ततः श्रीमान्ज्ञातिमध्ये सुसत्कृतः ॥१॥ +उपपन्नमिदं वाक्यं यत्त्वमेवमभाषथाः । जातः पुत्रो दशरथात्कैकेय्यां राजसत्तमात् ॥२॥ देवासुरे

च संग्रामे जनन्यै तव पार्थिवः। संप्रहृष्टो ददौ राजा वरमाराधितः प्रभुः ॥३॥ततः सा संप्रतिश्राव्य तव माता यशस्विनी। अयाचत नरश्रेष्ठं द्वौ वरौ वरवर्णिनी ॥४॥ तव राज्यं नरव्याघ्र मम प्रव्राजनं तथा। तच्च राजा तथा तस्यै नियुक्तः प्रददौ वरम् ॥ ५ ॥

टीका—भरत के फिर ऐसा कहते हुए ज्ञातियों में सत्कृत श्रीमान् लक्ष्मण का बड़ा भाई फिर बोला ।१। यह वाक्य जो तूने इस तरह कहा है, तेरे ही योग्य है, जो कि कैकेयी में से राजश्रेष्ठ दशरथ से जन्मा है ।२।(किन्तु सुन)देवासुर संग्राम में आराधना किये हुए पृथिवीपति राजा ने प्रसन्न होकर तेरी माताको वर दिया था ।३। इससे यशस्विनीतेरी माताने प्रतिज्ञा करवाकर नरश्रेष्ठ से दो वर मांग लिये ।४। तेरा राज्य हे नरश्रेष्ठ और मेरा वनवास, सो प्रेरे हुए राजा ने वह दोनों वर दे दिये । ५ ।

मूल—तेन पित्राहमप्यत्र नियुक्तः पुरुषर्षभ। चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वरदानिकम् ॥६॥+सोऽहं वनमिदं प्राप्तो निर्जनं लक्ष्मणान्वितः। सीतया चाप्रतिद्वन्द्वः सत्यवादे स्थितः पितुः ॥७॥+भवानपि तथेत्येव पितरं सत्यवादिनम्। कर्तुमर्हसि राजेन्द्र क्षिप्रमेवाभिषेचनात् ॥८॥+ऋणान्मोचय राजानं मत्कृते भरत प्रभुम्। पितरं त्राहि धर्मज्ञ मातरं चाभिनन्दय ॥९॥अयोध्यां गच्छभरतत्वं प्रकृतीरुपरञ्जय। शत्रुघ्नसहितो वीर सह सर्वैर्द्विजातिभिः ॥ १० ॥

टीका—हे नरश्रेष्ठ उस पिता ने वरदान के हेतु चौदह बरस बन में रहने की मुझे आज्ञा दी है ।६। सो मैं सीता और लक्ष्मण के साथ इस निर्जन बन को प्राप्त हुआ पिता के सत्यवाद पर स्थित हुआ अप्रतिद्वन्द्व हूं ।७। आप भी इसी तरह हे राजेन्द्र जल्दी अपने अभिषेक से पिता को सत्यवादी बनाने योग्य हैं ।८। मेरी खातिर हे भरत राजा प्रभु को ऋण से छुड़ा, हे धर्मज्ञ पिता की रक्षा कर,

और माता को आनन्दित कर ।१०। हे भरत हे वीर शत्रुघ्न के सहित और द्विजातियों को नन्दित कर अयोध्या को जा और प्रकृतियों को खुश कर

मूल—प्रवेक्ष्ये दण्डकारण्यमहमप्यविलम्बयन् । अभ्यां तु सहितो वीर वैदेह्या लक्ष्मणेन च ॥११॥ +त्वं राजा भरत भव स्वयं नराणां वन्यानामहमपि राजराण्मृगाणाम् । गच्छ त्वं पुरवरमद्य संप्रहृष्टः संहृष्टस्त्वहमपि दण्डकान्प्रवेक्ष्ये ॥ १२ ॥ +छायान्ते दिनकरभाः प्रबाधमानं वर्षत्रं भरत करोतु मूर्ध्नि शीताम् । एतेषामहमपि कानन्द्रुमाणां छायां तामतिशयनीं शनैः श्रयिष्ये ॥१३॥+शत्रुघ्नस्त्वतुलमतिस्तु ते सहायः सौमित्रिर्मम विदितः प्रधानमित्रम् । चत्वारस्तनयवरावयं नरेन्द्रं सत्यस्थं भरत चराम मा विषीद ॥१४॥

टीका—मैं भी सीता और लक्ष्मण के सहित हे वीर विलम्ब न करता हुआ दण्डकारण्य में प्रवेश करूंगा॥११॥ तू हे भरत मनुष्यों का राजा बन, जंगली मृगों का मैं भी राजराट् हूं। तू अब प्रसन्न हुआ पुरवर को जा, प्रसन्न हुआ मैं भी दण्डकों में प्रवेश करूंगा ॥१२ सूर्य की किरणों को रोकता हुआ छत्र तेरे सिर पर हे भरत ठण्डी छाया करे। इन जंगली वृक्षों की मैं भी अत्युत्तम छाया का धीरे २ आश्रय लूंगा ॥१३॥ अतुल बुद्धि शत्रुघ्न तेरा साथी है, लक्ष्मण प्रसिद्ध मेरा प्रधान साथी है, सो हम चारों पुत्रवर राजा को सत्य पर स्थित बनावें हे भरत मत खिन्न हो ॥ १४ ॥

सर्ग ८२ (व० १०८) जाबालि राम को उपदेश।

मूल—आश्वासयन्तं भरतं जाबालिर्ब्राह्मणोत्तमः । उवाच रामंधर्मज्ञं धर्मापेतमिदं वचः ॥१॥ साधु राघव मा भूत्ते बुद्धिरेवं निरर्थिका । प्राकृतस्य नरस्येव ह्यार्यबुद्धेस्तपस्विनः ॥ २ ॥ कः कस्य पुरुषो बन्धुः किमाप्यं कस्य केनचित् । एको हि जायते जन्तुरेक एव विनश्यति ॥३॥ तस्मान्माता पिता चेति राम सज्जेत यो नरः। उन्मत्त

इव स ज्ञेयो नास्ति कश्चिद्धि कस्यचित् ॥ ४ ॥ यथा ग्रामान्तरं गच्छन्नरः कश्चिद्बहिर्वसेत्। उत्सृज्य च तमावासं प्रतिष्ठेतापरेऽहनि ॥

टीका—भरत को तसल्ली देते हुए धर्मज्ञ रामको जाबालि यह धर्म से गिरा हुआ वचन बोला ॥१॥ ठीक है राघव ! तुझ आर्य बुद्धि वाले तपस्वी को प्राकृत पुरुष की तरह मत यह निरर्थक बुद्धि हो ॥ २ ॥ कौन किस पुरुष का बन्धु है, और क्या किस से किसी ने पाना है, अकेला जीव उत्पन्न होता है, और अकेला ही मरता है ॥३॥ इसलिये हे राम जो पुरुष—यह माता है यह पिता है इस बन्धन में आजाता है उसको उन्मत्त सा समझना चाहिये, कोई किसी का नहीं है॥४॥जैसे कोई पुरुष किसी गांओं को जाता हुआ किसी सराय में ठहरे, और उस सराय को छोड़कर अगले दिन चलपड़े

मूल—एवमेव मनुष्याणां पिता माता गृहं वसु। आवासमात्रं काकुत्स्थ सज्जन्ते नात्र सज्जनाः ॥ ६ ॥ पित्र्यं राज्यं समुत्सृज्य स नार्हसि नरोत्तम। आस्थातुं कापथं दुःखं विषमं बहुकण्टकम् ॥७॥ न ते कश्चिद्दशरथस्त्वं च तस्य न कश्चन। अन्यो राजा त्वमन्यस्तु तस्मात्कुरु यदुच्यते ॥८॥ गतः स नृपतिस्तत्र गन्तव्यं यत्र तेन वै। प्रवृत्तिरेषा भूतानां त्वं तु मिथ्या विहन्यसे ॥ ९ ॥ स नास्ति परमित्येतत्कुरु बुद्धिं महामते। प्रत्यक्षं यत्तदातिष्ठ परोक्षं पृष्ठतः कुरु ॥ १० ॥

टीका—ठीक इसी तरह मनुष्यों के माता पिता घर धन सराय के मेल की तरह हैं, हे काकुत्स्थ सज्जन इस में फंस नहीं जाते ॥ ६ ॥ सो हे नरोत्तम ! तू पित्र्य राज्य को छोड़कर बहुत कांटों वाले विषम दुःखदायी मार्ग में स्थित होने योग्य नहीं है ॥७॥ न तेरा कोई दशरथ था, न तू कुछ उसका है, वह और राजा है तू और है, इसलिये (पितृवचन पालन के झूठे अभिनिवेश को त्याग कर)

कर, जो कुछ कहा जाता है ।८। चला गया वह राजा वहां, जहां उसको जाना था, सब भूतों की यही गति है, अब तू व्यर्थ मारा जारहा है ।९। सो हे महामते ! कोई परलोक नहीं है, यह निश्चय कर, जो प्रत्यक्ष है, उसको सेवन कर और जो परोक्ष है, उसको पीछे कर ।१०।

सर्ग ९३ (व० १०९) राम का उत्तर ॥

मूल—जाबालेस्तु वचः श्रुत्वा रामः सत्यात्मनां वरः। उवाच परया भक्त्या स्वबुद्धया चाविपन्नया ॥१॥ भवान्मे प्रियकामार्थं वचनं यदिहोक्तवान्। अकार्यं कार्यसंकाशमपथ्यं पथ्यसंनिभम् ॥२॥ निर्मर्यादस्तु पुरुषः पापाचारसमान्वितः। मानं न लभते सत्सु भिन्नचारित्रदर्शनः ॥३॥+कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम्। चारित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाऽशुचिम् ।४। अनार्यस्त्वार्यसंस्थानः शौचाद्धीनस्तथाऽशुचिः। लक्षण्यवदलक्षण्यो दुःशीलः शीलवानिव ॥५॥ अधर्मं धर्मवेषेण यद्यहं लोकसंकरम्। अभिपत्स्ये शुभं हित्वा क्रियां विधिविवर्जिताम्॥६॥कश्चेतयानःपुरुषःकार्याकार्यविचक्षणः। बहु मन्येत मां लोके दुर्वृत्तं लोकदूषणम् ॥७॥

टीका—जाबालि के वचन को सुनकर सत्यात्माओं में चुना हुआ वह शास्त्र में अटल श्रद्धा और अचल बुद्धि से बोला ॥ १ ॥ आपने मेरी भलाई के लिये जो यह वचन कहा है, यह कार्य के सदृश अकार्य है, पथ्य के सदृश अपथ्य है, ॥ २ ॥ मर्यादाहीन, पापाचार से युक्त, चरित्र की मर्यादा का तोड़नेवाला, पुरुष सत्पुरुषों में मान नहीं पाता है ॥ ३ ॥ चारित्र ही पुरुष को कुलीन वा अकुलीन, वीर वा पुरुषमानी, शुचि वा अशुचि, प्रकट करता है ॥ ४ ॥ अनार्य होकर आर्यों के सदृश, पवित्रता से हीन होकर अपवित्रों के तुल्य, अच्छे लक्षणों वाला न होकर

लक्षण वाले की तरह, दुःशील होकर शीलवान् की तरह ॥५॥ यदि मैं शुभ को त्याग कर लोक में गड़बड़ डालने वाले अधर्म को जो वेदविरुद्ध काम है धर्म के वेष से स्वीकार करूं, ॥ ६ ॥ तो कौन कार्य अकार्य में निपुण समझदार पुरुष लोक के बिगाड़नवाले मुझ दुर्वृत्त को बहुत मानेगा ॥ ७ ॥

मूल—कस्य यास्याम्यहं वृत्तं केन वास्वर्गमाप्नुयाम् । अन्यथा वर्तमानोहं वृत्त्या हीनप्रातिज्ञया ॥ ८ ॥ कामवृत्तोन्वयं लोकः कृत्स्नः समुपवर्तते । यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः ॥९॥ सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम् । तस्मात्सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः ॥१०॥ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे । सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन्परं गच्छति चाक्षयम् ॥११॥ उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः । धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते ॥१२॥ सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः । सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥१३॥ दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च । वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरो भवेत् ॥१४॥ एकः पालयते लोकमेकः पालयते कुलम् । मज्जत्येको हि निरय एकः स्वर्गे महीयते ॥१५॥ सोऽहं पितुर्निदेशं तु किमर्थं नानुपालये । सत्यप्रतिश्रवः सत्यं सत्येन समयीकृतम् ॥१६॥

टीका—इस हीन प्रतिज्ञावाले वर्ताव से वर्तता हुआ मैं किसके आचरण पर चलूं, और किससे स्वर्ग को प्राप्त होउं ॥८॥ यह सारा ही लोक कामवृत्त (मनमुख) होजाए, क्योंकि जैसे आचरण वाले राजा होते हैं, वैसे आचरण वाले प्रजाजन होते हैं ॥९॥ सचाई और दयाभाव ही सनातन राजवृत्त है, यह राज्य सत्य रूप है (सत्य पर स्थित है) और सत्य पर ही लोक स्थित है॥१०॥ऋषि और देवता सत्य का ही मान करते हैं, सत्यवादी ही इस लोक में पर-

ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥११॥ झूठ बोलनेवाले से लोग इसतरह डरते हैं, जिसतरह सांप से, सत्यप्रधान धर्म इसलोक में सब का मूल कहाजाता है ॥ १२ ॥ सत्य ही लोक का ईश्वर है धर्म सदा सचाई के सहारे है, सत्यमूलक ही सब है, सत्य से परे कोई पद नहीं ॥ १३ ॥ दान दिया हुआ, हवन किया हुआ और तप तपे हुए और वेद सत्य पर ठहरे हुए हैं इसलिये सत्यपरायण होवे ॥१४॥ एक लोक का पालन करता है, एक कुल का पालन करता है, अकेला नरक में डूबता है, अकेला स्वर्ग में पूजा जाता है ॥१५॥ सो मैं सच्ची प्रतिज्ञावाला होकर पिता की आज्ञा को कैसे पालन न करूं, सचाई सचाई से बराबर की जाती है ॥ १६ ॥

मूल—नैव लोभान्न मोहाद्वा न चाज्ञानात्तमोन्वितः । सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः॥१७॥ असत्यसंधस्य सतश्चलस्यास्थिर चेतसः । नैव देवा न पितरः प्रतीच्छन्तीति नः श्रुतम् ॥८॥ प्रत्य-गात्ममिमं धर्मं सत्यं पश्याम्यहं ध्रुवम् । भारः सत्पुरुषैश्चीर्णस्त-दर्थमभिनन्द्यते ॥१९॥ +भूमिः कीर्त्तिर्यशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थ-यन्ति हि । सत्यं समनुवर्तन्ते सत्यमेव भजेत्ततः ॥२०॥ श्रेष्ठं ह्यनार्यमेव स्याद्यद्भवानवधार्य माम् । आह युक्तिकरैर्वाक्यैरिदं भद्रं कुरुष्व ह ॥२१॥ कथं ह्यहं प्रतिज्ञाय वनवासमिमं गुरोः । भरतस्य करिष्यामि वचो हित्वा गुरोर्वचः ॥२२॥ स्थिरा मया प्रतिज्ञाता प्रतिज्ञा गुरुसंनिधौ । प्रहृष्टमानसा देवी कैकेयी चाभवत्तदा ॥२३॥

टीका—मैं सच्ची प्रतिज्ञावाला होकर अब न लोभ से न मोह से और न अज्ञान से तमोगुण युक्त हुआ पिता की सचाई की मर्यादा को तोडूंगा ॥१७॥ जो झूठी प्रतिज्ञावाला चञ्चल अस्थिर मनवाला है उसको न ही देवता और न ही पिता अंगीकार करते हैं, यह हमने सुना है॥१८॥हरएक आत्मा के लिये इस सचाई रूपी धर्म को अटल

देखता हूं, यह भार सत्पुरुषों से उठाया गया है, इसलिये इसको अभिनन्दन करता हूं ॥१९॥ भूमि कीर्ति यश लक्ष्मी पुरुष को चाहते हैं, पर सचाई के अनुवर्ती होते हैं, इसलिये सदा सत्य का ही सेवन करे ॥ २० ॥ आपने जो बनावटी युक्तिवाले वाक्यों से निश्चय करके कहा है, यह श्रेष्ठ है, भला है, इसको कर, पर यह अनार्यपन ही है ॥२१॥ कैसे मैं गुरु के सामने वनवास की प्रतिज्ञा करके गुरु के वचन को त्याग कर भरत का वचन करूं ॥२२॥ गुरुओं के सामने मैंने स्थिर प्रतिज्ञा की है, और उस समय देवी कैकेयी प्रसन्नमन हुई थी ॥ २३ ॥

मूल—वनवासं वसन्नेव शुचिर्नियतभोजनः। मूलपुष्पफलैः पुण्यैःपितॄन्देवांश्च तर्पयन् ॥ २४ ॥ संतुष्टपञ्चवर्गोऽहं लोकयात्रां प्रवाहये। अकुहः श्रद्दधानः सन्कार्याकार्यविचक्षणः ॥ २५ ॥ +सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च भूतानुकम्पां प्रियवादितां च।। द्विजातिदेवातिथिपूजनं च पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः ॥२६॥ निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद्यस्त्वामगृह्णाद्विषमस्थबुद्धिम् । बुद्ध्यानयैवंविधया चरन्तं सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम् ॥२७॥ इति ब्रुवन्तं वचनं सदोषं रामं महात्मानमदीनसत्त्वम् । उवाच पथ्यं पुनरास्तिकं च सत्यं वचः सानुनयं च विप्रः ॥२८॥ न नास्तिकानां वचनं ब्रवीम्यहं न नास्तिकोऽहं न च नास्ति किंचन। समीक्ष्य कालं पुनरास्तिकोऽभवं भवेय काले पुनरेव नास्तिकः ॥२९॥ स चापि कालोऽयमुपागतः शनैर्यथा मया नास्तिकवागुदीरिता । निवर्तनार्थं तव राम कारणात्प्रसादनार्थं च मयैतदीरितम् ॥३०॥

टीका—वनवास में रहता हुआ शुचि हो नियताहारवाला, पवित्र मूल पुष्प और फलों से देवता और पितरों को तृप्त करता हुआ ॥२४॥ सन्तुष्ट पांचों इन्द्रियोंवाला बिना छल कपट कार्य अकार्य

में निपुण आस्तिकभाव से लोकयात्रा को निबाहूंगा ॥ २५ ॥ सचाई, धर्म पराक्रम, जीवों पर दया, प्रिय बोलना, ब्राह्मण देवता और अतिथियों की पूजा सत्यपुरुष इसको स्वर्ग का मार्ग बतलाते हैं ॥ २६ ॥ मैं पिता के किये इस कर्म को निन्दता हूं, जिस ने तुझ विषम बुद्धिवाले को स्वीकार किया, जो इस बुद्धि पर चलता हुआ धर्मपथ से गिरा हुआ पूरा नास्तिक है ॥ २७ ॥ इसप्रकार उदार-हृदय महात्मा राम के (जाबालिक के विषय) दोषवाला वचन कहते हुए फिर वह ब्राह्मण नम्रता सहित सच्चा पथ्य वचन बोला ॥२८ मैं नास्तिकों की बात नहीं कह रहा, न मैं नास्तिक हूं, और न (परलोक आदिक) कुछ नहीं है, मैं (परलोक की बात का) मौका देखकर आस्तिक हूं, और (लोक की बात का) मौका देखकर नास्तिक हूं ॥ २९ ॥ वह मौका था 'जिस से मैंने धीरे से नास्तिकपन की बात कही थी, हे राम तेरे लौटाने के लिए मैंने यह कहा था, और प्रसादन के लिये अब यह कहा है ॥३०॥

सर्ग ९४ (व० १११) राम का भरत को फिर उपदेश

मूल–आसीनस्त्वेव भरतः पौरजानपदं जनम् । उवाच सर्वतः प्रेक्ष्य किमार्यं नानुशासथ ॥१॥ ते तदोचुर्महात्मानं पौरजानपदा जनाः । काकुत्स्थमभिजानीमः सम्यग्वदति राघवः ॥२॥ एषोऽपि हि महा-भागः पितुर्वचसि तिष्ठति । अतएव न शक्ताः स्म व्यावर्तयितुमञ्ज-सा ॥३॥ तेषामाज्ञाय वचनं भरतो वाक्यमब्रवीत् । शृण्वन्तु मे परिषदो मन्त्रिणः शृणुयुस्तथा ॥ ४ ॥ न याचे पितरं राज्यं नानु-शासामि मातरम् । एवं परमधर्मज्ञं नानुजानामि राघवम् ॥ १५ ॥ यदि त्ववश्यं वस्तव्यं कर्तव्यं च पितुर्वचः । अहमेव निवत्स्यामि चतुर्दश वने समाः ॥६॥ धर्मात्मा तस्य सत्येन भ्रातुर्वाक्येन विस्मितः उवाच रामः संप्रेक्ष्य पौरजानपदं जनम् ॥७॥ विक्रीतमाहितं क्रीतं

यदापित्रा जीवता मम । न तल्लोपयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा ॥

टीका—बैठा हुआही भरत सब ओर देखकर पुर और देश के लोगों से बोला, आप सब आर्य को क्यों नहीं कहते हैं ॥१॥ तब पुर और देश के लोग उस महात्मा से बोले, हम राम के हृदय को जानते हैं, राम ठीक कह रहा है ॥२॥ यह भी महाभाग पिता के वचन पर खड़ा है, इसलिये हम साक्षात् इसके लौटाने में अशक्त हैं ॥३॥ उनके वचन को सुनकर भरत वाक्य बोला, मेरी बात को सारे सभासद् और मन्त्री सुनें ॥३॥ मैंने पिता से राज्य की याचना नहीं की, माता को कुछ नहीं कहा इसीप्रकार परमधर्मज्ञ (राम के बनवास के) विषय में कुछ मालूम नहीं ॥५॥ सो यदि अवश्य बनमें रहकर पिता का वचन पूरा करना है, तो मैं ही चौदह बरस बन में रहूंगा ॥६॥ तिस पर धर्मात्मा राम भाई के सत्य वाक्य से अश्चर्य हुआ पुर और देश के लोगों की ओर देखकर बोला ॥७॥ मेरे पिता ने जीते जी जो कुछ बेच दिया, अमानत रखा है उसको मैं उलट नहीं सक्ता, न भरत (उलट सक्ता है) ॥ ८ ॥

मूल—+उपाधिर्न मया कार्यो वनवासजुगुप्सितः । युक्तमुक्तं च कैकेय्या पित्रा मे सुकृतं कृतम् ॥९॥ जानामि भरतं शान्तं गुरुसत्कारकारिणम् । सर्वमेवात्र कल्याणं सत्यसन्धे महात्मनि ॥१०॥ अनेन धर्मशीलेन वनात्प्रत्यागतः पुनः । भ्रात्रा सह भविष्यामि पृथिव्याः पतिरुत्तमः ॥११॥ वृतो राजा हि कैकेय्या मया तद्वचनं कृतम् । अनृतान्मोचयानेन पितरं तं महापतिम् ॥ १२ ॥

टीका—मैं बनवास में अपना कोई प्रतिनिधि नहीं बना सक्ता, यह बात निन्दावाली है, कैकेयी ने मुझे जो कहा है वह ठीक कहा है और पिता ने जो किया वह ठीक किया है ॥९॥ मैं जानता हूं भरत क्षमा वाला है गुरुओं का सत्कार करनेवाला है, सच्ची प्रतिज्ञा वाले महा-

त्मा भरत में सारा ही कल्याण है ॥१०॥ इस धर्मशील भाई के साथ बन से फिर वापिस आया मैं पृथिवी का उत्तम पति बनूंगा ११ कैकेयी ने राजा से वर मांगा, मैंने उसका वचन किया, तू भी इस से (मेरे बनवास में रहने से) उस पृथिवीपति पिता को झूठ से छुड़ा ॥

सर्ग ९५ (व० ११२) राम के पादुक लेकर भरत का लौटना।

मूल—तमप्रतिमतेजोभ्यां भ्रातृभ्यां रोमहर्षणम्। विस्मिताः संगमं प्रेक्ष्य समुपेता महर्षयः ॥१॥ त्रस्तगात्रस्तु भरतः स वाचा सज्जमानया। कृताञ्जलिरिदं वाक्यं राघवं पुनरब्रवीत् ॥२॥ राम धर्ममिमं प्रेक्ष्य कुलधर्मानुसंततम्। कर्तुमर्हसि काकुत्स्थ मम मातुश्च याचनम् ॥ ३ ॥ रक्षितुं सुमहद्राज्यमहमेकस्तु नोत्सहे। पौरजानपदांश्चापि रक्तान्रञ्जयितुं तदा ॥४॥ ज्ञातयश्चापि योधाश्च मित्राणि सुहृदश्च नः। त्वामेव हि प्रतीक्षन्ते पर्जन्यमिव कर्षकाः ॥ ५ ॥ इदं राज्यं महाप्राज्ञ स्थापय प्रतिपद्य हि। शक्तिमानसि हि काकुत्स्थ लोकस्य परिपालने ॥ ६ ॥ एवमुक्त्वापतद् भ्रातुःपादयोर्भरतस्तदा। भृशं संप्रार्थयामास राघवेऽतिप्रियं वदन् ॥७॥ तमङ्के भ्रातरं कृत्वा रामो वचनमब्रवीत्। श्यामं नलिनपत्राक्षं मत्तहंसस्वरः स्वयं ॥ ८॥

टीका—उन अतुल तेजवाले भाइयों के रोमहर्षण संगम को देखकर वहां इकट्ठे हुए सब महर्षि विस्मित हुए ॥ १ ॥ पर भरत के अङ्ग ढीले होगये, और वह हाथ जोड़कर फिसलती हुई वाणी से फिर राम से बोला ॥२॥ हे राम कुलधर्म से फैले हुए इस धर्म (बड़े पुत्र के अभिषेक) को देखकर हे काकुत्स्थ मेरी और मेरी माता की याचना को आप पूरा करने योग्य हैं ॥ ३ ॥ इस बहुत बड़े राज्य की मैं अकेला रक्षा नहीं कर सक्ता हूं, और तुझ में अनुरक्त पुर और देश के लोगों को भी रञ्जन नहीं कर सक्ता हूं ॥४॥ हमारे ज्ञाति के लोग योधे मित्र और सुहृद आपकी ही इस तरह

प्रतीक्षा कर रहे हैं, जैसे कसान मेघ की ॥५॥ हे महाप्राज्ञ इस राज्य को अङ्गीकार करके स्थापनकर, हे काकुत्स्थ! लोक के पालन में तू ही शक्तिवाला है ॥ ६ ॥ यह कहकर भरत भाई के पाओं पर गिर पड़ा, और अतीव प्रिय बोलता हुआ बार २ प्रार्थना करता भया ॥ ७ ॥ उस कमलनेत्र युवा भाई को स्वयं राम गोद में लेकर मत्त हंस के स्वर की तरह यह वचन बोला ॥ ८ ॥

मूल—+आगता त्वामियं बुद्धिः स्वजा वैनयिकी च या । भृश-मुत्सहसे तात रक्षितुं पृथिवीमपि ॥ ९ ॥ अमात्यैश्च सुहृद्भिश्च बुद्धिमद्भिश्च मन्त्रिभिः । सर्वकार्याणि संमन्त्र्य महान्त्यपि हि कारय १०लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान्वा हिमंत्यजेत् । अतीयात्सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः ॥११॥ कामाद्वा तात लोभाद्वा मात्रा तुभ्यमिदं कृतम् । न तन्मनसि कर्तव्यं वर्तितव्यं च मातृवत् ॥१२॥ एवं ब्रुवाणं भरतः कौसल्यासुतमब्रवीत् । तेजसादित्यसंकाशं प्रतिपच्चन्द्रदर्शनम् ॥१३॥ अधिरोहार्यपादाभ्यां पादुके हेमभूषिते । एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः ॥१४॥ सोऽधिरुह्य नरव्याघ्रः पादुके व्यवमुच्य च । प्रायच्छत्सुमहातेजा भरताय महात्मने ॥१५॥ स पादुके संप्रणम्य रामं वचनमब्रवीत् । चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम् ॥१६॥

टीका—हे तात तुझमें यह बुद्धि (धर्म पर स्वार्थत्याग की) जो स्वभाव से और शिक्षा से आई हुई है, इससे तू सारी पृथिवी की रक्षा करने के पूरा समर्थ है ॥९॥ बुद्धिमान् अमात्य सुहृद और मन्त्रियों के साथ सारे कार्यों को विचार करके बड़े कार्यों को भी करवा॥१०॥ शोभा चन्द्र से दूर होजाए, वा हिमालय हिम को त्याग दे, समुद्र मर्यादा को तोड़ दे, पर मैं पिता की प्रतिज्ञा को नहीं तोडूंगा॥११॥ स्नेह से वा लोभ से हे तात माता ने जो तेरे लिये किया है, उसको मनमें न लाना और वही बर्ताव करना जो माता से होता है॥१२॥

ऐसा कहते हुए, तेज में सूर्य के तुल्य, और प्रतिपदा के चन्द्र तुल्य दर्शनवाले कौसल्यासुत को भरत बोला ॥१३॥ हे आर्य पाओं से सुवर्ण भूषित पादुकों पर चढ़, यह सारे लोक का योगक्षेम पूरा करेंगे॥१४॥वह नरश्रेष्ठ पादुकों पर चढ़कर और उतार कर महात्मा भरत को देता भया॥१५॥भरत उन पादुकों को प्रणाम कर राम से वचन बोला, चौदह बरस मैं जटाचीरधारी हो ॥१६॥

मूल—फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन । तवागमनमाकांक्षन्वसन्वै नगराद्बहिः॥१७॥तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परंतप । चतुर्दशे हि संपूर्णे वर्षेऽहानि रघूत्तम॥१८॥न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् । तथेति च प्रतिज्ञाय तं परिष्वज्य सादरम् ॥१९॥ शत्रुघ्नं च परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत् । मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति ॥२०॥मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन । इत्युक्त्वाश्रुपरीताक्षो भ्रातरं विससर्ज ह ॥२१॥ स पादुके ते भरतः स्वलंकृते महोज्ज्वले संपरिगृह्य धर्मवित् । प्रदक्षिणं चैव चकार राघवं चकार चैवोत्तमनागमूर्धनि ॥२२॥ अथानुपूर्व्या प्रतिपूज्य तं जनं गुरूंश्च मन्त्रीन्प्रकृतीस्तथानुजौ । व्यसर्जयद्राघववंशवर्धनः स्थितः स्वधर्मे हिमवानिवाचलः ॥२३॥ तं मातरो बाष्पगृहीतकण्ठ्यो दुःखेन नामन्त्रयितुं हि शेकुः । स चैव मातॄरभिवाद्य सर्वा रुदन्कुटीं स्वां प्रविवेश रामः ॥२४॥

टीका—हे वीर रघुनन्दन फल मूल खाउंगा तेरे आने की प्रतीक्षा करता हुआ नगर से बाहिर रहता हुआ ॥१७॥ राज्य व्यवहार को तेरे पादुकों में निवेदन करके।चौदहवें बरस का अन्तिम दिन पूर्ण होजाने पर हे रघूत्तम॥१८॥यदि आपको नहीं देखुंगा, तो अग्नि में प्रवेश करूंगा।"तथास्तु" यह प्रतिज्ञा करके और उसको सादर गले लगाकर ॥१९॥ और शत्रुघ्न को गले लगाकर राम यह वचन बोला

माता कैकेयी की रक्षा करना, उसके प्रति रोष मत करना ॥२०॥ हे रघुनन्दन मेरी और सीता की शपथ है, यह कहकर आंसुओं से भरे नेत्रोंवाला भाई को विसर्जन करता भया ॥ २१ ॥ वह धर्मज्ञ भरत बड़े उज्ज्वल और सुशोभित पादुकों को ग्रहणकर राम की प्रदक्षिणा करता भया और उन पादुकों को उत्तम हाथी के मूर्धा पर रख दिया (अभिषिक्त राजा हाथी पर चढ़कर निकलता है) ॥२२॥ तब रघुवंश का बढ़ानेवाला अपने धर्म में स्थित हिमालय की तरह अचल राम क्रम से उन लोगों को, गुरुओं को, मन्त्रियों को प्रकृतियों को, और दोनों छोटे भाइयों को पूजकर विसर्जन करता भया॥२३॥ माताएं जिनके आंसुओं से गले रुक गये हैं, दुःख से कुछ कह नहीं सकीं, वह राम सारी माताओं को अभिवादन कर रोता हुआ अपनी कुटिया में प्रविष्ट हुआ ॥२४॥

सर्ग ८६ (व० ११३) भरत की अयोध्या की यात्रा ।

मूल—ततः शिरसि कृत्वा तु पादुके भरतस्तदा । आरुरोह रथं हृष्टः शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥१॥ स तमाश्रममागम्य भरद्वाजस्य वीर्यवान् । अवतीर्य रथात्पादौ ववन्दे कुलनन्दनः ॥ २ ॥ ततो हृष्टो भरद्वाजो भरतं वाक्यमब्रवीत् । अपि कृत्यं कृतं तात रामेण च समागतम् ॥ ३॥ एवमुक्तः स तु ततो भरद्वाजेन धीमता । प्रत्युवाच भरद्वाजं भरतो धर्मवत्सलः ॥ ४ ॥ स याच्यमानो गुरुणा मया च दृढवि- क्रमः । राघवः परमप्रीतो वसिष्ठं वाक्यमब्रवीत्॥५॥ +पितुः प्रतिज्ञां तामेव पालयिष्यामि तत्त्वतः । चतुर्दश हि वर्षाणि या प्रतिज्ञा पितुर्मम ॥६॥ एवमुक्तो महाप्राज्ञो वसिष्ठः प्रत्युवाच ह । वाक्यो वाक्यकुशलं राघवं वचनं महत् ॥७॥ एते प्रयच्छ संहृष्टः पादुके हेमभूषिते । अयोध्यायां महाप्राज्ञ योगक्षेमकरो भव ॥ ८ ॥

टीका—तब भरत उन पादुकों को सिर पर करके प्रसन्न हुआ,

शत्रुघ्न सहित रथ पर आरूढ़ हुआ ।१। वह वीर्यवान् कुलनन्दन भरद्वाज के आश्रम पर पहुंचकर रथ से उतरकर उसकी पाद वन्दना करता भया ।२। भरद्वाज ने प्रसन्न हो भरत को यह वाक्य कहा, हे तात कार्य कर लिया, राम के साथ मेल हुआ ।३। बुद्धिमान् भरद्वाज से ऐसे कहा हुआ धर्मका प्यारा भरत भरद्वाज को उत्तर देता भया ।४। वह दृढ़ पराक्रमवाला राघव मुझसे और गुरु से याचना किया हुआ परम प्रसन्न हुआ वसिष्ठ से यह वाक्य बोला ।५। पिता की उसी प्रतिज्ञा को ठीक २ पालन करूंगा, जो चौदह बरस की मेरे पिता की प्रतिज्ञा है ।६। ऐसा कहने पर वाक्य के जाननेवाले महाप्राज्ञ वसिष्ठ ने वाक्यकुशल राघव को यह गम्भीर वचन कहा ।७। यह सुवर्णभूषित पादुक प्रसन्न होकर देदे, इस प्रकार हे महाप्राज्ञ अयोध्या में सारा योग क्षेम निबाहनेवाला हो।

मूल—एवमुक्तो वसिष्ठेन राघवः प्राङ्मुखः स्थितः । पादुके हेमविकृते मम राज्याय ते ददौ ॥९॥ निवृत्तोऽहमनुज्ञातो रामेण सुमहात्मना । अयोध्यामेव गच्छामि गृहीत्वा पादुके शुभे ॥१०॥ एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः । भरद्वाजः शुभतरं मुनिर्वाक्यमुदाहरत् ॥११॥ नैतच्चित्रं नरव्याघ्र शीलवृत्तविदां वरे । यदार्यत्वयि तिष्ठेत्तु निम्नात्सृष्टमिवोदकम् ॥१२॥ +अनृणः स महाबाहुः पिता दशरथस्तव । यस्य त्वमीदृशः पुत्रो धर्मात्मा धर्मवत्सलः । ॥१३॥ ततः प्रदक्षिणं कृत्वा भरद्वाजः पुनः पुनः।भरतस्तु ययौ श्रीमानयोध्यां सह मन्त्रिभिः ॥ १४ ॥

टीका—वसिष्ठ से ऐसे कहे हुए राघव ने पूर्वाभिमुख स्थित हो सुवर्णभूषित पादुक मेरे राज्य के लिये दिये ।९। महात्मा राम से अनुज्ञा दिया हुआ मैं उन शुभ पादुकों को लेकर लौटा हुआ अयोध्या को ही जारहा हुं ।१०। भरत महात्मा के इस शुभ वाक्य

को सुनकर भरद्वाज मुनि शुभतर वाक्य बाला ।११। शील और वृत्त के जाननेवालों में श्रेष्ठ तुझ नरश्रेष्ठ में यह आश्चर्य नहीं, जो आर्य चरित्र तुझ में निम्न में छोड़े हुए जल की तरह ठहरे।१२। वह तेरा पिता महाबाहु दशरथ अनृण है, जिसका तू ऐसा धर्मात्मा धर्मवत्सल पुत्र है ।१३। तब भरद्वाज की प्रदक्षिणा करके श्रीमान् भरत मन्त्रियों सहित अयोध्या को चला गया । १४ ॥

सर्ग ९७ (व०११४) भरत का अयोध्या में प्रवेश

मूल–स्निग्धगम्भीरघोषेण स्यन्दनेनोपयान्प्रभुः । अयोध्यां भरतः क्षिप्रं प्रविवेश महायशाः ॥ १ ॥ भरतस्तु रथस्थः सञ्श्रीमान्द-शरथात्मजः । वाहयन्तं रथश्रेष्ठं सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥२॥ किं नु खल्वद्य गम्भीरो मूर्छितो न निशाम्यते । यथापुरमयोध्यायां गीत-वादित्र निस्वनः ॥ ३ ॥ यानप्रवरघोषाश्च सुस्निग्धहयानिःस्वनः । प्रमत्तगजनादश्च महांश्च रथनिःस्वनः ॥४॥ नेदानीं श्रूयते पुर्यामस्यां रामे विवासिते । चन्दनागुरुगन्धांश्च महार्हाश्च वनस्रजः ॥५॥ गते रामे हि तरुणाः संतप्ता नोपभुञ्जते । बहिर्यात्रां न गच्छन्ति चित्रमा-ल्यधरा नराः ॥६॥ +नोत्सवाः संप्रवर्तन्ते रामशोकार्दिते पुरे । सा हि नूनं मम भ्रात्रा पुरस्यास्य द्युतिर्गता ॥७॥

टीका–स्निग्ध गम्भीर ध्वनि वाले रथ से चलता हुआ महायशस्वी प्रभु भरत जल्दी अयोध्या में प्रविष्ट हुआ ।१। दशरथसुत श्रीमान् भरत रथ पर बैठा हुआ रथ को चलाते हुए सारथि से यह वाक्य बोला ।२। क्या अयोध्या में पहले की तरह गम्भीर, मूर्छनावाली, बाजों की ध्वनि सुनाई नहीं देती है ।३। तथा यानों की प्रवर ध्वनि, घोड़ों की स्निग्ध हिनहनाहट, मत्त हाथियों की चिंघाड़, और रथों की बड़ी घुंकार ।४। राम के विवासन में इस पुरी में सुनाई नहीं देती, न अगर चन्दन के गन्ध हैं, न बहुमूल्य मालाएं

हैं ।५। राम के चले जाने पर युवक पुरुष संतप्त हुए भोग नहीं भोगते हैं, न विचित्र मालाओं का धारण किये पुरुष बाहर सैर को जाते हैं ।६। राम के शोक से पीड़ित पुर में उत्सव भी नहीं होरहे हैं.निःसन्देह इस पुरकी शोभा मेरे भाईके साथही चलीगई है

मूल—कदा नु खलु मे भ्राता महोत्सव इवागतः। जनयिष्यत्ययोध्यायां हर्षं ग्रीष्म इवाम्बुदः॥८॥तरुणैश्चारुवेषैश्च नरैरुन्नतगामिभिः। संपतद्भिरयोध्यायां नाभिभान्ति महापथाः ॥९॥ इति ब्रुवन्सारथिना दुःखितो भरतस्तदा। अयोध्यां संप्रविश्यैव विवेश वसतिं पितुः ॥

टीका—कब मेरा भाई महोत्सव की तरह आया हुआ फिर अयोध्या में हर्ष उत्पन्न करेगा ॥८॥ सुन्दर वेषों वाले मिलकर चलते हुए युवा पुरुषों से अयोध्या के महापथ शुभायमान नहीं है ॥९॥ इस प्रकार दुःखित हुआ भरत सारथि से बात करता हुआ अयोध्या में प्रवेश कर पिता के मन्दिर में प्रविष्ट हुआ ॥१०॥ जो कि शेर से हीन गुफा की तरह उस नरेन्द्र से हीन है ॥११॥

सर्ग ८८ (व० ११५) भरत का राज्य व्यवहार।

मूल—ततो निक्षिप्य मातृस्ता अयोध्यायां दृढव्रतः। भरतः शोकसंतप्तो गुरूनिदमथाब्रवीत् ॥१॥ नन्दिग्रामं गमिष्यामि सर्वानामन्त्रयेऽत्र वः। तत्र दुःखमिदं सर्वं सहिष्ये राघवं विना ॥ २ ॥ गतश्चाहो दिवं राजा वनस्थः स गुरुर्मम। रामं प्रतीक्षे राज्याय स हि राजा महायशाः ॥३॥ एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः। अब्रुवन्मन्त्रिणः सर्वे वसिष्ठश्च पुरोहितः ॥४॥ सुभृशं श्लाघनीयं च यदुक्तं भरत त्वया। वचनं भ्रातृवात्सल्यादनुरूपं तवैव तत् ॥ ५ ॥ रथस्थः स तु धर्मात्मा भरतो भ्रातृवत्सलः। नन्दिग्रामं ययौतूर्णं शिरस्याधाय पादुके ॥ ६ ॥ भरतस्तु ततः क्षिप्रं नन्दिग्रामं प्रविश्य सः। अवतीर्य रथात्तूर्णं गुरूनिदमभाषत ॥७॥

टीका—तब वह माताओं को अयोध्या में छोड़कर शोक से संतप्त दृढ़व्रत भरत गुरुओं से यह बोला ॥१॥ नन्दिग्राम को जाऊंगा, सब से आज्ञा मांगता हूं, वहां इस सारे दुःख को राम के बिना सहूंगा ॥ २ ॥ राजा स्वर्ग को चला गया, और वह मेरा गुरु वन में स्थित है, मैं राज्य के लिये राम की प्रतीक्षा करूंगा, वही महायशस्वी राजा है ॥३॥ महात्मा भरत के इस शुभ वाक्य को सुनकर सारे मन्त्री और पुरोहित वसिष्ठ बोला ॥ ४ ॥ भाई के प्रेम से तूने यह अतीव श्लाघनीय वचन कहा है, यह तेरे ही योग्य है ॥५॥ तब धर्मात्मा भरत सिरपर पादुकों को रखकर जल्दी नन्दीग्राम को गया ॥६॥ नन्दीग्राम में प्रवेश कर जल्दी रथ से उतरते ही गुरुओं से यह वाक्य बोला ॥ ७ ॥

मूल—एतद्राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं संन्यासमुत्तमम् । योगक्षेमवहे चेमे पादुके हेमभूषिते ॥८॥ भरतः शिरसा कृत्वा संन्यासं पादुके ततः। अब्रवीद् दुःखसंतप्तः सर्वं प्रकृतिमण्डलम् ॥९॥+छत्रं धारयत क्षिप्रमार्यपादाविमौ मतौ । आभ्यां राज्ये स्थितो धर्मः पादुकाभ्यां गुरोर्मम ॥१०॥ भ्रात्रा तु मयि संन्यासो निक्षिप्तः सौहृदादयम् । तमिमं पालयिष्यामि राघवागमनं प्रति ॥ ११ ॥ राघवाय च संन्यासं दत्त्वेमे वरपादुके । राज्यं चेदमयोध्यायां धूतपापो भवाम्यहम् ॥१२॥+स वल्कलजटाधारी मुनिवेषधरःप्रभुः। नन्दिग्रामेऽवसद्वीरःससैन्यो भरतस्तदा ॥१३॥+ततस्तु भरतः श्रीमानभिषिच्यार्यपादुके । तदधीनस्तदा राज्यं कारयामास सर्वदा ॥१४॥ तदा हि यत्कार्यमुपैति किंचिदुपायनं चोपहृतं महार्हम्।स पादुकाभ्यां प्रथमं निवेद्य चकार पश्चाद्भरतो यथावत् ॥१५॥

टीका—यह उत्तम राज्य मुझे भाई ने अमानत दिया है, उसके योग क्षेम के चलानेवाले यह सुवर्णभूषित पादुक हैं ॥८॥ फिर पादुकों

की अमानत को सिर पर रखकर दुःख से सन्तप्त हुआ सारे प्रकृति मण्डल से बोला ।९। छत्र इन पर धारण करो, यह आर्यपाद की जगह हैं, मेरे गुरु का धर्म (व्यवहार) इन पादुकों से राज्य पर स्थित है ।१०। भाई ने सौहार्द में यह मुझे अमानत दी है, राम के आने तक मैं इसका पालन करूंगा ।११। यह श्रेष्ठ पादुक और अयोध्या के राज्य की अमानत वापिस देकर मैं दूर हुए पापवाला हूंगा ।१२। वह धीर प्रभु भरत जटा वकले धार मुनिवेषधारी हो सेना समेत नन्दीग्राम में रहा । १३। तब श्रीमान् भरत आर्यपादुकों को अभिषेक कर उनके अधीन हो राज्य करता भया ।१४। जो कोई राज्यकार्य उपस्थित होता, वा बहुमूल्य भेंट आती, वह पहिले पादुकों को निवेदन कर पीछे भरत यथायोग्य करता ।१५।

सर्ग ८८ (व०११७ राम की चित्रकूट से आगे यात्रा-अत्रि का आश्रम

मूल—राघवस्त्वपयातेषु सर्वेष्वनुविचिन्तयन्। न तत्रारोचयद्वासं कारणैर्बहुभिस्तदा ॥ १ ॥ इह मे भरतो दृष्टो मातरश्च सनागराः । सा च मे स्मृतिरन्वेति तान्नित्यमनुशोचतः ॥ २ ॥ तस्मादन्यत्र गच्छाम इति संचिन्त्य राघवः । प्रातिष्ठत स वैदेह्या लक्ष्मणेन च संगतः ॥३॥ सोऽत्रेराश्रममासाद्य तं ववन्दे महायशाः । तं चापि भगवानत्रिः पुत्रवत्प्रत्यपद्यत ॥४॥ स्वयमातिथ्यमादिश्य सर्वमस्य सुसंस्कृतम् । सौमित्रिं च महा भागं सीतां च समसान्त्वयत् ॥५॥

टीका—सब के चले जाने पर राम ने सोचा, और, कई कारणों से वहां रहना पसन्द न किया ॥१॥ यहां मैंने भरत को, माताओं को, और नगर के लोगों को देखा है, जैसा कि वह सब मेरे लिये शोक में थे, वह स्मृति मुझे भूलती नहीं है ॥ २ ॥ इसलिये और कहीं चलें, यह सोचकर राम सीता और लक्ष्मण के साथ प्रस्थित हुआ ॥ ३ ॥ और उस महायशस्वी ने अत्रि के आश्रम में पहुंच

कर उसको प्रणाम किया, भगवान् अत्रि ने भी उसको पुत्रवत् स्वीकार किया ॥४॥ स्वयं (यह अर्घ्य लीजिये इत्यादि) बतलाकर बड़े आदर से इसका पूरा आतिथ्य किया, और महाभाग लक्ष्मण और सीता को भी तसल्ली दी ॥ ५ ॥

मूल-अनसूयां महाभागां तापसीं धर्मचारिणीम्। प्रतिगृह्णीष्व वैदेही-मब्रवीदृषिसत्तमः ॥४॥ तां तु सीता महाभागामनसूयां पतिव्रताम्। अभ्यवादयदव्यग्रा स्वं नाम समुदाहरत् ॥ ७ ॥ ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वा तां धर्मचारिणीम्। सान्त्वयन्त्यब्रवीद् वृद्धा दिष्ट्या धर्ममवेक्षसे ॥८॥ +त्यक्त्वा ज्ञातिजनं सीते मानवृद्धिं च मानिनि। अवरुद्धं वने रामं दिष्ट्या त्वमनुगच्छसि ॥९॥+नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः। यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः ॥१०॥+दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः। स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः॥११॥ +तदेवमेतं त्वमनुव्रता सती पतिप्रधाना समयानुवर्तिनी। भव स्वभर्तुः सहधर्मचारिणी यशश्च धर्मं च ततः समाप्स्यसि ॥१२॥

टीका—और उस ऋषिवर ने भाग्यवाली तपस्विनी धर्मचारिणी (अपनी पत्नी) अनुसूया को कहा, कि सीता को स्वीकार कर ॥६॥ उस भाग्यवती पतिव्रता अनसूया को सीता ने सावधानी से अपना नाम बोलते हुए अभिवादन किया॥७॥तब (पति के समान-) धर्म का अनुष्ठान करती हुई भाग्यवाली उस सीता को तसल्ली देती हुई वह वृद्धा बोली, भाग्य से तेरी दृष्टि धर्म पर है॥८॥हे सीते! बन्धुओं को छोड़ और हे मानिनि मान की वृद्धि (मैं राजसुता कैसे बन को जाऊं इस मान) को छोड़कर तू भाग्य से राम के पीछे चली है, जब वह वनवास में अवरुद्ध (मजबूर) हुआ है ॥ ९ ॥ नगर में स्थित हो वा बन में स्थित हो, अनुकूल हो वा प्रतिकूल हो, जिन

स्त्रियों को भर्ता प्यारा है, उनके बड़े फलवाले लोक होते हैं॥ १०॥ कठोर स्वभाव वाला हो, अपनी मरज़ी पर चलनेवाला वा धनों से रहित हो, तथापि आर्यस्वभाववाली स्त्रियों को पति परम देवता होता है ॥ ११ ॥ सो इसप्रकार तू इस (राम) के अनुव्रता होकर पतिप्रधान हो मर्यादा का पालन करती हुई अपने भर्ता की सहधर्मचारिणी हो, इस से तू यश को और धर्म को प्राप्त होगी ॥१२॥

सर्ग१००(व०११८,११९)सीता का सम्मान और अत्रि के आश्रम से यात्रा

मूल—सा त्वेवमुक्ता वैदेही त्वनसूयानसूयया । प्रतिपूज्य वचो मन्दं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥ नैतदाश्चर्यमार्यायां यन्मां त्वमनुभाषसे । विदितं तु ममाप्येतद्यथा नार्याः पतिर्गुरुः ॥२॥ आगच्छन्त्याश्च विजनं वनमेवं भयावहम् । समाहितं हि मे श्वश्र्वा हृदये तत्स्थिरं मम ॥ ३ ॥ पाणिप्रदानकाले च यत्पुरा त्वग्निसंनिधौ । अनुशिष्टं जनन्या मे वाक्यं तदपि मे धृतम् ॥४॥ न विस्मृतं तु मे सर्वं वाक्यैः स्वैर्धर्मचारिणि । पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद्विधीयते ॥

टीका—असूया रहित सीता को अनसूया ने ऐसा कहा, तो वह उस के वचन को आदर देकर धीरे से यों बोली ।१। आर्या (आप) के लिये यह आश्चर्य नहीं, जो आप मुझे शिक्षा देती हैं, किन्तु यह मुझे भी विदित है, कि नारी का पति गुरु होता है ।२। इस प्रकार के भयानक निर्जन वन को आते समय जो मुझे सास ने उपदेश दिया है, वह भी मेरे हृदय में स्थिर है । ३ । और इस से भी पहले हाथ पकड़ते समय जो मेरी माता ने मुझे उपदेश दिया है, वह भी मुझे याद है ।४। वह सब मुझे भूला नहीं, जो कुछ हे ब्रह्मचारिणि अपनों ने बहुत वाक्यों द्वारा मुझे बतलाया है, कि पतिसेवा से बढ़कर स्त्री के लिये कोई और तप नहीं है ॥

मूल—सावित्री पतिशुश्रूषां कृत्वा स्वर्गे महीयते । तथावृत्तिश्च याता त्वं पतिशुश्रूषया दिवम् ॥ ६ ॥ ततोऽनसूया संहृष्टा श्रुत्वोक्तं

सीतया वचः । शिरस्याघ्राय चोवाच मैथिलीं हर्षयन्त्युत ॥ ७ ॥ उपपन्नं च युक्तं च वचनं तव मैथिलि । प्रीता चास्म्युचितां सीते करवाणि प्रियं च किम् ॥ ८ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा विस्मिता मन्दविस्मया । कृतमित्यब्रवीत्सीता तपोबलसमन्विताम् ॥९॥ सा त्वेवमुक्ता धर्मज्ञा तया प्रीततराभवत् । सफलं च प्रहर्षं ते हन्त सीते करोम्यहम् ॥१०॥ इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणानि च । अङ्गरागं च वैदेहि महार्हमनुलेपनम् ॥ ११ ॥ मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत् । अनुरूपमसंक्लिष्टं नित्यमेव भविष्यति ॥ १२॥ सा वस्त्रमङ्गरागं च भूषणानि स्रजस्तथा । मैथिली प्रतिजग्राह प्रीतिदानमनुत्तमम् ॥१३॥ सा तदा समलंकृत्य सीता सुरसुतोपमा । प्रणम्य शिरसा पादौ रामं त्वभिमुखी ययौ ॥१४॥ न्यवेदयत्ततः सर्वं सीता रामाय मैथिली । प्रीतिदानं तपस्विन्या वसनाभरणस्रजाम् ॥१५॥ प्रहृष्टस्त्वभवद्रामो लक्ष्मणश्च महारथः । मैथिल्याः सत्क्रियां दृष्ट्वा मानुषेषु सुदुर्लभाम् ॥१६॥ ततः स शर्वरीं प्रीतः पुण्यां शशिनिभाननाम् । अर्चितस्तापसैः सर्वैरुवास रघुनन्दनः ॥

टीका—सावित्री पति की सेवा करके स्वर्ग में पूजित हुई है, और वैसे बर्तावबाली तू भी पतिसेवा से स्वर्ग को हस्तगत किये हुए है ।६। तब सीता के कहे वचन को सुनकर प्रसन्न हुई अनसूया सीता को सिर पर चूम कर उसे प्रसन्न करती हुई बोली ।७। हे मैथिलि तेरा वचन ठीक है, और युक्त है, मैं बड़ी प्रसन्न हुई हूं, हे सीते कहो तेरा क्या प्रिय करूं ।८। उसके वचन को सुनकर सीता हैरान हुई (अहो तप का प्रभाव कि जिससे यह राजाओं को भी देने के लिये तय्यार होते हैं इससे हैरान हुई) और मन्द मन्द मुस्कराती हुई सीता उस तपोबलवाली (अनसूया) से बोली, (आपके अनुग्रह से ही सब कुछ) कियागया है ।९। पर जब उसने उस धर्मज्ञा को ऐसे कहा, तो वह और भी अधिक प्रसन्न हुई, और

बोली इस महर्ष को हे सीते मैं सफल करती हूं।१०।यह दिव्य सुन्दर माला वस्त्र और भूषण और यह अङ्गराग (अङ्गों को रङ्गदेने वाला) और यह बहुमूल्य (सुगन्धित) अनुलेपन ।११। मुझ से दिया हे सीते तेरे अङ्गों को शोभा दे, यह सदा तेरे योग्य और सदा नया होगा ।१२। सीता ने वह वस्त्र अङ्गराग भूषण और मालाएं जो कि सर्वोत्तम प्रीतिदान था, स्वीकार किया । १३ । और सज करके देवकन्या के तुल्य सीता सिर से उसके पाओं पर प्रणाम करके राम के अभिमुख गई।१४।तब सीता ने तपस्विनी का दिया वस्त्र भूषण और मालाओं का प्रीतिदान सारा राम को निवेदन किया ।१५। सीता के इतने बड़े मान को देखकर जो मनुष्यों में बहुत दुर्लभ है राम और महारथी लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए ।१६। तब उन सब तपस्वियों से पूजा हुआ राम प्रसन्न हुआ उस चन्द्रतुल्य शोभा वाली पवित्र रात को वहां रहा ।१७।

मूल—तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामभिषिच्य हुताग्निकान् । आपृच्छेतां नरव्याघ्रौ तापसान् वनगोचरान् ॥१८॥तावूचुस्ते वनचरास्तापसा धर्मचारिणः । वनस्य तस्य संचारं राक्षसैः समभिप्लुतम् ॥१९॥ एष पन्था महर्षीणां फलान्याहरतां वने । अनेन तु वनं दुर्गं गन्तुं राघव ते क्षमम् ॥२०॥ इतीरितः प्राञ्जलिभिस्तपस्विभिर्द्विजैः कृतस्वस्त्ययनः परंतपः । वनं सभार्यः प्रविवेश राघवः सलक्ष्मणः सूर्य इवाभ्रमण्डलम् ॥२१॥

टीका—और रात के बीतने पर स्नान करके अग्निहोत्र कर चुके हुए उन वनवासी तपस्वियों से वह दोनों नरश्रेष्ठ आज्ञा मांगते भए ।१८।उन वनचारी धर्मचारी तपस्वियों ने उनको बतलाया, कि इस वन का घूमना राक्षसों के उपद्रवों से खाली नहीं ।१९। यह मार्ग है जिसमें महर्षि लोग बनमें फल लाने जाते हैं इस मार्ग से हे राघव इस दुर्गम वन में आपको जाना युक्त है ।२०। इस प्रकार तपस्वी ब्राह्मणों ने उसे कहा और हाथ जोड़कर उसके लिये स्वस्त्ययन किया, तब वह परन्तप राम पत्नी और लक्ष्मण के साहित मेघमण्डल में सूर्य की तरह(उस घने) बन में प्रविष्ट हुआ ।

॥ अयोध्या काण्ड समाप्त हुआ ॥

अरण्य-काण्ड ।

सर्ग १ (व० १) दण्डक वन में पहली रात और ऋषियों के दर्शन ।

मूल—प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान् । रामो ददर्श दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् ॥१॥ शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरं सदा । मृगैर्बहुभिराकीर्णं पक्षिसंघैः समावृतम् ॥२॥ समिद्भिस्तोयकलशैः फलमूलैश्च शोभितम् । आरण्यैश्च महावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्वृतम् ॥ ३ ॥ फलमूलाशनैर्दान्तैः चीरकृष्णाजिनाम्बरैः । सूर्यवैश्वानराभैश्च पुराणैर्मुनिभिर्युतम् ॥ ४ ॥ पुण्यैश्च नियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः । तद्ब्रह्मभवनप्रख्यं ब्रह्मघोषनिनादितम्॥५॥ ब्रह्मविद्भिर्महाभागैर्ब्राह्मणैरुपशोभितम् । तद्दृष्ट्वा राघवः श्रीमांस्तापसाश्रममण्डलम् ॥ ६ ॥ अभ्यगच्छन्महातेजा विज्यं कृत्वा महद्धनुः । दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः ॥ ७ ॥

टीका—बड़े जङ्गल दण्डकारण्य में प्रविष्ट होकर न दबने वाले राम ने तपस्वियों का आश्रम समूह देखा ॥१॥ सदा साफ सुथरे सजे हुए अङ्गनों वाला, सब जीवों के शरण (पनाह) लेने योग्य, बहुत से मृगों से भरा हुआ और पक्षी समूहों से घिरा हुआ ॥२॥ समिधाओं से, जल के कलशों से और फल मूल से सुशोभित, स्वादु फल वाले पवित्र जङ्गली महावृक्षों से युक्त ॥ ३ ॥ फल मूल के खानेवाले, अपने आपको बस में किये हुए चीर और काले मृगान के वस्त्रों वाले सूर्य और अग्नि के तुल्य बूढ़े मुनियों से युक्त ॥ ४ ॥ नियत आहारवाले पुण्यआत्मा परम ऋषियों से युक्त वह आश्रम ब्रह्मभवन के तुल्य वेद की ध्वनि से गूंजता हुआ ॥५॥ वेद के जाननेवाले महाभाग ब्राह्मणों से शोभित उस तपस्वियों के आश्रम मण्डल को देखकर महातेजस्वी श्रीमान् राम धनुष को नीचा करके उसमें प्रविष्ट

हुआ, दिव्य ज्ञान से युक्त उन महर्षियों ने जूं ही राम को देखा ॥६॥,७

मूल—मङ्गलानि प्रयुञ्जानाः प्रत्यगृह्णन्दृढव्रताः ॥८॥ रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम् । ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः ॥९॥ वैदेहीं लक्ष्मणं रामं नेत्रैरनिमिषैरिव । आश्चर्यभूतान्ददृशुः सर्वे ते वनवासिनः ॥ १० ॥ अत्रैनं हि महाभागाः सर्वभूतहिते रताः । अतिथिं पर्णशालायां राघवं संन्यवेशयन् ॥ ११ ॥ मङ्गलानि प्रयुञ्जाना मुदा परमया युताः । मूलं पुष्पं फलं सर्वमाश्रमं च महात्मनः ॥ १२॥ निवेदयित्वा धर्मज्ञास्ते प्राञ्जलयोऽब्रुवन् । नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः ॥१३॥

टीका—शो (मन्त्रों से) आशीर्वाद बोलते हुए उन दृढ़ व्रतियों ने उनको स्वीकार किया ॥८॥ उन्होंने हैरान होकर वनवासी राम के अङ्गों की संगठन, लावण्य, कोमलपन, और सुन्दर वेष देखा ॥९॥ वह वनवासी सारे सीता को लक्ष्मण को राम को नेत्र झपकने के बिना आश्चर्य की तरह देखते भए ॥ १० ॥ और सब प्राणियों के हित में रते हुए उन महाभागों ने यहां पर्णशाला में इस अतिथि राघव को ठहराया ॥११॥ और आशीर्वाद देते हुए परम हर्ष से युक्त हो मूल पुष्प फल और सारा आश्रम उस महात्मा को ॥१२॥ निवेदन करके वह धर्मज्ञ हाथ जोड़कर बोले, चाहे नगर में स्थित वा वन में स्थित आप हमारे राजा हैं ॥१३॥

सर्ग २ (व०२-४) विराध का वध ।

मूल—कृतातिथ्योऽथ रामस्तु सूर्यस्योदयनं प्रति । आमन्त्र्य स मुनीन्सर्वान्वनमेवान्वगाहत ॥१॥ सीतया सह काकुत्स्थस्तस्मिन्घोरमृगायुते । ददर्श गिरिशृङ्गाभं पुरुषादं महास्वनम् ॥२॥ वसानं चर्म वैयाघ्रं वसार्द्रं रुधिरोक्षितम् । त्रासनं सर्वभूतानां व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥३॥ स कृत्वा भैरवं नादं चालयन्निव मेदिनीम् ।

अङ्कनादाय वैदेहीमपक्रम्य तदाब्रवीत् ॥ ४ ॥ कथं तापसयोर्वां च वासः प्रमदया सह । अधर्मचारिणौ पापौ कौ युवां मुनिदूषकौ ।

टीका—आतिथ्य सत्कार पाकर अब सूर्योदय के समय राम उन सब मुनियों से आज्ञा ले वन में ही प्रविष्ट हुए ।१। सीता के साथ राम ने भयंकर मृगों से युक्त उस वन में एक बड़ी ध्वनि वाला पर्वत की चोटीकी तरह ऊंचा पुरुषभक्षी (राक्षस) देखा ।२। बाघ की खाल पहने हुए, चर्बी और रुधिर से छिड़का हुआ मुख फाड़कर सामने आते हुए काल की तरह सब भूतों का डरानेवाला ।३। वह भयंकर नाद करके मानों पृथिवी को कंपाता हुआ सीताको कमर से उठा लेजाकर*पीछे हटकर बोला ।४। कैसे तुम दोनों तपस्वी बनकर एक स्त्री के साथ रहते हो, अधर्मचारी पापी तुम कौन हो जो मुनियों पर बट्टा लगा रहे हो । ५ ।

मूल—अहं वनमिदं दुर्गं विराधो नाम राक्षसः । चरामि सायुधो नित्यमृषिमांसानि भक्षयन् ॥६॥ इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति । युवयोः पापयोश्चाहं पास्यामि रुधिरं मृधे ॥७॥ श्रुत्वा सगर्वितं वाक्यं सम्भ्रान्ता जनकात्मजा । सीता प्रवेपितोद्वेगात्प्रवाते कदली यथा ॥ ८ ॥ ततः सज्यं धनुः कृत्वा रामः सुनिशिताञ्शरान् । सुशीघ्रमभिसंधाय राक्षसं निजघान ह ॥९॥ स विद्धो न्यस्य वैदेहीं शूलमुद्यम्य राक्षसः । अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धस्तदा रामं सलक्ष्मणम् ॥१०॥ तच्छूलं वज्रसंकाशं गगने ज्वलनोपमम् । द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद रामः शस्त्रभृतां वरः ११॥

टीका—मैं विराध नाम राक्षस इस दुर्गम बन में सदा ऋषियों के मांस खाता हुआ शस्त्र सहित विरचता हूं ॥६॥ यह सुमध्या नारी मेरी भर्या होगी, और तुम दोनोंपापियों का मैं युद्ध में रुधिर पिउं-

*दण्डक में प्रवेश करते ही सीता को उठा लेजाने का निमित्त हुआ है

गा ॥७॥ इस गर्ववाले वाक्य को सुनकर जनकात्मजा सीता प्रबल वायु में कदली की तरह बड़े वेग से कांपने लगी ॥८॥ इधर राम ने चिल्ला चढाकर और उसमें तीक्ष्ण तीर जोडकर तेजी से राक्षस पर वार किया ॥९॥ तीरों से विंधा हुआ वह राक्षस सीता को छोड़कर त्रिशूल उठाकर क्रुद्ध हुआ राम और लक्ष्मण की ओर दौड़ा ॥१०॥ आकाश में अग्नि के तुल्य चमकते हुए वज्र तुल्य उसके त्रिशूल को शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ राम ने दो तीरों से टुकड़े कर दिया ॥

मूल—स वध्यमानः सुभृशं भुजाभ्यां परिगृह्य तौ । अप्रकम्प्यौ नरव्याघ्रौ रौद्रः प्रस्थातुमैच्छत ॥१२॥ तस्य रौद्रस्य सौमित्रिं सव्यं बाहुं बभञ्ज ह । रामस्तु दक्षिणं बाहुं तरसा तस्य रक्षसः ॥१३॥ स भग्नबाहुः संविग्नः पपाताशु विमूर्छितः । धरण्यां मेघसंकाशो वज्र भिन्न इवाचलः ॥१४॥ स विद्धो बहुभिर्बाणैः खड्गाभ्यां च परिक्षतः । इदं प्रोवाच काकुत्स्थं विराधः पुरुषर्षभम् ॥१५॥ हतोऽहं पुरुषव्याघ्र शक्रतुल्यबलेन वै । अवटे चापि मां राम निक्षिप्य कुशली व्रज ॥१६॥ रक्षसां गतसत्त्वानामेष धर्मः सनातनः । अवटे ये निधीयन्ते तेषां लोकाः सनातनाः ॥१७॥

टीका—अब उन दोनों अप्रकम्प्य नरश्रेष्ठों को दोनों भुजाओं से उठाकर भागने लगा ।१२। तब उस भयंकरमूर्ति राक्षस की बाईं भुजा को लक्ष्मण ने और दाईं को राम ने ज़ोर के साथ तोड़ डाला ।१३। भुजाओं के टूटजाने से घबराकर मूर्छित हुआ वह काला मेघ पृथिवी पर गिरा, जिस तरह वज्र से कटा हुआ पर्वत ।१४। बहुत बाणों से बींधा हुआ और तलवारों से क्षत (ज़खमी) हुआ विराध पुरुषश्रेष्ठ राम से यह बोला ।१५। हे पुरुषश्रेष्ठ इन्द्रतुल्य बलवाले तूने मुझे मार दिया है, अब हे राम मुझे गढ़े में फैंककर कुशल से जा ।१६। मरे हुए राक्षसों की यह सनातन मर्यादा है, जो गढे में डाले जाते हैं, उनके लोक सनातन हैं ।१७।

मूल—एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थं विराधः शरपीडितः। बभूव स्वर्गसंप्राप्तो न्यस्तदेहो महाबलः ॥१८॥ तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यं लक्ष्मणं व्यादिदेश ह। वनेऽस्मिन्सुमहाञ्श्वभ्रः खन्यतां रौद्रकर्मणः॥१९॥ प्रहृष्टरूपाविव रामलक्ष्मणौ विराधमुर्व्यां प्रदरे निपात्य तम्। ननन्दतुर्वीतभयौ महावने दिवि स्थितौ चन्द्रदिवाकराविव ॥ २० ॥

टीका—राम को यह कहकर तीरों से पीड़ित हुआ महाबली विराध देह को अमानत छोड़ स्वर्ग को प्राप्त हुआ ।१८। यह सुन राम ने लक्ष्मण को कहा, इस बन में इस भयंकर कर्मोंवाले का गढ़ा खोद ।१९। अब प्रसन्न रूप हुए राम लक्ष्मण उस विराधको पृथिवी में गढ़े के अन्दर डालकर आकाश में स्थित सूर्य चन्द्र की तरह वह दोनों भयरहित हुए उस महावन में आनन्द मनाते भए ।२०।

सर्ग ४ (व० ५,६) शरभंग के आश्रय में ऋषियों से मेल ।

मूल—हत्वा तु तं भीमबलं विराधं राक्षसं वने। आश्रमं शरभङ्गस्य राघवोऽभिजगाम ह ॥१॥ तस्य पादौ च संगृह्य रामः सीता च लक्ष्मणः। निषेदुस्तदनुज्ञाता लब्धवासा निमन्त्रिताः ॥२॥ अहं ज्ञात्वा नरव्याघ्र वर्तमानमदूरतः। ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम् ॥३॥ त्वयाहं पुरुषव्याघ्र धार्मिकेन महात्मना। समागम्य गमिष्यामि त्रिदिवं चावरं परम् ॥ ४॥ ततोऽग्निं स समाधाय हुत्वा चाज्येन मन्त्रवत्। शरभङ्गो महातेजाः प्रविवेश हुताशनम् ॥ ५ ॥

टीका—उस भयंकर बलवाले विराध राक्षस को बन में मारकर राम शरभङ्ग के आश्रम को गया ॥१॥ उसके पाओं पकड़कर राम लक्ष्मण और सीता उससे आज्ञा दिए हुए बैठ गये, ऋषि ने उन को वास दिया और भोजन दिया ।२। (और कहा) हे नरश्रेष्ठ मैं आज के दिन को निकट जानकर तुझ प्यारे अतिथि के दर्शन किये बिना ब्रह्मलोक को नहीं जाता हूं ।३। सो हे पुरुषश्रेष्ठ तुझ

महात्मा धर्मात्मा के साथ समागम करके अब वरले और परले
द्यौलोक को जाऊंगा।४। तब वह अग्नि जलाकर और घी में मन्त्रवत्
होम करके महातेजस्वी शरभङ्ग अग्नि में प्रविष्ट होगया। ५।

मूल—शरभङ्गे दिवं प्राप्ते मुनिसंघाः समागताः। अभ्यगच्छन्त काकु-
त्स्थं रामं ज्वलिततेजसम्॥६॥ सर्वे ब्राह्मया श्रिया युक्ता दृढयोग-
समाहिताः। ऊचुः परमधर्मज्ञमृषिसंघाः समागताः ॥७॥ यत्करोति
परमं धर्मं मुनिर्मूलफलाशनः। तत्र राज्ञश्चतुर्भागः प्रजा धर्मेण रक्षतः
॥८॥ सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान्। त्वंनाथोऽना-
थवद्राम राक्षसैर्हन्यते भृशम् ॥९॥ पम्पानदीनिवासानामनुमन्दा-
किनीमपि। चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत् ॥१०॥ एवं
वयं न मृष्यामो विप्रकारं तपस्विनाम्। क्रियमाणं वने घोरं रक्षो-
भिर्भीमकर्मभिः ॥११॥ ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः।
परिपालय नो राम वध्यमानान्निशाचरैः ॥१२॥ एतच्छ्रुत्वा तु काकु-
त्स्थस्तापसानांतपस्विनाम्। इदं प्रोवाच धर्मात्मा सर्वानेव तपस्विनः
॥१३॥ नैवमर्हथ मां वक्तुमाज्ञाप्योऽहं तपस्विनाम्। केवलेन स्वका-
र्येण प्रवेष्टव्यं वनं मया॥१४॥ विप्रकारमपाक्रष्टुं राक्षसैर्भवतामिमम्।
पितुस्तु निर्देशकरः प्रविष्टोहमिदं वनम् ॥१५॥ भवतामर्थसिद्ध्यर्थ-
मागतोऽहं यदृच्छया। तस्य मेऽयं वने वासो भविष्यति महाफलः।

टीका—शरभङ्ग के स्वर्ग को प्राप्त होने पर मुनिसंघ वहां इकट्ठे हुए
और जलते हुए तेजवाले काकुत्स्थवंशी राम की शरण आए।६।
सारे ब्राह्मी लक्ष्मी से युक्त, दृढ़योग से एकाग्रचित वाले ऋषिसंघ
मिलकर परम धर्मज्ञ राम से बोले।७। जो मूल फल खाकर मुनि-
जन परम धर्म करते हैं, उसमें धर्म से प्रजा की रक्षा करते हुए
राजा का चौथा भाग होता है।८। सो यह वानप्रस्थियों का बड़ा
समूह जिसमें अधिकतर ब्राह्मण हैं, आप जैसे नाथ की विद्यमानता

में अनाथों की तरह राक्षसों से अत्यन्त पीड़ित किया जारहा है ।९। पम्पा नदी पर रहनेवाले, मन्दाकिनी पर रहने वाले और चित्रकूट में रहने वाले तपस्वियों को राक्षस बहुत तंग करते हैं ।१०। इसतरह वन में भीमकर्मा राक्षसों से किया हुआ तपस्वियों का इतना घोर अनादर हम नहीं सहार सकते । ११। सो तुझ शरण के योग्य को शरण के लिये प्राप्त हुए हैं, हे राम राक्षसों से मारे जाते हुओं को बचा ।१२। तपस्वी और ऋषियों के इस वचन को सुनकर धर्मात्मा राम उन सारे तपस्वियों से यह वचन बोला ।१३। मुझे आप इसप्रकार (प्रार्थना रूप से) कहने योग्य नहीं है, तपस्वियों से मैं आज्ञा दिये जाने योग्य हूं, केवल अपने कार्य से मुझे वन में प्रवेश करना है, (तुम्हारा कार्य मेरा अपना ही कार्य है) ।१४। राक्षसों से आप के इस अनादर को मिटाने के लिये पिता की आज्ञा पालन करता हुआ इस वन में प्रविष्ट हुआ हूं ।१५। आपकी अर्थ सिद्धि के लिये मैं अचानक ही (इधर) आया हूं, सो वन में मेरा यह वास बहुत फलवाला होगा । १६ ।

सर्ग ४ (व० ७,८)सुतीक्ष्णमुनि के आश्रम में वास ।

मुल–रामस्तु सहितो भ्रात्रा सीतया च परंतपः ! सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं जगाम सह तैर्द्विजैः ॥१॥ प्रविष्टस्तु वनं घोरं बहुपुष्पफलद्रुमः । ददर्शाश्रममेकान्ते चीरमालापरिष्कृतम् ॥२ ॥ तत्रतापसमासीनं मलपङ्कजटाधारिणम् । रामः सुतीक्ष्णं विधिवत्तपोधनमभाषत ॥३॥ रामोऽहमस्मि भगवन्भवन्तं द्रष्टुमागतः । तन्माभिवद धर्मज्ञ महर्षे सत्यविक्रम ॥४॥ स निरीक्ष्य ततो धीरो रामं धर्मभृतां वरम् । समाश्लिष्य च बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत ॥५ ॥ स्वागतं ते रघुश्रेष्ठ राम सत्यभृतां वर । आश्रमोऽयं त्वयाक्रान्तः सनाथ इव सांप्रतम् ॥ ६॥ अन्वास्य पश्चिमां संध्यां तत्र वासमकल्पयत् । सुतीक्ष्णस्याश्रमे

रम्ये सीतया लक्ष्मणेन च ॥७॥ रामस्तु सहसौमित्रिः सुतीक्ष्णेनाभिपूजितः । परिणाम्य निशां तत्र प्रभाते प्रत्यबुध्यत ॥८॥ उत्थाय च यथाकालं राघवः सह सीतया । उपास्पृशत सुशीतेन तोयेनोत्पलगन्धिना ॥९॥ उदयन्तं दिनकरं दृष्ट्वा विगतकल्मषः । सुतीक्ष्णमभिगम्येदं श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन् ॥१०॥ सुखोषिताः स्म भगवंस्त्वया पूज्येन पूजिताः । आपृच्छामः प्रयास्यामो मुनयस्त्वरयन्ति नः ॥ ११ ॥

टीका--अब परन्तप राम भाई के सीता के और उन द्विजों के साथ सुतीक्ष्ण के आश्रमपद को गया ॥१॥ और बहुत पुष्प फलों के वृक्षों वाले घोर वन में प्रविष्ट होकर एकान्त में चीरमाला से सजा हुआ एक आश्रम देखा ॥२॥ वहां पद्मासन लगाकर बैठे हुए तपस्वी सुतीक्ष्ण के पास विधिवत् जाकर राम यह बोला ॥३॥ हे भगवन् मैं राम हूं, आपके दर्शन के लिये आया हूं, सो हे धर्म के जानने वाले सच्चे पराक्रमवाले महर्षि मुझ से बात कीजिये (प्रायः यह ऋषि योग में लगा हुआ चुप रहा करता था, इसलिये यह प्रार्थना की है) ॥४॥ तब वह ज्ञानी धर्मधारियों में श्रेष्ठ राम को देखकर भुजाओं से आलिङ्गन करके यह वचन बोला ॥५॥ हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ हे रघु श्रेष्ठ तेरा आना शुभ हो, आपके पदार्पण से यह आश्रम अब सनाथ हुआ है ॥६॥ अब पश्चिम संध्या उपासकर वहां सुतीक्ष्ण के रम्य आश्रम में सीता और लक्ष्मण के साथ वास किया ॥७॥ राम लक्ष्मण सहित सुतीक्ष्ण से पूजित हुआ वहां रात बिताकर प्रभात के समय उठा ॥८॥ ठीक समय पर उठकर राम ने सीता सहित कमल की गन्धवाले ठण्डे जल से स्नान सन्ध्या किया ॥९॥ और तब वह तीनों निष्पाप सूर्य को उदय होता देखकर सुतीक्ष्ण के पास जाकर यह मधुर वचन बोले ॥१०॥ भगवन् आप जो हमारे पूज्य हैं, उनसे पूजित हुए हम आनन्द से रात रहे

हैं, अब आज्ञा मांगते हैं, जाएंगे, मुनि हम जल्दी करा रहे हैं ॥११॥

मूल—त्वरामहे वयं द्रष्टुं कृत्स्नमाश्रममण्डलम् । ऋषीणां पुण्यशीलानां दण्डकारण्यवासिनाम् ॥१२॥ अभ्यनुज्ञातुमिच्छामः सहैभिर्मुनिपुंगवैः । अविषह्यातपो यावत्सूर्यो नातिविराजते ॥१३॥ तावदिच्छामहे गन्तुमित्युक्त्वा चरणौ मुनेः । ववन्दे सहसौमित्रिः सीतया सह राघवः ॥१४॥ तौ संस्पृशन्तौ चरणावुत्थाप्य मुनिपुंगवः । गाढमाश्लिष्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥१५॥ अरिष्टं गच्छ पन्थानं राम सौमित्रिणा सह । सीतया चानया सार्धं छाययेवानुवृत्तया ॥१६॥ पश्याश्रमपदं रम्यं दण्डकारण्यवासिनाम् । एषां तपस्विनां वीर तपसा भावितात्मनाम् ॥१७॥ सुप्राज्यफलमूलानि पुष्पितानि वनानि च । प्रशान्तमृगयूथानि शान्तपक्षिगणानि च ॥१८॥ फुल्लपङ्कजखण्डानि प्रसन्नसलिलानि च । कारण्डवविकीर्णानि तटाकानि सरांसि च ॥१९

टीका—और दण्डकारण्य में रहनेवाले पुण्य शील ऋषियों के इस सम्पूर्ण आश्रम मण्डल को देखने की हमारी भी बड़ी रुचि है ॥१२॥ इन श्रेष्ठ मुनियों के सहित हम आज्ञा मांगते हैं, जब तक असह्य धूपवाला सूर्य बहुत नहीं चमकता है ॥१३॥ तब तक हम चलना चाहते हैं, यह कहकर लक्ष्मण और सीता समेत रामने मुनि के चरण वन्दन किये ॥१४॥ चरणों को छूते हुए दोनों भाइयों को उठाकर मुनिश्रेष्ठ ने गाढ़ आलिङ्गन करके स्नेह भरा यह बचन कहा ॥१५॥ हे राम लक्ष्मण के सहित और छाया की तरह साथ चलती हुई सीता के साथ तेरा मार्ग निरुपद्रव हो ॥१६॥ तप से शुद्धात्मा दण्डकारण्य वासी इन तपस्वियों के हे वीर पूज्य आश्रमों को देख ॥१७॥ जिनमें बहुत फल फूल हैं, फूले हुए बन हैं, उत्तम मृगयूथ हैं, और शान्त पक्षिगण हैं ॥ १८ ॥ फूले हुए कमल समूह हैं, निर्मल जल हैं, और तालाब और सरोवर मुरगावियों से व्याप्त हैं ॥ १९ ॥

मूल—द्रक्ष्यसे दृष्टिरम्याणि गिरिप्रस्रवणानि च । रमणीयान्यरण्यानि मयूराभिरुतानि च ॥२०॥ गम्यतां वत्स सौमित्रे भवानपि च गच्छतु। आगन्तव्यं च ते दृष्ट्वा पुनरेवाश्रमं मम ॥२१॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः । प्रदक्षिणं मुनिं कृत्वा प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥२२ ततः शुभतरे तूणी धनुषी चायतेक्षणा । ददौ सीता तयोर्भ्रात्रोः खड्गौ च विमलौ ततः ॥२३॥ आबध्य च शुभे तूणी चापे चादाय सस्वने । निष्क्रान्तावाश्रमाद्गन्तुमुभौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥ २४ ॥

टीका—दृष्टि को लुभानेवाले पर्वतों के झरने और, रमणीय वनों को देखोगे और मोरों के शब्द सुनोगे ।२। जाइये बेटा और लक्ष्मण तुम भी जाओ, यह सब दृश्य देखकर फिर इस आश्रम में आना ।२१। ऐसा कहने पर तथास्तु कहकर लक्ष्मण समेत राम मुनि की प्रदक्षिणा करके चलने को तय्यार हुआ ।२२। तब विशाल नेत्रों-वाली सीता ने शुभतर दोनों भत्थे (तर्कश) और दोनों धनुष और चमकती हुई दोनों तलवारें उन दोनों भाइयों को दीं ।२३। और राम लक्ष्मण उन दोनों भत्थों और धनुषों को बान्धकर चलने के लिये आश्रम से बाहिर निकले । २४ ।।

सर्ग ९ (व० ९) सीता का हित से भरा उपदेश।

मूल—सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातं प्रस्थितं रघुनन्दनम् । हृद्यया स्निग्धया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥१॥ +त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवन्त्युत । मिथ्यावाक्यं तु परमं तस्माद्गुरुतरावुभौ ॥२॥ +परदा-राभिगमनं विना वैरं च रौद्रता । मिथ्या वाक्यं न ते भूतं न भविष्यति राघव ॥३॥+कुतोऽभिरूपणं स्त्रीणां परेषां धर्मनाशनम् । तव नास्ति मनुष्येन्द्र न चाभूत्ते कदाचन ॥४॥ +मनस्यपि तथा राम न चैत-द्विद्यते क्वचित् । स्वदारनिरतश्चैव नित्यमेव नृपात्मज ॥५॥ धर्मिष्ठः सत्यसंधश्च पितुर्निर्देशकारकः । त्वयि धर्मश्च सत्यं च त्वयि सर्वं

प्रतिष्ठितम् ॥६॥ तृतीयं यदिदं रौद्रं परप्राणाभिहिंसनम् । निर्वैरं क्रियते मोहात्तच्च ते समुपस्थितम् ॥७॥ प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम् । ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम् ॥८॥

टीका—सुतीक्ष्ण से अनुज्ञा दिये हुए जब राम चल पड़े, तो सीता-प्यारी स्नेह भरी वाणी से भर्ता से यों बोली ॥१॥ काम से उत्पन्न होनेवाले तीन ही व्यसन हुआ करते हैं, उनमें मिथ्या वाक्य बड़ा भारी व्यसन है, और अगले दो उससे भी भारी हैं ॥२॥ परस्त्री-गमन और बिना वैर के रुद्रभाव । इनमें से मिथ्या वाक्य तो हे राघव न आपके हुआ, न होगा ॥३॥ धर्म का नाश करने वाली परस्त्री की अभिलाषा भी तुझ में कहां, यह हे मनुष्यों के मालिक न तुझ में कभी हुई है, न है ॥४॥ मनमें भी हे राम यह आपके कभी नहीं विद्यमान होसकती, हे नृपसुत आप सदा ही अपनी स्त्री में प्रमवाले हैं ॥५॥ आप धर्मिष्ठ, सच्ची प्रतिज्ञावाले, पिता के आज्ञाकारी हैं, आप में धर्म और सचाई है, आप में सब कुछ स्थित है ॥६॥ पर तीसरा यह रुद्रभाव जो दूसरे के प्राणों की हिंसा है, जो बिना वैर के (अपनों के) मोह से की जाती है, वह आपके सामने आई है ॥७॥ हे वीर दण्डकारण्य वासी ऋषियों की रक्षा के अर्थ आप ने युद्ध में राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा की है ॥८॥

मूल—एतन्निमित्तं च वनं दण्डका इति विश्रुतम् । प्रस्थितस्त्वं सह भ्रात्रा धृतबाणशरासनः ॥९॥ ततस्त्वां प्रस्थितं दृष्ट्वा मम चिन्ताकुलं मनः । त्वद्वृत्तं चिन्तयन्त्या वै भवेन्निःश्रेयसं हितम् ॥१०॥ नहि मे रोचते वीर गमनं दण्डकान्प्रति । कारणं तत्र वक्ष्यामि वदन्त्याःश्रूयतां मम ॥११॥ त्वं हि बाणधनुष्पाणि भ्रात्रा सह वनं गतः । दृष्ट्वा वनचरान्सर्वान्कच्चित् कुर्याः शरव्ययम् ॥ १२ ॥ +क्षत्रियाणामिह धनुर्हुताशस्येन्धनानि च । समीपतः स्थितं तेजो बलमुच्छ्रयते

भृशम ॥ १३ ॥ स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां न शिक्षये । न कथंचन सा कार्या गृहीतधनुषा त्वया ॥ १४ ॥ बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राक्षसान्दण्डकाश्रितान् । अपराधं विना हन्तुं लोको वीर न मंस्यते ॥१५॥ +क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम् । धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम् ॥ १६ ॥

टीका—इस निमित्त आप धनुषबाण धारकर भाई सहित दण्डक वन को प्रस्थित हुए हैं ॥९॥ इसतरह प्रस्थित हुए आपको देखकर आपके स्वभाव (आप प्रतिज्ञा को अवश्य पूरा करते हैं इस स्वभाव) को सोचकर मेरा मन चिन्ता से व्याकुल होरहा है, आपका कल्याण और हित चाहती हुई ॥१०॥ मुझे हे वीर दण्डक की ओर जाना पसन्द नहीं, इसमें कारण कहूंगी सो सुनिये ॥११॥ आप धनुषबाण लेकर भाई सहित बनमें फिरते हुए बनचारियों को देखकर तीर खर्च करेंगे ही॥१२॥क्षत्रियों के पास धनुष और अग्नि के पास स्थित इन्धन बल और तेज को अत्यन्त बढ़ा देता है ॥१३॥ स्नेह से और बहुमान से आपको स्मरण कराती हूं, उपदेश नहीं देती, आपको धनुष पकड़कर हिंसा नहीं करनी चाहिये ॥१४॥ विना वैर दण्डक में रहने वाले राक्षसों को मारने की यह बुद्धि है, हे वीर विना अपराध मारना लोक अच्छा नहीं समझेंगे ॥१५॥ बनमें नियतात्मा क्षत्रिय वीरों को धनुष से इतना ही प्रयोजन है, कि आर्तों की रक्षा करना ॥१६॥

मूल—क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्रं तपः क्व च । व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तु पूज्यताम् ॥१७॥+धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम् । धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ॥१८+आत्मानं नियमैस्तैस्तैः कर्षयित्वा प्रयत्नतः । प्राप्यते निपुणैर्धर्मो न सुखाल्लभते सुखम् ॥१९॥ नित्यं शुचिमतिः सौम्य चर धर्मं तपोवने । सर्वं तु विदितं तुभ्यं त्रैलोक्यमपि तत्त्वतः ॥२०॥ स्त्रीचापलादेत-

दुपाहृतं मे धर्मं च वक्तुं तव कः समर्थः। विचार्य बुद्धया तु सहानुजेन यद्रोचते तत्कुरु मा चिरेण ॥२१॥

टीका—कहां शस्त्र, कहां वन, कहां क्षात्रियभाव, कहां तप, मुझे तो यह परस्पर विरुद्ध प्रतीत होता है, सो आप तपोवन का धर्म सेवन कीजिये।१७। धर्म से अर्थ होता है, धर्म से सुख होता है, धर्म से सब कुछ मिलता है, यह जगत् धर्मसार है।१८। निपुण पुरुष प्रयत्न के साथ अपने आपको उन २ नियमों से तपस्वी बनाकर धर्मलाभ करते हैं, सुख से सुख नहीं मिलता है।१९। सो हे सौम्य !आप सदा शुद्धमति होकर तपोवन में धर्माचरण करें।२० स्त्रीपन की चपलता से मैंने यह बतलाया है, धर्म कहने के आपको कौन समर्थ है, छोटे भाई के साथ बुद्धि से विचार कर जो पसन्द है वह जल्दी कीजिये। २१।

सर्ग ६ (व० १०) राम का उत्तर

मूल—वाक्यमेतत्तु वैदेह्या व्याहृतं भर्तृभक्तया। श्रुत्वा धर्मे स्थितो रामः प्रत्युवाचाथ जानकीम् ॥१॥ हितमुक्तं त्वया देवि स्निग्धया सदृशं वचः। कुलं व्यपदिशन्त्या च धर्मज्ञे जनकात्मजे ॥२॥+किं नु वक्ष्याम्यहं देवि त्वयैवोक्तमिदं वचः। क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति ॥३॥ ते चार्ता दण्डकारण्ये मुनयः संशितव्रताः। मां सीते स्वयमागम्य शरण्यं शरणं गताः॥४॥ वसन्तः कालकालेषु वने मूलफलाशनाः। न लभन्ते सुखं भीरु राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ॥५॥ मया तु वचनं श्रुत्वा तेषामेव मुखाच्च्युतम्। कृत्वा वचनशुश्रूषां वाक्यमेतदुदाहृतम् ॥६॥ प्रसीदन्तु भवन्तो मे ह्रीरेषा तु ममातुला। यदीदृशैरहं विप्रैरुपस्थेयैरुपास्थितः ॥७॥ किं करोमीति च मया व्याहृतं द्विजसंनिधौ। सर्वैरेव समागम्य वागियं समुदाहृता ॥८॥

टीका—सीता से पतिभक्ति से कहे इस वचन को सुनकर धर्म में

स्थित राम ने यह उत्तर दिया ।१। स्नेह से भरी तूने हे देवी! हित कहा है, और हे धर्मज्ञे जनकात्मजे ! कुल को बतलाती हुई तूने सदृश वचन (क्षत्रिय का धर्म आर्त रक्षा) कहा है ।२। मैं क्या कहूं, हे देवि, तूने ही यह वचन कहा है, कि क्षत्रिय धनुष को धारण इसलिये करते है, कि कहीं आर्त्तशब्द न हो ।३। और यह दण्डकारण्य के तीक्ष्णव्रतों वाले मुनि आर्त हुए हे सीते आप मेरे पास आए हैं और मुझे शरण के योग्य जान शरणगत हुए हैं॥ ४ ॥ यह सदा बन में फल मूल खाकर रहते हुए हे भीरु क्रूरकर्मा राक्षसों से दुःख उठा रहे हैं ॥ ५ ॥ मैंने तो इन्हीं के मुख से निकले वचन को सुन कर इनके वचन का आदर करके यह वाक्य कहा है ॥ ६ ॥ कि आप मुझ पर प्रसन्न हों, मुझे यह भारी लज्जा है, जब कि ऐसे ब्राह्मण आप मेरे पास आए हैं, जिन के पास मुझे जाना चाहिये था ॥ ७ ॥ क्या आज्ञा है, यह मैंने ब्राह्मणों के सन्मुख कहा, तिस पर उन सब ने मिल कर यह बात कही ॥ ८ ॥

मूल—राक्षसैर्दण्डकारण्ये बहुभिः कामरूपिभिः । आर्दिताः स्म भृशं राम भवान्नस्तत्र रक्षतु ॥ ९ ॥ मया चैतद्वचः श्रुत्वा कार्त्स्न्येन परिपालनम् । ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजे ॥ १० ॥ +संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम् । मुनीनामन्यथा कर्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा ॥ ११ ॥ +अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणम् । न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥ १२ ॥ तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम् । अनुक्तेनापि वैदेहि प्रतिज्ञाय कथं पुनः ॥ १३ ॥ मम स्नेहाच्च सौहर्दादिदमुक्तं त्वया वचः । परितुष्टोऽस्म्यहं सीते न ह्यनिष्टोऽनुशास्यते ॥ १४ ॥ सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव शोभने । सधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा सीतां प्रियांमैथिलराजपुत्रीम् । रामो

धनुष्मान्सह लक्ष्मणेन जगाम रम्याणि तपोवनानि ॥१६॥

टीका--दण्डकारण्य में कामरूपी बहुत से राक्षसों से हम पीड़ित होरहे हैं, इस में तुम हे राम हमारे रक्षक हो ॥ ९ ॥ और मैंने यह वचन सुन कर हे सीते दण्डकारण्य में ऋषियों को पूरी तरह पालन की प्रतिज्ञा की ॥१०॥ प्रतिज्ञा करके मैं जीते जी मुनियों से की प्रतिज्ञा को अन्यथा नहीं कर सक्ता हूं मुझे सत्य सदा प्यारा है ॥ ११ ॥ मैं जीवन को त्याग दूं तुझ को भी हे सीते लक्ष्मण समेत त्याग दूं, पर प्रतिज्ञा कर के कभी नहीं त्यागूं, विशेषतः ब्राह्मणों के लिये ॥ १२ ॥ हे वैदेहि मुझे ऋषियों का पालन बिन कहे भी अवश्य करना चाहिये, क्या फिर प्रतिज्ञा करके ॥ १३ ॥ मेरे स्नेह से और सौहार्द से तू ने यह वचन कहा है, मैं प्रसन्न हूं हे सीते प्यारे को ही शिक्षा दी जाती है ॥ १४ ॥ हे शोभने यह तेरे कुल के सदृश है और अनुरूप है तू मेरी सहधर्मचारिणी मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी है ॥ १५ ॥ मैथिलराजा की पुत्री और अपनी प्यारी को यह वचन कह कर धनुर्धारी महात्मा राम लक्ष्मण सहित रमणीय तपोवनो को गया ॥ १६ ॥

सर्ग७(व० ११) रामकी अगस्त्यमुनि के दर्शनको जानेकी आज्ञा मांगना॥

मूल--अग्रतः प्रययौ रामः सीता मध्ये सुशोभना । पृष्ठतस्तु धनुष्पाणिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ॥ १ ॥ जगाम चाश्रमांस्तेषां पर्यायेण तपस्विनाम् । येषामुषितवान्पूर्वं सकाशे स महास्त्रवित् ॥ २ ॥ क्वचित्परिदशान्मासानेकसंवत्सरं क्वचित् । क्वचिच्च चतुरो मासान्पञ्च षट् च परान्क्वचित् ॥ ३ ॥ तत्र संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषुवै रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश ॥ ४ ॥ परिसृत्य च धर्मज्ञो राघवः सह सीतया । सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं पुनरेवाजगाम ह ॥ ५ ॥

स तमाश्रममागम्य मुनिभिः परिपूजितः । तत्रापि न्यवसद्रामः किंचित्कालमरिंदमः ॥६॥ अथाश्रमस्थो विनयात्कदाचित्तं महामुनिम् । उपासीनः स काकुत्स्थः सुतीक्ष्णमिदमब्रवीत् ॥ ७ ॥ अस्मिन्नरण्ये भगवन्नगस्त्यो मुनिसत्तमः । वसतीति मया नित्यं कथाः कथयतां श्रुतम् ॥ ८ ॥ न तु जानामि तं देशं वनस्यास्य महत्तया । कुत्राश्रमपदं रम्यं महर्षेस्तस्य धीमतः ॥ ९ ॥ अगस्त्यमभिगच्छेयमभिवादयितुं मुनिम् । मनोरथो महानेष हृदि संपरिवर्तते ॥ १० ॥ इति रामस्य स मुनिः श्रुत्वा धर्मात्मनो वचः । सुतीक्ष्णः प्रत्युवाचेदं प्रीतो दशरथात्मजम् ॥ ११ ॥ अहमप्येतदेव त्वां वक्तुकामः सलक्ष्मणम् । अगस्त्यमभिगच्छेति सीतया सह राघव ॥ १२ ॥ दिष्ट्या त्विदानीमर्थेऽस्मिन्स्वयमेव ब्रवीषि माम् । अयमाख्यामि ते राम यत्रागस्त्यो महामुनिः ॥ १३ ॥ योजनान्याश्रमात्तात याहि चत्वारि वै ततः । दक्षिणेन महाञ्छ्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः ॥ १४ ॥ स्थलीप्रायवनोद्देशे पिप्पलीवनशोभिते । बहुपुष्पफले रम्ये नानाविहगनादिते ॥ १५ ॥ पद्मिन्यो विविधास्तत्र प्रसन्नसलिलाशयाः । हंसकारण्डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ।१६। तत्रैकां रजनीं व्युष्य प्रभाते राम गम्यताम् । दक्षिणां दिशमास्थाय वनखण्डस्य पार्श्वतः ॥१७॥ तत्रागस्त्याश्रमपदं गत्वा योजनमन्तरम् । रमणीये वनोद्देशे बहुपादपशोभिते ॥ १८ ॥ रंस्यते तत्र वैदेही लक्ष्मणश्च त्वया सह । स हि रम्यो वनोद्देशो बहुपादपसंयुतः ॥ १९ ॥

टीका आगे २ राम चले, मध्य में सुशोभना सीता, और लक्ष्मण धनुष हाथ में लेकर पीछे २ चला॥ १ ॥बारी २ से उन तपस्वियों के आश्रमों में गया, जिन के पास वह महास्त्रवेत्ता पहले (शरभंग के आश्रम में वा अन्यत्र) रहा था॥ २ ॥ कहीं दस महीने कहीं एक बरस, कहीं चार महीने, कहीं पांच, छः सात महीने ॥३॥

वहां मुनियों के आश्रम में वास करते हुए और सब प्रकार की अनुकूलता से रमण करते हुए उस को दस बरस बीत गए ॥ ४ ॥ तब वह धर्मज्ञ राम फिर लौट कर सीता समेत सुतीक्ष्ण के आश्रम में फिर आया ॥ ५ ॥ उस आश्रम में आकर मुनियों से पूजित हुए शत्रुओं के सिधाने वाले राम ने वहां भी कुछ काल निवास किया ॥ ६ ॥ अब एक दिन आश्रम में महामुनि के पास बैठा हुआ राम विनय से बोला ॥ ७ ॥ इस वन में हे भगवन् मुनिवर अगस्त्य रहता है, यह मैं सदा उन की कथाएं कहते हुओं से सुनता हूं ॥ ८ ॥ किन्तु जहां उस बुद्धिमान् महर्षि का सुहावना आश्रम-पद है, उस जगह को नहीं जानता हूं, क्योंकि यह वन बहुत बड़ा है ॥ ९ ॥ अगस्त्य मुनि को अभिवादन के लिये उनके पास जाऊं यह मेरे हृदय में बहुत बड़ा मनोरथ है ॥ १० ॥ धर्मात्मा राम के इस वचन को सुनकर वह सुतीक्ष्णमुनि प्रसन्न हुआ राम से यह बोला ॥११॥ मैं भी तुझे कहना चाहता था, कि हे राघव लक्ष्मण और सीता समेत अगस्त्य के भी पास जाओ ॥ १२ ॥ भाग्य से इस विषय में तूने आप ही मुझे कहा है, सो यह तुझे बतलाता हूं हे राम जहां अगस्त्य मुनि है ॥ १३ ॥ हे तात इस आश्रम से चार योजन दक्षिण की ओर जाओ, वहां अगस्त्य के भाई का शोभा वाला बड़ा आश्रम है ॥ १३ ॥ वन की ऐसी जगह पर जो पिप्पली वनों से शोभायमान, बहुत पुष्पफलोंवाला, नाना पक्षियों से गूंजता हुआ, रमणीय बहुत से स्वाभाविक स्थलों वाला है ॥ १५ ॥ वहां अनेक प्रकार के कमल हैं और हंस मुरगाबियों से व्याप्त चकवों से शोभायमान जल के निर्मल स्थान हैं ॥१६॥ वहां एक रात रहकर हे राम दक्षिण दिशा का सहारा लिये वनसमूह के किनारे २ जाना ॥१७॥ वहां एक योजन दूर जाकर बहुत वृक्षों

से शोभित, वन के रमणीय स्थान में अगस्त्य का आश्रमपद है ॥ १८ ॥ वहां तेरे साथ सीता और लक्ष्मण आनन्द मनाएंगे, वह वन का हिस्सा बहुत वृक्षों से युक्त बड़ा सुहावना है ॥ १९ ॥

सर्ग ८ (व० ११) अगस्त्य के भाई के दर्शन करके अगस्त्य के आश्रम में जाना ॥

इति रामो मुनेः श्रुत्वा सह भ्रात्राभिवाद्य च । प्रतस्थेऽगस्त्य-मुद्दिश्य सानुजः सह सीतया ॥ १ ॥ पश्यन्वनानि चित्राणि पर्व-तांश्चाभ्रसंनिभान् । सरांसि सरितश्चैव पथि मार्गवशानुगान् ॥२॥ सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेन गत्वा तेन पथा सुखम् । इदं परमसंहृष्टो वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ३ ॥ एतदेवाश्रमपदं नूनं तस्य महात्मनः । अगस्त्यस्य मुनेर्भ्रातुर्दृश्यते पुण्यकर्मणः ॥४॥ यथा हीमे वनस्यास्य ज्ञाताः पथि सहस्रशः । संनताः फलभारेण पुष्पभारेण च द्रुमाः ॥ ५ ॥ पिप्पलीनां च पक्वानां वनादस्मादुपागतः । गन्धोऽयं पव-नोत्क्षिप्तः सहसा कटुकोदयः ॥ ६ ॥ तत्र तत्र च दृश्यन्ते संक्षिप्ताः काष्ठसञ्चयाः । लूनाश्च परिदृश्यन्ते दर्भा वैदूर्यवर्चसः ॥७॥ एतच्च वनमध्यस्थं कृष्णाभ्रशिखरोपमम् । पावकस्याश्रमस्थस्य धूमाग्रं संप्रदृश्यते ॥८॥ ततः सुतीक्ष्णस्यवचो यथा सौम्य मया श्रुतम् । अगस्त्यस्याश्रमो भ्रातुर्नूनमेष भविष्यति ॥ ९ ॥ एवं कथयमानस्य तस्य सौमित्रिणा सह । रामस्यास्तं गतः सूर्यः सन्ध्याकालोऽभ्य-वर्तत ॥ १० ॥ उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सह भ्रात्रा यथाविधि । प्रविवेशाश्रमपदं तमृषिं चाभ्यवादयत् ॥ ११ ॥ सम्यक्प्रतिगृहीतस्तु मुनिना तेन राघवः । न्यवसत्तां निशामेकां प्राश्य मूलफलानि च ॥ १२ ॥ तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामुदिते रविमण्डले । भ्रातरं तमग-स्त्यस्य आमन्त्रयत राघवः ॥ १३ ॥ अभिवादये त्वां भगवन् सुखमस्म्युषितो निशाम् । आमन्त्रये त्वां गच्छामि गुरुं ते द्रष्टुमग्र-

जम् ॥ १४ ॥ गम्यतामिति तेनोक्तो जगाम रघुनन्दनः । यथादिष्टेन मार्गेण वनं तत्रावलोकयन् ॥ १५ ॥ पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लता-भिरुपशोभितान् । ददर्श रामः शतशस्तत्र कान्तारपादपान् ॥१६॥ हस्तिहस्तावमृदितान्वानरैरुपशोभितान् । मत्तैः शकुनिसंघैश्च शतशः प्रतिनादितान् ॥ १७ ॥ ततोऽब्रवीत्समीपस्थं रामो राजीवलोचनः । पृष्ठतोऽनुगतं वीरं लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥ १८ ॥ स्निग्धपत्रा यथा वृक्षा यथा शान्ता मृगद्विजाः । आश्रमो नातिदूरस्थो महर्षेर्भावि-तात्मनः ॥ १९ ॥ निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया । दक्षिणा दिक्कृता येन शरण्या पुण्यकर्मणा ॥ २० ॥ तस्येदमाश्र-मपदं प्रभावाद्यस्य राक्षसैः । दिगियं दक्षिणात्रासाद्दृश्यते नोप-भुज्यते ॥ २१ ॥ यदा प्रभृति चाक्रान्ता दिगियं पुण्यकर्मणा । तदा प्रभृति निर्वैराः प्रशान्ता रजनीचराः ॥ २२ ॥ अयं दीर्घायुषस्तस्य लोके विश्रुतकर्मणः । अगस्त्यस्याश्रमः श्रीमान्विनीतमृगसेवितः ॥ २३ ॥ एष लोकार्चितः साधुर्हिते नित्यं रतः सताम् । अस्मान-धिगतानेष श्रेयसा योजयिष्यति ॥ २४ ॥ +नात्र जीवेन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः । नृशंसः पापवृत्तो वा मुनिरेष तथाविधः ॥ २५ ॥ अत्र देवाश्च यक्षाश्च नागाश्च पतगैः सह । वसन्ति नियता-हारा धर्ममाराधयिष्णवः ॥ २६ ॥ आगताः स्माश्रमपदं सौमित्रे प्रविशाग्रतः । निवेदयेह मां प्राप्तमृषये सह सीतया ॥ २७ ॥

टीका--मुनि से यह सुनकर राम भाई के साथ मुनि को अभिवादन करके छोटे भाई और सीता के साथ अगस्त्य के दर्शन को रवाना हुआ ॥ १ ॥ रस्ते में मार्ग के क्रम से आए विचित्र बनों को, मेघ तुल्य पर्वतों को, सरोवरों को और नदियों को देखता हुआ ॥ २ ॥ सुतीक्ष्ण से बतलाए मार्ग से आनन्द पूर्वक जाता हुआ राम प्रसन्न हो लक्ष्मण से यह वाक्य बोला ॥ ३ ॥ अगस्त्य मुनि के

पुण्यकर्मा महात्मा भाई का आश्रमपद यह दीखता है ॥ ४ ॥ जैसे कि इस वन के मार्ग में सहस्रोंप्रसिद्ध वृक्ष फल भार से और पुष्प भार से झुके हुए हैं ॥ ५ ॥ पकी हुई पिप्पलियों का तीक्ष्ण गन्ध पवन से उड़ाया हुआ इस वन से आरहा है ॥ ६ ॥ जहां तहां इकट्ठे किये हुए लकड़ियों के भार दीखते हैं, और सञ्जमणि के तुल्य शोभावाली कटी हुई कुशाएं दीखती हैं ॥ ७ ॥ और यह वन के मध्य में आश्रमस्थ अग्नि की धुएं की चोटी, काले मेघ की चोटी के तुल्य दीखती है॥ ८॥ सो हे सौम्य जैसा मैंने सुतीक्ष्ण का वचन सुना है उस के अनुसार निःसन्देह यह अगस्त्य के भाई का आश्रम होगा ॥९॥ लक्ष्मण के साथ इत्यादि बातें कहते हुए राम को सूर्य अस्त होगया और सन्ध्याकाल प्रवृत्त हुआ ॥१०॥ भाई के साथ यथाविधि पश्चिम सन्ध्या को उपासकर आश्रमपद में प्रविष्ट हुआ और उस ऋषि को अभिवादन किया ॥ ११ ॥ उस मुनि से प्रेम से स्वीकार किया हुआ राम फल मूल खाकर वह रात वहां रहा ॥ १२ ॥ रात के व्यतीत होने और सूर्यमण्डल के उदय होने पर राम ने अगस्त्य के भाई से आज्ञा मांगी ॥ १३ ॥ हे भगवन् आपको अभिवादन करता हूं, सुख से रात रहा हूं, अब आपसे आज्ञा मांगता हूं, आपके बड़े भाई के दर्शन को जाता हूं १४ ॥ जाइये उसके ऐसा कहने पर राम बतलाए मार्ग से उस बन को देखता हुआ गया ॥ १५ ॥ वहां (मार्ग में) चोटियों पर फूलों से लदी हुई बेलों से सजे हुए स्वयं भी फूले हुए सैंकड़ों जंगली वृक्ष देखे ॥ १६ ॥ सैंकड़ों हाथियों के सूंडों से तोड़े हुए, सैंकड़ों वानरों से शोभायमान और सैंकड़ों मस्त पक्षी समूहों से गूंजते वृक्ष देखे ॥ १७ ॥ तदनन्तर कमलनेत्र राम ने अपने समीप २ पीछे चलते हुए लक्ष्मी के बढ़ानेवाले वीर लक्ष्मण से कहा ॥ १८ ॥

जैसा कि अब वृक्ष स्निग्ध पत्तों वाले हैं और मृग और पक्षी शान्त दीखते हैं (इससे प्रतीत होता है) उस शुद्धात्मा महर्षि का आश्रम अब बहुत दूर नहीं है॥ १९॥ जिसने कि लोगों के हित की कामना से बल से मौत (आर्यों के मृत्यु रूप राक्षसों) को दबाकर दक्षिण दिशा शरण लेने योग्य बनादी है ॥२० ॥ उसका यह आश्रमपद है, जिसके प्रभाव से राक्षस मारे डर के दक्षिण दिशा को देखते हैं, भोगाते नहीं हैं॥ २१॥ जिस समय से लेकर इस पुण्यकर्मा ने यह दिशा अपने बस में की है, उस समय से लेकर राक्षस वैर त्यागकर शान्त हुए हैं॥ २२॥ यह इस लोक में विख्यात कर्मोंवाले दीर्घायु अगस्त्य का श्रीमान् आश्रम है, जहां के सब वन्य पशु विनीत हैं ॥ २३॥ यह महात्मा लोक में पूजित है, सदा सत्पुरुषों के हित में रत है, हमें भी अपने पास आयों को कल्याण से युक्त करेगा॥ २४॥ यह मुनि इस प्रकार का है, कि यहां झूठ बोलनेवाला, निर्दय, धूर्त, घातुक, पापाचरण वाला पुरुष जीता नहीं रह सकता २५ ॥ यहां देवता यक्ष नाग और पतग नियत आहार वाले धर्म सेवन की इच्छा से बसते हैं॥ २६॥ आगये हैं हम आश्रमपद में, हे लक्ष्मण आगे प्रवेशकर और सीता के साथ मेरा आना ऋषि को निवेदन कर॥ २७॥

सर्ग ९ (व० १२) अगस्त्य के दर्शन और शस्त्रों का ग्रहण॥

मूल—स प्रविश्याश्रमपदं लक्ष्मणो राघवानुजः। अगस्त्य शिष्यमासाद्य वाक्यमेतदुवाचह ॥ १॥ राजा दशरथो नाम ज्येष्ठस्तस्य सुतो बली। रामः प्राप्तो मुनिं द्रष्टुं भार्यया सह सीतया ॥ २॥ लक्ष्मणो नाम तस्याहं भ्राता त्ववरजो हितः। द्रष्टुमिच्छामहे सर्वे भगवन्तं निवेद्यताम्॥३॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य तपोधनः। तथेत्युक्त्वाग्निशरणं प्रविवेश निवेदितुम्॥४॥ स प्रविश्य मुनिश्रेष्ठं

तपसा दुष्प्रधर्षणम् । कृताञ्जलिरुवाचेदं रामागमनमञ्जसा ॥५॥ पुत्रौ दशरथस्येमौ रामो लक्ष्मण एव च । प्रविष्टावाश्रमपदं सीतया सह भार्यया ॥६॥ द्रष्टुं भवन्तमायातौ शुश्रूषार्थमरिंदमौ॥७॥ ततः शिष्या-दुपश्रुत्य प्राप्तं रामं सलक्ष्मणम् । वैदेहीं च महाभागामिदं वचनमब्रवीत्।

टीका—राम का छोटा भाई लक्ष्मण आश्रमपद में प्रवेश कर अगस्त्य के शिष्य के पास आ यह वाक्य बोला ॥ १ ॥ राजा दशरथ का बड़ा पुत्र बलवान् राम भार्या सहित मुनि के दर्शन को आया है॥ २ ॥ मैं उसका छोटा भाई उस का हितैषी लक्ष्मण हूं, हम सब भग-वान् के दर्शन करना चाहते हैं, यह भगवान् को निवेदन कीजिये ॥ ३॥ लक्ष्मण के इस वचन को सुनकर वह तपोधन तथास्तु कह कर निवेदन करने के लिये अग्निगृह में प्रविष्ट हुआ ॥ ४ ॥वह तप से उस दुष्प्रधर्ष मुनि के पास जा हाथ जोड़कर राम का आगमन बतलाता भया ॥५॥ दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण आश्रम में प्रविष्ट हुए हैं, और साथ राम पत्नी सीता है ॥६॥ शत्रुओं के दमन करने वाले वह दोनों भगवान् के दर्शन और सेवन के लिये आए हैं ॥७॥ तब शिष्य से लक्ष्मण सहित राम को और महाभागा वैदेही को आए सुनकर मुनि यह वचन बोला ॥ ८ ॥

मूल—दिष्ट्या रामश्चिरस्याद्य द्रष्टुं मां समुपागतः । मनसा कांक्षितं ह्यस्य मयाप्यागमनं प्रति ॥९॥ गम्यतां सत्कृतो रामः सभार्यः सह-लक्ष्मणः । प्रवेश्यतां समीपं मे किमसौ न प्रवेशितः ॥ १० ॥ तदा निष्क्रम्य संभ्रान्तः शिष्यो लक्ष्मणमब्रवीत् । कोऽसौ रामो मुनिं द्रष्टुमेतु प्रविशतु स्वयम् ॥ ११ ॥ प्रविवेश ततो रामः सीतया सह-लक्ष्मणः । प्रशान्तहरिणाकीर्णमाश्रमं ह्यवलोकयन् ॥ १२ ॥ ततः शिष्यैः परिवृतो मुनिरप्यभिनिष्पतत् । तं ददर्शाग्रतो रामो मुनीनां दीप्ततेजसम् ॥१३॥ अब्रवीद्वचनं वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ।

बहिर्लक्ष्मण निष्कामत्यगस्त्यो भगवानृषिः ॥१४॥ औदार्येणाव-
गच्छामि निधानं तपसामिदम् ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वा महाबाहुरगस्त्यं
सूर्यवर्चसम् । जग्राहपततस्तस्य पादौ च रघुनन्दनः ॥ १६ ॥

टीका—भाग्य से बड़ी प्रतीक्षा के पीछे राम आज मेरे मिलने को आया है, मुझे भी उसके आने की मन में चाह है ॥ ९ ॥ जाओ बड़े आदर मान से लक्ष्मण के और पत्नी के सहित राम को मेरे पास लेआओ, क्यों न उसे पहिले ही प्रवेश करा दिया ॥१०॥ तब निकलकर बड़े आदर के साथ शिष्य लक्ष्मण से बोला कौन वह राम है, मुनि के दर्शन को आए प्रवेश करे ॥ ११॥ तब राम सीता और लक्ष्मण के साथ शान्त हरिणों से भरे आश्रम को देखता हुआ प्रविष्ट हुआ ॥ १२ ॥ उधर शिष्यों से घिरा हुआ मुनि भी बाहिर निकला, राम ने सामने आते हुए मुनियों में उस चमकते तेजवाले को देखा ॥१३॥ और उस वीर ने लक्ष्मी के बढ़ाने वाले लक्ष्मण को यह वचन कहा । हे लक्ष्मण भगवान् अगस्त्य ऋषि बाहिर निकले हैं ॥१४॥(चेहरे पर चमकते हुए) उदार भाव से इसको तेज का निधि जानता हूं ॥१५॥ यह कहकर महाबाहु रघु-नन्दन ने सूर्य के तुल्य तेजवाले आते हुए मुनि के पाद ग्रहण किये

मूल—अभिवाद्य तु धर्मात्मातस्थौ रामः कृताञ्जलिः । सीतया सह
वैदेह्या तदा रामः सलक्ष्मणः ॥१७॥ प्रतिगृह्य च काकुत्स्थमर्चयि-
त्वासनोदकैः । कुशलप्रश्नमुक्त्वा च आस्यतामिति सोऽब्रवीत् ॥१८
अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथीन्प्रतिपूज्य च । वानप्रस्थेन धर्मेण स
तेषां भोजनं ददौ॥१९॥उवाच राममासीनं प्राञ्जलिं धर्मकोविदम्॥२०॥
राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः । पूजनीयश्च मान्यश्च
भवान्प्राप्तः प्रियातिथिः ॥२१॥ एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैश्चान्यैश्च
राघवम् । पूजयित्वा यथाकामं ततोऽगस्त्यस्तमब्रवीत् ॥२२॥ इदं

दिव्यं महच्चापं हेमवज्रविभूषितम् । वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा॥२३॥ अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः । दत्तो मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षय्यसायकौ ॥२४॥ सम्पूर्णौ निशितैर्बाणै-र्ज्वलद्भिरिव पावकैः । महाराजतकोशोऽयमसिर्हेमविभूषितः ॥२५॥ तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद । जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा ॥२६॥ एवमुक्त्वा महातेजाः समस्तं तद्वरायुधम् । दत्वा रामाय भगवानगस्त्यः पुनरब्रवीत् ॥ २७ ॥

टीका—अभिवादन करके धर्मात्मा राम सीता और लक्ष्मण के साथ हाथ जोड़कर खड़ा होगया ॥ १७ ॥ राम को स्वीकार कर और आसन जल से पूजकर और कुशल प्रश्न पूछकर बैठिये यह मुनि ने उसे कहा ॥ १८ ॥ और वैश्वदेव होम करके अर्घ्य देकर तीनों अतिथियों को पूजकर वानप्रस्थ धर्म से उनको भोजन दिया॥१९॥ और हाथ जोड़कर बैठे हुए धर्ममें निपुण राम से बोला॥२०॥ आप सारे लोक के राजा धर्मचारी महारथी ऐसे पूजनीय माननीय प्यारे अतिथि प्राप्त हुए हैं॥२१॥यह कहकर और फलमूल पुष्पों से यथा रुचि पूजकर फिर अगस्त्य बोला ॥२२॥ यह दिव्य वैष्णव महाधनुष जो सुवर्ण और वज्र से भूषित है,हे पुरुषश्रेष्ठ जिसे विश्वकर्मा ने बनाया है ।२३। और ब्रह्मा से दिया हुआ यह सूर्यतुल्य अमोघ तीर, और यह महेन्द्र से दिये हुए बहुत तीरों वाले दोनों भत्थे ॥२४॥ जोकि अग्नि की तरह जलते हुए तीक्ष्ण बाणों से भरे हैं, और यह सुवर्ण से भूषित चान्दी के कोशवाली तलवार ॥२५॥ यह धनुष दोनों भत्थे तीर और खड्ग हे मान देनेवाले वज्र को वज्र धर (इन्द्र) की तरह विजय के लिये स्वीकार कर ॥२६॥यह कहकर महातेजस्वी अगस्त्यने उत्तम शस्त्र रामको देकर फिर कहा॥२७॥

सर्ग १० (व० १३) अगस्त्य से पंचवटी में आश्रम की आज्ञा

मूल—राम प्रीतोऽस्मि भद्रं ते परितुष्टोऽस्मि लक्ष्मण । अभिवाद-

यितुं यन्मां प्राप्तौ स्थः सह सीतया ॥ १ ॥ अध्वश्रमेण वां खेदो बाधते प्रचुरश्रमः । व्यक्तमुत्कण्ठते वापि मैथिली जनकात्मजा॥२॥ एषा च सुकुमारी च खेदैश्च न विमानिता । प्राज्यदोषं वनं प्राप्ता भर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥३॥ यथैषा रमते राम इह सीता तथा कुरु । दुष्करं कृतवत्येषा वने त्वामभिगच्छती ॥ ४ ॥ अलंकृतोऽयं देशश्च यत्र सौमित्रिणा सह । वैदेह्या चानया राम वत्स्यसि त्वमरिंदम॥५॥

टीका हे राम तेरा भला हो, तेरे लिये प्रेम से भर गया हूं और हे लक्ष्मण तेरे ऊपर सन्तुष्ट हूं, जो अभिवादन के लिये मेरे पास आए हो ॥१॥ मार्ग में बहुत थक जाने से थकावट आप दोनों को पीडा दे रही हैं, सीता भी स्पष्ट (कहीं विश्राम की) उत्कण्ठावाली है ॥ २॥ यह बडी सुकुमारी इस से पूर्व खेदों मे कभी पीडित न हुई भर्तृस्नेह से प्रेरी हुई इस दोषों वाले वन में आई है ॥ ३ ॥ जैसे यह बन में आनन्दित रहे हे राम ऐसा कीजिये, वन में आपके साथ आती हुई इसने बडा कठिन काम किया है,॥४॥यह देश आप से अलंकृत हुआ है, जहां हे शत्रुओं के दबाने वाले आप लक्ष्मण के और सीता के साथ वास करेंगे ॥ ५ ॥

मूल—एवमुक्तस्तु मुनिना राघवः संयताञ्जलिः । उवाच प्रश्रितं वाक्यमृषिं दीप्तमिवानलम् ॥६॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगवः । गुणैः सभ्रातृभार्यस्यगुरुर्नःपरितुष्यति ॥७॥ किं तु व्यादिश मे देशं सोदकं बहुकाननम् । यत्राश्रमपदं कृत्वा वसेयं निरतः सुखम् ॥८॥ ततोऽब्रवीन्मुनिश्रेष्ठः श्रुत्वा रामस्य भाषितम् । ध्यात्वा मुहूर्तं धर्मात्मा तदोवाच वचः शुभम् ॥९॥ इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदकः । देशो बहुमृगः श्रीमान्पञ्चवट्यभिविश्रुतः॥

टीका—मुनि के ऐसा कहने पर राम हाथ जोड़कर अग्नि की तरह दीप्यमान उस ऋषि से यह वाक्य बोला॥६॥मैं धन्य हूं,अनुगृहीत

भ्राता और भार्या के समेत जिस पर अपने ही गुणों से आप हमारे गुरु प्रसन्न हुए हैं ॥७॥ किन्तु मुझे ऐसा स्थान बतलाइये जो बहुत वनों वाला और सजल हो, जहां आश्रम बनाकर प्रीतिवाला हुआ सुख से रहूं॥८॥ तब वह धर्मात्मा मुनिश्रेष्ठ राम के इस वचन को सुनकर थोड़ी देर सोचकर यह शुभ वचन बोला ।९। यहां से दो योजन पर हे तात बहुत मूल फल और जलवाला बहुत मृगोंवाला शोभावाला स्थान है, जो पञ्चवटी नाम से विख्यात है ॥१०॥

मूल—तत्र गत्वाश्रमपदं कृत्वा सौमित्रिणा सह । रमस्व त्वं पितुर्वाक्यं यथोक्तमनुपालयन् ॥११॥ हृदयस्थं च ते छन्दो विज्ञातं तपसा मया । अतश्च त्वामहं ब्रूमि गच्छ पञ्चवटीमिति ॥१२॥ स देशः श्लाघनीयश्च नातिदूरे च राघव । गोदावर्याः समीपे च मैथिली तत्र रंस्यते ॥१३॥ प्राज्यमूलफलैश्चैव नानाद्विजगणैर्युतः । विविक्तश्च महाबाहो पुण्यो रम्यस्तथैव च ॥१४॥ एतदालक्ष्यते वीर मधूकानांमहावनम् । उत्तरेणास्य गन्तव्यं न्यग्रोधमपि गच्छता ॥१५॥ ततः स्थलमुपारुह्य पर्वतस्याविदूरतः । ख्यातः पञ्चवटीत्येव नित्यपुष्पितकाननः॥१६॥ अगस्त्येनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिणा सह। सत्कृत्यामन्त्रयामास तमृषिं सत्यवादिनम्॥१७॥ तौ तु तेनाभ्यनुज्ञातौ कृतपादाभिवन्दनौ । तमाश्रमं पञ्चवटीं जग्मतुः सह सीतया ॥१८॥

टीका—वहां जाकर आश्रम बनाकर पिता के वाक्य का यथोक्त पालन करता हुआ, लक्ष्मण के साथ रमणकर ॥११॥ तेरे हृदय का अभिप्राय मैंने तप से मालूम किया है, इस लिये तुझे कहता हूं, कि पञ्चवटी को जा ।१२। वह स्थान बहुत सुहावना है, बहुत दूर भी नहीं है, और गोदावरी के समीप है, हे राम वहां सीता रमण करेगी ।१३। वह स्थान बहुत मूल फलों से और नाना पक्षिगणों से युक्त है, हे वीर महाबाहो एकान्त है, पवित्र है, और

रमणीय है ।१४। हे वीर यह जो महुओं का महावन दीखता है, इसके उत्तर से जाना, जो मार्ग न्यग्रोध आश्रम को भी जाता है ।१५। उस से आगे स्थल पर चढ़कर पर्वत के निकटही पञ्चवटी प्रसिद्ध है, जिसके बन सदा फूले रहते हैं ।१६। अगस्त्य से ऐसे कहे हुए राम ने लक्ष्मण के साथ उस सत्यवादी ऋषि का सत्कार करके उस से आज्ञा मांगी ।१७। उससे आज्ञा दिये हुए वह दोनों उसके पादवन्दन करके सीता सहित पञ्चवटी आश्रम को गये ॥

सर्ग ११ [व० १४, १५,] पञ्च वटी में आश्रम का बनाना

मूल—अथ पञ्चवटीं गच्छन्नन्तरा रघुनन्दनः । आससाद महाकायं गृध्रं भीमपराक्रमम्॥१॥तं दृष्ट्वा तौ महाभागौ वनस्थं रामलक्ष्मणौ। मेनाते राक्षसं पक्षिं ब्रुवाणौ को भवानिति ॥२॥ततो मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव । उवाच वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः ॥३॥ स तं पितृसखं मत्वा पूजयामास राघवः । स तस्य कुलमव्यग्रमथ पप्रच्छ नाम च ॥ ४ ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा कुलमात्मानमेव च । आचचक्षे द्विजस्तस्मै सर्वभूतसमुद्भवम् ॥५॥ जटायुरिति मां विद्धि श्येनीपुत्र मरिंदम । सोऽहं वाससहायस्ते भविष्यामि यदीच्छसि ॥६॥ ततः पञ्चवटीं गत्वा नानाव्यालमृगायुताम् । उवाच लक्ष्मणं रामो भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥ ७ ॥ अयं देशः समः श्रीमान्पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः । इहाश्रमपदं रम्यं यथावत्कर्तुमर्हसि ॥८॥

टीका—अब पञ्चवटी को जाते हुए राम ने मार्ग में भयंकर पराक्रम वाला महाकाय गृध्र देखा ।१। उस वनचारी को देखकर महाभाग राम और लक्ष्मण ने उसे राक्षस समझा, और उसे पूछा आप कौन हैं ।२। तब वह मीठी प्यारी वाणी से तृप्त करता हुआ बोला, वत्स मुझे अपने पिता का सखा जान ।३। राम ने उसे पितृसखा मानकर उसका पूजन किया, और उसका कुल और नाम पूछा ।४। राम का वचन सुनकर उस द्विज ने राम को अपना कुल, और सब भूतों

की उत्पत्ति बतलाई ।५। हे शत्रुओं के दबाने वाले मुझे श्येनी का पुत्र जटायु जान। यदि आप पसन्द करें, तो मैं आपका वास का साथी हूंगा ।६। तब अनेक व्याल और मृगों से युक्त पञ्चवटी में जाकर राम ने दीप्त तेजवाले भाई लक्ष्मण को कहा ।७। यह देश सम शोभा वाला और फूले हुए वृक्षों से घिरा हुआ है, यहां तू रमणीय आश्रम ठीक २ बनाने योग्य है ॥ ८ ॥

मूल–इयमादित्यसंकाशैःपद्मैः सुरभिगन्धिभिः । अदूरे दृश्यते रम्या पद्मिनीपद्मशोभिता ।९। यथाख्यातमगस्त्येन मुनिना भावितात्मना । इयं गोदावरी रम्या पुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥१०॥ हंसकारण्डवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता । नातिदूरे न चासन्ने मृगयूथनिपीड़िता ।११। मयूरनादिता रम्याः प्रांशवो बहुकंदराः। दृश्यन्ते गिरयः सौम्याः फुल्लैस्तरुभिरावृताः ॥१२॥ इदं पुण्यमिदं रम्यमिदं बहुमृगद्विजम् । इह वत्स्याम सौमित्रे सार्धमेतेन पक्षिणा ॥१३॥

टीका–यह सूर्यतुल्य, सुरिभि गन्धवाले पद्मों से शोभित सुन्दर पद्मिनी दीखती है ॥ ९ ॥ शुद्धात्मा अगस्त्य मुनि ने जैसे कहा था, फूले हुए वृक्षों से घिरी हुई यह रमणीय गोदावरी है ॥ १० ॥ हंसों और मुरगाबियों से युक्त, चकवों से शोभायमान, न अति दूर न निकट मृग यूथों, से पीडित ॥ ११ ॥ और यह सुहावने पर्वत मोरों से गूंजते हुए ऊंच बहुत कन्दरोंवाले फूले हुए वृक्षों से घिरे हुए दीखते हैं ॥१२॥ यह पवित्र स्थान है, यह रमणीय है, यहां बहुत से मृग पक्षी है यहां हे लक्ष्मण इस पक्षी (जटायु) के साथ वास करें

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः परवीरहा । अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः ॥१४॥ पर्णशालां सुविपुलां तत्र संघातमृत्तिकाम् । सुस्तम्भां मस्करैर्दीर्घैः कृतवंशां सुशोभनाम् ॥१५॥ शमीशाखाभिरास्तीर्य दृढपाशावपाशिताम् । कुशकाशशरैः पर्णैः सुप-

रिच्छादितां तथा ॥१६॥ तस्मिन्देशे बहुफले न्यवसत्स सुखं सुखी कञ्चित्कालं स धर्मात्मा सीतया लक्ष्मणेन च ॥ १७ ॥

टीका राम के ऐसे कहने पर शत्रुवीरों के मारने वाले महाबली लक्ष्मण ने झटपट भाई के लिये आश्रम बनाया ॥१४॥ बड़ी विशाल पर्णशाला जिसमें प्रशस्त मिट्टी की भरती डाली गई, उत्तम खम्भे लगाए गए, और लम्बे २ बांस डालकर बड़ी शोभावाली बनाई गई, ॥ १५॥ जण्डी की शाखाएं ऊपर बिछाई गई, दृढ बन्धनों से बांधी गई, और कुशा काही सर और पत्तों से अच्छी तरह ढक दी गई ॥१६॥ उस बहुत फलोंवाले देश में वह सुखी धर्मात्मा राम सीता और लक्ष्मण के साथ कुछ काल सुख से रहा ॥१७॥

सर्ग १२ (व० १६) पञ्चवटी वास

मूल-वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य महात्मनः। शरद्व्यपाये हेमन्त ऋतुरिष्टः प्रवर्तते ॥१॥ स कदाचित्प्रभातायां शर्वर्यां रघुनन्दनः। प्रययावभिषेकार्थं रम्यां गोदावरीं नदीम् ॥२॥ प्रह्वः कलशहस्तस्तु सीतया सह वीर्यवान्। पृष्ठतोऽनुव्रजन्भ्राता सौमित्रिरिदमब्रवीत् ३॥ अयं स कालः संप्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद। अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः ॥४॥नीहारपरुषो लोकः पृथिवी सस्यमालिनी। जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः ॥५॥ प्राज्यकामा जनपदा संपन्नतरगोरसाः। विचरन्ति महीपालाः यात्रार्थंविजिगीषवः ॥६॥ सेवमाने दृढं सूर्ये दिशमन्तकसेविताम्। विहीन तिलकेव स्त्री नोत्तरा दिक्प्रकाशते ॥७॥ अत्यन्तसुखसंचारा मध्यान्हे स्पर्शतः सुखा। दिवसाः सुभगादित्याश्छाया सलिलदुर्भगाः॥८। निवृत्ताकाशशयनाः पुष्यनीता हिमारुणाः। शीतवृद्धतरा यामास्त्रियामा यन्ति सांप्रतम्॥

टीका—महात्मा राम को सुख से बसते हुए वहां शरद ऋतु बीती, और प्यारा हेमन्त प्रवृत्त हुआ।१। एक दिन वह रघुनन्दन रात के

प्रभात होने पर रमणीय गोदावरी नदी पर स्नान के लिये गया।२। पीछे सीता और वीर भ्राता लक्ष्मण हाथ में कलश लिये पीछे चलता हुआ नम्र हो यह वाक्य बोला ।३। यह वह समय आया है, जो आपको प्यारा है, हे प्रियंवद, जिसमें शुभ संवत्सर अलंकृत हुआ प्रतीत होता है ।४। दुनिया कुहरसे कठोर सी होरही है । पृथिवी खेती की मालावाली है, जल (शीतता) से उपभोग (देर तक न्हाने आदि) के योग्य नहीं, अग्नि सुहावनी है ।५। देश अन्नों से भरपूर और गोरस से सम्पन्न हुए हैं। विजय की इच्छावाले महीपाल यात्रा के लिये फिर रहे हैं ।६। सूर्य दक्षिण दिशा का सेवन कर रहा है, और अब उत्तर दिशा तिलक हीना स्त्री की तरह शोभा नहीं देती है ।७। दिन अब चलने में अत्यन्त सुखदायी हैं, सूर्य सुहावना, और छाया और जल असेवनीय होगये है ।८। अब रात को आकाश के नीचे (=खुले मैदान) सोना बन्द होगया है, रातें हिम से धुन्धली हैं, और पुष्य नक्षत्र से रात्रिकाल का परिमाण जाना जाता है,शीत से अब त्रियामा(रात)के पहर बहुत लम्बे होगये हैं

मूल—रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः ।निःश्वासान्ध इवादर्श-श्चन्द्रमा न प्रकाशते१०।ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते। सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न च शोभते ॥११॥ प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्धश्च सांप्रतम् । प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः ॥१२॥ मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः । दूरमप्युदितः सूर्यः शशाङ्क इव लक्ष्यते॥१३॥अवश्यायनिपातेन किंचित् प्रक्लिन्नशाद्वला । वनानां शोभते भूमिर्निविष्टतरुणातपा ॥१४॥ स्पृशन्सुविपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम् । अत्यन्ततृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् ॥१५॥बाष्प-संछन्नसलिला रुतविज्ञेयसारसाः । हिमार्द्रवालुकास्तीरैः सरितो भान्ति सांप्रतम् ॥१६॥ तुषारपतनाच्चैव मृदुत्वाद्भास्करस्य च । शैत्यादगाग्रस्थमपि प्रायेण रसवज्जलम् ॥१७॥ जराजर्झरितैः पत्रैः

शीर्णकेसरकर्णिकैः। नालशेषा हिमध्वस्ता न भान्ति कमलाकराः॥

टीका—अब चन्द्रमा का सौभाग्य सूर्य में चला गया, उनका मण्डल कुहर से धुन्धला पड़ गया, और वह सांस से धुन्धले दर्पण की तरह शोभा नहीं देता है ॥१०॥ पौर्णमासी में चान्दनी कुहर से धुन्धली हुई धूप से विवर्ण हुई सीता की तरह प्रतीत होती है, सोहती नहीं ।११। स्वभाव से ही ठण्डे स्पर्शवाला और अब हिम से बींधा हुआ पश्चिमी वायु दुगुना शीतल होकर समय पर बहता है ॥१२॥ कुहर से ढकी हुई फैलती हुई किरणों से दूर उदय हुआ भी सूर्य चन्द्र की तरह प्रतीत होता है ।१३। ओस के गिरने से कुछ भीगी हुई खेतीवाली वनभूमि घनी तरुण धूप से शोभा पाती है ।१४। जंगली हाथी अत्यन्त प्यासा हुआ मुखसे बहुत बड़े ठण्डे जल को स्पर्श करके, सूंड को मोड़लेता है।१५। नदियोंके जल तो कुहर से ढके हुए हैं, उनका पता सारसों की आवाज़ से, किनारों से, और ओस से भीगी रेत से लगता है ।१६। बर्फ के गिरने से, सूर्य के मृदु होने से, और शीत के हेतु से पर्वतों के अग्र पर स्थित भी जल प्रायः रसवाला है ।१७। सरोंवरो के कमलों के पत्ते जरा से झर्झर कर रहे हैं, फूलों के केसर और कर्णिक झड़ गये हैं, नाल ही उनकी शेष रहगई है,इस तरह हिममें ध्वस्त हुए वह शोभा नहींपातेहैं

मूल—अस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्र काले दुःखसमन्वितः। तपश्चरति धर्मात्मा त्वद्भक्त्याभरतः पुरे ॥१९॥ त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान्बहून्। तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले ॥२०॥ सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यतः।वृतःप्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम् ॥२१॥ पद्मपत्रेक्षणः श्यामः श्रीमान्निरुदरो महान्। धर्मज्ञः सत्यवादी च ह्रीनिषेधो जितेन्द्रियः ॥२२॥ प्रियाभिभाषी मधुरो दीर्घबाहुररिंदमः। संत्यज्य विविधान् सौख्यानार्यं सर्वात्मना श्रितः ॥२३॥+जितःस्वर्गस्तव भ्रात्रा भरतेन महात्मना। वनस्थमपि

तापस्ये यस्त्वामनुविधीयते ॥२४॥ न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति । ख्यातो लोकप्रवादोऽयं भरतेनान्यथा कृतः ॥२५॥+भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः । कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी ॥२६॥ इत्येवं लक्ष्मणे वाक्यं स्नेहाद्वदति धार्मिके । परिवादं जनन्यास्तमसहन्राघवोऽब्रवीत् ॥२७॥+न तेऽम्बा मध्यमातात गर्हितव्या कदाचन । तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥२८

टीका—इस काल में हे पुरुषश्रेष्ठ दुःख से युक्त धर्मात्मा भरत तेरी भक्ति से पुर में तपश्चर्या का जीवन बिता रहा है ।१९ राज्य,मान और अनेक प्रकार के भोगों को त्यागकर नियत आहार हो तपस्वी बन ठण्डे महीतल पर सोता है ।२०। वह भी इस समय निःसन्देह स्नान के लिये तय्यार हो प्रकृतियों से युक्त हुया नित्य सरयू नदी पर जाता है ।२१। कमलपत्र जैसे नेत्रोंवाला, नवयुवा श्रीमान् पतले पेटवाला, महान् धर्मज्ञ, सत्यवादी, लज्जा से रुका हुआ, जितेन्द्रिय । २२। प्रिय बोलनेवाला, मीठा, लम्बी भुजावाला, शत्रुओं को दबाने वाला, भरत अनेक प्रकार के सुखों को त्यागकर सर्वात्मा से आर्य के आश्रित है ।२३। तेरे भाई महात्मा भरत ने स्वर्ग को जीत लिया है, जो तपस्विपन में आप वनवासी के पीछे चल रहा है ।२४। मनुष्य पिता का नहीं, किन्तु माता का अनुसरण करते हैं । यह प्रसिद्ध लोकोक्ति भरत ने अन्यथा कर दिखलाई है ।२५। भर्ता जिसका दशरथ, पुत्र साधु (नेक) भरत, कैसे वह माता कैकेयी ऐसी क्रूर दृष्टिवाली है । २६। धार्मिक लक्ष्मणने जब स्नेहसे यह बात कही, तो माता की निन्दा न सहते हुए राम बोले ।२७। हे तात तुझे मध्यमा माता की कभी निन्दा नहीं करनी चाहिये, वही इक्ष्वाकु-नाथ भरत की कथा कहो ।२८।

मूल—संस्मराम्यस्य वाक्यानि प्रियाणि मधुराणि च । हृद्यान्यमृत-

कल्पानि मनःप्रह्लादनानि च ॥२९॥ कदा ह्यहं समेष्यामि भरतेन महात्मना। शत्रुघ्नेन च वीरेण त्वया च रघुनन्दन ॥३०॥ इत्येवं विलपत स्तत्र प्राप्य गोदावरीं नदीम्। चक्रेऽभिषेकं काकुत्स्थः सानुजःसहसीतया ॥३१॥

टीका—मैं भरत के प्यारे मधुर हृदय के प्यारे मन को प्रसन्न करनेवाले और अमृत तुल्य वाक्यों को स्मरण करता हूं ।२९। कब महात्मा भरत, वीर शत्रुघ्न, मैं और आप हे रघुनन्दन इकट्ठे मिलेंगे ।३०। इस प्रकार विलाप करते हुए वहां गोदावरी नदी पर पहुंच कर राम ने लक्ष्मण और सीता के साथ स्नान किया ॥३१॥

सर्ग १३ (व० १७) शूर्पणखा का आना

मूल—कृताभिषेको रामस्तु सीता सौमित्रिरेव च। तस्माद्गोदावरीतीरात्ततो जग्मुः स्वमाश्रमम् ॥ १ ॥ आश्रमं तदुपागम्य राघवः सहलक्ष्मणः। कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म पर्णशालामुपागमत् ॥२॥ तदासीनस्य रामस्य कथासंसक्तचेतसः। तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया ॥ ३ ॥ सा तु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य रक्षसः। भगिनी राममासाद्य ददर्श त्रिदशोपमम् ॥ ४ ॥ दीप्तास्यं च महाबाहुं पद्मपत्रायतेक्षणम्। गजविक्रान्तगमनं जटामण्डलधारिणम् ॥ ५ ॥

टीका—स्नान करके राम सीता और लक्ष्मण उस गोदावरी तीर से अपने आश्रम को गये ॥ १ ॥ आश्रम में जाकर लक्ष्मण सहित राम प्रातः करणीय कर्म करके बाहर शाला में आया ॥ २ ॥ वहां बैठकर जब राम बात चीत कररहे थे, तो एक राक्षसी अचानक आई ॥ ३ ॥ वह शूर्पणखा नाम रावण राक्षस की बहिन निकट आ देवतुल्य राम को देखती भई ॥ ४ ॥ जिस (राम) का चेहरा चमकता है, भुजा विशाल हैं, पद्मपत्र की तरह विशाल नेत्र हैं, जो गजेन्द्र की गतिवाला है, जटा मण्डल को धारण किये है ॥ ५ ॥

मूल—सुकुमारं महासत्त्वं पार्थिवव्यञ्जनान्वितम्। राममिन्दीवरश्यामं

कंदर्पसदृशप्रभम् ॥ ६ ॥ शक्रेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी काममोहिता ।
सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी ॥ ७ ॥ विशालाक्षं विरूपाक्षी
सुकेशं ताम्रमूर्धजा । प्रियरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वना ॥ ८ ॥
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी । न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता
प्रियमप्रियदर्शना ॥ ९ ॥ शरीरजसमाविष्टा राक्षसी राममब्रवीत् ।
जटातापसवेषेण सभार्यः शरचापधृक् ॥ १० ॥ आगतस्त्वमिमं देशं
कथं राक्षससेवितम् । किमागमनकृत्यं ते तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥११॥

टीका—सुकुमार है, बडे दिलवाला है, राजा के चिन्हों से युक्त है, नील कमल की तरह श्याम है, काम के तुल्य कान्तिवाला है, ॥ ६ ॥ उस इन्द्रतुल्य सुन्दर मुखवाले राम को दुर्मुखवाली, पतले पेटवाले को बडे पेटवाली, विशाल नेत्रोंवाले को विरूप नेत्रोंवाली, सुन्दर केशोंवाले को लाल केशोंवाली, प्रियरूप को कुरूपा, सुन्दर स्वरवाले को भयङ्कर स्वरवाली, तरुण को दारुण वृद्धा, सरल को कुटिल बोलने वाली, धर्माचार वाले को अधर्माचारवाली, प्रिय को अप्रिय दर्शनवाली, देखकर राक्षसी काम से मोहित हो गई ॥ ७, ८, ९, ॥ काम से आविष्ट हुई राक्षसी राम से बोली, तपस्वी वेष से जटा धारण किये, और साथ ही धनुष बाण धारण किये सहित स्त्री के ॥ १० ॥ कैसे आप राक्षसों से सेवित इस देश में आए हैं, आपके आने का क्या अभिप्राय है, मुझे आप ठीक २ कहने योग्य हो ॥ ११ ॥

मूल—एवमुक्तस्तु राक्षस्या शूर्पणख्या परन्तपः । ऋजुबुद्धितया
सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १२ ॥ आसीद्दशरथो नाम राजा त्रिदश-
विक्रमः । तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥ १३ ॥ भ्रातायं
लक्ष्मणो नाम यवीयान्मामनुव्रतः । इयं भार्या च वैदेही मम सीतेति
विश्रुता ॥ १४ ॥ नियोगात्तु नरेन्द्रस्य पितुर्मातुश्च यन्त्रितः ।

धर्मार्थं धर्मकांक्षी च वनं वस्तुमिहागतः ॥ १५ ॥ त्वां तु वेदितुमिच्छामि कस्य त्वं कासि कस्य वा । साब्रवीद्वचनं श्रुत्वा राक्षसी मदनार्दिता ॥ १६ ॥ अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी । अरण्यं विचरामीदमेका सर्वभयङ्करा ॥ १७ ॥ रावणो नाम मे भ्राता यदि ते श्रोत्रमागतः । प्रवृद्धनिद्रश्च सदा कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १८ ॥ विभीषणस्तु धर्मात्मा न तु राक्षसचेष्टितः । प्रख्यातवीर्यौ च रणे भ्रातरौ खरदूषणौ ॥ १९ ॥ तानहं समतिक्रान्ता राम त्वापूर्वदर्शनात् । समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तमम् ॥ २० ॥ अहं प्रभावसंपन्ना स्वच्छन्दबलगामिनी । चिराय भव भर्ता मे सीतया किं करिष्यसि ॥ २१ ॥

टीका—राक्षसी शूर्पणखा से ऐसे कहा हुआ परन्तप राम सरल बुद्धि होने के हेतु सब कुछ कहने लगे ॥ १२ ॥ देवतुल्यपराक्रमी राजा दशरथ हुआ है, उसका मैं बडा पुत्र राम नाम से लोगों में प्रसिद्ध हूं ॥ १३ ॥ यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण मेरा साथी है, और यह विदेहराज की कन्या सीता नाम से विख्यात मेरी पत्नी है॥१४॥ मनुष्यों के स्वामी अपने पिता और अपनी माता की आज्ञा से नियम धारण किये धर्माभिलाषी हो धर्म के अर्थ वन में रहने को आया हूं ॥१५॥ अब तुझे जानना चाहता हूं तू किसकी कन्या है, कौन है, किसकी है । काम से पीडित वह राक्षसी सुनकर यह बचन बोली ॥१६॥ मैं शूर्पणखा नाम कामतुल्य रूपवाली राक्षसी अकेली सब के लिये भयङ्कर हुई बन में विचरती हूं ॥१७॥ रावण मेरा भाई है, जो आपने सुना होगा, और बढ़ी हुई नींदवाला महाबली कुम्भकर्ण (मेरा भाई है) ॥ १८ ॥ और धर्मात्मा विभीषण मेरा भाई है, किन्तु उसकी चेष्टा राक्षसों की सी नहीं और दो भाई मेरे और हैं, खर और दूषण, जिनकी रण में बहादुरी विख्यात है

॥१९॥ मैं (बल में) उन से भी बढकर हूं, हे राम तुझे अपूर्व देख कर हृदय के भाव से तुझे भर्ता बना तेरे पास आई हूं ॥ २० ॥ मैं बडी प्रभुतावाली हूं, मेरे बल की सब जगह पहुंच है, सो आप चिरकाल के लिये मेरे भर्ता बनें, सीता से आप क्या करेंगे ॥२१॥

सर्ग १४ (व० १८) शूर्पणखा का नाक कान काटना

मूल—तां तु शूर्पणखां रामः कामपाशावपाशिताम् । स्वेच्छया श्लक्ष्णया वाचा स्मितपूर्वमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम । त्वद्विधानां तु नारीणां सुदुःखा ससपत्नता ॥२॥ अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान्प्रियदर्शनः । श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥ ३ ॥ एनं भज विशालाक्षि भर्तारं भ्रातरं मम । असंपत्ना वरारोहे मेरुमर्कप्रभा यथा ॥ ४ ॥ इति रामेण सा प्रोक्ता राक्षसी काममोहिता । विसृज्य रामं सहसा ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ५ ॥ अस्य रूपस्य ते युक्ता भार्याहं वरवर्णिनी। मया सह सुखं सर्वान्दण्डकान्विचरिष्यसि ॥६॥ एवमुक्तस्तु सौमित्री राक्षस्या वाक्यकोविदः। ततः शूर्पनखीं स्मित्वा लक्ष्मणो युक्तमब्रवीत् ॥७॥ कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि । आर्यस्य त्वं विशालाक्षि भार्या भव यवीयसी ॥८॥ इति सा लक्ष्मणेनोक्ता कराला निर्णतोदरी । मन्यते तद्वचः सत्यं परिहासाविचक्षणा ॥९॥

टीका—काम की फांस से बंधी हुई उस स्वेच्छाचारिणी शूर्पनखा को राम मुस्कराकर स्पष्ट वाणी से बोला ॥१॥ हे भली मेरा विवाह हुआ हुआ है, यह मेरी प्यारी पत्नी है, और सपत्नी का होना तेरे जैसी स्त्रियों को बड़ा दुःख है॥२॥यह मेरा छोटा भाई शीलवान् प्रिय दर्शनवाला बिना स्त्री के है, यह तेरे इस रूप के योग्य भर्त्ता होगा ॥३॥ हे विशालाक्षि ! इस मेरेभाई को भर्त्ता बनाकर एकली सेवन कर जैसे सूर्य की प्रभा मेरु को ॥ ४ ॥ राम के ऐसा कहने पर काम से मोहित वह राक्षसी राम को छोडकर जल्दी लक्ष्मण से

बोली ॥५॥ तेरे इस रूप के सुन्दर शोभावाली मैं पत्नी होने योग्य हूं, मेरे साथ आप सुख से सारे दण्डक में विचरेंगे ॥ ६ ॥ राक्षसी ने जब ऐसे कहा, तो वाक्य के जाननेवाला लक्ष्मण मुस्कराकर शूर्पनखा से यह युक्त वचन बोला ॥ ७ ॥ कैसे मुझ दासकी भार्या होकर तू दासी बनना चाहती है, आर्य की ही तू हे विशालाक्षि छोटी भार्या बन ॥८॥ लक्ष्मण के ऐसा कहने पर वह भयंकर मूर्ति बडे पेटवाली परिहास को न समझकर सत्य मानती भई ॥ ९ ॥

मूल—सा रामं पर्णशालायामुपाविष्टं परंतपम्।सीतया सहदुर्धर्षमब्रवीत्काममोहिता ॥१०॥ इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।वृद्धां भार्यामवष्टभ्य न त्वं मां बहु मन्यसे ॥ ११ ॥ अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तव मानुषीम्। त्वया सह चरिष्यामि निःसपत्ना यथासुखम् ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा । अभ्यगच्छत्सुसंक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव ॥ १३॥ तां मृत्युपाशप्रतिमामापतन्तीं महाबलः । निगृह्य रामः कुपितस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १४ ॥

टीका—सीता के साथ पर्णशाला में बैठे हुए न दबने वाले शत्रुओंके तपानेवाले राम को काम से मोहित हुई बोली ॥ १० ॥ इस विरूपा असती, करालमूर्त्ति, बडे पेटवाली वृद्धा भार्या का आश्रय लेकर तू मेरा आदर नहीं करता है ॥ ११ ॥ आज इस मानुषी को तेरे देखते हुए खाजाऊंगी, और सपत्नी से रहित हुई तेरे साथ सुख से विचरूंगी ॥ १२ ॥ यह कहकर अङ्गारे के सदृश नेत्रोंवाली हिरण के बच्चे के तुल्य नेत्रोंवाली(सीता)की ओर क्रोध से दौडी जैसे बडी उल्का रोहिणी की ओर ॥ १३ ॥ मृत्यु की फांस के तुल्य आती हुई उसको कुपित हुआ महाबली राम रोककर लक्ष्मण से बोला

मूल—क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहासः कथंचन । न कार्यः पश्य वैदेहीं

तपस्वी, ब्रह्मचारी, दशरथ के पुत्र दोनों भाई राम और लक्ष्मण हैं॥६॥ वहां उन दोनों के मध्य में युवती, रूपवती, सारे भूषणों से भूषित अच्छी कमर वाली नारी मैंने देखी है ॥ १७ ॥ उस स्त्री की खातिर दोनों ने मिलकर मुझे अनाथा की तरह इस अवस्था को प्राप्त किया है ॥ ८ ॥ अब मैं उस कुटिल वृत्तवाली के और उन दोनों दुष्टों के फेनसहित रुधिर को रण में पीना चाहती हूं॥ ९ ॥ यह मेरी पहली इच्छा तुझसे पूरी कीजाए, उसके और उन दोनों के रुधिर को मैं युद्ध में पिऊं ॥ १० ॥ उसके ऐसा कहने पर क्रुद्ध हुए खर ने यमतुल्य चौदह महाबली राक्षसों को आज्ञा दी॥११॥ कि उन दोनों को और उस दुर्वृत्त वाली नारी को मारकर वापिस आओ, यह मेरी बहिन उनका रुधिर पियेगी ॥१२॥ हे राक्षसो ! मेरी बहिन का यह अभीष्ट मनोरथ है, जाओ और अपने तेज से उन दोनों को मारकर इसके इस मनोरथ को शीघ्र सम्पादन करो ॥ १३ ॥ उस से आज्ञा दिये हुए वह चौदह राक्षस वायु से प्रेरे हुए मेघों की तरह उसके साथ वहां गये ॥

सर्ग १६ (व० २०) उन चौदह राक्षसों का मारा जाना

मूल—ततः शूर्पणखा घोरा राघवाश्रममागता।राक्षसानाचचक्षे तौ भ्रातरौ सह सीतया ॥१॥ तां दृष्ट्वा राघवः श्रीमानागतांस्तांश्च राक्षसान् । अब्रवीद् भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥२॥ मुहूर्तं भव सौमित्रे सीतायाः प्रत्यनन्तरः । इमानस्या वधिष्यामि पदवीमागतानिह॥३॥वाक्यमेतत्ततः श्रुत्वा रामस्य विदितात्मनः । तथेति लक्ष्मणो वाक्यं राघवस्य प्रपूजयन् ॥ ४ ॥ राघवोऽपि महच्चापं चामीकरविभूषितम् । चकार सज्यं धर्मात्मा तानि रक्षांसि चाब्रवीत् ॥५॥+फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ । वसन्तौ दण्डकारण्ये किमर्थमुपहिंसथ ॥ ६ ॥+तिष्ठतैवात्र संतुष्टा नोपावर्त्ति

तुमर्हथ। यदि प्राणैरिहार्थो वो निवर्तध्वं निशाचराः ॥ ७ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते चतुर्दश । ऊचुर्वाचं सुसंक्रुद्धा ब्रह्मघ्नाः शूलपाणयः ॥ ८ ॥ क्रोधमुत्पाद्य नो भर्त्तुः खरस्य सुमहात्मनः । त्वमेव हास्यसे प्राणान्सद्योऽस्माभिर्हतो युधि ॥ ९ ॥ का हि ते शक्तिरेकस्य बहूनां रणमूर्धनि । अस्माकमग्रतः स्थातुं किं पुनर्योद्धुमाहवे ॥ १० ॥ इत्येवमुक्त्वा संरब्धा राक्षसास्ते चतुर्दश । उद्यतायुधानिस्त्रिंशा राममेवाभिदुद्रुवुः॥ ११ ॥ चिक्षिपुस्तानि शूलानि राघवं प्रति दुर्जयम । तानि शूलानि काकुत्स्थः समस्तानि चतुर्दश॥ १२ ॥ तावद्भिरेव चिच्छेद शरैः काञ्चनभूषितैः । गृहीत्वा धनुरायम्य लक्ष्यानुदिश्य राक्षसान् ॥ १३ ॥ मुमोच राघवो बाणान्वज्रानिव शतक्रतुः । ते भित्त्वा रक्षसां वेगाद्वक्षांसि रुधिरप्लुताः ॥ १४ ॥ विनिष्पेतुस्तदा भूमौ वल्मीकादिव पन्नगाः । तैर्भग्नहृदया भूमौ भिन्नमूला इव द्रुमाः ॥ १५ ॥ निपेतुः शोणितस्नाता विकृता विगतासवः । तान्भूमौ पतितान्दृष्ट्वा राक्षसी क्रोधमूर्छिता ॥ १६ ॥ उपगम्य खरं सा तु किंचित्संशुष्कशोणिता । पपात पुनरेवार्ता सनिर्यासेव बल्लरी ॥ १७ ॥

टीका—तब उस घोर शूर्पणखा ने राम के आश्रम में आकर सीता समेत वह दोनों भाई दिखलाये॥१॥श्रीमान् राम उस (शूर्पणखा)को और उन राक्षसों को आया देखकर चमकते हुए तेजवाले भाई लक्ष्मण से बोला ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण थोड़ी देर सीता की रखवाली कर, मैं इनको यहां मारूंगा, जो इसके मार्ग पर आये हैं ॥ ३ ॥ अपने आपको जानने वाले राम के वाक्य को सुनकर लक्ष्मण ने तथास्तु कहकर राम के वचन का आदर किया ॥ ४ ॥ और उधर धर्मात्मा राम सुवर्ण से भूषित बड़े धनुष में चिल्ला चढ़ाकर उन राक्षसों से बोला ॥ ५ ॥ हम दोनों फल मूल के खाने वाले

तपस्वी ब्रह्मचारी दण्डक वन में रहते हैं, किसलिये हमें तंग करते हो ॥ ६ ॥ यहीं संतोष करके ठहर जाओ, मेरे निकट मत आओ। यदि प्राणों से आपको प्रयोजन है, तो हे राक्षसो वापिस लौट जाओ ॥ ७ ॥ उसके वचन को सुनकर ब्राह्मणों के विरोधी शूल हाथों में लिये वह चौदह राक्षस अत्यन्त क्रुद्ध हुए यह वचन बोले ॥ ८ ॥ हमारे स्वामी महात्मा खर का क्रोध उत्पन्न करके तूही हमसे युद्ध में मारा हुआ जल्दी प्राणों को छोड़ेगा ॥ ॥ ९ ॥ तुझ अकेले की हम बहुतों के सामने खड़ा होने की भी क्या शक्ति है, क्या फिर रण में युद्ध करने की ॥ १० ॥ यह कहकर क्रुद्ध हुए वह चौदह राक्षस शूल और तलवार उठाकर राम की ओर दौड़े ॥ ११ ॥ दुर्जय राघव की ओर उन्होंने अपने शूल फैंके, राम ने उन चौदह शूलों को ॥ १२ ॥ सुवर्ण से भूषित उतने ही तीरों से काट दिया, और धनुष को पकड़कर खींचकर राक्षसों को लक्ष्य रखकर ॥ १३ ॥ चौदह बाण छोड़े, जैसे इन्द्र वज्र छोड़ता है, वह बांबी से निकले काले नागों की तरह वेग से राक्षसों की छातियों को फोड़कर रुधिर से लिबड़े हुए भूमि पर गिरे, जब उनके हृदय बिंध गये, तो वह कटे हुए वृक्षों की तरह भूमि पर गिर पड़े॥ १४, १५ ॥ लहू से न्हाए गये, विकृत होगए, और उनके प्राण निकल गये। उनको पृथिवी पर गिरा हुआ देखकर क्रोध से मूर्च्छित हुई राक्षसी ॥ १६ ॥ खर के पास आई, उसका लहू सूख गया था वह पीड़ित हुई बेल की तरह पृथिवी पर गिर पड़ी ॥ १७ ॥

सर्ग १७ [व० २१] शूर्पणखा का खर को उत्तेजना देना

मूल—स पुनः पतितां दृष्ट्वा क्रोधाच्छूर्पणखां पुनः। उवाच व्यक्तया वाचा तामनर्थार्थमागताम् ॥ १ ॥ मया त्विदानीं शूरास्ते राक्षसाः पिशिताशनाः। त्वत्प्रियार्थं विनिर्दिष्टाः किमर्थं रुद्यते पुनः ॥ २ ॥

भक्ताश्चैवानुरक्ताश्च हिताश्च मम नित्यशः । हन्यमाना न हन्यन्ते न न कुर्युर्वचो मम ॥ ३ ॥ किमेतच्छ्रोतुमिच्छामि कारणं यत्कृते पुनः । हा नाथेति विनदन्ती सर्पवच्चेष्टसे क्षितौ ॥ ४ ॥ इत्येवमुक्त्वा दुर्धर्षा खरेण परिसान्त्विता । विमृज्य नयने सास्रे खरं भ्रातरमब्रवीत् ॥ ५ ॥ प्रेषिताश्च त्वया शूरा राक्षसास्ते चतुर्दश । निहन्तुं राघवं घोरं मत्प्रियार्थं सलक्ष्मणम् ॥ ६ ॥ तान्भूमौ पतितान्दृष्ट्वा क्षणेनैव महाजवान् । रामस्य च महत्कर्म महांस्त्रासोऽभवन्मम ॥७॥ सास्मि भीता समुद्विग्ना विषण्णा च निशाचर । शरणं त्वां पुनः प्राप्ता सर्वतो भयदर्शिनी॥ ८ ॥ एते च निहता भूमौ रामेण निशितैः शरैः । ये च मे पक्षवीं प्राप्ता राक्षसाः पिशिताशनाः ॥ ९ ॥ मयि ते यद्यनुक्रोशो यदि रक्षःसु तेषु च । रामेण यदि शक्तिस्ते तेजो वास्ति निशाचर ॥ १० ॥ दण्डकारण्यनिलयं जहि राक्षसकण्टकम्। यदि राममामित्रघ्नं न त्वमद्य वधिष्यसि ॥ ११ ॥ तव चैवाग्रतःप्राणांस्त्यक्ष्यामि निरपत्रपा । मानुषौ तौ न शक्नोषि हन्तुं वै रामलक्ष्मणौ ॥ १२ ॥ निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्य वासस्ते कीदृशास्त्विह । राम तेजोभिभूतो हि त्वं क्षिप्रं विनशिष्यसि ॥ १३ ॥

टीका—शूर्पणखा को क्रोध से फिर गिरा हुआ देखकर (अपने कुल के) अनर्थ के लिये आई उसको स्पष्ट वाणी से खर बोला ॥ १ ॥ मैंने तो अब वह रुधिर पीने वाले शूरवीर राक्षस तेरे प्रिय के लिये भेजे थे, जो कि भक्तिवाले, अनुराग वाले, मेरे सदा हिती थे, जो शत्रुओं से मारे जाते हुए भी न मरें, और यह भी नहीं, कि मेरा बचन न करें, फिर तू किसलिये रोती है ॥ २, ३ ॥ यह क्या ? मैं सुनना चाहता हूं वह कारण, जिसके लिये तू फिर हा नाथ इस प्रकार रोती हुई सांप की तरह पृथिवी पर लोट रही है ॥ ४ ॥ खर ने जब ऐसे कहा और तसल्ली दी, तो वह दुर्धर्षा नेत्रों से आंसुओं

को पोंछकर भाई खर से बोली ॥ ५ ॥ तूने मेरे प्रिय के अर्थ लक्ष्मण समेत भयानक राम को मारने के लिये चौदह शूरवीर राक्षस भेजे थे॥६॥पर उन बड़े वेगवालों को थोड़ी ही देर में भूमि पर गिरा हुआ देखकर और राम का महत्कर्म देखकर मुझे बड़ा भय हुआ है ॥७॥सो मैं डरी हुई कांपती हुई निराश हुई हे निशाचर! सब ओर से भय देखती हुई फिर तेरी शरण में आई हूं॥८॥ रुधिर पीने वाले राक्षस जो मेरे साथ गये थे, उनको तीक्ष्ण बाणों से राम ने पृथिवी पर मार गिराया है ॥ ९ ॥ सो यदि मेरे ऊपर दया है, यदि उन राक्षसों के ऊपर दया है,और हे निशाचर!यदि राम के साथ तेरी शक्ति है, और तुझमें तेज है॥ १० ॥ तो दण्डक वन में स्थान पाए इस राक्षसों के कांटे को हटा,यदि शत्रुओं के मारने वाले राम को तू अब नहीं मारेगा ॥ ११ ॥ तो मैं जिसकी लज्जा जाचुकी है, तेरे सामने प्राणों को त्याग दूंगी।यदि उन मानुष राम लक्ष्मण को मार नहीं सकेगा ॥ १२ ॥ तो तपहीन थोड़ी शक्ति वाले तुझ का यहां वास कैसा, राम के तेज से दबा हुआ तू जल्दी नष्ट होजायगा ॥ १३ ॥

सर्ग १८ [व० २२] सेनापति खर की चढ़ाई

मूल—एवमाधर्षितः शूरः शूर्पनख्या खरस्ततः । उवाच रक्षसां मध्ये खरः खरतरं वचः ॥ १ ॥ तवापमानप्रभवः क्रोधोऽयमतुलो मम । न शक्यते धारयितुं लवणाम्भ इवोल्वणम् ॥ २ ॥ न रामं गणये वीर्यान्मानुषं क्षीणजीवितम् । आत्मदुश्चरितैः प्राणान्हतो योऽद्य विमोक्ष्यते ॥ ३ ॥बाष्पः संधार्यतामेष संभ्रमश्च विमुच्यताम्। अहं रामं सह भ्रात्रा नयामि यमसादनम् ॥ ४ ॥ संप्रहृष्टा वचः श्रुत्वा खरस्य वदनाच्च्युतम् । प्रशशंस पुनर्मौर्ख्याद्भ्रातरं रक्षसां वरम् ॥ ५ ॥ तथा परुषितः पूर्वं पुनरेव प्रशंसितः । अब्रवीद्दूषणं

नाम खरं सेनापति तदा॥६॥उपस्थापय मे क्षिप्रं रथं सौम्य धनूंषि च। शरांश्च चित्रान्खड्गांश्च शक्तीश्च विविधाः शिताः ॥७॥ अग्रे निर्यातुमिच्छामि पौलस्त्यानां महात्मनाम्। वधार्थं दुर्विनीतस्य रामस्य रणकोविद ॥८॥ इति तस्य ब्रुवाणस्य सूर्य वर्णं महारथम्। सदश्वैः शबलैर्युक्तमाचचक्षेऽथ दूषणः ॥९॥ ध्वजनिस्त्रिंशसंपन्नं किंकिणवरभूषितम् सदश्वयुक्तं सोऽमर्षादारुरोह खरस्तदा ॥१०॥ ततस्तद्राक्षसं सैन्यंघोरचर्मायुधध्वजम् निर्जगाम जनस्थानान्महानादं महाजवम् ॥११॥

टीका——इस प्रकार शूर्पणखा से दबाया हुआ तीक्ष्ण खर राक्षसों के मध्य में तीक्ष्ण तर वचन बोला ॥१४॥ तेरे अपमानसे उत्पन्न हुआ मुझे अतुल क्रोध है, जिसको मैं व्रण पर डाले हुए लवणयुक्त जल की तरह धार नहीं सक्ता ॥२॥ मैं बल के हेतु से राम को कोई चीज़ नहीं गिनता, उसका जीवन क्षीण होचुका, अपने दुश्चरितों से मारा हुआ वह आज प्राणों को छोड़ेगा ॥३॥ आंसुओं को रोक और घबराहट छोड़, मैं राम को उसके भाई समेत यम के घर पहुंचाता हूं ॥ ४ ॥खर के मुख से निकले वचन को सुनकर प्रसन्न हुई वह मूर्खता से राक्षसवर भाई की फिर प्रशंसा करती भई ॥५॥ पहले उस से कठोर कहा हुआ और फिर प्रशंसा किया हुआ खर सेनापति दूषण से बोला ॥ ६ ॥ हे सौम्य ! जल्दी लाओ मेरा रथ, धनुष, बाण, विचित्र तलवारें और अनेक प्रकार की तीक्ष्ण बरछियें ॥७॥ हे रण में निपुण ! मैं उस दुर्विनीत राम के बध के लिये पुलस्त्यवंशी (राक्षस) महात्माओं के आगे चलना चाहता हूं ॥ ८ ॥ उसके ऐसा कहने पर दूषण ने विचित्र घोड़ों से युक्त सूर्य तुल्य (चमकता हुआ) महारथ उपस्थित हुआ बतलाया ॥९ ॥ ध्वजा और तलवार से युक्त सुन्दर घंटियों से भूषित, अच्छे

घोड़ों से युक्त रथ पर खर क्रोध के साथ आरूढ़ हुआ ॥ १० ॥
तब राक्षसों की बड़ी सेना भयंकर दारु तलवार और ध्वजा से
युक्त हुई, बड़ी गर्जती हुई बड़े वेग के साथ जनस्थानसे निकली ११

सर्ग १९[व० २४] राम की युद्ध के लिये तय्यारी

मूल—तानुत्पातन्महाघोरानरमोहष्ट्वात्यर्षणः। प्रजानामहितान्दृष्ट्वा
वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १ ॥ अग्रतो नो भयं प्राप्तं संशयो जीवि-
तस्य च। संप्रहारस्तु सुमहान्भविष्यति न संशयः ॥ २ ॥ अयमा-
ख्याति मे बाहुः स्फुरमाणो मुहुर्मुहुः। संनिकर्षे तु नः शूर जयं शत्रोः
पराजयम् ॥ ३ ॥ सुप्रभं च प्रसन्नं च तव वक्त्रं हि लक्ष्यते ॥ ४॥+
उद्यमानां हि युद्धार्थं येषां भवति लक्ष्मण। निष्प्रभं वदनं तेषां भव-
त्यायुः परिक्षयः ॥ ५ ॥ रक्षसां नर्दतां घोषः श्रूयतेऽयं महाध्वनिः।
आहतानां च भेरीणां राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ॥ ६ ॥ अनागतविधानं
तु कर्त्तव्यं शुभमिच्छता। आपदा शङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता॥७॥
तस्माद् गृहीत्वा वैदेहीं शरपाणिर्धनुर्धरः। गुहामाश्रय शैलस्य दुर्गां
पादपसंकुलाम् ॥ ८ ॥ प्रतिकूलितुमिच्छामि न हि वाक्यमिदं त्वया।
शापितो मम पादाभ्यां गम्यतां वत्स मा चिरम्॥ ९ ॥ त्वं हि शूरश्च
बलवान्हन्या एतान्न संशयः। स्वयं निहन्तुमिच्छामि सर्वानेव निशा-
चरान् ॥ १० ॥ एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः सह सीतया। शराना-
दाय चापं च गुहां दुर्गां समाश्रयात् ॥ ११ ॥ तस्मिन्प्रविष्टे तु गुहां
लक्ष्मणे सह सीतया। हन्त निर्युक्तमित्युक्त्वा रामः कवचमाविशत्
॥ १२ ॥ स तेनाग्निनिकाशेन कवचेन विभूषितः। बभूव रामस्ति-
मिरे महानग्निरिवोत्थितः ॥ १३ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च
सह चारणैः। समेयुश्च महात्मानो युद्धदर्शनकांक्षया ॥ १४ ॥ ऋष-
यश्च महात्मानो लोके ब्रह्मर्षिसत्तमाः। समेत्य चोचुः सहितास्तेऽ-
न्योन्यं पुण्यकर्मणः ॥ १५ ॥ स्वस्ति गोब्राह्मणानां च लोकानां

चेव संस्थिताः । जयतां राघवो युद्धे पौलस्त्यान्रजनीचरान॥१६॥
इति संभाष्यमाणे तु देवगन्धर्वचारणैः । अनीकं यातुधानानां समन्तात्प्रत्यपद्यत ॥१७॥ रामोऽपि चारंपश्चक्षुः सर्वतो रणपण्डितः।
ददर्श खरसैन्य तद्युद्धायाभिमुखो गतः ॥ १८॥ वितत्य च धनुर्भीमं तूण्याश्चोद्धृत्य सायकान् क्रोधमाहारयत्तीव्रं वधार्थं सर्वरक्षसाम्
॥१९॥ दुष्प्रेक्ष्यश्च क्रुद्धो युगान्ताग्निरिव ज्वलन् । तं दृष्ट्वा तेजसाप्यव्यथन्वनदेवताः ॥२०॥

उन महाघोर उत्पातों को देखकर अत्यन्त न सहारनेवाला राम प्रजा का अहित देखकर लक्ष्मण से यह वाक्य बोला ॥ १ ॥ आगे हमारे भय आया है, जीवित का भी संशय प्राप्त हुआ है, बहुत भारी संप्रहार (मरन मारन) होगा, कोई सन्देह नहीं ॥२॥ किन्तु यह (दाईं) मेरी भुजा बार २ फड़कती हुई हे वीर! निकट ही हमारा जय और शत्रु का पराजय बतलाती है ॥३॥ तेरा मुख भी कान्तिवाला और प्रसन्न प्रतीत होता है ॥४॥ युद्ध के वास्ते तय्यार हुए जिनका हे लक्ष्मण! मुख कान्ति-हीन होजाता है, उनकी आयु क्षीण होजाती है ॥५॥ गर्जते हुए राक्षसों की ध्वनि और क्रूर कर्मा राक्षसों से ताड़न की हुई भेरियों की यह महाध्वनि सुनाई देती है ॥६॥ आपदा की शंका होने पर अपना सुख चाहते हुए बुद्धिमान् को आने वाली बात का इलाज करना चाहिये ॥७॥ इसलिये तू धनुषबाण हाथ में ले सीता को साथ लेकर वृक्षों से ढकी हुई पर्वत की दुर्गम कन्दरा में चलाजा ॥ ८ ॥ मैं नहीं चाहता कि तू मेरे इस वचन का प्रत्युत्तर देवे मेरे पाओं की शपथ है जा वत्स देर न कर ॥९॥ तू शूरवीर है, बलवान् है, इनको मार सकता है, इसमें सन्देह नहीं, पर मैं स्वयं ही इन सारे राक्षसों को मारना चाहता हूं ॥ १ ॥ राम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण धनुषाण लेकर सीता सहित दुर्गम गुफा में चला गया ॥११॥

सीता समेत लक्ष्मण जब गुफा में प्रविष्ट होगया, तब अहो ठीक हुआ यह कहकर रामने कवच पहना ॥ १२ ॥ उस अग्नितुल्य कवच से सजा हुआ राम अन्धेरे में उठे महान् अग्नि की तरह चमका ॥ १२ ॥ तब गन्धर्वों सहित देवता, और चारणों सहित सिद्ध महात्मा युद्ध दर्शन की आकांक्षा से इकट्ठे हुए ॥ १४ ॥ महात्मा ऋषि और लोक में पुण्यकर्मा ब्रह्मर्षिवर इकट्ठे होकर परस्पर कहने लगे ॥ १५ ॥ स्वस्ति हो गौ ब्राह्मणों को और सब लोकों को, युद्ध में राघव पौलस्त्यवंशी राक्षसों पर विजय लाभ करे ॥१६॥ देव गन्धर्व और चारणों के ऐसा कहते हुए राक्षसों की सेना इर्द गिर्द आपहुंची ॥ १७ ॥ रणपण्डित राम ने भी सब ओर आंख को घुमाया, खर की सेना देखी और युद्ध के लिये सन्मुख गया ॥ १८ ॥ भयङ्कर धनुष को खींचकर और भत्थे से तीर निकालकर सारे राक्षसों के वध के लिये तीव्र क्रोध को प्राप्त हुआ ॥१९॥ क्रुद्ध हुआ जलती हुई प्रलयाग्नि की तरह दुष्प्रेक्ष्य (जिस की ओर आंख उठाई न जासके) होगया, ऐसे तेज से आविष्ट उसे देखकर बनदेवता कांप उठे ॥ २० ॥

सर्ग २० (ब० २१) राम और राक्षसों का युद्ध

मूल—अवष्टब्धधनु रामं क्रुद्धं तं रिपुघातिनम् । ददर्शाश्रममागम्य खरः सह पुरःसरैः ॥ १ ॥ ते रामं शरवर्षाणि व्यसृजन्रक्षसां गणाः। शैलेन्द्रमिव धाराभिर्वर्षमाणा महाघनाः ॥ २ ॥ तानि मुक्तानि शस्त्राणि यातुधानैः स राघवः। प्रतिजग्राह विशिखैर्नद्योघानिव सागरः ॥ ३ ॥ स तैः प्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रो न विव्यथे। रामः प्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिव महाचलः ॥ ४ ॥ स विद्धः क्षतजादिग्धः सर्वगात्रेषु राघवः। बभूव रामः सन्ध्याभ्रैर्दिवाकर इवावृतः ॥ ५ ॥ ततो रामस्तु संक्रुद्धो मण्डलीकृतकार्मुकः। ससर्ज निशितान्बाणाञ्छतशोऽथ

सहस्रशः ॥ ६ ॥ दुरावारान्दुर्विषहान्कालपाशोपमान्रणे । आददु रक्षसां प्राणान्पाशाः कालकृता इव ॥ ७ ॥ चिच्छिदुर्बिभिदुश्चैव रामबाणा गुणच्युताः । पदातीन्समरे हत्वा अनयद्यमसादनम् ॥८॥ तत्सैन्यं विविधैर्बाणैरर्दितं मर्मभेदिभिः । न रामेण सुखं लेभे शुष्कं वनमिवाग्निना ॥ ९ ॥+नाददानं शरान्घोरान्विमुञ्चन्तं शरोत्तमान् विकर्षमाणं पश्यन्ति राक्षसास्ते शरार्दिताः ॥ १० ॥ युगपत्पतनैश्च युगपच्च हतैर्भृशम् । युगपत्पतितैश्चैव विकीर्णा वसुधाभवत् ॥११ निहताः पतिताः क्षीणाश्छिन्ना भिन्ना विदारिताः । तत्र तत्र स्म दृश्यन्ते राक्षसास्ते सहस्रशः ॥१२॥ तान्दृष्ट्वा निहतान्सर्वे राक्षसाः परमातुराः । न तत्र चलितुं शक्ता रामं परपुरंजयम् ॥१३॥

टीका—उधर आगे चलने वाले योद्धों के साथ खर आश्रम में आके पहुंचा, और शत्रुओं के मारने वाले उस राम को धनुष थामे हुए क्रुद्ध हुए देखा ॥१॥ वह राक्षसों के समूह राम पर तीरों की वर्षा करते भए, जैसे महामेघ पर्वत पर वर्षा की धारें बरसाते हैं ॥ २ ॥ राक्षसों से छोड़े हुए उन शस्त्रों को राम ने तीरों से स्वीकार किया, जैसे सागर नदियों के प्रवाहों को स्वीकार करता है ॥ ३ ॥ राम उन घोर प्रहारों से क्षत होकर भी चमकते हुए बहुत वज्रों से पर्वत की तरह जरा न हिला ॥ ५ ॥ विंधकर सारे अंगों पर रुधिर की बून्दें पड़ने से राम सन्ध्या के बादलों से घिरे सूर्य की तरह होगया ॥६॥ तब क्रुद्ध हुए रामने धनुष को गोल करके (ज़ोर से खींचकर) अनेकानेक तीव्र बाण छोड़े ॥ ७॥ जिनको रणमें न कोई रोक सकता है, न कोई सह सक्ता है जो काल की फांसों के तुल्य हैं, और काल की फांसी के तुल्य ही उन्होंने राक्षसों के प्राण लेलिये॥८॥ गुण (गोशे) से निकले हुए बाणों से राम ने राक्षसों को छिन्नभिन्न कर दिया, और प्यादों को युद्ध में मार मारकर यम के द्वार पहुं-

चाया ॥ ९ ॥मर्मों के फोड़ने वाले विविध बाणों द्वारा रामसे पीड़ित हुई वह सेना अग्नि से सूखे वन की तरह सुख न लेती भई ॥१०॥ बाणों से तंग आए हुए वह राक्षस राम को न भयंकर बाण लेता हुआ न छोड़ता हुआ देखते हैं, किन्तु धनुष को ही खींचता हुआ देखते हैं ॥११॥ एक साथ गिरते हुए, एक साथ मरे हुए, एक साथ गिरे हुए बहुत से राक्षसों से मैदान भर गया ॥१२॥ मरे हुए गिरे हुए, अन्त के मांस छेते हुए, कटे हुए फटे हुए, विदीर्ण हुए, अनेक राक्षस वहां वहां दीखने लगे ॥१३॥ उनको मरा हुआ देखकर परम पीड़ित हुए शेष सारे राक्षस वहां शत्रुओं के किलों को तोड़ने वाले राम के सम्मुख होने के अशक्त होगए ॥१४॥

सर्ग २१ (वा० २६) राक्षसों की सेना का मारा जाना

मूल—दूषणस्तु स्वकं सैन्य हन्यमानं विलोक्य च । शरैरशनिकल्पैस्तं राघवं समवारयत् ॥१॥ ततो राम स्तुसंक्रुद्धः क्षुरेणास्य महाद्धनुः । चिच्छेद समरे वीरश्चतुर्भिश्चतुरा हयान् ॥२॥ हत्वा चाश्वान्शरैस्तीक्ष्णैरर्धचन्द्रेण सारथेः । शिरो जहार तद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याध वक्षसि ॥३॥ स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । जग्राह गिरिशृङ्गाभं परिघं लोमहर्षणम् ॥४॥ तं महोरगसंकाशं प्रगृह्य परिघं रणे । दूषणोऽभ्यपतद्रामं क्रूरकर्मा निशाचरः ॥५॥ तस्याभिपतमानस्य दूषणस्य च राघवः । द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद सहस्ताभरणौ भुजौ ॥६॥ भ्रष्टस्तस्य महाकायः पपात रणमूर्धनि । परिघश्छिन्नहस्तस्य शक्रध्वज इवागतः ॥७॥ दृष्ट्वा तं पतितं भूमौ दूषणं निहतं रणे । साधु साध्विति काकुत्स्थं सर्वभूतान्यपूजयन् ॥८॥ एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धास्त्रयः सेनाग्रयायिनः । संहत्याभ्यद्रवन्रामं मृत्युपाशावपाशिताः ॥९॥ महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमाथी च महाबलः । महाकपालो विपुलं शूलमुद्यम्य राक्षसः ॥१०॥ स्थूलाक्षः पट्टिशं गृह्य प्रमाथी च पर-

श्वधम् । दृष्ट्वैवापततस्तांस्तु राघवः सायकैः शितैः ॥११॥ तीक्ष्णाग्रैः प्रतिजग्राह संप्राप्तानतिथीनिव । महाकपालस्य शिरश्चिच्छेद रघुनन्दनः ॥ १२ ॥ असंख्येयस्तु बाणौघैः प्रममाथ प्रमाथिनम् । स्थूलाक्षस्याक्षिणी स्थूले पूरयामास सायकैः ॥१३॥ तत पावकसंकाशै-र्हेमवज्रविभूषितैः । जघान शेषं तेजस्वी तस्य सैन्यस्य सायकैः ॥१४॥ तैर्मुक्तकेशैः समरे पतितैः शोणितोक्षितैः । विस्तीर्णा वसुधा कृत्स्ना महावेदिः कुशैरिव ॥१५॥ तत्क्षणे तु महाघोरं वनं निहतराक्षसम् । बभूव निरयप्रख्यं मांसशोणितकर्दमम् ॥ १६॥ चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । हतान्येकेन रामेण मानुषेण पदातिना ॥१७॥ तस्य सैन्यस्य सर्वस्य खरः शेषो महारथः । राक्षसस्त्रिशिराश्चैव रामश्च रिपुसूदनः ॥१८॥ शेषा हता महावीर्या राक्षसा रणमूर्धनि घोरा दुर्विषहाः सर्वे लक्ष्मणस्याग्रजेन ते ॥

टीका—दूषण अपनी सेना को मरता हुआ देखकर बिजली तुल्य बाणों से राम को घेरता भया ॥ १॥ इसस अधिक क्रोध में आए वीर राम ने रण में क्षुर से इसके बड़े धनुष का काट डाला, और चार तीक्ष्ण बाणों से इसके चारों घोड़ों को मारकर अर्ध-चन्द्र से सारथिका सिर उड़ा दिया और तीन बाण उसकी छाती में घोंप दिये ॥ २, ३ ॥ धनुष के कट जाने से घोड़ों के और सारथि के मरने से रथ हीन हुए, दूषण ने रोंगटे खड़े करने वाले पर्वत के शिखर तुल्य परिघ को पकड़ा ॥ ४॥ बड़े नाग के तुल्य उस परिघ को उठाकर क्रुरकर्मा राक्षस दूषण राम की ओर झपटा ॥५॥ झपटते हुए उस दूषण की हाथों के भूषण युक्त दोनों भुजाओं को दो बाणों से राम ने काट डाला ॥ ६ ॥ फिसला हुआ उसका बड़ा देह रणभूमि में गिर पड़ा, और कटा हुआ परिघ इन्द्रध्वज की तरह आगे जापड़ा ॥ ७ ॥ रण में भूमि पर

गिरे हुए दूषणको देखकर सब लोगों ने राम को शाबाश २ से आदर किया ॥ ८ ॥ इस अवसर में क्रुद्ध हुए सेना के अग्रगामी तीन राक्षस मृत्यु के फांस से फांसे हुए मिल कर राम की ओर दौड़े ॥ ९ ॥ महाकपाल, स्थूलाक्ष, और महाबली प्रमाथी । महाकपाल राक्षस तो बड़े शूल को उठाकर ॥ १० ॥ स्थूलाक्ष पट्टिश को लेकर और प्रमाथी परश्वध को लेकर । उनको आता हुआ देख कर राम ने तीक्ष्ण नोकों वाले तीक्ष्ण बाणों से प्राप्त हुए अतिथियों की तरह स्वीकार किया, और झटाझट छूटते हुए असंख्य बाणसमूहों से महाकपाल का सिर काट डाला, प्रमाथी को चूर चूर कर दिया, और स्थूलाक्ष के स्थूल नेत्रों को तीरों से भर दिया ॥ ११, १२, १३ ॥ तदनन्तर तेजस्वी राम ने सुवर्ण और वज्र से भूषित अग्नि तुल्य तीरों से उस सेना से बचे हुओं को मार डाला ॥ १४ ॥ संग्राम में गिरे हुए, खुले बालों वाले, रुधिर लिपड़े हुए वह राक्षस इस तरह भूमि पर साथ २ बिछ गए जैसे महावेदी में कुशा बिछाई जाती है ॥ १५॥ उस समय वह घोर बन जिस में राक्षस मरे पड़े हैं मांस और रुधिर के कीचड़ से नरक तुल्य होगया ॥ १६ ॥ चौदह सहस्र * भीमकर्मा राक्षस अकेले प्यादे मानुष राम ने मार डाले ॥ १७ ॥ उस सारी सेना में से महारथी खर और त्रिशिरा राक्षस शेष रहे और शत्रुओं के मारने वाला राम ॥ १८ ॥ बाकी के सारे बड़ी शक्तिवाले, भयंकर, न सहारे जाने वाले राक्षस सारे के सारे लक्ष्मण के बड़े भाई ने रणभूमि में मारडाले ॥ १९ ॥

---

* यह अत्युक्ति हो, वा सहस्र से कुछ और अभिप्राय होसक्ता है, पर इस का इस तरह जगह २ वर्णन है, कि प्रक्षिप्त नहीं ठहर सक्ता. सर्ग ३२ के पहले श्लोक में इस संख्या को इस तरह दुहराया है, कि उस को छोड़ने से सम्बन्ध ही टूट जाता है

सर्ग २२ (व० २७) त्रिशिरा राक्षस का मारा जाना

खरं तु रामाभिमुखं प्रयान्तं वाहिनीपतिः । राक्षसस्त्रिशिरा नाम संनिपत्येदमब्रवीत् ॥१॥ मां नियोजय विक्रान्त त्वं निवर्तस्व साहसात् । पश्य रामं महाबाहुं संयुगे विनिपातितम् ॥ २ ॥ अहं वास्य रणे मृत्युरेष वा समरे मम । विनिवर्त्य रणोत्साहं मुहूर्तं प्राश्निको भव ॥ ३ ॥ प्रहृष्टो वा हते रामे जनस्थानं प्रयास्यसि । मयि वा निहते रामं संयुगाय प्रयास्यसि ॥ ४ ॥ खरस्त्रिशिरसा तेन मृत्युलोभात्प्रसादितः । गच्छ युद्धेत्यनुज्ञातो राघवाभिमुखो ययौ ॥ ५ ॥ आगच्छन्तं त्रिशिरसं राक्षसं प्रेक्ष्य राघवः । धनुषा प्रतिजग्राह विधुन्वन्सायकाञ्शितान् ॥ ६ ॥ स संप्रहारस्तुमुलो रामत्रिशिरसोस्तदा । संबभूवातिबलिनोः सिंहकुञ्जरयोरिव ॥ ७॥ चतुर्भिस्तुरगानस्य शरैः संनतपर्वभिः । न्यपातयत तेजस्वी चतुरस्तस्य वाजिनः ॥ ८ ॥ अष्टभिः सायकैः सूतं रथोपस्थे न्यपातयत् ।रामश्चिच्छेद बाणेन ध्वजं चास्य समुच्छ्रितम् ॥ ९ ॥ ततो हतरथात्तस्मादुत्पतन्तं निशाचरम् । चिच्छेद रामस्तं बाणैर्हृदये सोऽभवज्जडः ॥ १० ॥

टीका—तब राम के अभिमुख जाते हुए खर को सेनापति त्रिशिरा राक्षस कूदकर यह वचन बोला॥ १॥ मुझे विक्रमशाली को नियुक्त करें, आप इस साहस से हटे रहें, आप देखें महाबाहु राम को युद्ध में गिराया हुआ ॥ २ ॥ संग्राम में मैं इसकी मृत्यु हूंगा, वा यह मेरी मृत्यु होगा, आप अपने रण के उत्साह को रोककर थोड़ी देर मध्यस्थ रहिये ॥ ३ ॥ या तो रामके मरने पर प्रसन्न हुए आप जनस्थान को जाएंगे, वा मेरे मरने पर युद्ध के लिये राम की ओर जायेंगे ४ मृत्यु के लालच से जब त्रिशिरा ने खर को प्रसन्न किया,तो उसने "जा, युद्ध कर" ऐसी अनुज्ञा देदी, और वह राम के अभिमुख गया ॥ ५ ॥ आते हुए त्रिशिरा राक्षस को देखकर राम ने तीक्ष्ण बाणों को उठाकर धनुष से उसको स्वीकार किया ॥ ६ ॥ घोर

और हाथी की तरह आति बली राम और त्रिशिरा का वह प्रबल युद्ध हुआ। तेजस्वी रामने झुके हुए पर्वोंवाले चार बाणों से उसके चारों घोड़े गिरा दिए॥ ८ ॥ आठ बाणों से सारथि को रथ की पीठ पर गिरा दिया, और एक बाण से उसकी ऊंची ध्वजा को काट डाला ॥ ९ ॥ तब निकम्मे हुए रथ से उछलते हुए उस राक्षस को राम ने बाणों से हृदय में बींध दिया और वह प्राणहीन होगया॥

सर्ग० २३ (व० २८) खर और राम का युद्ध।

मूल—निहतं दूषणं दृष्ट्वा रणे त्रिशिरसा सह। आससाद खरो रामं नमुचिर्वासवं यथा॥ १॥ विकृष्य बलवच्चापं नाराचान्रक्तभोजनान् खराश्चिक्षेप रामाय क्रुद्धानाशीविषानिव ॥ २ ॥ स सर्वांश्च दिशो बाणैः प्रदिशश्च महारथः। पूरयामास तं दृष्ट्वा रामोऽपि सुमहद्धनुः॥३ तद्बभूव शितैर्बाणैः खररामविसर्जितैः। पर्याकाशमनाकाशं सर्वतः शरसंकुलम् ॥ ४ ॥ ततः सूर्यनिकाशेन रथेन महता खरः। आससादाथ तं रामं पतङ्ग इव पावकम् ॥ ५ ॥ ततोऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे महात्मनः। खरश्चिच्छेद रामस्य दर्शयन्हस्तलाघवम् ॥६॥ ततो गम्भीरनिर्ह्रादं रामः शत्रुनिबर्हणः। चकारान्ताय स रिपोः सज्यमन्यन्महद्धनुः ॥ ७ ॥ सुमहद्वैष्णवं यत्तदतिसृष्टं महर्षिणा। वरं तद्धनुरुद्यम्य खरं समभिधावत ॥ ८ ॥ ततः कनकपुङ्खैस्तु शरैः सन्नतपर्वभिः। चिच्छेद रामः संक्रुद्धः खरस्य समरे ध्वजम् ॥ ९ ॥ रथस्य युगमेकेन चतुर्भिः शबलान्हयान्। षष्ठेन च शिरः संख्ये चिच्छेद खरसारथेः ॥ १० ॥ प्रभग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः। गदापाणिरवप्लुत्य तस्थौ भूमौ खरस्तदा ॥ ११ ॥

टीका—रण में दूषण को मरा देखकर और त्रिशिरा को भी मरा देखकर, खर राम की ओर बढ़ा जैसे नमुचि इन्द्र की ओर ॥ १ ॥ जोर के साथ धनुष को खींचकर क्रुद्ध हुए खर ने नागों की तरह

रुधिर पीने वाले बाण राम की ओर फेंके ॥ २ ॥ उस महारथी ने बाणों से सारी दिशा और कोणें भरदीं, उसको देखकर राम ने भी धनुष को पूर्ण किया ॥ ३ ॥ खर और राम से छोड़े हुए उन तीक्ष्ण बाणों से आकाश बिना अवकाश के होगया, क्योंकि सारा बाणों से भर गया ॥ ४ ॥ तब सूर्य तुल्य बड़े रथ से खर राम के ओर निकट आया, जैसे पतंग अग्नि के ॥ ५ ॥ और हाथ की तेजी दिखलाते हुए उसने महात्मा राम के बाण सहित धनुष को मुट्ठी की जगह से काट डाला॥६॥तब शत्रुओं के मारनेवाले राम ने शत्रु के नाश के लिये सिंहनाद किया और दूसरा तय्यार धनुष उठा लिया ॥ ७ ॥ वह बहुत बड़ा धनुष जो महर्षि(अगस्त्य)ने दिया था, उस श्रेष्ठ धनुष को उठाकर खर की ओर दौड़ा॥ ८॥ और क्रुद्ध हुए ने सोने के नोक वाले तीक्ष्ण पर्वों वाले बाणों से युद्ध में खर की ध्वजा काट डाली ॥ ९ ॥ एक से रथ की जुआ,चार से चितकबरे घोड़े और छठे बाण से युद्ध में खर के सारथि का शिर काट डाला ॥ १० ॥ तब खर जिसका धनुष और रथ टूट गए हैं, घोड़े और सारथि मारा गया है, वह हाथ में गदा उठाकर उछलकर भूमि पर जा खड़ा हुआ ॥ ११ ॥

सर्ग० २४(व० २९)राम और खर के उत्तेजक वचन।

मूल—खरं तु विरथं रामो गदापाणिमवस्थितम्। मृदुपूर्वं महातेजाः पुरुषं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥+उद्वेजनीयो भूतानां नृशंसः पापकर्मकृत् । त्रयाणामपि लोकानामीश्वरोऽपि न तिष्ठति ॥ २ ॥ कर्म लोकविरुद्धं तु कुर्वाणं क्षणदाचर । तीक्ष्णं सर्वजनो हन्ति सर्पं दुष्टमिवागतम् ॥ ३ ॥ वसतो दण्डकारण्ये तापसान्धर्मचारिणः । किं नु हत्वा महाभागान्फलं प्राप्स्यसि राक्षस ॥ ४ ॥ + न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोकजुगुप्सिताः । ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्ण-

मूला इव द्रुमाः॥५॥+ अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः। घोरं पर्यागते काले द्रुमाः पुष्पमिवार्तवम् ॥ ६ ॥ न चिरात्प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम्। सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर ॥ ७ ॥ पापमाचरतां घोरं लोकस्याप्रियमिच्छताम्। अहमासादितो राजा प्राणान्हन्तुं निशाचर ॥ ८ ॥ ये त्वया दण्डकारण्ये भक्षिता धर्मचारिणः। तानद्य निहतः संख्ये ससैन्योऽनुगमिष्यसि९ एवमुक्तस्तु रामेण क्रुद्धः संरक्तलोचनः। प्रत्युवाच ततो रामं प्रहसन्क्रोधमूर्च्छितः ॥ १० ॥ प्राकृतान्राक्षसान्हत्वा युद्धे दशरथात्मज। आत्मना कथमात्मानमप्रशस्यं प्रशंससि ॥ ११ ॥ विक्रान्ता बलवन्तो वा ये भवन्ति नरर्षभाः। कथयन्ति न ते किंचित्तेजसा चातिगर्विताः ॥ १२ ॥ सर्वथा तु लघुत्वं ते कत्थतेन विदर्शितम्। सुवर्णप्रतिरूपेण तप्तेनेव कुशाग्निना ॥ १३ ॥ न तु मामिह तिष्ठन्तं पश्यसि त्वं गदाधरम्। पर्याप्तोऽहं गदापाणिर्हन्तुं प्राणान्रणे तव१४ कामं बह्वपि वक्तव्यं त्वयि वक्ष्यामि न त्वहम्। अस्तं प्राप्नोति सविता युद्धविघ्नस्ततो भवेत् ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वा परमक्रुद्धः स गदां परमाङ्गदाम्। खरश्चिक्षेप रामाय प्रदीप्तामशनिं यथा ॥ १६ ॥ तामापतन्तीं महतीं मृत्युपाशोपमां गदाम्। अन्तरिक्षगतां रामश्चिच्छेद बहुधा शरैः ॥ १७ ॥

टीका—रथ से हीन हुए और हाथ में गदा लेकर खड़े हुए खर को महातेजस्वी राम नर्मी से यह कठोर वाक्य बोला ॥ १ ॥ जीवों का तंग करनेवाला, दुर्जन, पाप कर्म कारी, पुरुष चाहे तीनोंलोकों का मालिक भी हो, तब भी वह नहीं ठहर सक्ता है ॥ २ ॥ हे निशाचर वह जो लोक विरुद्ध कर्म करता है, ऐसे क्रूर को सामने आए दुष्ट सर्प की तरह सभी लोग मारते हैं ॥ ३ ॥ दण्डक बन में रहते हुए महाभाग धर्मचारी तपस्वियों को मारकर हे राक्षस तू

किस फल को प्राप्त होगा ॥ ४ ॥ पाप कर्मोंवाले, लोक में निन्द-नीय क्रूर पुरुष (पिछले पुण्यके प्रभाव से) ऐश्वर्य को पाकर भी कटी हुई जड़वाले वृक्ष की तरह देर तक नहीं ठहरते हैं ॥ ५ ॥ करनेवाला समय आने पर पाप कर्म के भयंकर फल को अवश्य पाता है, जैसे वृक्ष आर्त्तव (मौसमी) फूल को ॥ ६ ॥ हे निशा-चर विष से मिले हुए अन्नों के खाने की तरह पाप कर्मों का फल लोक में जल्दी मिल जाता है॥ ७ ॥ भयंकर पाप करने वालों और लोक का अप्रिय चाहने वालोंके प्राणों को हनन करने के लिये मैं राजा बनकर आया हूं ॥ ८ ॥ दण्डकारण्य में तूने जो धर्मचारी भक्षण किये हैं, आज युद्ध में मरा हुआ तू सेना समेत उनके पीछे जाएगा ॥ ९ ॥ राम के ऐसा कहने पर क्रोध से उसके नेत्र लाल होगए, और क्रोध से मूर्च्छित हुआ हंसकर राम से यह वचन बोला ॥ १० ॥ हे दशरथ के पुत्र प्राकृत राक्षसों को युद्ध में मारकर कैसे आपही अपनी प्रशंसा करता है, जो तू प्रशंसा के योग्य नहीं है ॥ ११ जो मनुजवर पराक्रमवाले वा बलवाले हुआ करते हैं, वह तेज से अभिमानी पुरुष अपनी श्लाघा कुछ नहीं किया करते ॥ १२ ॥ सर्वथा अपनी श्लाघा से तूने अपना हलकापन दिखलाया है, जैसे नकली सोना आग से तपकर (अपना हलकापन दिखलाता है) ॥ १३ ॥ किन्तु तू मुझे हाथ में गदा लेकर खड़ा हुआ नहीं देखता है, हाथ में गदा लेकर मैं अकेला तेरे प्राण हरने को समर्थ हूं १४ हां मुझे बहुत कुछ कहना है, पर मैं तुझे कहता नहीं हूं, क्योंकि सूर्य अस्त होता है, इससे युद्ध में विघ्न होगा ॥ १५ ॥ यह कह-कर अतीव क्रोध के साथ खर ने उत्तम कड़ेवाली गदा जलती हुई बिजली की तरह राम की ओर फैंकी ॥ १६ ॥ मृत्यु की फांस के तुल्य आती हुई उस बड़ी गदा को राम ने अन्तरिक्ष में ही अनेक तीरों से टुकड़े २ कर दिया ॥ १७ ॥

सर्ग० २५ (व० ३०) खर का वध ।

मूल—जातस्वेदस्ततो रामो रोषरक्तान्तलोचनः । निर्बिभेद सहस्रेण बाणानां समरे खरम् ॥ १ ॥ विकलः स कृतो बाणैः खरो रामेण संयुगे । मत्तो रुधिरगन्धेन तमेवाभ्यद्रवद्द्रुतम् ॥ २ ॥ तमापतन्तं संक्रुद्धं कृतास्त्रो रुधिराप्लुतम् । अपासर्पद्द्वित्रिपदं किंचित्त्वरितविक्रमः ॥ ३ ॥ ततः पावकसंकाशं वधाय समरे शरम् । खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदण्डमिवापरम् ॥ ४ ॥ स तद्दत्तं मघवता सुरराजेन धीमता । संदधे च स धर्मात्मा मुमोच च खरं प्रति ॥ ५ ॥ स विमुक्तो महाबाणो निर्घातसमनिःस्वनः । रामेण धनुरायम्य खरस्योरसि चापतत् ॥ ६ ॥ स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना । रुद्रेणेव विनिर्दग्धः श्वेतारण्ये यथान्धकः ॥ ७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चारणैः सह संगताः । दुन्दुभींश्चाभिनिघ्नन्तः पुष्पवर्षं समन्ततः ॥ ८ ॥ रामस्योपरि संहृष्टा ववर्षुर्विस्मितास्तदा ॥ ९ ॥ ततो राजर्षयः सर्वे संगताः परमर्षयः । सभाज्य मुदिता रामं सागस्त्या इदमब्रुवन् ॥ १० ॥ तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज । स्वधर्मं प्रचरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः सह सीतया । गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्य संविवेशाश्रमे सुखी ॥ १२ ॥ ततो रामस्तु विजयी पूज्यमानो महर्षिभिः । प्रविवेशाश्रमं वीरो लक्ष्मणेनाभिपूजितः ॥ १३ ॥ तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम् । बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे ॥ १४ ॥ मुदा परमया युक्ता दृष्ट्वा रक्षोगणान्हतान् । रामं चैवाव्ययं दृष्ट्वा तुतोष जनकात्मजा ॥ १५ ॥

टीका—तब राम पसीनोपसीना होगया, क्रोध से नेत्र लाल होगए, और रण में अनेक बाणों से खर को बींध दिया ॥ १ ॥ युद्ध में रामके बाणों ने खर को बेकल कर दिया वह रुधिर के गन्ध से मत्त हुआ बेग से राम की ओर ही दौड़ा ॥ २ ॥ क्रोध से भरे हुए

रुधिर से लिबड़े हुए खर को अपने ऊपर पड़ता हुआ देखकर अस्त्रों में निपुण राम जल्दी पाओं उठाकर दो तीन पाद पीछे हट गया ॥ ३ ॥ तब युद्ध में खर के बध के लिये राम ने ब्रह्मदण्ड के सदृश अग्नि तुल्य एक और बाण लिया ॥ ४ ॥ वह बाण जो कि देवराज बुद्धिमान् इन्द्र ने (अगस्त्य द्वारा) दिया था, धर्मात्मा राम ने उस बाण को जोड़ा और खर के प्रति छोड़ा ॥ ५ ॥ धनुष को खींचकर राम से छोड़ा हुआ वह महाबाण पर्वत फटने के तुल्य ध्वनि करता हुआ खर की छाती में जाधसा ॥ ६ ॥ बाण की अग्निसे दग्ध होता हुआ खर भूमि पर गिर पड़ा, जैसे श्वेतारण्य में रुद्र से दग्ध किया हुआ अन्धकासुर गिरा था. ॥ ७ ॥ इस अवसर में चारणों के सहित देवताओं ने दुन्दुभियों पर चोट दी, और प्रसन्न हुए, और आश्चर्य हुए चारों ओर से राम के ऊपर पुष्पों की वर्षा की ॥८,९ ॥ तब राज ऋषि और परमऋषि अगस्त्य समेत सभी बड़े प्रसन्न हो, राम का सन्मान करके यह वचन बोले ॥ १० ॥ हे दशरथसुत यह आपने हमारा कार्य किया है, अब महर्षि जन दण्डक में अपना धर्म आचरण करेंगे ॥ ११ ॥ इस अवसर में बीर लक्ष्मण सीता सहित पर्वत के किले से निकलकर आनन्द से आश्रम में प्रविष्ट हुआ१२ तब महर्षियों से पूज्यमान विजयी वीर राम लक्ष्मण से पूजित हुआ आश्रम में प्रविष्ट हुआ ॥ १३ ॥ उस अपने भर्ता शत्रुओं के मारने वाले, और महर्षियों के सुख लाने वाले को देखकर वैदेही बड़ी प्रसन्न हो, उसे आलिंगन करती भई ॥ १४ ॥ परम मोद से युक्त हुई जनकात्मजा राक्षसगणों को मरा हुआ और राम को अक्षत देखकर सन्तुष्ट हुई ॥ १५ ॥

सर्ग० २९ (व० ३२) शूर्पणखा का रावण के पास जाना।

मूल—ततः शूर्पणखा दृष्ट्वा सहस्राणि चतुर्दश ॥ हतान्येकेन रामेण

रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ १॥ दूषणं च खरं चैव हतं त्रिशिरसं रणे।
जगाम परमोद्विग्ना लङ्कां रावणपालिताम् ॥ २ ॥ सा ददर्श विमा-
नाग्रे रावणं दीप्ततेजसम् ।उपोपविष्टं सचिवैर्मरुद्भिरिव वासवम्॥३॥
आसीनं सूर्यसंकाशे काञ्चने परमासने । रुक्मवेदिगतं प्राज्यं ज्वल-
न्तमिव पावकम् ॥ ४ ॥ विशालवक्षसं वीरं राजलक्षण लक्षितम् ।
सुभुजं शुक्लदशनं महास्यं पर्वतोपमम्॥ ५ ॥ अक्षोभ्याणां समुद्राणां
क्षोभणं क्षिप्रकारिणम् । क्षेप्तारं पर्वताग्राणां सुराणां च प्रमर्दनम्६
पुरीं भोगवतीं गत्वा पराजित्य च वासुकिम् । तक्षकस्य प्रियां भा-
र्यां पराजित्य जहार यः ॥ ७ ॥ कैलासपर्वतं गत्वा विजित्य नर-
वाहनम् । विमानं पुष्पकं तस्य कामगं वै जहार यः॥ ८ ॥ राक्षसी
भ्रातरं क्रूरं सा ददर्श महाबलम् । तं दिव्यवस्त्राभरणं दिव्यमाल्यो-
पशोभितम् ॥ ९ ॥ उपगम्याब्रवीद्वाक्यं राक्षसी भयविह्वला ।रावणं
शत्रुहन्तारं मन्त्रिभिः परिवारितम् ॥ १० ॥

टीका—तब शूर्पणखा भयंकर कर्मों वाले चौदह सहस्र राक्षसों को अकेले राम से मारा गया देखकर, तथा दूषण, खर और त्रिशिरा को रण में मरा हुआ देखकर अत्यन्त भयभीत हुई रावण से पालित लंकाको गई ॥ १, २ ॥ उसने ऊंचे महल के ऊपर चमकते हुए तेजवाले रावण को देखा, जिसके आस पास मन्त्री बैठे हुए हैं जैसे देवता इन्द्र के ॥ ३ ॥ सूर्य की तरह चमकते हुए सोने के परम आसन के ऊपर बैठा हुआ, जैसे सोनेकी वादि में प्रचुर घा से जलता हुआ अग्नि हो ॥ ४ ॥ विशाल छाती वाला,वीर, राजलक्षणोंसे युक्त, सुन्दर भुजावाला, श्वेत दांतोंवाला, बड़े मुख वाला, पर्वत के तुल्य ॥ ५ ॥ अत्यन्त गम्भीर समुद्रों को जिसने हिलचल में डाला हुआ है, जो बड़ी तेजी से काम करनेवाला है, जो पर्वत की चोटियों को फैंक सकता है, और देवताओं को जिसने मल

डाला हुआ है ॥ ६ ॥ जिसने भोगवतीपुरी में जाकर वासुकि को जीतकर तक्षक की प्यारी पत्नी को हर लिया हुआ है ॥ ७ ॥ और कैलास पर्वत पर जाकर कुवेर को जीतकर जिसने अपनी इच्छानुसार चलने वाला पुष्पक विमान छीना हुआ है ॥ ८ ॥ ऐसे उस अपने महाबली भयंकर भाई को दिव्य अस्त्र पहने हुए और दिव्य माला से शोभायमान हुआ उस राक्षसी ने देखा ॥९॥ भय से घबराई हुई राक्षसी मन्त्रियों के मध्य में बैठे हुए, शत्रुओं के मारने वाले रावण के पास जाकर यह वचन बोली ॥ १० ॥

सर्ग २७(व० ३३) शूर्पणखा की रावण को उत्तेजना।

मूल—प्रमत्तः कामभोगेषु स्वैरवृत्तो निरंकुशः। समुत्पन्नं भयं घोरं बोद्धव्यं नावबुध्यसे॥ १ ॥+स्वयं कार्याणि यः काले नानुतिष्ठति पार्थिवः। स तु वै सह राज्येन तैश्च कार्यैर्विनश्यति ॥ २ ॥+ येन रक्षन्ति विषयमस्वाधीनं नराधिपाः। ते न वृद्धया प्रकाशन्ते गिरयः सागरे यथा ॥ ३ ॥येषां चाराश्च कोशश्च नयश्च जयतां वर। अस्वाधीना नरेन्द्राणां प्राकृतैस्ते जनैः समाः ॥ ४ ॥+यस्मात्पश्यन्ति दूरस्थान्सर्वानर्थान्नराधिपाः। चारेण तस्मादुच्यन्ते राजानो दीर्घचक्षुषः ॥ ५ ॥ अयुक्तचारं मन्ये त्वां प्राकृतैः सचिवैर्युतम्। स्वजनं च यतः स्थानं निहतं नावबुध्यसे ॥ ६ ॥ चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्। हतान्येकेन रामेण खरश्च सहदूषणः ॥ ७ ॥ ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः। धर्षितं च जनस्थानं रामेणाक्लिष्टकारिणा ॥ ८ ॥ त्वं तु लुब्धः प्रमत्तश्च पराधीनश्च राक्षस। विषये स्वे समुत्पन्नं यद्भयं नावबुध्यसे ॥ ९ ॥ नानुतिष्ठति कार्याणि भयेषु न बिभेति च। क्षिप्रं राज्याच्च्युतो दीनस्तृणैस्तुल्यो भवेदिह ॥१०॥ शुष्ककाष्ठैर्भवेत्कार्यं लोष्ठैरपि च पांसुभिः। न तु स्थानात्परिभ्रष्टैःकार्यं स्याद्वसुधाधिपैः ॥ ११ ॥ उपभुक्तं यथा वासः स्रजो वा मृदिता

यथा। एवं राज्यात्परिभ्रष्टः समर्थोऽपि निरर्थकः ॥ १२ ॥+अप्रम-
त्तश्च यो राजा सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः। कृतज्ञो धर्मशीलश्च स राजा
तिष्ठते चिरम् ॥ १३ ॥ + नयनाभ्यां प्रसुप्तो वा जागर्ति नयचक्षुषा।
व्यक्तक्रोधप्रमादश्च स राजा पूज्यते जनैः॥ १४ ॥ त्वं तु रावण दुर्बु-
द्धिर्गुणैरेतैर्विवर्जितः। यस्य तेऽविदितश्चारै रक्षसां सुमहान्वधः॥१५॥

टीका—विषय भोगों में प्रमत्त हुआ, स्वच्छाचारी निरंकुश हुआ, तू उत्पन्न हुए घोर भय को नहीं जानता है जो जानना चाहिये था, ॥१॥ जो राजा ठीक समय पर स्वयं अपने कार्यों का अनुष्ठान नहीं करता है, वह राज्य समेत और उन कार्यों समेत विनष्ट होजाता है ॥२॥ जो राजा अपने अधीन न रखकर देश की रक्षा नहीं करते हैं, वह अपनी वृद्धि से प्रकाशते नहीं हैं, जैसे समुद्र के पर्वत ॥३॥ हे जीतने वालों में श्रेष्ठ! जिन राजों के गुप्तचर, कोश और नीति अपने अधीन नहीं हैं, वह साधारण मनुष्यों के तुल्य हैं ॥४॥ जिस लिये गुप्तचरों द्वारा राजा दूर की सारी बातों को जाना करते हैं, इसलिये राजा दीर्घचक्षुः (लम्बी आंख वाले) कहलाते हैं ॥५॥ पर मैं जानती हूं, कि आप के इर्द गिर्द सब साधारण से मन्त्री हैं और आपने गुप्तचर (काम पर) नहीं लगाए हुए, जिसलिये आपको मालूम नहीं कि आपके जन मारे गये हैं ॥६॥ भयंकर कर्मोंवाले चौदह सहस्र राक्षस और दूषण समेत खर को अकेले राम ने मार डाला है ॥७॥ शांति से काम करने वाले राम ने ऋषियों को अभय दे दिया है और दण्डक में अपना चैन कर दिया है,और जनस्थान को दबा लिया है ॥८॥ पर आप हे राक्षस लालच में पड़े हुए प्रमोद में आए हुए पराधीन हो रहे हैं, जो अपने देश में उत्पन्न हुए भय को नहीं जानते हैं।९।जो राजा अपने कर्तव्यों को पूरा नहीं करता,और भयों में डरता नहीं, वह जल्दी राज्य से गिरा हुआ दीन हुआ तृणों

के तुल्य होजाता है ॥ १० ॥लोगों को सूखे काठ से भी काम होता है, मट्टीके ढेलों और धूल से भी काम होता है, पर स्थान से भ्रष्ट हुए राजाओं से कोई काम नहीं होता है ॥ ११ ॥ जैसे भोगा हुआ वस्त्र वा मली हुई माला, इस तरह राज्य से भ्रष्ट हुआ राजा समर्थ भी निरर्थक होता है ॥ १२ ॥ जो राजा प्रमाद से रहित, सबका जानने वाला (सब तर्फ से बाखबर) जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और धर्मशील होता है, वह राजा देर तक स्थित रहता है ॥ १३ ॥नेत्रों से सोया हुआ भी जो नीति की आंख से जागता है, जिसका क्रोध और प्रसाद फलवाला है,वह राजा लोगों से पूजा जाता है ॥१४ ॥ पर तू हे रावण इन गुणों से शून्य बुद्धिहीन है,जिसको राक्षसों का बहुत बड़ा वध गुप्तचरों द्वारा विदित नहीं हुआ ॥ १५ ॥

सर्ग २८ (व० ३४) शूर्पणखा से सारा वृतान्त सुनना ।

मूल—ततः शूर्पणखां दृष्ट्वा ब्रुवतीं परुषं वचः। अमात्यमध्ये संक्रुद्ध परिपप्रच्छ रावणः ॥ १ ॥ कश्च रामः कथंवीर्यः किंरूपः किंपराक्रमः। किमर्थं दण्डकारण्यं प्रविष्टश्च सुदुस्तरम् ॥ २ ॥ आयुधं किं च रामस्य येन ते राक्षसा हताः। खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ ३ ॥ तत्त्वं ब्रूहि मनोज्ञाङ्गि केन त्वं च विरूपिता। इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसी क्रोधमूर्छिता ॥ ४ ॥ ततो रामं यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे। दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः ॥५॥ कंदर्पसमरूपश्च रामो दशरथात्मजः। नाददानं शरान्घोरान्विमुञ्चन्तं महाबलम् ॥ ६ ॥ न कार्मुकं विकर्षन्तं रामं पश्यामि संयुगे। हन्यमानं तु तत्सैन्यं पश्यामि शरवृष्टिभिः ॥ ७ ॥ भ्राता चास्य महातेजा गुणतस्तुल्यविक्रमः। अनुरक्तश्च भक्तश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥ ८ ॥ रामस्य तु विशालाक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना। धर्मपत्नी प्रिया नित्यं भर्तुः प्रियहिते रता ॥ ९ ॥ तप्तकाञ्चनवर्णाभा रक्ततु-

ङ्गनखी शुभा । सीता नाम वरारोहा वैदेही तनुमध्यमा ॥१०॥ नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किंनरी। तथारूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ॥११॥सा सुशीला वपुःश्लाघ्या रूपेणाप्रतिमा भुवि।तवानुरूपा भार्या सा त्वं च तस्याः पतिर्वरः ॥१२ ॥ भार्यार्थे तु तवानेतुमुद्यताहं वराननाम् । विरूपितास्मि क्रूरेण लक्ष्मणेन महाभुज ॥१३॥

टीका—तब कठोर वचन बोलती हुई शूर्पणखा को देखकर मन्त्रियों के मध्य में स्थित क्रुद्ध हुआ रावण पूछने लगा॥१॥ कौन वह राम है उसकी क्या शक्ति क्या रूप क्या पराक्रम है, और किस प्रयोजन से बड़े दुस्तर दण्डकवन में प्रविष्ट हुआ है ॥ २ ॥ राम का वह क्या अस्त्र है, जिससे उसने युद्ध में इतने राक्षसों को खर त्रिशिरा और दूषण को मार डाला है ॥ ३ ॥ और किसने तुझे ऐसा विरूप किया है, हे सुन्दरांगि सारा ठीक बतला, राक्षसेन्द्र से यह सुनकर क्रोध से मूर्च्छित हुई राक्षसी ॥ ४ ॥ राम को यथायोग्य बतलाने लगी—लम्बी भुजोंवाला, विशाल नेत्रोंवाला,चीर और काले हिरण की छाल पहने हुए ॥ ५ ॥ काम तुल्य रूपवाला, राम-दशरथ का पुत्र है, महाबली राम को संग्राम में मैं भयंकर बाण पकड़ता वा छोड़ता, वा धनुष को खींचता हुआ नहीं देखती हूं, किन्तु बाणों की वर्षा से सेना को मरता हुआ देखती हूं॥ ६, ७ ॥ और लक्ष्मण नाम इसका भाई महातेजस्वी गुणों से तुल्य पराक्रमवाला,अनुरक्त, भक्त, और बड़ा शक्तिमान् है ॥ ८ ॥और राम की प्यारी धर्मपत्नी, विशाल नेत्रोंवाली, पूर्ण चन्द्र के सदृश मुखवाली, सदा भर्ता के प्रियहित में रत है ॥ ९ ॥ तपे हुए सोने के रंग के तुल्य चमकती हुई, लाल ऊंचे नखों वाली, शुभ पतली कमरवाली, सीता नाम विदेह की कन्या है ॥ १० ॥ ऐसे रूपवाली नारी मैंने पृथिवीतल पर न कभी कोई देवी व गन्धर्वी न यक्षी न किन्नरी देखी है ॥ ११ ॥

वह सुशीला शरीर से सराहनीय, रूप से पृथिवी में अप्रतिम (बेमिसल) तेरी योग्य पत्नी होने योग्य है और तू उसका चुना हुआ पति होने योग्य है ॥१२॥ उस सुन्दरमुखी को तेरी पत्नी के अर्थ जब मैं लाने को उद्यत हुई, तब हे महाभुज क्रूर लक्ष्मण ने मुझे बेरूपकिया है।१३।

सर्ग २९ (व० ३५, ३६) रावण का मारीच से सहायता मांगना।

मूल—ततः शूर्पणखावाक्यं तच्छ्रुत्वारोमहर्षणम् । सचिवानभ्यनुज्ञाय कार्यं बुद्ध्वा जगाम ह ॥ १ ॥ यानशालां ततो गत्वा प्रच्छन्नं राक्षसाधिपः । सूतं संचोदयामास रथः संयुज्यतामिति॥२॥एवमुक्तः क्षणेनैव सारथिर्लघुविक्रमः । रथं संयोजयामास तस्याभिमतमुत्तमम् ॥ ३ ॥ कामगं रथमास्थाय काञ्चनं रत्नभूषितम् । राक्षसाधिपतिः श्रीमान्ययौ नदनदीपतिम् ॥ ४ ॥ तं तु गत्वा परं पारं समुद्रस्य नदीपतेः । ददर्शाश्रममेकान्ते पुण्ये रम्ये वनान्तरे ॥ ५ ॥ तत्र कृष्णाजिनधरं जटामण्डलधारिणम् । ददर्श नियताहारं मारीचं नाम राक्षसम् ॥ ६ ॥ स रावणः समागम्य विधिवत्तेन रक्षसा । ततः पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥ ७ ॥ मारीच श्रूयतां तात वचनं मम भाषतः । आर्तोऽस्मि मम चार्तस्य भवान्हि परमा गतिः८ चतुर्दशसहस्राणि रक्षसामुग्रतेजसाम् । निहतानि शरैर्दीप्तैर्मानुषेण पदातिना ॥ ९ ॥ खरश्च निहतः संख्ये दूषणश्च निपातितः । हत्वा त्रिशिरसं चापि निर्भया दण्डकाः कृताः ॥ १० ॥ पित्रा निरस्तः क्रुद्धेन सभार्यः क्षीणजीवितः।स हन्ता तस्य सैन्यस्य रामः क्षत्रियपांसनः ॥ ११ ॥ अशीलः कर्कशस्तीक्ष्णो मूर्खो लुब्धोऽजितेन्द्रियः। त्यक्तधर्मा स्वधर्मात्मा भूतानामहिते रतः ॥ १२ ॥ येन वैरं विनारण्ये सत्त्वमास्थाय केवलम् । कर्णनासापहारेण भगिनी मे विरूपिता ॥ १३ ॥ अस्य भार्यां जनस्थानात्सीतां सुरसुतोपमाम्। आनयिष्यामि विक्रम्य सहायस्तत्र मे भव ॥ १४ ॥ वीर्ये युद्धे च दर्पे च

नह्यस्ति सदृशस्तव । उपायतो महान्शूरो महामायाविशारदः॥१५॥
एतदर्थमहं प्राप्तस्त्वत्समीपं निशाचर । शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं
वचनान्मम ॥ १६ ॥ सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः ।
आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर ॥ १७ ॥ त्वां तु निःसं-
शयं सीता दृष्ट्वा तु मृगरूपिणम् । गृह्यतामिति भर्तारं लक्ष्मणं चाभि-
धास्यति ॥ १८ ॥ ततस्तयोरपाये तु शून्ये सीतां यथासुखम्।निरा-
बाधो हरिष्यामि राहुश्चन्द्रप्रभामिव ॥ १९ ॥ ततः पश्चात्सुखं रामे
भार्याहरणकर्शिते । विश्रब्धं प्रहरिष्यामि कृतार्थेनान्तरात्मना॥२०॥

टीका—तब शूर्पणखा के उस रोंगटे खड़े करनेवाले वाक्य को सुनकर क्या करना है इस बात को समझकर मन्त्रियों को आज्ञा देकर वहां से चला ॥ १ ॥ वहां से राक्षसाधिपति चुपचाप यान-शाला में गया, और सारथि को कहा, कि रथ जोड़ो॥ २ ॥ आज्ञा पाते ही शीघ्रकारी सारथि ने झटपट उसका अभिमत उत्तम रथ जोड़ दिया ॥ ३ ॥ उस अपनी इच्छा से चलनेवाले रत्नों से भूषित,सुन-हरी रथ पर चढ़कर श्रीमान् राक्षसाधिपति नदनदियों के पति (समुद्र) की ओर गया ॥ ४ ॥ नदियों के पति समुद्र के परले पार जाकर उसने बन के मध्य एकान्त पवित्र रम्यदेश में एक आश्रम देखा ॥ ५ ॥ उसमें इसने काला मृगान पहने हुए जटा-समूहधारी नियताहारी मारीच राक्षस को देखा ॥ ६ ॥ वह रावण यथाविधि उस राक्षस से मिल करके इसके पीछे वाक्यनिपुण रावण यह वाक्य बोला ॥ ७ ॥ तात मारीच मेरे वचन को सुनिये मैं इस समय आर्त हूं, और मुझ आर्त का आप परम सहारा हैं ॥८॥ हे तात उग्र तेजवाले चौदह सहस्र राक्षस एक पैदल मनुष्य ने अपने जलते हुए तीरों से मार डाले हैं ॥ ९ ॥ युद्ध में उसने खर को मार डाला है, दूषण को भी गिरा दिया है, और त्रि-

शिरा को भी मारकर दण्डक वन में हमारा भय हटा दिया है ॥ १० ॥ जो क्रुद्ध हुए पिता द्वारा पत्नी समेत घर से निकाला हुआ है, वह क्षीण हुए जीवनवाला वह क्षत्रियों को बट्टा लगानेवाला राम इस सेना का मारनेवाला है ॥ ११ ॥ वह मर्यादा का त्यागी, क्रूर, तीक्ष्ण, मूर्ख, लोभी, अजितेन्द्रिय, धर्म को त्यागे हुए अधर्मात्मा भूतों के अहित में रत ॥ १२ ॥ जिसने बिना वैर के केवल बल के सहारे (न कि धर्म के सहारे) कान और नाक के काटने से मेरी बहिन को विरूपित किया है ॥ १३ ॥ इसकी पत्नी सीता जो देवकन्या के तुल्य है—इसको बल के साथ जनस्थान से लाऊंगा, इसमें आप मेरे सहायक हों ॥ १४ ॥ वीर्य में, युद्ध में दर्प में आप के कोई बराबर नहीं है, उपायों में आप बड़े शूर हैं, महामाया में चतुर हैं ॥ १५ ॥ इसलिये हे निशाचर मैं आप के पास आया हूं, सुनिये वह काम, मेरी सहायता में जो मेरे कहने से आप को करना है ॥ १६ ॥ आप चान्दी की बिन्दुओं से चितकबरे सुनहरी हरिण बनकर राम के आश्रम में सीता के सन्मुख विचरें ॥ १७ ॥ मृगरूपी आपको देखकर सीता निःसन्देह भर्त्ता को और लक्ष्मण को कहेगी, कि इसे पकड़िये ॥ १८ ॥ तब उन दोनों के अलग होने पर शून्य में सीता को बिना रोक आराम से हर लूंगा, जैसे राहु चन्द्र की प्रभा को हर लेता है ॥ १९ ॥ इसके पीछे भार्या के हरे जाने से दुर्बल हुए राम पर अपने कृतार्थ मन के साथ सुख से निःशंक प्रहार करूंगा ॥ २० ॥

सर्ग ३० [व० ३१] मारीच का सीताहरण से रोकना ।

मूल—तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः।प्रत्युवाच महातेजा मारीचो राक्षसेश्वरम्॥ १ ॥+सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः। अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ २ ॥

न नूनं बुध्यसे रामं महावीर्यगुणोन्नतम् । अयुक्तचारश्चपलो महेन्द्र-
वरुणोपमम् ॥ ३ ॥ अपि स्वस्ति भवेत्तात सर्वेषामपि रक्षसाम् ।
अपि रामो न संक्रुद्धः कुर्याल्लोकानराक्षसान् ॥ ४ ॥ अपि ते जी-
वितान्ताय नोत्पन्ना जनकात्मजा । अपि सीतानिमित्तं च न
भवेद्व्यसनं महत् ॥५॥+अपि त्वामीश्वरं प्राप्य कामवृत्तं निरंकुशम्।
न विनश्येत्पुरी लंका त्वया सह सराक्षसा ॥ ६ ॥ + न च पित्रा
परित्यक्तो नामर्यादः कथंचन । न लुब्धो न च दुःशीलो न चक्षत्रि-
पांसनः ॥७॥+ न च धर्मगुणैर्हीनः कौसल्यानन्दवर्धनः । न च
तीक्ष्णो हि भूतानां सर्वभूतहिते रतः ॥ ८ ॥ वञ्चितं पितरं दृष्ट्वा
कैकेय्या सत्यवादिनम् । करिष्यामीति धर्मात्मा ततः प्रव्रजितो
वनम् ॥ ९ ॥ + कैकेय्याः प्रियकामार्थं पितुर्दशरथस्य च । हित्वा
राज्यं च भोगांश्च प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥ १० ॥+न रामःकर्कश-
स्तात नाविद्वान्नाजितेन्द्रियः । अनृतं न श्रुतं चैव नैव त्वं वक्तुमर्हसि
॥ ११ ॥+ रामो विग्रहवान्धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः ॥ १२॥कथं नु
तस्य वैदेहीं रक्षितां स्वेन तेजसा । इच्छसे प्रसभं हर्तुं प्रभामिव
विवस्वतः ॥ १३ ॥+न सा धर्षयितुं शक्या मैथिल्योजस्विनःप्रिया।
दीप्तस्येव हुताशस्य शिखा सीता सुमध्यमा ॥ १४ ॥ परदाराभि-
मर्शात्तु नान्यत्पापतरं महत् । भव स्वदारानिरतः स्वकुलं रक्ष राक्ष-
सान् ॥ १५ ॥ अहं तस्य प्रभावज्ञो न युद्धं तेन ते क्षमम् । बलिं
वा नमुचिं वापि हन्याद्धि रघुनन्दनः ॥ १६ ॥

टीका—राक्षसेन्द्र के इस वाक्य को सुनकर वाक्यविशारद महा तेजस्वी मारीच राक्षसेश्वर से बोला ॥१॥ हे राजन् सदा प्रिय बोलनेवाले पुरुष सुलभ हैं, पर अप्रिय पथ्य का कहने सुननेवाला, दुर्लभ होता है ॥२॥ निःसन्देह आप राम को बड़े बल और गुणों से उन्नत, महेन्द्र और वरुण के तुल्य नहीं जानते हैं, आपने गुप्तचर

नहीं लगाए हुए केवल चञ्चल हैं ॥३॥ हे तात सारे राक्षसों को स्वस्ति हो, न हो कि राम क्रुद्ध हुआ लोक को बिना राक्षसों के करदे ॥४॥ न हो, जनकात्मजा आपके जीवन के अन्त के लिये उत्पन्न हुई हो, न हो, कि सीता के निमित्त भारी विपत्ति आपदे ॥५॥ न हो, कि आप कामी निरंकुश राजा को पाकर लंकापुरी आपके समेत और राक्षसों के समेत नष्ट होजाए ॥६॥ राम न पिता से त्यागा हुआ है न किसी तरह बेमर्याद है, न लोभी है न दुःशील है न क्षत्रियों पर बट्टा लगानेवाला है ॥७॥ वह कौसल्य का आनन्द बढ़ानेवाले, न धर्म के गुणों से हीन है, न तीक्ष्ण है, अपितु सब भूतों के हित में रत है ॥८॥ कैकेयी से ठगे हुए पिता को देखकर उस धर्मात्मा ने कहा, कि मैं पिता को सत्यवादी बनाऊंगा, इससे वह वन को निकला ॥९॥ कैकेयी की और पिता दशरथ की प्रिय कामना के लिये वह राज्य और भोगों को छोड़कर दण्डकवन में प्रविष्ट हुआ है ॥१०॥ हे तात राम न क्रूर है, न अविद्वान् है, न अजितेन्द्रिय है, कभी झूठ का नाम भी नहीं जानता, आप उसे ऐसा कहने योग्य नहीं हैं ॥११॥ राम मूर्त्तिमान् धर्म है, भला पुरुष है सच्चे पराक्रम वाला है ॥१२॥ तब कैसे सूर्य की प्रभा की तरह उसके अपने तेज से रक्षा की हुई जनकात्मजा को आप धक्के से हरना चाहते हैं ॥१३॥ वह उस ओजस्वी की प्यारी सुमध्यमा मैथिली सीता जलती हुई अग्नि की लाट की तरह छुई नहीं जा-सकती है ॥१४॥ परस्त्री पर बल दिखलाने से बढ़कर जगत् में पाप नहीं है, सो तू अपनी स्त्रियों में रत हो, अपने कुल और राक्षसों की रक्षा कर ॥१५॥ मैं उसके प्रभाव को जानता हूं, उससे आपको युद्ध उचित नहीं है, रघुनन्दन बालि को और नमुचि को मार सकता है ॥१६॥

सर्ग ३१(व० ४०, ४१) रावण का उत्तर

मूल—मारीचस्य तु तद्वाक्यं क्षमं युक्तं च रावणः। उक्तो न प्रतिजग्राह मर्तुकाम इवौषधम् ॥१॥ तं पथ्यहितवक्तारं मारीचं राक्षसाधिपः। अब्रवीत्परुषं वाक्यमयुक्तं कालचोदितः ॥ २ ॥ दुष्कुलैतदयुक्तार्थं मारीच मयि कथ्यते। वाक्यं निष्फलमत्यर्थं बीजमुप्तमिवोषरे ॥३॥ त्वद्वाक्यैर्नतु मां शक्यं भेत्तु रामस्य संयुगे। मूर्खस्य पापशीलस्य मानुषस्य विशेषतः ॥४॥ अवश्यं तु मया तस्य संयुगे खरघातिनः। प्राणैः प्रियतरा सीता हर्तव्या तव संनिधौ ॥५॥ एवं मे निश्चिता बुद्धिर्हृदि मारीच विद्यते। न व्यावर्तयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥६॥ संपृष्टेन तु वक्तव्यं सचिवेन विपश्चिता। उद्यताञ्जलिना राज्ञो य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥७॥ एतत्कार्यमवश्यं मे बलादपि करिष्यसि। राज्ञो विप्रतिकूलस्थो न जातु सुखमेधते ॥८॥ आज्ञप्तो रावणेनेत्थं प्रतिकूलं च राजवत्। अब्रवीत्परुषं वाक्यं निःशङ्को राक्षसाधिपम् ॥९॥ कस्त्वया सुखिना राजन्नाभिनन्दति पापकृत्। केनेदमुपदिष्टं ते मृत्युद्वारमुपायतः ॥१०॥ बध्याः खलु न वध्यन्ते सचिवास्तव रावण। ये त्वामुत्पथमारूढं न निगृह्णन्ति सर्वशः ॥११॥ राजमूलो हि धर्मश्च यशश्च जयतां वर। तस्मात् सर्वास्ववस्थासु रक्षितव्या नराधिपाः ॥१२॥ आनयिष्यसि चेत्सीतामाश्रमात्सहितो मया। नैव त्वमपि नाहं वै नैव लङ्का न राक्षसाः ॥१३॥

टीका—मारीच के उस उचित युक्त वाक्य को सुनकर रावण ने स्वीकार नहीं किया, जैसे मरने की इच्छावाला औषध को (स्वीकार नहीं करता) ॥१॥ उस पथ्य हित के कहने वाले मारीच को काल से प्रेरा हुआ राक्षसाधिपति अयुक्त कठोर वाक्य बोला ॥२॥ हे दुष्कुल मारीच काकरी भूमि में बोए हुए बीज की तरह अयुक्त अर्थवाला अत्यन्त निष्फल वचन तुमने मुझे कहा है ॥३॥

तेरे वाक्य मुझे उस मूर्ख पापशील विशेषतः मानुष राम के साथ संग्राम से रोक नहीं सक्ते ॥४॥ अवश्य मैंने युद्ध में उस खर के घाती की प्राणों से प्यारी सीता तेरे सामने हरनी है ॥५॥ हे मारीच यह मेरे हृदय में निश्चित बुद्धि विद्यमान है, जिसको इन्द्र समेत देव दैत्य पलट नहीं सक्ते हैं ॥६॥ बुद्धिमान् मन्त्री जो अपनी वृद्धि चाहता है, उसको पूछने पर राजा के सामने हाथ जोड़ कर कहना चाहिये ॥७॥ यह मेरा कार्य अवश्य तुझे बल से भी करना होगा, राजा के प्रतिकूल स्थित हुआ कभी चैन नहीं पाता ॥८॥ रावण से इस प्रकार राजा की तरह प्रतिकूल आज्ञा दिया हुआ वह निःशंक राक्षसों के स्वामी से कठोर वक्य बोला ॥९॥ कौन पापी हे राजन् ! तेरे सुख को नहीं सहार सक्ता, किस ने तुझे यह उपाय से मृत्यु का द्वार उपदेश किया है ॥१०॥ हे रावण वध के योग्य तेरे मन्त्री क्यों नहीं मार दिये जाते, जो कुमार्ग पर चढ़े हुए तुझको सब प्रकार से रोक नहीं देते ॥११॥ राजमूलक ही हे जीतने वालों में श्रेष्ठ ! धर्म और यश होता है, इसलिये सारी अवस्थाओं में राजाओं की रक्षा करनी चाहिए ॥१२॥ यदि आप मेरे सहित सीता को आश्रम से लावेंगे, तो न आप, न मैं, लंका, न राक्षस रहेंगे ॥१३

सर्ग ३२ (व० ४२) मारीच का मृग बन कर विचरना

मूल—एवमुक्त्वा तु परुषं मारीचो रावणं ततः । गच्छावेमित्यब्रवी-दीनो भयाद्रात्रिचरप्रभोः ॥१॥ प्रहृष्टस्त्वभवत्तेन वचनेन स राक्षसः । परिष्वज्य सुसंश्लिष्टमिदं वचनमब्रवीत् ॥२॥ एतच्छौटीर्ययुक्तं ते मच्छन्दवशवर्तिनः । इदानीमसि मारीचः पूर्वमन्यो हि राक्षसः ॥३॥ ततो रावणमारीचौ विमानमिव तं रथम् । आरुह्य ययतुः शीघ्रं तस्मादाश्रममण्डलात् । ॥४॥ समेत्य दण्डकारण्यं राघवस्याश्रमं

ततः। ददर्श सहमारीचो रावणो राक्षसाधिपः ॥५॥ अवतीर्य रथात्तस्मात्ततः काञ्चनभूषणात् । हस्ते गृहीत्वा मारीचं रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥६॥ एतद्रामाश्रमपदं दृश्यते कदलीवृतम् । क्रियतां तत्सखे शीघ्रं यदर्थं वयमागताः ॥७॥ स रावणवचः श्रुत्वा मारीचो राक्षसस्तदा । मृगो भूत्वाश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह ॥८॥ मणिप्रवरशृङ्गाग्रः सितासितमुखाकृतिः । किंचिदत्युन्नतग्रीव इन्द्रनीलनिभोदरः ॥९॥ मधूकनिभपार्श्वश्च कंजकिंजल्कसंनिभः । वैदूर्यसंकाशखुरस्तनुजङ्घः सुसंहतः ॥१० इन्द्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजितः। क्षणेन राक्षसो जातो मृगः परमशोभनः ॥११॥ रौप्यैर्बिन्दुशतैश्चित्रं भूत्वा च प्रियनन्दनः। विटपीनां किसलयान्भक्षयन्विचचार ह ॥१२॥ रामाश्रमपदाभ्याशे विचचार यथासुखम् । पुनर्गत्वा निवृत्तश्च विचचार मृगोत्तमः ॥१३॥ विक्रीडंश्च पुनर्भूमौ पुनरेव निषीदति । आश्रमद्वारमागम्य मृगयूथानि गच्छति ॥१४॥ समुद्वीक्ष्य च सर्वे तं मृगा येऽन्ये वनेचराः । उपगम्य समाघ्राय विद्रवन्ति दिशो दश ॥१५॥ राक्षसः सोऽपि तान्वन्यान्मृगान्मृगवधे रतः । प्रच्छादनार्थं भावस्य न भक्षयति संस्पृशन् ॥१६॥ तस्मिन्नेव ततः काले वैदेही शुभलोचना ।कुसुमापचये व्यग्रा पादपानत्यवर्तत ॥१७॥ त वै रुचिरदन्तोष्ठं रूप्यधातुतनूरुहम् । विस्मयोत्फुल्लनयना सस्नेहं समुदैक्षत ॥१८॥

टीका—रावण को ऐसा कठोर वाक्य कह करके फिर मारीच राक्षसराज के भय से दीन हुआ बोला अच्छा चलिये ॥१॥ इस वचन से वह राक्षस प्रसन्न होगया, और उसको जोर से कण्ठ लगा कर यह वचन बोला ॥२॥ यह तेरा मेरे आज्ञाकारी का अभिमान युक्त वचन है, अब तू मारीच है पहले कोई और राक्षस था ॥३॥ तब रावण और मारीच बिमान के तुल्य उस रथ पर चढ़ कर उस

आश्रम मे शीघ्र गए॥ दण्डकवन में आकर मारीच के साथ राक्षसाधिपति रावण ने राम के आश्रम को देखा ॥५॥ तब सोने के भूषणों वाले उस रथ से उतरकर रावण, मारीच को हाथ से पकड़कर, यह वाक्य बोला ॥६॥ यह केलों से घिरा हुआ राम का आश्रम दीखता है, हे सखे जल्दी वह काम करो, जिसके लिये हम आए हैं ॥७॥ तब रावण के वचन को सुनकर वह मारीच राक्षस मृग बनकर राम के आश्रम के द्वार के निकट विचरने लगा ॥८॥ उत्तम नीलम जैसे सींगों के अग्र वाला, कहीं श्वेत और कहीं काली मुख की शोभावाला, कुछ ऊंची ग्रीवावाला, इन्द्रनील के सदृश पेटवाला ॥९॥ महुए के पुष्प के सदृश पसलियों वाला, पद्म के केसर तुल्य वर्णवाला, सब्ज मणि के तुल्य खुरों वाला, पतली जंघावाला, सुन्दर गठा हुआ ॥१०॥ इन्द्र धनुष के तुल्य वर्णवाली पूंछ से ऊंचा शोभायमान, एक क्षण में वह राक्षस परम शोभन मृग बन गया ॥११॥ चांदी के अनेक बिन्दुओं से विचित्र बना हुआ वह प्यारा और आनन्द देनेवाला वृक्षों की कोंपलों को भक्षण करता हुआ विचरने लगा ॥१२॥ राम के आश्रम के समीप यथासुख विचरने लगा, थोड़ी दूर त्वरा से जाकर फिर लौट आता है ॥१३॥ बार २ विविध क्रीड़ा करता हुआ फिर भूमि पर बैठ जाता है, आश्रम के द्वार पर आकर फिर मृगयूथों के पीछे चला जाता है ॥१४॥ दूसरे सारे वनचर मृग उसको देखकर पास आकर सूंघ कर दसों दिशाओं को भाग जाते हैं ॥१५॥ पर वह राक्षस मृगों के बध में प्रेम रखने वाला भी अपने भाव के ढका रखने के लिये उन जंगली मृगों को स्पर्श करता हुआ भी भक्षण नहीं करता है ॥१६॥ उसी समय शुभ नेत्रोंवाली वैदेही फूलों के तोड़ने में व्यग्र हुई कुछ

वृक्षों से आगे बढ़ी ॥१७॥ तो वहां उसने सुन्दर दांत और होठों वाला चांदी और अन्य धातुओं के तुल्य रोमों से युक्त उस (मृग) को बड़े स्नेह से देखा, और विस्मय से उसके नेत्र खिल गए ॥

सर्ग ३३ [व० ४३] सीता का मृग लानेके लिये राम को प्रेरणा

मूल—प्रहृष्टा चानवद्याङ्गी मृष्टहाटकवर्णिनी । भर्तारमभि चक्रन्द लक्ष्मणं चैव सायुधम् ॥ १ ॥ आहूयाहूय च पुनस्तं मृगं साधु वीक्षते । आगच्छागच्छ शीघ्रं वै आर्यपुत्र सहानुज ॥ २ ॥ तावाहूतौ नरव्याघ्रौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ । वीक्षमाणौ तु तं देशं तदा ददृशतुर्मृगम् ॥३॥ शङ्कमानस्तु तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । मृगो ह्येवंविधो रत्नविचित्रो नास्ति राघव ॥४॥ एवं ब्रुवाणं काकुत्स्थं प्रतिवार्य शुचिस्मिता । उवाच सीता संहृष्टा छद्मना हृतचेतना ॥५॥ आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः । आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥६॥ अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वरसंपच्च शोभना । मृगोऽद्भुतो विचित्राङ्गो हृदयं हरतीव मे ॥७॥ यदि ग्रहणमभ्येति जीवन्नेव मृगस्तव । आश्चर्यभूतं भवति विस्मयं जनयिष्यति ॥८॥ समाप्तवनवासानां राज्यस्थानां च नः पुनः । अन्तःपुरे विभूषार्थो मृग एष भविष्यति ॥९॥ भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो । मृगरूपमिदं दिव्यं विस्मयं जनयिष्यति ॥१०॥ जीवन्न यदि तेऽभ्येति ग्रहणं मृगसत्तमः । अजिनं नरशार्दूल रुचिरं तु भविष्यति ॥ ॥११॥ निहतस्यास्य सत्त्वस्य जाम्बूनदमयत्वचि । शष्पबृस्यां विनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् ॥१२॥ कामितस्तेन रूपेण सीतया च प्रचोदितः । उवाच राघवो हृष्टो भ्रातरं लक्ष्मणं वचः ॥१३॥ पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः स्पृहामुल्लसितामिमाम् । रूपश्रेष्ठतया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति ॥१४॥ कस्य रूपमिदं दृष्ट्वा जाम्बूनदमयप्रभम् । नानारत्नमयं दिव्यं न मनो विस्मयं व्रजेत् ॥१५

एतस्य मृगरत्नस्य पराध्यें काञ्चनत्वचि। उपवेक्ष्यति वैदेही मया सह सुमध्यमा ॥१६॥ न कादली न प्रियकी न प्रवेणी न चाविकी। भवेदेतस्य सदृशी स्पर्शेऽनेनेति मे मतिः ॥१७॥ यदि वाऽयं तथा यन्मां भवेद्वदसि लक्ष्मण। मायैषा राक्षसस्याति कर्तव्योऽस्य बधोमयाम ॥१८॥ इह त्वं भव संनद्धो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम्,। अहमेनं वधिष्यामि ग्रहीष्याम्यथवा मृगम् ॥१९॥ त्वचा प्रधानया ह्येष मृगोऽद्य नभविष्यति। अप्रमत्तेन ते भाव्यमाश्रमस्थेन सीतया ॥२०॥

टीका–और प्रसन्न हुई परम सुन्दर अङ्गोंवाली खरे सोने के तुल्य वर्णवाली वह सीता अपने भर्त्ता और लक्ष्मण को शस्त्र सहित (आने के लिये) पुकारती भई ॥१॥ बुला बुला कर फिर उस मृग को भली भान्ति देखती है, आओ आओ हे आर्यपुत्र! छोटे भाई के साथ जल्दी आओ ॥२॥ वैदेही से बुलाए हुए वह दोनों राम लक्ष्मण उस देश को देखते हुए वहां मृग को देखते भए ॥३॥ उसे देखकर लक्ष्मण शंका करता हुआ यह वाक्य बोला, हे राघव इस प्रकार का रत्नों से विचित्र मृग नहीं होता है ॥ ४ ॥ लक्ष्मण के ऐसा कहते हुए बात काट कर सीता जिसकी बुद्धि हरी गई है, शुद्ध मुसकाराती हुई बड़ी प्रसन्न हो बोली ॥ ५ ॥ हे आर्यपुत्र! यह सुहावना मृग मेरे मन को हरता है, हे महाबाहो इसे लाइये, यह हमारी क्रीड़ा के लिये होगा ॥६॥ अहो रूप अहो शोभा, और शोभन स्वरसम्पत्ति यह विचित्र अङ्गोवाला अद्भुत मृग मेरे हृदय को हरता सा है ॥७॥ यदि यह मृग जीता ही आपके हाथ आजाए, तो यह बड़े आनन्द की बात होगी, और विस्मय उत्पन्न करेगी ॥८॥ जब हम बनवास समाप्त करके राज्य पर स्थित होगे, तो यह मृग हमारे अन्तःपुर में शोभा के लिये होगा ॥९॥ हे प्रभो यह दिव्य मृगरूप भरत को, आर्यपुत्र

को और मेरी सासों को विस्मय उत्पन्न करेगा ॥१॥ और हे नर-शार्दूल ! यदि यह मृग जीता आपके हाथ न आए तो इसका मृगान बड़ा सुन्दर होगा ॥११॥ हां यदि यह जन्तु मारना पड़ा तो इस के सुनहरी मृगान को घास के आसन पर बिछाकर (भगवान् की) उपासना करनी चाहती हूं ॥१२॥ सीता के इस वचन को सुन कर और अद्भुत मृग को देखकर, उस रूप से लुभाया हुआ और सीता से प्रेरा हुआ राघव प्रसन्न होकर भाई लक्ष्मण से यह वाक्य बोला ॥१३॥ देख हे लक्ष्मण ! वैदेही की इस उल्लास भरी इच्छा को यह मृग आज अपने रूप की श्रेष्ठता के हेतु जीता नहीं रहेगा ॥१४॥ इस सुवर्णमय और नाना रत्नमय दिव्यरूप को देखकर किसका मन विस्मय को नहीं प्राप्त होगा ॥१५॥ इस मृगरत्न के परमोत्तम मृगान पर सुमध्यमा वैदेही मेरे साथ बैठेगी ॥१६॥ न कदली हरिण (नर्म ऊंचे चितकबरे और नीले अग्रवाले रोमों वाले मृग) की त्वचा (मृगान), न प्रियक (नर्म ऊंचे दाने दार रोमों से युक्त मृग) की त्वचा, न प्रवेण (बकरा विशेष) की त्वचा, न भेड़ की त्वचा स्पर्श में इसके सदृश होगी यह मेरी मति है ॥१७॥ यद्विवा हे लक्ष्मण जैसा तू मुझे कहता है, वैसे यह राक्षसी माया ही हो, तो भी इसका बध करना ही चाहिये ॥१८॥ यहां तू सावधान, यत्नवान् होकर सीता की रक्षाकर, मैं इस मृग को मारूंगा, वा पकड़ लाऊंगा ॥१९॥ आप सीता के साथ आश्रम में अप्रमत्त होकर रहें ॥२०॥

सर्ग ३४ (व० ४४) सुवर्ण मृग को मारना

मूल—ततस्त्रिविनतं चापमादायात्मविभूषणम् । आबध्य च कलापौ द्वौ जगामोदग्रविक्रमः ॥१॥ बद्धासिधनुरादाय प्रदुद्राव यतो मृगः । तं स्म पश्यति रूपेण द्योतयन्तमिवाग्रतः ॥२॥ शङ्कितं तु समुद्भ्रा-

न्तमुत्पतन्तमिवाम्बरम् । दृश्यमानमदृश्यं च वनोद्देशेषु केषुचित्॥३॥
छिन्नाभ्रैरिव संवीतं शारदं चन्द्रमण्डलम् । मुहूर्तादेव ददृशे मु-
हुर्दूरात्प्रकाशते ॥ ४ ॥ दर्शनादर्शनेनैव सोऽपाकर्षत राघवम् ।
सुदूरमाश्रमस्यास्य मारीचो मृगतां गतः ॥ ५ ॥ स तमुन्मा-
दयामास मृगरूपो निशाचरः । मृगैः परिवृतोऽथान्यैरदूरात्प्र-
त्यदृश्यत ॥ ६ ॥ ग्रहीतुकामं दृष्ट्वा तं पुनरेवाभ्यधावत । तत्क्ष-
णादेव संत्रासात्पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥ ७ ॥ पुनरेव ततो दूराद्वृ-
क्षखण्डाद्विनिःसृतः। दृष्ट्वा रामो महातेजास्तं हन्तुं कृतनिश्चयः॥८॥
भूयस्तु शरमुद्धृत्य कुपितस्तत्र राघवः । संधाय सुदृढे चापे विकृष्य
बलवद्बली ॥ ९ ॥ तमेव मृगमुद्दिश्य ज्वलन्तमिव पन्नगम् । मुमोच
ज्वलितं दीप्तमस्त्रं ब्रह्मविनिर्मितम् ॥ १० ॥ स भृशं मृगरूपस्य वि-
निर्भिद्य शरोत्तमः । मारीचस्यैव हृदयं बिभेदाशनिसंनिभः ॥ ११ ॥
तालमात्रमथोत्प्लुत्य न्यपतत् स भृशातुरः । म्रियमाणस्तु मारीचो
जहौ तां कृत्रिमां तनुम् ॥ १२ ॥ + स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च
ततः स्वनम् । सदृशं राघवस्यैव हा सीते लक्ष्मणेति च ॥ १३ ॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ राक्षसं भीमदर्शनम् । रामो रुधिरसिक्ताङ्गं चेष्ट-
मानं महीतले ॥ १४ ॥ जगाम मनसा सीतां लक्ष्मणस्य वचःस्मरन्।
मारीचस्य तु मायैषा पूर्वोक्ता लक्ष्मणेन तु ॥ १५ ॥ हा सीते लक्ष्म-
णेत्येवमाक्रुश्य तु महास्वनम् । ममार राक्षसः सोऽयं श्रुत्वा सीता
कथं भवेत् ॥ १६ ॥ लक्ष्मणश्च महाबाहुः कामवस्थां गमिष्यति ।
इति संचिन्त्य धर्मात्मा रामो हृष्टतनूरुहः ॥ १७ ॥ त्वरमाणो जन-
स्थानं ससाराभिमुखं तदा ॥ १८ ॥

टीका—ऊंचे पराक्रम वाला राम तब तीन स्थानों में झुके हुए अपने भूषण रूप धनुष को लेकर और दोनों भत्थे बांध कर गए ॥ १ ॥ तलवार बांधकर और धनुष लेकर उधर को दौड़े, जिधर

वह मृग था, उस को अपने सामने रूप से बन को शोभा देता हुआ देखते हैं॥ २ ॥ जो कि डरा हुआ है और घबराया हुआ है, और (छलांगों से) मानों आकाश में उड़ता जाता है, बन के किन्हीं प्रदेशों में दृश्यमान रहता है, और किन्हीं में अदृश्य हो जाता है॥ ३ ॥ बादल के टुकड़ों से ढके हुए शरद् ऋतु के चन्द्र-मण्डल की तरह थोड़ी देर दीखता है और फिर दूर जा चमकता है ॥ ४ ॥ इस प्रकार दर्शन और अदर्शन से राम को अपने आश्रम से बहुत दूर लेगया वह मारीच जो कि हिरण बना हुआ है ॥ ५ ॥ उस मृगरूप राक्षस ने राम को घबरा दिया, तब और बहुत से मृगों के सहित निकट ही दीख पड़ा ॥ ६ ॥ पर यह देखकर कि राम उसे पकड़ने लगे हैं, फिर दौड़ गया, और उसी समय डर से फिर छिप गया ॥ ७ ॥ और फिर दूर जाकर वृक्षसमूह से बाहर निकला, अब महातेजस्वी राम ने देखकर उसे मारने का निश्चय कर लिया ॥ ८ ॥ उस पर कुपित हुए राम ने फिर बाण निकाला, बड़े दृढ़ धनुष में उसे जोड़ा, और उस बली ने बल से खींचा ॥ ९ ॥ और उसी मृग को लक्ष्य करके फुंकारते हुए सांप की तरह जलता हुआ ब्रह्मबाण छोड़ा ॥ १० ॥ वह बिजली के सदृश उत्तम बाण मृग के बनावटी रूप को फोड़कर मारीच के हृदय को फोड़ गया ॥११॥ वह अत्यन्त पीड़ित हुआ तालमात्र उछलकर गिर पड़ा, और मरते समय मारीच ने उस कृत्रिम शरीर को त्याग दिया ॥ १२ ॥ और अवसर जानकर राम के सदृश ऊंची ध्वनि से उसने कहा, " हा सीता, हा, लक्ष्मण " ॥ १३ ॥ उस भयङ्कर दर्शन वाले राक्षस को भूमि पर गिरा हुआ, रुधिर से लिबड़े अंगोंवाला, मही-तल पर लोटता हुआ देखकर राम ॥ १४ ॥ मन से सीता की ओर गया, क्योंकि उनको लक्ष्मण का वचन स्मरण आया, कि यह

मारीच का ही छल निकला, जैसा कि लक्ष्मण ने कहा था ॥ १५॥ "हा सीता, हा लक्ष्मण" ऐसी ऊंची ध्वनि से पुकारकर यह राक्षस मरा है, इसको सुनकर अब सीता की क्या दशा होगी ॥ १६ ॥ और महाबाहू लक्ष्मण की क्या अवस्था होगी, यह सोचकर धर्मात्मा राम के रोंगटे खड़े होगये, ॥ १७॥ और वह जल्दी के साथ जनस्थान की ओर गये ॥ १८ ॥

सर्ग ३९ (व० ४५) सीता की लक्ष्मण को प्रेरणा ।

मूल—आर्तस्वरं तु तं भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वनोउवाच लक्ष्मणं सीता गच्छ जानीहि राघवम् ॥ १ ॥ नहि मे जीवितं स्थाने हृदयं वाव-तिष्ठते । क्रोशतः परमार्तस्य श्रुतः शब्दो मया भृशम् ॥ २ ॥ आ-क्रन्दमानं तु वने भ्रातरं त्रातुमर्हसि । तं क्षिप्रमभिधाव त्वं भ्रातरं शरणैषिणम् ॥ ३ ॥ न जगाम तथोक्तस्तु भ्रातुराज्ञाय शासनम् । तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा ॥ ४ ॥+ सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत् । यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे ॥५॥+ व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते । तेन तिष्ठसि विश्रब्धं तमपश्यन्महाद्युतिम् ॥६॥+ किं हि संशयमापन्ने तस्मिन्निह मया भवेत् । कर्तव्यमिह तिष्ठन्त्या यत्प्रधानस्त्वमागतः ॥ ७ ॥ एवं ब्रुवाणां वैदेहीं बाष्पशोकसमन्विताम् । अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तां सीतां मृगवधूमिव ॥ ८ ॥ पन्नगासुरगन्धर्वदेवदानवराक्षसैः । अशक्यस्तव वैदेहि भर्ता जेतुं न संशयः ॥ ९ ॥ अनिवार्यं बलं तस्य बलैर्बलव-तामपि । हृदयं निर्वृतं तेऽस्तु सन्तापस्त्यज्यतां तव ॥ १० ॥ न्यास-भूतासि वैदेहि न्यस्ता मयि महात्मना । रामेण त्वं वरारोहे न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ ११ ॥ कृतवैराश्च कल्याणि वयमेतैर्निशाचरैः । खरस्य निधने देवि जनस्थानवधं प्रति ॥ १२ ॥ राक्षसा विविधा वाचो व्याहरन्ति महावने । हिंसाविहारा वैदेहि न चिन्तयितुमर्हसि

॥ १३ ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु क्रुद्धा संरक्तलोचना । अब्रवीत्परुषं वाक्यं लक्ष्मणं सत्यवादिनम् ॥१४॥+अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत् । रामस्य व्यसनं दृष्ट्वा तेनैतानि प्रभाषसे ॥ १५ ॥ +नैव चित्रं सपत्नेषु पापं लक्ष्मण यद् भवेत्।त्वद्विधेषु नृशंसेषु नित्यं प्रच्छन्नचारिषु ॥ १६ ॥+सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि । मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा ॥ १७ ॥ समक्षं तव सौमित्रे प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् । रामं विना क्षणमपि नैव जीवामि भूतले ॥ १८ ॥ इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया रोमहर्षणम् । अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्राञ्जलिः स जितेन्द्रियः ॥ १९ ॥ उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम ॥ २० ॥ वाक्यमप्रतिरूपं तु न चित्रं स्त्रीषु मैथिलि । स्वभावस्त्वेष नारीणामेषु लोकेषु दृश्यते ॥ २१ ॥ न सहे हीदृशं वाक्यं वैदेहि जनकात्मजे । श्रोत्रयोरुभयोर्मध्ये तप्तनाराचसन्निभम् ॥ २२ ॥ उपशृण्वन्तु मे सर्वे साक्षिणो हि वनेचराः । न्यायवादी यथा वाक्यमुक्तोऽहं परुषं त्वया ॥ २३ ॥ धिक्त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशङ्कसे । स्त्रीत्वाद्दुष्टस्वभावेन गुरुवाक्ये व्यवस्थितम् ॥ २४ ॥ गच्छामि यत्र काकुत्स्थः स्वस्ति तेऽस्तु वरानने । अपि त्वां सह रामेण पश्येयं पुनरागतः ॥ २५ ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु रुदती जनकात्मजा । प्रत्युवाच ततो वाक्यं तीव्रबाष्पपरिप्लुता ॥ २६ ॥ गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि हीना रामेण लक्ष्मण आबन्धिष्येऽथवा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः ॥ २७ ॥ + पिबामि वा विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् । न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे ॥ २८ ॥

टीका—वन में भर्त्ता के स्वर के तुल्य आर्त स्वर को सुनकर सीता लक्ष्मण से बोली, जाओ राघव का पता लो ॥ ५ ॥ मेरा जीवन वा हृदय स्थान पर नहीं ठहरता है, पुकारते हुए परम पीड़ित का

शब्द मैंने अच्छी तरह सुना है ॥ २ ॥ बन में पुकारते हुए भाई की रक्षा करने योग्य हो, शरण चाहते हुए अपने भाई की ओर दौड़ो ॥ ३ ॥ ऐसा कहने पर भी भाई की आज्ञा (सीता को अकेला न छोड़ने की) जानकर वह न गया, तब जनकसुता क्षोभ में आकर बोली ॥ ४ ॥ हे सुमित्रा के पुत्र तू मित्ररूप से भाई का शत्रु है, जो तू ऐसी अवस्था में भाई का सहारा नहीं बनता है ॥ ५ ॥ मैं जानती हूं कि तुझे भाई की विपद् प्यारी है, भाई में तुझे स्नेह नहीं है, इसलिये तू उस महातेजस्वी को न देखता हुआ चुप बैठा है ॥ ६ ॥ तू जिसको प्रधान करके आया है, जब वही संशय में पड़ा है, तो मेरी यहां रक्षा से क्या फल होगा ॥ ७ ॥ ऐसे कहती हुई आंसुओं से युक्त और शोक से भरी हुई और मृग बधू की तरह डरी हुई सीता से लक्ष्मण बोला ॥ ८ ॥ हे वैदेहि तेरा भर्त्ता नाग, दैत्य, गन्धर्व, देव, दानव और राक्षसों से जीता नहीं जासक्ता, इसमें संशय नहीं ॥ ९ ॥ बलवानों के बल भी उसके बल को नहीं रोक सक्ते हैं, तेरे हृदय को शान्ति हो, और सन्ताप को त्याग ॥ १० ॥ हे वैदेहि! महात्मा राम से तू मेरे पास अमानत छोड़ी गई है, हे वरारोहे ! मैं तुझे त्यागने का उत्साह नहीं करता हूं ॥ ११ ॥ हे कल्याणि हे देवि खर के मारने और जनस्थान के बध में हमने इन राक्षसों से वैर उत्पन्न कर लिया है ॥ १२ ॥ सो हिंसाशील राक्षस इस महावन में भांति २ की बोलियां बोलते हैं, हे वैदेहि तुझे चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥ १३ ॥ लक्ष्मण के ऐसा कहने पर क्रोध से उसके नेत्र लाल होगये और उस सत्यवादी लक्ष्मण से वह कठोर वाक्य बोली ॥ १४ ॥ मैं जानती हूं कि राम की भारी विपद् तुझे प्यारी है, इस लिये राम की विपद् देखकर तू इस तरह की बातें कहता है ॥ १५ ॥ तेरे जैसे दुर्जन सदा गुप्त-

चारी शरीकों में ऐसे पाप का होना हे लक्ष्मण आश्चर्य नहीं ॥१६॥ अतीव दुष्ट तू बन में अकेला अकेले रामके पीछे मेरे लिये गुप्तरूप से आया है अथवा भरत का प्रेरा हुआ है ॥ १७ ॥ तेरे सामने हे लक्ष्मण निःसन्देह प्राणों को त्यागूंगी, मैं राम के बिना भूतल पर एक क्षण नहीं जीसक्ती हूं ॥ १८ ॥ इसप्रकार रोंगटे खड़ा करनेवाला कठोर वचन जब सीता ने कहा, तो जितेन्द्रिय लक्ष्मण हाथ जोड़कर सीता से बोला ॥ १९ ॥ मैं कुछ उत्तर नहीं कह सक्ता हूं, आप मेरी देवता हैं ॥ २० ॥ हे मैथिलि अयोग्य बात कह देना स्त्रियों में आश्चर्य नहीं, स्त्रियों का इन लोकों में यह स्वभाव ही दीखता है ॥ २१ ॥ हे जनकात्मजे हे वैदेहि मैं ऐसे वाक्य को नहीं सह सक्ता हूं, जो दोनों कानों में तपे हुए बाण के सदृश है ॥२२॥ बनचारी सब मेरे साक्षी होकर सुनें, जैसा कि ठीक कहने वाले को तूने मुझे कठोर वाक्य कहा है ॥ २३ ॥ धिक्कार है आज तुझे नष्ट होती हुई को, जो तू स्त्रीपन के दुष्ट स्वभाव से मेरे ऊपर ऐसी आशंका करती है, जो मैं गुरु (बड़े भाई) की आज्ञा से स्थित हूं ॥ २४ ॥ जाता हूं, जहां राम है, तुझे कल्याण हो हे वरानने, परमात्मा करे राम के साथ फिर आकर तुझे देखूं ॥ २५ ॥ लक्ष्मण से ऐसे कही हुई रोती हुई जनकात्मजा तीव्र आंसुओं से युक्त हुई यह वाक्य बोली ॥ २६ ॥ हे लक्ष्मण राम के बिना मैं गोदावरी में डूब जाउंगी वा अपने आप को फांसी लगा लूंगी, वा विषम स्थल से अपने देह को त्याग दूंगी ॥ २७ ॥ अथवा तीव्र विष खालूंगी वा अग्नि में कूदजाउंगी, पर राघव के बिना कभी किसी पुरुष को नहीं छुऊंगी ॥ २८ ॥

सर्ग ३६(व० ४६) लक्ष्मण का जाना और रावण का आना

मूल—तया परुषमुक्तस्तु कुपितो राघवानुजः । स विकांक्षन्भृशं रामं प्रतस्थे नाचिरादिव ॥ १ ॥ तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तर मा-

मास्थितः । अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक् ॥ २ ॥ श्लक्ष्ण-
काषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही । वामे चांसेऽवसज्याथ शुभे
यष्टिकमण्डलू ॥ ३ ॥ अभ्यवर्तत वैदेहीं चित्रामिव शनैश्वरः । सह-
सा भव्यरूपेण तृणैः कूप इवावृतः ॥ ४ ॥ अतिष्ठत्प्रेक्ष्य वैदेहीं राम-
पत्नीं यशस्विनीम् । शुभां रुचिरदन्तोष्ठीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥५॥
आसीनां पर्णशालायां बाष्पशोकाभिपीडिताम् ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा काम-
शराविद्धो ब्रह्मघोषमुदीरयन् । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसा-
धिपः ॥ ७ ॥ रौप्यकाञ्चनवर्णाभे पीतकौशेयवासिनि । कमलानां
शुभां मालां पद्मिनीव च बिभ्रती ॥ ८ ॥ ह्रीः श्रीः कीर्तिः शुभाः
लक्ष्मीरप्सरा वा शुभानने । भूतिर्वा त्वं वरारोहे रतिर्वा स्वैरचारिणी
॥ ९ ॥ समाः शिखरिणः स्निग्धाः पाण्डुरा दशनास्तव । विशाले
विमले नेत्रे रक्तान्ते कृष्णतारके ॥ १० ॥ चारुस्मिते चारुदति चा-
रुनेत्रे विलासिनि । मनो हरसि मे रामे नदीकूलमिवाम्भसा ॥ ११ ॥
नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किन्नरी । नैवंरूपा मया नारी दृष्ट-
पूर्वा महीतले ॥ १२ ॥ रूपमग्र्यं च लोकेषु सौकुमार्यं वयश्च ते । इह
वासश्च कान्तारे चित्तमुन्माथयन्ति मे ॥ १३ ॥ नेह गच्छन्ति गन्धर्वा
न देवा न च किन्नराः । राक्षसानामयं वासः कथं तु त्वमिहागता१४
कासि कस्य कुतश्च त्वं किंनिमित्तं च दण्डकान् । एका चरसि क-
ल्याणि घोरान्राक्षससेवितान् ॥ १५ ॥ द्विजातिवेषेण हि तं दृष्ट्वा
रावणमागतम् । सर्वैरतिथिसत्कारैः पूजयामास मैथिलि ॥ १६ ॥ इयं
बृसी ब्राह्मण काममास्यतामिदं च पाद्यं प्रतिगृह्यतामिति।इदं च सिद्धं
वनजातमुत्तमं त्वदर्थं मव्यग्रमिहोपभुज्यताम् ॥ १७ ॥

टीका—उससे कठोर कहा हुआ कुपित हुआ राम का छोटा भाई
जल्दी राम को चाहता हुआ प्रस्थित हुआ ॥ १ ॥ उसी समय जल्दी
अवसर पाकर संन्यासी का रूप धारे रावण जानकी के पास गया॥२॥

साफ गेरवे वस्त्र पहने हुए शिखाधारी, छाता और पादुक धारण किये, और बांए कन्धे पर शुभ लाठी और कमण्डलु लटकाएहुए ॥ ३ ॥ एक शान्त रूप से तिनकों से ढपे हुए कुंए की तरह (धोखे में डालने वाला) वह जानकी के सम्मुख हुआ, जैसे शनैश्चर चित्रा नक्षत्र के ॥ ४ ॥ यशस्विनी रामपत्नी जानकी—जिसके दान्त और होंठ सुन्दर हैं,और मुख पूर्णचन्द्र के सदृश है,उस को देखकर ठहर गया ॥५॥जो कि पर्णशाला में बैठी हुई आंसुओं से और शोकसे पीड़ित है ॥६॥ उसे देखकर काम के बाणों से वींधा हुआ राक्षसोंका अधिपति वेदध्वनि का उच्चारण करके उस अकेली जगह में उस से नम्र वाक्य बोला ॥ ७ ॥ हे चान्दी और सोने के रंगवाली, पीले रेशमी वस्त्र पहने हुई और पद्मिनी की तरह कमलों की शुभ माला धारण कीहुई ॥ ८ ॥ हे सुन्दरमुखि ! तू सुन्दर लज्जा शोभा वा कीर्त्ति (रूप) है, वा लक्ष्मी है, वा अप्सरा है, अथवा हे वरारोहे तू विभूति (अणिमादिसिद्धि) है वा स्वेच्छा से विचरनेवाली रति (कामदेव की पत्नी) है ॥ ९ ॥ एक बराबर नोकदार, स्निग्ध श्वेत तेरे दान्त हैं, विशाल निर्मल नेत्र हैं, जिनके किनारे लाल हैं, और तारे काले हैं ॥ १० ॥ हे सुन्दर मुसकराहटवाली, हे सुन्दर दांतोंवाली, हे सुन्दर नेत्रोंवाली, हे विलासिनि सुन्दरि तू मेरे मन को हर लेगई है, जैसे नदी पानी द्वारा किनारे को (हर लेती है) ॥ ११ ॥ ऐसे सुन्दर रूपवाली नारी पृथिवी पर मैंने न देवी न गन्धर्वी न यक्षी न किन्नरी पहले कभी देखी है ॥ १२ ॥ यह सारे लोकों में श्रेष्ठ रूप, यह सुकुमारता, यह तेरी अवस्था, और यहां जंगल में वास यह मेरे चित्त को खेद देते हैं ॥ १३ ॥ न यहां गन्धर्व न देवता न किन्नर आते हैं, यह राक्षसों का वास है,तू यहां किस तरह आई है ॥ १४ ॥ तू कौन है, किसकी है, कहां से है,

और किस निमित्त अकेली इस भयंकर राक्षससेवित दण्डक वन में विचरती है ॥ १५ ॥ ब्राह्मण के वेष से रावण को आया देखकर जानकी सारे अतिथि सत्कारों से उसकी पूजा करती भई ॥ १६ ॥ यह कुशा का आसन है, हे ब्राह्मण बैठिये, यह पांओं के लिये जल है, स्वीकार कीजिये, और यह उत्तम जंगली पदार्थ आपके लिये तैयार हैं खाइये ॥ १७ ॥

सर्ग ३७ (व० ४७) सीता का रावण को उत्तर

मूल—रावणेन तु वैदेहि तदा पृष्टा जिहीर्षुणा । परिव्राजकरूपेण शशंसात्मानमात्मना ॥ १ ॥ दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः। सीता नाम्नास्मि भद्रं ते रामस्य महिषी प्रिया ॥ २ ॥ मम भर्त्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः । अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मानि गण्यते ॥ ३ ॥ अभिषेकाय तु पितुः समीपं राममागतम् । कैकयी मम भर्त्तारमित्युवाच द्रुतं वचः ॥ ४ ॥ तव पित्रा समाज्ञप्तं ममेदं शृणु राघव । भरताय प्रदातव्यमिदं राज्यमकण्टकम् ॥ ५ ॥ त्वया तु खलु वस्तव्यं नव वर्षाणि पञ्च च । चकार तद्वचः श्रुत्वा भर्त्ता मम दृढव्रतः ॥ ६ ॥+दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम् । एतद् ब्राह्मण रामस्य व्रतं धृतमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ तस्य भ्राता तु वैमात्रो लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् । रामस्य पुरुषव्याघ्रः सहायः समरेऽरिहा ॥ ८ ॥ स भ्राता लक्ष्मणो नाम ब्रह्मचारी दृढव्रतः । अन्वगच्छद्धनुष्पाणिः प्रव्रजन्तं मया सह ॥ ९ ॥ समाश्वस मुहूर्तं तु शक्यं वस्तुमिह त्वया । आगमिष्यति मे भर्त्ता वन्यमादाय पुष्कलम् ॥ १० ॥ स त्वं नाम च गोत्रं च कुलमाचक्ष्व तत्त्वतः । एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि द्विज ॥ ११ ॥ एवं ब्रुवत्यां सीतायां रामपत्न्यां महाबलः । प्रत्युवाचोत्तरं तीव्रं रावणो राक्षसाधिपः ॥ १२ ॥ येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुरमानुषाः ।

अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः ॥ १३ ॥ त्वां तु काञ्चन-
वर्णाभां दृष्ट्वा कौशेयवासिनीम् । रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छाम्य
निन्दिते ॥ १४ ॥ वह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः । सर्वा-
सामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव ॥ १५ ॥ लङ्का नाम समुद्रस्य
मध्ये मम महापुरी । सागरेण परिक्षिप्ता निविष्टा गिरिमूर्धनि ॥
१६ ॥ तत्र सीते मया सार्धं वनेषु विचरिष्यसि । न चास्य वन-
वासस्य स्पृहयिष्यसि भामिनि ॥ १७ ॥ रावणेनैवमुक्ता तु कुपिता
जनकात्मजा । प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम् ॥ १८ ॥
+महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम् । महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं
राममनुव्रता ॥ १९ ॥+सर्वलक्षणसम्पन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । सत्य-
संधं महाभागमहं राममनुव्रता ॥ २० ॥ महाबाहुं महोरस्कं सिंह-
विक्रान्तगामिनम् । नृसिंहं सिंहसंकाशमहं राममनुव्रता ॥ २१ ॥
त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम् । नाहं शक्या त्वया
स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ॥ २२ ॥ क्षुधितस्य च सिंहस्य मृग-
शत्रोस्तरस्विनः । आशीविषस्य वदनाद्दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥
२३ ॥ मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि । कालकूटं विषं
पीत्वा स्वस्तिमान् गन्तुमिच्छसि ॥ २४ ॥अक्षिसूच्या प्रमृजासि जि-
ह्वया लेढि च क्षुरम् । राघवस्य प्रियां भार्यामधिगन्तुं त्वमिच्छसि
॥ २५ ॥ अवसज्य शिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि । सूर्याचन्द्र-
मसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि ॥ २६ ॥ अग्निं प्रज्वालितं
दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि। कल्याणवृत्तां यो भार्यां रामस्याहर्तुमि-
च्छसि ॥ २७ ॥ तस्मिन्सहस्राक्षसमप्रभावे रामे स्थिते कार्मुकबाण-
पाणौ । हृतापि तेऽहं न जरां गमिष्ये आज्यं यथा मक्षिकयावगी-
र्णम् ॥ २८ ॥ इतीव तद्वाक्यमदुष्टभावा सुदुष्टमुक्त्वा रजनीचरं तम् ।
गात्रप्रकम्पाद्व्यथिता बभूव वातोद्धता सा कदलीव तन्वी ॥ २९ ॥

टीका—संन्यासी रूप से (सीता को) हरना चाहते हुए रावण ने जब ऐसे पूछा, तो वह स्वयं अपना आप बतलाने लगी ॥ १ ॥ मैं मिथिलाधिपति महात्मा जनक की कन्या हूं, सीता नाम है, राम की प्यारी पटरानी हूं ॥ २ ॥ मेरा भर्त्ता बड़ा तेजस्वी अवस्था से पच्चीस बरस का हुआ, और मेरे जन्म को अठारह बरस बीते॥३॥ उस समय अभिषेक के लिये पिता के पास आए मेरे भर्त्ता राम को कैकेयी जल्दी से यह वचन बोली॥४॥तेरे पिता ने मुझे यह आज्ञा दी है, हे राघव सुन ! यह निष्कण्टक राज्य भरत को दो ॥५ ॥ और तुम चौदह बरस वन में रहो, यह सुन कर मेरा भर्त्ता जो कि दृढ़व्रती है इस वचन को पूरा करता भया ॥ ६ ॥ देगा लेगा नहीं, सत्य बोलेगा झूठ नहीं, यह उत्तम व्रत हे ब्राह्मण राम ने धारण किया हुआ है॥७॥उसका वैमात्र भाई शत्रुओं के मारनेवाला पुरुष-श्रेष्ठ बलवान् लक्ष्मण जो कि युद्ध में राम का साथी है॥८॥दृढ़व्रत वाला भाई लक्ष्मण,वह हाथ में धनुष लेकर मेरे साथ राम के साथ आया है ॥ ९ ॥ थोड़ी देर तसल्ली कीजिये, आप यहां ठहरने योग्य हैं, अभी मेरा भर्त्ता पुष्कल जंगली आहार लेकर आएगा ॥ १० ॥ अब आप भी अपना कुल और गोत्र बतलाएं,किसलिये हे ब्राह्मण ! आप अकेले इस दण्डक में घूमते हैं ॥ १ ॥ रामपत्नी सीता के ऐसा कहने पर राक्षसों का अधिपति महाबली तीव्र (सीता के लिये असह्य) उत्तर देता भया ॥ १२ ॥ जिससे देव दैत्य और मनुष्यों समेत सब लोक कांपते हैं, मैं वह रावण हे सीता ! राक्षसगण का राजा हूं ॥ १३ ॥ किन्तु सोने के रंगवाली, रेशमी वस्त्र पहने हुए तुझे देखकर हे अनिन्दिते अपनी स्त्रियों में रति नहीं पाता हूं ॥ १५ ॥ बहुत उत्तम स्त्रियें जो मैं इधर उधर से लाया हूं, उन सब की तू तेरा भला हो मुख्य पटरानी बन॥१५॥

लंका नाम समुद्र के मध्य में मेरी बड़ी पुरी है, समुद्र से घिरी हुई पर्वत के शिखर पर स्थित है ॥ १६ ॥ वहां तू हे सीता मेरे साथ विचरेगी, और हे सुन्दरि इस बनवास की चाह नहीं करेगी ॥ १७ ॥ रावण से ऐसे कही हुई सुन्दरांगी जनकात्मजा उस राक्षस का अनादर करके उत्तर देती भई ॥ १८ ॥ महापर्वत की तरह अकम्प्य, महासागर की तरह अक्षोभ्य, महेन्द्र के तुल्य राम पति के मैं पीछे चली हूं ॥ १९ ॥ सारे लक्षणों से सम्पन्न बड़ की तरह सब को छाया देनेवाले, सच्ची प्रतिज्ञा वाले महाभाग राम के मैं पीछे चली हूं ॥ २० ॥ बडी भुजावाले, विशाल छाती वाले, शेर की चाल वाले, शेर के तुल्य, पुरुषों में शेर राम के मैं पीछे चली हूं ॥ २१ ॥ और तू गीदड़ मुझ दुर्लभा शेरनी को चाहता है तू मुझे छू नहीं सक्ता, जैसे सूर्य की प्रभा को ॥ २२ ॥ मृगों के मारनेवाले महाबली भूखे शेर के मुख से तू जबड़ा निकालना चाहता है ॥ २३ ॥ मन्दर पर्वत को हाथ से लेजाना चाहता है, कालकूट विष को पीकर कल्याण से जाना चाहता है ॥ २४ ॥ आंख की सुई से सीता है, और जिह्वा से छुरे को चाटता है, जो तू राघव की प्यारी भार्या को पाना चाहता है ॥ २५ ॥ गले में पत्थर लटका कर समुद्र तैरना चाहता है, सूर्य और चन्द्रमा को हाथ से पकड़ना चाहता है ॥ २६ ॥ जलती हुई अग्नि को वस्त्र से लाना चाहता है, जो तू कल्याण स्वभाववाली राघव की भार्या को हरना चाहता है ॥ २७ ॥ जब तक इन्द्र तुल्य प्रभाववाला राम हाथ में धनुषबाण लिये स्थित है, तब तक यह निश्चय रख, कि तुझ से हरी हुई भी मैं जीर्ण नहीं हूंगी, जैसे मक्खी के साथ निगला हुआ घी ॥ ८ ॥ इसप्रकार वह शुद्ध भावना वाली तन्वी उस दुष्ट राक्षस को यह वाक्य कहकर वायु से कम्पाए केले की तरह थर २ कांपने लगी २९

सर्ग ३८ (व० ४९) रावण का सीता को हरलेना

मूल—सीताया वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान्। हस्तेहस्तं समाहन्य चकार सुमहद्वपुः ॥ १ ॥ स मैथिलीं पुनर्वाक्यं बभाषे वाक्यकोविदः। नोन्मत्तया श्रुतौ मन्ये मम वीर्यपराक्रमौ ॥ २ ॥ उद्वहेयं भुजाभ्यां तु मेदिनीमम्बरे स्थितः। आपिबेयं समुद्रं च मृत्युं हन्यां रणे स्थितः ॥ ३ ॥ एवमुक्तवतस्तस्य रावणस्य शिखिप्रभे। क्रुद्धस्य हरिपर्यन्ते रक्ते नेत्रे बभूवतुः ॥ ४ ॥ सद्यः सौम्यं परित्यज्य तीक्ष्णरूपं स रावणः। स्वं रूपं कालरूपाभं भेजे वैश्रवणानुजः ॥ ५ ॥ संरक्तनयनः श्रीमांस्तप्तकाञ्चनभूषणः। क्रोधेन महताविष्टो नीलजीमूतसंनिभः ॥ ६ ॥ अभिगम्य सुदुष्टात्मा राक्षसःकाममोहितः। जग्राह रावणः सीतां बुधः खे रोहिणीमिव ॥ ७ ॥ वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः। उर्वोस्तु दक्षिणेनैव परिजग्राह पाणिना ॥ ८ ॥ स च मायामयो दिव्यः खरयुक्तः खरस्वनः। प्रत्यदृश्यत हेमाङ्गो रावणस्य महारथः ॥ ९ ॥ ततस्तां परुषैर्वाक्यैरभितर्ज्य महास्वनः। अङ्केनादाय वैदेहीं रथमारोहयत्तदा ॥ १० ॥ सा गृहीतातिचुक्रोश रावणेन यशस्विनी। रामेति सीता दुःखार्ता रामं दूरं गतं वने ॥ ११ ॥ तामकामां स कामार्तः पन्नगेन्द्रवधूमिव। विचेष्टमानामादाय उत्पपाताथ रावणः ॥ १२ ॥ ततः सा राक्षसेन्द्रेण ह्रियमाणा विहायसा। भृशं चुक्रोश मत्तेव भ्रान्तचित्ता तथातुरा ॥ १३ ॥ + हा लक्ष्मण महाबाहो गुरुचित्तप्रसादक। ह्रियमाणां न जानीषे रक्षसा कामरूपिणा ॥ १४ ॥+जीवितं सुखमर्थं च धर्महेतोः परित्यजन्। ह्रियमाणामधर्मेण मां राघव न पश्यसि ॥ १५ ॥ ननु नामाविनीतानां विनेतासि परन्तप। कथमेवंविधं पापं न त्वं शाधिहि रावणम् ॥ १६ ॥ हन्तेदानीं सकामा तु कैकेयी बान्धवैःसह। ह्रियेयं धर्मकामस्य धर्मपत्नी यशस्विनः ॥ १७ ॥ सा तदा करुणा वाचो

विलपन्ती सुदुःखिता । वनस्पतिगतं गृध्रं ददर्शायतलोचना ॥ १८ ॥ सा तमुद्वीक्ष्य सुश्रोणी रावणस्य वशंगता । समाक्रन्दद्भयपरा दुःखोपहितया गिरा ॥ १९ ॥ जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत् । अनेन राक्षसेन्द्रेण करुणं पापकर्मणा ॥ २० ॥

टीका–सीता के वचन को सुनकर प्रतापवाला रावण दोनों हाथों को मरोड़कर शरीर को भयङ्कर बनाता भया ॥१॥ वह वाक्यपण्डित जानकी से फिर वाक्य बोला, मैं जानता हूं, कि उन्मत्त हुई तूने मेरे वीर्य और पराक्रम नहीं सुने॥२॥मैं आकाश में खड़ा होकर दोनों भुजाओं से पृथिवी को उठालूं, समुद्र को पीजाऊं, और रण में स्थित हुआ मैं मृत्यु को मार डालूं ॥ ३ ॥ ऐसा कहते हुए क्रुद्ध हुए उस रावण के नेत्र लाल होगए, उनके प्रान्त काले होगए, और उनसे अग्नि बरसने लगी ॥ ४ ॥ तत्क्षण सौम्यरूप को त्यागकर वह कुबेर का छोटा भाई रावण कालरूप के तुल्य अपने तीक्ष्णरूप को धारण करता भया ॥ ५ ॥ लाल नेत्रोंवाला, श्रीमान् तपे हुए सोने के भूषणोंवाला, बड़े क्रोध से युक्त, नीलमेघ के तुल्य ॥ ६ ॥ वह दुष्टात्मा राक्षस काम से मोहा हुआ पास जाकर सीता को पकड़ लेता भया, जैसे आकाश में बुध रोहिणी को ॥ ७ ॥ बांएं हाथ से उसने पद्माक्षी सीता को बालों से पकड़ लिया और दांएं हाथ से दोनों रानों से उठा लिया ॥ ८ ॥ इतने में रावण का वह सुनहरी मायामय दिव्य रथ आगया, जो खर से युक्त, खर की ध्वनिवाला है (यह विमान विशेष था) ॥९॥तब (उसने) कठोर वाक्यों से सीता को झिड़क कर और अङ्क से उठाकर रथ पर रख लिया ॥ १० ॥ रावण से पकड़ी हुई यशस्विनी सीता ने बन में दूर गए राम को "हा राम" ऐसा दुःख से पीड़ित हुई ने पुकारा ॥ ११ ॥ उस अकामा को काम से पीड़ित हुआ नागिनी

की तरह लोटती हुई को लेकर तब रावण उड़ा ॥ १२ ॥ तब राक्षसपति से आकाश मार्ग द्वारा हरी जाती हुई सीता पागल की तरह और पीड़ित की तरह भ्रान्त चित्त हुई अत्यन्त पुकारने लगी ॥ १३ ॥ हे गुरु (राम) के चित्त को प्रसन्न रखनेवाले लक्ष्मण तू मुझे कामरूपी राक्षस से हरी जाती हुई को नहीं जानता है ॥ १४ ॥ जीवन सुख और धन को धर्म के अर्थ त्यागने वाले हे राघव! अधर्म से हरी जाती हुई मुझको तू नहीं देखता है ॥ १५ ॥ हे परन्तप आप टेढ़ों को सीधा करनेवाले हैं, तो कैसे ऐसे पापी रावण को दण्ड नहीं देते हो ॥ १६ ॥ हन्त अब कैकेयी बान्धवों समेत पूर्ण कामनावाली हुई, जब कि यशस्वी, धर्म की कामना वाले की धर्मपत्नी मैं हरी जाऊंगी ॥ १७ ॥ तब करुण विलाप करती हुई अत्यन्त दुःखी हुई उस विशालनेत्रा ने वनस्पतिगत गृध्र (जटायु) को देखा ॥ १८ ॥ वह सुमध्यमा उसे देखकर रावण के वश पड़ी हुई भयपरायण हुई दुःखयुक्त वाणी से पुकारती भई ॥ १९ ॥ हे जटायो हे आर्य देख मुझे अनाथ की तरह यह पापी राक्षसेन्द्र हर ले जारहा है ॥ २० ॥

सर्ग ३९ (व० ५०) जटायु का रावण को रोकना

मूल—तं शब्दमवसुप्तस्तु जटायुरथ शुश्रुवे । निरैक्षद्रावणं क्षिप्रं वैदेहीं च ददर्श सः ॥ १ ॥ वनस्पतिगतः श्रीमान्व्याजहार शुभां गिरम् ॥ २ ॥+दशग्रीव स्थितो धर्मे पुराणे सत्यसंश्रवः । भ्रातस्त्वं निन्दितं कर्म कर्तुं नार्हसि सांप्रतम् ॥ ३ ॥ + लोकानां च हिते युक्तो रामो दशरथात्मजः । तस्यैषा लोकनाथस्य धर्मपत्नी यशस्विनी ॥ ४ ॥ कथं राजा स्थितो धर्मे परदारान्परामृशेत् । रक्षणीया विशेषेण राजदारा महाबल ॥ ५ ॥ न तत्समाचरेद्धीरो यत्परोऽस्य विगर्हयेत् । यथात्मनस्तथान्येषां दारा रक्ष्या विमर्शनात् ॥ ६ ॥ वृद्धोऽहं त्वं युवा

धन्वी सरथः कवची शरी। न चाप्यादाय कुशली वैदेहीं मे गमिष्यसि ॥ ७ ॥ न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदहीं मम पश्यतः । हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवां वेदश्रुतीमिव ॥ ८ ॥+ नहि मे जीवमानस्य नयिष्यासि शुभामिमाम् । सीतां कमलपत्राक्षीं रामस्य महिषीं प्रियाम् । ९ ॥ + अवश्यं तु मया कार्यं प्रियं तस्य महात्मनः । जीवितेनापि रामस्य तथा दशरथस्य च ॥ १० ॥ युद्धातिथ्यं प्रदास्यामि यथाप्राणं निशाचर ॥ ११ ॥

टीका—इस शब्द को सोए हुए जटायु ने सुना, और रावण को और सीता को देखा॥ १ ॥और वनस्पति गत उस श्रीमान् ने यह बात कही ॥ २ ॥ हे दशग्रीव अपने पुराने धर्म में स्थित सच्ची प्रतिज्ञा वाला हो, हे भ्राता ऐसा निन्दित कर्म तुझे नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥ लोकों के हित में तत्पर दशरथ का पुत्र राम है, यह यशस्विनी उस लोकनाथ की धर्मपत्नी है ॥ ४ ॥ कैसे धर्म में स्थित राजा परस्त्री को छू सक्ता है, हे महावली राजपत्नियें विशेषतः रक्षा के योग्य होती हैं ॥ ५ ॥धीर पुरुष को वह काम नहीं करना चाहिये, जिसकी कोई निन्दा करे, जैसे अपने स्त्रियों की वैसे परस्त्रियों की भी दबाव से रक्षा करनी चाहिये ॥ ६ ॥ मैं बूढ़ा हूं तू युवा है, धनुर्धारी है, रथ सहित है, कवच पहने हुए बाण लिये हुए है, तथापि जानकी को मेरे सामने से लेकर कुशल से नहीं जाएगा ॥ ७ ॥ मेरे देखते हुए तू बल से सीता को नहीं लेजा सकता है, जैसे अटल वेद की श्रुति को कुतर्कों से ॥ ८ ॥ मेरे जीते हुए तू इस कमलनेत्रा राम की प्यारी रानी शुभ सीता को नहीं लेजाएगा ॥ ९ ॥ अवश्य मैंने उस महात्मा का और दशरथ का अपना प्राण देकर भी प्रिय करना है ॥ १० ॥ सो मैं हे निशाचर यथाशक्ति युद्ध से तेरा आतिथ्य करूंगा ॥ ११ ॥

सर्ग ४० (व० ५१) रावण और जटायु का युद्ध

मूल—इत्युक्तः क्रोधताम्राक्षस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः। राक्षसेन्द्रोऽभिदुद्राव पतगेन्द्रममर्षणः॥ १ ॥स संप्रहारस्तुमुलस्तयोस्तस्मिन्महामृधे। बभूव वातोद्धुतयोर्मेघयोर्गगने यथा॥२॥स तदा गृध्रराजेन क्लिश्यमानो मुहुर्मुहुः। अमर्षस्फुरितोष्ठः सन्प्राकम्पत च राक्षसः॥ ३ ॥ ततः क्रोधाद्दशग्रीवः सीतामुत्सृज्य वीर्यवान्। मुष्टिभ्यां चरणाभ्यां च गृध्रराजमपोथयत्॥ ४ ॥ सच्छिन्नपक्षः सहसा रक्षसा रौद्रकर्मणा। निपपात महागृध्रो धरण्यामल्पजीवितः॥ ५ ॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम्। अभ्यधावत वैदेही स्वबन्धुमिव दुःखिता॥ ६ ॥ सा तु ताराधिपमुखी रावणेन निरीक्ष्य तम्। गृध्रराजं विनिहतं विललाप सुदुःखिता॥ ७ ॥अयं हि कृपया राम मां त्रातुमिह संगतः। शेते विनिहतो भूमौ ममाभाग्याद्विहंगमः॥ ८ ॥ तां क्लिष्टमाल्याभरणां विलपन्तीमनाथवत्। अभ्यधावत् वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः॥ ९ ॥ तां लतामिव वेष्टन्तीमालिङ्गन्तीं महाद्रुमान्। मुञ्च मुञ्चेति बहुशः प्राप तां राक्षसाधिपः॥ १० ॥ क्रोशन्तीं राम रामेति रामेण रहितां वने। जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तकसन्निभः॥ ११ ॥ प्रधर्षितायां वैदेह्यां बभूव सचराचरम्। जगत्सर्वममर्यादं तमसान्धेन संवृतम्॥ १२ ॥ स तु तां रामरामेति रुदतीं लक्ष्मणेति च। जगामादाय चाकाशं रावणो राक्षसेश्वरः॥ १३ ॥

टीका--ऐसे कहने पर तपे हुए सोने के कुण्डलों वाला राक्षसेन्द्र न सहारता हुआ क्रोध से लाल नेत्रोंवाला हुआ उस पक्षीराज की ओर दौड़ा॥ १ ॥ उस बड़े युद्ध में वह उन दोनों की, आकाश में वायु से चलाए हुए मेघों की तरह बड़ी टक्कर हुई॥ २ ॥ उस समय गृध्रराज से बार २ तंग किया हुआ वह राक्षस कांप उठा, और क्रोध से उसके होंट फड़कने लगे॥ ३ ॥ तब श्रीमान् रावण

क्रोध से सीता को छोड़कर दोनों मुक्कियों से और दोनों पाओं से गृध्रराज को छड़ देता भया ॥४॥ उस भयङ्कर कर्मोंवाले राक्षस द्वारा दोनों भुजाओं के कट जाने से वह महागृध्र भूमि पर गिर पड़ा, जिसका जीवन अब थोड़ा शेष है ॥ ५ ॥ उस जटायु को लहू से लिवड़ा हुआ भूमि पर गिरा हुआ देखकर दुःखित हुई सीता अपने बन्धु की तरह उसकी ओर दौड़ी॥ ६ ॥वह चन्द्रमुखी रावण से गृध्रराज को हत हुआ देखकर अतीव दुःखित हो विलाप करने लगी॥७॥हेराम यह विहङ्गम * जो कृपा से मेरी रक्षा के लिये उद्यत हुआ था,वह हत हो भूमि पर सोगया है॥८॥तब राक्षस रावण, माला और भूषण मल डालती हुई अनाथ की तरह विलाप करती हुई उस सीता की ओर दौड़ा ॥ ९ ॥ बेल के लपेट की तरह बड़े २ वृक्षों को आलिङ्गन करती हुई,और 'मुझे छोड़ छोड़' ऐसे बार२पुकारती हुई उसको,राक्षसाधिपति प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ बन में राम से रहित हुई और राम २ पुकारती हुई को यमतुल्य रावण ने अपने जीवन के अन्त के लिये बालों से पकड़ा ॥ ११ ॥ वैदेही के अपमान पर चराचर सहित सारे जगत् की मर्यादा टूटगई और जगत् घोर अन्धकार से ढप गया ॥ १२ ॥ वह राक्षसपति रावण राम राम और लक्ष्मण कहकर रोती हुई को लेकर आकाश में उड़ गया ॥ १३ ॥

सर्ग ४१ (व० ५३) सीता का रावण को धिक्कारना

मूल—खमुत्पतन्तं तं दृष्ट्वा मैथिली जनकात्मजा। रुदती करुणं सीता ह्रियमाणा तमब्रवीत् ॥ १ ॥ न व्यपत्रपसे नीच कर्मणानेनरावण। ज्ञात्वा विरहितां यो मां चोरयित्वा पलायसे ॥ २ ॥ त्वयैव नूनंदु-

*जटायु को पक्षिरूप में वर्णन करना रूपक है। पक्षियों की तरह परमेश्वर पर भरोसा रखने वाला सम्प्रदाय विहङ्गम कहा जाना चाहिये। आज कल भी भारत में एक विहङ्गम सम्प्रदाय है।

ष्टात्मन्भीरुणा हर्तुमिच्छता । ममापवाहितो भर्ता मृगरूपेण मायया ॥ ३ ॥ यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽप्ययं विनिपातितः । गृध्रराजः पुराणोऽसौ श्वशुरस्य सखा मम ॥ ४ ॥ परमं खलु ते वीर्यं दृश्यते राक्षसाधम । विश्राव्य नामधेयं हि युद्धेनास्मि जिता त्वया ॥ ५ ॥ +ईदृशं गर्हितं कर्म कथं कृत्वा न लज्जसे । स्त्रियाश्चाहरणं नीच रहिते च परस्य च ॥ ६ ॥ कथयिष्यन्ति लोकेषु पुरुषाः कर्म कुत्सितम् । सुनृशंसमधर्मिष्ठं तव शौटीर्यमानिनः ॥ ७ ॥ धिक्ते शौर्यं च सत्त्वं च यत्त्वया कथितं तदा ॥ कुलाक्रोशकरं लोके धिक्ते चारित्रमीदृशम् ॥ ८ ॥ किं शक्यं कर्तुमेवं हि यज्जवेनैव धावसि । मुहूर्तमपि तिष्ठ त्वं न जीवन्प्रतियास्यसि ॥ ९ ॥ नहि चक्षुःपथं प्राप्य तयोः पार्थिवपुत्रयोः । ससैन्योऽपि समर्थस्त्वं मुहूर्तमपि जीवितुम् ॥ १० ॥ साधु कृत्वात्मनः पथ्यं साधु मां मुञ्च रावण । मत्प्रधर्षणसंक्रुद्धो भ्रात्रा सह पतिर्मम ॥ ११॥ विधास्यति विनाशाय त्वं मां यदि न मुञ्चसि ॥१२॥+येन त्वं व्यवसायेन बलान्मां हर्तुमिच्छसि । व्यवसायस्तु ते नीच भविष्यति निरर्थकः ॥ १३ ॥ + नह्यहं तमपश्यन्ती भर्तारं विबुधोपमम् । उत्सहे शत्रुवशगा प्राणान्धारयितुं चिरम् ॥ १४ ॥ न नूनं चात्मनः श्रेयः पथ्यं वा समवेक्षसे । मुमूर्षूणां तु सर्वेषां यत्पथ्यं तन्न रोचते ॥ १५ ॥ पश्यामीह हि कण्ठे त्वां कालपाशावपाशितम्॥यथा चास्मिन्भयस्थाने न बिभेषि निशाचर ॥१६॥एतच्चान्यच्च परुषं वैदेही रावणाङ्कगा । भयशोकसमाविष्टा करुणं विललाप ह॥१७॥

टीका—उसको आकाश की ओर उड़ता हुआ देखकर जनकात्मजा मैथिली दुःखित हुई अत्यन्त उद्विग्न हुई हरी जाती हुई उसे बोली ॥ १ ॥ हे नीच रावण इस कर्म से तुझे लज्जा नहीं आती है, जो मुझे अकेली जानकर चुराकर भागा जारहा है ॥ २ ॥ तुझ ही कायरने हे दुष्टात्मन् मुझे हरना चाहते हुएने मृगरूप छल से मेरे पति को दूर

पहुंचाया है ॥ ३ ॥ जो मेरे श्वसुर का सखा मुझे बचाने के लिये उद्यत हुआ उस वृद्ध गृध्रराज को भी तूने मार गिराया है ॥ ४ ॥ हे राक्षसाधम तेरा बल बहुत बड़ा दीखता है, युद्ध में अपना नाम सुनाकर जो मुझे जीतकर लाया है ॥ ५ ॥ ऐसा निन्दित कर्म करके क्या तुझे लज्जा नहीं आती, पराई स्त्री का हरना और अकेले में ॥ ६ ॥ जगत् में लोग तुझ शूरमानी के इस निन्दित निर्दय, अधर्मिष्ठ कर्म को कहा करेंगे ॥ ७ ॥ धिक्कार है तेरे शौर्य और दिलेरी को जो उस समय तूने कहा, हे कुल की निन्दा उत्पन्न करने वाले, लोक में तेरे ऐसे चरित्र को धिक्कार है ॥ ८ ॥ क्या किया जासकता है, जब तू इस तरह वेग से दौड़ा जारहा है, थोड़ी देर भी ठहर, फिर तू जीता नहीं जाएगा ॥ ९ ॥ उन दोनों राजपुत्रों के नेत्रपथ को प्राप्त होकर तू सेना के सहित भी मुहूर्त भी नहीं जीसक्ता है ॥ १० ॥ अपना पथ्य जानकर भले ही मुझे छोड़ हे रावण, यदि तू मुझे नहीं छोड़ेगा, तो मेरे अपमान से क्रुद्ध हुआ अपने भाई के साथ मेरा पति तेरे नाश के लिये यत्न करेगा ॥ ११, १२ ॥ जिस विचार से तू मुझे बल से हरना चाहता है, वह तेरा विचार हे नीच निरर्थक होगा, मैं देवतुल्य उस अपने भर्त्ता को न देखती हुई शत्रुओं के वश पड़ी देर तक प्राणों को नहीं धार सकूंगी ॥ १३, १४ ॥ निःसन्देह! तू अपनी भलाई वा पथ्य नहीं देखता है, मरना निकट आने पर सभी को जो पथ्य है, वह पसन्द नहीं आता है ॥ १५ ॥ हे रावण तू न रुकनेवाली कालफांस से बांधा गया है, जैसा कि तू इस भयस्थान में हे निशाचर! भय नहीं करता है ॥ १६ ॥ रावण के पास स्थित सीता भय शोक से युक्त हुई इत्यादि कठोर और करुण विलाप करती भई ॥ १७ ॥

सर्ग ४२ [व० ५४] सीता को लंका में लेजाना

मूल—ह्रियमाणा तु वैदेही कंचिन्नाथमपश्यती । ददर्श गिरिशृङ्ग-
स्थान्पञ्च वानरपुंगवान् । १ ॥ तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं
कनकप्रभम् । उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च ॥ २ ॥मुमोच
यदि रामाय शंसेयुरिति भामिनी । संभ्रमात्तु दशग्रीवस्तत्कर्म च
न बुद्धवान् ॥ ३ ॥ विक्रोशन्तीं तदा सीतां ददर्शुर्वानरोत्तमाः ।
स च पम्पामतिक्रम्य लङ्कामभिमुखः पुरीम् ॥ ४ ॥ जगाम मैथिलीं
गृह्य रुदतीं राक्षसेश्वरः ॥ ५ ॥ वनानि सरितः शैलान्सरांसि च
विहायसा । स क्षिप्रं समतीयाय शरश्चापादिव च्युतः ॥ ६ ॥ तिमि-
नक्रनिकेतं तु वरुणालयमक्षयम् । सरितां शरणं गत्वा समतीताय
सागरम् ॥ ७ ॥ प्रविवेश पुरीं लङ्कां रूपिणीं मृत्युमात्मनः ॥ ८ ॥
सोऽभिगम्य पुरीं लङ्कां सुविभक्तमहापथाम् । संरूढकक्ष्यां बहुलां
स्वमन्तः पुरमाविशत् ॥ ९ ॥ तत्र तामसितापाङ्गीं शोकमोहसमन्वि-
ताम् । निदधे रावणः सीतां मयो मायामिवासुरीम् ॥ १० ॥ अब्र-
वीच्च दशग्रीवः पिशाचीर्घोरदर्शनाः । यथा नैनां पुमान्स्त्री वा सीतां
पश्यत्यसम्मतः ॥ ११ ॥ मुक्तामणिसुवर्णानि वस्त्राण्याभरणानि च ।
यद्यदिच्छेत्तदेवास्या देयं मच्छन्दतो यथा ॥ १२ ॥ या च वक्ष्यति
वैदेहीं वचनं किंचिदप्रियम् । अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानान्न तस्या जी-
वितं प्रियम् ॥ १३ ॥तथोक्त्वा राक्षसीस्तास्तु राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
निष्क्रम्यान्तः पुरात्तस्मात्किं कृत्यमिति चिन्तयन् ॥१४॥ ददर्शाष्टौ
महावीर्यान्राक्षसान्पिशिताशनान् । उवाच तानिदं वाक्यं प्रशस्य
बलवीर्यतः ॥ १५ ॥ जनस्थाने वसद्भिस्तु भवद्भिः राममाश्रिता ।
प्रवृत्तिरुपनेतव्या किं करोतीति तत्त्वतः ॥ १६॥ अप्रमादाच्च गन्तव्यं
सर्वैरेव निशाचरैः।कर्तव्यश्च सदा यत्नो राघवस्य वधंप्रति।१७।युष्माकं
तु बलं ज्ञातं बहुशो रणमूर्धनि।अतश्चास्मिञनस्थाने मया यूयं निवासिताः

टीका—हरी चली जाती हुई सीता कोई अपना नाथ(रक्षक)न देखती हुई पर्वत के शिखर पर पांच वानर श्रेष्ठों को देखती भई ॥१॥ उनके मध्य में उस विशालनेत्रा वरारोहा ने सोने की प्रभावाला रेश्मी दुपट्टा और शुभ भूषण छोड़े, यादि यह राम को कहें, किन्तु रावण ने घबराहट में उसके इस कर्म को नहीं समझा ॥ २, ३ ॥ पुकारती हुई सीता को उस समय वानरों ने देखा ॥ ४ ॥ वह राक्षसपति पम्पा को लंघकर रोती हुई मैथिली को लेकर लङ्कापुरी की ओर गया ॥५॥ बन नदी पर्वत और सरोवरों को आकाशमार्ग से बाण से छूटे तीर की तरह वह जल्दी लंघ गया ॥ ६ ॥ तब मच्छ और मगरों से भरे हुए अनखुट्ट वरुण के घर नदियों के शरण (समुद्र) पर पहुंचकर सागर से पार होगया ॥७॥ और लङ्कापुरी में प्रविष्ट हुआ, जो कि उसकी रूपधारी मृत्यु है ॥ ८ ॥ बड़ी चौड़ी सड़कों वाली लङ्कापुरी में प्रविष्ट होकर (नौकरों से) भरी हुई डेउढ़ियों वाले अपने विशाल अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ ॥ ९ ॥ वहां काले नेत्रोंवाली शोक मोह से युक्त उस सीता को छिपाकर रखा, जैसे मय ने आसुरी माया को ॥ १० ॥ और रावण ने भयंकर दर्शन वाली राक्षसियों को कहा, कि इस सीता को विना हमारी अनुमति के कोई पुरुष वा स्त्री देखने न पावे ॥ ११॥ मोती, मणियें, सुवर्ण, वस्त्र, भूषण, जो २ यह चाहे मेरी इच्छा से इसे दो ॥ १२ ॥ और जो कोई सीता को अज्ञान से वा ज्ञान से कुछ अप्रिय वचन कहेगी, उसको जीना प्यारा नहीं होगा ॥ १३ ॥ इसप्रकार उन राक्षसियों को कहकर प्रतापवान् वह राक्षसेन्द्र उस अन्तःपुर से निकलकर सोचता भया कि अब क्या करना चाहिये ॥ १४ ॥ उसने रुधिर पीनेवाले, (जंगली) बड़े बलवाले आठ राक्षस देख, बल वीर्य से उनकी प्रशंसा करके उनसे यह

वाक्य बोला ॥ १५ ॥ जनस्थान में जाकर वास करते हुए आप लोग राम का समाचार ठीक देते रहें, कि वह क्या करता है ॥ १६ ॥ और सावधान होकर सब राक्षसों ने वहां जाना, और राम के बध के प्रति सदा यत्न करना ॥ १७॥ तुम्हारा बल मैंने रण के मस्तक पर बहुत बार देखा है, इसलिये इस जनस्थान में मैंने तुम्हें लगाया है १८

सर्ग ४३ [बा० ५५] रावण की सीता को अयोग्य प्रेरणा

मूल—संदिश्य राक्षसान्घोरान्रावणोऽष्टौ महाबलान्। आत्मानं बुद्धिवैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥ १ ॥ स चिन्तयानो वैदेहीं कामबाणैः प्रपीडितः। प्रविवेश गृहं रम्यं सीतां द्रष्टुमभित्वरन् ॥ २ ॥ स प्रविश्य तु तद्वेश्म रावणो राक्षसाधिपः। अपश्यद्राक्षसीमध्ये सीतां दुःखपरायणाम्॥३॥अधोगतमुखीं सीतां तामभ्येत्यनिशाचरः। उवाच वाक्यं पापात्मा सीतां लोभितुमिच्छया ॥ ४ ॥ यदिदं राज्य तन्त्रं मे त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्। जीवितं च विशालाक्षि त्वं मे प्राणैर्गरीयसी ॥ ५ ॥ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां मम योऽसौ परिग्रहः। तासां त्वमीश्वरी सीते मम भार्या भव प्रिये ॥ ६ ॥ भजस्व सीते मामेव भर्ताहं सदृशस्तव। लङ्कायाः सुमहद्राज्यमिदं त्वमनुपालय ॥ ७ ॥ त्वत्प्रेष्या मद्विधाश्चैव देवाश्चापि चराचरम्। अभिषेकजलक्लिन्ना तुष्टा च रमयस्व च ॥ ८ ॥ दुष्कृतं यत्पुरा कर्म वनवासेन तद्गतम्। यच्च ते सुकृतं कर्म तस्येदं फलमाप्नुहि ॥ ९ ॥ इह सर्वाणि माल्यानि दिव्यगन्धानि मैथिलि। भूषणानि च मुख्यानि तानि सेव मया सह ॥ १० ॥ पुष्पकं नाम सुश्रोणि तरसा निर्जितं रणे। तत्र सीते मया सार्धं विहरस्व यथासुखम् ॥ ११ ॥ वदनं पद्मसंकाशं विमलं चारुदर्शनम्। शोकार्तं तु वरारोहे न भ्राजति वरानने ॥ १२ ॥ एवं वदति तस्मिन्सा वस्त्रान्तेन वराङ्गना। पिधायेन्दुनिभं सीता मन्दमश्रूण्यवर्तयत ॥ १३ ॥ ध्यायन्तीं तामिवास्वस्थां सीतां चिन्ता-

हतप्रभाम्। उवाच वचनं वीरो रावणो रजनीचरः ॥ १४ ॥ + अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मलोपकृतेन ते। आर्षोऽयं दैव निष्पन्दो यस्त्वामभिभविष्यति॥१५॥+प्रसादं कुरु मे क्षिप्रं वश्यो दासोऽहमस्मिते ॥

टीका–आठ महाबली राक्षसों को आज्ञा देकर रावण बुद्धि के विपरीत होने से अपने आपको कृतकृत्य समझता भया ॥ १ ॥ वह काम के बाणों से पीड़ित हुआ सीता को चिन्तन करता हुआ उसे देखने के लिये जल्दी रमणीय गृह में प्रविष्ट हुआ ॥२॥ उसने राक्षसियों के मध्य में दुःखपरायण आंसुओं से पूर्ण मुखवाली दीन, शोक भार से पीड़ित सीता को देखा ॥३॥ नीचे किये मुख वाली, सीता के पास जाकर वह पापात्मा राक्षस उसे लुभाने की इच्छा से बोला॥ ४ ॥ हे विशालनेत्रे ! मेरा यह जितना राज्यतन्त्र है यह सारा और मेरा जीवन भी तेरे आश्रय है, तू मुझे प्राणों से बढ़कर है ॥ ५ ॥ मेरी बहुत सी जो उत्तम स्त्रियें हैं हे सीते तू उन सब की मालिक हुई हे प्रिये मेरी भार्या बन ॥ ६ ॥ हे सीते मुझे ही स्वीकारकर, मैं तेरे सदृश पति हूं, यह जो लङ्का का बहुत बड़ा राज्य है, इसका पालनकर ॥ ७ ॥ मेरे जैसे तेरे नौकर होंगे, और देवते भी और चर अचर सभी नौकर होंगे, अभिषेक के जल से स्नानकर, और रमण कर, ॥ ८ ॥ जो तेरा दुष्कर्म था, वह बनवास से दूर होगया, और जो तेरा सुकृत कर्म है, उसके फल को अब यहां प्राप्त हो ॥ ९ ॥ हे मैथिलि यहां सब मालाएं हैं, दिव्य गन्ध हैं, और मुख्य भूषण हैं, उनको मेरे साथ सेवन कर ॥ १० ॥ हे सुश्रोणि पुष्पक विमान जोकि मैंने रण में अपने बल से जीता है, उसपर हे सीते मेरे साथ यथासुख विहरणकर ॥ ११ ॥ पद्मतुल्य निर्मल सुन्दर दर्शन वाला तेरा मुख हे वरारोहे हे सुन्दरमुखि शोक से पीड़ित हुआ शोभा नहीं पाता है॥ १२ ॥

उसके ऐसा कहते हुए वह उत्तम स्त्री सीता कपड़े के अञ्चल से मुखचन्द्र को ढांप कर मन्द मन्द आंसु गिराने लगी ॥ १३ ॥ चिन्ता में लगी हुई चिन्ता से नष्ट हुई कान्तिवाली अस्वस्थ सीता को रजनीचर वीर रावण फिर यह वचन बोला ॥ १४ ॥ हे वैदेहि धर्मलोप के ख्याल से तू लज्जा मत कर, यह प्रेमप्रार्थना जिससे मैं तुझे जीतना चाहता हूं, हे देवि ! वैदिक है (अर्थात् मार काट करके छीन लाना यह राक्षस विवाह क्षत्रियों के लिये अनुचित नहीं है—पर रावण का यह कथन सीता को यथा कथञ्चित् फुसलाने के लिये है। राक्षस विवाह कन्या के साथ होता है, न कि विवाहिता के साथ, और बहादुरी से जीती हुई के साथ होता है, नाकि चुराई हुई के) ॥ १५ ॥ मेरे ऊपर जल्दी प्रसाद कर, मैं तेरा वशवर्ती दास हूं ॥ १६ ॥

सर्ग ४६ (व० ५६) सीता का निर्भय उत्तर और रावण का क्रोध

मूल—सा तथोक्ता तु वैदेही निर्भया शोककर्शिता । तृणमन्तरतः कृत्वा रावणं प्रत्यभाषत ॥ १ ॥ राजा दशरथो नाम धर्मसेतुरिवाचलः । सत्यसंधः परिज्ञातो यस्य पुत्रः स राघवः ॥ २ ॥ +रामो नाम स धर्मात्मा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । दीर्घबाहुर्विशालाक्षो दैवतं स पतिर्मम ॥ ३ ॥+प्रत्यक्षं यद्यहं तस्य त्वया वै धर्षिता बलात् । शयिता त्वं हतः संख्ये जनस्थाने यथाखरः ॥४॥+गतासुस्त्वं गतश्रीकोगतसत्त्वो गतेन्द्रियः । लङ्का वैधव्यसंयुक्ता त्वत्कृतेन भविष्यति ॥ ५ ॥ + न ते पापमिदं कर्म सुखोदर्कं भविष्यति । याहं नीता विनाभावं पतिपार्श्वात्त्वया बलात् ॥ ६ ॥ यदा विनाशो भूतानां दृश्यते कालचोदितः । तदा कार्ये प्रमाद्यन्ति नराः कालवशं गताः ॥ ७ ॥ मां प्रधृष्य स ते कालः प्राप्तोऽयं राक्षसाधम। आत्मनो राक्षसानां च वधायान्तः पुरस्य च ॥ ८ ॥ + इदं शरीरं निःसंज्ञं

बन्ध वा घातयस्व वा । नेदं शरीरं रक्ष्यं मे जीवितं वापिराक्षस॥९॥ न तु शक्यमपक्रोशं पृथिव्यां दातुमात्मनः । एवमुक्त्वा तु वैदेही क्रोधात्सुपरुषं वचः ॥ १० ॥ रावणं जानकी तत्र पुनर्नोवाच किंचन ॥११॥ सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं रोमहर्षणम् । प्रत्युवाच ततःसीतां भयसन्दर्शनं वचः ॥ १२ ॥ शृणु वैदेहि मद्वाक्यं मासान्द्वादश भामिनि । कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनि ॥ १३ ॥ ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः । इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणः शत्रुरावणः ॥ १४ ॥ राक्षसीश्च ततः क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत्। शीघ्रमेव हि राक्षस्यो विरूपा घोरदर्शनाः ॥ १५ ॥ दर्पमस्यापनेष्यन्तु मांसशोणितभोजनाः । वचनादेव तास्तस्य मैथिलीं पर्यवारयन् ॥ १६ ॥ स ताः प्रोवाच राजासौ रावणो घोरदर्शनाः। प्रचल्य चरणोत्कर्षैर्दारयन्निव मेदिनीम् ॥ १७ ॥ अशोकवनिकामध्ये मैथिली नीयतामिति । तत्रेयं रक्ष्यतां गूढं युष्माभिः परिवारिता ॥ १८ ॥ तत्रैनां तर्जनैर्घोरैः पुनः सान्त्वैश्च मैथिलीम् । आनयध्वं वशं सर्वा वन्यां गजवधूमिव ॥ १९ ॥ इति प्रतिसमादिष्टा राक्षस्यो रावणेन ताः । अशोकवनिकां जग्मुर्मैथिलीं परिगृह्य तु ॥ २० ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृताम् । सर्वकालमदैश्चापि द्विजैः समुपसेविताम्॥२१॥न विन्दते तत्र तु शर्म मैथिली विरूपनेत्राभिरतीवर्तजिता।पतिं स्मरन्ती दयितं च देवरं विचेतनाभूद्भयशोकपीडिता २२

टीका—ऐसे कही हुई वैदेही निर्भय हुई शोक से दुर्बल हुई मध्य में तृण रखकर रावण को उत्तर देती भई, (तृण रखने का तात्पर्य दुष्टाशय परपुरुष से साक्षात् बात न करने का है)॥१॥विख्यात राजा दशरथ नाम जो मानों अचल धर्म का सेतु सची प्रतिज्ञा वाला हुआ है, जिसका पुत्र वह राघव है ॥ २ ॥ राम नाम वह धर्मात्मा तीनों लोकों में विख्यात है, लम्बी भुजावाला, विशाल

नेत्रोंवाला, वह मेरा पति मेरा देवता है ॥ ३ ॥ यदि तू उसके सामने मुझे बल से दबाता, तो तू युद्ध में जनस्थान में खर की तरह मरा हुआ लोटता ॥ ४ ॥ तू अब मर चुका है, तेरी शोभा दूर होचुकी, तेरा अन्तःकरण नष्ट होगया, तेरे इन्द्रिय नष्ट होगए, तेरे अपराध से सारी लङ्का विधवा होगी ॥ ५ ॥ तेरा यह पाप-कर्म सुख फल वाला नहीं होगा, जब कि तूने धक्के से मुझे पति के पास से अलग कर दिया है॥६॥मनुष्यों का काल से प्रेरा हुआ विनाश, जब सामने आता है तब काल के वश प्राप्त हुए नर अपने कर्तव्य में प्रमाद करते हैं॥७॥हे राक्षस मुझे दबाने से तेरे, राक्षसों के और तेरे अन्तःपुर के वध के लिये तेरा काल आया है ॥ ८ ॥ इस अचेतन शरीर को चाहे बांध चाहे मार डाल, इस शरीर की रक्षा मुझे आवश्यक नहीं, न जीवन की हे राक्षस ॥ ९ ॥ किन्तु मैं पृथिवी में अपनी निन्दा को स्थान नहीं दूंगी । क्रोध से ऐसा वचन कहकर ॥ १० ॥ जानकी फिर रावण से कुछ नहीं बोली ॥ ११ ॥ रोंगटे खड़ा करनेवाला सीताका कठोर वचन सुनकर तब रावण भय दिखलाने वाला वचन सीता को बोला॥१२॥ हे मैथिलि मेरी बात सुन,"बारह महीने"इतने काल में हे सुन्दरहंसने वाली सुन्दरि यदि मुझे स्वीकार नहीं करेगी ॥ १३ ॥ तब रसोइये मेरे प्रातराश के लिये तुझे टुकड़े २ काट देंगे, शत्रुओं के रुलाने वाला रावण ऐसा कठोर वाक्य कहकर ॥ १४ ॥ फिर क्रुद्ध हुआ राक्षसियों से यह वचन बोला, बेरूप भयङ्कर दर्शनवाली मांस और रुधिर के खानेवाली राक्षसियें इसके दर्प को शीघ्र दूर करें, उसका वचन सुनते ही वह जानकी को घेर लेती भई ॥ १५, १६ ॥ तब रावण चरणों के प्रहार से पृथिवी को मानों फोड़ता हुआ उन भयङ्कर दर्शनवाली राक्षसियों को बोला ॥१७॥ अशोक

वाटिका में मैथिली को लेजाओ, तुम वहां चारों ओर से घेरकर इसकी गुप्त रक्षा करो ॥ १८ ॥ वहां इसे घोर झिड़कों से और तसल्लियों से जंगली हथिनी की तरह वश में लाओ ॥१९॥रावण से आज्ञा दी हुई वह राक्षसियें मैथिली को लेकर अशोकवनिका को गई ॥ २० ॥ जो सर्व रसों के फलोंवाले वृक्षों से और नाना पुष्प फलों से भरी हुई है, और सर्व काल में मस्त पक्षियों से सेवित है ॥ २१ ॥ पर मैथिली वहां उन विरूप नेत्रोंवाली राक्षसियों से झिड़की जाती हुई सुख नहीं पाती, प्यारे पति को और देवर को स्मरण करती हुई बेहोश होगई ॥ २२ ॥

सर्ग ४७ (व० ५७, ५८) राम का आश्रम में लौटना

मूल–राक्षसं मृगरूपेण चरन्तं कामरूपिणम् । निहत्य रामो मारीचं तूर्णं पथि न्यवर्तत ॥१॥"काञ्चनश्च मृगो भूत्वा व्यपनीयाश्रमात्तु माम् । दूरं नीत्वाऽथ मारीचो राक्षसोऽभूच्छराहतः ॥ २ ॥ हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति यद्वाक्यं व्याजहार ह । अपि स्वस्ति भवेद्द्वाभ्यां रहिताभ्यां मया वने ॥ ३ ॥ जनस्थाननिमित्तं हि कृतवैरोऽस्मि राक्षसैः" । इत्येवं चिन्तयन्रामः जगामाश्रममात्मवान् ॥ ४ ॥ ततो लक्ष्मणमायान्तं ददर्श विगतप्रभम् । ततो विदूरे रामेण समीयाय स लक्ष्मणः ॥५॥ स दृष्ट्वा लक्ष्मणं दीनं शून्यं दशरथात्मजः । पर्यपृच्छत धर्मात्मा वैदेहीमागतं विना ॥ ६॥ प्रस्थितं दण्डकारण्यं या मामनुजगाम ह । क्व सा लक्ष्मण वैदेही यां हित्वा त्वमिहागतः ॥ ७ ॥ राज्यभ्रष्टस्य दीनस्य दण्डकान्परिधावतः । क्व सा दुःखसहाया मे वैदेही तनुमध्यमा ॥ ८ ॥ यां विना नोत्सहे वीर मुहूर्तमपि जीवितुम् । क्व सा प्राणसहाया मे सीता सुरसुतोपमा॥ ९ ॥ कच्चिज्जीवति वैदेही प्राणैः प्रियतरा मम । कच्चित्प्रव्राजनं वीर न मे मिथ्या भविष्यति॥१०॥+यदि जीवति वैदेही गमिष्याम्याश्रमं

पुनः । संवृत्ता यदि वृत्ता मा प्राणांस्त्यक्ष्यामि लक्ष्मण ॥ ११ ॥ सर्वथा रक्षसा तेन जिह्मेन सुदुरात्मना । वदता लक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापि जनितं भयम् ॥ १२ ॥ श्रुतश्च मन्ये वैदेह्या स स्वरः सदृशो मम । त्रस्तया प्रेषितस्त्वं च द्रष्टुं मां शीघ्रमागतः ॥ १३ ॥ सर्वथा तु कृतं कष्टं सीतामुत्सृजता वने । प्रतिकर्तुं नृशंसानां रक्षसां दत्तमन्तरम् ॥ १४ ॥ दुःखिताः खरघातेन राक्षसाः पिशिताशनाः । तैः सीता निहता घोरैर्भविष्यति न संशयः ॥ १५ ॥ अहोऽस्मि व्यसने मग्नः सर्वथा रिपुनाशन । किं त्विदानीं करिष्यामि शङ्के प्राप्तव्यमीदृशम् ॥ १६ ॥ इति सीतां वरारोहां चिन्तयन्नेव राघवः । आजगाम जनस्थानं त्वरया सहलक्ष्मणः ॥ १७ ॥ विगर्हमाणोऽनुजमार्तरूपं क्षुधाश्रमेणैव पिपासया च । विनिःश्वसञ्शुष्कमुखो विषण्णः प्रतिश्रयं प्राप्य समीक्ष्य शून्यम् ॥ १८ ॥ स्वमाश्रमं स प्रविगाह्य वीरो विहारदेशाननुसृत्य कांश्चित् । एतत्तदित्येव निवासभूमौ प्रहृष्टरोमा व्यथितो बभूव ॥

(अब कवि राम का वृत्तान्त कहता है):—

टीका—मृगरूप से विचरते हुए कामरूपी मारीच राक्षस को मारकर राम जल्दी मार्ग में लौटा ॥ १ ॥ और यह सोचता हुआ वह जितेन्द्रिय आश्रम की ओर आया, कि "यह सोनेका हिरण बन कर मुझे आश्रम से निकाल कर दूर ले जाकर तीरों से मारा हुआ मारीच राक्षस बन गया, और उसने हा लक्ष्मण मैं मरा गया" यह ऊंचे कहा, सो परमात्मा करे कि मुझ से रहित हुए दोनों को बन में कल्याण हो, जनस्थान के निमित्त मैंने राक्षसों से वैर किया है ॥ २, ३, ४ ॥ तब उसने मुरझाए हुए चेहरेवाले लक्ष्मण को आते हुए देखा, और उसके अनन्तर वह लक्ष्मण पास आकर राम से मिला ॥ ५ ॥ वह धर्मात्मा दशरथसुत लक्ष्मण को सीता के बिना देखकर

पूछता भया ॥ ६ ॥ जो दण्डक बन को प्रस्थित हुए मेरे पीछे आई, हे लक्ष्मण वह वैदेही कहां है, कि उसे छोड़कर तू यहां आया है ॥ ७ ॥ राज्य से भ्रष्ट हुए दीन हुए दण्डकों की ओर दौड़ते हुए की मेरी वह दुःख की साथन सूक्ष्म मध्यवाली वैदेही कहां है ॥ ८ ॥ जिसके बिना हे वीर मैं एक मुहूर्त भी नहीं जी सक्ता हूं, कहां वह मेरी प्राणों की साथन देवकन्या के तुल्य सीता है ॥ ९ ॥ क्या मेरे प्राणों से बढ़कर प्यारी वैदेही जीती है, क्या हे वीर मेरा निकाला जाना मिथ्या तो नहीं होगा॥१०॥ यदि जीती है वैदेही तो मैं फिर आश्रम को जाऊंगा, और यदि वह सती मर गई है, तो हे लक्ष्मण प्राणों को त्याग दूंगा ॥ ११ ॥ सर्वथा उस कुटिल दुर्जन राक्षस ने "हा लक्ष्मण" ऐसा ऊंचे कहकर तुझे भी भय उत्पन्न कर दिया ॥ १२ ॥ और मैं समझता हूं, कि वह मेरे सदृश स्वर वैदेही ने भी सुना है, और डरकर तुझे भेजा है और तू मुझे देखने के लिये शीघ्र आया है ॥ १३॥ सीता को बन में छोड़ते हुए तूने सर्वथा कष्ट किया है, बदला लेना चाहते हुए दुष्ट राक्षसों को अवकाश दे दिया है ॥ १४ ॥ खर के बध से दुःखित राक्षस जोकि रुधिर पीने वाले भयङ्कर हैं, उन्होंने निःसन्देह सीता को मार डाला होगा ॥ १५ ॥ अहो हे शत्रुनाशन सर्वथा बड़ी विपत्ति में डूबा हूं, पर अब क्या करूं, स्यात् हमें ऐसा ही भुक्तना होगा ॥ १६ ॥ इसप्रकार उस वरारोहा सीता को चिन्तन करता हुआ ही राम जल्दी लक्ष्मण के साथ जनस्थान को आया ॥ १७ ॥ क्षुधा से श्रम से और प्यास से आर्त रूप छोटे भाई को निन्दता हुआ, आहें भरता हुआ, सूखे हुए मुखवाला, डिगे हुए मनवाला, राम निवासस्थान पर पहुंच और उसे शून्य देखकर ॥ १८ ॥ अपने आश्रम को सारा अवगाहन करके वह

वीर कई विहार (घूमने फिरने के) स्थानों को ढूंढकर उस निवास भूमि में "यह,वह" (यह उसकी क्रीड़ा का स्थान है, स्यात् यहां हो, वह उसके फूल चुनने का स्थान है, कदाचित् वहां हो, इत्यादि) यही कहता हुआ बड़ा दुःखित हुआ और उसके रोंगटे खड़े होगए॥१९

सर्ग ४८ (व० ६१) सीता का न पाना और राम का विलाप

मूल—दृष्ट्वाश्रमपदं शून्यं रामो दशरथात्मजः। रहितां पर्णशालां च प्रविद्धान्यासनानि च ॥ १ ॥ अदृष्ट्वा तत्र वैदेहीं सन्निरीक्ष्य च सर्वशः। उवाच रामः प्राक्रुश्य प्रगृह्य रुचिरौ भुजौ ॥ २ ॥ क्व नु लक्ष्मण वैदेही कं वा देशमितो गता। केनाहृता वा सौमित्रे भक्षिता केन वा प्रिया ॥ ३ ॥ वृक्षेणावार्य यदि मां सीते हसितुमिच्छसि। अलं ते हसितेनाद्य मां भजस्व सुदुःखितम् ॥ ४ ॥ यैः परिक्रीडसे सीते विश्वस्तैमृगपोतकैः। एते हीनास्त्वया सौम्ये ध्यायन्त्यस्राविलेक्षणाः ॥ ५ ॥ सीतया रहितोऽहं वै नहि जीवामि लक्ष्मण ॥ ६ ॥ वृतं शोकेन महता सीताहरणजेन माम्। परलोके महाराजो नूनं द्रक्ष्यति मे पिता ॥ ७ ॥ कथं प्रतिज्ञां संश्रुत्य मया त्वमभियोजितः। अपूरयित्वा तं कालं मत्सकाशमिहागतः ॥ ८ ॥ कामवृत्तमनार्यं वा मृषावादिनमेव च। धिक्त्वामिति परे लोके व्यक्तं वक्ष्यति मे पिता ॥ ९ ॥ मामिहोत्सृज्य करुणं कीर्तिर्नरमिवानृजुम्। क्व गच्छसि वरारोह मामोत्सृज सुमध्यमे ॥ १० ॥ त्वया विरहितश्चाहं त्यक्ष्ये जीवितमात्मनः। इतीव विलपन्रामः सीतादर्शनलालसः ॥ ११ ॥ न ददर्श सुदुःखार्तो राघवो जनकात्मजाम्। अनासादयमानं तं सीताशोकपरायणम् ॥ १२ ॥ पङ्कमासाद्य विपुलं सीदन्तमिव कुञ्जरम्। लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाच हितकाम्यया ॥१३॥ मा विषादं महाबुद्धे कुरु यत्नं मया सह। इदं गिरिवरं वीर बहुकन्दरशोभितम् ॥ १४ ॥ प्रियकाननसंचारा वनोन्मत्ता च मैथिली।

सा वनं वा प्रविष्टा स्यान्नलिनीं वा सुपुष्पिताम् ॥ १५ ॥ सरितं वापि संप्राप्ता मीनवञ्जुलसेविताम् । वित्रासयितुकामा वा लीना स्यात्कानने क्वचित् ॥ १६ ॥ जिज्ञासमाना वैदेही त्वां मां च पुरुषर्षभ । तस्या ह्यन्वेषणे श्रीमन्क्षिप्रमेव यतावहे ॥ १७ ॥ वनं सर्वं विचिनुवो यत्र सा जनकात्मजा । मन्यसे यदि काकुत्स्थ मा स्म शोके मनः कृथाः ॥ १८ ॥ एवमुक्तः स सौहार्दाल्लक्ष्मणेन समाहितः । सह सौमित्रिणा रामो विचेतुमुपचक्रमे ॥ १९ ॥ ततो वनानि गिरींश्चैव सरितश्च सरांसि च । निखिलेन विचिन्वन्तौ सीतां दशरथात्मजौ ॥ २० ॥ तस्य शैलस्य सानूनि शिलाश्च शिखराणि च । निखिलेन विचिन्वन्तौ नैव तामभिजग्मतुः ॥ २१ ॥ विचित्य सर्वतः शैलं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । वनं सुविचितं सर्वं पद्मिन्यः फुल्लपङ्कजाः ॥ २२ ॥ गिरिश्चायं महाप्राज्ञ बहुकन्दरनिर्झरः । नहि पश्यामि वैदेहीं प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ॥ २३ ॥ एवं स विलपन्रामः सीताहरणकर्शितः । दीनः शोकसमाविष्टो मुहूर्तं विह्वलोऽभवत् ॥ २४ ॥ बहुशः स तु निःश्वस्य रामो राजीवलोचनः । हा प्रियेति विचुक्रोश बहुशो बाष्पगद्गदः ॥ २५ ॥ सान्त्वयामास ततो लक्ष्मणः प्रियबान्धवम् । बहुप्रकारं शोकार्तः प्रश्रितः प्रश्रिताञ्जलिः ॥ २६ ॥ अनादृत्य तु तद्वाक्यं लक्ष्मणोष्ठपुटच्युतम् । अपश्यंस्तां प्रियां सीतां प्राक्रोशत्स पुनः पुनः २७

टीका--दशरथसुत राम आश्रम को शून्य, पर्णशाला को खाली और आसनों को इधर उधर फैंका हुआ देखकर ॥ १ ॥ और वहां वैदेही को न देखकर सारे ढूंढकर राम दोनों सुन्दर भुजाओं को ऊंचे उठाकर पुकारकर बोला ॥ २ ॥ कहां है लक्ष्मण वैदेही यहां से किस स्थान को गई वा किसने हरी है, वा हे सौमित्रे किसने प्यारी भक्षण करली है ॥ ३ ॥ हे सीते यदि वृक्ष से अपने आप को ढांपकर मुझ से हंसना चाहती है, तो आज तुझे हंसी से बस है,

मेरे पास आ, मैं अत्यन्त दुःखित हूं॥ ४ ॥ हे सीते! जिन विश्वस्त मृग बच्चों के साथ क्रीड़ा किया करती है, यह वह तुझसे हीन हुए हे सौम्ये! आंसुओं से भरी हुई आंखों से तुझे चिन्तन कर रहे हैं॥५॥ हे लक्ष्मण ! सीता से रहित हुआ मैं जीता नहीं रहूंगा॥ ६ ॥ सीता-हरण से उत्पन्न हुए बड़े शोक से युक्त मुझको महाराज मेरा पिता निःसन्देह परलोक में देखेगा॥७॥ (कहेगा कि) कैसे प्रतिज्ञा करके मुझ से आज्ञा दिया हुआ उतने काल को पूरा न करके मेरे पास यहां आया है ॥ ८ ॥ अपनी मर्ज़ी पर चलने वाले असत्यवादी मुझ अनार्य को परलोक में मेरा पिता "तुझे धिक्कार हो" ऐसे स्पष्ट कहेगा ॥ ९ ॥ कुटिल पुरुष को कीर्त्ति की तरह मुझ दीन को छोड़कर हे वरारोहे ! तू कहां जाती है, हे सुमध्यमे ! मुझे मत त्याग॥ १० ॥ तुझसे रहित हुआ मैं अपना जीवन त्याग दूंगा, इसप्रकार विलपते हुए सीता के दर्शन की लालसा वाले ॥ ११ ॥ बड़े दुःखित हुए जनकसुता को न पाते हुए शोकपरायण हुए ॥ १२ ॥ बड़े कीचड़ में फंसकर हाथी की तरह दुःखित हुए राम को लक्ष्मण हितकामना से उत्तम अर्थवाला वाक्य बोला ॥ १३ ॥ हे महाबुद्धे! विषाद मतकर, मेरे सहित यत्नकर, यह पर्वतवर हे वीर बहुत कन्दराओं से शोभित है॥१४॥ और सीता को वनों में घूमना प्यारा है, फूले हुए वनों में प्रसन्न होती है, सो वन में गई होगी वा फूली हुई पद्मिनी में गई होगी ॥ १५ ॥ अथवा मछलियों और वैतों से सेवित नदी पर गई होगी, अथवा डरकर कहीं वनमें घुसी होगी॥१६॥ तुझे और मुझे हे पुरुषश्रेष्ठ! ढूंढती होगी सो हे श्रीमान् उसके ढूंढने में हम जल्दी यत्न करें ॥ १७ ॥ सारे वन को ढूंढते हैं जहां वह जनकात्मजा है शोक में मन को मत डाल॥१८॥ लक्ष्मण से इस प्रकार सौहार्द से कहा हुआ राम चित्त को थामकर लक्ष्मण सहित

ढूंढने लगा ॥ १९ ॥ वह दोनों दशरथसुत बन पर्वत नदी और सरोवरों में सीता को पूरा २ ढूंढते भए ॥ २० ॥ उस पर्वत की चोटियां, शिलाएं, और शिखरों को उन्होंने पूरा २ ढूंढा, पर उसे नहीं पाया ॥ २१ ॥ पर्वत को सारा ढूंढकर राम लक्ष्मण से बोला, सारा बन ढूंढ मारा है, और यह फूले कमलोंवाली पद्मिनियें ॥२२॥ तथा बहुत कन्दरा और झरणों वाला यह पर्वत भी (ढूंढा है) पर कहीं भी प्राणप्यारी सीता को नहीं देखता हूं॥२३॥ इसप्रकार विलाप करता हुआ सीता के हरे जाने के शोक से दुर्बल हुआ दीन हुआ शोक से भरा हुआ थोड़ी देर बहुत घबरा गया॥२४॥ वह कमल-नेत्र राम बार २ आहें भरकर आंसुओं से गद्गद हो, "हा प्यारी" ऐसे बहुत बार पुकारता भया ॥ २५ ॥ लक्ष्मण शोक से पीड़ित हो हाथ जोड़कर भाइयों से प्यार करनेवाले भाई को बहुत प्रकार से तसल्ली देता भया ॥ २६ ॥ पर लक्ष्मण के होठों से निकले उस वाक्य का आदर न करके प्यारी सीता को न देखता हुआ बार बार पुकारता भया ॥ २७॥

सर्ग ४९ (व० ६२) राम का विलाप

मूल—पश्यन्निव च तां सीतामपश्यन्मन्मथार्दितः ।उवाच राघवो वाक्यं विलापाश्रयदुर्वचः ॥ १ ॥ त्वमशोकस्य शाखाभिः पुष्पप्रिय-तरा प्रिये । आवृणोषि शरीरं ते मम शोकविवर्धनी॥ २ ॥ कदली-काण्डसदृशौ कदल्या संवृत्तावुभौ । ऊरू पश्यामि ते देवि नासि शक्ता निगूहितुम् ॥ ३ ॥ कर्णिकारवनं भद्रे हसन्ती देवि सेवसे । अलं ते परिहासेन मम बाधावहेन वै ॥ ४ ॥ विशेषेणाश्रमस्थाने हासोऽयं प्रशस्यते । अवगच्छामि ते शीलं परिहासप्रियं प्रिये ॥ ५ ॥ आगच्छ त्वं विशालाक्षि शून्योऽयमुटजस्तव । सुव्यक्तं राक्षसैः सीता भक्षिता वा हृतापि वा ॥६॥ नहि सा विलपन्तं मामुपसम्प्रैति

लक्ष्मण । एतानि मृगयूथानि साश्रुनेत्राणि लक्ष्मण ॥ ७ ॥ शंसन्तीव हि मे देवीं भक्षितां रजनीचरैः । हा ममार्ये क्व यातासि हा साध्वि वरवर्णिनि ॥ ८ ॥ कथं नाम प्रवेक्ष्यामि शून्यमन्तःपुरं मम । निर्वीय इतिलोको मां निर्दयश्चेति वक्ष्यति ॥ ९ ॥ कातरत्वं प्रकाशं हि सीतापनयनेन मे ॥ १० ॥ निवृत्तवनवासश्च जनकं मिथिलाधिपम् । कुशलं परिपृच्छन्तं कथं शक्ये निरीक्षितुम् ॥ ११ ॥ विदेहराजो नूनं मां दृष्ट्वा विरहितं तया । सुताविनाश-संतप्तो मोहस्य वशमेष्यति ॥ १२ ॥ अथवा न गमिष्यामि पुरीं भरतपालिताम् । स्वर्गोऽपि हि तया हीनः शून्य एव मतो मम ॥ १३ ॥ तान्मामुत्सृज्य हि वनं गच्छायोध्यापुरीं शुभाम् । न त्वहं तां विना सीतां जीवेयं हि कथंचन ॥ १४ ॥ गाढमाश्लिष्य भरतो वाच्यो मद्वचनात्त्वया । अनुज्ञातोऽसि रामेण पालयेति वसुन्धराम् ॥ १५ ॥ अम्बा च मम कैकेयी सुमित्रा च त्वया विभो । कौशल्या वा यथान्यायमभिवाद्या ममाज्ञया ॥ १६ ॥ रक्षणीया प्रयत्नेन भवता सूक्तचारिणा ॥ १७ ॥ सीतायाश्च विनाशोऽयं मम चामित्र सूदन । विस्तरेण जनन्या मे विनिवेद्यस्त्वया भवेत ॥ १८ ॥ इति विलपति राघवे तु दीने वनमुपगम्य तया विना सुकेश्या । भयवि-कलमुखस्तु लक्ष्मणोऽपि व्यथितमना भृशमातुरो बभूव ॥ १९ ॥

टीका—(अब कवि वृत्ति के सीता में लग जाने से उसके दीखने की भ्रान्तियां जो राम को होती हैं, उनका वर्णन करता है) उस सीता को न देखता हुआ भी मानों देखता हुआ कामपीड़ित राम विलाप के साथ गद्‌गद वचन बोलता भया ॥ १ ॥ फूलों की प्यारी तू हे मेरी प्यारी अशोक की शाखाओं से अपने शरीर को ढांपती है और मेरे शोक को बढ़ाती है ॥२॥ केले से ढके हुए केले के स्तम्भ सदृश तेरे दोनों ऊरुओं को देखता हूं, हे देवि ! तू मुझसे

अपने आपको छिपा नहीं सकती है ॥ ३ ॥ हे भद्रे ! तू हंसती हुई कर्णिकार बन में फिर रही है, हे देवि ! मुझे पीड़ा देनेवाली हंसी से बसकर ॥ ४ ॥ विशेष करके आश्रम स्थान में यह हंसी अच्छी नहीं है, हे प्यारी ! हंसी के प्यारे तेरे स्वभाव को मैं जानता हूं ॥ ५ ॥ आ हे विशालनेत्रे ! तेरे बिना यह झोंपड़ी शून्य है । हा ! यह स्पष्ट जान पड़ता है, कि राक्षसों ने सीता खाली है वा हरली है ॥ ६ ॥ मेरे विलाप करते हुए के वह पास नहीं आती है, लक्ष्मण यह मृगयूथ आंसुओं से नेत्रों को भरकर ॥ ७ ॥ मानों मुझे कह रहे हैं, कि देवीको राक्षसों ने खालीया है हा मेरी आर्ये! तू कहां चली गई है, हा पतिव्रते सुन्दरि ॥ ८ ॥ कैसे मैं अपने शून्य अन्तःपुर में प्रवेश करूंगा, मुझे लोग निर्वीर्य और निर्दय कहेंगे ॥ ९ ॥ सीता के चुराया जाने से मेरी कायरता स्पष्ट है ॥ १० ॥ बनवास से लौटे हुए मुझको कुशल पूछते हुए मिथिलाऽधिपति जनक को मैं कैसे देख सकूंगा ॥ ११ ॥ विदेहराज निःसन्देह मुझे उससे रहित देखकर पुत्री के विनाश से संतप्त हुआ मूर्छा को प्राप्त होगा ॥ १२ ॥ अथवा मैं भरत से पालित पुरी को नहीं जाऊंगा, स्वर्ग भी सीता से हीन मुझे शून्य ही है ॥ १३ ॥ सो तू हे (लक्ष्मण) मुझे बन में छोड़कर शुभ अयोध्यापुरी को जा, मैं सीता के बिना किसी तरह जीता नहीं रहूंगा ॥ १४ ॥ भरत को गाढ आलिंगन करके मेरे वचन से कहना, कि राम ने तुझे अनुज्ञा दी है "तू पृथिवी को पालन कर" ॥ १५ ॥ और हे समर्थ ! मेरी माता कैकयी और सुमित्रा और कौसल्या को यथायोग्य अभिवादन किया करना ॥ १६ ॥ और मेरी आज्ञा से उनका कहा मानते हुए अपने यत्न से उनकी रक्षा करना ॥ १७ ॥ सीता का विनाश और मेरा विनाश हे शत्रुओं के मारनेवाले, विस्तार के साथ तूने मेरी जननी को बतलाना ॥ १८ ॥

इसप्रकार उस सुन्दर व भोंवाली के विना वन में राम के दीन विलाप करते हुए लक्ष्मण भी भय से पीत मुखवाला हुआ दुःखितमन और अतीव पीड़ित हुआ ॥ १९ ॥

सर्ग ५० (व० ६३) अधिक विलाप

मूल–स राजपुत्रः प्रियया विहीनः शोकेन मोहेन च पीड्यमानः विषादयन्भ्रातरमार्त्तरूपो भूयो विषादं प्रविवेश तीव्रम् ॥ १ ॥ स लक्ष्मणं शोकवशाभिपन्नं शोके निमग्नो विपुले तु रामः । उवाच वाक्यं व्यसनानुरूपमुष्णं विनिःश्वस्य रुदन्सशोकम् ॥२॥+न मद्विधो दुष्कृतकर्मकारी मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम् । शोकानुशोको हि परम्पराया मामेति भिन्दन्हृदयं मनश्च ॥३॥ +पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि । तत्रायमद्यापतितो विपाको दुःखेन दुःखं यदहं विशामि ॥४॥+ राज्यप्रणाशः स्वजनैर्वियोगः पितुर्विनाशो जननीवियोगः । सर्वाणि मे लक्ष्मण शोकवेगमापूरयन्ति प्रविचिन्तितानि ॥ ५ ॥+सर्वं तु दुःखं मम लक्ष्मणेदं शान्तं शरीरे वनमेत्य क्लेशम् । सीतावियोगात्पुनरभ्युदीर्णं काष्ठैरिवाग्निः सहसोपदीप्तः ॥ ६ ॥ मया विहीना विजने वने सा रक्षोभिराहृत्य विकृष्यमाणा । नूनं विनादं कुररीव दीना सा मुक्तवत्यायतकान्तनेत्रा ॥ ७ ॥ अस्मिन्मया सार्धमुदारशीला शिलातले पूर्वमुपोपविष्टा । कान्तस्मिता लक्ष्मण जातहासा त्वामाह सीता बहुवाक्यजातम् ॥ ८ ॥ गोदावरीयं सरितां वरिष्ठा प्रिया प्रियाया मम नित्यकालम् । अप्यत्र गच्छेदिति चिन्तयामि नैकाकिनी याति हि सा कदाचित् ॥ ९ ॥ पद्मानना पद्मपलाशनेत्रा पद्मानिवानेतुमभिप्रयाता । तदप्ययुक्तं नहि सा कदाचिन्मया विना गच्छति पङ्कजानि ॥ १० ॥ कामं त्विदं पुष्पितवृक्षषण्डं नानाविधैः पक्षिगणैरुपेतम् । वनं प्रयाता नु तदप्ययुक्तमेकाकिनी सातिबिभेति भीरुः ॥ ११ ॥ आदित्य भो लोककृताकृतज्ञ लोकस्य सत्यानृतकर्मसाक्षिन्।

मम प्रिया सा क्व गता हृता वा शंस स्व मे शोकहतस्य सर्वम्॥१२॥ लोकेषु सर्वेषु न नास्ति किंचिद्यत्ते न नित्यं विदितं भवेत्तत। शंसस्व वायो कुलपालिनीं तां मृता हृता वा पथि वर्तते वा ॥ १३ ॥

टीका–वह राजपुत्र प्रिया से हीन हुआ, शोक और मोह से पीड़ित हुआ फिर तीव्र विषाद में प्रविष्ट हुआ और पीड़ित भाई को अधिक विषाद में डाल देता भया॥१॥वह बड़े शोक में डूबा हुआ राम रोता हुआ शोक से गर्म आह भरकर शोक से पीड़ित लक्ष्मण को अपनी विपद् के अनुरूप वचन बोला ॥ २ ॥ मैं जानता हूं कि मेरे जैसा पृथिवी पर कोई दूसरा पापी नहीं है, क्योंकि लगातार शोक के पीछे शोक मेरे हृदय और मेरे मन को फोड़ता हुआ आरहा है ॥ ३ ॥ पूर्व मैंने निःसन्देह मनमाने पापकर्म बार बार किये हैं, उनका यह आज फल मिल रहा है, जो मैं दुःख से दुःख में प्रवेश करता हूं ॥ ४ ॥ राज्य का नाश, अपने जनों से वियोग, पिता का विनाश. और माता का वियोग, यह सब चिन्तन किये हुए हे लक्ष्मण मेरे शोक के वेग को भरदेते हैं ॥ ५ ॥ यह मेरा सारा दुःख है पर हे लक्ष्मण बन में आकर यह सारा क्लेश शरीर में ठंडा होगया, सीता के वियोग से वह लकड़ियों से सहसा चमके हुए अग्नि की तरह फिर बढ़गया है ॥६ ॥ वह विशाल सुन्दर नेत्रोंवाली मुझसे हीन हुई निर्जन बन में राक्षसों से इधर उधर खींची जाती हुई निःसन्देह दीन हो कुररी की तरह शब्द करती भई होगी ॥ ७ ॥ इस शिलातल पर वह उदारशीला मेरे साथ पहले बैठी, और वह सुन्दर हंसीवाली हंसती हुई हे लक्ष्मण तुझे बहुत सी बातें कहती भई ॥ ८ ॥ नदियों में यह श्रेष्ठ गोदावरी मेरी प्यारी को सदा प्यारी है, सम्भव है, कि वह यहां गई हो, पर नहीं, क्योंकि वह अकेली कभी नहीं जाया करती है ॥ ९ ॥ पद्म-

मुखी पद्मपत्र तुल्य नेत्रोंवाली पद्म लेने के लिये बनको गई होगी, पर यह भी युक्त नहीं, क्योंकि मेरे बिना वह कभी पद्मों को नहीं जाती है ॥ १० ॥ हां यह जो फूले हुए वृक्षों का समूह नानाविध पक्षी गणों से युक्त है, इस बन में (फूल तोड़ने) गई होगी, पर यह भी युक्त नहीं, क्योंकि वह भीरु अकेली बहुत डरा करती है ॥ ११ ॥ हे सूर्य लोगों के कृताकृत के जाननेवाले लोगों के सच्चे झूठे कर्म के साक्षिन्! वह मेरी प्यारी कहां गई है, वा हरी गई है, मुझे सारा वृत्तान्त कहो, मैं शोक से हत हूं ॥ १२ ॥ हे वायो सारे लोकों में कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जो सदा तुझे विदित न हो, मुझे उस कुलपालिनी का पता दे. क्या वह मर गई, वा हरी गई, वा कहीं रस्ते में भटकती फिरती है ॥ १३ ॥

सर्ग ५१ (स० ६६) लक्ष्मण का राम को तसल्ली देना

मूल–तं तथा शोकसंतप्तं विलपन्तमनाथवत् । मोहेन महता युक्तं परिद्यूनमचेतसम् ॥१॥ ततः सौमित्रिराश्वास्य मुहूर्त्तादिव लक्ष्मणः । रामं सम्बोधयामास चरणौ चाभिपीडयन् ॥ २ ॥ महता तपसा चापि महता चापि कर्मणा । राज्ञा दशरथेनासील्लब्धोऽमृतमिवामरैः ॥ ३ ॥ तव चैव गुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगान्महीपतिः । राजा देवत्वमापन्नो भरतस्य यथाश्रुतम् ॥ ४ ॥ यदि दुःखमिदं प्राप्तं काकुत्स्थ न सहिष्यसे । प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्च इतरः कः सहिष्यते ॥ ५ ॥ +आश्वसिहि नरश्रेष्ठ प्राणिनः कस्य नापदः । संस्पृशन्त्यग्निवद्राजन्क्षणेन व्यपयान्ति च ॥ ६ ॥ सुमहान्त्यपि भूतानि देवाश्च पुरुषर्षभ । न दैवस्य प्रमुञ्चन्ति सर्वभूतानि देहिनः ॥ ७ ॥ तत्त्वतो हि नरश्रेष्ठ बुद्ध्या समनुचिन्तय । बुद्ध्या युक्ता महाप्राज्ञा विजानन्ति शुभाशुभे ॥ ८ ॥ मामेव हि पुरा वीर त्वमेव बहुशोक्तवान् । अनुशिष्याद्धि को नु त्वामपि साक्षाद्बृहस्पतिः॥९॥ बुद्धिश्च ते महाप्राज्ञ देवैरपि दुरन्वया । शोकेनाभिप्रसप्तं ते ज्ञानं सम्बोधयाम्यहम्॥१०॥

टीका--शोक से तपे हुए अनाथ की तरह विलाप करते हुए बड़े मोह से युक्त हुए दुर्बल हुए, शून्य चित्त राम को ॥ १ ॥ जल्दी ही सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण तसल्ली देकर उसके चरणों को पकड़ कर सावधान करता भया ॥ २ ॥ बड़े तप से बड़े कर्म (यज्ञ) से राजा दशरथ ने देवताओं से अमृत की तरह आपको पाया है ॥ ३ ॥ आपके गुणों से बन्धा हुआ महीपति राजा आपके वियोग से देवभाव को प्राप्त हुआ है (स्वर्ग को गया है) जैसा कि भरत से सुन चुके हैं ॥ ४ ॥ सो हे काकुत्स्थ ! यदि इस आए दुःख को आप न सहारेंगे, तब दूसरा थोड़े धैर्यवाला प्राकृत पुरुष कौन सहारेगा ॥ ५ ॥ तसल्ली कीजिये हे नरश्रेष्ठ ! किस जीवधारी को आपत्तियें नहीं आती हैं, हे राजन् अग्नि की तरह छूती हैं और क्षण से चली जाती हैं ॥ ६ ॥ बड़े २ प्राणधारी और देवता भी हे पुरुषश्रेष्ठ ! देहधारी सभी प्राणी दैव से नहीं छूटते हैं ॥ ७ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! बुद्धि से ठीक २ चिन्तन करके बुद्धि से युक्त महाप्राज्ञ पुरुष शुभ अशुभ को जान लेते हैं ॥ ८ ॥ मुझे इसप्रकार हे वीर ! आपही अनेक बार कह चुके हैं, आपको कौन शिक्षादे, चाहे साक्षात् बृहस्पति भी हो ॥ ९ ॥ हे महाप्राज्ञ ! आपकी बुद्धि को देवता भी नहीं पहुंच सक्ते हैं, शोक से सोई हुई आपकी समझ को मैं जगाता हूं ॥ १० ॥

सर्ग ५२ (व० ६७) जटायु से सीता का वृत्तान्त सुनना

मूल--पूर्वजोऽप्युक्तवाक्यस्तु लक्ष्मणेन सुभाषितम् । सारग्राही महासारं प्रतिजग्राह राघवः ॥ १ ॥ किं करिष्यावहे वत्स क्व वा गच्छाव लक्ष्मण । केनोपायेन पश्यावः सीतामिह विचिन्तय ॥ २ ॥ तं तथा परितापार्तं लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । इदमेव जनस्थानं त्वमन्वेषितुमर्हसि ॥ ३ ॥ इत्युक्तस्तद्वनं सर्वं विचचार सलक्ष्मणः ।

ददर्श पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम् ॥ ४ ॥ तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । अनेन सीता वैदेही भक्षिता नात्र संशयः ॥ ५ ॥ एनं वधिष्ये दीप्ताग्रैः शरैर्घोरैरजिह्मगैः । इत्युक्त्वाभ्यपतद्-द्रष्टुं संधाय धनुषि क्षुरम् ॥ ६ ॥ तं दीनदीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन् । अभ्यभाषत पक्षी स रामं दशरथात्मजम् ॥ ७ ॥ + यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने । सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम् ॥ ८ ॥ त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव। ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा ॥ ९ ॥ एतदस्य धनुर्भग्नमेते चास्य शरास्तथा । अयमस्य रणे राम भग्नः सांग्रामिको रथः ॥ १०॥ परिश्रान्तस्य मे पक्षौ छित्त्वा खड्गेन रावणः । सीतामादाय वैदेहीमुत्पपात विहायसम् ॥ ११ ॥ रक्षसा निहतं पूर्वं मां न हन्तुं त्वमर्हसि ॥१२॥+रामस्तस्य तु विज्ञाय सीतासक्तां प्रियां कथाम् । गृध्रराजं परिष्वज्य परित्यज्य महद्धनुः ॥ १३ ॥+ निपपातावशो भूमौ रुरोद सहलक्ष्मणः । द्विगुणीकृततापार्तो रामो धीरतरोऽपि सन् ॥ १४ ॥ एकमेकायनं कृच्छ्रे निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः । समीक्ष्य दुःखितो रामः सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥१५॥+राज्यं भ्रष्टं वने वासः सीता नष्टा मृतो द्विजः । ईदृशीयं ममालक्ष्मीर्दहेदपि हि पावकम् ॥१६॥+सम्पूर्णमपि चेदद्य प्रतरेयं महोदधिम् । सोऽपि नूनं ममालक्ष्म्या विशुष्येत्सरितां पतिः ॥१७॥+ नास्त्यभाग्यतरो लोके मत्तोऽस्मिन्सचराचरे । येनेयं महती प्राप्ता मया व्यसनवागुरा ॥१८॥ अयं पितुर्वयस्यो मे गृध्रराजो महाबलः । शेते विनिहतो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात् ॥ १९ ॥ इत्येवमुक्त्वा बहुशो राघवः सहलक्ष्मणः । जटायुषं च पस्पर्श पितृस्नेहं निदर्शयन् ॥ २० ॥

टीका—लक्ष्मण से सुन्दर रीति से कहे इस वाक्य को सुनकर सार-ग्राही बड़ा भाई राम भी उसके महासार को ग्रहण करता भया ॥

१ ॥ हे वत्स लक्ष्मण हम क्या करें, कहां जाएं, किस उपाय से सीता का पता लगाएं, यह सोच ॥ २ ॥ इसतरह दुःख से पीडित राम को लक्ष्मण यह वाक्य बोला, इसी जनस्थान को आप ढूंढने योग्य हैं ॥ ३ ॥ ऐसे कहा हुआ राम लक्ष्मण के साथ सारे वन में विचरता भया। और लहू से लिवडे हुए जटायु को भूमि पर गिरा हुआ देखा ॥ ४ ॥ पर्वत के किंगरे के तुल्य उस (बड़े डील वाले) को देखकर राम लक्ष्मण से बोला, इसने वैदेही सीता खाली है, इसमें संशय नहीं ॥ ५ ॥ इसको जलते हुए अग्र वाले सीधा जाने वाले भयंकर तीरों से मारूंगा, यह कहकर धनुष में तीक्ष्ण बाण जोड़कर देखने के लिये उसकी ओर दौड़ा ॥ ६ ॥ वह पक्षी अति-दीन वाणी से फेन सहित रुधिर छोड़ता हुआ दशरथपुत्र राम से बोला॥ ७ ॥ हे आयुष्मन्! जिसको आप (संजीवनी) ओषधि की तरह इस महावन में ढूंढते हैं, वह देवी और मेरे प्राण दोनों रावण ने हरे हैं ॥ ८ ॥ तुझसे और लक्ष्मण से रहित हुई वह देवी हे राघव ! मैंने महाबली रावण से हरी जाती हुई देखी ॥ ९ ॥ यह उसका धनुष टूटा पड़ा है, यह उसके तीर हैं, और यह उसका हे राम रण में सांग्रामिक रथ टूटा हुआ है ॥ १० ॥ पर जब मैं थक गया, तब मेरी भुजाओं को रावण खड्ग से काटकर वैदेही सीता को लेकर आकाश में उड़गया है ॥ १ ॥ राक्षस से पूर्व ही मारे हुए मुझको आप मारने योग्य नहीं हैं ॥ १२ ॥ राम उससे सीता सम्बन्धी प्यारी कथा को सुनकर गृध्रराज को कण्ठ लगाकर और बड़े धनुष को त्यागकर ॥ १३ ॥ बेबस हुआ भूमि पर गिर पड़ा और लक्ष्मण समेत बहुत रोया, और दुगने सन्ताप से पीड़ित हुआ, यद्यपि बड़ा धैर्यवाला था ॥ १४ ॥ अकेले, अकल के जाने वाले कष्ट मार्ग (परलोक के मार्ग) में बार २ सांस लेते हुए को

देखकर दुःखित राम सौमित्रि से बोला ॥ १५ ॥ राज्य भ्रष्ट हुआ वन में वास हुआ, सीता खोई गई, द्विज (जटायु) मरा, ऐसी मेरी (दुष्कर्मों की) अलक्ष्मी अग्नि को भी जलादे (क्या फिर मेरी श्री का) ॥ १६ ॥, आज, यदि मैं सारे महासागर को भी तैर जाऊं,तो वह भी नदियों का पति निःसन्देह मेरी अलक्ष्मी से सूख जाए ॥ १७ ॥ इस चर अचर वाले जगत् में मुझसे बढ़कर कोई अभागा नहीं है, जिस मैंने यह बड़ी विपत्तियों की फांसी पाई है ॥ १८ ॥ यह मेरे पिता का मित्र महाबली गृध्रराज मेरे भाग्य के फेर से मरा हुआ पृथिवी पर लेट रहा है ॥ १९ ॥ इस प्रकार लक्ष्मण सहित राम बहुत कुछ कहकर पितृस्नेह दिखलाता हुआ जटायु का स्पर्श करता भया ॥ २० ॥

सर्ग ५३ (व० ६८) जटायु की मृत्यु और दाह

मूल—स निक्षिप्य शिरो भूमौ प्रसार्य चरणौ तथा । विक्षिप्य च शरीरं स्वं पपात धरणीतले ॥ १ ॥ तं गृध्रं प्रेक्ष्य ताम्राक्षं गतासुमचलोपमम् । रामः सुबहुभिर्दुःखैर्दीनः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ २ ॥ बहूनि रक्षसां वासे वर्षाणि वसता सुखम् । अनेन दण्डकारण्ये विशीर्णमिह पक्षिणा ॥ ३ ॥ अनेकवार्षिको यस्तु चिरकालसमुत्थितः । सोऽयमद्य हतः शेते कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ४ ॥ पश्य लक्ष्मण गृध्रोऽयमुपकारी हतश्च मे । मम हेतोरयं प्राणान्मुमोच पतगेश्वरः ॥५॥ +सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम् । यथा विनाशो गृध्रस्य मत्कृते च परंतप ॥ ६ ॥ राजा दशरथः श्रीमान्यथा मम महायशाः । पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः ॥ ७ ॥ सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम् । गृध्रराजं दिधक्ष्यामि मत्कृते निधनं गतम् ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम् ।

ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः ॥ ९ ॥ ततो गोदावरीं गत्वा नदीं नरवरात्मजौ । उदकं चक्रतुस्तस्मै गृध्रराजाय तावुभौ १०

टीका—वह (जटायु) सिर को डालकर पाओं फैलाकर अपने शरीर को इधर उधर फेंककर धरणीतल पर गिर पड़ा ॥ १ ॥ उस लाल नेत्रोंवाले (तपस्वी होने से) गृध्र को मरा हुआ देखकर राम बड़े दुःखोंमे दीन हुआ लक्ष्मण से बोला॥ २॥ राक्षसों के वासभूत दण्डकारण्य में बहुत वरस सुख से रहकर इस पक्षी ने अब शरीर छोड़ा है ॥ ३ ॥ अनेक बरसों का हुआ चिरकाल से जन्मा हुआ वह यह आज मरकर लेटा हुआ है, काल सचमुच दुरतिक्रम है ॥ ४ ॥ देख लक्ष्मण यह मेरा उपकारी गृध्र मरा हुआ है, मेरे कारण इस पक्षीराज ने प्राण छोड़े हैं ॥ ५ ॥ सीता के हरण का दुःख हे सौम्य मुझे ऐसा नहीं हुआ, जैसे हे परन्तप ! मेरे लिए इस गृध्र का विनाश ॥ ६ ॥ जैसे महायशस्वी राजा दशरथ मेरा माननीय और पूजनीय था, वैसे मेरे लिये यह पक्षीराज है॥७॥ हे लक्ष्मण लकड़ियें ला. मैं अग्नि मथकर निकालूंगा, और इस गृध्रराज को जो मेरे अर्थ मृत्यु को प्राप्त हुआ है दाह करूंगा॥८ ॥ यह कहकर पक्षिराज को जलती चिता पर चढ़ाकर दुःखित हुआ धर्मात्मा राम अपने बन्धु की तरह जलाता भया ॥ ९ ॥ तब वह दोनों राजपुत्र गोदावरी नदी पर जाकर उस गृध्रराज के लिए उदककर्म करते भए ॥ १० ॥

सर्ग ५४ (व० ६९) कबन्ध राक्षस का वध

मूल—कृत्वैवमुदकं तस्मै प्रस्थितौ राघवौ तदा।अवेक्षन्तौ वने सीतां जग्मतुः पश्चिमां दिशम॥ १ ॥ तां दिशं दक्षिणां गत्वा शरचापासिधारिणौ । अविप्रहतमैक्ष्वाकौ पन्थानं प्रतिपेदतुः ॥ २ ॥ गुल्मैर्वृक्षैश्च बहुभिर्लताभिश्च प्रवेष्टितम। आवृतं सर्वतो दुर्गं गहनं घोर-

दर्शनम् ॥ ३ ॥ व्यतिक्रम्य तु वेगेन गृहीत्वा दक्षिणां दिशम् । सुभीमं तन्महारण्यं व्यतियातौ महाबलौ ॥ ४ ॥ ततः परं जनस्थानात्त्रिक्रोशं गम्य राघवौ । क्रौञ्चारण्यं विविशतुर्गहनं तौ महौजसौ ॥ ५ ॥ नानामेघघनप्रख्यं प्रहृष्टमिव सर्वतः । नानावर्णैः शुभैः पुष्पैर्मृगपक्षिगणैर्युतम् ॥ ६ ॥ दिदृक्षमाणौ वैदेहीं तद्वनं तौ विचिन्वतुः । तत्र तत्रावतिष्ठन्तौ सीताहरणदुःखितौ ॥ ७ ॥ ततः पूर्वेण तौ गत्वा त्रिक्रोशं भ्रातरौ तदा । क्रौञ्चारण्यमतिक्रम्य मतङ्गाश्रममन्तरे ॥८॥ दृष्ट्वा तु तद्वनं घोरं बहुभीममृगद्विजम् । नानावृक्षसमाकीर्णं सर्वं गहनपादपम् ॥ ९ ददृशाते गिरौ तत्र दरीं दशरथात्मजौ । पातालसमगम्भीरां तमसा नित्यसंवृताम् ॥ १० ॥ तयोरन्वेषतोरेवं सर्वं तद्वनमोजसा । संजज्ञे विपुलः शब्दः प्रभञ्जन्निव तद्वनम् ॥ ११ ॥ तं शब्दं कांक्षमाणस्तु रामः खड्गी सहानुजः । ददर्श सुमहाकायं राक्षसं विपुलोरसम् ॥ १२ ॥ महान्तं दारुणं भीमं कबन्धं भुजसंवृतम् । कबन्धमिव संस्थानादतिघोरप्रदर्शनम् ॥ १३ ॥ स महाबाहुरत्यर्थं प्रसार्य विपुलौ भुजौ । जग्राह सहितावेव राघवौ पीडयन् बलात् ॥ १४ ॥ ततस्तौ देशकालज्ञौ खड्गाभ्यामेव राघवौ । अच्छिन्दतां सुसंहृष्टौ बाहू तस्यांसदेशयोः ॥ १५ ॥ दक्षिणो दक्षिणं बाहुमसक्तमसिना ततः । चिच्छेद रामो वेगेन सव्यं वीरस्तु लक्ष्मणः ॥ १६ ॥ स पपात महाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः । खं च गां च दिशश्चैव नादयञ्जलदो यथा ॥ १७ ॥

टीका—इसप्रकार उसके लिये उदक करके प्रस्थित हुए दोनों राघव वन में सीता को ढूंढते हुए दक्षिण पश्चिम दिशा को गए ॥ १ ॥ उस दक्षिण पश्चिम दिशा में जाकर धनुषबाण और खड्गधारी वह दोनों इक्ष्वाकुवंशी (मनुष्यों से) न चले हुए मार्ग को प्राप्त हुए ॥ २ ॥ जो बहुत से झाड़ वृक्ष और बेलों से ढका हुआ सब

ओर से घिरा हुआ दुर्गम घना भयंकर दर्शनवाला था ॥ ३ ॥ बड़े वेग से उसे लंघकर दक्षिण दिशा को पकड़कर वह महाबली बड़े भयंकर उस महावन को लंघ गये ॥ ४ ॥ उससे आगे जनस्थान से तीन कोस जाकर वह महाबली क्रौञ्चारण्य में प्रविष्ट हुए ॥ ५ ॥ जो अनेक मेघ समूह की तरह (श्याम), अनेक रंगों के सुन्दर फूलों से और मृग पक्षिगणों से युक्त मानों सब ओर से प्रसन्न था ॥ ६ ॥ सीता को देखना चाहते हुए सीता के हरण से दुःखित हुए २ वहां ठहरकर उस वन को ढूंढते भए ॥ ७ ॥ तब वह दोनों भाई पूर्व की ओर तीन कोस जाकर क्रौञ्च वन को लंघकर मार्ग के मध्य में मतङ्ग के आश्रम को देखते भए ॥ ८ ॥ बहुत भयङ्कर मृग पक्षियों से युक्त नाना वृक्षों से घिरे हुए घने वृक्षों वाले उस भयङ्कर (मतङ्ग) वन को देखकर ॥ ९ ॥ उस पर्वत में दोनों दशरथात्मज पाताल तुल्य गहरा अन्धेरे से सदा ढका हुआ एक दर देखते भए ॥ १० ॥ इसप्रकार पराक्रम से उस सारे वन को ढूंढते हुए उनके,एक बहुत बड़ा शब्द उस वन को मानों फोड़ता हुआ उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ उस शब्द का पता लगाता हुआ सहित छोटे भाई के तलवार लिए राम एक बहुत बड़े शरीरवाले विशाल छाती वाले राक्षस को देखते भए ॥ १२ ॥ बड़े ऊंचे दारुण, भयंकर, भुजाओं में जन्तुओं को लपेटे हुए, अति भयङ्कर दर्शन वाले, बनावट में कबन्ध की तरह स्थित कबन्ध नामी को देखते भए ॥ १३ ॥ वह बड़ी भुजाओं वाला अपनी विशाल भुजाओं को पूरी फैलाकर उन दोनों राघवों का बल से पीड़न करता हुआ एक साथ ही पकड़ लेता भया ॥ १४ ॥ तब वह देश काल के जानने वाले दोनों राघव अतीव प्रसन्न हुए, तलवारों से कन्धों पर से उस की भुजाओं को काटते भए ॥ १५ ॥ दाईं भुजा को चतुर राम ने

वेग से तलवार से काट दिया, और बाईं को वीर लक्ष्मण ने ॥ १६ ॥ वह बड़ी भुजाओं वाला कटी हुई भुजाओं वाला होकर बड़ी ध्वनि करता हुआ मेघ की तरह आकाश पृथिवी और दिशाओं को गुंजाता हुआ गिर पड़ा ॥ १७ ॥

सर्ग ५५ [व० ७४] भीलनी के दर्शन

मूल—तौ कबन्धेन तं मार्गं पम्पाया दर्शितं वने । आतस्थतुर्दिशं गृह्य प्रतीचीं नृवरात्मजौ ॥ १ ॥ तौ पुष्करिण्याः पम्पायास्तीरमासाद्य पश्चिमम् । अपश्यतां ततस्तत्र शबर्या रम्यमाश्रमम् ॥ २ ॥ तौ तमाश्रममासाद्य द्रुमैर्बहुभिरावृतम् । सुरम्यमभिवीक्षन्तौ शबरीमभ्युपेयतुः ॥ ३ ॥ तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥ ४ ॥ पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि । तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्मसंस्थिताम् ॥ ५ ॥ कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः । कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणी ॥ ६ ॥ रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसम्मता । शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्यवस्थिता ॥ ७ ॥ अद्य प्राप्ता तपः सिद्धिस्तव संदर्शनान्मया । अद्य मे सफलं जन्म गुरवश्च सुपूजिताः ॥ ८ ॥ चित्रकूटं त्वयि प्राप्ते विमानैरतुलप्रभैः । इतस्ते दिवमारूढा यानहं पर्यचारिषम् ॥ ९ ॥ तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः । आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम् ॥ १० ॥ स ते प्रतिग्रहीतव्यः सौमित्रिसहितोऽतिथिः ॥ ११ ॥ मया तु संचितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ । तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसम्भवम् ॥ १२ ॥ शबरी दर्शयामास तावुभौ तद्वनं महत् । पश्य मेघघनप्रख्यं मृगपक्षिसमाकुलम् ॥ १३ ॥ मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन । इह ते भावितात्मानो गुरवो मे महाद्युते ॥ १४ ॥ जुहवांचक्रिरे नीडं मन्त्रवन्मन्त्रपूजितम् ॥ १५ ॥ कृत्स्नं वनमिदं दृष्टं श्रोतव्यं च श्रुतं

त्वया । तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञाता त्यक्ष्याम्येतत्कलेवरम् ॥ १६॥ तेषामिच्छाम्यहं गन्तुं समीपं भावितात्मनाम् । मुनीनामाश्रमो येषामहं च परिचारिणी ॥ १७ ॥ तामुवाच ततो रामः शबरीं संशितव्रताम् । अर्चितोऽहं त्वया भद्रे गच्छ कामं यथासुखम् ॥ १८ ॥ इत्येवमुक्त्वा जटिला चीरकृष्णाजिनाम्बरा । ज्वलत्पावकसंकाशा स्वर्गमेव जगाम ह ॥ १९ ॥ यत्र ते सुकृतात्मानो विहरन्ति महर्षयः । तत्पुण्यं शबरी स्थानं जगामात्मसमाधिना ॥ २० ॥

टीका—अब वह दोनों राजपुत्र कबन्ध से बतलाए पम्पा के मार्ग में पश्चिम दिशा की ओर चल पड़े, वह दोनों पम्पा सरोवर के पश्चिमी तीर पर पहुंचकर वहां भीलनी के रमणीय आश्रम को देखते भए ॥ २ ॥ बहुत वृक्षों से ढपे हुए उस सुरम्य आश्रम को पाकर शोभा निहारते हुए भीलनी के पास आए ॥ ३ ॥ वह सिद्धनी उन को देखकर उठकर हाथ जोड़कर बुद्धिमान् राम और लक्ष्मण के पाओं पकड़ती भई ॥ ४ ॥ पाद्य और आचमनीय सब यथाविधि देती भई, तब धर्म में स्थित उस भीलनी से राम बोले ॥ ५ ॥ क्या तेरे विघ्न जीते हुए हैं, क्या तेरा तप बढ़ रहा है, और क्या हे सुन्दर बोलने वाली तेरी गुरुसेवा सफल हुई है ॥ ६ ॥ वह सिद्धों से मान पाई हुई सिद्धा तपस्विनी वृद्धा भीलनी राम से ऐसे पूछी हुई सन्मुख स्थित हुई कहने लगी ॥ ७ ॥ आज आपके दर्शन से मेरा तप सफल हुआ है, मेरा जन्म सफल हुआ है, और गुरुओं की पूजा सफल हुई है ॥ ८ ॥ जब आप चित्रकूट में पहुंचे थे, उसी समय वह अतुल्य प्रभावाले विमानों से यहां से स्वर्ग को प्राप्त हुए जिन (के पाओं) की मैं सेवा करती रही हूं ॥ ९ ॥ (शरीर छोड़ते समय) उन धर्मज्ञ महाभाग महर्षियों ने मुझ कहा, राम तेरे इस पुण्य आश्रम में आएगा ॥ १० ॥ लक्ष्मण समेत उस

का अतिथिसत्कार करना ॥ ११ ॥ मैंने तो आपके लिये हे पुरुष-
श्रेष्ठ पम्पा के किनारे पर होनेवाले भान्ति२ के जंगली फल इकट्ठे
किये हैं ॥ १२ ॥ उसके पीछे भीलनी उनको वह बड़ा बन
दिखलाती भई । देखिये यह जो मेघघटा के तुल्य (काला) मृग
पक्षियों से भरा हुआ है ॥ १३ ॥ हे रघुनन्दन यही मतंगबन वि-
ख्यात है । हे महातेजस्वी यहां मेरे शुद्धात्मा गुरुओं ने ॥ १४ ॥
मन्त्रानुसार मन्त्रों से पूजित यज्ञ किया था ॥ १५ ॥ आपने यह
सारा बन देख लिया और सुनने योग्य बात सुनली, सो आप से
अनुज्ञा दी हुई इस शरीर को छोड़ना चाहती हूं ॥ १६ ॥ उन
शुद्धात्मा मुनियों के पास जाना चाहती हूं, जिनका यह आश्रम
है, जिनकी मैं सेवक रही हूं ॥ १७ ॥ तब उस तीक्ष्ण व्रतोंवाली
भीलनी से राम बोले, हे सुभद्रे तुझसे मेरी पूजा (अतिथि पूजा)
होचुकी इच्छानुसार सुख से जा ॥ १८ ॥ ऐसा कहने पर वह
जटावाली चीर और काला मृगान पहने हुई जलती हुई आग्नि
के तुल्य(तेजवाली) स्वर्गको प्राप्त हुई ॥ १९ ॥ जहां वह पुण्यात्मा
महर्षि (उसके गुरु) विचरते हैं, भीलनी आत्मसमाधि से उस
पुण्यस्थान को चली गई ॥ २० ॥

सर्ग ५६ (व० ७५) राम लक्ष्मण का पम्पा पर वापिस आना

मूल—चिन्तयित्वा तु धर्मात्मा प्रभावं तं महात्मनाम् । हितकारिण-
मेकाग्रं लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् ॥ १ ॥ प्रनष्टमशुभं यन्नः कल्याणं
समुपस्थितम् । तेन त्वेतत्प्रहृष्टं मे मनो लक्ष्मण संप्रति ॥ २ ॥ हृदये
मे नरव्याघ्र शुभमाविर्भविष्यति । तदागच्छ गमिष्यावः पम्पां तां
प्रियदर्शनाम् ॥ ३ ॥ ऋष्यमूको गिरिर्यत्र नातिदूरे प्रकाशते ।
यस्मिन्वसति धर्मात्मा सुग्रीवोऽशुमतः सुतः ॥ ४ ॥ अहं त्वरे च
तं द्रष्टुं सुग्रीवं वानरर्षभम् । तदधीनं हि मे कार्यं सीतायाः परिमा-

गंणम् ॥ ५ ॥ इति ब्रुवाणं तं वीरं सौमित्रिरिदमब्रवीत् । गच्छावस्त्वरितं तत्र ममापि त्वरते मनः ॥ ६ ॥ आश्रमात्तु ततस्तस्मान्निष्क्रम्य स विशांपतिः । आजगाम ततः पम्पां लक्ष्मणेन सह प्रभुः ॥७॥ रम्योपवनसंबाधां रम्यसंपीडितोदकाम् । स्फटिकोपमतोयां तां श्लक्ष्णवालुकमन्तताम् ॥८॥पद्मसौगन्धिकैस्ताम्रां शुक्लां कुमुदमण्डलैः । नीलां कुवलयोद्धाटैर्बहुवर्णां कुथामिव ॥ ९ ॥

टीका—धर्मात्मा राम महात्माओं के उस प्रभाव को चिन्तन करके अपने हितकारी एकाग्र चित्त लक्ष्मण से बोला ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण हमारा जो अशुभ (कर्म) था, वह अब नष्ट हुआ और कल्याण उपस्थित हुआ है, क्योंकि अब यह मेरा मन प्रहर्षित होगया है ॥ २ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अब मेरे हृदय में शुभ प्रकट होगा, सो आ उस प्रिय दर्शनवाली पम्पा पर चलें ॥ ३ ॥ जहां निकट ही ऋष्यमूक पर्वत शोभा देता है, जिस में सूर्यपुत्र धर्मात्मा सुग्रीव रहता है ॥ ४ ॥ मैं उस वानरश्रेष्ठ सुग्रीव को जल्दी मिलना चाहता हूं, उसके अधीन मेरा काम है वह सीता की ढूंढ करेगा ॥ ५ ॥ ऐसा कहते हुए उस वीर से लक्ष्मण बोला, जल्दी वहां चलें, मेरा भी मन वहां जाने में जल्दी कर रहा है ॥ ६ ॥ तब वह प्रजाओं का मालिक प्रभु उस आश्रम से निकलकर लक्ष्मण के साथ पम्पा पर आया ॥ ७ ॥ रमणीय बगीचों से भरी हुई रमणीय गहरे जलवाली बिल्लोर के तुल्य जल वाली, नीचे फैली हुई साफ रेतवाली ॥ ८ ॥ पद्म और सौगंधिक फूलों से लाल, कुमुदों के समूहों के समूहों से श्वेत, नीले कमलों के फूलों सी नीली इसतरह अनेक रङ्गोंवाले गलीचे की तरह स्थित है॥ ९ ॥

* अरण्यकाण्ड समाप्त हुआ *

किष्किन्धा काण्ड।

सर्ग १ (व० १) पम्पा की शोभा और राम का विलाप

मूल—स तां पुष्करिणीं गत्वा पद्मोत्पलझषाकुलाम्। रामः सौमित्रिसहितो विललाप कुलेन्द्रियः ॥ १ ॥ तत्र दृष्ट्वैव तां हर्षादिन्द्रियाणि चकम्पिरे। स कामवशमापन्नः सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ सौमित्रे शोभते पम्पा वैदूर्यविमलोदका। फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः ॥ ३ ॥ शोकार्तस्यापि मे पम्पा शोभते चित्रकानना। व्यवकीर्णा बहुविधैः पुष्पैः शीतोदका शिवा ॥ ४ ॥ अधिकं प्रविभात्येतन्नीलपीतं तु शाद्वलम्। द्रुमाणां विविधैः पुष्पैः परिस्तोमैरिवार्पितम् ॥ ५ ॥ पुष्पभारसमृद्धानि शिखराणि समन्ततः। लताभिः पुष्पिताग्राभिरुपगूढानि सर्वतः ॥ ६ ॥ सुखानिलोऽयं सौमित्रे कालः प्रचुरमन्मथः। गन्धवान्सुरभिर्मासो जातपुष्पफलद्रुमैः ॥ ७ ॥ पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानां पुष्पशालिनाम्। सृजतां पुष्पवर्षाणि वर्षं तोयमुचामिव ॥ ८ ॥ प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधाः काननद्रुमाः। वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवकिरन्ति गाम् ॥ ९ ॥ पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः। कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडतीव समन्ततः ॥ १० ॥ मत्तकोकिलसंनादैर्नर्तयन्निव पादपान्। शैलकन्दरनिष्क्रान्तः प्रगीत इव चानिलः ॥ ११ ॥ तेन विक्षिपतात्यर्थं पवनेन समन्ततः। अमी संसक्तशाखाग्रा ग्रथिता इव पादपाः ॥ १२ ॥ सुपुष्पितांस्तु पश्यैतान्कर्णिकारान्समन्ततः। हाटकप्रतिसंछन्नान्नरान्पीताम्बरानिव ॥ १३ ॥ अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहगनादितः। सीतया विप्रहीणस्य शोकसन्दीपनो मम ॥ १४ ॥ अशोकस्तबकाङ्गारः षट्पदस्वननिःस्वनः। मां हि पल्लवताम्रार्चिर्वसन्ताग्निः

प्रधक्ष्याति ॥ १५ ॥ अयं हि रुचिरस्तस्याः कालो रुचिरकाननः । कोकिलाकुलसीमान्तो दयिताया ममानघ ॥ १६ ॥ अमी मयूराः शोभन्ते प्रनृत्यन्तस्ततस्ततः।स्वैः पक्षैः पवनोद्धूतैर्गवाक्षैः स्फाटिकैरिव ॥

टीका—लक्ष्मण सहित राम लाल नीले कमलों और मछलियों से भरी हुई पम्पा पर जाकर व्याकुलेन्द्रिय हो विलाप करने लगा ॥ १ ॥ वहां उस पम्पा को देखते ही हर्ष से उसके इन्द्रिय कांप उठे, वह कामवश में पड़ा हुआ लक्ष्मण से बोला ॥ २ ॥ हे सौमित्रे ! गुलियों की तरह विमल जलवाली, फूले हुए लाल पीले कमलों वाली, पम्पा विविध वृक्षों से कैसे शोभावाली है ॥ ३ ॥ मुझे शोक से पीड़ित हुए को भी विचित्र बनोंवाली अनेक प्रकार के फूलों से भरी हुई ठण्डे जलवाली सुखकारिणी पम्पा शोभा देती है ॥ ४ ॥ यह नील पीत हरा प्रदेश गुलदस्तों की तरह भेंट किए हुए वृक्षों के अनेक प्रकार के फूलों से अधिक शोभा पाता है ॥ ५ ॥ चारों ओर फूलों के समूहों से पूर्ण वृक्षों की चोटियां फूली हुई चोटियों वाली बेलों से सब ओर से आलिंगन की हुई हैं ॥ ६ ॥ हे सौमित्रे ! उत्पन्न हुए फूल फलों से युक्त वृक्षोंवाला, गन्धवाला, यह सुरभि मास काम का उद्दीपक है ॥ ७ ॥ हे सौमित्रे ! पुष्पशाली बनों के रूप देख, जोकि मेघों की तरह फूलों की वर्षा बरसा रहे हैं ॥ ८ ॥ भान्ति २ के जंगली वृक्ष वायु के वेग से हिले हुए फूलों से पृथिवी में सुहावनी शिलाओं पर बिखेर कर रहे हैं ॥ ९ ॥ देख हे सौमित्रे ! गिरे हुए गिरते हुए और वृक्षों पर स्थित फूलों से वायु कैसा सब ओर मानों खेल रहा है ॥ १० ॥ पर्वतों की कन्दरा से निकला हुआ वायु वृक्षों को मानों नचाता हुआ स्वयं मस्त कोइलों की ध्वनियों से मानों गीत गारहा है ॥ ११ ॥ वह पवन चारों ओर से वृक्षों को हिलाकर उनकी शाखाओं के अग्र

मिला देने से मानों वृक्षों को गुथ रहा है ॥ १२ ॥ चारों ओर इन फूले हुए कर्णिकारों को देख, जो सोने से ढके हुए पीले वस्त्रों वाले मनुष्यों की तरह हैं ॥ १३ ॥ अनेक पक्षियों की गूंज से भरा यह वसन्त हे सौमित्रे सीता से हीन हुए के मेरे शोक का चमकाने वाला है ॥ १४ ॥ यह वसन्त रूपी अग्नि जिसके कि अशोक के गुच्छे अंगार हैं, भौरों की गूंजें ध्वनि हैं, कोयलें लाल लाल लाटें हैं मुझे दग्ध करेगा ॥ १५ ॥ यह काल जिसमें कि सारे वन सुहावने बने हैं, और उनकी सीमा के किनारे कोइलों से गूंज रहे हैं मेरी प्यारी को प्यारा है ॥ १६ ॥ यह यहां वहां नाचते हुए मोर पवन से हिलाए हुए अपने पंखों से बिल्लौरी झरोंकों की नाईं शोभा दे रहे हैं ॥ १७ ॥

मूल—पश्य लक्ष्मण नृत्यन्तं मयूरमुपनृत्यति । शिखिनी मन्मथार्तैषा भर्तारं गिरिसानुनि॥१८॥तामेव मनसा रामां मयूरोऽप्यनुधावति । वितत्य रुचिरौ पक्षौ रुतैरुपहसन्निव॥१९॥मयूरस्य वने नूनं रक्षसा न हृता प्रिया । तस्मान्नृत्यति रम्येषु वनेषु सह कान्तया ॥ २० ॥ ममाप्येवं विशालाक्षी जानकी जातसंभ्रमा । मदनेनाभिवर्तेत यदि नापहृता भवेत् ॥ २१ ॥ वसन्तो यदि तत्रापि यत्र मे वसति प्रिया । नूनं परवशा सीता सापि शोचत्यहं यथा ॥ २२ ॥ श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुभाषा च मे प्रिया । नूनं वसन्तमासाद्य परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥ २३ ॥ दृढं हि हृदये बुद्धिर्मम संपरिवर्तते । नालं वर्तयितुं सीता साध्वी मद्विरहं गता ॥ २४ ॥ मयि भावो हि वैदेह्यास्तत्त्वतो विनिवेशितः । ममापि भावः सीतायां सर्वथा विनिवेशितः ॥ २५ ॥ एष पुष्पवहो वायुः सुखस्पर्शो हिमावहः । तां विचिन्तयतः कान्तां पावकप्रतिमो मम ॥ २६ ॥ सदा सुखमहं मन्ये यं पुरा सह सीतया । मारुतः स विना सीतां शोकसंजननो मम ॥

२७ ॥ पश्य लक्ष्मण संनादं वने मदविवर्धनम् । पुष्पिताग्रेषु वृक्षेषु द्विजानामवकूजताम् ॥ २८ ॥ विक्षिप्तां पवनेनैतामसौ तिलकमञ्जरीम् । षट्पदः सहसाभ्येति मदोद्धूतामिव प्रियाम् ॥ २९ ॥ अमी लक्ष्मण दृश्यन्ते चूताः कुसुमशालिनः । विभ्रमोत्सिक्तमनसः साङ्गरागा नरा इव ॥ ३० ॥

टीका–देख हे लक्ष्मण यह पर्वत की चोटी पर, नाचते हुए मोर के साथ, काम से पीड़ित हुई मोरनी नाच रही है ॥ १८ ॥ उस का भर्त्ता मोर भी पंख फैलाकर उसी रमणी के पीछे मन से धावन कर रहा है, और (के, के, की) ध्वनियों से मानों मुझ पर हंसी करता है ॥ १९ ॥ हे मोर तेरी प्यारी वन में राक्षस ने हर नहीं ली है, इसलिये तू सुहावने वनों में कान्ता के साथ नाच रहा है॥२०॥मेरी ओर भी इसी तरह विशाल नेत्रोंवाली जानकी काम से संभ्रम के साथ झुकती, यदि हर न ली गई होती ॥ २१ ॥ वसन्त यदि वहां भी है, जहां मेरी प्यारी बसती है, तो निःसन्देह परवश हुई सीता भी मेरी तरह शोककर रही होगी ॥२२॥नवयुवति पद्मपत्र की तरह नेत्रोंवाली, नर्म बोलने वाली मेरी प्यारी निःसन्देह जीवन त्याग देगी ॥२३॥मेरे हृदय में यह दृढ़ बुद्धि होरही है कि साध्वी सीता मेरे विरह में (वसन्त हो वा न हो पर) जीती नहीं रहेगी ॥ २४ ॥ सीता का भाव पूरा २ मुझमें लगा हुआ है, और मेरा सर्वथा सीता में लगा हुआ है ॥ २५ ॥ यह सुगन्ध और ठण्डक के लाने वाला सुखस्पर्श वायु उस कान्ता को चिन्तन करते हुए मुझे अग्नि के तुल्य होरहा है ॥ २६ ॥ सीता के साथ जिसको मैं पहले सदा सुखजनक माना करता था, सीता के बिना अब वह वायु मेरे लिये शोकजनक है ॥ २७ ॥ देख हे लक्ष्मण वन में फूले हुए अगोंवाले वृक्षों के ऊपर बोलते

हुए पक्षियों की ध्वनि मस्त करनेवाली है ॥ २८ ॥ वह भौंरा मद से फिसलती हुई प्यारी की तरह पवन से फेंकी हुई तिलकमञ्जरी की ओर वेग से जारहा है ॥ २९ ॥ हे लक्ष्मण फलों की शोभा वाले यह आम विलास से भरे हुए चित्तवाले अङ्गराग किये हुए मनुष्यों की तरह प्रतीत होते हैं ॥ ३० ॥

मूल—जले तरुणसूर्याभैः षट्पदाहतकेसरैः। पङ्कजैःशोभते पम्पा समन्तादभिसंवृता ॥ ३१ ॥ पवनाहतवेगाभिरूर्मिभिर्विमलेऽम्भसि । पङ्कजानि विराजन्ते ताड्यमानानि लक्ष्मण ॥ ३२ ॥ पद्मपत्रविशालाक्षीं सततं प्रियपङ्कजाम् । अपश्यतो मे वैदेहीं जीवितं नाभिरोचते ॥ ३३ ॥ यानि स्म रमणीयानि तया सह भवन्ति मे । तान्येवारमणीयानि जायन्ते मे तया विना ॥ ३४ ॥ पद्मकोशपलाशानि द्रष्टुं दृष्टिर्हि मन्यते । सीताया नेत्रकोशाभ्यां सदृशानीति लक्ष्मण ॥ ३५ ॥ पद्मकेसरसंसृष्टो वृक्षान्तरविनिःसृतः । निःश्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहरः ॥ ३६ ॥ गिरिप्रस्थास्तु सौमित्रे सर्वतः संप्रपुष्पितैः । निष्पत्रैः सर्वतो रम्यैः प्रदीप्ता इव किंशुकैः ॥ ३७ ॥ पादपात्पादपं गच्छञ्शैलाच्छैलं वनाद्वनम् । वाति नैकरसास्वादसंमोदित इवानिलः ॥ ३८ ॥ इदं मृष्टमिदं स्वादु प्रफुल्लमिदमित्यपि । रागरक्तो मधुकरः कुसुमेष्वेव लीयते ॥ ३९ ॥ इयं कुसुमसंघातैरुपस्तीर्णा सुखाकृता । स्वयं निपतितैर्भूमिः शयनप्रस्तरैरिव ॥ ४० ॥ हिमान्ते पश्य सौमित्रे वृक्षाणां पुष्पसम्भवम् । पुष्पमासे हि तरवः संघर्षादिव पुष्पिताः ॥ ४१ ॥ आह्वयन्त इवान्योन्यं नगाः षट्पदनादिताः । कुसुमोत्तंसविटपाः शोभन्ते बहु लक्ष्मण ॥ ४२ ॥ यदि दृश्येत सा साध्वी यदि चेह वसेमहि । स्पृहयेयं न शक्राय नायोध्यायै रघूत्तम ॥ ४३ ॥ न ह्येवं रमणीयेषु शाद्वलेषु तया सह । रमतो मे भवेच्चिन्ता न स्पृहान्येषु वा भवेत् ॥

४४ ॥ पश्य मानुषु चित्रेषु मृगीभिः सहितान्मृगान् । मां पुनर्मृगाशावाक्ष्या वैदेह्या विरहीकृतम् ॥४५॥ या मामनुगता मन्दं पित्रा प्रस्थापितं वनम् । सीता धर्मं समास्थाय क नु सा वर्तते प्रिया ॥ ४६ ॥ तया विहीनः कृपणः कथं लक्ष्मण धारये । या मामनुगता राज्याद् भ्रष्टं विहतचेतसम् ॥ ४७ ॥ तच्चार्वञ्चितपद्माक्षं सुगन्धि शुभमव्रणम् । अपश्यतो मुखं तस्याः सीदतीव मतिर्मम ॥ ४८ ॥ स्मितहास्यान्तरयुतं गुणवन्मधुरं हितम् । वैदेह्या वाक्यमतुलं कदा श्रोष्यामि लक्ष्मण ॥ ४९ ॥ किं नु वक्ष्याम्ययोध्यायां कौसल्यां हि नृपात्मज । क्व सा स्नुषेति पृच्छन्तीं कथं चापि मनस्विनीम् ॥ ५० ॥ गच्छ लक्ष्मण पश्य त्वं भरतं भ्रातृवत्सलम् । नह्यहं जीवितुं शक्तस्तामृते जनकात्मजाम् ॥ ५१ ॥ इति रामं महात्मानं विलपन्तमनाथवत् । उवाच लक्ष्मणो भ्राता वचनं युक्तमव्ययम् ॥ ५२ ॥ संस्तम्भ राम भद्रं ते मा शुचः पुरुषोत्तम । नेदृशानां मतिर्मन्दा भवत्यकलुषात्मनाम् ॥ ५३ ॥ यदि गच्छति पातालं ततोऽभ्यधिकमेव वा । सर्वथा रावणस्तात न भविष्यति राघव ॥५४॥+ उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम् । सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम् ॥ ५५ ॥ + उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु । उत्साहमात्रमाश्रित्य प्रतिलप्स्याम जानकीम् ॥ ५६ ॥ एवं संबोधितस्तेन शोकोपहतचेतनः । त्यज्य शोकं च मोहं च रामो धैर्यमुपागमत् ॥ ५७ ॥ सोऽभ्यतिक्रामदव्यग्रस्तामचिन्त्यपराक्रमः । रामः पम्पां सुरुचिरां रम्यां पारिप्लवद्रुमाम् ॥ ५८ ॥ तावृष्यमूकस्य समीपचारी चरन्ददर्शाद्भुतदर्शनीयौ । शाखामृगाणामधिपस्तरस्वी वितत्रसे नैव विचेष्ट चेष्टम् ॥ ५९ ॥

टीका—जल में नये सूर्य के तुल्य, भौंरों से ताड़ना किये हुए केसरों वाले कमलों से पम्पा चारों तर्फ ढकी हुई है ॥ ३१ ॥ पवन की

ताडना से वेगवाली लहरों से ताडना किये जाते हुए कमल निर्मल जल में हे लक्ष्मण ! अद्भुत शोभा पाते हैं ॥ ३२ ॥ कमलपत्र के तुल्य विशाल नेत्रोंवाली कमलों को सदा प्यार करनेवाली वैदेही को न देखते हुए मुझे जीना नहीं रुचता है ॥ ३३ ॥ जो वस्तुएं उस के साथ मेरे लिये रमणीय थीं, वही अब उसके विना अरमणीय हैं ॥ ३४॥ हां पद्म कोश के पत्तों को हे लक्ष्मण ! दृष्टि देखने के लिये पसन्द करती है क्योंकि वह सीता के नेत्र के तुल्य हैं ॥ ३५ ॥ पद्मों के केसर से मिला हुआ वृक्षों के अन्दर से निकला हुआ मनोहर वायु सीता के सांस की भान्ति चलता है ॥ ३६ ॥ पर्वतों की चोटियें हे लक्ष्मण ! चारों ओर फूले हुए, पत्र हीन, सुहावने केसुओं से मानों सब ओर से जल रही हैं ॥ ३७ ॥ वृक्ष से वृक्ष को, पर्वत से पर्वत को, बन से बन को जाता हुआ वायु अनक रसों के आस्वाद से आनन्दित हुए की तरह बह रहा है ॥ ३८ ॥ यह मधुर है, स्वादु है, फूला हुआ है, इसप्रकार प्रेम में रत हुआ भौंरा फूलों में ही लीन होजाता है ॥ ३९ ॥ यह अपने आप गिरे हुए फूलों के समूहों से विछी हुई भूमि शय्या के बिछौनों की तरह सुखदायी बन गई है ॥ ४० ॥ हिम के अन्त में देख हे सौमित्रे! वृक्षों के फूलों की उत्पत्ति, मानों इस पुष्पमास में वृक्ष स्पर्धा से एक दूसरे से बढ़ चढ़कर फूले हैं ॥ ४१ ॥ वृक्ष भौंरों की ध्वनियों से मानों एक दूसरे को आह्वान (चैलंज) करते हैं, और हे लक्ष्मण! डालों के ऊपर फूलों के सेहरों से शोभा पाते हैं ॥ ४२ ॥ यदि यहां उस साध्वी का दर्शन हो, और यदि यहां हम वास करें, तो हे रघूत्तम! न मैं इन्द्रपद के लिये न अयोध्या के लिए इच्छा करूं ॥ ४३ ॥ इसप्रकार के रमणीय शाद्वल (सब्जःज़ार) पर उसके साथ रमण करते हुए मुझे न चिन्ता हो, न ही कोई और इच्छा हो ॥ ४४ ॥ इन विचित्र चोटियों के ऊपर

मृगों को मृगियों के सहित देख, और मुझे उस मृगनयनी सीता से विरहित देख ॥ ४५ ॥ पिता से बन को भेजे हुए मेरे पीछे जो धर्म का सहारा लेकर मन्द २ चली वह प्यारी सीता कहां है ॥ ४६ ॥ उससे विहीन हुआ कैसे मैं प्राणों को धारण करूं, जो राज्य से भ्रष्ट हुए, चोट दिए हुए चित्त वाले के पीछे चली ॥ ४७ ॥ उस सुन्दर पूजित पद्म तुल्य नेत्रों वाले, सुगन्धवाले व्रण रहित शुभ मुख को न देखते हुए मेरी मति नष्ट होरही है ॥ ४८ ॥ कब हे लक्ष्मण ! अन्दर मन्द मन्द मुसकराहट से संयुक्त गुणों से भरा हुआ, मीठा और हितकारी सीता का वचन सुनूंगा ॥ ४९ ॥ हे नृपसुत ! मैं अयोध्या में जाकर "कहां मेरी स्नुषा है, और कैसी है," ऐसा पूछती हुई मनस्विनी कौसल्या को क्या कहूंगा ॥ ५० ॥ जा हे लक्ष्मण तू भाइयों से प्यार करने वाले भरत को देख, अब मैं उस जनकात्मजा के बिना जीता नहीं रह सक्ता हूं ॥ ५१ ॥ इसप्रकार अनाथ की तरह विलाप करते हुए महात्मा राम को भाई लक्ष्मण युक्तियुक्त सदा स्थिर रहनेवाला वचन बोला ॥ ५२ ॥ हे राम अपने आपको थाम, हे पुरुषोत्तम शोक मत कर । आप जैसे शुद्ध मनवालों की मति जड़ नहीं हुआ करती है ॥ ५३ ॥ यदि पाताल को चला जायगा, वा उस से भी आगे जायगा, सर्वथा हे तात राघव ! अब रावण नहीं रहेगा॥ ५४ ॥ उत्साह बलवान् है हे आर्य ! उत्साह से बढ़कर कोई बल नहीं, उत्साहवाले को लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ ५५ ॥ उत्साह वाले पुरुष कर्मों में दुःखी नहीं होते, उत्साहमात्र का आश्रय करके हम जानकी को पाएंगे ॥ ५६ ॥ इसप्रकार उस से जनाया हुआ शोक से नष्ट हुई चेतनावाला राम शोक मोह को त्यागकर धैर्य को प्राप्त हुआ ॥ ५७ ॥ और वह अचिन्त्य परा-

क्रमवाला राम अव्यग्र हो सुहावनी रमणीय चञ्चल वृक्षोंवाली पम्पा को देख गया ॥ ५८ ॥ उन दोनों अद्भुत दर्शनीयोंको ऋष्यमूक के आसपास घूमनेवाला बलवान् वानरोंका अधिपति (सुग्रीव) देखता भया, वह डर गया, और कोई चेष्टा न करता भया ॥ ५९ ॥

सर्ग २(व०२—३) सुग्रीव का हनुमान को राम के पास भेजना ।

मूल—तौ तु दृष्ट्वा महात्मानौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । वरायुधधरौ वीरौ सुग्रीवः शङ्कितोऽभवत् ॥ १ ॥ ततस्तु भयसंत्रस्तं वालिकिल्बिषशङ्कितम् । उवाच हनुमान्वाक्यं सुग्रीवं वाक्यकोविदः ॥ २ ॥ संभ्रमस्त्यज्यतामेष सर्वैर्वालिकृते महान् । मलयोऽयं गिरिवरो भयं नेहास्ति वालिनः ॥ ३ ॥ सुग्रीवस्तु शुभं वाक्यं श्रुत्वा सर्वं हनूमतः । ततः शुभतरं वाक्यं हनुमन्तमुवाच ह ॥ ४ ॥ वालिप्रणिहितावेव शङ्केऽहं पुरुषोत्तमौ । राजानो बहुमित्राश्च विश्वासो नात्र हि क्षमः ॥ ५ ॥ अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छन्नचारिणः । विश्वस्तानामविश्वस्तांश्छिद्रेषु प्रहरन्त्यपि ॥ ६ ॥ शुद्धात्मानौ यदि त्वेतौ जानीहि त्वं प्लवङ्गम । व्याभाषितैर्वा रूपैर्वा विज्ञेया दुष्टतानयोः ॥ ७ ॥ वचो विज्ञाय हनुमान्सुग्रीवस्य महात्मनः । पर्वतादृष्यमूकात्तु पुप्लुवे यत्र राघवः ॥ ८ ॥ कपिरूपं परित्यज्य हनुमान्मारुतात्मजः । भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितया कपिः ॥ ९ ॥ ततश्च हनुमान्वाचा श्लक्ष्णया सुमनोज्ञया । विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च ॥ १० ॥ आबभाषे च तौ वीरौ यथावत्प्रशशंस च । उवाच कामतो वाक्यं मृदु सत्यपराक्रमौ ॥ ११ ॥ राजर्षिदेवप्रतिमौ तापसौ संशितव्रतौ । देशं कथमिमं प्राप्तौ भवन्तौ वरवर्णिनौ ॥ १२ ॥ पद्मपत्रेक्षणौ वीरौ जटामण्डलधारिणौ । अन्योन्यसदृशौ वीरौ देवलोकादिहागतौ ॥ १३ ॥ सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद्वानरपुङ्गवः । वीरो विनिकृतो भ्रात्रा जगद् भ्रमति दुःखितः ॥ १४ ॥ प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवो महा-

त्मना । राज्ञा वानरमुख्यानां हनुमान्नाम वानरः ॥ १५ ॥ युवाभ्यां स हि धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति । तस्य मां सचिवं वित्तं वानरं पवनात्मजम् ॥ १६ ॥

टीका—उन दोनों महात्मा वीर राम लक्ष्मण को श्रेष्ठ शस्त्र धारे हुए देखकर सुग्रीव शङ्कित होगया ॥ १ ॥ तब भय से डरे हुए वालि के पाप से शङ्कित सुग्रीव को वाक्यपण्डित हनुमान् यह वाक्य बोला ॥ २ ॥ वालि के निमित्त यह बड़ी घबराहट सब को छोड़ देनी चाहिये, यह मलय पर्वत है यहां वालि का भय नहीं है ॥ ३ ॥ सुग्रीव हनुमान् के शुभ वाक्य को सारा सुनकर फिर शुभतर वाक्य हनुमान से बोला ॥ ४ ॥ इन दोनों उत्तम पुरुषों को मैं वालि के गुप्तचर ही शङ्का करता हूं, राजाओं के बहुत से मित्र होते हैं, इनमें विश्वास योग्य नहीं है॥५॥मनुष्य को छद्मचारी शत्रु भी पूरी तरह जानने चाहिये,जो स्वयं विश्वास न करते हुए दूसरे को विश्वस्त बना कर छिद्रों में प्रहार करते हैं। ६ ॥ हे व नर! यदि यह दोनों शुद्धात्मा हैं, तो भी इनको जान (कि यह कौन हैं) और (यदि दुष्ट हैं तो) इनकी दुष्टता को इनके वचनों से और रूपों से जान ॥७॥ हनुमान् महात्मा सुग्रीव के वचन का तात्पर्य समझकर ऋष्यमूक पर्वत से वहां गया जहां दोनों राघव थे ॥८॥ पवनपुत्र वानर हनुमान् वानर-रूप को त्यागकर शठ बुद्धि से भिक्षुरूप को धारता भया॥ ९ ॥ तब हनुमान् विनीतवत् उन दोनों राघवों के पास आ और प्रणाम करके स्पष्ट सुन्दर वाणी से ॥ १० ॥ उन दोनों वीरों के साथ भाषण और उनकी यथावत् प्रशंसा करता भया, और उन सच्चे पराक्रमवालों को इच्छा से नर्म वाक्य बोला ॥ ११ ॥ राजर्षि और देवताओं के तुल्य आप दोनों तीक्ष्ण व्रतोंवाले तपस्वी ब्रह्मचारी कैसे इस देश में आए हैं॥ १२ ॥ पद्मपत्र के तुल्य नेत्रोंवाले

वीर जटामण्डल धारी एक दूसरे के सदृश वीर मानों देवलोक से यहां आए हैं ॥ १३ ॥ सुग्रीव नाम धर्मात्मा वानरश्रेष्ठ वीर भाई से निकाला हुआ दुःखित हुआ जगत में घूम रहा है ॥१४॥ वानर मुख्यों के राजा उस सुग्रीव महात्मा से भेजा हुआ मैं हनुमान् नाम वानर आपके पास आया हूं ॥ १५ ॥ वह धर्मात्मा सुग्रीव आप दोनोंके साथ मैत्री चाहता है, मुझे आप उसका मन्त्री पवन-सुत वानर जानें ॥ १६ ॥

सर्ग ३ (वं०३ हनुमान् की बात चीत और राम से हनुमान् की प्रशंसा

मू०—श्रुत्वा तु वचनं तस्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । प्रहृष्टवदनःश्रीमान्भ्रातरं पार्श्वतः स्थितम् ॥ १ ॥ सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । तमेव कांक्षमाणस्य ममान्तिकमिहागतः ॥ २ ॥ तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम् । वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिन्दमम् ॥३॥ + नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः । नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥ ४ ॥ + नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् । बहु व्याहरताऽनेन न किञ्चिदपशब्दितम् ॥ ५ ॥ न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा । अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥ ६ ॥+संस्कारक्रमसंपन्नामद्रुताम विलम्बिताम् । उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम् ॥ ७ ॥ अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया । कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि ॥ ८ ॥ एवंविधो यस्य दूतो न भवेत्पार्थिवस्य तु । सिध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ ॥९॥+ एवंगुणगणैर्युक्तः यस्य स्युः कार्यसाधकाः । तस्य सिध्यन्ति सर्वेऽर्था दूतवाक्यप्रचोदिताः ॥१०॥ एवमुक्तस्तु सौमित्रिःसुग्रीवसचिवं कपिम् । अभ्यभाषत वाक्यज्ञो वाक्यज्ञं पवनात्मजम् ॥ ११ ॥ विदिता नौ

गुणा विद्वन्सुग्रीवस्य महात्मनः । तमेव चावां मार्गावःसुग्रीवं प्लव-गेश्वरम् ॥ १२ ॥ यथा ब्रवीषि हनुमन्सुग्रीववचनादिह । तत्तथा हि करिष्यावो वचनात्तव सत्तम ॥ १३ ॥

टीका—उसके इस वचन को सुनकर प्रसन्नमुख श्रीमान् राम पास स्थित भाई लक्ष्मण से बोला ॥ १ ॥ यह कपिराज महात्मा सुग्रीव का मंत्री है, उसी की इच्छा करते हुए के मेरे पास यहां आया है ॥२॥ सो हे सौमित्रे ! स्नेह से भरेहुए, शत्रुओं के दबाने वाले, वाक्य के जाननेवाले, सुग्रीव के मन्त्री इस वानर से मधुर वाक्यों से सम्भाषण कर ॥३॥ न ऋग्वेद में शिक्षा न पाया हुआ, न यजुर्वेद का न धारने वाला, न सामवेद का न जाननेवाला ऐसा भाषण कर सक्ता है ॥४॥ निःसन्देह इसने व्याकरण अनेकबार सुना है, बहुत बोलते हुए इसने कहीं भी अपभ्रंश नहीं बोला है ॥ ५ ॥ (बोलते समय) इसके मुख पर, नेत्रों में, ललाट पर, भवों में, और भी सारे अङ्गों में कहीं दोष विदित नहीं हुआ है ॥ ६ ॥ संस्कार के क्रम से सम्पन्न, अद्रुत, विलम्ब दोष से रहित, हृदय को हर्ष देनेवाली कल्याणी वाणी का उच्चारण करता है ॥ ७ ॥ तीन स्थानों में उत्पन्न होनेवाली ऐसी विचित्र वाणी से किसका चित्त वस में नहीं आजाता, चाहे तलवार उठाए शत्रु भी हो, ॥८॥ जिस राजा का दूत इसप्रकारका न हो, हे निष्पाप! उसके कामों के फल कैसे सिद्ध होते हैं ॥९॥ इसप्रकार के गुणगणों से युक्त पुरुष जिसके कार्य-साधक हों, उसके सारे कार्य दूत के वाक्य से प्रेरे हुए सिद्ध होते हैं, ॥ १० ॥ ऐसे कहा हुआ वाक्य के जाननेवाला लक्ष्मण वाक्य के जानने वाले सुग्रीव के मंत्री पवनसुत वानर से भाषण करता भया ॥११॥ हे विद्वन् ! महात्मा सुग्रीव के गुण हमें विदित हैं, उसी वानरपति सुग्रीव को हम ढूंढते हैं ॥ १२ ॥ हे हनुमान्

जैसा आप सुग्रीव के वचन से कहते हैं हे लक्ष्मण! वैसा ही हम आप के वचन से करेंगे ॥ १३ ॥

सर्ग ४ (व० ४) हनुमान् का प्रश्न और लक्ष्मण का उत्तर

मूल—ततः परमसंहृष्टो हनूमान्प्लवगोत्तमः । प्रत्युवाच ततो वाक्यं रामं वाक्यविशारदः ॥ १ ॥ किमर्थं च वनं घोरं पम्पाकानन-मण्डितम् । आगतः सानुजो दुर्गं नानाव्यालमृगायुतम् ॥ २ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणो रामचोदितः । आचचक्षे महात्मानं रामं दशरथात्मजम् ॥ ३ ॥ राजा दशरथो नाम द्युतिमान्धर्मवत्सलः । तस्यायं पूर्वजः पुत्रो रामो नाम जनैःश्रुतः ॥४॥ राजलक्षणसंयुक्तः संयुक्तः राज्यसम्पदा । राज्याद्भ्रष्टो मया वस्तुं वने च सहागतः ॥ ५ ॥ भार्यया च महाभाग सीतयानुगतो वशी । दिनक्षये महा-तेजाः प्रभयेव दिवाकरः ॥ ६ ॥ अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्य-मुपागतः । कृतज्ञस्य बहुज्ञस्य लक्ष्मणो नाम नामतः ॥ ७ ॥ रक्षसा-पहृता भार्या रहिते कामरूपिणा । तच्च न ज्ञायते रक्षः पत्नी ये-नास्य वा हृता ॥ ८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः । अहं चैव च रामश्च सुग्रीवं शरणं गतौ ॥ ९ ॥+ सीता यस्य स्नुषा चासीच्छरण्यो धर्मवत्सलः । तस्य पुत्रः शरण्यस्य सुग्रीवं शरणं गतः ॥१०॥+सर्वलोकस्य धर्मात्मा शरण्यः शरणं पुरा । गुरुर्मे रा-घवः सोऽयं सुग्रीवं शरणं गतः ॥ ११ ॥ यस्य प्रसादे सततं प्रसी-देयुरिमाः प्रजाः । स रामो वानरेन्द्रस्य प्रसादमभिकांक्षते ॥ १२ ॥ येन सर्वगुणोपेताः पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः । मानिताः सततं राज्ञा सदा दशरथेन वै ॥ १३ ॥ तस्यायं पूर्वजः पुत्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । सुग्रीवं वानरेन्द्रं तु रामः शरणमागतः ॥ १४ ॥ शोकाभिभूते रामे तु शोकार्ते शरणं गते । कर्तुमर्हति सुग्रीवः प्रसादं सह यूथपैः ॥१५॥ एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं करुणं साश्रुपातनम् । हनूमान्प्रत्युवाचेदं वाक्यं

वाक्यविशारदः॥१६॥ईदृशा बुद्धिसम्पन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः । द्रष्टव्या वानरेन्द्रेण दिष्ट्या दर्शनमागताः ॥ १७ ॥ स हि राज्याच्च विभ्रष्टः कृतवैरश्च वालिना । हृतदारो वने त्रस्तो भ्रात्रा विनिष्कृतो भृशम् ॥ १८ ॥ करिष्यति स साहाय्यं युवयोर्भास्करात्मजः । सुग्रीवः सह चास्माभिः सीतायाः परिमार्गणे ॥ १९ ॥ ततः स सुमहाप्राज्ञो हनूमान्मारुतात्मजः । जगामादाय तौ वीरौ हरिराजाय राघवौ ॥ २० ॥

टीका—तब परम प्रसन्न हुआ वानरोत्तम हनुमान् वाक्य के जानने वाले राम से वाक्य बोले ॥१॥ कैसे आप पम्पा के जंगलों से भूषित नाना व्याल मृगों से युक्त इस भयङ्कर दुर्गम वन में छोटे भाई समेत आए हैं ॥ २ ॥ उसके वचन को सुनकर राम से प्रेरा हुआ लक्ष्मण दशरथसुत महात्मा राम का परिचय देता भया ॥ ३ ॥ राजा दशरथ नाम तेजस्वी धर्मवत्सल हुआ है, उसका यह बड़ा पुत्र राम नाम लोगों में विख्यात है ॥ ४ ॥ राजा के लक्षणों से युक्त और राज्य सम्पदा से युक्त हुआ, राज्य से निकला हुआ वन में रहने के लिये मेरे साथ यहां आया है ॥ ५ ॥ जैसे दिन के अन्त में महातेजस्वी सूर्य प्रभा से अनुगत हो । इस प्रकार भार्या सीता से अनुगत हुआ आया है ॥६॥ मैं इसका छोटा भाई गुणों से दासभाव को प्राप्त हुआ हूं, यह जो कृतज्ञ है और बहुत जाननेवाला है ॥७॥ हम से रहित काल में इसकी भार्या कामरूपी राक्षस ने हरी है, उस राक्षस को पूरा २ नहीं जानते जिसने इसकी पत्नी हरी है ॥८॥ यह आप पूछते हुए को सब ठीक २ बतला दिया है, मैं और राम सुग्रीव की शरण प्राप्त हुए हैं ॥ ९ ॥ सीता जिस की स्नुषा थी, जो शरण लेने योग्य, धर्मवत्सल था, उस शरण देनेवाले का पुत्र सुग्रीव की शरण प्राप्त हुआ है ॥ १० ॥ जो

शरण लेने योग्य धर्मात्मा इससे पहले सारे लोक की शरण था, वह मेरा गुरु राम सुग्रीव की शरण लेता है ॥११॥ जिसके प्रसाद से यह सारी प्रजाएं सदा प्रसन्न होती हैं, वह राम वानरेन्द्र का प्रसाद चाहता है ॥१२॥ जिस राजा दशरथ ने पृथिवी में सारे गुणों से युक्त राजाओं को सम्मानित किया है ॥ १३ ॥ उसका यह बड़ा पुत्र तीनों लोकों में विख्यात राम वानरेन्द्र सुग्रीव की शरण आता है ॥१४॥ शोक से दबे हुए शोक से पीड़ित शरणगत हुए राम पर सुग्रीव अपने यूथपतियों (सरदारों) के समेत प्रसाद करने योग्य है ॥१५॥ इसप्रकार अश्रुपात के सहित करुण वचन कहते हुए लक्ष्मण को वाक्यचतुर हनुमान् यह वचन बोला ॥ १६॥ आप जैसे बुद्धिसम्पन्न, क्रोध को जीते हुए, इन्द्रियों को जीते हुए, पुरुष वानरेन्द्र के लिये दर्शन के योग्य हैं, हमारे भाग्य से आपके दर्शन हुए हैं ॥ १७ ॥ वह राज्य से फिसला हुआ है, बालि से वैर किये हुए है, उसकी स्त्री हरी गई है, भाई से अत्यन्त अपमानित हुआ डरकर वन में रहता है ॥ १८ ॥ वह सूर्यपुत्र सुग्रीव सीता के ढूंढने में हमारे समेत अवश्य आपकी सहायता करेगा ॥१९॥ तब वह महाप्राज्ञ पवनपुत्र हनुमान उन दोनों राघव वीरों को लेकर वानरराज के पास गया ॥ २० ॥

सर्ग ५ (व० ५) राम सुग्रीव की अग्नि साक्षिक मैत्री

मूल—ऋष्यमूकात्तु हनुमान् गत्वा तं मलयं गिरिम् । आचचक्षे तदा वीरो कपिराजाय राघवौ ॥ १ ॥+ससवान्सख्यकामौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । प्रगृह्य चार्चयस्वैतौ पूजनीयतमावुभौ ॥ २ ॥ श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं सुग्रीवो वानराधिपः। दर्शनीयतमो भूत्वा प्रीत्योवाच च राघवम् ॥३॥+भवान्धर्मविनीतश्च सुतपाः सर्ववत्सलः । तन्मयैवैष सत्कारो लाभश्चैवोत्तमःप्रभो॥४॥+रोचते यदि मे सख्यं बाहुरेष

प्रसारितः। गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा वध्यतां ध्रुवा ॥ ५ ॥
एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम्। संप्रहृष्टमना हस्तं पीड-
यामास पाणिना॥६॥+ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षि-
णम्। सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ ॥ ७ ॥ ततः सुप्रीत-
मनसौ तावुभौ हरिराघवौ। अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमभि-
जग्मतुः ॥ ८ ॥ त्वं वयस्योऽसि हृद्यो मे एकं दुःखं सुखं च नौ।
सुग्रीवो राघवं वाक्यमित्युवाच प्रहृष्टवत् ॥ ९ ॥

टीका—हनुमान् ऋष्यमूक से उस मलयगिरि पर जाकर वानरराज को बतलाता भया, कि यह दोनों राघव हैं ॥ १ ॥ आपके साथ मैत्री की कामनावाले यह दोनों राम लक्ष्मण भाई हैं, इनको स्वीकार करके पूजिये, यह दोनों पूजनीयतम हैं ॥ २ ॥ हनुमान् के वाक्य को सुनकर वानराधिपति सुग्रीव दर्शनीयतम होकर प्रीतिपूर्वक राम से बोला ॥३॥ आप धर्म में विनीत, बड़े तपस्वी सब को प्यार करने वाले हैं, सो हे प्रभो ! यह मेरा ही सत्कार है, और मुझे ही बड़ा लाभ है ॥४॥ यदि मेरी मित्रता पसन्द है, तो यह मैंने भुजा फैलाई है, अपने हाथ से मेरे हाथ को पकड़िये, और अटल मर्यादा बांधिये ॥ ५ ॥ सुग्रीव के इस सुन्दर वचन को सुनकर प्रसन्न मन राम (दाएं) हाथ से (उसके दाएं) हाथ को ग्रहण करता भया ॥ ६ ॥ तब वह दोनों प्रदीप्त अग्नि की प्रदक्षिणा करते भए (मित्रता की दृढ़ता के लिये) सुग्रीव और राघव मित्र बन गये ॥७॥ तब वह वानर और राघव दोनों बड़े प्रसन्न हो, एक दूसरे को देखते हुए तृप्ति को प्राप्त नहीं होते हैं ॥८॥ तू मेरा सखा है, मेरे हृदय का प्यारा है, हमारा दोनों का सुख दुःख एक है, इसप्रकार सुग्रीव राघव को परम प्रसन्नवत् वाक्य कहता भया ॥ ९ ॥

सर्ग ६ (व० ६) सुग्रीव का सीता के भूषण वस्त्र दिखलाना

मूल–पुनरेवाब्रवीत्प्रीतो राघवं रघुनन्दनम् । अयमाख्याति ते राम सेवको मन्त्रिसत्तमः ॥ १ ॥ हनूमान्यन्निमित्तं त्वं निर्जनं वनमागतः। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वसतश्च वने तव ॥ २ ॥ रक्षसापहृता भार्या मैथिली जनकात्मजा । त्वया वियुक्ता रुदती लक्ष्मणेन च धीमता ॥ ३ ॥ अन्तरं प्रेप्सुना तेन हत्वा गृध्रं जटायुषम् । भार्यावियोगजं दुःखं प्रापितस्तेन रक्षसा ॥ ४ ॥ + भार्यावियोगजं दुःखं नचिरात्त्वं विमोक्ष्यसे । अहं तामानयिष्यामि नष्टां वेदश्रुतिमिव ॥५॥ + इदं तथ्यं मम वचस्त्वमवेहि च राघव । त्यज शोकं महाबाहो तां कान्तामानयामि ते ॥६॥ अनुमानात्तु जानामि मैथिली सा न संशयः । ह्रियमाणा मया दृष्टा रक्षसा रौद्रकर्मणा ॥७॥ क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम् । स्फुरन्ती रावणस्याङ्के पन्नगेन्द्रवधूर्यथा ॥ ८ ॥ आत्मना पञ्चमं मां हि दृष्ट्वा शैलतले स्थितम् । उत्तरीयं तया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च ॥ ९ ॥ तान्यस्माभिर्गृहीतानि निहितानि च राघव । आनयिष्याम्यहं तानि प्रत्यभिज्ञातुमर्हसि ॥ १० ॥ तमब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम् । आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलम्बसे ॥ ११ ॥ एवमुक्तस्तु सुग्रीवः शैलस्य गहनां गुहाम् । प्रविवेश ततः शीघ्रं राघवप्रियकाम्यया ॥ १२ ॥ उत्तरीयं गृहीत्वा तु स तान्याभरणानि च । इदं पश्येति रामाय दर्शयामास वानरः ॥ १३ ॥ ततो गृहीत्वा वासस्तु शुभान्याभरणानि च । अभवद्बाष्पसंरुद्धो नीहारेणेव चन्द्रमाः ॥ १४ ॥ सीतास्नेहप्रवृत्तेन स तु बाष्पेण दूषितः । हा प्रियेति रुदन्धैर्यमुत्सृज्य न्यपतत्क्षितौ ॥ १५ ॥ हृदि कृत्वा स बहुशस्तमलङ्कारमुत्तमम् । निशश्वास भृशं सर्पो बिलस्थ इव रोषितः ॥ १६ ॥ अविच्छिन्नाश्रुवेगस्तु सौमित्रिं प्रेक्ष्य पार्श्वतः। परिदेवयितुं दीनं रामः समुपचक्रमे ॥ १७ ॥ पश्य लक्ष्मण वैदेह्या

संत्यक्तं ह्रियमाणया । उत्तरीयमिदं भूमौ शरीराभूषणानि च ॥ १८॥+एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ॥ १९ ॥ + नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् । ततस्तु राघवो वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥२०॥ ब्रूहि सुग्रीव कं देशं ह्रियन्ती लक्षिता त्वया । रक्षसा रौद्ररूपेण मम प्राणप्रिया हृता ॥ २१ ॥ क्व वा वसति तद्रक्षो महद्व्यसनदं मम । यन्निमित्तमहं सर्वान्नाशयिष्यामि राक्षसान् ॥ २२ ॥

टीका—प्रसन्न हुआ सुग्रीव रघुनन्दन राम से फिर बोला, हे राम यह आपका सेवक मेरा मन्त्रिवर हनुमान् मुझे बतलाता है, कि जिस निमित्त आप निर्जन बन में आए हैं, और कि भाई लक्ष्मणके साथ बन में रहते आप की भार्या जनकपुत्री मैथिली आप से और बुद्धिमान् लक्ष्मण से अलग हुई रोती हुई छिद्र ढूंढते हुए उस राक्षस ने गृध्र जटायु को मारकर हरली है, उस राक्षस ने आपको भार्या के वियोगजन्य दुःख में डाला है ॥१-४॥ भार्या के वियोगज दुःख को आप जल्दी ही छोड़ देंगे, खोई हुई वेदश्रुति की तरह मैं उसे फिर लाऊंगा ॥५॥ हे राघव मेरे इस वचन को आप सत्य जानें, हे महाबाहो शोक को त्यागिये, मैं आप की उस कान्ता को लाऊंगा ॥ ६ ॥ मैं अनुमान से जानता हूं, कि वह मैथिली थी, इस में संशय नहीं, जो कि भयङ्कर कर्मवाले राक्षस से मैंने हरी जाती हुई देखी ॥७॥ राम राम लक्ष्मण इसप्रकार विस्वर पुकारती हुई रावण के पास नागनी की तरह तड़पती हुई ॥८॥ उसने मुझे चार बानरों के साथ पर्वततल पर स्थित देखकर अपना दुपट्टा तथा शुभ भूषण छोड़े है ॥ ९ ॥ वह हमने लेलिये हैं, और सम्भाले हुए हैं, हे राघव उनको मैं लाता हूं, आप उनको पहचानने योग्य हैं ॥ १० ॥ तब उस प्रियवादी सुग्रीव को राम बोले, सखे शीघ्र

लाओ, किस लिए विलम्ब करते हो ॥११॥ ऐसा कहा हुआ सुग्रीव राम का प्रिय करने की इच्छा से शीघ्र गहनगुफा में प्रविष्ट हुआ ॥१२॥ दुपट्टे को और उन भूषणों को लेकर यह देखिये यह कहकर राम को दिखलाता भया ॥ १३ ॥ तब उस वस्त्र और शुभ भूषणों को लेकर कुहर से चन्द्रमा की तरह वह आंसुओं से ढक गया॥१४॥ सीता के स्नेह से प्रवृत्त हुई आंसुओं से दूषित हुआ धैर्य को त्यागकर हा प्यारी इसप्रकार रोता हुआ पृथिवी पर गिर पड़ा ॥१५॥ वह उस उत्तम भूषण को बहुधा हृदय पर रख कर बिल में स्थित क्रुद्ध किये सर्प की तरह बार २ सांस लेता भया ॥१६॥ न टूटे आंसुओं के वेगवाला राम पास स्थित दीन हुए लक्ष्मण को रुलाने लगा ॥१७॥ देख हे लक्ष्मण हरी जाती हुई सीता ने यह दुपट्टा और यह भूषण भूमि पर फेंके हैं ॥ १८ ॥ राम से ऐसे कहा हुआ लक्ष्मण यह वाक्य बोला । न मैं बाहुबन्दों को जानता हूं, न कुण्डलों को जानता हूं ॥१९॥ हां प्रतिदिन चरणों पर नमस्कार के हेतु नूपरों को पहचानता हूं । तब राम सुग्रीव से यह वाक्य बोला ॥ २० ॥ कहो हे सुग्रीव उस भयङ्कर रूपवाले राक्षस से मेरी प्राणप्यारी किस देश को हरी जाती हुई देखी है ॥ २१ ॥ और कहां वह मुझे भारी विपद में डालने वाला राक्षस बसता है, जिसके निमित्त मैं राक्षसों को नष्ट करूंगा ॥२२॥

सर्ग ७ (व० ७) सुग्रीव कृत राम को धैर्य

मूल—एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणार्तेन वानरः। अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं सबाष्पं बाष्पगद्गदः॥१॥ सत्यं तु प्रतिजानामि त्यज शोकमरिंदम करिष्यामि तथा यत्नं यथा प्राप्स्यसि मैथिलीम् ॥ २ ॥ रावणं सगणं हत्वा परितोष्यात्मपौरुषम् । तथास्मि कर्ता न चिराद्यथा प्रीता भविष्यसि ॥ ३ ॥ अलं वैक्लव्यमालम्ब्य धैर्यमात्मगतं स्मर।

त्वाद्विधानां न सदृशमीदृशं बुद्धिलाघवम् ॥ ४ ॥ मयापि व्यसनं प्राप्तं भार्याविरहजं महत् । नाहमेवं हि शोचामि धैर्यं न च परित्यजे ॥ ५ ॥+ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम् । तेजश्च क्षयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि ॥६॥ शोकेनाभिप्रपन्नस्य जीविते चापि संशयः । स शोकं त्यज राजेन्द्र धैर्यमाश्रय केवलम् ॥ ७ ॥ हितं वयस्यभावेन ब्रूमि नोपदिशामि ते । वयस्यतां पूजयन्मे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ८ ॥ मधुरं सान्त्वितस्तेन सुग्रीवेण स राघवः । मुखमश्रुपरिक्लिन्नं वस्त्रान्तेन प्रमार्जयत् ॥ ९ ॥ प्रकृतिस्थस्तु काकुत्स्थः सुग्रीववचनात्प्रभुः । संपरिष्वज्य सुग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ॥१०॥+ कर्तव्यं यद्वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च । अनुरूपं च युक्तं च कृतं सुग्रीव तत्त्वया ॥ ११ ॥ एष च प्रकृतिस्थोऽहमनुनीतस्त्वया सखे । दुर्लभो हीदृशो बन्धुरस्मिन्काले विशेषतः ॥ १२ ॥ किं तु यत्नस्त्वया कार्यो मैथिल्याः परिमार्गणे । राक्षसस्य च रौद्रस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥ १३ ॥ मया च यदनुष्ठेयं विस्रब्धेन तदुच्यताम् । वर्षास्विव च सुक्षेत्रे सर्वं संपद्यते तव ॥१४॥ एवमेकान्तसंपृक्तौ ततस्तौ नरवानरौ । उभावन्योन्यसदृशं सुखं दुःखमभाषताम् ॥ १५ ॥

टीका—पीड़ित राम से ऐसे कहा हुआ सुग्रीव वानर आंसुओं से गद्गद हुआ हाथ जोड़कर आंसुओं सहित वाक्य बोला ॥ १ ॥ हे शत्रुओं के दमन करने वाले, मैं सच्ची प्रतिज्ञा करता हूं शोक को त्याग, वैसे यत्न करूंगा, कि आप मैथिली को प्राप्त होंगे ॥२॥ रावण को गणों सहित मारकर अपने पौरुष को पूरा दिखला कर जल्दी ऐसा करूंगा, जैसे आप प्रसन्न होंगे ॥ ३ ॥ घबराहट का आश्रय लेने से बस है, अपने अन्दर के धैर्य को स्मरण कर, तेरे जैसों को ऐसा बुद्धिलाघव उचित नहीं है ॥ ४ ॥ मैंने भी भार्या

के वियोग से बड़ी भारी विपत्ति उठाई है, मैं इसतरह शोक नहीं करता हूं, न धैर्य को त्यागता हूं ॥ ५ ॥ जो शोक में रहते हैं, उनको सुख नहीं होता है, उनका तेज क्षीण होता है, आप को शोक नहीं करना चाहिये ॥ ६ ॥ शोक से दबे हुए के तो जीवित में भी संशय होता है, सो हे राजेन्द्र आप शोक को त्यागें, और केवल धैर्य का आश्रय लें ॥ ७ ॥ मित्रभाव से मैं यह हित की बात कहता हूं, आप को उपदेश नहीं करता, मेरे मित्रभाव की पूजा करते हुए आप शोक को त्यागने योग्य हैं ॥ ८ ॥ सुग्रीव से इसप्रकार मधुर तसल्ली दिये हुए राघव ने आंसुओं से भीगे हुए मुख को अञ्चल से पोंछा ॥९॥ सुग्रीव के वचन से स्वस्थ हुआ राम सुग्रीव को आलिङ्गन करके यह वचन बोला ॥१०॥ स्निग्ध हितैषी मित्र का जो कर्त्तव्य है, वह हे सुग्रीव आपने उचित और अपने सदृश किया है ॥११॥ हे सखे यह आप से तसल्ली दिया मैं प्रकृतिस्थ हुआ हूं, ऐसा बन्धु सचमुच दुर्लभ है, विशेष करके ऐसे समय पर ॥ १२ ॥ किन्तु मैथिली के ढूंढने में और क्रूर दुरात्मा राक्षस रावण के मारने में आप को यत्न करना चाहिये ॥१३॥ मुझे जो कुछ करना है वह विश्वस्त होकर कहो, वर्षा में अच्छे क्षेत्र में (बोए बीज) की तरह तेरा सब सफल होगा ॥ १४ ॥ इसप्रकार एकान्त में मिलेहुए वह दोनों नर वानर एक दूसरे के तुल्य अपना २ दुःख कहते भए ॥ १५ ॥

सर्ग ८ (व० ८) सुग्रीव कृत अपना दुःख निवेदन

मूल—ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णया शुभया गिरा । उवाच प्रणयाद्रामं हर्षव्याकुलिताक्षरम् ॥ १ ॥ अहं विनिकृतो भ्रात्रा चराम्येष भयार्दितः । ऋष्यमूकं गिरिवरं हृतभार्यः सुदुःखितः॥२॥ वालिना मे भयार्तस्य सर्वलोकाभयंकर । ममापि त्वमनाथस्य प्रसादं

कर्तुमर्हसि ॥३॥ एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः । प्रत्युवाच स काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥ ४ ॥ उपकारफलं मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् । अद्यैव तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम्॥ ५ ॥ इमे हि मे महाभाग पत्रिणस्तिग्मतेजसः । कार्तिकेयवनोद्भूता शराः हेमविभूषिताः ॥ ६ ॥ वालिसंज्ञममित्रं ते भ्रातरं कृतकिल्बिषम् । शरैर्विनिहतं पश्य विकीर्णमिव पर्वतम् ॥ ७ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः । प्रहर्षमतुलं लेभे साधुसाध्विति चाब्रवीत् ८ त्वं हि पाणिप्रदानेन वयस्यो मेऽग्निसाक्षिकम् । वयस्य इति कृत्वा च विस्रब्धःप्रवदाम्यहम्॥९॥पुराहं वालिना राम राज्यात्स्वादवरोपितः॥ परुषाणि च संश्राव्य निर्धूतोऽस्मि बलीयसा ॥ १० ॥ हृता भार्या च मे तेन प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । सुहृदश्च मदीयाः ये संयता बन्धनेषु ते ॥ ११ ॥ यत्नवांश्च स दुष्टात्मा मद्विनाशाय राघव । बहुशस्तत्प्रयुक्ताश्च वानरा निहता मया ॥ १२ ॥ केवलं हि सहाया मे हनुमत्प्रमुखास्त्विमे । अतोऽहं धारयाम्यद्य प्राणान्कृच्छ्रगतोऽपि सन् ॥ १३ ॥ एते हि कपयः स्निग्धा मां रक्षन्ति समन्ततः । सह गच्छन्ति गन्तव्ये नित्यं तिष्ठन्ति चास्थिते ॥ १४ ॥ संक्षेपस्त्वेष मे राम किमुक्त्वा विस्तरं हि ते । स मे ज्येष्ठो रिपुर्भ्राता वाली विश्रुतपौरुषः ॥ १५ ॥+एष मे राम शोकान्तः शोकार्तेन निवेदितः दुःखितः सुखितो वापि सख्युर्नित्यं सखा गतिः ॥ १६ ॥

टीका—तब हर्षित हुआ सुग्रीव नर्म शुभ वाणी से हर्ष से व्याकुल अक्षरों सहित प्रेम से राम को कहने लगा ॥१॥ मैं भाई से अनादृत हो भय से पीड़ित हुआ हरी हुई भार्यावाला अतीव दुःखित हो इस पर्वतपर ऋष्यमूक में फिर रहा हूं ॥ २ ॥ हे सारे लोकों को अभय देनेवाले ! वालि के भय से पीड़ित हुए मुझ अनाथ पर आप कृपा करने योग्य हैं ॥ ३ ॥ ऐसे कहा हुआ तेजस्वी

धर्मज्ञ धर्मवत्सल राम हंसकर सुग्रीव से बोला ॥४॥ मित्र उपकार के फल से पहचाना जाता है और अपकार शत्रु का चिन्ह होता है। अभी तेरी स्त्री हरने वाले को मारूंगा ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! यह तीक्ष्ण तेज वाले, सोने से भूषित नोकों वाले, मेरे तीर कार्तिकेय वन में उत्पन्न हुए हैं ॥ ६ ॥ आप अब किये हुए अपराध वाले बाली नामी भाई रूप शत्रु को बिखरे हुए पर्वत की तरह तीरों से मरा हुआ देखें ॥ ७ ॥ राम के वचन को सुनकर सेनापति सुग्रीव अतुल हर्ष को प्राप्त हुआ और साधु २ कहने लगा ॥ ८ ॥ आप अग्नि के सामने (हाथ पर) हाथ देने से मेरे सखा हुए हैं, सखा जानकर मैं निःशङ्क यह कहता हूं ॥ ९ ॥ हे राम ! बालि ने पहले मुझे अपने राज्य से उतारा, और उस बलवान् ने कठोर वाक्य कहकर मेरा अनादर किया ॥ १० ॥ प्राणों से प्यारी मेरी पत्नी उसने हरली, और जो मेरे सुहृद् थे, उनको बन्धनों में डाल दिया ॥ ११ ॥ और हे राघव ! वह दुष्टात्मा अब मेरे विनाश के लिये यत्नवान् है अनेकवार उससे भेजे हुए वानर मैंने मारे हैं ॥ १२ ॥ मेरे साथी केवल यह हनुमान् आदि हैं, इसलिये आज इतने क्लेश में पड़ा हुआ भी मैं प्राणों को धारता हूं ॥ १३ ॥ यह स्नेही वानर सब ओर से मेरी रक्षा करते हैं, चलने पर साथ चलते हैं, और ठहरने पर सदा ठहर जाते हैं ॥ १४ ॥ यह मेरे वृत्तान्त का संक्षेप है, हे राम आपको विस्तार कहने से क्या, वह मेरा बड़ा भाई विख्यात पराक्रम वाला बाली मेरा शत्रु है ॥ १५ ॥ यह हे राम ! शोक से पीड़ित हुए मैंने अपने शोक का अन्त आप को निवेदन किया है, पुरुष दुःखी हो, वा सुखी हो मित्र का मित्र ही सदा सहारा होता है ॥ १६ ॥

सर्ग ९ (व० १०, ११) सुग्रीव की राम का बल देखने की इच्छा

मूल—एवमुक्तः स तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मसंहितम् । वचनं वक्तुमारेभे सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥ १ ॥ आत्मानुमानात्पश्यामि मग्नस्त्वं शोकसागरे । त्वामहं तारयिष्यामि बाढं प्राप्स्यामि पुष्कलम् ॥ २ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हर्षपौरुषवर्धनम् । सुग्रीवः परमप्रीतः सुमहद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३ ॥ वालिनः पौरुषं यत्तद्यच्च वीर्यं धृतिश्च या । तन्ममैकमनाः श्रुत्वा विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ ४ ॥ बहवः सारवन्तश्च वनेषु विविधा द्रुमाः । वालिना तरसा भग्ना बलं प्रथयतात्मनः ॥ ५ ॥ महिषो दुन्दुभिर्नाम कैलासशिखरप्रभः । बलं नागसहस्रस्य धारयामास वीर्यवान् ॥ ६ ॥ विषाणयोर्गृहीत्वा तं दुन्दुभिं गिरिसन्निभम् । आविध्य च तदा वाली विनदन्कपिकुञ्जरः ॥ ७ ॥ तं तु दुन्दुभिमुद्यम्य शरण्ये सम्प्रपातयत् । युद्धे प्राणहरे तस्मिन्निष्पिष्टो दुन्दुभिस्तदा ॥ ८ ॥ इमे च विपुलाः सालाः सप्तशाखावलम्बिनः । यत्रैकं घटते वाली निष्पत्रयितुमोजसा ॥ ९ ॥ एतदस्यासमं वीर्यं मया राम प्रकाशितम् । कथं तं वालिनं हन्तुं समरे शक्ष्यसे नृप ॥ १० ॥ तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं प्रहसँल्लक्ष्मणोऽब्रवीत् । कस्मिन्कर्मणि निर्वृत्ते श्रद्दध्या वालिनो वधम् ॥ ११ ॥ तमुवाचाथ सुग्रीवः सप्त सालानिमान्पुरा । एवमेकैकशो वाली विव्याधाथ स चासकृत् ॥ १२ ॥ रामो निर्दारयेदेषां बाणेनेकेन च द्रुमम् । वालिनं निहतं मन्ये दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम् ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वा तु सुग्रीवं रामो रक्तान्तलोचनः । ध्यात्वा मुहूर्तं काकुत्स्थं पुनरेव वचोऽब्रवीत् ॥ १४ ॥ उपालब्धं च मे श्लाघ्यं सन्मित्रं मित्रवत्सल । त्वामहं पुरुषव्याघ्र हिमवन्तमिवाश्रितः ॥ १५ ॥ किं तु तस्य बलज्ञोऽहं दुर्भ्रातुर्बलशालिनः । अप्रत्यक्षं तु मे वीर्यं समरे तव राघव ॥ १६ ॥ न खल्वहं त्वां तुलये नावमन्ये न भीषये । कर्मभिस्तस्य भी-

मैश्च कातर्यं जनितं मम ॥ १७ ॥+कामं राघव ते वाणी प्रमाणं धैर्यमाकृतिः । सूचयन्ति परं तेजो भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥ १८ ॥

टीका—ऐसे कहा हुआ वह तेजस्वी धर्मज्ञ मुस्कराकर सुग्रीव से यह वचन बोला ॥ १ ॥ अपने अनुमान से मैं देखता हूं, कि आप शोक के सागर में डूबे हुए हैं, मैं आपको तराऊंगा, आप निःसन्देह बड़े फल को प्राप्त होंगे ॥ २ ॥ हर्ष और पौरुष के वर्धक उसके इस वचन को सुनकर परम प्रसन्न हुआ, सुग्रीव यह बड़ा वाक्य बोला ॥ ३ ॥ वाली का जो बल वीर्य और धैर्य है, उसको मुझ से एकाग्रचित्त होकर सुनिये, और फिर जो करना हो कीजिये ॥ ४ ॥ बन में अनेक प्रकार के बहुत से दृढ़ वृक्ष वाली ने अपना बल दिखलाते हुए बल के साथ तोड़े हैं ॥ ५ ॥ दुन्दुभि नाम भैंसा जो कि कैलास के शिखर सदृश (महाकाय) था, जो अनेक हाथियोंका बलधारी था ॥ ६ ॥ पर्वततुल्य उस दुन्दुभि को सींगों से पकड़कर वानरश्रेष्ठ वाली गर्जा और उसे वींध दिया ॥ ७ ॥ उस दुन्दुभि को ऊंचा उठाकर उसने पृथिवी पर दे पटका, तब उस प्राणहर युद्ध में वह दुन्दुभि चूरा २ होगया ॥ ८ ॥ और यह सात बड़े २ साल जो लटकती हुई बड़ी २ शाखाओं वाले हैं, इन में से एक को वाली अपने बल से (कम्पाकर) पत्रहीन कर देता है ॥ ९ ॥ हे राम यह मैंने उसका असाधारण वीर्य प्रकाशित किया है, हे नृप कैसे आप उस वाली को युद्ध में मार सकेंगे ॥ १० ॥ ऐसा कहते हुए सुग्रीव को हंसता हुआ लक्ष्मण बोला, किस काम के पूरा कर देने में आपको वालि के वध का विश्वास होगा ११ तब सुग्रीव उससे बोला, कि वालि ने इसप्रकार सात साल वृक्षों को एक २ करके वींधा है, और उस ने यह काम कई वार किया है ॥ १२ ॥ सो राम यदि इनमें से एक बाण से एक वृक्ष को फोड़

दे, तो रामके विक्रम को देखकर मैं बालि को मरा समझूंगा॥१३॥ रक्त किनारे वाले नेत्रोंवाला सुग्रीव ऐसा कहकर तनिक सोचकर फिर काकुत्स्थ राम से यह वचन बोला ॥ १४ ॥ हे मित्रवत्सल मैंने श्लाघा के योग्य सन्मित्र को उपालम्भ दिया है, हे पुरुष-श्रेष्ठ ! मैं तो आपका आश्रय लिये हूं, जैसे कोई हिमालय का आश्रय ले ॥ १५ ॥ किन्तु उस बलशाली दुर्भ्राता के बल का जाननेवाला हूं, और हे राघव आपका संग्राम में बल मेरे अप्रत्यक्ष है ॥ १६ ॥ न मैं आपको तोलता हूं, न अपमान (गुस्ताखी) करता हूं, न डराता हूं, किन्तु उसके भयङ्कर कर्मों ने मेरी कायरता उत्पन्न करदी है ॥ १७ ॥ बेशक हे राम ! आपकी वाणी प्रमाण है, आपका धैर्य और आकृति भस्म मे ढके हुए अग्नि की तरह आप में परमतेज को जितलाते हैं ॥ १८ ॥

सर्ग १० (व० १२) प्रथम युद्ध में सुग्रीव की हार

मूल—एतच्च वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम् । प्रत्ययार्थं महातेजा रामो जग्राह कार्मुकम् ॥ १ ॥ स गृहीत्वा धनुर्घोरं शरमेकं च मानदः । सालमुद्दिश्य चिक्षेप पूरयन्स रवैर्दिशः ॥ २ ॥ स विसृष्टो बलवता बाणः स्वर्णपरिष्कृतः । भित्वा तालान्गिरिप्रस्थं सप्त भूमिं विवेश ह ॥ ३ ॥ तान्दृष्ट्वा सप्त निर्भिन्नान्सालान्वानरपुंगवः ।रामस्य शरवेगेन विस्मयं परमं गतः ॥ ४ ॥ इदं चोवाच धर्मज्ञं कर्मणा तेन हर्षितः । रामं सर्वास्त्रविदुषां श्रेष्ठं शूरमवस्थितम् ॥ ५ ॥ सेन्द्रानपि सुरान्सर्वांस्त्वं बाणैः पुरुषर्षभ । समर्थः समरे हन्तुं किं पुनर्वालिनं प्रभो ॥ ६ ॥ येन सप्त महातालां गिरिर्भूमिश्च दारिता । बाणेनैकेन काकुत्स्थ स्थाता ते को रणाग्रतः ॥ ७ ॥ अद्य मे विगतः शोकः प्रीतिरद्य परा मम । सुहृदं त्वां समासाद्य महेन्द्रवरुणोपमम्॥ ८ ॥ तमद्यैव प्रियार्थं मे वैरिणं भ्रातृरूपिणम् । वालिनं जहि काकुत्स्थ

मया बद्धोऽयमञ्जलिः ॥ ९ ॥ ततो रामः परिष्वज्य सुग्रीवं प्रियदर्शनम् । प्रत्युवाच महाप्राज्ञो लक्ष्मणानुगतं वचः ॥ १० ॥ अस्माद्गच्छाम किष्किन्धां क्षिप्रं गच्छ त्वमग्रतः । गत्वा चाह्वय सुग्रीव वालिनं भ्रातृगन्धिनम् ॥ ११ ॥ सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां वालिनः पुरीम् । वृक्षैरात्मानमावृत्य ह्यतिष्ठन्गहने वने ॥१२॥ सुग्रीवोऽप्यनदद्घोरं वालिनो ह्वानकारणात् । तं श्रुत्वा निनदं भ्रातुः क्रुद्धो वाली महाबलः ॥ १३ ॥ निष्पपात सुसंरब्धो भास्करोऽस्ततटादिव । ततः स तुमुलं युद्धं वालिसुग्रीवयोरभूत् ॥१४ तलैरशनिकल्पैश्च वज्रकल्पैश्च मुष्टिभिः । जघ्नतुः समरेऽन्योन्यं भ्रातरौ क्रोधमूर्छितौ ॥ १५ ॥ ततो रामो धनुष्पाणिस्तावुभौ समुदैक्षत । अन्योन्यसदृशौ वीरावुभौ देवाविवाश्विनौ ॥ १६ ॥ यन्नावगच्छत्सुग्रीवं वालिनं वापि राघवः । ततो न कृतवान्बुद्धिं मोक्तुमन्तकरं शरम् ॥ १७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे भग्नः सुग्रीवस्तेन वालिना । अपश्यन्राघवं नाथमृष्यमूकं प्रदुद्रुवे ॥ १८ ॥ राघवोऽपि सह भ्रात्रा सह चैव हनूमता । तदेव वनमागच्छत्सुग्रीवो यत्र वानरः ॥ १९ ॥ तं समीक्ष्यागतं रामं सुग्रीवः सहलक्ष्मणम् । ह्रीमान्दीनमुवाचेदं वसुधामवलोकयन् ॥ २० ॥ आह्वयस्वेति मामुक्त्वा दर्शयित्वा च विक्रमम् । वैरिणो घातयित्वा च किमिदानीं त्वया कृतम् ॥ २१ ॥ तामेव वेलां वक्तव्यं त्वया राघव तत्त्वतः । वालिनं न निहन्मीति ततो नाहमितो व्रजे ॥ २२ ॥

टीका—सुग्रीव के इस सुभाषित वचन को सुनकर महातेजस्वी राम ने उसके विश्वास के लिये धनुष को पकड़ा ॥ १ ॥ उस मानदाता ने भयङ्कर धनुष और एक बाण को लेकर उसकी ध्वनि से दिशाओं को पूर्ण करते हुए ने साल को लक्ष्य करके छोड़ा ॥ २ ॥ बलवान् से छोड़ा हुआ वह सुवर्ण भूषित बाण सातों तालों को और

पर्वत की चोटी को फोड़कर भूमि में जागड़ा ॥ ३ ॥ वह बानरश्रेष्ठ ! राम के बाण के वेग से उन सात ताड़ों को फोड़ा हुआ देखकर परम विस्मय को प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥ और उस कर्म से हर्षित हुआ अस्त्र जानने वालों में सब से श्रेष्ठ सामने खड़े हुए धर्मज्ञ शूर बीर राम से यह बोला ॥ ५ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! आप अपने बाणों से इन्द्र समेत सारे देवताओं को भी युद्ध में जीतने को समर्थ हैं क्या फिर बाली को ॥ ६ ॥ जिसने सात बड़े ताड़, पर्वत और भूमि एक बाण से फोड़ दी है, हे काकुत्स्थ ! आपके आगे रण में कौन खड़ा होसक्ता है ॥ ७ ॥ आज महेन्द्र और वरुण के तुल्य आप जैसे सुहृद् को पाकर मेरा शोक दूर होगया, आज मुझे परमप्रीति है ॥ ८ ॥ आज ही मेरी प्रीति के लिये उस भाई रूपी मेरे वैरी बालि को मारें, हे राम मैं यह हाथ बांधता हूं ॥ ९ ॥ तब महाप्राज्ञ राम प्रियदर्शन लक्ष्मण से अनुगत सुग्रीव को कण्ठ लगाकर यह वचन बोला ॥ १० ॥ यहां से किष्किन्धा को चलते हैं, आप आगे जाएं, और जाकर हे सुग्रीव ! उस खोटे भाई बाली को आह्वान(चैलंज)दें॥११॥तब वह सारे जल्दी बाली की किष्किन्धापुरी में जाकर घने बन में वृक्षों से अपने आपको ढांपकर ठहरे ॥ १२ ॥ सुग्रीव ने बाली के आह्वान के लिये ऊंचा सिंहनाद किया, उस नाद को सुनकर क्रुद्ध हुआ महाबली बाली ॥ १३ ॥ जोश में भरा हुआ अस्तागिरि के तट से सूर्य तुल्य बाहर निकला तब बाली और सुग्रीव का बड़ा तुमल युद्ध हुआ ॥ १४ ॥ क्रोध से मूर्छित दोनों भाई बिजली तुल्य तलियों से और फूलाद के तुल्य मुक्कियों से एक दूसरे को ताड़ते भए ॥ १५ ॥ तब राम ने हाथ में धनुष लिया,पर उन दोनों बीरों में से हरएक को अश्वि देवों की तरह एक दूसरे के सदृश देखा॥१६॥जब रामचन्द्र जी सुग्रीव वा बाली को

अलग करके नहीं जान सके, तब उन्होंने अन्तकारी बाण छोड़ने की बुद्धि नहीं की ॥ १७ ॥ इस अवसर पर बाली से भागा हुआ सुग्रीव राम को अपना रक्षक न देखता हुआ ऋष्यमूक को भागगया ॥ १८ ॥ राम भी भाई के साथ और हनुमान् के साथ उसी बन में आए जहां सुग्रीव वानर था ॥१९॥ लक्ष्मण समेत रामको आया देखकर सुग्रीव लज्जित हो नीचे देखता हुआ यह वचन बोला॥२०॥ आह्वान कर मुझे ऐसा कहकर फिर मुझे वैरी से मरवाकर आपने यह क्या किया ॥२१॥ उसी समय हे राघव मुझे आपने ठीक २ कह देना चाहिये था, कि मैं बाली को नहीं मारूंगा ॥ २२ ॥

सर्ग ११ (व० १२) सुग्रीव के गले में निशान बांधना

मूल—तस्य चैवं ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । करुणं दीनया वाचा राघवः पुनरब्रवीत् ॥ १ ॥ सुग्रीव श्रूयतां तात क्रोधश्च व्यपनीयताम् । कारणं येन बाणोऽयं स मया न विसर्जितः ॥ २ ॥ अलंकारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च । त्वं च सुग्रीव वाली च सदृशौ स्थः परस्परम् ॥ ३ ॥ स्वरेण वर्चसा चैव प्रेक्षितेन च वानर । विक्रमेण च वाक्यैश्च व्यक्तिं वां नोपलक्षये ॥ ४ ॥ ततोऽहं रूपसादृश्यान्मोहितो वानरोत्तम । नोत्सृजामि महावेगं शरं शत्रुनिबर्हणम् ॥ ५ ॥ जीवितान्तकरं घोरं सादृश्यात्तु विशङ्कितः । मूलघातो न नौ स्याद्धि द्वयोरिति कृतो मया ॥ ६ ॥ त्वयि वीर विपन्ने हि अज्ञानाल्लाघवान्मया । मौढ्यं च मम बाल्यं च ख्यातं स्यात्कपीश्वर ॥७॥+दत्ताभयवधो नाम पातकं महदद्भुतम् । अहं च लक्ष्मणश्चैव सीता च वरवर्णिनी ॥ ८ ॥ त्वदधीना वयं सर्वे वनेऽस्मिञ्शरणं भवान् । तस्माद्युध्यस्व भूयस्त्वं मा माशङ्कीश्च वानर ॥ ९ ॥ एतन्मुहूर्ते तु मया पश्य वालिनमाहवे । निरस्तामि-

पुणैकेनं चेष्टमानं महीतले ॥ १० ॥ अभिज्ञानं कुरुष्व त्वमात्मनो
वानरेश्वर । येन त्वामभिजानीयां द्वन्द्वयुद्धमुपागतम् ॥ ११ ॥
गजपुष्पीमिमां फुल्लामुत्पाट्य शुभलक्षणाम् । कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य
सुग्रीवस्य महात्मनः ॥ १२ ॥ ततो गिरितटे जातामुत्पाट्य
कुसुमायुताम् । लक्ष्मणो गजपुष्पीं तां तस्य कण्ठे व्यसर्जयत्
॥ १३ ॥ स तया शुशुभे श्रीमाँल्लतया कण्ठसक्तया । मालयेव
बलाकानां ससंध्य इव तोयदः ॥ १४ ॥ विभ्राजमानो वपुषा राम-
वाक्यसमाहितः । जगाम सह रामेण किष्किन्धां पुनराप्तः ॥ १५ ॥

टीका—महात्मा सुग्रीव के ऐसा कहते हुए दीन वाणी से राम दीन वचन बोले ॥१॥ तात सुग्रीव क्रोध को दूर कीजिये, और वह कारण सुनिये, जिससे मैंने बाण नहीं छोड़ा है ॥ २ ॥ अलङ्कार से वेष से, डील डौल से और चाल से हे सुग्रीव आप और बाली परस्पर तुल्य है ॥ ३ ॥ स्वर से, कान्ति से दृष्टि से, विक्रम से और वाक्यों से हे वानर तुम दोनों की व्यक्ति को नहीं जान सका ॥४॥ तब मैं रूप की तुल्यता से धोखे में आया, और तुल्यता से शङ्का वाले हुए मैंने शत्रुओं के उखाड़ने वाला बड़े वेगवाला जीवन का अन्त करने वाला भयङ्कर बाण नहीं छोड़ा, ऐसा न हो कि हम दोनों का मूलघात होजाए, इससे मैंने ऐसा किया ॥ ५,६ ॥ यदि हे वीर मैं अज्ञान से वा चञ्चलता से आपको मार डालता, तो हे वानरेश्वर मैं अपनी मूढ़ता और बालकपन दिखलाता ॥ ७ ॥ अभय दिये हुए को मारना बड़ा भारी पाप भी होता । किञ्च मैं, लक्ष्मण और सुन्दरी सीता ॥८॥ हम सब आपके अधीन हैं, इस वन में आप हमारे शरण हैं । इसलिये फिर युद्धकर, मत शङ्काकर, हे वानर ॥ ९ ॥ इस समय युद्ध में मुझसे एक बाण से गिराए हुए पृथिवीतल पर लोटते हुए वाली को देख ॥ १० ॥ हे नरेश्व

आप कोई चिन्ह लगाएं, जिससे द्वन्द्वयुद्ध में जुटे हुए आपको मैं जानलूं ॥११॥ हे लक्ष्मण ! शुभ लक्ष्मणों वाली फूली हुई इस गजपुष्पी को उखाड़कर महात्मा सुग्रीव के कण्ठ में बांध ॥ १२ ॥ तब पर्वत पर उगी उस गजपुष्पी को उखाड़कर लक्ष्मण ने उसके कण्ठ में बांध दिया ॥१३॥ वह श्रीमान् कण्ठ में लटकती हुई उस लता से बगलों की पंक्ति से सन्ध्या कालीन मेघ के तुल्य शोभायमान हुआ ॥१४॥ शरीर से प्रकाशता हुआ राम के वाक्य से सावधान हुआ वह राम के साथ फिर किष्किन्धा को गया ॥१५॥

सर्ग १२ (व० १३-१५) तारा का बाली को युद्ध से रोकना।

मूल—ऋष्यमूकात्स धर्मात्मा किष्किन्धां लक्ष्मणाग्रजः। जगाम सह सुग्रीवो वालिविक्रमपालिताम् ॥ १ ॥ अग्रतस्तु ययौ तस्य राघवस्य महात्मनः। सुग्रीवः संहतग्रीवो लक्ष्मणश्च महाबलः॥ २ ॥ पृष्ठतो हनुमान्वीरो नलो नीलश्च वीर्यवान् तारश्चैव महातेज हरियूथपयूथपः ॥३॥ सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां वालिनः पुरीम्। वृक्षैरात्मानमावृत्य व्यतिष्ठन्गहने वने ॥ ४ ॥ विसार्य सर्वतो दृष्टिं कानने काननप्रियः। सुग्रीवो विपुलग्रीवः क्रोधमाहारयन्भृशम् ॥५॥ ततस्तु निनदं घोरं कृत्वा युद्धाय चाह्वयत्। परिवारैः परिवृतो नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम् ॥ ६ ॥ अथ तस्य निनदं तं सुग्रीवस्य महात्मनः। शुश्रावान्तःपुरगतो वाली भ्रातुरमर्षणः ॥ ७ ॥ शब्दं दुर्मर्षणं श्रुत्वा निष्पपात ततो हरिः। वेगेन च पदन्यासैर्दारयन्निव मेदिनीम् ॥८॥ तं तु तारा परिष्वज्य स्नेहाद्दर्शितसौहृदा। उवाच त्रस्तसंभ्रान्ता हितोदर्कमिदं वचः ॥९॥ साधु क्रोधमिमं वीर नदीवेगमिवागतम्। शयानादुत्थितः काल्यं त्यज भुक्तामिव स्रजम् ॥ १० ॥ सहसा तव निष्कामो मम तावन्न रोचते। श्रूयतामभिधास्यामि यन्निमित्तं निवार्यते ॥११॥ पूर्वमापतितःक्रोधात्स त्वामा-

ह्यते युधि । निष्पत्त च निरस्तस्ते हन्यमानो दिशो गतः ॥ १२ ॥
त्वया तस्य निरस्तस्य पीडितस्य विशेषतः । इहैत्य पुनराह्वान शङ्कां
जनयतीव मे ॥ १३ ॥ दर्पश्च व्यवसायश्च यादृशस्तस्य नर्दतः ।
निनादस्य च संरम्भो नैतदल्पं हि कारणम् ॥ १४ ॥ नासहायमहं
मन्ये सुग्रीवं तमिहागतम् । अवष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति
॥ १५ ॥ पूर्वमेव मया वीर श्रुतं कथयतो वचः । अङ्गदस्य कुमारस्य
वक्ष्याम्यद्य हितं वचः ॥१६॥ अङ्गदस्तु कुमारोऽयं वनान्तमुप-
निर्गतः । प्रवृत्तिस्तेन कथिता चारैरासीन्निवेदिता ॥ १७ ॥ अयो-
ध्याधिपतेः पुत्रौ शूरौ समरदुर्जयौ । इक्ष्वाकूणां कुले जातौ प्रथितौ
रामलक्ष्मणौ ॥१८॥ सुग्रीवप्रियकामार्थं प्राप्तौ तत्र दुरासदौ । स
ते भ्रातुर्हि विख्यातः सहायो रणकर्मणि ॥ १९॥ रामः परबला-
मर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः । निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परा
गतिः ॥ २० ॥ आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैकभाजनम् । ज्ञानविज्ञान-
सम्पन्नो निदेशे निरतः पितुः ॥२१॥ तत्क्षमो न विरोधस्ते सह
तेन महात्मना । शूर वक्ष्यामि ते किञ्चिन्न चेच्छाम्यभ्यसूयितुम्
॥२२॥ श्रूयतां क्रियतां चैव तव वक्ष्यामि यद्धितम् । यौवराज्येन
सुग्रीवं तूर्णं साध्वभिषेचय ॥ २३ ॥ विग्रहं मा कृथा वीर भ्राता
राजन्यवीयसा । अहं हि ते क्षमं मन्ये तेन रामेण सौहृदम् ॥२४॥
दानमानादिसत्कारैः कुरुष्व प्रत्यनन्तरम् । वैरमेतत्समुत्सृज्य तव
पार्श्वे स तिष्ठतु ॥ २५ ॥ यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि चावैषि मां
हिताम् । याच्यमानः प्रियत्वेन साधु वाक्यं कुरुष्व मे ॥२६॥

टीका—ऋष्यमूकसे वह धर्मात्मा लक्ष्मणका बड़ा भाई सुग्रीवसहित
बाली के पराक्रम से पालित किष्किन्धा को गया ॥१॥ गठी हुई
ग्रीवावाला महाबली सुग्रीव उस महात्मा राम के और लक्ष्मण के
आगे २ गया ॥ २ ॥ और पीछे वीर हनुमान्, वीर्यवान् नल

और नील. और महातेजस्वी वानरों के यूथपतियों का यूथपति (मुख्य जरनैल) तार गया ॥ ३ ॥ वह सब जल्दी बाली की किष्किन्धापुरी में जाकर वृक्षों से अपने आपको ढांपकर गहन वन में ठहरे ॥ ४ ॥ और वन के प्यारे विशाल ग्रीवावाले सुग्रीव ने वन में सब ओर दृष्टि डाली, और बड़े क्रोध में आया ॥ ५ ॥ तब परिवार से घिरे हुए ने, अपने सिंहनादों से मानों आकाश को फोड़ते हुए ने, भयङ्कर ध्वनि करके युद्ध के लिये आह्वान दिया ॥ ६ ॥ तब महात्मा सुग्रीव की उस गर्ज को भाई के न सहारने वाले बाली ने अन्तःपुर में सुना ॥ ७ ॥ दुःसह शब्द को सुनकर तब वानर पाओं रखने से पृथिवी को मानों फोड़ता हुआ वेग से बाहर निकला ॥ ८ ॥ स्नेह से सौहार्द दिखलाती हुई तारा उसे कण्ठ लगाकर डरी हुई और घबराई हुई भला करनेवाला वचन बोली ॥ ९ ॥ हे वीर नदी के वेग की तरह आए इस क्रोध को, शयन से उठा हुआ प्रातःकाल भोगी हुई माला की तरह त्याग ॥ १० ॥ सहसा आपका बाहर निकलना मुझे पसन्द नहीं है, सुनिये कहती हूं,जिस कारण से आपको रोकती हूं ॥११॥ पहले वह क्रोध से आया, और आपको युद्ध में आह्वान दिया, तब आपने निकलकर उसे हराया और ताड़ना किया, तब वह भाग गया ॥ १२ ॥ जब आप ने उसे हरा दिया, और बहुत तंग किया, तब फिर उसका यहां आकर आह्वान देना मुझे शङ्का उत्पन्न करता है ॥ १३ ॥ उस गर्जते हुए का जैसा अभिमान, और व्यवसाय है, और जैसा उसके नाद का जोश है, यह कोई छोटा सा कारण नहीं है ॥ १४ ॥ मैं उस सुग्रीव को यहां विना साथी के आया नहीं समझती हूं, उसको साथी मिला है, जिसके सहारे पर वह गर्जता है ॥ १५ ॥ पूर्व ही मैंने हे वीर कुमार अङ्गद के कहने से

यह वचन सुना है, उस हितकारी वचन को आज कहती हूं॥१६॥ कुमार अङ्गद वन के अन्दर गया था, उसको वन में घूमने वालों ने यह समाचार बतलाया और उसने मुझे कहा॥१७॥ अयोध्याधिपति के दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण इक्ष्वाकुकुल के बचे शूर वीर युद्ध में दुर्जय वन को प्रस्थित हुए ॥ १८ ॥ वह दुष्प्राप सुग्रीव की प्रिय कामना के लिये प्राप्त हुए हैं।(उनमें से)वह विख्यात रणकर्म में तेरे भाई का साथी है॥ १९ ॥ जो प्रलय की अग्नि की तरह उठा हुआ शत्रुओं की सेना का नाशक है,भलों का निवासवृक्ष है आपद्ग्रस्तों का परम गति है ॥ २० ॥ पीड़ितों का आश्रय है, यश का एक पात्र है, ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न है, पिता की आज्ञा में रता हुआ है ॥ २१ ॥ सो उस महात्मा के साथ आपको विरोध उचित नहीं, हे शूर मैं कुछ कहना चाहती हूं, असूया नहीं चाहती हूं ॥ २२ ॥ सुनिये, और कीजिये जो मैं आपका हित बतलाती हूं, जल्दी सुग्रीव को यौवराज्य में तिलक दें ॥ २३ ॥ हे राजन् अपने छोटे भाई के साथ विग्रह मतकर, मैं उसके बराबर पृथिवी में तेरा कोई बन्धु नहीं जानती हूं ॥२४॥ दान मानादि सत्कारों से उसको अपने अधीन बना, जिससे कि वह इस वैर को छोड़कर तेरे पास ठहरे॥२५॥ यदि आपको मेरा प्रिय करना है, और यदि आप मुझे हितैषिणी जानते हैं तो इस प्रेम से याचना किये हुए आप मेरे वचन को स्वीकार करें ॥ २६ ॥

सर्ग १३ (व० १६) युद्ध और वाली का बध।

मूल—तामेवं ब्रुवतीं तारां ताराधिपनिभाननाम् । वाली निर्भत्सयामास वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ गर्जतोऽस्य सुसंरब्धं भ्रातुः शत्रोर्विशेषतः । मर्षयिष्यामि केनापि कारणेन वरानने ॥ २ ॥ + अधर्षितानां शूराणां समरेष्वानिवर्तिनाम् । धर्षणामर्षणं भीरु मर-

णाद्विरिच्यते ॥ ३ ॥ सोढुं न च समर्थोऽहं युद्धकामस्य संयुगे । सुग्रीवस्य च संरम्भं हीनग्रीवस्य गर्जितम् ॥ ४ ॥ न च कार्यो विषादस्ते राघवं प्रति मत्कृते । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति ॥ ५ ॥ निवर्तस्व सह स्त्रीभिः कथं भूयोऽनुगच्छसि । सौहृदं दर्शितं तावन्मयि भक्तिस्त्वया कृता ॥ ६ ॥ प्रतियोत्स्याम्यहं गत्वा सुग्रीवं जहि संभ्रमम् । दर्पं चास्य विनेष्यामि न च प्राणैर्वियोक्ष्यते ॥ ७ ॥ शापितासि मम प्राणैर्निवर्तस्व जनेन च । अहं जित्वा निवर्तिष्ये तमहं भ्रातरं रणे ॥८॥ तं तु तारा परिष्वज्य वालिनं प्रियवादिनी । चकार रुदती मन्दं दक्षिणा सा प्रदक्षिणम् ॥९॥+ ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद्विजयैषिणी । अन्तःपुरं सह स्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमोहिता ॥ १० ॥ प्रविष्टायां तु तारायां सह स्त्रीभिः स्वमालयम् । नगर्या निर्ययौ क्रुद्धो महासर्प इव श्वसन् ॥ ११ ॥ स ददर्श ततः श्रीमान्सुग्रीवं हेमपिङ्गलम् । सुसंवीतमवष्टब्धं दीप्यमानमिवानलम् ॥ १२ ॥ स वाली गाढसंवीतो मुष्टिमुद्यम्य वीर्यवान् । सुग्रीवमेवाभिमुखो ययौ योद्धुं कृतक्षणः ॥ १३ ॥ श्लिष्टं मुष्टिं समुद्यम्य संरब्धतरमागतः । सुग्रीवोऽपि समुद्दिश्य वालिनं हेममालिनम्॥१४॥ मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिर्बाहुभिश्च पुनः पुनः । तयोर्युद्धमभूद्घोरं वृत्रवासवयोरिव॥ १५ ॥ तौ शोणिताक्तौ युध्येतां वानरौ वनचारिणौ॥ मेघाविव महाशब्दैस्तर्जमानौ परस्परम् ॥ १६ ॥ हीयमानमथापश्यत्सुग्रीवं वानरेश्वरम् । प्रेक्षमाणं दिशश्चैव राघवः स मुहुर्मुहुः ॥१७॥ ततो धनुषि संधाय शरमाशीविषोपमम् । पूरयामास तच्चापं कालचक्रमिवान्तकः ॥ १८ ॥ मुक्तस्तु वज्रनिर्घोषः प्रदीप्ताशनिसन्निभः । राघवेण महाबाणो वालिवक्षसि पातितः ॥ १९ ॥ ततस्तेन महातेजा वीर्ययुक्तः कपीश्वरः । वेगेनाभिहतो वाली निपपात महीतले ॥ २० ॥ इन्द्रध्वज इवोद्धूतः पौर्णमास्यां महीतले । आ-

श्वयुक्समये मासि गतसत्त्वो विचेतनः ॥ २१ ॥ भूमौ निपातित-
स्यापि तस्य देहं महात्मनः । न श्रीर्जहाति न प्राणा न तेजो न
पराक्रमः ॥ २२ ॥

टीका—इसप्रकार कहती हुई उस चन्द्रमुखी तारा को बाली ने झिड़क दिया और यह वचन कहा ॥ १ ॥ जोश से गर्जते हुए विशेषतः भाई होकर शत्रु को हे सुन्दरमुखि ! मैं किस कारण सहारूं ॥ २ ॥ युद्ध में न लौटनेवाले शूरवीर जो किसी से दबे न हों उनके लिये दवाव को सहना मरने से बढ़कर होता है ॥ ३ ॥ युद्ध की कामना वाले हीन हुई ग्रीवा वाले सुग्रीव का युद्ध के लिये जोश और गर्जन मैं नहीं सहार सक्ता हूं ॥ ४ ॥ और राम के हेतु मेरे लिये तुझे विषाद नहीं करना चाहिये, वह धर्मज्ञ कृतज्ञ कैसे पाप करेगा ॥ ५ ॥ स्त्रियों के साथ लौट जा, कैसे आगे २ चलती है, तूने सौहार्द दिखला दिया, और मुझ में भक्ति पूरी की है ॥ ६ ॥ मैं जाकर सुग्रीव के साथ युद्ध करूंगा, घबराहट को त्याग, मैं इसका अभिमान तोडूंगा, प्राणों से वियुक्त नहीं होगा ॥ ७ ॥ मेरे प्राणों की तुझे शपथ है, अपने जनों के साथ लौटजा, मैं उस भाई को रण में जीतनामात्र करके लौट आऊंगा ॥ ८ ॥ तब प्रिय बोलने वाली तारा बाली को आलिङ्गन करके मन्द २ रोती हुई उसकी प्रदक्षिणा करती भई ॥ ९ ॥ फिर विजय चाहती हुई वह मन्त्र के जानने वाली स्वस्तिवाचन करके शोक से मोहित हुई स्त्रियों के साथ अन्तःपुर में प्रविष्ट हुई ॥ १० ॥ तारा के स्त्रियों के सहित अपने घर में प्रविष्ट होने पर बाली क्रोध से भरा हुआ, नाग की तरह सांस लेता हुआ नगरी से निकला ॥ ११ ॥ उस श्रीमान् ने सुवर्ण की तरह पीत वर्ण, कमर बांधकर दृढ़ खड़े हुए, अग्नि की तरह दीप्य-

मान सुग्रीव को देखा ॥ १२ ॥ वह वीर्यवान् वाली दृढ़ कमर कसकर और मुक्का उठाकर युद्ध के लिये उत्साहित हुआ सुग्रीव के अभिमुख गया ॥ १३ ॥ सुग्रीव भी सुवर्ण की माला वाले वाली को लक्ष्य में करके दृढ़ मुक्का उठाकर अधिक क्रोध में आया ॥ १४ ॥ मुक्कों से, गोड़ों से, पाओं से और भुजाओं से बार २ उन दोनों का इन्द्र और वृत्र की तरह घोर युद्ध हुआ ॥ १५ ॥ वह रुधिर से लिबड़े हुए दोनों बनचारी वानर मेघ की तरह बड़ी गर्जों से एक दूसरे को झिड़कते हुए, युद्ध करते भए ॥ १६ ॥ अब राघव ने वानरेश्वर सुग्रीव को घटा हुआ और बार २ दिशाओं में दृष्टि डालता हुआ देखा ॥१७॥ तब उसने कालचक्र को, काल की तरह विषैले सांप जैसे बाण को, धनुष में जोड़कर पूर्ण किया ॥ १८ ॥ बिजली की सी कड़कवाला, बिजली के तुल्य चमकता हुआ, वह महाबाण वाली की छाती में जा गड़ा ॥ १९ ॥ तब उस (बाण) से वेग से ताड़ना किया हुआ महातेजस्वी, वीर्यशाली, वानरेश्वर, वाली भूमि पर गिर पड़ा ॥ २० ॥ अस्रूज की पौर्णमासी को इन्द्रध्वज की तरह विचेतन हो महीतल पर गिरा ॥ २१ ॥ भूमि पर गिरे हुए भी उस महात्मा के देह को न शोभा त्यागती है, न प्राण, न तेज, न पराक्रम ॥ २२ ॥

सर्ग १५ (व० १७) वाली के राम पर आक्षेप

मूल—तं तथा पतितं वीरं गतार्चिषमिवानलम्। बहु मान्य च तं वीरं वीक्षमाणं शनैरिव ॥१॥उपयातौ महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ २ ॥ तं दृष्ट्वा राघवं वाली लक्ष्मणं च महाबलम्। अब्रवीत्परुषं वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् ॥ ३ ॥ पराङ्मुखवधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वया गुणः। यदहं युद्धसंरब्धस्त्वत्कृते निधनं गतः॥ १४ ॥ कुलीनः सत्वसम्पन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः।रामः करुणवेदी च प्रजानां

च हिते रतः ॥ ५ ॥ सानुक्रोशो महोत्साहः समयज्ञो दृढव्रतः ।
इत्येतत्सर्वभूतानि कथयन्ति यशो भुवि ॥ ६ ॥ तान्गुणान्संप्रधार्या-
हमग्र्यं चाभिजनं तव । तारया प्रतिषिद्धः सन्सुग्रीवेण समागतः
॥ ७ ॥ न मामन्येन संरब्धं प्रमत्तं वेद्धुमर्हसि । इति मे बुद्धिरुत्पन्ना
बभूवादर्शने तव ॥ ८ ॥ स त्वां विनिहतात्मानं धर्मध्वजमधार्मिकम्।
जाने पापसमाचारं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥ ९ ॥ सतां वेषधरं पापं
प्रच्छन्नमिव पावकम् । नाहं त्वामभिजानामि धर्मच्छद्माभिसंवृतम्
॥ १० ॥ विषये वा पुरे वा ते यदा पापं करोम्यहम् । न च त्वाम-
वजानेऽहं कस्मात्त्वं हंस्यकिल्बिषम् ॥ ११ ॥ त्वं राघवकुले जातो
धर्मवानिति विश्रुतः । अभव्यो भव्यरूपेण किमर्थं परिधावसे॥१२॥
साम दानं क्षमा धर्मः सत्यं धृतिपराक्रमौ । पार्थिवानां गुणा राजन्
दण्डश्चाप्यपकारिषु ॥ १३ ॥ हत्वा बाणेन काकुत्स्थ मामिहानप-
राधिनम् । किं वक्ष्यसि सतां मध्ये कर्म कृत्वा जुगुप्सितम् ॥ १४ ॥
त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुन्धरा । प्रमदा शीलसम्पूर्णा
पत्येव च विधर्मणा ॥ १५ ॥ उदासीनेषु योऽस्मासु विक्रमोऽयं
प्रकाशितः । अपकारिषु ते राम नैव पश्यामि विक्रमम् ॥ १६ ॥
दृश्यमानस्तु युध्येथा मया युधि नृपात्मज । अद्य वैवस्वतं देवं
पश्येस्त्वं निहतो मया ॥ १७ ॥ युक्तं यत्प्राप्नुयाद्राज्यं सुग्रीवः स्व-
र्गते मयि । अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाहं निहतो रणे ॥ १८ ॥ इत्येव-
मुक्त्वा परिशुष्कवक्त्रः शराभिघातादृव्यथितो महात्मा। समीक्ष्य रामं
रविसंनिकाशं तूष्णीं बभौ वानरराजसूनुः ॥ १९ ॥

टीका—दूर हुई ज्वालावाले अग्नि के तुल्य इसप्रकार गिरे हुए धैर्य
से देखते हुए उस वीर का बहुत मान करके ॥ १ ॥ बड़े वीर्यवाले
दोनों भाई राम लक्ष्मण पास गये ॥ २ ॥ बाली उस राघव को
और महाबली लक्ष्मण को देखकर कठोर पर धैर्ययुक्त विनय से

वाक्य बोला। सामने न लड़ते हुए को मारकर कौन गुण लाभ किया है, जो युद्ध में जुटा हुआ मैं तेरे अर्ध मृत्यु को प्राप्त हुआ॥ ४ ॥ कुलीन, धैर्ययुक्त, तेजस्वी, ब्रह्मचर्य को पूर्ण किया हुआ, दयाभाव को जाननेवाला, और प्रजाओं के हित में रत ॥ ५ ॥ दयावान, बड़ा उत्साही, समय का जाननेवाला, दृढ़व्रती इसप्रकार सब लोग पृथिवी में आपका यश कहते हैं ॥ ६ ॥ आपके इन गुणों का और श्रेष्ठवंश का निश्चय करके तारा से रोका हुआ भी मैं सुग्रीव से आजुटा ॥ ७ ॥ आप मुझे दूसरे से जुटे हुए असावधान हुए को नहीं बींधेंगे, यह मेरी आपके दर्शन से पहली बुद्धि थी ॥ ८ ॥ वही मैं अब आपको नष्ट हुए आत्मावाला, धर्मध्वजी, अधार्मिक पाप आचारवाला, तिनकों से ढके हुए कुँएं की तरह जानता हूं॥९॥ मुनियों का भेष बनाए हुए, पापी, ढके हुए अग्नि की तरह, धर्म की आड़ से ढका हुआ मैं तुझे नहीं जानता था ॥ १० ॥ आपके देश में वा पुर में जब मैं कोई पाप नहीं करता हूं, न आपकी अवज्ञा करता हूं, तो कैसे आप मुझ निरपराध को मारते हैं ॥ ११ ॥ राघवकुल में उत्पन्न हुए धर्मवान्, जगत् में ऐसे विख्यात, वस्तुतः अविनीत आप विनीत वेष से कैसे फिर रहे हैं ॥१२॥ साम, दान, क्षमा, धर्म, सचाई, धैर्य और पराक्रम हे राजन् ! राजाओं के यह गुण होते हैं, और अपकारियों में दण्ड ॥ १३ ॥ हे काकुत्स्थ! मुझे यहां निरपराध को बाण से मारकर यह निन्दित कर्म करके भलों के मध्य में क्या कहेगा ॥ १४ ॥ हे काकुत्स्थ तुझ नाथ से पृथिवी सनाथ नहीं, जैसे शीलवती स्त्री विधर्मी पति से ॥ १५ ॥ हम उदासीनों में जो आपने विक्रम प्रकट किया है, हे राम अपकारियों (स्त्री हरनेवालों) में आपका ऐसा विक्रम नहीं देखता हूं ॥ १६ ॥ हे राजपुत्र! युद्ध में यदि सामने होकर तू मेरे साथ लड़ता, तो आज[*] मुझसे मारा हुआ

तू यमदेव को देखता ॥ १७ ॥ मेरे स्वर्ग जाने पर सुग्रीव राज्य को प्राप्त हो यह युक्त है, पर जो आपने मुझे अधर्म से मारा है, यह अयुक्त है ॥ १८ ॥ यह कहकर बाण की पीड़ा से पीड़ित सूखे हुए मुखवाला वानरराज का पुत्र सूर्यतुल्य राम को देखकर चुप होगया ॥ १९ ॥

सर्ग १८ (व० १८) राम का बाली को उत्तर

मूल—धर्मार्थ गुण सम्पन्नं हरीश्वर मनुत्तमम् । अधिक्षिप्तस्तदा रामः पश्चाद्वालिनम ब्रवीत् ॥ १ ॥ धर्ममर्थं च कामं च समयं चापि लौकिकम् । अविज्ञाय कथं बाल्यान्मामिहाद्य विगर्हसे ॥ २ ॥ इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना । मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि ॥ ३ ॥ तां पालयति धर्मात्मा भरतः सत्यवानृजुः । धर्मकामार्थतत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहे रतः ॥ ४ ॥ नयश्च विनयश्चोभौ यस्मिन्सत्यं च सुस्थितम् । विक्रमश्च यथा दृष्टः स राजा देशकालवित्॥५॥+तस्य धर्मकृतादेशा वयमन्ये च पार्थिवाः । चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसन्तानमिच्छवः ॥ ६ ॥ + तस्मिन्नृपतिशार्दूले भरते धर्मवत्सले । पालयत्यखिलां पृथ्वीं कश्चरेद्धर्मविप्रियम् ॥७॥ +ते वयं मार्गविभ्रष्टं स्वधर्मे परमे स्थिताः।भरताज्ञां पुरस्कृत्य चिन्तयामो यथाविधि॥८॥+त्वं तु संक्लिष्टधर्मश्च कर्मणा च विगर्हितः । कामतन्त्रप्रधानश्च न स्थितो राजवर्त्मनि ॥ ९ ॥+ ज्येष्ठो भ्राता पिता वापि यश्च विद्यां प्रयच्छति । त्रयस्ते पितरो ज्ञेया धर्मे च पथि वर्तिनः॥१०॥+यवीयानात्मनः पुत्रः शिष्यश्चापि गुणोदितः । पुत्रवत्ते त्रयश्चिन्त्या धर्मश्चैवात्र कारणम् ॥ ११ ॥+ तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः । भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥ १२ ॥ अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः । रुमायां वर्तसे कामात्स्नुषायां पापकर्मकृत् ॥१३॥ + तद्व्यतीतस्य ते धर्मा-

त्कामवृत्तस्य वानर। भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन्दण्डोऽयं प्रतियादितः ॥ १४ ॥ नहि लोकविरुद्धस्य लोकवृत्तादपेयुषः। दण्डादन्यत्र पश्यामि निग्रहं हरियूथप ॥ १५ ॥ न च ते मर्षये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्गतः ॥१६॥ औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः। प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधः स्मृतः ॥१७॥ भरतस्तु महीपालो वयं त्वादेशवर्तिनः। त्वं च धर्मादतिक्रान्तः कथं शक्यमुपेक्षितुम् ॥१८॥ श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ। गृहीतौ धर्मकुशलैस्तथा तच्चरितं मया ॥ १९ ॥

टीका—कठोर कहा हुआ राम उस उत्तम वानरेश्वर बाली से धर्म अर्थ से युक्त वाक्य कहने लगा ॥१॥ धर्म, अर्थ, काम और लोकाचार को न जानकर कैसे बालकपन से तू मुझे कठोर कहता है ॥२॥ पर्वत, वन, जङ्गलों समेत यह सारी भूमि इक्ष्वाकुओं की है, पशु, पक्षि और मनुष्यों के निग्रह अनुग्रह में भी (उन्हीं को अधिकार है) ॥३॥ उसको धर्मात्मा भरत पालन कर रहा है, जो सत्यवान्, सरल, धर्म, अर्थ, काम का तत्त्व जानने वाला (दुष्टों के निग्रह और शिष्टों के अनुग्रह में रत है) ॥ ४ ॥ जिस में न्याय और विनय दोनों स्थित हैं, और सत्य स्थित है, और विक्रम देखा गया है, देशकाल के जाननेवाला, वह भरत इस समय राजा है ॥ ५ ॥ उसकी धर्मकृत आज्ञा पाए हुए हम और दूसरे राजा धर्म वृद्धि चाहते हुए सारी पृथिवी पर घूम रहे हैं ॥ ६ ॥ उस राजश्रेष्ठ धर्मवत्सल भरत के सारी पृथिवी को पालन करते हुए कौन धर्म नाश कर सक्ता है ॥ ७ ॥ सो हम परमधर्म (दुष्टों के निग्रह) में स्थित हुए भरत की आज्ञा का आदर कर मार्ग से गिरे हुए को यथाविधि निग्रह करते हैं ॥ ८ ॥ तू (लोक में) अपने कर्म से निन्दित, धर्म को पीड़ित किये हुए, कामवृत्ति को

मुख्य किये हुए राजमार्ग पर स्थित नहीं है ॥ ९ ॥ बड़ा भाई, पिता और जो विद्या देता है, यह तीनों पिता मानने चाहियें यदि धर्ममार्ग में स्थित हैं ॥ १० ॥ और छोटा भाई अपना पुत्र और गुणी शिष्य, यह तीनों पुत्रवत् समझने चाहियें, इसमें धर्म कारण है ॥११॥ सो यह कारण देख, जिससे मैंने तुझे मारा है तू सनातन धर्म को त्यागकर भाई की स्त्री में वर्तता है ॥१२॥ तू इस महात्मा सुग्रीव के जीते हुए कामवश हो *स्नुषातुल्य रुमा में वर्तता है, इसलिए तू पाप कर्मकारी है ॥१३॥ सो धर्म से फिसले हुए, इच्छाचारी हुए तुझको भाई की स्त्री की धर्षणा में यह दण्ड दिया है ॥ १४ ॥ हे वानरों के यूथपति मैं लोकमर्यादा से गिरे हुए लोक के विरुद्ध चलते हुए का दण्ड के सिवाय और निग्रह नहीं देखता हूं ॥ १५ ॥ मैं तेरे पाप को नहीं सहार सका मैं कुलीन क्षत्रिय हूं ॥ १६ ॥ जो अपनी सगी बहिन वा छोटे भाई की भार्या में कामवृत्ति हो, उसके लिये वध दण्ड स्मृति में

---

*"जीते हुए" कहने से मरने के पीछे पुनर्विवाह सिद्ध है जैसे कि सुग्रीव का तारा से हुआ। इस श्लोक की टीका रामायण तिलक में इसी बात को स्पष्ट किया है। और उसके यह शब्द कि-"त्रैवर्णिकेष्वपि देवरस्य मृतभ्रातुःस्त्रियामपुत्रायां प्रवृत्तिदर्शनात्" ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों में भी यह देखा जाता है, कि मृत भाई की स्त्री अपुत्रा हो, तो उसमें देवर की प्रवृत्ति होती है" प्रकट करते हैं, कि इस टीका के समय द्विजातियों में नियोग और शूद्रों में पुनर्विवाह होता था। जैसा कि इस के आगे कहा है। "अनेन त्रैवर्णिकेतरस्त्रीणां मृतभर्तृकाणां तरुणीनां स्वजातीयपुरुषाङ्गीकारो नाधर्मइति सूचितम्" इससे यह सूचित किया है, कि द्विजातियों से भिन्न स्त्रियें जिनका पति मर चुका हो उन युवतियों को अपनी जाति के पुरुष का अंगीकार अधर्म नहीं है।

कहा है ॥ १७ ॥ पृथिवी का अधिपति भरत है, हम आज्ञा में वर्तने वाले हैं, और तू धर्म को उलांघे हुए है, कैसे उपेक्षा की जाए ॥१८॥ चरित्र के प्यारे दो श्लोक मनु से गाए हुए और धर्म कुशलों से ग्रहण किये हुए सुने जाते हैं, उनके अनुसार मैंने आचरण किया है ॥१९ ॥ (मनु० ८ । ३१८, ३१६)

मूल—राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः । निर्मला स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥२०॥ शासनाद्वापि मोक्षाद्वास्तेनः पापात्प्रमुच्यते । राजा त्वशासन्पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम् ॥२१॥+आर्येण मम मांधात्रा व्यसनं घोरमीप्सितम् । श्रमणेन कृते पापे यथा पापं कृतं त्वया ॥ २२ ॥ तदलं परितापेन धर्मतः परिकल्पितः । वधो वानरशार्दूल न वयं स्ववशे स्थिताः ॥ १ ॥ दुर्लभस्य च धर्मस्य जीवितस्य शुभस्य च । राजानो वानरश्रेष्ठ प्रदातारो न संशयः ॥ २४ ॥ तान्न हिंस्यान्न चाक्रोशेन्नाक्षिपेन्नाप्रियं वदेत् । देवा मानुषरूपेण चरन्त्येते महीतले ॥ २५ ॥ त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं रोषमास्थितः । विदूषयसि मां धर्मे पितृपैतामहे स्थितम् ॥ २६ ॥

टीका—पाप करने के पीछे राजाओं से दण्ड दिये हुए पुरुष पाप रहित हो, पुण्यात्मा भले पुरुषों की तरह स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ (मैंने अमुक पाप किया है, मुझे दण्ड दीजिये, यह कहते हुए अपने पास आए पापी को) दण्ड देने से, वा (दया करके) छोड़ देने से (दोनों तरह चोर वा कोई और पापी) पाप से छूट जाता है, पर राजा पाप को न रोकता हुआ उस पाप को प्राप्त होता है (इसलिये तुझे दण्ड देना हमारे लिये आवश्यक था, यह ध्वनि है) ॥२१॥ मेरे पूर्वज मान्धाता ने एक संन्यासी को पाप करने पर भयङ्कर दण्ड दिया था जैसे तूने पाप किया है ॥२२॥ सो

सन्ताप मत कर हे वानरश्रेष्ठ यह तेरा वध धर्म से किया गया है, हम अपने वश में स्थित नहीं हैं (किन्तु धर्म की आज्ञा में स्थित हैं) ॥ २३ ॥ (धर्मानुसारी) राजा प्रजा को दुर्लभ धर्म के और शुभ जीवन के देने वाले होते हैं, सन्देह नहीं ॥ २४ ॥ (इसलिए) उनसे न द्रोह करे, न निन्दा करे, न अपमान करे, न अप्रिय बोले, यह राजा लोग मानुषरूप से पृथिवी पर देवता घूम रहे हैं ॥२५॥ तू तो धर्म को न जानकर केवल क्रोध में स्थित हुआ पिता पितामह के धर्म में स्थित मुझ को दोष लगाता है ॥ २६ ॥

सर्ग १६ (व०१८) अंगद के विषय में राम का वाली को तसल्ली देना

मूल—एवमुक्तस्तु रामेण वाली प्रव्यथितो भृशम् । न दोषं राघवे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः ॥ १ ॥ प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलि-र्वानरेश्वरः । यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तत्तथैव न संशयः ॥ २ ॥ यदयुक्तं मया पूर्वं प्रमादाद्वाक्यमप्रियम् । तत्रापि खलु मां दोषं कर्तुं नार्हसि राघव ॥ ३ ॥ बाष्पसंरुद्धकण्ठस्तु वाली सार्तरवः शनैः । उवाच रामं संप्रेक्ष्य पङ्कलग्न इव द्विपः ॥ ४ ॥ न चात्मानमहं शोचे न तारां नापि बान्धवान् । यथा पुत्रं गुणज्येष्ठमङ्गदं कनकाङ्गदम् ॥ ५ ॥ स ममादर्शनाद्दीनो बाल्यात्प्रभृति लालितः । तटाक इव पीताम्बुरुपशोषं गमिष्यति ॥ ६ ॥ बालश्चाकृतबुद्धिश्च एकपुत्रश्च मे प्रियः । तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः ॥ ७ ॥ सुग्रीवे चाङ्गदे चैव विधत्स्व मतिमुत्तमाम् । त्वं हि गोप्ता च शास्ता च कार्याकार्यविधौ स्थितः ॥ ८ ॥ या ते नरपते वृत्तिर्भरते लक्ष्मणे च या । सुग्रीवे चाङ्गदे राजंस्तां चिन्तयितुमर्हसि ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा वानरो रामं विरराम हरीश्वरः । स तमाश्वासयद्रामो वालिनं व्यक्तदर्शनम् ॥ १० ॥ न वयं भवता चिन्त्या नाप्यात्मा हरिसत्तम । वयं भवद्विशेषेण धर्मतः कृतनिश्चयाः ॥ ११ ॥ दण्ड्ये यः पातयेद्दण्डं

दण्ड्यो यश्चापि दण्ड्यते । कार्यकारणसिद्धार्थावुभौ तौ नावसीदतः ॥ १२॥ तद्भवान्दण्ड संयोगादस्माद्विगतकल्मषः । गतः स्वां प्रकृतिं धर्म्यां दण्डदिष्टेन वर्त्मना ॥ १३ ॥ त्यज शोकं च मोहं च भयं च हृदये स्थितम् । त्वया विधानं हर्यग्र्य न शक्यमतिवर्तितुम् ॥ १ ॥ यथा त्वय्यङ्गदो नित्यं वर्तते वानरेश्वर । तथा वर्तेत सुग्रीवे मयि चापि न संशयः ॥ १५ ॥

टीका—राम से ऐसे कहा हुआ बाली धर्म में निश्चय पाकर (अपनी पहली क्रोध की बातों पर) अतीव दुःखित हुआ, राम में दोष न देता भया ॥ १ ॥ तब वह वानरेश्वर हाथ जोड़कर राम से बोला, हे नरश्रेष्ठ ! जो आप कहते हैं, ठीक है, सन्देह नहीं ॥२॥ जो कुछ मैंने प्रमाद से पूर्व अप्रिय वाक्य कहा है, हे राम उसमें भी मुझे आप दोष लगाने योग्य नहीं हैं ॥ ३ ॥ इतने में बाली का गला बाष्प से रुक गया, और वह धीरे २ आर्तध्वनि के साथ कीचड़ में फंसे हाथी की तरह राम को देखता हुआ कहने लगा ॥ ४ ॥ न मुझे अपना शोक है, न तारा का, न बन्धुओं का, जैसा कि सोने के बाहूबन्द वाले गुणों में ज्येष्ठ अङ्गद पुत्र का ॥ ५ ॥ वह बाल्य से लेकर लालन किया हुआ मेरे अदर्शन से दीन हुआ पिये गये जलवाले तालाब की तरह सूख जाएगा ॥ ६ ॥ बाल अकृत बुद्धि है, इकलौता बेटा मेरा प्यारा है, तारा का पुत्र वह महाबली आप से रक्षा के योग्य है, ॥ ७ ॥ सुग्रीव और अङ्गद में उत्तम बुद्धि रखिये, आप रक्षक हैं, और कार्य अकार्य में शासन करनेवाले हैं ॥ ८ ॥ हे नरपते ! जो आपका बर्ताव भरत में है और जो लक्ष्मण में है, हे राजन् वही बर्ताव सुग्रीव और अङ्गद में आप चिन्तन करने योग्य हैं ॥ ९ ॥ राम को इतना कहकर वानरेश्वर बानर चुप होगया, तब स्पष्ट दर्शनवाले

इस बाली को राम तसल्ली देते भए ॥१०॥ हे वानरश्रेष्ठ ! आप न अपनी चिन्ता करें, न हमारी, हम आप से अधिक धर्म में निश्चय वाले हैं ॥ ११ ॥ जो दण्ड के योग्य को दण्ड देता है, और जो दण्ड के योग्य दण्डा जाता है, वह दोनों कार्य कारण से सिद्ध प्रयोजन हुए दुःखी नहीं होते हैं ॥ १२ ॥ सो आप इस दण्ड के सम्बन्ध से निष्पाप हुए, दण्ड शास्त्र के मार्ग से अपने शुद्ध स्वभाव को प्राप्त हुए हैं ॥ १३ ॥ हृदय में स्थित शोक मोह और भय को त्यागें, हे वानरश्रेष्ठ आप विधि (दैव) को नहीं उलांघ सक्ते ॥ १४ ॥ हे वानरेश्वर ! अङ्गद जैसे तुझ में सदा वर्तता है, वैसे सुग्रीव में और मुझमें वर्तेगा, संशय नहीं ॥ १५ ॥

सर्ग १७ (व० १९, २०) तारा का विलाप

मूल—स वानरमहाराजः शयानः शरपीडितः । प्रत्युक्तो हेतुमद्वाक्यैर्नोत्तरं प्रतिपद्यत ॥ १ ॥ तं भार्या बाणमोक्षेण रामदत्तेन संयुगे हतं प्लवगशार्दूलं तारा शुश्राव वालिनम् ॥ २ ॥ सा सपुत्राप्रियं श्रुत्वा वधं भर्तुः सुदारुणम् । निष्पपात भृशं तस्मादुद्विग्ना गिरिकन्दरात् ॥ ३ ॥ सा व्रजन्ती ददर्शाथ पतिं निपतितं भुवि । हन्तारं वानरेन्द्राणां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ४ ॥ अवष्टभ्यावतिष्ठन्तं ददर्श धनुरूर्जितम् । रामं रामानुजं चैव भर्तुश्चैव तथानुजम् ॥ ५ ॥ तानतीत्य समासाद्य भर्त्तारं निहतं रणे । समीक्ष्य व्यथिता भूमौ संभ्रान्ता निपपात ह ॥ ६ ॥ तामवेक्ष्य तु सुग्रीवः क्रोशन्तीं कुररीमिव । विषादमगमत्कष्टं दृष्ट्वा चाङ्गदमागतम् ॥७॥ सा समासाद्य भर्त्तारं पर्यष्वजत भामिनी । तारा तरुमिवोन्मूलं पर्यदेवयतातुरा ॥ ८ ॥ कालो निःसंशयो नूनं जीवितान्तकरस्तव । बलाद्येनावपन्नाऽसि सुग्रीवास्यावशो वशी ॥ ९ ॥ अस्थाने वालिनं हत्वा युध्यमानं परेण च । न सन्तप्यति काकुत्स्थः कृत्वा कर्म सुगार्हितम् ॥१०॥ कुरुष्व

पितरं पुत्र सुदृष्टं धर्मवत्सलम्। दुर्लभंदर्शनं तस्य तव वत्स भविष्यति ॥ ११ ॥ समाश्वासय पुत्रं त्वं सन्देशं सन्दिशस्व मे। मूर्ध्नि चैनं समाघ्राय प्रवासं प्रस्थितो ह्यसि ॥ १२ ॥

टीका—वह वानर महाराज लेटा हुआ बाणों से पीड़ित हुआ युक्ति-युक्त वाक्यों से उत्तर पाकर आगे उत्तर नहीं देता भया ॥ १ ॥ उस वानर श्रेष्ठ बाली को उसकी पत्नी तारा ने राम से छोड़े बाण द्वारा युद्ध में मरा हुआ सुना॥२॥ वह भर्त्ता के वध रूप बड़े दारुण अप्रियको सुनकर अत्यन्त घबराई हुई पुत्र समेत उस पर्वतकन्दरा (किष्किन्धा) से निकली ॥ ३ ॥ उसने जाकर पति को भूमि पर गिरा हुआ देखा, जोकि युद्ध में न लौटने वाले वानरेन्द्रों का मारनेवाला था ॥ ४ ॥ और पराक्रम वाले धनुष को थामकर खड़े हुए राम, राम के छोटे भाई और अपने भर्त्ता के छोटे भाई को देखा ॥ ५ ॥ उनको उलांघकर रण में पड़े हुए भर्त्ता को देख कर दुःखी हो भूमि पर गिर पड़ी ॥ ६ ॥ कुररी की तरह उसे पुकारती हुई देखकर और अङ्गद को आया देखकर सुग्रीव बड़े विषाद को प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ उस सुन्दरी तारा ने भर्त्ता के पास जा उसे आलिङ्गन किया, और जड़ से उखड़े हुए वृक्ष की तरह गिरे हुए के पास आतुर हो रोने लगी ॥ ८ ॥ काल निःसन्देह तेरे जीवन का अन्त करने वाला है, जिसने किसी के बस में न आने वाले तुझको बल से सुग्रीव के बस में ला डाला है ॥ ९ ॥ दूसरे के साथ युद्ध करते हुए को मारकर ऐसा निन्दित कर्म करके राम संतप्त नहीं होता है, यह अयोग्य है ॥ १० ॥ हे पुत्र (अङ्गद) धर्मप्रिय पिता को सुदृष्ट कर, हे वत्स अब तुझे इसका दर्शन दुर्लभ होगा ॥ ११ ॥ (हे राजन्!) अपने पुत्र को मस्तक पर चूमकर तसल्ली दे, और मुझे सन्देश दे, अब आप परलोक को प्रस्थित होते हैं ॥ १२ ॥

सर्ग १८ (व० २२) वाली का अन्तिम संदेश

मूल—वीक्षमाणस्तु मन्दासुः सर्वतो मन्दमुच्छ्वसन् । आदावेव तु सुग्रीवं ददर्शानुजमग्रतः ॥१॥ तं प्राप्तविजयं वाली सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् । आभाष्य व्यक्तया वाचा सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ युगपद्विहितं तात न मन्ये सुखमावयोः । सौहार्दं भ्रातृयुक्तं हि तदिदं जातमन्यथा ॥ ३ ॥ प्रतिपद्य त्वमद्यैव राज्यमेषां वनौकसाम् । मामप्यद्यैव गच्छन्तं विद्धि वैवस्वतक्षयम् ॥ ४ ॥ जीवितं च हि राज्यं च श्रियं च विपुलां तथा । प्रजहाम्येष वै तूर्णमहं चागर्हितं यशः ॥ ५ ॥ अस्यां त्वहमवस्थायां वीर वक्ष्यामि यद्वचः । यद्यप्यसुकरं राजन्कर्तुमेव त्वमर्हसि ॥ ६ ॥ सुखार्हं सुखसंवृद्धं बालमेनमबालिशम् । बाष्पपूर्णमुखं पश्य भूमौ पतितमङ्गदम् ॥ ७ ॥ मम प्राणैः प्रियतरं पुत्रं पुत्रमिवौरसम् । मया हीनमहीनार्थं सर्वतः परिपालय ॥ ८ ॥ त्वमप्यस्य पिता दाता परित्राता च सर्वशः । भयेष्वभयदश्चैव यथाहं प्लवगेश्वर ॥९॥ एष तारात्मजः श्रीमांस्त्वया तुल्यपराक्रमः । रक्षसां च वधे तेषामग्रतस्ते भविष्यति ॥ १० ॥ अनुरूपाणि कर्माणि विक्रम्य बलवान्रणे । करिष्यत्येष तारेयस्तेजस्वी तरुणोऽङ्गदः॥११॥ सुषेणदुहिता चेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये । औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता ॥ १२ ॥ यदेषा साध्विति ब्रूयात्कार्यं तन्मुक्तसंशयम् । नहि तारामतं किञ्चिदन्यथा परिवर्तते ॥१३॥+राघवस्य च ते कार्यं कर्तव्यमविशङ्कया । स्यादधर्मो ह्यकरणे त्वां च हिंस्यादमानितः ॥ १४ ॥ इमां च मालामाधत्स्व दिव्यां सुग्रीव काञ्चनीम् । उदारा श्रीः स्थिता ह्यस्यां संप्रजह्यान्मृते मयि ॥ १५ ॥ इत्येवमुक्तः सुग्रीवो वालिनो भ्रातृसौहृदात् । हर्षं त्यक्त्वा पुनर्दीनो ग्रहग्रस्त इवोडुराट् ॥१६॥ तद्वालिवचनाच्छान्तः कुर्वन्युक्तमतन्द्रितः । जग्राह सोऽभ्यनुज्ञातो मालां तां चैव काञ्चनीम् ॥ ६ ॥ तां मालां काञ्चनीं दत्त्वा

दृष्ट्वा चैवात्मजं स्थितम् । संसिद्धः प्रेत्यभावाय स्नेहादङ्गदमब्रवीत् ॥१८॥ देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये । सुखदुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव ॥ १९ ॥ नास्यामित्रैर्गतिं गच्छेर्मा शत्रुभिररिन्दम । भर्तुरर्थपरो दान्तः सुग्रीववशगो भव ॥ २० ॥ इत्युक्त्वाथ विवृत्ताक्षः शरसंपीडितो भृशम् । विवृतैर्दशनैर्भीमैर्बभूवोत्क्रान्तजीवितः ॥ २१ ॥

टीका—मन्द हुए सांस वाला, मन्द २ सांस लेता हुआ, सब ओर देखकर पहले ही आगे छोटे भाई सुग्रीव को देखता भया ॥ १ ॥ उस विजय पाए हुए वानराधिपति सुग्रीव को वाली सम्बोधन कर स्पष्ट वाणी से स्नेह से यह बोला ॥२॥ हे तात मैं जानता हूं, हम दोनों के लिए एक साथ सुख नहीं होना था (ऐसे ही कुछ मन्द कर्म प्रबल थे) जिससे कि यह सौहार्द जोकि भाई को उचित है, हम में उलटा होगया ॥३॥ तू आज ही इन वानरों के राज्य को प्राप्त हो, और मुझे भी अभी यम के घर जाता हुआ जान ॥१४॥ जीवन, राज्य और बड़ी लक्ष्मी, और अनिन्दित यश यह अब मैं यहीं छोड़ता हूं, ॥ ५ ॥ किन्तु इस अवस्था में हे वीर जो वचन मैं कहूंगा, यद्यपि हे राजन् ! सुकर न हो, तो भी तुझे करना चाहिये ॥६॥ सुख से पले हुए, सुख के योग्य, बालक, पर शक्तिवाले इस अङ्गद को आंसुओं से पूर्ण मुखवाला भूमि पर गिरा हुआ देख ॥७॥ मेरे प्राणों से प्यारा पुत्र, जो मुझसे हीन होता है, इसके अर्थों को पूरा करते हुए औरस पुत्र की तरह सब ओर से पालन कर ॥८॥ भी इसका पिता, दाता, भयों में अभय देनेवाला मेरी तरह सब ओर से रक्षक है ॥९॥ यह श्रीमान् तारा का पुत्र तेरे तुल्य पराक्रमवाला है, राक्षसों के वध में तेरा अग्रणी होगा ॥१०॥ यह बलवान् तेजस्वी तारा का पुत्र तरुण अङ्गद रण में बहादुरी

के साथ योग्य कर्म करेगा ॥११॥ और यह सुषेण की कन्या (तारा) सूक्ष्म बातों के निश्चय में और अनेक प्रकार के उपद्रवों के विषय में पूरी २ समझवाली है ॥१२॥ जो कुछ यह भला कहे उसे निःसन्देह होकर करना, तारा का मत कभी उलटा नहीं होता है ॥ १३ ॥ और राघव का कार्य तूने निडर होकर करना, न करने में पाप होगा, अवमानित हुआ वह तुझे मार देगा ॥१४॥ और इस दिव्य सुनहरी माला को हे सुग्रीव पहन, इसमें बड़ी शोभा है, मेरे मरने पर वह शोभा इसे त्याग देगी ॥१५॥ जब भाई के सौहार्द से बाली ने सुग्रीव को ऐसे कहा, तो वह हर्ष को त्यागकर राहुग्रस्त चन्द्र की तरह फिर दीन होगया ॥१६॥ बाली के उस वचन से (वैर को मन से त्यागकर) ठण्डाहुआ सावधान हो उचित व्यवहार करता हुआ, आज्ञा दिया हुआ उस माला को ग्रहण करलेता भया ॥१७॥ उस रत्नमाला को देकर और पुत्र को आगे देखकर मरने के लिये तय्यार हुआ, स्नेह से अङ्गद को कहने लगा ॥१८॥ अब (उस २ कर्म के उचित) देश काल का सेवन करना, प्रिय अप्रिय को सहारना, और सुख दुःख को सहते हुए सुग्रीव के वशगामी रहना ॥१९॥ इससे उदासीनों के साथ वा इसके शत्रुओं के साथ सङ्गति न करना, हे शत्रुओं के दबानेवाले सुग्रीव के कार्यसाधन में तत्पर रहकर सुशील बनकर सुग्रीव के वशगामी रहना ॥२॥ इतना कह चुकने के अनन्तर उसकी आंखें फिर गईं जीवन निकलगया, तबवानर सारे यूथपतिको मरादेख रोने लगे॥

सर्ग १९ (व० २३) तारा का विलाप

मूल–पतिं लोकश्रुता तारा मृतं वचनमब्रवीत् । शेष त्वं विषमे दुःखमकृत्वा वचनं मम ॥१॥+इदंतद्वीरशयनं तत्र शेषे हतो युधि ।

शायिता निहता यत्र त्वयैव रिपवः पुरा ॥२॥ विशुद्धसत्त्वाभिजन प्रिययुद्ध मम प्रिय । मामनाथां विहायैकां गतस्त्वमसि मानद ॥३॥ अवभग्नश्च मे मानो भग्ना मे शाश्वती गतिः । अगाधे च निमग्नास्मि विपुले शोकसागरे ॥ ४ ॥ अश्मसारमयं नूनमिदं मे हृदयं दृढम् । भर्तारं निहतं दृष्ट्वा यन्नाद्य शतधा कृतम् ॥५॥ सुहृच्चैव च भर्ता च प्रकृत्या च मम प्रियः । प्रहारे च पराक्रान्तःशूरः पञ्चत्वमागतः ॥६॥ पतिहीना तु या नारी कामं भवतु पुत्रिणी । धनधान्यसमृद्धापि विधवेत्युच्यते बुधैः ॥७॥ उद्धर्त्र शरं नीलस्तस्य गात्रगतं तदा । पेतुः क्षतजधारास्तु व्रणेभ्यस्तस्य सर्वशः ॥ ८ ॥ रुधिरोक्षितसर्वाङ्गं दृष्ट्वा विनिहतं पतिम् । उवाच तारा पिङ्गाक्षं पुत्रमङ्गदमङ्गना ॥९॥ बालसूर्योज्ज्वलतनुं प्रयातं यमसादनम् । अभिवादय राजानं पितरं पुत्र मानदम् ॥ १० ॥ एवमुक्ता समुत्थाय जग्राह चरणौ पितुः । भुजाभ्यां पीनवृत्ताभ्यामङ्गदोऽहमिति ब्रुवन् ॥११॥ अभिवादयमानं त्वामङ्गदं त्वं यथा पुरा । दीर्घायुर्भवपुत्रेति किमर्थं नाभिभाषसे ॥१२॥ इष्ट्वा संग्रामयज्ञेन रामप्रहरणाम्भसा । तस्मिन्नवभृथे स्नातः कथं पत्न्या मया विना ॥ १३ ॥ न मे वचः पथ्यमिदं त्वया कृतं न चास्मि शक्ता हि निवारणे तव । हता सपुत्रास्मि हतेन संयुगे सह त्वया श्रीर्विजहाति मामपि ॥ १४ ॥

टीका—जगत विख्यात तारा मरे पति से यह वचन बोली, हाय! शोक ! मेरे वचन को न मानकर इस विषम स्थान में लेटा है ॥१॥ यह वह वीरशय्या है, वहां तू अब युद्ध में मरा हुआ लेटा है, जहां तूने ही पहले अनेक शत्रु लिटाए थे ॥ २ ॥ हे शुद्धमन और वंशवाले, युद्ध के प्यारे हे मेरे प्यारे हे मान के देने वाले मुझ अनाथा को अकेली छोड़कर तू कहां चला गया है ॥ ३ ॥ मेरा मान टूट गया मेरी स्थिर गति टूट गई, मैं अथाह और असीम

शोकसागर में डूबी हूं ॥ ४ ॥ मेरा यह हृदय निःसन्देह बड़ा दृढ़ पत्थर का बना हुआ है, जो पति को मरा देखकर आज सौ टुकड़े नहीं होजाता है ॥ ५ ॥ सुहृद् भी और भर्ता भी और प्रकृति से ही मेरा प्यारा युद्ध में पराक्रमी शूर मृत्यु को प्राप्त हुआ है ॥६॥ जो नारी पति हीना है, चाहे वह पुत्रवाली भी हो, धन धान्य से पूर्ण भी हो, पर लोगों में विधवा (मनुष्य हीन) ही कही जाती है ॥७॥ तब उसके शरीर से नील ने बाण को निकाला, उसके व्रणों से रुधिर की धारें सब ओर गिरीं ॥ ८ ॥ रुधिर से सेवन किये अङ्गोंवले पति को मरा हुआ देखकर श्रेष्ठ अङ्गोंवाली तारा पीले नेत्रवाले पुत्र अङ्गद से बोली ॥ ९ ॥ उदय होते हुए सूर्य की तरह उज्वल शरीर वाले, यम के घर जाते हुए अपने पिता राजा को हे पुत्र अभिवादन कर ॥ १० ॥ ऐसे कहा हुआ अङ्गद "मैं अङ्गद हूं" यह कहता हुआ मोटी गोल भुजाओं से पिता के चरण पकड़ता भया ॥ ११ ॥ (अभिवादन करता देखकर तारा कहती है) तुझे अभिवादन करते हुए अङ्गद को हे राजन् पूर्ववत् 'हे पुत्र दीर्घायु हो' यह क्यों नहीं कहता॥१२॥ संग्राम यज्ञ पूरा करके उस अवभृथ में रामबाणरूपी जल से कैसे तूने मुझ पत्नी के बिना स्नान कर लिया है*॥१३॥ न मेरे वचन को तूने पथ्य जानकर किया, न मैं तेरे रोकने में समर्थ हुई युद्ध में तेरे मरने से मैं पुत्र सहित मारी गई, तेरे साथ मुझे भी श्री छोड़ती है ॥ १४ ॥

सर्ग २० (ब० २४) तारा और राम का संवाद

मूल—तां चारुनेत्रां कपिसिंहनाथां पतिं समाश्लिष्य तदा शयानाम्

*यज्ञ की समाप्ति में अवभृथ स्नान पत्नी के साथ किया जाता है न कि अकेला अपने आप ।

उत्थापयामासुरदीनसत्त्वां शनैःप्रयाताः कपिराजपत्नीम् ॥ १ ॥
सा विस्फुरन्ती परिरभ्यमाणा भर्तुः समीपादपनीयमाना । ददर्श
रामं शरचापपाणिं स्वतेजसा सूर्यमिव ज्वलन्तम् ॥ २ सुसंवृतं
पार्थिवलक्षणैश्च तं चारुनेत्रं मृगशावनेत्रा । अदृष्टपूर्वं पुरुषप्रधानं
स काकुत्स्थ इति प्रजज्ञे ॥३॥ तं सा ममासाद्य विशुद्धसत्त्वं शोकेन
संभ्रान्तशरीरभावा । मनस्विनी वाक्यमुवाच तारा रामं रणोत्कर्ष-
णलब्धलक्ष्यम् ॥ ४ ॥ त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तम-
धर्मकश्च । अक्षीणकीर्तिश्च विचक्षणश्च क्षितिक्षमावान्क्षतजोपमाक्षः
॥ ५ ॥ येनैव बाणेन हतः प्रियो मे तेनैव बाणेन हि मां जहीहि ।
हता गमिष्यामि समीपमस्य न मां विना वीर रमेत वाली ॥ ६ ॥
त्वंवेत्थ तावद्वनितावियुक्तः प्राप्नोति दुःखं पुरुषः कुमारः । तत्त्वं प्र-
जानञ्जहि मां न वाली दुःखं ममादर्शनजं भजेत ॥ ७॥+यच्चापि मन्येत
भवान्महात्मा स्त्रीघातदोषस्तु भवेन्न मह्यम् । आत्मेयमस्येति हि मां
जहि त्वं न स्त्रीवधः स्यान्मनुजेन्द्रपुत्र ॥ ८ ॥ शास्त्रप्रयोगाद्विविधाच्च
वेदादनन्यरूपाः पुरुषस्य दाराः । दारप्रदानाद्धि न दानमन्यत्प्रदृश्यते
ज्ञानवतां हि लोके ॥ ९ ॥ त्वं चापि मां तस्य मम प्रियस्य प्रदास्यसे
धर्ममवेक्ष्य वीर । अनेन दानेन न लप्स्यसे त्वमधर्मयोगं मम वीर
घातात् ॥१०॥ इत्येवमुक्तस्तु विभुर्महात्मा तारां समाश्वास्य हितं
बभाषे । मा वीरभार्ये विमतिं कुरुष्व लोको हि सर्वो विहितो विधात्रा ॥
११ ॥ प्रीतिं परां प्राप्स्यसि तां तथैव पुत्रश्च ते प्राप्स्यति यौवराज्यम्
धात्रा विधानं विहितं तथैव न शूरपत्न्यः परिदेवयन्ति ॥ १२ ॥

टीका—उस सुन्दर नेत्रोंवाली वानरसिंह की पत्नी पति को आलि-
ङ्गन करके लेटी हुई अदीन हृदयवाली कपिराज की पत्नी को
मुख्य मन्त्री उठाते भए ॥ १ ॥ वह कण्ठ लगाकर रोती हुई जब

भर्ता के पास से अलग की गई, तो उसने हाथ में धनुषबाण लिये अपने तेज से सूर्य की तरह जलते हुए राम को देखा ॥२॥ वह मृगनयनी राजलक्षणों से युक्त सुन्दर नेत्रोंवाले उस पहले न देखे हुए पुरुषप्रधान को देखकर यह राम है, यह जानती भई ॥ ३ ॥ उस शुद्ध हृदयवाले के निकट होकर शोक से अपने आपको भी भूली हुई मनस्विनी तारा रण में सब से बढ़कर लक्ष्य बींधनेवाले राम से यह वाक्य बोली ॥ ४ ॥ तू अप्रमेय, दुर्धर्ष, जितेन्द्रिय, उत्तम धर्मवाला, अक्षीण यशवाला निपुण, पृथिवी तुल्य क्षमा-वाला, लाल नेत्रोंवाला, (शूरवीर) है ॥ ५ ॥ जिस बाण से तूने वाली को मारा है, उसी बाण से मुझे मार, मैं मरकर उसके पास जाऊंगी, मेरे बिना वीर वाली रमण नहीं करेगा ॥६॥ तू जानता है कि स्त्री से हीन पुरुष काम से सताया हुआ दुःख उठाता है सो तू यह जानता हुआ मुझे मार, जिस से कि वाली मेरे वियोग से दुःख न पाए ॥७॥ यदि आप उत्तम महात्मा यह समझें, कि मुझे स्त्री बध का दोष न लगे, तो मुझे इसी (वाली) का स्वरूप जानकर मार, हो नरेन्द्र पुत्र ! तुझे दोष न होगा ॥८॥ शास्त्रीय अनुष्ठान (मिलकर यागादि करने) से और अनेक वेद वाक्यों से स्त्रियें पुरुष की अभिन्नरूपा हैं, ज्ञानवालों के लिये लोक में स्त्रीदान (खोई हुई स्त्री मिलाने) से बढ़ कर दान नहीं है ॥ ९ ॥ तू भी हे वीर धर्म को लक्ष्य करके उस प्यारे को मेरा दान देगा इस दान से हे वीर तू मेरे बध से अधर्म को नहीं प्राप्त होगा ॥ १० ॥ ऐसे कहा हुआ समर्थ महात्मा तारा को तसल्ली देकर हित बचन बोला, हे वीरपत्नी विरुद्धमति मतकर, जगत सारा परमेश्वर की आज्ञा में चल रहा है. (तीनों लोक आज्ञा को उल्लंघन नहीं करते, उसके

वस में है) ॥११॥ तू वैसी ही परम प्रीति को प्राप्त होगी. तेरा पुत्र यौवराज्य को प्राप्त होगा. विधाता की यही आज्ञा थी. शूरपत्नियें रोया नहीं करती हैं ॥ १२ ॥

सर्ग २१ (व० २५) वाली के दाह की तय्यारी

मूल–स सुग्रीवं च तारां च साङ्गदां सहलक्ष्मणः । समानशोकः काकुत्स्थः सान्त्वयन्निदमब्रवीत् ॥१॥ न शोकपरितापेन श्रेयसा युज्यते मृतः । यदत्रानन्तरं कार्यं तत्समाधातुमर्हथ ॥२॥ स्वधर्मस्य च संयोगाज्जितस्तेन महात्मना । स्वर्गः परिगृहीतश्च प्राणानपरिरक्षता ॥३॥ एषा वै नियतिः श्रेष्ठा यां गतो हरियूथपः । तदलं परितापेन प्राप्तकालमुपास्यताम् ॥४॥ वचनान्ते तु रामस्य लक्ष्मणः परवीरहा अवदत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं गतचेतसम् ॥५॥ कुरु त्वमस्य सुग्रीव प्रेतकार्यमनन्तरम् । ताराङ्गदाभ्यां सहितो वालिनो दहनं प्रति ॥६॥ अङ्गदस्त्वानयेन्माल्यं वस्त्राणि विविधानि च । घृतं तैलमथो गन्धान्यच्चात्र समनन्तरम् ॥७॥ त्वं तारं शिबिकां शीघ्रमादायागच्छ संभ्रमात् । आदाय शिबिकां तारः स तु पर्यापतद्द्रुतः ॥ ८ ॥ दिव्यां भद्रासनयुतां शिबिकां स्यन्दनोपमाम् । पक्षिकर्मभिराचित्रां द्रुमकर्मविभूषिताम् ॥९॥ विमानमिव सिद्धानां जालवातायनायुताम् । दारुपर्वतकोपेतां चारुकर्मपरिष्कृताम् ॥ १० ॥ वराभरणहारैश्च चित्रमाल्योपशोभिताम् । गुहागहनसंछन्नां रक्तचन्दनभूषिताम् ॥११॥ ईदृशीं शिबिकां दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । क्षिप्रं विनीयतां वाली प्रेतकार्यं विधीयताम् ॥१२॥ ततो वालिनमुद्यम्य सुग्रीवः शिबिकां तदा । आरोपयत विक्रोशन्नङ्गदेनसहैव तु ॥१३॥ आरोप्य शिबिकां चैव वालिनं गतजीवितम् । अलङ्कारैश्च विविधैर्माल्यैर्वस्त्रैश्च भूषितम् ॥१४॥ आज्ञापयत्तदा राजा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः । विश्राणयन्तो रत्नानि विविधानि बहूनि च ॥ १५ ॥

अग्रतः प्लवगा यान्तु शिविका तदनन्तरम् ॥ १६ ॥ राज्ञामृद्धिविशेषा हि दृश्यन्ते भुवि यादृशाः । तादृशैरिह कुर्वन्तु वानरा भर्तृसत्क्रियाम् ॥ १७ ॥

टीका—इनके समान शोकवाले राम ने लक्ष्मण के साथ मिलकर सुग्रीव तारा और अङ्गद को तसल्ली देते हुए यह कहा ॥१॥ शोक और सन्ताप करने से मरा हुआ पुरुष कल्याण से युक्त नहीं होता है, अब जो इसके अनन्तर करना चाहिए, वह करने योग्य हो ॥२॥ अपने धर्म पालने (प्रजा पालन) के संयोग से उस महात्मा ने स्वर्ग को जीता था, अब (युद्ध में) प्राणों की रक्षा न करते हुए न स्वर्ग को पालिया है ॥३॥ यह श्रेष्ठ होनी है (युद्ध में मरना) जिसको वानर यूथपति प्राप्त हुआ है, अब सन्ताप से बस है, इस समय का कार्य कीजिये ॥ ४ ॥ राम के वचन की समाप्ति पर शत्रुओं के वीरों को मारनेवाला लक्ष्मण बेहोश हुए सुग्रीव से नम्र वाक्य बोला ॥ ५ ॥ हे सुग्रीव तू तारा और अङ्गद के सहित बाली के दाह सम्बन्धी प्रेतकार्य को कर ॥ ६ ॥ अङ्गद माला, विविध वस्त्र, घृत, तैल गन्ध और भी अपेक्षित वस्तुएं लावे ॥८॥ तू हे तार शिविका (पालकी=अर्थी) लेकर शीघ्र आ, तब तार जल्दी शिविका को लेकर फिर वापिस आया ॥ ८ ॥ जोकि दिव्य भद्रासन (राज योग्यासन) से युक्त युद्ध के रथ के तुल्य, पक्षियों (के चित्रों) से चित्रित वृक्षों के चित्रों से भूषित ॥ ९ ॥ सिद्धों के विमान की तरह जालीदार झरोखों से युक्त, लकड़ी की पहाड़ियों से युक्त, चारुकर्म (सजावट) से सजी हुई ॥ १० ॥ सुन्दर भूषण और हारों से और विचित्र मालाओं से सजी हुई ऊपर पिंजरे से ढकी हुई, रक्त चन्दन से भूषित ॥११॥ ऐसी शिविका को देखकर राम लक्ष्मण से बोले, बाली

को जल्दी लेजाइए, और प्रेतकार्य कीजिए ॥ १२ ॥ तब सुग्रीव अङ्गद के सहित रोता हुआ वाली को उठाकर शिविका पर चढ़ाता भया ॥ १३ ॥ विविध अलङ्कारों मालाओं और वस्त्रों से भूषित मृत वाली को शिविका पर चढ़ाकर ॥ १४ ॥ वानराधिपति राजा सुग्रीव ने आज्ञा दी, कि अनेक प्रकार बहुत रत्न देते हुए ॥ १५ ॥ आगे २ वानर चलें, उनके पीछे शिविका ॥ १६ ॥ पृथिवी में राजाओं का जैसा ऐश्वर्य होता है, वैसे ऐश्वर्य से वानर अपने राजा का सत्कार करें ॥ १७ ॥

सर्ग २२ (व० २५) वाली का अन्त्येष्टि कर्म

मूल—अङ्गदं परिरभ्याशु तारप्रभृतयस्तथा । क्रोशन्तः प्रययुः सर्वे वानरा हतबान्धवाः ॥ १ ॥ ताराप्रभृतयः सर्वा वानर्यो हतबान्धवाः अनुजग्मुश्च भर्तारं क्रोशन्त्यः करुणस्वनाः ॥ २ ॥ तासां रुदितशब्देन वानरीणां वनान्तरे । वनानि गिरयश्चैव विक्रोशन्तीव सर्वतः ॥ ३ ॥ पुलिने गिरिनद्यास्तु विविक्ते जलसंवृते । चितां चक्रुः सुबहवो वानरा वनचारिणः ॥ ४ ॥ अवरोप्य ततः स्कन्धाच्छिबिकां वानरोत्तमाः । तस्थुरेकान्तमाश्रित्य सर्वे शोकपरायणाः ॥ ५ ॥ ततस्तारा पतिं दृष्ट्वा शिबिकातलशायिनम् । आरोप्याङ्के शिरस्तस्य विललाप सुदुःखिता ॥ ६ ॥ हा वानरमहाराज हा नाथ मम वत्सल । हा महार्ह महाबाहो हा मम प्रिय पश्य माम् ॥ ७ ॥ प्रहृष्टमिह ते वक्त्रं गतासोरपि मानद । अस्तार्कसमवर्णं च दृश्यते जीवतो यथा ॥ ८ ॥ + तवेष्टा ननु चैवेमा भार्याश्चन्द्रनिभाननाः । एते हि सचिवा राजंस्तारप्रभृतयस्तव ॥ ९ ॥ पुरवासिजनश्चायं परिवार्य विषीदति । विसर्जयैनान्सचिवान्यथापुरमरिन्दम ॥ १० ॥ एवं विलपतीं तारां पतिशोकपरीप्लुताम् । उत्थापयन्ति स्म तदा वानर्यः शोककर्शिताः ॥ ११ ॥ सुग्रीवेण ततः सार्धं सोऽङ्गदः पितरं

रुदन्। चितामारोपयामास शोकेनाभिप्लुतेन्द्रियः ॥१२॥ ततोऽग्निं विधिवद्दत्त्वा सोऽपसव्यं चकार ह। पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः ॥ १३ ॥ संस्कृत्य वालिनं तं तु विधिवत्प्लवगर्षभाः। आजग्मुरुदकं कर्तुं नदीं शुभजलां शिवाम् ॥ १४ ॥ ततस्ते सहितास्तत्र अङ्गदं स्थाप्य चाग्रतः। सुग्रीवतारासहिताः सिषिचुर्वानरा जलम् ॥ १५ ॥ सुग्रीवेणेव दीनेन दीनो भूत्वा महाबलः। समानशोकः काकुत्स्थः प्रेतकार्याण्यकारयत् ॥ १६ ॥

टीका—जिनका बन्धु मरा है, वह तार आदि सारे वानर अङ्गद के साथ रोते हुए चले ॥ १ ॥ जिनका बन्धु मरा है, वह तारा आदि सब वानरियें दीन ध्वनि में पुकार करती हुई भर्ता के पीछे चलीं ॥ २ ॥ उन वानरियों के रोने की प्रतिध्वनि में बन के मध्य में मानों सब ओर बन और पर्वत रोरहे थे ॥ ३ ॥ जल से चारों ओर ढके हुए (द्वीप से बने हुए) पर्वती नदी के एक एकान्त पुलिन (बरेते) पर बहुत से वनचारी बानर चिता बनाते भए ॥ ४ ॥ तब वह बानरश्रेष्ठ कन्धों से शिविका को उतारकर, सभी एकान्त होकर शोकपरायण हुए ठहरे ॥ ५ ॥ तब तारा शिविकातल पर लेटे हुए पति को देखकर उसके सिर को चूमकर उसके सिर को गोद में रखकर अतीव दुःखित हुई विलाप करती भई ॥ ६ ॥ हा वानरों के महाराज, हा नाथ मेरे प्यारे, हा बड़े पूजनीय, महाबाहो, हा मेरे प्यारे मुझे देख ॥ ७ ॥ हे मान के देने वाले प्राणों के निकल जाने पर भी तेरा मुख खिला हुआ अस्त होते सूर्य के सदृश दीखता है,जैसे जीते का था॥८॥ वही हम चन्द्रमुखी तेरी पत्नियें हैं। और हे राजन्!वही यह तार आदि तेरे मन्त्री हैं॥९॥ और यह पुरवासी लोग तेरे चारों ओर विषण्ण होरहे हैं हे शत्रुदमन ! इनको पूर्ववत् विसर्जनकर ॥ १० ॥ इसप्रकार पति

शोक मे भरी हुई विलपती हुई तारा को शोक मे दुर्बल वानरियोंने उठाया ॥ ११ ॥ तब सुग्रीव के साथ रोते हुए शोक मे व्याप्त इन्द्रियों वाले अङ्गद ने पिता को चिता पर आरोपण किया॥१२॥ तब उस व्याकुल इन्द्रियोंवाले ने लम्बे मार्ग पर प्रस्थित हुए पिता को यथाविधि अग्नि दे करके प्रदक्षिणा की ॥ १३ ॥ वह वानर-श्रेष्ठ उस वाली को विधिवत् संस्कार करके सुन्दर शुभ जल वाली नदी पर जलक्रिया करने के लिए आए ॥ १४ ॥ तब वह सब मिलकर अङ्गद को आगे करके सुग्रीव और तारा के सहित जल-क्रिया करते भए ॥ १५ ॥ समान शोकवाले महाबली राम भी दीन सुग्रीव की तरह दीन हुए सारे प्रेतकार्यों में साथ रहे।

सर्ग २३ (व० २६) सुग्रीव के राज्याभिषेक की अनुज्ञा

मूल—अभिगम्य महाबाहुं राममक्लिष्टकारिणम् ।स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे पितामहमिवर्षयः॥१॥ ततः काञ्चनशैलाभस्तरुणार्कनिभाननः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान्मारुतात्मजः ॥ २ ॥ भवत्प्रसादात्का-कुत्स्थ पितृपैतामहं महत् । वानराणां सुदंष्ट्राणां संपन्नबलशालिनाम् ॥ ३ ॥ महात्मनां सुदुष्प्रापं प्राप्तं राज्यमिदं प्रभो ॥ ४ ॥ भवता समनुज्ञातः प्रविश्य नगरं शुभम् । संविधास्यति कार्याणि सर्वाणि ससुहृद्गणः ॥ ५ ॥ स्नातोऽयं विविधैर्गन्धैरौषधैश्च यथाविधि । अर्चयिष्यति माल्यैश्च रत्नैश्च त्वां विशेषतः ॥ ६ ॥ इमां गिरिगुहां रम्यामभिगन्तुं त्वमर्हसि । कुरुष्व स्वामिसंबन्धं वानरान्संप्रहर्षय ॥ ७ ॥ एवमुक्तो हनुमता राघवः परवीरहा । प्रत्युवाच हनूमन्तं बुद्धिमान्वाक्यकोविदः ॥ ८ ॥ चतुर्दश समाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम् । न प्रवेक्ष्यामि हनुमन्पितुर्निर्देशपारगः ॥ ९ ॥ सुसमृद्धां गुहां दिव्यां सुग्रीवो वानरर्षभः । प्रविष्टो विधिवद्वीरःक्षिप्रं राज्येऽ-भिषिच्यताम् ॥ १० ॥ एवमुक्त्वा हनूमन्तं रामः सुग्रीवमब्रवीत् ।

इममप्यङ्गदं वीरं यौवराज्येऽभिषेचय ॥ ११ ॥ ज्येष्ठस्य हि सुतो ज्येष्ठः सदृशो विक्रमेण च । अङ्गदोऽयमदीनात्मा यौवराज्यस्य भाजनम् ॥ १२ ॥ पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः । प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंज्ञिताः ॥१३॥ नायमुद्योगसमयः प्रविश त्वं पुरीं शुभाम् । अस्मिन्वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते सहलक्ष्मणः ॥ १४ ॥ इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता । प्रभूतसलिला सौम्य प्रभूतकमलोत्पला॥ १५ ॥ कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यत । एष नः समयः सौम्य प्रविश त्वं स्वमालयम् ॥ १६ ॥ इति रामाभ्यनुज्ञातः सुग्रीवो वानरर्षभः । प्रविवेश पुरीं रम्यां किष्किन्धां वालिपालिताम् ॥ १७ ॥

टीका—तब वह सुन्दर कर्मोंवाले महाबाहु राम के पास जाकर सभी हाथ जोड़कर खड़े होगये, जैसे ब्रह्मा के पास ऋषि ॥ १ ॥ उनमें से सुवर्ण पर्वत के सदृश, बालसूर्य के तुल्य मुखवाला, पवन पुत्र हनुमान् हाथ जोड़कर बोला ॥ २ ॥ हे राम आपकी कृपा से बड़ी दाढ़ोंवाले (बड़े प्रबल) पूर्ण बलशाली महात्मा वानरों का यह अतीव दुष्प्राप्य बड़ा राज्य है प्रभो जो पितृ पितामह से आया था पालिया है ३, ४ ॥ अब यह आपसे आज्ञा दिया हुआ शुभ नगर में प्रवेश करके सुहृद्‌गणों के सहित (सुग्रीव)कार्यों को करेगा ॥ ५ ॥ विविध गन्धों से और औषधियों से यथाविधि अभिषिक्त हुआ रत्नों से और मालाओं से आपको विशेषतः पूजेगा ॥ ६ ॥ सो आप इस रमणीय पर्वत गुफा में चलने योग्य हैं (वानरों के लिये सुग्रीव के राज्याभिषेक से आप) स्वामि का सम्बन्ध उत्पन्न करें और वानरों को प्रसन्न करें ॥ ७ ॥ हनुमान् से ऐसे कहा हुआ शत्रुवीरों का मारने वाला, वाक्य के जाननेवाला, बुद्धिमान् राघव हनुमान् को उत्तर देता भया ॥ ८ ॥ चौदह बरस हे सौम्य

हनुमन् ! ग्राम में यादि वा पुर में प्रवेश नहीं करूंगा, जब तक पिता के निर्देश के पार पहुंचता हूं॥९॥अत्यन्त समृद्धि वाली दिव्य गुफा में वानरश्रेष्ठ वीर सुग्रीव प्रविष्ट हुआ जल्दी राज्य में अभिषेक दीजिए ॥ १० ॥ हनुमान् को ऐसे कहकर राम सुग्रीव से बोले इस वीर अङ्गद को भी यौवराज्य में अभिषिक्त कर ॥ ११ ॥ बड़े भाई का बड़ा पुत्र, पराक्रम से (पिता के) सदृश यह अदीन स्वभाव अङ्गद यौवराज्य का पात्र है ॥ १२ ॥ हे सौम्य अब जो वार्षिक चार मास प्रवृत्त हुए हैं, उनमें से यह पहला जलों का लाने वाला श्रावणमास है॥ १३ ॥ हे सौम्य यह उद्योग का समय नहीं, तू शुभ पुरी में प्रवेश कर, मैं लक्ष्मण समेत इस पर्वत पर बसूंगा ॥ १४ ॥ यह पर्वत गुफा सुहावनी, विशाल युक्त पवनवाली, प्रभूत जल वाली, प्रभूत कमलोंवाली है (इसमें रहूंगा) ॥ १५॥ कार्त्तिक आने पर तूने रावण के वध में यत्न करना, यह हमारा संकेत है, हे सौम्य तू अपने घर में प्रवेश कर ॥ १६ ॥ राम से ऐसे अनुज्ञा दिया वानरश्रेष्ठ सुग्रीव वाली से पाली हुई सुहावनी किष्किन्धापुरी में प्रविष्ट हुआ ॥ १७ ॥

सर्ग २४ (व० २६) सुग्रीव का राज्याभिषेक

मूल—प्रविष्टं भीमविक्रान्तं सुग्रीवं वानरर्षभम । अभ्यषिञ्चन्त सुहृदः सहस्राक्षमिवामराः ॥ १ ॥ तस्य पाण्डुरमाजह्रुश्छत्रं हेमपरिष्कृतम् । शुक्ले च वालव्यजने हेमदण्डे यशस्करे ॥ २ ॥ तथा रत्नानि सर्वाणि सर्वबीजौषधानि च । सक्षीरिणां च वृक्षाणां प्ररोहान्कुसुमानि च ॥ ३ ॥ शुक्लानि चैव वस्त्राणि श्वेतं चैवानुलेपनम् । सुगन्धीनि च माल्यानि स्थलजान्यम्बुजानि च ॥ ४ ॥ चन्दनानि च दिव्यानि गन्धांश्च विविधान्बहून् । अक्षतं जातरूपं च प्रियङ्गमधुसर्पिषी ॥ ५ ॥ दधि चर्म च वैयाघ्रं परार्घ्यौ चाप्युपा-

नहौ। समालम्भनमादाय गोरोचनं मनःशिलाम् ॥ ६ ॥ आजग्मुस्तत्र मुदिता वराः कन्याश्च षोडश ॥ ७ ॥ ततस्ते वानरश्रेष्ठमभिषेक्तुं यथाविधि। रत्नैर्वस्त्रैश्च भक्ष्यैश्च तोषयित्वा द्विजर्षभान्॥ ८ ॥ +ततः कुशपरिस्तीर्णं समिद्धं जातवेदसम्। मन्त्र पूतेन हविषा हुत्वा मन्त्रविदो जनाः ॥ ९ ॥ प्राङ्मुखं विधिवन्मन्त्रैः स्थापयित्वा वरासने। शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिविहितेन च ॥ १० ॥ गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः। मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनूमाञ्जाम्बवांस्तथा ॥ १२ ॥ रामस्य तु वचः कुर्वन्सुग्रीवो वानरेश्वरः। अङ्गदं संपरिष्वज्य यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥ १३ ॥ अङ्गदे चाभिषिक्ते तु सानुक्रोशाः प्लवंगमाः। साधु साध्विति सुग्रीवं महात्मानो ह्यपूजयन् ॥१४॥रामं चैव महात्मानं लक्ष्मणं च पुनः पुनः। प्रीताश्च तुष्टुवुः सर्वे तादृशे तत्र वर्तिनि ॥ १५ ॥ हृष्टपुष्टजनाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता।बभूव नगरी रम्या किष्किन्धा गिरिगह्वरे॥१६॥

टीका—प्रविष्ट हुए भयानक बलवाले वानरश्रेष्ठ सुग्रीव को सुहृद्-जन तिलक देते भए, जैसे देवता इन्द्र को ॥ १ ॥ उस के लिये सुवर्ण से भूषित श्वेत छत्र लाए, और सुवर्ण के दण्ड वालीं, यश देने वालीं, दो श्वेत चौरियें ॥ २ ॥ तथा सारे रत्न, सब बीज, सब औषधियें, दूध वाले वृक्षों के अंकुर और फूल ॥ ३ ॥ श्वेत वस्त्र और श्वेत अनुलेपन, सुगन्धी वाली मालाएं और स्थलकमल ॥ ४ ॥ दिव्य चन्दन और विविध बहुत गन्ध, अक्षत सुवर्ण, कङ्गनी, शहद, घृत ॥ ५ ॥ दही, शेर का मृगान, और उत्तम दो जोड़े और अनुलेपनद्रव्य गोरोचन और मनशिल लेकर ॥ ६ ॥ वहां प्रसन्न हुईं सोलह कन्याएं आईं ॥ ७ ॥ तब वह वानरश्रेष्ठ को यथाविधि अभिषेक देने के लिये पहले रत्नों से वस्त्रों से और भक्ष्यों से ब्राह्मणों को प्रसन्न करके ॥ ८ ॥

फिर जिसके चारों ओर कुशा बिछी है उस प्रदीप्त अग्नि में वेद-वेत्ताजन मन्त्रों से पवित्र हविद्वारा होम करके ॥ ९ ॥ मंत्रों से यथाविधि श्रेष्ठ आसन पर पूर्वाभिमुख (सुग्रीव को) बिठलाकर वेदविहित और महर्षि विहित विधि से ॥ १० ॥ गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद,हनुमान्,जाम्बवान् ॥११॥ यह मिलकर निर्मल सुगन्धित जल से (सुग्रीव का) अभिषेक करते भए जैसे देवता इन्द्र का ॥ १२ ॥ राम का वचन मानता हुआ सुग्रीव अङ्गद को कण्ठ लगाकर यौवराज्य में अभिषिक्त रखता भया ॥ १३ ॥ अङ्गद के अभिषिक्त होने पर महात्मा बानर साधु साधु ऐसी उच्च ध्वनि करते हुए सुग्रीव को पूजते भए ॥ १४ ॥ वहां ऐसा होने पर प्रसन्न हुए सभी महात्मा राम की और लक्ष्मण की बार २ स्तुति करते भए ॥ १५ ॥ हृष्ट पुष्ट जनों से भरी हुई झण्डों और झंडों से शोभित किष्किन्धा नगरी पर्वत की कन्दरा में सुहावनी बन गई ॥ १६ ॥

सर्ग २९ (व० २८) वर्षा ऋतु का वर्णन

मूल—स तदा वालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च । वसन्माल्यवतः पृष्ठ रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १ ॥ अयं स कालः संप्राप्तः समयोऽद्य जलागमः । संपश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसन्निभैः॥२॥ नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः । पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम्॥३॥ शक्यमम्बरमारुह्य मेघसोपानपंक्तिभिः । कुटजार्जुनमालाभिरलंकर्तुं दिवाकरः ॥ ४ ॥ मन्दमारुतनिःश्वासं सन्ध्याचन्दनरञ्जितम् । आपाण्डुजलदं भाति कामातुरमिवाम्बरम् ॥ ५ ॥एषा धर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता । सीतेव शोकसंतप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति ॥ ६ ॥ एष फुल्लार्जुनः शैलः केतकैरभिवासितः । सुग्रीव इव शान्तारिर्धाराभिरभिषिच्यते ॥ ७ ॥ मेघकृष्णा-

जिनधरा धारा यज्ञोपवीतिनः । मारुतापूरितगुहाःप्राधीता इव
पर्वताः ॥ ८ ॥ रजः प्रशान्तं सहिमोऽद्य वायुर्निदाघदोषप्रसराः
प्रशान्ताः ।स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानां प्रवासिनो यान्ति नराः
स्वदेशान् ॥ ९ ॥ संप्रस्थिता मानसवासलुब्धा प्रियान्विताः संप्रति
चक्रवाकाः । अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषु यानानि मार्गेषु न संपतन्ति
॥ १० ॥ व्यामिश्रितं सर्जकदम्बपुष्पैर्नवं जलं पर्वतधातुताम्रम् ।
मयूरकेकाभिरनुप्रयातं शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति ॥ ११ ॥ रसा-
कुलं षट्पदसंनिकाशं प्रभुज्यते जम्बुफलं प्रकामम् । अनेकवर्णं पव-
नावधूतं भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम् ॥ १२ ॥ समुद्वहन्तः सलिला-
तिभारं बलाकिनो वारिधरा नदन्तः । महत्सु शृङ्गेषु महीधराणां
विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति॥ १३ ॥ बालेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन
विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन । गात्रानुपृक्तेन शुकप्रभेण नारीव लाक्षो-
क्षितकम्बलेन॥ १४ ॥ जाता वनान्ताः शिखिसुप्रनृत्ता जाताः
कदम्बाः सकदम्बशाखाः । जाता वृषा गोषु समानकामा जाता
मही सस्यवनाभिरामा ॥ १५ ॥ वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति । नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः
प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गमाः ॥ १६ ॥ धारानिपातैरभिहन्य-
मानाः कदम्बशाखासु विलम्बमानाः । क्षणार्जितं पुष्परसावगाढं
शनैर्मदं षट्चरणास्त्यजन्ति ॥ १७ ॥

टीका—बाली को मारकर और सुग्रीव को अभिषिक्त करके माल्य-
वान् पर बसता हुआ राम लक्ष्मण से बोला ॥ १ ॥ यह वह काल
प्राप्त हुआ है, अब जल के आने का समय है, देख तू पर्वतसदृश
मेघों से आकाश ढक गया है॥२॥द्यौ लोक समुद्रों के रस को सूर्य की
किरणों से धारण कर नौ महीने धारण किये गर्भ को जीवन रूप
(जलरूप)में जन्म देरहा है ॥ ३ ॥ अब मेघ की सीढ़ी २ से आकाश

पर चढ़कर कुटज और अर्जुन फूलों की माला से सूर्य को अलं-कृत किया जासक्ता है ॥४॥ मन्द २ वायुरूपी सांसवाला, सन्ध्या-के चन्दन से रङ्गा हुआ, धूसर मेघों वाला, आकाश कामातुर की तरह प्रतीत होता है ॥५॥ गर्मी से तपी हुई, नए जल से भीगी हुई, यह भूमि शोक से तपी हुई सीता की तरह बाष्प(गर्मी) छोड़ती है ॥ ६ ॥ यह फूले हुए कौंवाला, केवडे के फूलों से सुगन्धित पर्वत शांत हुए शत्रुवाले सुग्रीव की तरह अभिषिक्त होरहा है ॥७॥ पर्वत मेघरूपी काले मृगान पहनकर धारारूपी यज्ञोपवीत डाले हुए वायु से भरी हुई गुफाओं वाले (होने से शब्दवाले) मानों ब्रह्मचारियों की तरह पढ़ने लगे हैं ॥ ८ ॥ धूल मिट गई, वायु भीनी हुई है, गर्मी के दोष शान्त हो गये, पृथिवीपतियों की यात्रा रुक गई प्रवासी लोग अपने देशों को जारहे हैं ॥९॥ चकवे अब मानस सरोवर में वास के लिये प्यारियों समेत प्रस्थित हुए हैं, लगातार वर्षा के जल से मार्गों के टूट जाने के हेतु यान (रथ आदि) नहीं चलते हैं ॥ १० ॥ सर्ज और कदम्ब के फूलों से मिला हुआ, पर्वत की धात की तरह लाल, जल को पर्वत की नदियें शीघ्रतर बहा रही हैं, जिन पर कि मोर केके कर रहे हैं ॥ ११ ॥ रस भरे, भ्रमर सदृश, जम्बूफल को लोग प्रभूत खारहे हैं, और अनेक रङ्ग का, पकाहुआ आमफल, पवन से कम्पाया हुआ भूमि पर गिरता है ॥ १२ ॥ जिनके आगे २ बगलों की पंक्तियें उड़ रही हैं, वह मेघ गर्जते हुए जल के अति भार को उठाए पर्वतों के बड़े २ शिखरों पर विश्राम कर करके फिर चल पड़ते हैं ॥ १३ छोटी २ बीचबहूटियों से मध्य २ में युक्त नई हरियाली से भूमि उस स्त्री की तरह शोभावाली है, जिसने तोते के रङ्गवाला, बीच २ में लाल बिन्दुओं वाला, अङ्गों

के साथ लगा हुआ कपड़ा पहना हुआ हो ॥ १४ ॥ बनों के मध्य में जगह २ मोर नाच रहे हैं, कदम्बों की शाखाएं फूलों से भर गई है, गौओं और साण्डों में कामना तुल्य रूप से बढ़ी है, पृथिवी सब सब्ज बनों से सुहावनी होगई है ॥ १५ ॥ वह रही हैं, बरस रहे हैं, चिंघाड़ते हैं, सुहाते हैं, चिन्ता में हैं, नाचते हैं,तसल्ली पाए हुए हैं, (कौन ?) नदियें, मेघ, हाथी, बनप्रदेश, प्यारियों से वियुक्त पुरुष, मोर और बानर (सुग्रीव के राज्यलाभ से तसल्ली में है) ॥१६॥ भौंरे कदम की शाखाओंपर लटकते हुए और जल धाराओं के गिरने से ताड़न किये हुए खुशी में प्राप्त किये पुष्प रसों से बढ़े हुए मद को धीरे २ त्यागते हैं ॥ १७ ॥

मूल—तड़ित्पताकाभिरलंकृतानामुदीर्णगम्भीरमहारवाणाम् । विभान्ति रूपाणि बलाहकानां रणोत्सुकानामिव वानराणाम् ॥१८॥ मार्गानुगः शैलमनानुसारी संप्रस्थितो मेघरवं निशम्य । युद्धाभिकामः प्रतिनादशङ्की मत्तो गजेन्द्रः प्रतिसन्निवृत्तः ॥ १९ ॥ क्वचित्प्रगीता इव षट्पदौघैः क्वचित्प्रनृत्ता इव नीलकण्ठैः । क्वचित्प्रमत्ता इव वारणेन्द्रैर्विभान्त्यनेकाश्रयिणो वनान्ताः ॥ २० ॥ मुक्तासमाभं सलिलं पतद्वै सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम् । हृष्टा विवर्णच्छदना विहङ्गा सुरेन्द्रदत्तं तृषिताः पिबन्ति ॥ २१ ॥ स्वनैर्घनानां प्लवगाः प्रबुद्धा विहाय निद्रां चिरसंनिरुद्धाम् । अनेकरूपाकृतिवर्णनादा नवाम्बुधाराभिहता नदन्ति ॥ २२ ॥ नीलेषु नीला नववारिपूर्णा मेघेषु मेघाःप्रतिभान्ति सक्ता । दवाग्निदग्धेषु दवाग्निदग्धाः शैलेषु शैला इव बद्धमूलाः ॥ २३ ॥ मेघाः समुद्धूतसमुद्रनादा महाजलौघैर्गगनावलम्बाः । नदीस्तटाकानि सरांसि वापीर्महीं च कृत्स्नामपवाहयन्ति ॥ २४ ॥ वर्षप्रवेगा विपुलाः पतन्ति प्रवान्ति वाताः

समुदीर्णवेगाः । प्रनष्टकूलाः प्रवहन्ति शीघ्रं नद्यो जलं विप्रतिपन्न-
मार्गाः ॥ २५ ॥ नैर्नरेन्द्रा इव पर्वतेन्द्राः सुरेन्द्रनीतैः पवनोपनीतैः ।
घनाम्बुकुम्भैरभिषिच्यमाना रूपं श्रियं स्वामिव दर्शयन्ति ॥ २६ ॥
महान्ति कूटानि महीधराणां धाराविधौतन्यधिकं विभान्ति । महा-
प्रमाणैर्विपुलैः प्रपातैर्मुक्ताकलापैरिव लम्बमानैः ॥२७॥ विलीय-
मानैर्विहगैर्निमीलद्भिश्चपङ्कजैः । विकसन्त्या च मालत्या गतोऽस्तं
ज्ञायत रविः ॥२८॥ वृत्ता यात्रा नरेन्द्राणां सेना पथ्येव वर्तते ।
वैराणि चैव मार्गाश्च सलिलेन समीकृताः ॥ २९ ॥ मासि प्रौष्ठपदे
ब्रह्म ब्राह्मणानां विवक्षताम् । अयमध्यासमयः सामगानामुप-
स्थितः ॥ ३० ॥ इमाः स्फीतगुणा वर्षाः सुग्रीवः सुखमश्नुते ।
विजितारिः सदारश्च राज्ये महति च स्थितः ॥ ३१ ॥ स्वयमेव
हि विश्रम्य ज्ञात्वा कालमुपागतम् । उपकारं च सुग्रीवो वेत्स्यते
नात्र संशयः ॥ ३२ ॥

टीका—बिजली के झण्डे से शोभित, गम्भीर गर्जना (सिंहनाद) करतेहुए, मेघों के रूप रणोत्साही बानरोंकी तरह सुहाते हैं ॥१८॥ (अहह ! यह) पर्वतवन में घूमने वाला, रस्ते २ चलता हुआ, युद्धाभिलाषी मत्त गजेन्द्र (पीछे से) मेघ की ध्वनि सुनकर (किसी अन्य गजेन्द्र की) प्रति गर्ज समझकर पीछे लौट पड़ा है ॥ १९ ॥ बन के प्रदेशों में कहीं भौरों के गीत हैं, कहीं नील-कण्ठों के नाच हैं, कहीं गजेन्द्रों की मस्तियें हैं, इसतरह अनेक रङ्गों में शोभा पारहे हैं ॥२०॥ मोतियों के तुल्य अतीव निर्मल जल जो गिरकर पत्तों के दोनों पर टिक गया है, इन्द्र से दिये उस जल को भीगे हुए पंखों वाले प्यासे पंछी प्रसन्न होकर पीरहे हैं ॥ २१ ॥ मेघों की ध्वनियों से अपनी (सूखी मट्टी में पाई हुई) निद्रा को त्यागकर जागे हुए अनेक प्रकार की आकृति रङ्ग और

ध्वनियों वाले मेंडक नये जल की धाराओं से ताड़ित हुए बोल रहे हैं ॥२२॥ नीले मेघों के ऊपर चढ़े हुए नए जल से भरे हुए दूसरे नील मेघ इसतरह सोहते हैं जैसे वनाग्नि से दग्ध हुए पर्वतों के ऊपर और जड़ पकड़े हुए पर्वत हों॥२३॥ समुद्र की गर्ज को मात करते हुए आकाश में घूमतेहुए मेघ महाजल समूहों से नदी,तालाब, सरोवर, बावड़ी और सारी पृथिवी पर जल को एकरस बहा रहे हैं ॥२४॥ वृष्टि के वेग विपुल गिर रहेहैं, और वायु जोर के वेग से बहा रहे हैं, नदियें किनारों को तोड़कर रस्ते रोककरजोर से जल बहा रही हैं ॥२५॥ मनुष्यों से लाए हुए जल से अभिषिक्त राजों की तरह मेघ जल के कुम्भों से अभिषिक्त हुए पर्वत अपने (निर्मल) रूप को मानों (अनेक धातु रूपी) अपनी श्री की तरह दिखला रहे हैं ॥२६॥ धाराओं से धोए हुए पर्वतों के ऊंचे शिखरों पर से उतरते हुए बड़े मोटे और लम्बे (झरने) ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों मोतियों की लड़ियां टूट रही हैं ॥ २७ ॥ पंछियों के छिप जाने से, कमलों के मिच जाने से और मालती के खिलने से, सूर्य का अस्त होना प्रतीत होता है ॥ २८॥ राजाओं की चढ़ाई बन्द हुई, सेना मार्ग में ही स्थित होगई, पानी ने बैर और मार्ग दोनों बराबर कर (रोक) दिये हैं ॥ भाद्रपद मास में वेद पढ़ना चाहते हुए सामग ब्राह्मणों का यह पढ़ने का समय उपस्थित हुआ है ॥ ३० ॥ शत्रु को जीत चुका हुआ, और बड़े राज्य में स्थित हुआ सुग्रीव स्त्री समेत इन उत्तम गुणोंवाली वर्षाओं में सुख भोग रहा है ॥३१॥ अपने आप ही विश्राम करके समय आया जानकर सुग्रीव उपकार को जानेगा, इस में संशय नहीं ॥ ३२ ॥

सर्ग २६ (व० ३०) शरद ऋतु का वर्णन

मूल—गृहं प्रविष्टे सुग्रीवे विमुक्ते गगने घनैः । वर्षरात्रे स्थितो रामः

कामशोकाभिपीड़ितः ॥१॥ पाण्डुरं गगनं दृष्ट्वा विमलं चन्द्रमण्डलम् । शारदीं रजनीं चैव दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनाम् ॥ २ ॥ कामवृत्तं च सुग्रीवं नष्टां च जनकात्मजाम् । दृष्ट्वा कालमतीतं च मुमोह परमातुरः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा च विमलं व्योम गतविद्युद्बलाहकम् । सारसारवसंघुष्टं विललापार्तया गिरा ॥ ४ ॥ सरांसि सरिता वापीः काननानि वनानि च । तां विना मृगशावाक्षीं चरन्नाद्य सुखं लभे ॥५॥ अपि तां मद्वियोगाच्च सौकुमार्याच्च भामिनीम् । सुन्दरं पीडयेत्कामः शरद्गुणनिरन्तरः ॥ ६ ॥ एवमादि नरश्रेष्ठो विललाप नृपात्मजः। विहङ्ग इव सारङ्गः सलिलं त्रिदशेश्वरात् । ७॥ ततश्चचार रम्येषु फलार्थी गिरिसानुषु ददर्श पर्युपावृत्तो लक्ष्मीवांल्लक्ष्मणोऽग्रजम् ॥ ८ ॥ अथ पद्मपलाक्षीं मैथिलीमनुचिन्तयन् । उवाच लक्ष्मणं रामो मुखेन परिशुष्यता ॥ ९ ॥ दीर्घगम्भीरनिर्घोषाः शैलद्रुमपुरोगमाः । विसृज्य सलिलं मेघाः परिशान्ता नृपात्मज ॥१०॥ नीलोत्पलदलश्यामाः श्यामीकृत्वा दिशो दश । विमदा इव मातङ्गाः शान्तवेगाः पयोधराः ॥ ११ ॥ शाखासु सप्तच्छदपादपानां प्रभासु तारार्कनिशाकराणाम् । लीलासु चैवोत्तम वारणानां श्रियं विभज्याद्य शरत्प्रवृत्ता ॥ १२ ॥ संप्रत्यनेकाश्रयचित्रशोभा लक्ष्मीः शरत्कालगुणोपपन्ना । सूर्याग्रहस्तप्रतिबोधितेषु पद्माकरेष्वभ्यधिकं विभाति ॥ १३ ॥ अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैः स्मरप्रियैःपद्मरजोवकीर्णैः । महानदीनां पुलिनोपयातैः क्रीडन्ति हंसाः सह चक्रवाकैः ॥ १४ ॥

टीका—सुग्रीव घर में प्रविष्ट है आकाश मेघों से वियुक्त है, राम शोक से पीड़ित हुए बरसात के दिन बिता चुके हैं ॥ १ ॥ अब आकाश को श्वेत और चन्द्रमण्डल को निर्मल देखकर और शरद ऋतु की रात्रि को चांदनी से लिपा हुआ देखकर ॥ २ ॥ सुग्रीव

को कामवश देखकर, जनकसुताको अभीतक बेपता देखकर समय को बीतता जाता देखकर परम आतुर हुआ राम व्याकुल चित्त होगया ॥३॥ और विमल आकाश को बिजली और मेघ से शून्य सारसों की ध्वनियों से गूंजता हुआ देखकर आर्त वाणी से विलाप करता भया ॥४॥ आज उस मृगनयनी के बिना सरोवर, नदी, बावड़ी, वन और बगीचों में घूमता हुआ सुख नहीं पाता हूं ॥५॥ हा शोक ! शरद के गुणों से निरन्तर प्रवृत्त हुआ काम सीता को मेरे वियोग और अपनी सुकुमारता के हेतु अत्यन्त पीड़ित करेगा ॥६॥ इत्यादि वह नरश्रेष्ठ नृपसुत विलाप करता भया, जैसे पपीहा इन्द्र से जल चाहता हुआ विलपता है ॥७॥ उसी समय फल लाने को गए हुए रमणीय पर्वत चोटियों पर घूमकर लौटे हुए लक्ष्मीवान् लक्ष्मण ने बड़े भाई को इस अवस्था में देखा ॥८॥ तब पद्म पत्र तुल्य नेत्रोंवाली मैथिली को सोचते हुए राम ने सूखते हुए मुख से लक्ष्मण को कहा ॥९॥ हे नृपात्मज ! दीर्घ गम्भीर ध्वनिवाले, पर्वतों, वृक्षों और पुरों पर पहुंचनेवाले मेघ जल को त्यागकर अब शान्त होचुके हैं ॥ १० ॥ हाथियों की तरह महामेघ जिन पर बरस चुके हैं, वह चित्रा चोटियों वाले निर्मल पर्वत चन्द्र रश्मियों से अनुलिप्त हुए से प्रतीत होते हैं ॥ ११ ॥ सतौनों की शाखाओं पर, तारों, चन्द्र और सूर्य की प्रभाओं में, और उत्तम हाथियों की लीलाओं में श्री को बांटकर अब शरद प्रवृत्त हुई है ॥१२॥ शरत्काल के गुणों से प्रकट हुई, अनेक पदार्थों में विचित्र शोभावाली लक्ष्मी अब सूर्य की प्रथम किरणों से खिले हुए पद्मो में अधिक शोभा पाती है ॥१३॥ हंस (मानस सरोवर से अपने साथ) आये, सुन्दर विशाल पंखों वाले, पद्मों की धूलवाले, महानादियों के पुलिनों पर स्थित, काम के प्यारे चकवों के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ १४ ॥

मूलमदप्रगल्भेषु च वारणेषु गवां समूहेषु च दर्पितेषु। प्रसन्नतोयासु च निम्नगासु विभाति लक्ष्मीर्बहुधा विभक्ता ॥ १५ ॥ नभः समीक्ष्याम्बुधरैर्विमुक्तं विमुक्तबर्हाभरणा वनेषु। प्रियास्वरक्ता विनिवृत्तशोभा गतोत्सवा ध्यानपरा मयूराः ॥१६॥ व्यक्तंनभःशस्त्रविधौतवर्णं कृशप्रवाहाणि नदीजलानि। कह्लारशीताः पवनाः प्रवान्ति तमोविमुक्ताश्च दिशः प्रकाशाः ॥१७॥ सूर्यातपक्रामणनष्टपङ्का भूमिश्चिरोद्धाटितसान्द्ररेणुः। अन्योन्यवैरेण समायुतानामुद्योगकालोऽद्य नराधिपानाम् ॥१८॥ शरद्गुणाप्यायितरूपशोभाः प्रहर्षिताः पांसुसमुत्थितङ्गाः। मदोत्कटाः संप्रति युद्धलुब्धा वृषा गवां मध्यगता नदन्ति ॥१९॥ वित्रास्य कारण्डवचक्रवाकान्महारवौर्भिन्नकटा गजेन्द्राः। सरःसु बद्धाम्बुजभूषणेषु विक्षोभ्य विक्षोभ्य जलं पिबन्ति ॥२०॥ रात्रिः शशाङ्कोदितसौम्यवक्त्रा तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा। ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति नारीव शुक्लांशुकसंवृताङ्गी ॥२१॥ विपक्वशालिप्रसवानि भुक्त्वा प्रहर्षिता सारसचारुपङ्क्तिः। नभः समाक्रमति शीघ्रवेगा वातावधूता ग्रथितेव माला ॥२२॥ जलं प्रसन्नं कुसुमप्रहासं क्रौञ्चस्वनं शालिवनं विपक्वम्। मृदुश्च वायुर्विमलश्च चन्द्रः शंसन्ति वर्षव्यपीतकालम् ॥२३ लोकं सुवृष्ट्या परितोषयित्वा नदीस्तटाकानि च पूरयित्वा। निष्पन्नसस्यां वसुधां च कृत्वा त्यक्त्वा नभस्तोयधराः प्रनष्टाः ॥ २४ ॥ अन्योन्यबद्धवैराणां जिगीषूणां नृपात्मज। उद्योगसमयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः ॥ २५ ॥ इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज। न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं च तथाविधम् ॥ २६ ॥ चत्वारो वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमाः। मम शोकाभितप्तस्य तथा सीतामपश्यतः ॥२७॥ प्रियाविहीने दुःखार्ते हृतराज्ये विवासिते। कृपां न कुरुते राजा सुग्रीवो मयि लक्ष्मण ॥ २८ ॥

स किष्किन्धां प्रविश्य त्वं ब्रूहि वानरपुंगवम्। मूर्खं ग्राम्यसुखे
सक्तं सुग्रीवं वचनान्मम ॥२९॥ शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्य-
मुदीरितम्। सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥ ३० ॥
कृतार्थाः ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये। तान्मृतानपि क्रव्या-
दाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥ ३१ ॥

टीका—मदमत्त हाथियों में, दर्पवाले बैल समूहों में, और निर्मल जलवाली नदियों में अनेक प्रकार से विभक्त हुई लक्ष्मी शोभा पाती है ॥१५ मोर आकाश को मेघों से वियुक्त हुआ देखकर वनों में अपने चँवर रूपी भूषण त्यागे हुए प्यारियों में राग रहित हुए दूर हुई शोभा वाले, अब उत्सव के चले जाने पर ध्यान परायण हुए प्रतीत होते हैं ॥१६॥ तलवार की तरह निर्मल रङ्ग (नील) वाला आकाश साफ होगया है, नदियों के जल दुर्बल प्रवाह वाले हैं, कमल फूलों की ठण्डी सुगन्ध लिये पवन बहरहे हैं, अन्धकार से विमुक्त हुई दिशाएं साफ हैं, ॥१७॥ सूर्य की धूप के आक्रमण से भूमि का कीचड़ नष्ट हुआ है और चिर के पीछे फिर घनी रेणु उठी है, परस्पर वैर से मुकाबिले में जाने वाले राजों का अब उद्योग का समय है ॥१८॥ शरद् के गुणों से जिनके रूप की शोभा पुष्ट हुई है, वह प्रहर्षित हुए धूल उखाड़कर अपने अङ्गों में डाले हुए मदोत्कट बैल (दूसरे बैलों से) युद्ध के लोभी हुए गौओं के मध्यगत हो गर्ज रहे हैं ॥१९॥ जिनके कपोलों से मद बह रहे हैं, वह गजेन्द्र बड़ी गर्जों से बतख और चकवों को डराकर खिले हुए कमलरूपी भूषणों वाले सरोवरों में हिला हिलाकर जल पीते हैं ॥२०॥ रात जिसका कि उदय हुआ चन्द्र सौम्यमुख है, जिसने तारागण रूपी सुन्दर नेत्र खोले हुए हैं, चांदनी का दुपट्टा ओढ़े हुए श्वेत वस्त्र से ढके हुए शरीरवाली नारी की तरह शोभा देती

है ॥ २१ ॥ पके हुए चावलोंको खाकर प्रहर्षित हुई शीघ्र वेगवाली सारसों की सुन्दर पंक्ति वायु से उड़ाई हुई गून्दी हुई माला की तरह आकाश में उड़ती है ॥ २२ ॥ निर्मल जल, पुष्पों की मुसकराहट, चकवों की ध्वनि, पके हुए शालि समूह, नर्म वायु और विमल चन्द्र यह वर्षा समय का बीतना बतला रहे हैं ॥ २३ ॥ लोक को सुवृष्टि से प्रसन्न करके नदी और तालावों को पूर्ण करके, पृथिवी को खेती से सजा करके बादल आकाश को त्यागकर भाग गये हैं ॥ २४ ॥ हे नृपात्मज ! परस्पर से बद्ध वैर जिगीषु राजों का हे सौम्य यह उद्योग समय उपस्थित हुआ है ॥ २५ ॥ हे नृपात्मज राजाओं की यह पहली यात्रा है, पर न मैं सुग्रीव को देखता हूं, न वैसे उद्योग को ॥ २६ ॥ शोक से तपे हुए तथा सीता को न देखते हुए मुझे बरसात के चार महीने सौ बरस के तुल्य बीते हैं ॥ २७ ॥ प्रिया से हीन, दुःख से पीड़ित, हरे गये राज्यवाले परदेशी पर हे लक्ष्मण ! राजा सुग्रीव कृपा नहीं करता है ॥ २८ ॥ सो तू किष्किन्धा में प्रवेश करके वानरश्रेष्ठ ग्राम्यसुख में फंसे हुए मूर्ख सुग्रीव को मेरे बचन से कहो ॥ २९ ॥ अच्छा वा बुरा जो वचन कहा हो, जो उसे सत्य कर दिखलाता है, वही पुरुषोत्तम है ॥ ३० ॥ जो मित्र कृतार्थ हुए अकृतार्थ मित्रों के नहीं बनते हैं, उन कृतघ्नों को मारने पर गीध भी नहीं खाते हैं॥ ३१॥

सर्ग २७ व० ३३) लक्ष्मण का किष्किन्धा प्रवेश

मूल—अथ प्रतिसमादिष्टो लक्ष्मणः परवीरहा । प्रविवेश गुहां रम्यां किष्किन्धां रामशासनात् ॥ १ ॥ स तां रत्नमयीं दिव्यां श्रीमान् पुष्पितकाननाम् । रम्यां रत्नसमाकीर्णां ददर्श महतीं गुहाम् ॥ २ ॥ हर्म्यप्रासादसम्बाधां नानारत्नोपशोभिताम् । सर्वकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभिताम् ॥ ३ ॥ देवगन्धर्वपुत्रैश्च वानरैःकामरूपिभिः ।

दिव्यमाल्याम्बरधरैः शोभितां प्रियदर्शनैः ॥ ४ ॥ चन्दनागुरुपद्मानां गन्धैः सुरभिगन्धिताम् । मैरेयाणां मधूनां च सम्मोदितमहापथाम् ॥ ५ ॥ अङ्गदस्य गृहं रम्यं मैन्दस्य द्विविदस्य च । गवयस्य गवाक्षस्य गजस्य शरभस्य च ॥ ६ ॥ विद्युन्मालेश्च संपातेः सूर्याक्षस्य हनूमतः । वीरबाहोः सुबाहोश्च नलस्य च महात्मनः॥७॥ कुमुदस्य सुषेणस्य तारजाम्बवतोस्तथा । दधिवक्रस्य नीलस्य सुपाटलसुनेत्रयोः ॥८॥ एतेषां कपिमुख्यानां राजमार्गे महात्मनाम् । ददर्श गृहमुख्यानि महासाराणि लक्ष्मणः ॥ ९ ॥ पाण्डुरेण तु शैलेन परिक्षिप्तं दुरासदम् । वानरेन्द्रगृहं रम्यं महेन्द्रसदनोपमम् ॥ १० ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभितम् । दिव्यमाल्यवृतं शुभ्रं तप्तकाञ्चनतोरणम् ॥ ११ ॥ सुग्रीवस्य गृहं रम्यं प्रविवेश महाबलः । अवार्यमाणः सौमित्रिर्महाभ्रमिव भास्करः ॥ १२ ॥ स सप्त कक्ष्या धर्मात्मा यानासनसमावृताः । ददर्श सुमहद्गुप्तं ददर्शान्तःपुरं महत् ॥ १३ ॥ प्रविशन्नेव सततं शुश्राव मधुरस्वनम् । तन्त्रीगीतसमाकीर्णं समतालपदाक्षरम् ॥ १४ ॥ बह्वीश्च विविधाकारा रूपयौवनगर्विताः । स्त्रियः सुग्रीवभवने ददर्श स महाबलः ॥ १५ ॥ कूजितं नूपुराणां च काञ्चीनां निःस्वनं तथा । स निशम्य ततः श्रीमान्सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत् ॥ १६ ॥ रोषवेगप्रकुपितः श्रुत्वा चाभरणस्वनम् । चकार ज्यास्वनं वीरो दिशः शब्देन पूरयन् ॥१७॥ ततस्तारां हरिश्रेष्ठः सुग्रीवः प्रियदर्शनाम् । उवाच हितमव्यग्रस्त्रासंभ्रान्तमानसः ॥ १८ ॥ किं नु रुट्कारणं सुभ्रु प्रकृत्या मृदुमानसः । सरोष इव संप्राप्तो येनायं राघवानुजः॥१९॥

टीका—तब आज्ञा दिया हुआ, शत्रु वीरों के मारने वाला लक्ष्मण राम की आज्ञा से रमणीय किष्किन्धा गुफा में प्रविष्ट हुआ॥ १ ॥ उस ने वह दिव्य रत्नमयी, फूले हुए बगीचों वाली, रत्नों से भरीहुई

रमणीय बड़ी गुफा देखी ॥ २ ॥ जो बड़े २ मन्दिर और प्रासादों से भरी हुई रत्नों (उत्तम वस्तुओं) से सजी हुई, सदा मनमाने फल देने वाले फूले हुए वृक्षों से शोभित ॥ ३ ॥ दिव्य माला और वस्त्र धारे हुए प्रिय दर्शन वाले काम रूपी वानरों से और देव गन्धर्वों के पुत्रों से शोभित ॥ ४ ॥ चन्दन, अगर और पद्म के गन्धों से सुगन्धित, मैरेय और महुए के समूहों से महकती हुई सड़कों वाली ॥ ५ ॥ राजमार्ग के ऊपर लक्ष्मण ने इन मुख्य वानर महात्माओं के बड़े २ भारी महल देखे अङ्गद का, मैन्द का, द्विविद का, गवय का, गवाक्ष का, गज का, शरभ का, विद्युन्मालिका, संपातिका, सूर्याक्ष का, हनुमान का, वीरबाहुका, सुबाहु का, नल का, कुमद का, सुषेण का, तार का, जाम्बवान् का, दधिवक्र का, नील का, सुपाटल का और सुनेत्र का ॥ ६, ७, ८, ९ ॥ और श्वेत कोट से चारों ओर से घिरे हुए, दुरासद, कैलास की चोटियों के सदृश प्रासाद की श्वेत चोटियों से और सर्वदा यथेच्छ फल देने वाले फूले हुए वृक्षों से शोभित, दिव्य मालाओं से ढके हुए शुभ्र, शोभित सुवर्ण की तोरणों वाले सुग्रीव के रमणीय गृह में वह महाबली लक्ष्मण बिना रोक के प्रविष्ट हुआ जैसे सूर्य बड़े मेघ में ॥ १०, ११, १२, उस धर्मात्मा ने नाना जनों से भरी हुई सात डेउढ़ियें लंघकर आगे प्रवेश करके पूरी तरह से रक्षा किये हुए बहुत बड़े अन्तःपुर (रनिवास) को देखा ॥ १३ ॥ वहां प्रवेश करते ही उसने वीणा की ध्वनि से युक्त, समताल पद अक्षरों वाला मधुर गीत सुना ॥ १४ ॥ और रूप यौवन से गर्वित विविध प्रकार की बहुत स्त्रियें सुग्रीव के भवन में देखीं ॥ १५ ॥ नूपरों का शब्द और मेखलाओं का शब्द सुनकर श्रीमान् लक्ष्मण लज्जित होगया ॥ १६ ॥ भूषणों के शब्द को

सुनकर रोष के वेग से प्रकुपित हुए शब्द से दिशाओं को पूरण करते हुए उस वीरने चिल्ला की ध्वनि की ॥ १७ ॥ तब डर से घबराए मन वाला वानरश्रेष्ठ सुग्रीव अव्यग्र हो प्रियदर्शना तारा से यह हित शुभ लक्षणों वाला वचन बोला ॥ १८ ॥ हे सुभ्रु रोष का क्या कारण होसक्ता है, जिस से स्वभाव से ही मृदुचित्त यह राघव का छोटा भाई क्रुद्ध सा हुआ आया है॥ १९॥

मूल—अथवा स्वयमेवैनं द्रष्टुमर्हसि भामिनी। वचनैःसान्त्वयुक्तैश्चप्रसादयितुमर्हसि॥२०॥सा प्रस्खलन्ती मदविह्वलाक्षी प्रलम्बकाञ्चीगुणहेमसूत्रा। सलक्षणा लक्ष्मणसंनिधानं जगाम तारा नमिताङ्गयष्टिः ॥ २१ ॥ स तां समीक्ष्यैव हरीशपत्नीं तस्थावुदासीनतया महात्मा। अवाङ्मुखोऽभून्मनुजेन्द्रपुत्रः स्त्रीसंनिकर्षाद्विनिवृत्तकोपः ॥ २२ ॥ सा पानयोगाच्च निवृत्तलज्जा दृष्टिप्रसादाच्च नरेन्द्रसूनोः। उवाच तारा प्रणयप्रगल्भं वाक्यं महार्थं परिसान्त्वरूपम् ॥२३॥ किं कोपमूलं मनुजेन्द्रपुत्र कस्ते न संतिष्ठति वा निदेशे। कः शुष्कवृक्षं वनमापतन्तं दावाग्निमासीदति निर्विशङ्कः॥२४॥न कोपकालः क्षितिपालपुत्र न चापि कोपः स्वजने विधेयः। त्वदर्थकामस्य जनस्य तस्य प्रमादमप्यर्हसि वीरसोढुम् ॥२५॥ तं कामवृत्तं मम संनिकृष्टं कामाभियोगाच्च विमुक्तलज्जम्। क्षमस्व तावत्परवीरहन्तस्त्वद्भ्रातरं वानरवंशनाथम् ॥ २६ ॥ उद्योगस्तु चिराज्ञप्तः सुग्रीवेण नरोत्तम। कामस्यापि विधेयेन तवार्थप्रतिसाधने ॥ २७ ॥ तदागच्छ महाबाहो चारित्रं रक्षितं त्वया। अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम् ॥ २८॥ तारया चाप्यनुज्ञातस्त्वरया चापि चोदितः। प्रविवेश महाबाहुरभ्यन्तरमरिन्दमः ॥ २९ ॥

टीका—अथवा हे सुन्दरि ! आप जाकर ही इसे देखने योग्य हैं, और तसल्ली युक्त वचनों से प्रसन्न करने योग्य हैं ॥ २० ॥ वह

मद से भरे नेत्रों वाली, लटकते हुए मेखला की सुनहरी ज़ञ्जीर वाली झुकी हुई अङ्गयष्टिवाली, फिसलती हुई लक्ष्मण के निकट गई ॥ २१ ॥ वह महात्मा वानरेश की पत्नी को देखकर उदासीनता से स्थित हुआ, उस राजपुत्र ने मुख नीचे कर लिया और स्त्री के निकट आने से क्रोध हटा दिया ॥ २२ ॥ वह तारा (मधु) पान के योग से दूर हुई लज्जा वाली और राजपुत्र की प्रसन्न दृष्टि से निर्भय हुई प्रेम से निडर बड़े अर्थ वाला तसल्ली देने वाला वाक्य बोली ॥ २३ ॥ हे नरेन्द्रपुत्र आपके कोप का क्या मूल है, कौन आपकी आज्ञा में स्थित नहीं होता है, कौन सूखे वृक्षों वाले बन में लगे अग्नि को निःशंक होकर दबाता है ॥ २४ ॥ हे पृथिवीपाल के पुत्र ! आपका यह कोप का काल नहीं है, और न ही अपने जन में कोप करना चाहिये, हे वीर ! आपका भला चाहते हुए जन का प्रमाद भी हो तो क्षमा करने योग्य हो ॥ २५ ॥ कामवश से मेरे समीप वर्तमान, और कामावेश से लज्जा रहित हुए उस अपने भाई वानर वंश के नाथ को हे शत्रुओं के वीरों को मारने वाले आप क्षमा करने योग्य हो ॥ २६ ॥ किन्तु हे नरोत्तम काम के वशवर्ती भी सुग्रीव ने आपका अर्थ साधने में चिर से उद्योग आरम्भ किया हुआ है ॥ २७ ॥ सो आइये हे महाबाहो आपने चरित्र की रक्षा की है, बिना छल के मित्रभाव से (न कि विकार से) स्त्री को देखना सत्पुरुषों का धर्म है ॥ २८ ॥ तारा से अनुज्ञा दिया हुआ और जल्दी से प्रेरा हुआ शत्रुओं को सिधाने वाला वह महाबाहु अभ्यन्तर प्रविष्ट हुआ ॥ २९ ॥

सर्ग २८ (व० ३४) लक्ष्मण का सुग्रीव को उपदेश

मूल—तमप्रतिहतं क्रुद्धं प्रविष्टं पुरुषर्षभम् । सुग्रीवो लक्ष्मणं दृष्ट्वा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥ १ ॥ उत्पपात हरिश्रेष्ठो हित्वा सौवर्णमा-

सनम् । महान्महेन्द्रस्य यथा स्वलंकृत इव ध्वजः ॥ २ ॥ रुमा-द्वितीयं सुग्रीवं नारीमध्यगतं स्थितम् । अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धः सतारं शशिनं यथा ॥ ३ ॥ सत्त्वाभिजनसम्पन्नः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः । कृतज्ञः सत्यवादी च राजा लोके महीयते ॥ ४ ॥ शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं तु गवानृते । आत्मानं स्वजनं हन्ति पुरुषः पुरुषानृते ॥ ५ ॥ गीतोऽयं ब्रह्मणः श्लोकः सर्वलोकनमस्कृतः । दृष्ट्वा कृतघ्नं क्रुद्धेन तन्निबोध प्लवंगम ॥६॥ + गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा । निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ ७ ॥ ननु नाम कृतार्थेन त्वया रामस्य वानर । सीताया मार्गणे यत्नः कर्त्तव्यः कृतमिच्छता ॥ ८ ॥

टीका—वेरोक प्रविष्ट हुए उस पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मण को क्रुद्ध देखकर सुग्रीव के इन्द्रिय घबराए ॥ १ ॥ वह वानरश्रेष्ठ सोने के आसन को त्याग कर सजी हुई महेन्द्र की ध्वजा की तरह उठा ॥ २ ॥ तारा सहित चन्द्र की तरह नारी मध्य में रुमा सहित स्थित सुग्रीव को क्रुद्ध हुआ लक्ष्मण बोला ॥३॥ कि शुद्ध मन और वंश से युक्त, दयावान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवादी राजा लोक में पूजा जाता है ॥ ४ ॥ घोड़े के विषय में झूठ से सौ को मारता है (घोड़े के देने आदि की प्रतिज्ञा को झूठ करने में सौ घोड़े की हत्या का पाप लगता है)गौ के विषय झूठ में हज़ार को और पुरुष के विषय में झूठ से अपने आप को और अपने जन को मारता है, (आत्महत्या और स्वजन हत्या का पाप भागी होता है)॥ ५ ॥ कृतघ्न को देखकर क्रुद्ध हुए ब्रह्मा ने यह श्लोक गाया है, जो सब लोकों से आदृत है, हे वानर ! उसे जान ॥ ६ ॥ गौहत्यारे, सुरा पीने वाले, चौर और व्रत को तोड़ने वाले को सत्पुरुषों ने निष्कृति (बदला, कुफारा) कहा है, परन्तु कृतघ्न की कोई

निष्कृति नहीं है॥७॥निःसन्देह राम से कृतार्थ हुए अब प्रत्युपकार करना चाहते हुए आपको सीता के ढूंढने में यत्न करना चाहिये।

सर्ग २९ (व० ३६) सुग्रीव का नम्र उत्तर

मूल—स लक्ष्मणं भीमबलं सर्ववानरसत्तमः। अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं संप्रहर्षयन् ॥ १ ॥ प्रनष्टा श्रीश्च कीर्त्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम्। रामप्रसादात्सौमित्रे पुनश्चाप्तमिदं मया ॥ २ ॥ कः शक्तस्तस्य देवस्य ख्यातस्य स्वेन कर्मणा। तादृशं प्रतिकुर्वीत अंशेनापि नृपात्मज ॥ ३ ॥ सीतां प्राप्स्यति धर्मात्मा वधिष्यति च रावणम्। सहायमात्रेण मया राघवः स्वेन तेजसा ॥ ४ ॥ अनुयात्रां नरेन्द्रस्य करिष्येऽहं नरर्षभ। गच्छतो रावणं हन्तुं वैरिणं सपुरःसरम्॥५॥+यदि किंचिदतिक्रान्तं विश्वासात्प्रणयेन वा। प्रेष्यस्य क्षमितव्यं मे न कश्चिन्नापराध्यति ॥ ६ ॥ इति तस्य ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः। अभवल्लक्ष्मणः प्रीतः प्रेम्णा चेदमुवाच ह ॥ ७॥ सर्वथा हि मम भ्राता सनाथो वानरेश्वर। त्वया नाथेन सुग्रीव प्रश्रितेन विशेषतः॥ ८ ॥ धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः। उपपन्नं च युक्तं च सुग्रीव तव भाषितम् ॥ ९ ॥ किं तु शीघ्रमितो वीर निष्क्रम त्वं मया सह। सान्त्वयस्य वयस्यं च भार्याहरणदुःखितम् ॥ १० ॥ यच्च शोकाभिभूतस्य दृष्ट्वा रामस्य भाषितम्। मया त्वं परुषाण्युक्तस्तत्क्षमस्व सखे मम॥ ११ ॥

टीका—सब वानरों में श्रेष्ठ सुग्रीव भीमबल वाले लक्ष्मण को प्रहर्षित करता हुआ नम्र वाक्य बोला ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण ! राम के प्रसाद से मैंने नष्ट हुई श्री, कीर्त्ति और पुराना वानरराज्य प्राप्त किया है ॥ २ ॥ अपने कर्म से विख्यात उस देव का हे नृपात्मज! कौन पुरुष है जो अंश से भी बदला देसक्ता है ॥ ३ ॥ धर्मात्मा राघव मुझ सहायमात्र से वस्तुतः अपने ही तेज से सीता को प्राप्त

होगा. और रावण को मारेगा ॥ ४ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अपने आगे चलनेवालों के सहित वैरी रावण को मारने जाते हुए नरेन्द्र (राम) की मैं अनुयात्रा करूंगा ॥ ५ ॥ यदि विश्वास से वा प्रेम से कुछ अतिक्रम हुआ है. तो मुझ दास को क्षमा करनी चाहिए, कोई ऐसा नहीं. जिससे अपराध न हुआ हो ॥ ६ ॥ सुग्रीव महात्मा के ऐसा कहते हुए प्रसन्न हुआ लक्ष्मण प्रेम से यह बोला ॥ ७ ॥ हे वानरेश्वर सुग्रीव विशेषतया नम्र तुझ नाथ से सर्वथा मेरा भाई सनाथ है॥८॥ धर्मज्ञ कृतज्ञ. संग्रामों में न लौटनेवाले का यह तेरा भाषण योग्य और युक्ति युक्त है ॥ ९ ॥ किन्तु हे वीर यहां से जल्दी मेरे साथ चल, और चलकर स्त्री के हरण से दुःखित अपने मित्र को तसल्ली दे॥१०॥और जो शोक से दबे हुए राम का विलाप देखकर मैंने कठोर कहा है.हे मेरे मित्र उसे क्षमा करना११

सर्ग ३० (व० ३८) सुग्रीव का राम के पास जाना

मूल—एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना।हनूमन्तं स्थितं पार्श्वे वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ तांस्तांस्त्वमानाय क्षिप्रं पृथिव्यां सर्ववानरान् । सामदानादिभिः कल्पैरेवं नरवैरगवत्तरैः ॥ २ ॥ प्रेषिताःप्रथमं ये च मया ज्ञाता महाजवाः।त्वरणार्थं तु भूयस्त्वं संप्रेषय हरीश्वरान् ॥ ३ ॥ तस्य वानरराजस्य श्रुत्वा वायुसुतो वचः । दिक्षु सर्वासु विक्रान्तान्प्रेषयामास वानरान् ॥ ४ ॥ मृत्युकालोपमस्याज्ञां राजराजस्य वानराः । सुग्रीवस्य ययुः श्रुत्वा सुग्रीवभयशङ्किताः ॥ ५ ॥ वनेभ्यो गह्वरेभ्यश्च सरिद्भ्यश्च महाबला । आगच्छद्वानरी सेना पिबन्तीव दिवाकरम्॥६॥स वानरशतैस्तीक्ष्णैर्बहुभिःशस्त्रपाणिभिः । परिकीर्णो ययौ तत्र यत्र रामो व्यवस्थितः ॥ ७ ॥ आसाद्य च ततो रामं कृताञ्जलिपुटोऽभवत्।कृताञ्जलौ स्थिते तस्मिन्वानराश्चाभवंस्तथा ॥ ८ ॥ तटाकमिव तं दृष्ट्वा रामः कुड्मलपङ्कजम् । वानराणां

महत्सैन्यं सुग्रीवे प्रीतिमानभूत् ॥९॥ पादयोः पतितं मूर्ध्ना तमुत्थाप्य हरीश्वरम्। प्रेम्णा च बहुमानाच्च राघवः परिषस्वजे ॥१०॥

टीका—महात्मा लक्ष्मण से ऐसे कहा हुआ सुग्रीव पास स्थित हनुमान् से यह बचन बोला ॥ १ ॥ पृथिवी पर से उन २ सारे वानरों को अति वेगवाले वानरों के द्वारा साम दान आदि उपायों से जल्दी मंगवा ॥२॥ जो महा वेगवाले पहले भेजे गये हैं, वह मुझे ज्ञात हैं, तथापि जल्दी के लिये फिर तू और सरदारों को भेज ॥३॥ उस वानरराज के बचन को सुनकर पवनसुत ने सारी दिशाओं में पराक्रमी वानरों को भेजा ॥४॥ मृत्यु काल के तुल्य अपने राजराज सुग्रीव की आज्ञा को सुनकर सुग्रीव के भय से डरे हुए सब वानर आगए ॥५॥ बनों से, कन्दराओं से और नदियों पर से बड़े वेगवाली वानरी सेना मानों सूर्य को पीती हुई (धूल से ढांपती हुई) आई ॥ ६ ॥ तब वह हाथ में शस्त्र लिये, बड़े तीक्ष्ण अनेक वानरों से घिरा हुआ वहां गया, जहां राम स्थित थे ॥ ७॥ वहां वह राम के पास जाकर हाथ जोड़कर खड़ा होगया, उसके हाथ जोड़कर खड़ा होने पर सभी वानर हाथ जोड़कर खड़े होगये ॥ ८ ॥ राम कमलों की कलियोंवाले तालाब के तुल्य उसकी और वानरों की बड़ी सेना को देखकर सुग्रीव से प्रीतिमान् हुए ॥ ९ ॥ मस्तक द्वारा पाओं पर गिरे हुए उस वानरेश्वर को प्रेम और बहुमान से उठाकर राम ने गले लगाया ॥ १० ॥

सर्ग ३१ (व० ४०,४५) वानरों को सीता के ढूंढने के लिये भेजना

मूल—अथ राजा समृद्धार्थः सुग्रीवः प्लवगेश्वरः। उवाच नरशार्दूलं रामं परबलार्दनम् ॥१॥ आगता विनिविष्टाश्च बलिनः कामचारिणः। वानरेन्द्रा महेन्द्राभा ये मद्विषयवासिनः ॥२॥ ख्यातकर्मापदानाश्च बलवन्तो जितक्लमाः। पराक्रमेषु विख्याता व्यवसायेषु

चोत्तमाः ॥३॥ यन्मन्यसे नरव्याघ्र प्राप्तकालं तदुच्यताम् । त्वत्सैन्यं त्वद्वशे युक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ४ ॥ तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो दशरथात्मजः । बाहुभ्यां संपरिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ ज्ञायतां सौम्य वैदेही यदि जीवति वा न वा । स च देशो महाप्राज्ञ यस्मिन्वसति रावणः ॥ ६ ॥ नाहमस्मिन्प्रभुः कार्ये वानरेन्द्र न लक्ष्मणः । त्वमस्य हेतुः कार्यस्य प्रभुश्च प्लवगेश्वरः ॥७॥ एवमुक्तस्तु सुग्रीवो वीरः कपिगणेश्वरः । वेगविक्रमसंपन्नान्संदिदेश विशेषवित् ॥८॥ यश्च मासान्निवृत्तोऽग्रे दृष्टा सीतेति वक्ष्यति । मत्तुल्यविभवो भोगैः सुखं स विहरिष्यति ॥ ९ ॥ विशेषेण तु सुग्रीवो हनूमत्यर्थमुक्तवान् । स हि तस्मिन्हरिश्रेष्ठे निश्चितार्थोऽर्थसाधने ॥ १० ॥ न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये । नाप्सु वा गतिसङ्गं ते पश्यामि हरिपुङ्गव ॥ ११ ॥ सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः । विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः ॥१२॥ तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते । तद्यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय ॥ १३ ॥ त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः । देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित ॥१४॥ ततः कार्यसमासङ्गमवगम्य हनूमति । विदित्वा हनुमन्तं च चिन्तयामास राघवः ॥ १५॥ सर्वथा निश्चितार्थोऽयं हनूमति हरीश्वरः । निश्चितार्थतरश्चापि हनूमान्कार्यसाधने ॥१६॥ तदेवं प्रस्थितस्यास्य परिज्ञातस्य कर्मभिः । भर्त्रा परिगृहीतस्य ध्रुवः कार्यफलोदयः ॥ १७ ॥ ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम् । अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परन्तपः ॥१८॥ अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिन्हेन जनकात्मजा । मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नानुपश्यति ॥ १९ ॥ व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः । सुग्रीवस्य च संदेशः सिद्धिं कथयतीव मे ॥ २० ॥ स तद्गृह्य हरिश्रेष्ठः कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः । वन्दित्वा चरणौ चैव

प्रस्थितः प्लवगर्षभः ॥ २१ ॥ एवं संचोदिताः सर्वे राज्ञा वानरयूथपाः । स्वां स्वां दिशमभिप्रेत्य त्वरिताः संप्रतस्थिरे ॥ २२ ॥ ते सरांसि सरित्कक्षानाकाशं नगराणि च । नदीर्दुर्गांस्तथा देशान्विचिन्वन्ति समन्ततः ॥ २३ ॥

टीका—तब पूर्ण कार्योंवाले वानरपति सुग्रीव ने शत्रुबल के पीड़ने वाले नरश्रेष्ठ राम से कहा ॥ १ ॥ मेरे देशवासी, महेन्द्रतुल्य, कामचारी बली बानरेन्द्र आगये हैं, और उन्हों ने छावनियां डाल दी हैं ॥ २॥ युद्ध में जिनका शौर्य प्रसिद्ध है, बलवाले हैं, थकावट को जीते हुए हैं, पराक्रमों में विख्यात हैं, और कर्मों में उत्तम हैं ॥ ३ ॥ हे नरश्रेष्ठ जो कुछ इस समय के योग्य समझते हो, वह आज्ञा दीजिये, आपकी सेना आपके बस में है, उसे युक्त आज्ञा दीजिये ॥४॥ ऐसे कहते हुए सुग्रीव को दशरथसुत राम भुजाओं से गले लगाकर यह बचन बोले ॥ ५ ॥ हे सौम्य वैदेही का पता लगाइये, जीती है वा नहीं, और उस देश का हे महाप्राज्ञ जहां रावण बसता है ॥६॥ हे वानरेन्द्र इस कार्य में न मैं समर्थ हूं, न लक्ष्मण, हे वानरेश्वर तू ही इस कार्य का कर्त्ता है और तू ही समर्थ है ॥७॥ ऐसे कहे हुए (वानरों की) विशेषता को जाननेवाले, वानरगण के स्वामी वीर सुग्रीव ने वेग और पराक्रम से सम्पन्न प्रसिद्ध बानरों को आज्ञा दी ॥ ८ ॥ कि जो एक महीने के अन्दर २ आकर मुझे यह बतलाएगा, कि मैंने सीता देखी है, वह भोगों से मेरे तुल्य ऐश्वर्यवाला हुआ सुखसे विचरेगा ॥९॥ विशेष करके सुग्रीव ने हनुमान् को कहा, क्योंकि वह अर्थ साधन के विषय में उस वानरश्रेष्ठ पर पूरा भरोसा रखता था ॥१०॥ हे वानरश्रेष्ठ ! न भूमि में, न अन्तरिक्ष में, न आकाश में, न देवलोक में, न जलों में कहीं तेरी गति का रुकना देखता हूं ॥ ११ ॥

तुझे असुर, गन्धर्व, नाग नर और देवताओं के सारे स्थान समुद्र पर्वतों समेत विदित हैं ॥ १२ ॥ तेज से भी तेरे बराबर कोई प्राणधारी पृथिवी पर नहीं है, सो जिसतरह सीता का पता लगे, वह तूही सोच ॥ १३ ॥ तुझ में ही हे नीति में पण्डित हनुमन् ! बल बुद्धि पराक्रम, देशकाल का अनुसरण और नीति है ॥१४॥ तब हनुमान् में कार्य सिद्धि जानकर और हनुमान् को वैसा जानकर राम ने सोचा ॥ १५ ॥ कि यह वानरेश्वर हनुमान् पर पूरा भरोसा रखता है, और हनुमान् भी कार्यसाधन में बढ़कर निश्चयवाला है ॥ १६ ॥ सो इसप्रकार से भेजे हुए और अपने किये कर्मों से जाने हुए, स्वामी से आदर किये हुए को अवश्य कार्य में सफलता होगी ॥ १७ ॥ तब उस परन्तप ने प्रसन्न होकर अपने नाम के चिन्ह से शोभित अंगूठी राजपुत्री के लिये निशानी दी ॥१८॥ इस चिन्ह से हे वानरश्रेष्ठ जनकसुता अनुद्विग्न हुई तुझे मेरे पास से आया जानेगी ॥ १९ ॥ हे वीर तेरा निश्चय और दिलेरी वाला पराक्रम और सुग्रीव का सन्देश मुझे सिद्धि बतलाते हैं ॥ २० ॥ वह वानरश्रेष्ठ ! उसे लेकर हाथ जोड़कर माथे पर रखकर राम के चरणों की वन्दना करके प्रस्थित हुआ ॥ २१ ॥ इस प्रकार राजा से प्रेरे हुए सारे वानर यूथपति जल्दी करते हुए अपनी २ दिशा को लक्ष्य करके प्रस्थित हुए ॥ २२ ॥ वह सरोवर, नदी, बेलें उजाड़, नगर, नदी तथा दुर्ग देशों में घूमते भए ॥ २३ ॥

सर्ग ३२ (व० ४८-५८) सम्पाति से सीता का पता लगना

मूल—सह ताराङ्गदाभ्यां तु सहसा हनुमान्कपिः । सुग्रीवेण यथोदिष्टं गन्तुं देशं प्रचक्रमे ॥ १ ॥ स तु दूरमुपागम्य सर्वैस्तैः कपिसत्तमैः । ततो विचित्य विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च ॥ २ ॥ पर्व-

ताश्चनदीदुर्गान्सरांसि विपुलद्रुमान् । वृक्षखण्डांश्च विविधान्पर्वतान्वनपादपान् ॥ ३ ॥ अन्वेषमाणास्तु सर्वे वानराः सर्वतो दिशम् ॥ ४ ॥ ते विचित्य पुनः खिन्ना विनिष्पत्य समागताः । एकान्ते वृक्षमूलेतु निषेदुर्दीनमानसाः ॥ ५ ॥ ते मुहूर्तं समाश्वस्ताः किञ्चिद्भग्नपरिश्रमाः । पुनरेवोद्यताः कृत्स्नां मार्गितुं दक्षिणां दिशम् ॥ ६ ॥ हनुमत्प्रमुखास्तावत्प्रस्थिताः प्लवगर्षभाः । विन्ध्यमेवादितः कृत्वा विचेरुश्च समन्ततः ॥ ७ ॥ ततस्ते ददृशुर्घोरं सागरं वरुणालयम् । अपारमभिगर्जन्तं घोरैरूर्मिभिराकुलम् ॥ ८ ॥ विन्ध्यस्य तु गिरेः पादे संप्रपुष्पितपादपे । उपविश्य महात्मानश्चिन्तामापेदिरे तदा ॥ ९ ॥ इदानीमकृतार्थानां मर्तव्यं नात्र संशयः । प्रधानभूताश्च वयं सुग्रीवस्य समागताः ॥१०॥ इहैव सीतामन्वीक्ष्य प्रवृत्तिमुपलभ्य वा । नो चेद्गच्छाम तं वीरं गमिष्यामो यमक्षयम् ॥ ११ ॥ उपविष्टास्तु ते सर्वे यस्मिन्प्रायं गिरिस्थले । हरयो गृध्रराजश्च तं देशमुपचक्रम ॥१२ ॥ संपातिर्नाम नाम्ना तु चिरजीवी विहङ्गमः । भ्राता जटायुषः श्रीमान्विख्यातबलपौरुषः ॥ १३ ॥ अङ्गदः परमायस्तो हनूमन्तमथाब्रवीत् । प्रियं कृतं हि रामस्य धर्मज्ञेन जटायुषा ॥ १४ ॥ राघवार्थे परिश्रान्ता वयं संत्यक्तजीविताः । कान्ताराणि प्रपन्नाः स्म न च पश्याम मैथिलीम् ॥ १५ ॥ तत्तु श्रुत्वा तथा वाक्यमङ्गदस्य मुखोद्गतम् । सबाष्पो वानरान्गृध्रः प्रत्युवाच महास्वनः ॥ १६ ॥ यवीयान्स मम भ्राता जटायुर्नाम वानराः । यमाख्यात हतं युद्धे रावणेन बलीयसा ॥ १७ ॥ नहि मे शक्तिरस्त्यद्य भ्रातुर्वैरविमोक्षणे । वाङ्मात्रेणापि रामस्य करिष्ये साह्यमुत्तमम् ॥ १८ ॥ रामस्ययदिदं कार्यं कर्त्तव्यं प्रथमं मया । जरया च हृतं तेजः प्राणाश्च शिथिला मम ॥ १९ ॥ तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता । ह्रियमाणा

मया दृष्टा रावणेन दुरात्मना ॥ २० ॥ क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च भामिनी । तां तु सीतामहं मन्ये रामस्य परिकीर्तनात् ॥ २१ ॥ इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने । तस्मिंल्लङ्का पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा ॥२२॥ जाम्बूनदमयै र्गौश्चित्रैः काञ्चनवेदिकैः । प्रासादैर्हेमवर्णैश्च महद्भिः सुसमाकृता ॥ २३ ॥ प्राकारेणार्कवर्णेन महता च समन्विता । तस्यां वसति वैदेही दीना कौशेयवासिनी ॥२४॥ रावणान्तः पुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता । जनकस्यात्मजां राज्ञस्तस्यां द्रक्ष्यथ मैथिलीम् ॥ २५ ॥ उपायो दृश्यतां कश्चिद्लङ्घने लवणाम्भसः । अभिगम्य तु वैदेही समृद्धार्था गमिष्यत ॥ २० ॥

टीका—उसी समय हनुमान् वानर तार और अङ्गद के सहित सुग्रीव से बतलाए देश की ओर चल पड़ा ॥ १ ॥ वह उन सब वानरों के साथ दूर जाकर विन्ध्याचल की गुफा और जङ्गलों को ढूंढकर फिर पर्वत की चोटियां, नदी तटों के दुर्गम स्थान सरोवर, बड़े २ वृक्ष, भान्ति २ के वृक्ष समूह, पर्वत और बन, वृक्षों का सारी दिशाओं में ढूंढते भए ॥ २, ३, ४ ॥ वह ढूंढकर फिर थके हुए निकलकर सब दीन मन हुए, एकान्त में एक वृक्ष के नीचे बैठ गये ॥ ५ ॥ वह बड़ी देर आराम करके कुछ दूर हुए परिश्रम वाले फिर सारी दक्षिण दिशा ढूंढने को तय्यार हुए ॥ ६ ॥ तब हनुमान् आदि सब वानरश्रेष्ठ प्रस्थित हुए और विन्ध्याचल से आरम्भ कर सब ओर घूमे ॥ ७ ॥ तब उन्हों ने वरुण के स्थानभूत भयंकर अपार समुद्र को देखा, जो घोर लहरों से आकुल हुआ गर्ज रहा है ॥ ८ ॥ फूले हुए वृक्षों वाले विन्ध्यपर्वत के पाद पर बैठ कर वह महात्मा सोचने लगे ॥९॥ अब अकृत कार्य हुए हम को मरना उत्तम है, इस में संशय नहीं, हम सुग्रीव

के प्रधान हुए मिल कर आए हैं ॥ १० ॥ या तो यहां ही सीता को ढूंढ कर उस का समाचार लेकर उस बीर के पास चलें, नहीं हो यम के घर चलें ॥ ११ ॥ वह सारे वानर पर्वत के जिस प्रदेश पर खाना पीना छोड़ कर बैठे थे, उस देश में एक गृधराज आया ॥ १२ ॥ संपाति नाम बड़ा बूढ़ा विहङ्गम, जटायु का भाई विख्यात बल पौरुष वाला ॥ १३ ॥ इधर परम दुःखित हुए अङ्गद ने हनुमान् से कहा, धर्मज्ञ जटायु ने राम का प्रिय कार्य किया (जिसने अपना जीवन त्यागते हुए सीता की प्रवृत्ति दी) ॥ १४ ॥ हम ने जीवन से बे परवाह होकर राम के लिये परिश्रम किया, उजाड़ों में घूमे, पर मैथिली का पता न मिला ॥ १५ ॥ अंगद के मुख से निकले उस वाक्य को सुन कर वह बड़ी ध्वनि वाला गृध्र आंसु भर कर वानरों से बोला ॥ १६ ॥ हे वानरो जटायु नाम मेरा ही छोटा भाई था, जिस को तुम युद्ध में बली रावण से मारा गया बतलाते हो ॥ १७ ॥ मेरा अब भाई का वैर छुड़ाने में तो शक्ति नहीं है, तथापि बाणी मात्र से ही मैं राम की उत्तम सहायता करूंगा ॥ १८ ॥ राम का जो यह कार्य है, यह मेरे लिये (आप से) प्रथम कर्तव्य है, किन्तु बुढ़ापे ने मेरा तेज हर लिया है, और प्राण ढीले होगए हैं ॥ १९ ॥ रूप से सम्पन्न, सारे भूषणों से भूषित एक युवति दुरात्मा रावण से हरी जाती हुई मैंने देखी है ॥ २० ॥ जो सुन्दरी राम राम और लक्ष्मण ऐसे पुकार रही थी, राम के कीर्तन से मैं उसे सीता समझता हूं ॥ २१ ॥ यहां से पूरे सौ योजन पर समुद्र के द्वीप में विश्वकर्मा की बनाई हुई रमणीय लङ्का पुरी है ॥ २२ ॥ जो चित्र सुनहरी द्वारों से सुनहरी वेदियों से और सुनहरी रंग के बड़े २ मन्दिरों से सजी हुई है ॥ २३ ॥ सूर्य तुल्य चमकते हुए

बड़े कोट से युक्त है, उस में रेशमी वस्त्रों वाली दीन वैदेही बसती है ॥ २४ ॥ रावण के अन्तःपुर में रुकी हुई राक्षसियों से सुरक्षित है, उस में जनकराज की कन्या मैथिली को तुम देखोगे ॥ २५ ॥ समुद्र से पार लंघने का उपाय देखो, वैदेही के पास पहुंच कर सफल मनोरथ हुए वापिस आओगे ॥ २६ ॥

सर्ग ३३ (व०६४-६६) हनुमान् को लंका जानेके लिये उत्साहित करना

मूल—सम्पातेर्वचनं श्रुत्वा हरयो रावणक्षयम् । हृष्टाः सागरमाजग्मुः सीतादर्शनकांक्षिणः ॥ १ ॥ दक्षिणस्य समुद्रस्य समासाद्योत्तरां दिशम् । सन्निवेशं ततश्चक्रुर्हरिवीरा महाबलाः ॥ २ ॥ प्रसुप्तमिव चान्यत्र क्रीडन्तमिव चान्यतः । क्वचित्पर्वतमात्रैश्च जलराशिभिरावृतम् ॥ ३ ॥ आकाशमिव दुष्पारं सागरं प्रेक्ष्य वानराः । विषेदुः सहिताः सर्वे कथं कार्यमिति ब्रुवन् ॥ ४ ॥ ततस्तान्हरिवृद्धांश्च तच्च सैन्यमरिन्दमः । अनुमान्याङ्गदः श्रीमान्वाक्यमर्थवदब्रवीत् ॥ ५ ॥ क इदानीं महातेजा लंघयिष्यति सागरम् । कः करिष्यति सुग्रीवं सत्यसन्धमरिन्दमम् ॥ ६ ॥ कस्य प्रसादाद्रामं च लक्ष्मणं च महाबलम् । अभिगच्छेम संहृष्टाः सुग्रीवं च वनौकसम् ॥ ७ ॥ यदि कश्चित्समर्थो वः सागरप्लवने हरिः । स ददात्विह नः शीघ्रं पुण्यामभयदक्षिणाम् ॥ ८ ॥ अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा न कश्चित्किञ्चिदब्रवीत् । स्तिमितेवाभवत्सर्वा सा तत्र हरिवाहिनी ॥ ९ ॥ जाम्बवान्समुदीक्ष्यैवं हनूमन्तमथाब्रवीत् । वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर ॥ १० ॥ तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनूमन्किं न जल्पसि ॥ ११ ॥ बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुङ्गव । विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न सज्जसे ॥ १२ ॥ वयमद्य गतप्राणा भवानस्मासु सांप्रतम् । दाक्ष्यविक्रमसम्पन्नः कपिराज इवापरः ॥ १३ ॥ त्वद्वीर्यं द्रष्टुकामा हि सर्वा वानरवाहिनी । उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लंघयस्व महार्णवम् ॥ १४ ॥

टीका—सम्पाति के वचन को सुन कर प्रसन्न हुए सीता के दर्शन के अभिलाषी वह वानर रावण के घर सागर पर आए ॥ १ ॥ दक्षिण समुद्र की उत्तर दिशा में पहुंच कर वह महाबली वानर वीर ठहर गए ॥ २ ॥ जो (सागर) कहीं सोए हुए की तरह है, कहीं खेलते हुए की तरह है, कहीं पर्वत जितनी ऊंची लहरों से युक्त है ॥ ३ ॥ आकाश की तरह दुष्पार सागर को देख कर 'कैसे कार्य बने' यह कहते हुए सारे वानर निराश होगए ॥ ४ ॥ तब उन वानर वृद्धों को और सैनिकों का मान कर के शत्रुओं के दबाने वाला श्रीमान् अङ्गद अर्थयुक्त वाक्य बोला ॥ ५ ॥ कौन महातेजस्वी अब सागर को लंघेगा और शत्रुओं के दबाने वाले सुग्रीव को सच्ची प्रतिज्ञा वाला बनाएगा ॥ ६ ॥ किस के प्रसाद से हम महाबली राम और लक्ष्मण को और वानर सुग्रीव को देखेंगे ॥ ७ ॥ यदि आप में से कोई वानर सागर पार होने के समर्थ है, तो वह जल्दी हमें पवित्र अभय दक्षिणा देवे ॥ ८ ॥ अङ्गद के वचन को सुन कर कोई कुछ नहीं बोला, वह सारी वानरसेना थम सी गई ॥ ९ ॥ तब जाम्बवान् यह दशा देख कर हनुमान् से बोला, हे वानरलोक के वीर, सर्व शास्त्र के जानने वालों में श्रेष्ठ, हनुमान्, आप एकान्त में चुपचाप हैं, बोलते नहीं ॥ १०, ११ ॥ हे वानरश्रेष्ठ आप का बल बुद्धि तेज और दिलेरी सब लोगों में बढ़ कर है, तुम अपने आपको क्यों तय्यार नहीं करते हो ॥ १२ ॥ हमारी शक्ति अब घट गई है, आप हम में इस समय फुर्ती और पराक्रम से सम्पन्न मानों दूसरे सुग्रीव हैं ॥ १३ ॥ सारी वानर सेना तेरी शक्ति देखना चाहती है, उठ हे वानरश्रेष्ठ ! महासागर के पार हो ॥ १४ ॥

सर्ग ३४ (व० ६७) हनुमान् का स्वीकार करना

लमू—तं दृष्ट्वा जृम्भमाणं ते क्रमितुं शतयोजनम्। वेगेनापूर्यमाणं च सहसा वानरोत्तमम् ॥ १ ॥ सहसा शोकमुत्सृज्य प्रहर्षेण समन्विताः। विनेदुस्तुष्टुवुश्चापि हनूमन्तं महाबलम् ॥ २ ॥ तस्य संस्तूयमानस्य वृद्धैर्वानरपुङ्गवैः। तेजसापूर्यमाणस्य रूपमासीदनुत्तमम् ॥ ३ ॥ हरीणामुत्थितो मध्यात्संप्रहृष्टतनूरुहः। अभिवाद्य हरीन्वृद्धान्हनूमानिदमब्रवीत् ॥४॥ + बुद्ध्या चाहं प्रपश्यामि मनश्चेष्टा च मे तथा। अहं द्रक्ष्यामि वैदेहीं प्रमोदध्वं प्लवङ्गमाः ॥ ५ ॥ तच्चास्य वचनं श्रुत्वा ज्ञातीनां शोकनाशनम्। उवाच परिसंहृष्टो जाम्बवान्प्लवगेश्वरः ॥ ६ ॥ वीर केसरिणः पुत्र वेगवन्मारुतात्मज। ज्ञातीनां विपुलः शोकस्त्वया तात प्रणाशितः ॥ ७ ॥ तव कल्याणरुचयः कपिमुख्याः समागताः। मङ्गलान्यर्थसिद्ध्यर्थं करिष्यन्ति समाहिताः ॥ ८ ॥ ऋषीणां च प्रसादेन कपिवृद्धमतेन च। गुरूणां च प्रसादेन संप्लव त्वं महार्णवम् ॥ ९ ॥ स्थास्यामश्चैकपादेन यावदागमनं तव। त्वद्गतानि च सर्वेषां जीवनानि वनौकसाम् ॥ १० ॥ स वेगवान्वेगसमाहितात्मा हरिप्रवीरः परवीरहन्ता। मनः समाधाय महानुभावो जगाम लङ्कां मनसा मनस्वी ॥ ११ ॥

टीका—तब वह वानर सौ योजन पार होने के लिये उत्साहित हुए, और तत्क्षण वेग से पूर्ण हुए उस वानरोत्तम को देखकर ॥ १ ॥ तत्क्षण शोक को छोड़ कर प्रहर्ष से युक्त हुए वह गर्जने लगे और महाबली हनुमान की स्तुति करते भए ॥ २ ॥ वृद्ध वानरश्रेष्ठों से स्तुति किये हुए और तेज से पूर्ण हुए हनुमान् का रूप सर्वोत्तम होगया ॥ ३ ॥ वानरों के मध्य से उठा, उसके रोंगटे खड़े होगए और वृद्ध वानरों को अभिवादन करके हनुमान् यह

बोला ॥ ४ ॥ मैं बुद्धि से निश्चय जानता हूं और मेरे मन की चेष्टा वैसी है, कि मैं वैदेही को अवश्य देखूंगा, हे वानरो प्रसन्न हो वो ॥ ५ ॥ ज्ञातियों के शोक नाशक उसके इस वचन को सुन कर परम प्रसन्न हुआ वानरेश्वर जाम्बवान् बोला ॥ ६ ॥ हे वीर हे केसरी के (क्षेत्रज) पुत्र हे वेग वाले हे मारुत के (औरस) पुत्र हे तात तूने ज्ञातियों का बड़ा शोक दूर किया है ॥ ७ ॥ तेरे साथ आए वानरमुख्य तेरा कल्याण चाहते हुए तेरी अर्थ-सिद्धि के लिये एकाग्र हो मङ्गल कार्य करेंगे ॥ ८ ॥ ऋषियों के प्रसाद से और वानर वृद्धों के आशीर्वाद से और गुरुओं के प्रसाद से तू महासागर से पार हो ॥ ९ ॥ तेरे आने तक (तेरे लिये वर मांगते हुए) हम एक पाद से (तप में) खड़े रहेंगे, तेरे अधीन सारे वानरों के जीवन हैं ॥ १० ॥ तब वह वेगवाला, वेग से एकाग्र मन वाला, शत्रुवीरों का मारने वाला वानरवीर उदार मन वाला महानुभाव मन को एकाग्र करके मन से लंका में पहुंचा (लंका का ध्यान किया) ॥ ११ ॥

॥ इति किष्किन्धाकाण्डं समाप्तम् ॥



अथ सुन्दरकाण्ड प्रारम्भः



सर्ग १ (व० १) हनुमान् का समुद्र पार होना

लम्—दुष्करं निष्प्रतिद्वन्द्वं चिकीर्षन्कर्म वानरः । समुदग्रशिरोग्रीवो गवां पतिरिवाबभौ ॥ १ ॥ प्लवगप्रवरैर्दृष्टः प्लवने कृतनिश्चयः । ववृधे रामवृद्ध्यर्थं समुद्र इव पर्वसु ॥ २ ॥ विकर्षन्नूर्मिजालानि बृहन्ति लवणाम्भसि । पुप्लुवे कपिशार्दूलो विकिरन्निव रोदसी ॥ ३ ॥ मेरुमन्दरसंकाशानुद्गतान्सुमहार्णवे । अत्यक्रामन्महावेगस्तरङ्गान्गणयन्निव ॥ ४ ॥ तिमिनक्रझषाः कूर्मा दृश्यन्ते विवृतास्तदा । वस्त्रापकर्षणेनेव शरीराणि शरीरिणाम् ॥ ५ ॥ येनासौ याति बलवान्वेगेन कपिकुञ्जरः । तेन मार्गेण सहसा द्रोणीकृत इवार्णवः॥ ६ ॥ प्राप्तभूयिष्ठपारस्तु सर्वतः परिलोकयन् । योजनानां शतस्यान्ते वनराजिं ददर्श सः ॥७॥ सागरं सागरानूपान्सागरानूपजान्द्रुमान् । सागरस्य च पत्नीनां मुखान्यपि विलोकयत् ॥ ८ ॥ स चारुनानाविधरूपधारी परं समासाद्य समुद्रतीरम् । निपत्य तीरे च महोदधेस्तदा ददर्श लङ्कामरावतीमिव ॥ ९ ॥

टीका—बड़ा कठिन, तुलना से रहित कर्म करना चाहता हुआ, ऊंचे सिर और ग्रीवावाला बानर सांड की तरह भासने लगा॥१॥ डोंगी से तैरने में निश्चयवाला, डोंगी * से तैरने वालों में श्रेष्ठों से देखा

---

* इस सारे सर्ग से अधिकतर हनुमान् का समुद्र को फान्द कर पार होना पाया जाता है, जोकि असम्भावित है । किन्तु डोंगीसे तैर कर पार होने के इशारे भी स्पष्ट हैं। प्लव=छोटी नौका, डोंगी । यह सम्भव है कि हनुमान् वहां से वृक्षों को काटकर उनकी डोंगी

हुआ वह पर्वों में समुद्र की तरह राम के अर्थ वृद्धि को प्राप्त हुआ ॥२॥ उस खारी जल में बड़े २ लहरों के समूहों को चीरता हुआ वह बानर श्रेष्ठ मानों द्यौ पृथिवी पर (जल के फूल) बिखेरता हुआ खेवा करने लगा ॥ ३ ॥ मेरु मन्दर के बराबर महासागर में उठती हुई लहरों को बड़े वेगवाला, मानों गिनता हुआ गया ॥ ४ ॥ (बल से जल उछलने पर) मछलियें, मगर, मच्छ, इस तरह नङ्गे हुए दीखते हैं जैसे वस्त्र के खींच लेने से शरीर धारियों के शरीर ॥ ५ ॥ बलवान् बानर श्रेष्ठ वेग से जिस मार्ग से जारहा था, उस मार्ग से समुद्र सहसा द्रोण की तरह होता जाता था (पानी में उसकी डोंगी के आकार बनते जाते थे) ॥६॥ बहुत बड़ा भाग पार करके सब ओर देखता हुआ वह सौ योजन की समाप्ति पर बन समूह को देखता भया ॥ ७ ॥ सागर, सागर के किनारे के देश, और उस देश में होने वाले वृक्ष और सागर की पत्नियें (नदियों) के मुहाने देखता भया ॥ ८ ॥ सुन्दर नानाविधरूप धारी बानर समुद्र के परले तीर पर पहुंचकर महासागर के किनारे पर उतरकर अमरावती के तुल्य लङ्का को देखता भया॥ ९ ॥

सर्ग २ (व० २) हनुमान् का लङ्का प्रवेश के लिये विचार

मूल—योजनानां शतं श्रीमांस्तीर्त्वाप्युत्तमविक्रमः । अनिःश्वसन्कपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति ॥ १ ॥ स तु वीर्यवतां श्रेष्ठः प्लवतामपि चोत्तमः । जगाम वेगवाँल्लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ॥ २ ॥ शाद्वलानि च नीलानि गन्धवन्ति वनानि च । मधुमन्ति च मध्येन जगाम नगवन्ति च ॥ ३ ॥ समासाद्य च लक्ष्मीवाँल्लङ्कां रावण-

---

बनाकर उसके द्वारा लंका पहुंचा हो, और यह इसलिए किया हो कि उसे बेमालूम जाना था । अतएव यहां प्लवग दुहरे अर्थ में कहा है जाम्बवान् आदि बानर डोंगी से समुद्र में तैरने वाले थे ।

पालिताम् । परिखाभिः सपद्माभिः सोत्पलाभिरलंकृताम् ॥ ४ ॥
सीतापहरणात्तेन रावणेन सुरक्षिताम् । समन्ताद्विचरद्भिश्च राक्ष-
सैरुग्रधन्विभिः ॥ ५ ॥ काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम् ।
अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वजशोभिताम् ॥ ६ ॥ गिरिमूर्ध्नि
स्थितां लङ्कां पाण्डुरैर्भवनैः शुभैः । ददर्श स कपिः श्रीमान्पुरीमा-
काशगामिव ॥ ७ ॥ ततः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ।
गिरेः शृङ्गे स्थितस्तस्मिन्रामस्याभ्युदयं ततः ॥ ८ ॥ अनेन रूपेण
मया न शक्या रक्षसां पुरी । प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुप्ता क्रूरैर्बलसमान्वितैः
॥ ९ ॥ महौजसो महावीर्या बलवन्तश्च राक्षसाः । वञ्चनीया मया
सर्वे जानकीं परिमार्गता ॥ १० ॥ केनोपायेन पश्येयं मैथिलीं
जनकात्मजाम् । अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ॥ ११ ॥
न विनश्येत्कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः । एकामेकस्तु पश्येयं
रहित जनकात्मजाम् ॥ १२ ॥ मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदि-
तात्मनः । भवेद्व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः ॥ १३ ॥ नहि
शक्यं क्वचित्स्थातुमविज्ञातेन राक्षसैः । अपि राक्षसरूपेण किमुता-
न्येन केनचित् ॥ १४ ॥ वायुरप्यत्र नाज्ञातश्चरेदिति मतिर्मम ।
नह्यत्राविदितं किञ्चिद्रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ १५ ॥ तदहं स्वेन
रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः । लङ्कामभिपतिष्यामि राघवस्यार्थ-
सिद्धये ॥ १६ ॥ इति निश्चित्य हनूमान्सूर्यस्यास्तमयं कपिः। आच-
कांक्षे तदा वीरो वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ॥ १७ ॥

टीका—उत्तम पराक्रम वाला वह श्रीमान् सौ योजन पार होकर भी न हांपा है, न खेद को प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥ वह वीर्यवालों में श्रेष्ठ और फांदने वालों में उत्तम महा सागर को लंघ कर वेग से लंका को गया ॥ २ ॥ नीले हरे घास के, उत्तम गन्ध वाले, मधु वाले और उत्तम वृक्षों वाले बनों के मध्य में से गया॥ ३ ॥ उस लक्ष्मी

वान् ने वहां पहुंच कर रावण से पालित लंका को देखा, जो पत्तों और उत्पलों वाली खाइयों से अलंकृत है ॥ ४ ॥ सीता को हर लाने के हेतु अब जो उस रावण से विशेषतः रक्षा की गई है, प्रचण्ड धनुषों वाले राक्षस जिसके चारों ओर घूम रहे हैं ॥ ५ ॥ ऐसी रमणीय महापुरी जिस के इर्द गिर्द सुनहरी कोट है, सैंकड़ों ऊंची २ अटारियों से युक्त है और झंडियों और झंडों से सजी हुई है ॥ ६ ॥ श्वेत सुन्दर भवनों से पर्वत की चोटी पर स्थित लंका को श्रीमान् वानर ने आकाशगामी पुरी की तरह देखा ॥ ७ ॥ तब वह वानरश्रेष्ठ थोड़ी देर पर्वत की चोटी पर ठहरा हुआ राम की कार्यसिद्धि को सोचने लगा ॥ ८ ॥ कि बल वाले क्रूर राक्षसों से रक्षा की हुई राक्षसों की इस पुरी में मैं इस रूप से प्रवेश नहीं कर सक्ता हूं ॥ ९ ॥ जानकी को ढूंढते हुए मैंने इन सारे महा पराक्रमी महावीर्य बलवान् राक्षसों को ठगना है॥ १० ॥ क्या उपाय हो,जिस से कि राक्षसेन्द्र दुरात्मा रावण से न देखा हुआ मैं सीता को देख सकूं॥ ११ ॥ कैसे विदितात्मा राम का कार्य नष्ट न हो, अकेला कैसे मैं अकेली जनकसुता को एकान्त में देखूं ॥ १२ ॥ राक्षसों ने यदि मुझे जान लिया, तो रावण का बध चाहते हुए विदितात्मा राम का कार्य व्यर्थ होजाएगा ॥ १३ ॥ और न कहीं राक्षसों से बे मालूम ठहरा जासक्ता है, चाहे राक्षसों के भेष में ही ठहरूं, क्या फिर किसी और भेष में ॥ १४ ॥ यहां वायु भी बे मालूम नहीं जा सक्ता है, यह मेरा निश्चय है, यहां भयंकर कर्मोंवाले राक्षसों को कुछ बे मालूम नहीं रह सक्ता ॥ १५ ॥ सो मैं रात के समय अपने ही भेष में एक साधारण सा बन कर राघव की कार्य सिद्धि के लिये लंका में प्रवेश करूंगा ॥ १६ ॥ यह निश्चय करके वीर

वानर हनुमान् सीता के देखने की उत्कण्ठा में सूर्यास्त की प्रतीक्षा करता भया ॥ १७ ॥

सर्ग ३ (व० ४-९) सीता को रावण के अन्तःपुर में ढूंढना

मूल—अद्वारेण महावीर्यः प्राकारमवपुप्लुवे। निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः ॥ १ ॥ प्रविश्य नगरीं लङ्कां कपिराजहितंकरः। चक्रेऽथ पादं सव्यं च शत्रूणां स तु मूर्धनि ॥ २ ॥ प्रजज्वाल तदा लङ्का रक्षोगणगृहैः शुभैः । सिताभ्रसदृशैश्चित्रैः पद्मस्वस्तिकसंस्थितैः ॥ ३ ॥ वर्धमानगृहैश्चापि सर्वतः सुविभूषितैः । राघवार्थे चरञ्श्रीमान्ददर्श च ननन्द च ॥ ४ ॥ भवनाद्भवनं गच्छन्ददर्श कपिकुञ्जरः । विविधाकृतिरूपाणि भवनानि ततस्ततः ॥ ५ ॥ शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान्रक्षोगृहेषु वै । स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान्ददर्श सः ॥ ६ ॥ गृहाद्गृहं राक्षसानामुद्यानानि च सर्वशः । वीक्षमाणोऽप्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः ॥ ७ ॥ ददर्श भवनश्रेष्ठं हनुमान्मारुतात्मजः । भवनं राक्षसेन्द्रस्य बहुप्रासादसंकुलम् ॥ ८ ॥ मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम् । सर्वतः परिचक्राम हनूमानरिसूदनः ॥ ९ ॥ ततस्तां प्रस्थितः शालां ददर्श महतीं शिवाम् । रावणस्य महाकान्तां कान्तामिव वरस्त्रियम् ॥ १० ॥ मणिसोपानविकृतां हेमजालविराजिताम् । स्फाटिकैरावृततलां दन्तान्तरितरूपिकाम् ॥ ११ ॥ समैर्ऋजुभिरत्युच्चैः समन्तात्सुविभूषितैः । स्तम्भैः पक्षैरिवात्युच्चैर्दिवं संप्रस्थितामिव ॥ १२ ॥ परार्ध्यास्तरणोपेतां रक्षोधिपनिषेविताम् । मनसो मोदजननीं वर्णस्यापि प्रसाधिनीम् ॥ १३ ॥ दीपानां च प्रकाशेन तेजसा रावणस्य च । अर्चिर्भिर्भूषणानां च प्रदीप्तेत्यभ्यमन्यत ॥ १४ ॥ तत्र दिव्योपमं मुख्यं स्फाटिकं रत्नभूषितम् । अवेक्षमाणो हनुमान्ददर्श शयनासनम् ॥ १५ ॥ पीत्वाप्युपरतं चापि ददर्श स महा-

कपिः । भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम् ॥ १६ ॥ आसाद्य परमोद्विग्नः सोपासर्पत्सुभीतवत् । पत्नीः स प्रियभार्यस्य तस्य रक्षः पतेर्गृहे ॥ १७ ॥ शशिप्रकाशवदना वरकुण्डलभूषणाः । अम्लान माल्याभरणा ददर्श हरियूथपः ॥ १८ ॥ तासामेकान्तविन्यस्ते शयानां शयने शुभे । ददर्श रूपसंपन्नामथ तां स कपिः स्त्रियम् ॥ १९ ॥ विभूषयन्तीमिव च स्वश्रिया भवनोत्तमम् । कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम् ॥ २० ॥ स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः । तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसंपदा ॥ २१ ॥

टीका—वह महावीर्य महान् हृदय वाला वानरश्रेष्ठ रात के समय अद्वार से कोट को फांद कर लंका में प्रविष्ट हुआ ॥ १ ॥ वानरराज के उस हितैषी ने लंका नगरी में प्रवेश करके मानों अपना बायां पाओं शत्रु के सिर पर रख दिया ॥ २ ॥ उस समय सुन्दर सब ओर से सजे हुए श्वेत मेघ के तुल्य राक्षसों के जो पद्माकार, स्वस्तिकाकार, और वर्धमान घर हैं, उन से लंका जगमज कर रही थी, राघव के अर्थ वह श्रीमान् घूमता हुआ उसे देखता भया और आनन्दित होता भया ॥ ३, ४ ॥ एक भवन से दूसरे भवन को जाते हुए उस वानरश्रेष्ठ ने वहां २ विविध आकृति और रूपों वाले भवन देखे ॥ ५ ॥ वहां राक्षसों के घरों में उस ने जप करते हुओं के मन्त्र सुने और स्वाध्याय में रत राक्षसों को देखा ॥ ६ ॥ राक्षसों के घर से घर और बगीचों को देखता हुआ बेधड़क वह महलों के पास घूमा ॥ ७ ॥ तब पवनपुत्र हनुमान् ने वह भवनश्रेष्ठ देखा, जो राक्षसपति का भवन है, और बहुत महलों से भरपूर है ॥ ८ ॥ विशाल नेत्रोंवाली वैदेही सीता को ढूंढता हुआ शत्रुओं के मारनेवाला, हनुमान् उसके चारों ओर घूमा ॥ ९ ॥

तब वह उस सुन्दर बड़ी शाला की ओर प्रस्थित हुआ, जो उत्तम स्त्री की तरह रावण की बड़ी प्यारी थी ॥ १० ॥ जिसकी सीढ़ियों में मणियां जड़ी हुई हैं, जो सोने के झरोकों से भूषित हैं, सङ्गमर्मर का फर्श है, और बीच २ में दान्त का काम किया हुआ है ॥ ११ ॥ जो सम, सीधे, बड़े ऊंचे पूरे २ सजे हुए स्तम्भों से मानों अति ऊंचे पङ्खों से द्यौ की ओर प्रस्थित हुई है ॥ १२ ॥ सर्वोत्तम गलीचा जिसमें बिछा हुआ है, राक्षसों के अधिपति से सेवित है, मन को प्रसन्न करने वाली और शरीर की कान्ति को बढ़ाने वाली है ॥ १३ ॥ दीपकों के प्रकाश से, रावण के तेज से, और भूषणों की चमक से, मानों जलती हुई प्रतीत होती है ॥ १४ ॥ उस शाला में देखते हुए हनुमान् ने रत्नों से भूषित एक दिव्य बिलोरी शयनासन (बैठने सोने का पलङ्ग) देखा ॥ १५ ॥ और शराब पीकर बन्द हुए, और चमकते हुए पलङ्ग पर लेटे हुए राक्षसाधिपति को उस महावानर ने देखा ॥ १६ ॥ उसके पास आकर बड़ा उद्विग्न हुआ अत्यन्त डरे हुए की तरह पीछे हट गया, और प्यारी स्त्रियों वाले उस राक्षसपति के घर में उस वानर यूथपति ने चन्द्र तुल्य मुखवाली, सुन्दर कुण्डल पहने हुई, ताज़े पुष्पों की मालाएं और भूषणोंवाली पत्नियों को देखा ॥ १७, १८ ॥ उन में से एकान्त स्थित एक शुभ शय्या के ऊपर लेटी हुई रूपवती उस ने एक स्त्री देखी ॥ १९ ॥ जो अपनी शोभा से मानों उस उत्तम भवन को शोभायमान कर रही थी, वह मन्दोदरी थी, जोकि सुन्दर रूपवती वहां लेटी हुई थी ॥२०॥ महाबाहु पवनसुत ने उस भूषित स्त्री को देखकर उसके रूप यौवन की सम्पदा से ख्याल किया, कि कदाचित् यह सीता हो ॥ २१ ॥

सर्ग ४ (व० १०-११) रावण के अन्तःपुर में सीता का न पाना

मूल—अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा । जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः ॥ १ ॥ + न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी । न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न पानमुपसेवितुम् ॥ २ ॥ अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र चचार सः । एवं सर्वमशेषेण रावणान्तःपुरं कपिः ॥ ३ ॥ ददर्श स महातेजा न ददर्श च जानकीम् ॥४॥ + निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः । जगाम महतीं शङ्कां धर्मसाध्वसशङ्कितः ॥ ५ ॥ + परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम् । इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति ॥६॥ +नहि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी । अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः ॥ ७ ॥+तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः । निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी ॥८॥ + कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः । न तु मे मनसा किंचिद्वैकृत्यमुपपद्यते ॥ ९ ॥+मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने । शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥१०॥ नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम् । स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा सम्परिमार्गणे ॥ ११ ॥+ तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया । रावणान्तः पुरं सर्वं दृश्यते न च जानकी ॥ १२ ॥ तामपश्यन्कपिस्तत्र पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः । अपक्रम्य तदा वीरः प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ १३ ॥

टीका—पर उसी समय उस ख्याल को हटाकर, स्थित हुआ महा बानर सीता के विषय दूसरा विचार करता भया ॥ १ ॥कि राम से वियुक्त हुई वह सुन्दरी न सो सक्ती है, न भोग सक्ती है, न अलङ्कार कर सक्ती है, न पान सेवन कर सक्ती है ॥ २ ॥ निःसन्देह यह कोई और है, ऐसा निश्चय करके फिर वहां विचरने लगा, इसप्रकार रावण का सारा अन्तःपुर (रनिवास) उस महातेजस्वी

वानर ने पूरी तरह देखा, पर जानकी को नहीं देखा ॥ ३, ४ ॥ उन स्त्रियों को देखते हुए, धर्म भय से भीत हुए, उस महावानर को बड़ी शङ्का उत्पन्न हुई ॥ ५ ॥ सोई हुई कुलीन परस्त्री को देखना, यह मेरा अत्यन्त धर्मलोप करेगा ॥ ६ ॥ मेरी दृष्टि आजतक (ऐसी अवस्था में) परस्त्रियों के ऊपर नहीं पड़ी थी, और यहां मैंने परस्त्रियों को देखा है ॥ ७ ॥ फिर उस एकाग्रचित्त वाले को ठीक निश्चय पर पहुंचानेवाला, एक निश्चित दूसरा विचार उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥ निःसन्देह मैंने विश्वस्त लेटी हुई रावण की सब स्त्रियें देखी हैं, पर मेरे मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ है ॥ ९ ॥ शुभ अशुभ अवस्थाओं में मन ही सारी इन्द्रियों की प्रवृत्ति में हेतु है, और वह मेरा ठीक टिका हुआ है (बिलकुल नहीं डोला है) ॥ १० ॥ सीता और कहीं ढूंढी जाही नहीं सकती है, ढूंढने में स्त्रियें सदा स्त्रियों में ही देखी जाती हैं ॥ ११ ॥ सो मैंने शुद्ध मन से रावण का सारा अन्तःपुर ढूंढ लिया, पर जानकी नहीं दीखती ॥ १२ ॥ जब उस वीर वानर ने वहां और ही सुन्दर स्त्रियों को देखा, किन्तु सीता को न देखा, तब वह वहां से निकलकर चलने को तय्यार हुआ ॥ १३ ॥

सर्ग ५ (व० १२) सीता के न मिलने से हनुमान् की उदासी

मूल—स चिन्तयामास ततो महाकपिः प्रियामपश्यन्रघुनन्दनस्य ताम्। ध्रुवं न सीता ध्रियते यथा न मे विचिन्वतो दर्शनमेति मैथिली ॥ १ ॥ सा राक्षसानां प्रवरेण बाला स्वशीलसंरक्षणतत्परा सती। अनेन नूनं प्रतिदुष्टकर्मणा हता भवेदार्यपथे परे स्थिता ॥ २ ॥ दृष्टमन्तः पुरं सर्वं दृष्टा राक्षसयोषितः। न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः ॥ ३ ॥ किं नु मां वानराः सर्वे गतं वक्ष्यन्ति संगताः। गत्वा तत्र त्वया वीर किं कृतं तद्वदस्व नः ॥ ४ ॥

अदृष्ट्वा किं प्रवक्ष्यामि तामहं जनकात्मजम् । किं वा वक्ष्यति वृद्धश्च जाम्बवानङ्गदश्च सः ॥ ५ ॥ +अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम् । भूयस्तत्र विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः ॥ ६ ॥ + अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः । करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः ॥ ७ ॥ इति संचिन्त्य भूयोऽपि विचेतुमुपचक्रमे । सर्वमप्यवकाशं स विचचार महाकपिः ॥ ८ ॥ चतुरंगुलमात्रोऽपि नावकाशः स विद्यते । रावणान्तःपुरे तस्मिन्यं कपिर्न जगाम सः ॥ ९ ॥ रूपेणाप्रतिमो लोके परा विद्याधरस्त्रियः । दृष्टा हनुमता तत्र न तु राघवनन्दिनी ॥ १० ॥ प्रमथ्य राक्षसेन्द्रेण नागकन्या बलाद्धृताः । दृष्टा हनुमता तत्र न सा जनकनन्दिनी ॥ ११ ॥ सोऽपश्यंस्तां महाबाहुः पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः । विषसाद महाबाहुर्हनूमान्मारुतात्मजः ॥ १२ ॥ उद्योगं वानरेन्द्राणां प्लवनं सागरस्य च । व्यर्थं वीक्ष्यानिलसुतश्चिन्तां पुनरुपागतः ॥ १३ ॥

टीका—तब वह महावानर राम की इस प्यारी को न देखता हुआ सोचने लगा, निःसन्देह मैथिली सीता जीती नहीं है, जिससे मुझे ढूंढते हुए कहीं नहीं दीखती है ॥ १ ॥ पवित्र आर्यपथ में स्थित हो अपने शील रक्षण में तत्पर हुई उस बाला को इस दुष्ट कर्मा बली राक्षस ने मार डाला होगा ॥ २ ॥ मैंने सारा अन्तःपुर देख लिया, रावण की स्त्रियें देखलीं, पतिव्रता सीता नहीं देखी, सारा परिश्रम व्यर्थ गया ॥ ३ ॥ जब मैं जाऊंगा, तो सारे वानर मिलकर मुझे क्या कहेंगे, हे वीर वहां जाकर तूने क्या किया सो कहो ॥ ४ ॥ और मैं उस जनकसुता को न देखकर क्या कहूंगा, और वृद्ध जाम्बवान् और वह अङ्गद मुझे क्या कहेगा ॥ ५ ॥ (क्षणमात्र उत्साहहीन हो फिर उत्साह का अवलम्बन करके कहता है)

उत्साह न हारना श्री का मूल है, उत्साह न हारना परम सुख है, सो फिर वहां ढूंढूंगा, जहां ढूंढ नहीं की है ॥ ६ ॥ उत्साह न हारना ही सारे कार्यों में प्रवृत्ति कराता है, और मनुष्य के उन कार्य को सफल बनाता है, जो कि वह करता है ॥७॥ यह सोचकर वह फिर ढूंढने लगा, और वह महावानर हरएक अवकाश में फिरा ॥ ८ ॥ रावण के अन्तःपुर में चार अंगुल का भी अवकाश ऐसा न बचा, जिसमें वह वानर न पहुंचा हो ॥९॥ लोक में रूप से अतुल, विद्याधरों की स्त्रियें हनुमान् ने देखीं, पर वहां राघव की प्यारी न देखी ॥ १० ॥ राक्षसराजने छीनकर बल से हरी हुई नागकन्याएं हनुमान् ने देखीं, पर वहां भी वह जनकनन्दिनी न देखी॥ ११ ॥ तब वह महाबाहु पवनसुत उसको न देखता हुआ, और अन्य सुन्दर स्त्रियों को देखता हुआ निराश होगया ॥ १२ ॥ वानरपतियों का उद्योग और समुद्र का लङ्घना सब व्यर्थ देखकर पवनसुत फिर चिन्ता को प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥

सर्ग ६ (व० १३) हनुमान् के अनेक विध विचार

मूल—सम्परिक्रम्य हनुमान्रावणस्य निवेशनात् । अदृष्ट्वा जानकीं सीतामब्रवीद्वचनं कपिः ॥ १ ॥ भूयिष्ठं लोलिता लङ्का रामस्य चरता प्रियम् । नहि पश्यामि वैदेहीं सीतां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥ २ ॥ किं तु सीताथ वैदेही मैथिली जनकात्मजा । उपतिष्ठत विवशा रावणेन हृता बलात् ॥ ३ ॥+ तया मन्ये विशालाक्ष्या त्यक्तं जीवितमार्यया ॥ ४ ॥ अथवा निहिता मन्ये रावणस्य निवेशने । भृशं लालप्यते वाला पञ्जरस्थेव सारिका ॥ ५ ॥ जनकस्य कुले जाता रामपत्नी सुमध्यमा । कथमुत्पलपत्राक्षी रावणस्य वशं व्रजेत् ॥ ६ ॥ विनष्टा वा प्रणष्टा वा मृता वा जनकात्मजा । रामस्य प्रिय

भार्यस्य न निवेदयितुं क्षमम् ॥ ७ ॥ निवेद्यमाने दोषः स्याद्दोषः
स्यादनिवेदने । कथं नु खलु कर्तव्यं विषमं प्रतिभाति मे ॥ ८ ॥
यदि सीतामदृष्ट्वाहं वानरेन्द्रपुरीमितः । गमिष्यामि ततः को मे
पुरुषार्थो भविष्यति ॥ ९ ॥ ममेदं लङ्घनं व्यर्थं सागरस्य भविष्यति
प्रवेशश्चैव लङ्कायां राक्षसानां च दर्शनम् ॥ १० ॥ गत्वा तु यदि
काकुत्स्थं वक्ष्यामि परुषं वचः । न दृष्टेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यति
जीवितम् ॥ ११ ॥ कृतज्ञः सत्यसंधश्च सुग्रीवः प्लवगाधिपः । रामं
तथागतं दृष्ट्वा ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥१२॥ सोऽहं नैव गमिष्यामि
किष्किन्धां नगरीमितः । नाहं शक्ष्याम्यहं द्रष्टुं सुग्रीवं मैथिलीं
विना ॥ १३ ॥ मय्यगच्छति चेहस्थे धर्मात्मानौ महारथौ । आशया
तौ धरिष्येते वानराश्च तरस्विनः ॥ १४ ॥ इति चिन्तासमापन्नः
सीतामनधिगम्य ताम् । ध्यानशोकपरीतात्मा चिन्तयामास वानरः॥
१५ ॥ यावत्सीतां न पश्यामि रामपत्नीं यशस्विनीम् । तावदेतां
पुरीं लङ्कां विचिनोमि पुनः पुनः ॥ १६ ॥ अशोकवनिका चापि
महतीयं महाद्रुमा । इमामधिगमिष्यामि नहीयं विचिता मया ॥१७॥

टीका—रावण के सारे घरों में फिर कर, वहां जानकी को न देखकर
वानर हनुमान् बोला ॥ १ ॥ राम का प्रिय करते हुए मैंने लङ्का
बहुत ढूंढी है, पर सर्वाङ्गसुन्दरी वैदेही सीता को नहीं देखता हूं
॥ २ ॥ क्या विदेहों की कन्या जनकसुता मैथिली बल से हरी
हुई बेबस हुई भी रावण को सेवन कर सक्ती है ? (नहीं, कभी नहीं)
॥३॥ सो मैं मानता हूं कि उस विशालनेत्रा आर्या ने अपना जीवन
त्याग दिया है ॥ ४ ॥ अथवा रावण के महल में कहीं गुप्त डाली
हुई वह बाला पिञ्जरे में स्थित मैना की तरह अतीव विलप रही
होगी ॥ ५ ॥ जनक के कुल में उत्पन्न हुई कमल तुल्य नेत्रोंवाली
सुमध्यमा राम की पत्नी कैसे रावण के वश होसक्ती है ॥ ६ ॥

जनकसुता नहीं मिली, वा नष्ट होगई है, वा मर गई है. यह प्यारी स्त्रीवाले राम को निवेदन नहीं किया जासक्ता ॥ ७ ॥ ऐसा कहने में भी दोष होगा (राम प्राण त्याग देंगे) न कहने में भी दोष होगा (न कहना स्वामी को धोखा देना है) अब क्या करना चाहिये, मुझे विषम प्रतीत होता है ॥ ८ ॥ यदि मैं सीता को न देखकर यहां से वानरेन्द्र की पुरी को चला जाऊं, तो मेरा पुरुषार्थ क्या होगा ॥ ९ ॥ मेरा यह समुद्र का लंघना, लङ्का में प्रवेश और राक्षसों का दर्शन सब व्यर्थ होजाएगा ॥१०॥ जाकर राम को यदि कठोर वचन कहूंगा, कि सीता मैंने नहीं देखी, तब वह प्राण त्याग देंगे ॥ ११ ॥ राम को इस अवस्था में देखकर, किये के जाननेवाला, सच्ची प्रतिज्ञावाला, वानरों का अधिपति सुग्रीव भी प्राण त्याग देगा ॥ १२ ॥ सो मैं यहां से किष्किन्धा नगरी को नहीं जाऊंगा. मैथिली के बिना मैं सुग्रीव को नहीं देख सक्ता हूं ॥ १३ ॥ जब तक मैं नहीं जाता, यहां स्थित हूं, तबतक वह दोनों महारथी धर्मात्मा आशा से जीते हैं, और बलवान् वानर भी ॥ १४ ॥ इसप्रकार चिन्ता में डूबा हुआ उस सीता को न पाकर चिन्ता शोक से युक्त अन्तःकरण वाला वानर सोचने लगा ॥ १५ ॥ कि जब तक यशस्विनी रामपत्नी सीता को नहीं देख पाता हूं, तब तक इस लंका को फिर२ ढूंढता हूं ॥१६॥ और यह जो बड़े वृक्षों वाली अशोकवनिका है इस को भी ढूंढूंगा, यह मैंने अभी तक नहीं ढूंढी है ॥ १७ ॥

सर्ग ७ (व० १४) अशोक वनिका में सीता को ढूंढना

मूल–स मुहूर्तमिव ध्यात्वा मनसा चाधिगम्य ताम् । अवप्लुतो महातेजाः प्राकारं तस्य वेश्मनः ॥ १ ॥ स प्रविश्य विचित्रां तां पादपैः सर्वतो वृताम् । उदितादित्यसंकाशां ददर्श हनुमान्बली ॥

२ ॥ वृतैर्नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपगफलोपगैः । कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च मत्तैर्नित्यनिषेविताम् ॥ ३ ॥ प्रहृष्टमनुजां काले मृगपक्षिमदाकुलाम् । मत्तबर्हिणसंघुष्टां नानाद्विजगणायुताम् ॥ ४ ॥ वृक्षेभ्यः पतितैः पुष्पैरवकीर्णा पृथग्विधैः । रराज वसुधा तत्र प्रमदेव विभूषिता ॥ ५ ॥ स तत्र मणिभूमीश्च राजतीश्च मनोरमाः । तथा काञ्चनभूमीश्च विचरन्ददृशे कपिः ॥ ६ ॥ वापीश्च विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा । महार्हैर्मणिसोपानैरुपपन्नास्ततस्ततः ॥ ७ ॥ दीर्घाभिर्द्रुमयुक्ताभिः सरिद्भिश्च समन्ततः । अमृतोपमतोयाभिः शिवाभिरुपसंस्कृताः ॥ ८ ॥ ततोऽम्बुधरसंकाशं प्रवृद्धशिखरं गिरिम् । विचित्रकूटं कूटैश्च सर्वतः परिवारितम् ॥ ९ ॥ ददर्श च नगात्तस्मान्नदीं निपतितां कपिः । जलेन पतिताग्रैश्च पादपैरुपशोभिताम् ॥ १० ॥ काञ्चनीं शिंशपामेकां ददर्श स महाकपिः । वृतां हेममयीभिस्तु वेदिकाभिः समन्ततः ॥ ११ ॥ तामारुह्य महावेगः शिंशपां पर्णसंवृताम् । इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामदर्शनलालसाम् ॥१२॥+संध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी । नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी ॥ १३ ॥ + तस्याश्चाप्यनुरूपेय मशोकवनिका शुभा । शुभा या पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य संमता ॥१४॥+यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना । आगमिष्यति सावश्यमिमां शीतजलां नदीम् ॥ १५ ॥ एवं तु गत्वा हनुमान्महात्मा प्रतीक्षमाणो मनुजेन्द्रपत्नीम् । अवेक्षमाणश्च ददर्श सर्वं सुपुष्पिते पर्णघने निलीनः ॥ १६ ॥

टीका—मुहूर्तभर यह सोचकर और मन से निश्चय करके वह महा तेजस्वी उस मन्दिर के कोट को फांद गया ॥ १ ॥ विचित्र वृक्षों से सब ओर से ढकी हुई (फूलों से) उदय हुए सूर्य के तुल्य उस (वनिका) को हनुमान् बली देखता भया ॥ २ ॥ पुष्प फलों से

युक्त नानाविध वृक्षों से और मस्त कोइलों और भौरों से सेवित॥३॥ सर्वदा जिसमें सब मनुष्य प्रसन्न हैं, जो मत्त, मृग पक्षियों से भरे हुए मस्त भौरों से गूंजती हुई नाना द्विजगणों से युक्त है॥४॥ वृक्षों से गिरे हुए नानाविध पुष्पों से भरी हुई वहां की भूमि सजी हुई स्त्री की तरह शोभा पाती थी॥५॥ वह वानर वहां विचरता हुआ मनोरम मणिभूमियें, चान्दी की भी भूमियें, और सुनहरी भूमियें देखता भया॥ ६ ॥ और वहां सुन्दर जल से भरी हुई विविध आकृतियोंवाली महार्ह सीढ़ियों से युक्त बावड़ियें॥७॥ लम्बी २, वृक्षों से युक्त, अमृत तुल्य जलवाली, सुन्दर नहरों से सजी हुई॥८॥ तब उस वानर ने सारे जगत् में सुहावना एक पर्वत देखा, जो चोटियों से सब ओर से घिरा हुआ, विचित्र-कूट नामी था॥ ९ ॥ उस पर्वत से निकलती हुई वानर ने एक नदी देखी, जो जल में लगती हुई शाखाओं वाले वृक्षों से शोभित थी॥१०॥ उस महावानर ने एक सुनहरी रङ्ग की शीशम देखी, जो चारों ओर सुनहरी वेदियों से युक्त थी॥११॥ वह महावानर पत्तों से पूर्ण उस शीशम पर चढ़ गया, कि यहां से मैं राम के देखने की लालसा वाली वैदेही को देखूंगा॥ १२ ॥ सन्ध्याकाल में मन वाली, वह जानकी निःसन्देह इस शुभ जलवाली नदी पर आएगी ॥१३॥ यह शुभ अशोकवानिका उसके योग्य है, जोकि राज राजेश्वर राम की सम्मत शुभ पत्नी है॥ १४ ॥ यदि वह चन्द्रमुखी देवी जीती है, तो इस शीत जलवाली नदी पर अवश्य आएगी ॥१५॥ इसप्रकार जाकर हनुमान् महात्मा मानवेन्द्र की पत्नी को ढूंढता हुआ फूले हुए पत्तों के समूह में छिपा हुआ दृष्टि डाल कर सब कुछ देखता भया॥ १६ ॥

सर्ग ८ (व० १५) हनुमान् का सीता को देखना

मूल—सर्वर्तुपुष्पैर्निचितं पादपैर्मधुगन्धिभिः । नानानिनादैरुद्यानं रम्यं मृगगणैर्द्विजैः ॥ १ ॥ अशोकवनिकायां तु तस्यां वानरपुङ्गवः। स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमूर्जितम् ॥ २ ॥ ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम् । उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ॥ ३ ॥+ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् । पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा ॥ ४ ॥ पीड़ितां दुःखसंतप्तां परिक्षीणां तपस्विनीम् । अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च ॥ ५ ॥ प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम् । स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणेनावृतामिव ॥६॥ नीलनागाभया वेण्या जघनं गतयैकया । नीलया नीलपादाये वनराज्या महीमिव ॥ ७ ॥ कुर्वन्ती प्रभया देवीं सर्वा वितिमिरा दिशः । भूमौ सुतनुमासीनां नियतामिव तापसीम् ॥ ८ ॥ विहतामिव च श्रद्धामाशां प्रतिहतामिव । अभूतेनापवादेन कीर्त्तिं निपतितामिव ॥ ९ ॥ तां समीक्ष्य विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् । तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादयन् ॥ १० ॥+ इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिरिह तप्यते । कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च ॥ ११ ॥ स्त्रीप्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः । पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च ॥ १२ ॥+ अस्या देव्या मनस्तस्मिंस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम् । तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीवति ॥ १३ ॥ एवं सीतां तथा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसम्भवः। जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम् ॥ १४ ॥

टीका—उस बानर श्रेष्ठ ने उस अशोक वनिका के अन्दर निकट ही एक बगीचा सब ऋतुओं के फूलों वाले और मीठी गन्धवाले वृक्षों से युक्त, नाना ध्वनियों वाले, मृग और पक्षियों से रमणीय

चैत्य और मान्दिरों वाला बड़ा बगीचा देखा ॥ १, २ ॥ वहां मलीन वस्त्रों से ढकी हुई, राक्षसियों से घिरी हुई, उपवासों से दुर्बल हुई, दीन बार २ आहें भरती हुई, शुक्लपक्ष के आदि में निर्मल चन्द्ररेखा की तरह एक स्त्री देखी जो पीले एक तङ्ग से उत्तम वस्त्र से ढकी हुई थी ॥ ३, ४ ॥ पीड़ित, दुःख से संतप्त, दुर्बल, बेचारी, आंसुओं से पूर्ण मुखवाली, दीन, न खाने से दुर्बल ॥ ५ ॥ प्रिय-जन को न देखती हुई राक्षसीगण को देखती हुई वह अपने समूह से हीन और कुत्तियों से घिरी हुई मृगी की तरह थी ॥ ६ ॥ काले नाग जैसी, जघन तक पहुंची हुई एक वेणी से मेघ के दूर होजाने पर नील बनराजि से भूमि की तरह स्थित ॥ ७ ॥ अपनी प्रभा से सारी दिशाओं को अन्धकार हीन बनाती हुई, सुकुमारी, नियमोंवाली, तपस्विनी, की तरह भूमिपर लेटी हुई ॥ ८ ॥ नष्ट हुई श्रद्धा की तरह, दूर हुई आशा की तरह, और झूठे अपवाद से ढिगी कीर्त्ति की तरह ॥ ९ ॥ उस विशालनेत्रा अनन्दित राजपुत्री को देखकर कारणों से निश्चय करते हुए उसने ख्याल किया कि यह सीता है ॥ १० ॥ यह है जिसके लिए राम करुणा, दया, शोक, और काम इन चार से तप रहा है ॥ ११ ॥ स्त्री खोई गई इसलिए करुणा से मेरे सहारे पर थी इसलिए दया से, पत्नी हरी गई इसलिए शोक से और प्यारी थी, इसलिये काम से (संतप्त होता है) ॥ १२ ॥ इस देवी का मन उसमें और उसका इसमें स्थित है, इस हेतु से यह और वह धर्मात्मा मुहूर्त भी जीता है ॥ १३ ॥ इसप्रकार सीता को देखकर प्रसन्न हुआ पवनपुत्र मन से राम को प्राप्त हुआ और उस प्रभु की प्रशंसा करता भया ॥ ११ ॥

सर्ग ९(व० १६) हनुमान् का सीता को राक्षसियों से घिरा हुआ देखना

मूल—तां दृष्ट्वा नवहेमाभां लोककान्तामिव श्रियम् । जगाम मनसा रामं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ ऐश्वर्यं वानराणां च दुर्लभं वालिपालितम् । अस्या निमित्ते सुग्रीवः प्राप्तवांल्लोकविश्रुतः ॥२॥ सागरश्च मयाक्रान्तः श्रीमान्नदनदीपतिः । अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः पुरी चेयं निरीक्षिता ॥ ३ ॥ यदि रामः समुद्रान्तां मेदिनीं परिवर्तयेत् । अस्याः कृते जगच्चापि युक्तमित्येव मे मतिः ॥ ४ ॥ राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजा । त्रैलोक्यराज्यं सकलं सीताया नाप्नुयात्कलाम् ॥ ५ ॥ इयं स धर्मशीलस्य जनकस्य महात्मनः । सुता मैथिलराजस्य सीता भर्तृदृढव्रता ॥ ६ ॥ धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य रामस्य विदितात्मनः । इयं सा दयिता भार्या राक्षसीवशमागता ॥ ७ ॥ सर्वान्भोगान्परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात्कृता । अचिन्तयित्वा कष्टानि प्रविष्टा निर्जनं वनम् ॥ ८ ॥ संतुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणापरा । या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा ॥ ९ ॥ सेयं कनकवर्णाङ्गी नित्यं सुस्मितभाषिणी । सहते यातनामेतामनर्थानाम भागिनी ॥ १० ॥ इमां तु शीलसम्पन्नां द्रष्टुमिच्छति राघवः । रावणेन प्रमथितां प्रपामिव पिपासितः ॥ ११ ॥ अस्या नूनं पुनर्लाभाद्राघवः प्रीतिमेष्यति । राजा राज्यपरिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम् ॥ १२ ॥ काम भोगैः परित्यक्ता हीना बन्धुजनेन चाधारयत्यात्मनो देहं तत्समागमकाङ्क्षिणी ॥ १३ ॥ नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान्पुष्पफलद्रुमान् । एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति ॥ १४ ॥ भर्ता नाम परं नार्याः शोभनं भूषणादपि । एषा हि रहिता तेन शोभनार्हा न शोभते ॥ १५ ॥ दुष्करं कुरुते रामो हीनो यदनया प्रभुः । धारयत्यात्मनो देहं न दुःखेनावसीदति ॥ १६ ॥ इमामसि-

तकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणाम् । सुखार्हां दुःखिता ज्ञात्वा ममापि व्यथितं मनः ॥ १७ ॥ इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य सीतेयमित्येव जातबुद्धिः । संश्रित्य तस्मिन्निषसाद वृक्षे बली हरीणामृषभस्तरस्वी ॥ १८ ॥

टीका—उस सुवर्ण की आभावाली, युवति को लोक की सुन्दर श्री की तरह देखकर मन से राम को स्मरण किया और यह वचन बोला ॥ १ ॥ इसके निमित्त लोक विख्यात सुग्रीव वालि से रक्षित वानरों के दुर्लभ ऐश्वर्य को प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥ और नद नदियों का पति श्रीमान् सागर मैंने लंघा है, इस विशालनेत्रा के हेतु मैंने यह सारी पुरी ढूंढ़ी है ॥ ३ ॥ इसके लिये यदि राम समुद्र पर्यन्त सारी पृथिवी को और जगत् को भी उलट दे, तो युक्त है, यह मेरी मति है ॥ ४ ॥ एक ओर तीनों लोकों में राज्य, दूसरी ओर जनकसुता सीता, तीनों लोक का राज्य सीता की कला को नहीं पासक्ता है॥ ५ ॥ यह धर्म शील, मैथिलराज महात्मा जनक की पुत्री सीता ह, जो भर्त्ता में दृढ़ व्रतवाली है ॥ ६ ॥ धर्मज्ञ, कृतज्ञ अपने आत्मा को जाने हुए राम की यह प्यारी भार्या राक्षसियों के बस में पड़ी है ॥ ७ ॥ जो भर्ता के स्नेह के बल से सारे भोगों को त्यागकर और कष्टों की परवाह न करके निर्जन वन में प्रविष्ट हुई है ॥ ८ ॥ जोकि फल मूल से प्रसन्न भर्ता की सेवा परायण हुई वन में भी भवन की तरह परम प्रीति को भोगती थी ॥ ९ ॥ सो यह सुवर्ण तुल्य रङ्गवाली, नित्य हंसती हुई बोलने वाली इस तीव्र दुःख को सह रही है, जोकि अनर्थों की योग्या नहीं है ॥ १० ॥ रावण के दबाव डालने पर भी चरित्र में दृढ़ इस को राम इस तरह देखने की इच्छा रखते हैं, जैसे प्यासा प्याऊकी ॥ ११ ॥ इसके लाभ से राम निःसन्देह फिर प्रीति को प्राप्त होंगे,

जैसे राज्य से गिरा हुआ राजा फिर पृथिवी को पाकर ॥ १२ ॥ काम भोगों से अलग हुई, बन्धुजनों से हीन हुई केवल राम के समागम को चाहती हुई अपने देह को धारती है ॥ १३ ॥ न यह इन राक्षसियों को देखती है,न पुष्प फलों वाले वृक्षों को,किन्तु एक ही जगह दिल को टिकाकर केवल राम को ही देख रही है ॥ १४ ॥ पति स्त्री को भूषण से भी बढ़कर शोभा देनेवाला होता है। यह उस से रहित हुई शोभा के योग्य भी शोभा नहीं पाती है ॥ १५ ॥ राम बड़ा दुष्कर कर्म कर रहे हैं, जो इससे हीन हुए अपने देह को धारते हैं, दुःख से फट नहीं जाते ॥ १६ ॥ इस काले बालों वाली पद्मपत्र तुल्य नेत्रोंवाली, सुख के योग्या को दुःखिया देख कर मेरा भी हृदय दुःखित होरहा है ॥ १७ ॥ इत्यादि बातों को देखकर यह सीता है, इसप्रकार निश्चयवाला बलवाला, वेगवाला, वानरश्रेष्ठ उस वृक्ष पर बैठ गया ॥ १८ ॥

सर्ग १० (व० १७, १८) प्रभात का समय और रावण का अशोकवनिका में आना

मूल—ततः कुमुदखण्डाभो निर्मलं निर्मलोदयः। प्रजगाम नभश्चन्द्रो हंसो नीलमिवोदकम् ॥ १ ॥ साचिव्यमिव कुर्वन्स प्रभया निर्मलप्रभः। चन्द्रमा रश्मिभिः शीतैः सिषेवे पवनात्मजम् ॥ २ ॥ स ददर्श ततः सीतां पूर्णचन्द्रनिभाननाम्। शोकभारैरिव न्यस्तां भारैर्नावमिवाम्भसि ॥ ३ ॥ हर्षजानि च सोऽश्रूणि तां दृष्ट्वा मदिरेक्षणाम्। मुमोच हनुमांस्तत्र नमश्चक्रे च राघवम् ॥ ४ ॥ तथा विप्रेक्षमाणस्य वनं पुष्पितपादपम्। विचिन्वतश्च वैदेहीं किंचिच्छेषा निशाऽभवत् ॥ ५ ॥+षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम्। शुश्राव ब्रह्मघोषान् स विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम् ॥ ६ ॥ अथ मङ्गलवादित्रैः शब्दैः श्रोत्रमनोहरैः। प्राबोध्यत महाबाहुर्दशग्रीवो महाबलः

॥ ७ ॥ विबुध्य तु महाभागो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् । अशोकवनि-
कामेव प्राविशत्सन्ततद्रुमाम् ॥ ८ ॥ निद्रामदपरीताक्ष्यो रावण-
स्योत्तमस्त्रियः । अनुजग्मुः पतिं वीरं घनं विद्युल्लता इव ॥ ९ ॥
स च कामपराधीनः पतिस्तासां महाबलः । सीतासक्तमना मन्दो
मन्दाञ्चितगतिर्बभौ ॥१०॥तं ददर्श महातेजास्तेजोवन्तं महाकपिः ।
रावणोऽयं महाबाहुरिति संचिन्त्य वानरः ॥ ११ ॥ पत्रे गुह्यान्तरे
सक्तो मतिमान्संवृतोऽभवत् ॥ १२ ॥ स तामसितकेशान्तां सुश्रोणिं
संहतस्तनीम् । दिदृक्षुरसितापाङ्गीमुपावर्तत रावणः ॥ १३ ॥

टीका—तब कुमुद खण्ड के तुल्य निर्मल चन्द्र, नीले जल पर हंस की तरह निर्मल आकाश पर उदय हुआ ॥ १ ॥ वह निर्मल प्रभा वाला चन्द्र उसकी सहायता सी करता हुआ शीतल किरणों से पवनपुत्र को सेवन करता भया ॥ २ ॥ तब उसने चन्द्र तुल्य मुखवाली सीता को जल में भारों से दबी हुई नौका की तरह शोक के भारों से दबी हुई देखा ॥ ३ ॥ उस मत्त नेत्रोंवाली को देखकर हनुमान् ने हर्ष से उत्पन्न हुए आंसु छोड़े, और राम को नमस्कार किया ॥ ४ ॥ इसप्रकार फूले हुए वृक्षों वाले बन को देखते हुए, और सीता को ढूंढते हुए उसे रात थोड़ी सी शेष रह गई ॥ ५ ॥ वह पिछली रात के समय षडङ्ग वेद के जाननेवाले, उत्तम यज्ञों के करनेवाले, ब्राह्मण राक्षसों की वेद ध्वनियें सुनता भया ॥ ६ ॥ उस समय मङ्गल बाजों और कानों के प्यारे शब्दों से महाबाहु महाबली रावण जागा ॥ ७ ॥ जागकर वह प्रतापी महाभाग राक्षसेन्द्र लगातार वृक्षोंवाली अशोक वनिका में ही प्रविष्ट हुआ ॥ ८ ॥ निद्रा और मद से भरे हुए नेत्रोंवाली रावण की उत्तम स्त्रियें मेघ के साथ बिजलियोंकी तरह वीरपति के साथ आईं ॥ ९ ॥ वह महाबली उनका पति काम के पराधीन हुआ

सीता में लगे हुए मनवाला, मन्द २ शोभनगति से शोभायमान था ॥१०॥ महातेजस्वी महावानर ने उस तेजस्वी को देखा, तब वह बुद्धिमान् वानर "यह महाबाहु रावण है" ऐसा सोचकर शाखाओं के अन्दर पत्तों में छिप गया ॥ ११, १२ ॥ वह रावण उस काले बालों वाली सुन्दर कमर वाली पीनस्तनों वाली काले कटाक्ष वाली को देखना चाहता हुआ पास आया ॥१३॥

सर्ग ११ (व० १९, २०) रावण को देखकर सीता का भय और रावण का प्रेम दिखलाना

मूल—ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम् । प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा ॥ १ ॥ ऊरुभ्यामुदरं छाद्य बाहुभ्यां च पयोधरौ । उपविष्टा विशालाक्षी रुदती वरवर्णिनी ॥ २ ॥ दशग्रीवस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीगणैः । ददर्श दीनां दुःखार्तां नावं सन्नामिवार्णवे ॥ ३ ॥ असंवृतायामासीनां धरण्यां संशितव्रताम् । छिन्नां प्रपतितां भूमौ शाखामिव वनस्पतेः ॥४॥ मलमण्डनदिग्धाङ्गीं मण्डनार्हाममण्डनाम् । मृणालीपङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च ॥ ५ ॥ समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः । संकल्पहयसंयुक्तैर्यान्तीमिव मनोरथैः ॥ ६ ॥ शुष्यन्तीं रुदतीमेकां ध्यानशोकपरायणाम् । दुःखस्यान्तमपश्यन्तीं रामां राममनुव्रताम् ॥ ७ ॥ पौर्णमासीमिव निशां तमोग्रस्तेन्दुमण्डलाम् । पद्मिनीमिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव ॥८॥ पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्रावितामिव । परया मृजया हीनां कृष्णपक्षे निशामिव ॥ ९ ॥ स तां परिवृतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम् । साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः ॥ १० ॥ मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमाना स्तनोदरम् । अदर्शनमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि ॥ ११ ॥ कामये त्वां विशालाक्षि बहु मन्यस्व मां प्रिये । सर्वाङ्गगुणसम्पन्ने सर्वलोकमनोहरे ॥ १२ ॥

+एवं चैवमकामां त्वां न च स्प्रक्ष्यामि मैथिलि। कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम् ॥ १३ ॥ देवि नेह भयं कार्यं मयि विश्वसिहि प्रिये। प्रणयस्व च तत्त्वेन मैवं भूः शोकलालसा ॥ १४ ॥ स्त्रीरत्नमसि मैवं भूः कुरु गात्रेषु भूषणम्। मां प्राप्य हि कथं वा स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे ॥ १५ ॥ इदं ते चारु संजातं यौवनं ह्यतिवर्तते। यदतीतं पुनर्नैति स्रोतः स्रोतस्विनामिव ॥ १६ ॥ त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्त्ता च विश्वकृत्। नहि रूपोपमा ह्यन्या तवास्ति शुभदर्शने ॥ १७ ॥ यद्यत्पश्यामि ते गात्रं शीतांशुसदृशानने। तस्मिंस्तस्मिन्पृथुश्रोणि चक्षुर्मम निबद्ध्यते ॥ १८ ॥ भव मैथिलि भार्या मे मोहमेतं विसर्जय। बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव ॥ १९ ॥ लोकेभ्यो यानि रत्नानि संप्रमथ्याहृतानि मे। तानि ते भीरु सर्वाणि राज्यं चैव ददामि ते ॥ २० ॥ विजित्य पृथिवीं सर्वां नानानगरमालिनीम्। जनकाय प्रदास्यामि तव हेतोर्विलासिनि ॥ २१ ॥ भुङ्क्ष्व भोगान्यथाकामं पिब भीरु रमस्व च। यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च ॥ २२ ॥ निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः। व्रती स्थण्डिलशायी च शङ्के जीवति वा न वा ॥ २३ ॥ न हि वैदेहि रामस्त्वां द्रष्टुं वाप्युपलभ्यते। पुरोबलाकैरसितैर्मेघैर्ज्योत्स्नामिवावृताम् ॥ २४ ॥

टीका—तब राक्षसाधिपति रावण को देखते ही वरारोहा सीता प्रबल वायु में कदली की तरह कांप उठी ॥ १ ॥ रानों से पेट को और भुजाओं से स्तनों को ढांप कर वह विशालनेत्रा वरवर्णिनी रोती हुई सिमटकर बैठ गई ॥ २ ॥ रावण ने राक्षसीगणों से रक्षा की हुई, दीन, दुःख से पीड़ित सीता को समुद्र में टूटी हुई नौकावत देखा ॥ ३ ॥ खाली भूमि पर बैठी हुई, तीक्ष्ण व्रत वाली (मानों रावण के वध के लिए तीक्ष्ण व्रत करती हुई) कटकर भूमि

पर गिरी वनस्पति की शाखा की तरह ॥ ४ ॥ मैले रूपी भूषण से लिबड़े हुए अङ्गोंवाली, भूषणों के योग्या, पर भूषणों से रहित कीचड़ से लिबड़ी कमलिनी की तरह भासती है और नहीं भासती है ॥५॥ जो संकल्प के घोड़े जोड़कर मनोरथों से मानों विदितात्मा राजसिंह राम के समीप जारही है ॥ ६ ॥ सूखती हुई रोती हुई अकेली ध्यान शोक परायण हुई दुःख का अन्त न देखती हुई राम के अनुव्रत रमणी ॥ ७ ॥ राहु से ग्रसे हुए चन्द्रमण्डल वाली पौर्णमासी की रात्रि की तरह, शुष्क हुई पद्मनी की तरह, हत हुए शूरोंवाली सेना की तरह ॥ ८॥ पति के शोक से पीड़ित, सारे जल के (दूसरी ओर) वह जाने से सूखी नदी की तरह है, अङ्ग शुद्धि से सर्वथा हीन होने से कृष्णपक्ष में रात्रि की तरह स्थित है ॥ ९ ॥ रावण उस (राक्षसियों से) घेरी हुई दीन आनन्द रहित को अभिप्रायवाले मधुर वाक्यों से (अपना अभिप्राय) दिखलाता भया ॥१०॥ मुझे देख कर हे हाथी के सूंड के तुल्य रानों वाली तू स्तन और उदर को छिपाती हुई मानों भय से अपने आप को अदृश्य कर रही है ॥ ११ ॥ हे विशाल नेत्रोंवाली मैं तेरी कामना करता हूं, हे सारे सुन्दर अङ्गोंवाली, सारे जगत् के मन हरनेवाली मेरी प्यारी मेरा बहुमान कर ॥ १२ ॥ मैं तुझ अकामा को हे मैथिलि नहीं छूंगा, चाहे काम मेरे देह में यथेच्छ भी प्रवृत्त हो ॥ १३ ॥ हे देवि ! इसमें तुझे भय नहीं करना चाहिये, हे प्यारी मेरे ऊपर विश्वास कर, पूरा २ प्रेम कर, इसतरह शोकपरायण न हो ॥१४॥ तू स्त्रीरत्न है, ऐसी मत रहो, अङ्गों पर भूषण धारणकर, मुझे पाकर हे सुन्दरि तू किसतरह भूषणों के अयोग्य होसक्ती है ॥ १५ ॥ यह तेरा सुन्दर बना हुआ, यौवन चला जारहा है, जो गया हुआ नदियों के प्रवाह की तरह वापिस नहीं आता है ॥ १६ ॥ मैं

जानता हूं, कि तुझे उत्पन्न करके रूप के बनाने वाले विश्वकर्मा ने रूप बनाना छोड़ दिया है, हे शुभ दर्शनवाली तेरे तुल्य और रूप की उपमा नहीं है ॥१७॥ हे चन्द्र तुल्य मुख वाली तेरे जिस२ अङ्ग को देखता हूं, उस २ में हे विशाल श्रोणिवाली मेरी दृष्टि गड़ जाती है ॥ १८ ॥ हे मैथिलि मेरी भार्या हो, इस मोह को छोड़ बहुत उत्तम स्त्रियों में तू मेरी मुख्य पटरानी हो ॥ १९ ॥ सारे लोकों से बल से हर कर जो मैं रत्न लाया हूं, हे भीरु तुझे वह सारे और राज्य देता हूं ॥ २० ॥ अनेक नगरों की माला वाली सारी पृथिवी को जीतकर तेरी खातिर हे विलासिनि जनक को दूंगा ॥२१॥ हे भीरु यथारुचि भोगों को भोग, और पानकर, और यथारुचि पृथिवी और धन का दान दे ॥२२॥ राम अब जिसकी विजय की आशा दूर होगई. वन में घूमता हुआ,व्रती, स्थण्डिलों पर लेटता हुआ सन्देह है जीता है वा नहीं ॥ २३ ॥ हे वैदेहि जिनके आगे आगे बगले (उड़ रहे हैं, ऐसे) मेघों से ढकी चान्दनी की तरह राम अब तुझे देख नहीं पायेगा ॥ २४ ॥

सर्ग १२ (व० २१) सीता का पवित्र उत्तर

मूल—तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः । दुःखार्ता रुदती सीता वेपमाना तपस्विनी ॥ १ ॥ + चिन्तयन्ती वरारोहा पतिमेव पतिव्रता । तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता ॥२॥+निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रीयतां मनः । न मां प्रार्थयितुं युक्तस्त्वं सिद्धिमिव पापकृत् ॥ ३ ॥+अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम् । कुले संप्राप्तया पुण्ये कुले महति जातया ॥४॥+यथा तव तथान्येषां रक्ष्या दारा निशाचर । आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम् ॥५॥+इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे । यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता ॥६॥+वचो मिथ्याप्रणीतात्मा पथ्य-

मुक्तं विचक्षणैः । राक्षसानामभ व य त्वं वा न प्रतिपद्यसे ॥ ७ ॥ अकृतात्मानमासाद्य राजानमनय रतम् । समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्र णि नगराणि च ॥ ८ ॥ तथेव त्वां समासाद्य लङ्का रत्नौघ संकुला । अपराधात्तवैकस्य नचिराद्विनशिष्यति ॥ ९ ॥ +शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा । अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ॥ १० ॥ उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम् । कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित् ॥ ११ ॥ अहमौपयिकी भार्या तस्यैव च धरापतेः । व्रतस्नातस्य विप्रेव विप्रस्य विदितात्मनः ॥ १२ ॥ साधु रावण रामेन मां समानय दुःखिताम् अन्यथा त्वं हि कुर्वाणः परां प्राप्स्यामि चापदम् ॥ १३ ॥ वर्जयेद्वज्रमुत्सृष्टं वर्जयेदन्तकश्चिरम् । त्वद्विधं न तु संक्रुद्धो लोकनाथः स राघवः ॥ १४ ॥ इह शीघ्रं सुपर्णाः ज्वलित स्या इवोरगाः । इषवो निपतिष्यन्ति रामलक्ष्मणलक्षिताः ॥ १५ ॥

टीका—उस रौद्र राक्षस के वचन को सुनकर रोती हुई कांपती हुई, बेचारी दुःखिया सीता ॥१॥पतिव्रता शुद्ध हंसीवाली वरारोहा पति का ही चिन्तन करती हुई मध्य में तृण रखकर (दुष्ट अभिप्राय वाले से साक्षात् बात करना भी पाप जानकर)उत्तर देती भई॥२॥ मुझ से मन को हटा, अपने जन (अपनी स्त्रियों) में मन को प्रीति वाला रख,सिद्धि को पापी पुरुष की तरह तू मुझे चाहने योग्य नहीं है॥३॥ मैं पतिव्रता महान् कुल में उत्पन्न हुई और महा कुल को प्राप्त हुई ऐसा निन्दित अकार्य नहीं करूंगी॥४॥ हे राक्षस जैसे तुझे अपनी वैसे पर स्त्रियों की भी रक्षा करनी चाहिये,अपने आप को ही दृष्टान्त बनाकर अपनी स्त्रियों में रमणकर ॥ ५ ॥ क्या यहां भले पुरुष हैं नहीं, वा तू भलों के पीछे नहीं चलता है, जैसा कि यह तेरी उलटी बुद्धि सदाचार से उलटी है ॥ ६ ॥ अथवा तू आपही

कुमार्ग में पड़ा हुआ, विद्वानों से कहे पथ्य वचन को नहीं सुनता है ॥ ७ ॥ अजितेन्द्रिय, अनीति में रत, राजा को पाकर समृद्धिशाली भी नगर और देश नष्ट होजाते हैं ॥ ८ ॥ वैसे ही तुझको पाकर तेरे अकेले के अपराध से रत्न समूहों से भरी सारी लङ्का जल्दी नष्ट होजाएगी ॥ ९ ॥ मैं ऐश्वर्य, वा धन से लुभाई नहीं जासक्ती, मैं राघव से इस तरह अभिन्न हूं, जैसे सूर्य से प्रभा ॥ १० ॥ उस लोकनाथ की पूजित भुजा को सिर के नीचे रखकर अब कैसे किसी दूसरे की भुजा को सिर के नीचे रखूंगी ॥ ११ ॥ मैं उसी पृथिवीपति के योग्य भार्या हूं, जैसे विद्या व्रतस्नात और साधनों के जानने वाले ब्राह्मण के ही योग्य होती है ॥ १२ ॥ हे रावण मुझ दुःखिया को राम के साथ मिला दे, यही भला है, इस से अन्यथा करता हुआ तू परम आपद को प्राप्त होगा ॥ १३ ॥ (इन्द्र का) छोड़ा हुआ वज्र छोड़दे, यम चिर तक छोड़ दे, पर क्रुद्ध हुआ वह लोकनाथ राघव तेरे जैसे को कभी नहीं छोड़ेगा ॥ १४ ॥ जल्दी यहां राम लक्ष्मण के नामवाले तीक्षण नोकोंवाले तीर जलते हुए मुखवाले सांपों के तुल्य आकर पड़ेंगे ॥ १५ ॥

सर्ग १३ (० २२) रावण का क्रोध

मूल—सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं राक्षसेश्वरः । प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रियं प्रियदर्शनाम् ॥ १ ॥ सान्त्वयच्छति मे क्रोधं त्वयि कामः समुत्थितः । द्रवतो मार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः ॥ २ ॥ वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन्किल निबद्ध्यते । जनेतस्मिंस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते ॥ ३ ॥ एतस्मात्कारणान्न त्वां घातयामि वरानने । वधार्हामवमानार्हां मिथ्या प्रव्रजने रताम् ॥ ४ ॥ परुषाणि हि वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम् । तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः ॥ ५ ॥ एव मुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ।

क्रोधसंरम्भसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत् ॥ ६ ॥ द्वौमासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः। ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि ॥ ७ ॥ द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम्। मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः ॥८॥ तां भर्त्स्यमानां संप्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम्। देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विकृतेक्षणाः ॥ ९ ॥ ताभिराश्वासिता सीता रावणं राक्षसाधिपम्। उवाचात्महितं वाक्यं वृत्तशौटीर्यगर्वितम् ॥ १० ॥+नूनं न ते जनः कश्चिदस्मिन्निःश्रेयसि स्थितः। निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद्विगर्हितात् ॥ ११ ॥ +मां हि धर्मात्मनः पत्नीं शचीमिव शचीपतेः। त्वदन्यास्त्रिषु लोकेषु प्रार्थयेन्मनसापि कः ॥ १२ ॥ +राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः। उक्तवानासि यत्पापं क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे ॥ १३ ॥+इमे ते नयने क्रूरे विकृते कृष्णपिङ्गले। क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षतः ॥ १४ ॥ +तस्य धर्मात्मनः पत्नीं स्नुषां दशरथस्य च। कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यति ॥ १५॥ असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्। न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्ह तेजसा ॥ १६ ॥ नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः। विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्रसंशयः ॥ १७ ॥ शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च। अपोह्य रामं कस्माच्चिद्दारचौर्यं त्वया कृतम् ॥ १८ ॥

टीका—राक्षसपति सीता के इस कठोर बचन को सुनकर उस प्रियदर्शना सीता को विप्रिय वचन बोला ॥१॥ तेरे विषय में उत्पन्न हुआ काम मेरे क्रोध को रोकता है, जैसे अमार्ग को पाकर दौड़ते हुए घोड़ों को अच्छा सारथि रोकता है, ॥ २ ॥ यह टेढ़ा काम मनुष्यों का जिसमें बन्ध जाता है, उस जन पर दया और स्नेह उत्पन्न होजाता है ॥३॥ इसकारण से हे वरानने मैं तुझे मारता नहीं

हूं, जो बध के योग्य, अपमान के योग्य और मिथ्यात्याग (विषय त्याग) में रत है ॥४॥ जो २ कठोर वाक्य तू मुझे कहती है, उन२ में हे मैथिलि तेरा दारुण बध युक्त है ॥ ५ ॥ राक्षसपति रावण सीता को ऐसे कहकर फिर क्रोध और जोश से भरा हुआ बचन बोला ॥ ६ ॥ दो महीने मैंने और देखना है, जोकि मैंने अवधि की हुई है, उसके पीछे हे वरवर्णिनि तुझे मेरी शय्या पर आरूढ़ होना पड़ेगा ॥७॥ दो महीने के पीछे यदि मुझे अपना भर्ता न चाहेगी, तो मेरे रसोइये तुझे प्रातराश के लिये टुकड़े२ काटेंगे ॥८॥ जब राक्षसेन्द्र ने सीता को इसतरह झिड़का, तो उसे देखकर देव गन्धर्वों की उन (सीता की तरह बल से लाई हुई) कन्याओं की दृष्टि में विकार आगया, और वह बहुत उदास हुई ॥९॥ उनसे तसल्ली दी हुई सीता राक्षसपति रावण को वृत्त और गर्व से भरा हुआ वचन बोली ॥ १० ॥ क्या इस नगर में कोई भी पुरुष तेरी भलाई में स्थिर नहीं, जो तुझे इस निन्दित कर्म से रोकता नहीं है ॥ ११ ॥ इन्द्र की इन्द्राणी की तरह धर्मात्मा की पत्नी मुझको कौन तीनों लोकों में तेरे विना मन से भी चाह सक्ता है ॥१२॥ हे राक्षसाधम ! अमित तेजवाले राम की भार्या को जो तूने पाप कहा है, अब कहां गया हुआ तू उस से छूटेगा ॥ १३ ॥ यह तेरे काले कैरे विकृत क्रूर नेत्र हे अनार्य मेरी ओर देखते हुए के पृथिवी पर क्यों नहीं गिर पड़ते ॥ १४ ॥ उस धर्मात्मा की पत्नी दशरथ की स्नुषा मुझको ऐसी बात कहते हुए हे पापी तेरी जिह्वा क्यों नहीं फट जाती॥१५॥मुझे धर्मात्मा राम की आज्ञा नहीं और तप को बचाना है, इसलिये हे रावण मैं तुझे अपने (पातिव्रत्य के) तेज से भस्म नहीं करती हूं, यद्यपि तू भस्म के योग्य है ॥१६॥ उस बुद्धिमान् राम से मैं छीनी नहीं जासक्ती, यह विधाता ने

तेरे बध के लिये घटना घटाई है, इसमें संशय नहीं ॥ १७ ॥ शूरवीर, कुबेर के भाई, सेनाओं से युक्त हुए तूने अकेले भी राम को क्यों दूर हटाकर उसकी स्त्री को चुराया ॥ १८ ॥

सर्ग १४ [व० २२] रावण का सीता पर क्रोध

मूल—सीताया वचनं श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः । विवृत्य नयने क्रूरे जानकीमन्ववैक्षत ॥ १ ॥ अवेक्षमाणो वैदेहीं कोपसंरक्तलोचनः । उवाच रावणः सीतां भुजङ्ग इव निःश्वसन् ॥ २ ॥ अनयेनाभिसम्पन्नमर्थहीनमनुव्रते । नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः सन्ध्यामिवौजसा ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः । संददर्श ततः सर्वा राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥ ४ ॥ यथा मद्वशगा सीता क्षिप्रं भवति जानकी । तथा कुरुत राक्षस्यः सर्वाः क्षिप्रं समेत्य वा ॥ ५ ॥ प्रतिलोमानुलोमैश्च सामदानादिभेदनैः । आवर्जयत वैदेहीं दण्डस्योद्यमनेन च ॥६॥ इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्रः पुनःपुनः । काममन्युपरीतात्मा जानकीं प्रति गर्जत ॥ ७ ॥ उपगम्य ततः क्षिप्रं राक्षसी धान्यमालिनी । परिष्वज्य दशग्रीवमिदं वचनमब्रवीत्॥८॥ मया क्रीड महराज ! सीतया किं तवानया । विवर्णया कृपणया मानुष्या राक्षसेश्वर ॥९॥ नूनमस्यां महाराज न देवा भोगसत्तमान्। विदधत्यमरश्रेष्ठास्तव बाहुबलार्जितान् ॥ १० ॥ अकामां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते । इच्छन्तीं कामयानस्य प्रीतिर्भवति शोभना॥ ११॥ एवमुक्तस्तु राक्षस्या समुत्क्षिप्तस्ततो बली । प्रहसन्मेघसंकाशो राक्षसः स न्यवर्तत ॥ १२ ॥

टीका—सीता के वचन को सुनकर राक्षसपति रावण क्रूर नेत्रों को मोड़कर जानकी की ओर देखता भया ॥ १ ॥ क्रोध से लाल हुए नेत्रों वाला भुजङ्ग की तरह सांस लेता हुआ रावण वैदेही सीता की ओर देखता हुआ बोला ॥ २ ॥ हे अनीति से युक्त, और अर्थ से

हीन राम के पीछे चलने वाली ! अभी तुझे बल से नाश करता हूं जैसे सूर्य सन्ध्या को ॥ ३ ॥ शत्रुओं के रुलाने वाला, राजा रावण मैथिली को यह कहकर फिर भयङ्कर दर्शनवाली, राक्षसियों की ओर देखता भया ॥ ४ ॥ हे राक्षसियो ! तुम सब मिलकर ऐसा करो, जिससे कि जानकी सीता जल्दी मेरे बस में हो ॥ ५ ॥ प्रतिकूल अनुकूल व्यवहारों से साम दाम भेद और दण्ड से वैदेही को मेरी ओर झुकाओ ॥ ६ ॥ वार २ वह आज्ञा देकर काम क्रोध से भरे हुए मन वाला राक्षसेन्द्र जानकी के प्रति गर्जा ॥७॥ उसी समय धान्यमालिनी राक्षसी निकट पहुंचकर आलिङ्गन करके रावण से यह वचन बोली ॥ ८ ॥ मुझ से क्रीड़ा कर हे महाराज, हे राक्षसेश्वर इस फीके रङ्गवाली, मानुषी से तुझे क्या है ॥ ९ ॥ निःसन्देह हे महाराज तेरे भुजबल से कमाए उत्तम भोग देवताओं ने इसके लिये नहीं बनाए ॥ १० ॥ न चाहती हुई को चाहने वाले का शरीर तपता है, चाहती हुई को चाहने वाले की शोभना प्रीति होती है ॥ ११ ॥ राक्षसी से ऐसे कहा हुआ वह मेघ तुल्य राक्षस बली वहां से हटकर चला गया ॥ १२ ॥

सर्ग १५ (व० २३, २४) राक्षसियों का सीता को समझाना और सीता का उन को उत्तर

मूल—ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः । परं परुषया वाचा वैदेहीमिदमब्रुवन् ॥१॥ किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्वभूतमनोरमे । महार्हशयनोपेते न वासमनुमन्यसे ॥ २ ॥ त्रैलोक्यवसुभोक्तारं रावणं राक्षसेश्वरम् । भर्तारमुपसङ्गम्य विहरस्व यथासुखम् ॥ ३ ॥ मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने । राज्याद्भ्रष्टमसिद्धार्थं विक्लवंतमनिन्दिते ॥ ४ ॥ राक्षसानां वचः श्रुत्वा सीता पद्मनिभेक्षणा । नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रीव ॥ ५ ॥+यदिदं

लोकविद्विष्टमुदाहरत सङ्गताः । नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्बिषं प्रतितिष्ठति ॥ ६ ॥ +न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति । कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥७॥+दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः । तं नित्यमनुरक्तास्मि यथासूर्यंसुवर्चला॥८॥ यथा शची महाभाग शक्रं समुपतिष्ठति । अरुन्धती वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा ॥ ९ ॥ लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा । सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा ॥ १० ॥ सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा । नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता ॥ ११ ॥ तथाहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता ॥ १२ ॥ सीताया वचनं श्रुत्वा राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः । भर्त्सयन्ति स्म परुषैर्वाक्यै रावणचोदिताः ॥ १३ ॥ अवलीनः स निर्वाक्यो हनुमाञ्शिंशपाद्रुमे । सीतां संतर्जयन्तीस्ता राक्षसीरश्रृणोत्कपिः ॥ १४ ॥ सा भर्त्स्यमाना भीमाभी राक्षसीभिर्वराङ्गना । सा बाष्पमपमार्जन्ती शिंशपां तामुपागमत् ॥ १५ ॥

टीका--उसके पीछे सीता के पास आकर क्रोध से मूर्च्छित राक्षसियें सीता को कठोर वचन बोलीं ॥१॥ हे सीते बहुमूल्य शय्याओं से युक्त सब लोगों के मन को लुभानेवाले अन्तःपुर में वास तू क्यों पसन्द नहीं करती है ॥ २ ॥ त्रिलोकी के ऐश्वर्य को भोगने वाले राक्षसेश्वर रावण को भर्ता बनाकार सुख पूर्वक विहार कर ॥ ३ ॥ हे शोभने मानुषी तू मानुष राम को चाहती है, हे आनिन्दिते जो राज्य से भ्रष्ट, अर्थ से हीन घबराया फिरता है ॥ ४ ॥ राक्षसियों के वचन को सुनकर पद्म तुल्य नेत्रोंवाली सीता आंसू भरे नेत्रों से यह वचन बोली ॥ ५ ॥ तुम सब इकट्ठी होकर यह जो लोक निन्दित वाक्य कहती हो, यह पाप भरा वाक्य मेरे मन में जगह नहीं पकड़ सक्ता है ॥ ६ ॥ मानुषी राक्षस की भार्या नहीं हो

सकती है बेशक सब मिलकर मुझे खाजाओ, पर तुम्हारी बात नहीं मानूंगी ॥ ७ ॥ दीन वा राज्यहीन है, जो मेरा भर्ता है, वह मेरा गुरु है, उस पर सदा अनुरक्त हूं, जैसे सूर्य पर सुवर्चला ॥८॥ जैसे महाभागी इन्द्राणी इन्द्र के, अरुन्धती वसिष्ठ के, रोहिणी चन्द्र के ॥ ९ ॥ लोपामुद्रा अगस्त्य के, सुकन्या च्यवन के, सावित्री सत्यवान् के, श्रीमती कपिल के ॥ १० ॥ मदयन्ति सौदास के, केशिनी सगर के, भीम की पुत्री दमयन्ती निषध के राजा अपनें पति के अनुव्रता है ॥ ११ ॥ इसप्रकार मैं इक्ष्वाकुवर राम पति के अनुव्रता हूं ॥ १२ ॥ सीता के वचन को सुनकर रावण से प्रेरी हुई राक्षसियें क्रोध से मूर्छित हुई कठोर वाक्यों से उसे झिड़कती भई ॥ १३ ॥ उस शीशम के वृक्ष पर चुपचाप छिपा हुआ हनुमान् वानर सीता को झिड़कती हुई राक्षसियों को सुनता भया ॥ १४ ॥ उन भयङ्कर राक्षसियों की झिड़कें सहकर वह उत्तम नारी आंसुओं को पोंछती हुई उस शीशम की ओर ही आई ॥१५॥

सर्ग १६ (अ० २५, २६) सीता का अति करुण विलाप

मूल—वेपते साधिकं सीता विशन्तीवाङ्गमात्मनः । वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता ॥ १ ॥ सा त्वशोकस्य विपुलां शाखामालम्ब्य पुष्पिताम् । चिन्तयामास शोकेन भर्तारं भग्नमानसा ॥ २ ॥ सा स्नापयन्ती विपुलौ स्तनौ नेत्रजलस्रवैः । चिन्तयन्ती न शोकस्य तदान्तमधिगच्छति ॥ ३ ॥ सा निःश्वसन्ती शोकार्ता कोपोपहतचेतना । आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप च ॥४॥ हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च । हाश्वश्रूर्मम कौशल्ये हा सुमित्रेति भामिनी ॥ ५ ॥ लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः । अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ॥६॥ यत्राहमाभिः क्रूराभी राक्षसीभिरिहार्दिता । जीवामि हीना रामेण

मुहूर्तमपि दुःखिता ॥ ७ ॥ भर्तारं तमपश्यन्ती राक्षसीवशमागता । सीदामि खलु शोकेन कूलं तोयहतं यथा ॥८॥ सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना । तीक्ष्णं विषमिवास्वाद्य दुर्लभं मम जीवनम् ॥९॥+कीदृशं तु महापापं मया देहान्तरे कृतम् । येनेदं प्राप्यते घोरं महादुःखं सुदारुणम् ॥१०॥ जीवितं त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महताऽऽवृता । राक्षसीभिश्च रक्षन्त्या रामो नासाद्यते मया ॥११॥ धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम् । न शक्यं यत्परित्यक्तुमात्मच्छन्देन जीवितम् ॥१२॥+अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम् । हृदयं मम येनेदं न दुःखेन विशीर्यते ॥१३॥+धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन विना कृता । मुहूर्तमपि जीवामि जीवितं पापजीविका ॥१४॥+चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम् । रावणं किं पुनरहं कामयेयं निशाचरम् ॥१५॥ इहस्थां मां न जानीते शङ्के लक्ष्मणपूर्वजः । जानन्नपि स तेजस्वी धर्षणां मर्षयिष्यति ॥१६॥ हृतेति मां योऽधिगम्य राघवाय निवेदयेत् । गृध्रराजोऽपि स रणे रावणेन निपातितः ॥१७॥ कृतं तेन महत्कर्म मां तदाभ्यवपद्यता । तिष्ठता रावणवधे वृद्धेनापि जटायुषा ॥१८॥ यदि मामिह जानीयाद्वर्तमानां हि राघवः । अद्य बाणैरभिक्रुद्धः कुर्याल्लोकमराक्षसम् ॥१९॥ यादृशानि तु दृश्यन्ते लङ्कायामशुभानि तु । अचिरेणैव कालेन भविष्यति हतप्रभा ॥२०॥ रामं रक्तान्तनयनमपश्यन्ती सुदुःखिता । क्षिप्रं वैवस्वतं देवं पश्येयं पतिना विना ॥२१॥ नाजानाज्जीवतीं रामः स मां भरतपूर्वजः । जानन्तौ तु न कुर्यातां नोर्व्यां हि परिमार्गणम् ॥२२॥+नूनं ममैव शोकेन स वीरो लक्ष्मणाग्रजः । देवलोकमितो यातस्त्यक्त्वा देहं महीतले ॥२३॥ किं वा मय्यगुणाः केचित्किं वा भाग्यक्षयो हि मे । या हि सीता वरार्हेण हीना रामेण भामिनी ॥२४॥ अथवा राक्षसेन्द्रेण

रावणेन दुरात्मना। छद्मना घातितौ शूरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥२५॥ साहं त्यक्ता प्रियेणैव रामेण विदितात्मना। प्राणांस्त्यक्ष्यामि पापस्य रावणस्य गता वशम् ॥२६॥

टीका—वन में यूथ से भ्रष्ट हुई, भेड़ियों से पीड़ित हरिणी की तरह पीड़ित सीता (भय से) मानों अपने अङ्गों में प्रवेश करती हुई अधिक कांप रही थी ॥ १ ॥ वह टूटे हुए मनवाली अशोक की एक फूली हुई शाखा को पकड़ कर शोक से भर्ता को सोचने लगी ॥२॥ वह नेत्रों के जल के बहने से अपने विपुल स्तनों को स्नान कराती हुई, और सोचती हुई, तब शोक का अन्त नहीं पाती है ॥३॥ वह शोक से पीड़ित हुई, कोप से दूर हुई चेतनावाली, आहें भरती हुई मैथिली रोती और विलाप करती भई ॥ ४ ॥ वह दुखिया सुन्दरी " हा राम" हा लक्ष्मण, हा मेरी सास कौशल्या, हा सुमित्रा, यह बार २ कहती भई ॥५॥ विद्वानों ने यह कहावत ठीक कही है, कि बिना काल के स्त्री वा पुरुष को मृत्यु दुर्लभ है ॥६॥ जब कि मैं इन क्रूर राक्षसियों से यहां पीड़ित हुई राम से वियुक्त हो दुःखिया होकर मुहूर्त भी जीती हूं ॥७॥ भर्ता को न देखती हुई राक्षसियों के बस पड़ी हुई, जल से तोड़े हुए किनारे की तरह शोक से गिर रही हूं ॥८॥ उस विदितात्मा राम से हीन हुई मुझको तीक्ष्ण विष खाकर जैसे वैसे जीना दुर्लभ है ॥९॥ कैसा महापाप मैंने देहान्तर में किया है, जिससे यह बड़ा दारुण घोर महा दुःख पारही हूं ॥१०॥ बड़े शोक से घिरी हुई, मैं जीवन त्यागना चाहती हूं, इन राक्षसियों से रक्षा की हुई मैं राम को नहीं पासकूंगी ॥ ११ ॥ धिक्कार है मनुष्यता को और धिक्कार है पराधीनता को, जिस में कि अपनी इच्छा से जीवन भी नहीं त्यागा जासक्ता ॥१२॥ निःसन्देह यह मेरा हृदय पत्थर का

बना हुआ है, अथवा अजर अमर है, जो यह इतने बड़े दुःख से फट नहीं जाता है ॥ १३ ॥ धिक्कार है मुझ अनार्या असती को जो मैं पति से अलग की हुई मुहूर्त भी पाप का जीवन जीती हूं ॥ १४ ॥ मैं राक्षस रावण को बाएं पाओं से भी नहीं छूंगी, क्या फिर मैं उसे कामना करूं ॥ १५ ॥ मैं जानती हूं लक्ष्मण का बड़ा भाई मुझे यहां स्थित नहीं जानता है, जाने तो वह तेजस्वी अपमान को नहीं सहारेगा ॥ १६ ॥ "हरी गई" यह जानकर जो राघव को मेरा पता देता, वह गृध्रराज भी रावण ने रण में मार गिराया ॥ १७ ॥ मेरे ऊपर अनुग्रह करते हुए जटायु ने बड़ा काम किया, जो वृद्ध होकरभी रावण के बध के लिए खड़ा होगया॥१८॥ राघव यदि यहां मेरा होना जानले, तो क्रुद्ध हुआ वह अभी बाणों से लोक को बिन राक्षसों के बना दे ॥ १९ ॥ लङ्का में जैसे अशुभ कार्य दीखते हैं, थोड़े ही काल में इसकी प्रभा उड़ जायगी ॥२० ॥ रक्तनेत्रोंवाले राम को न देखती हुई पति के बिना अत्यन्त दुःखित हुई (हे भगवन्) मैं जल्दी यमदेव को देखूं ॥ २१ ॥ वह भरत का बड़ा भाई राम मुझे जीती हुई नहीं जानता है, वह जानते तो क्या पृथिवी में ढूंढ भाल न करते ॥ २२ ॥ अथवा निःसन्देह मेरे ही शोक से वह वीर लक्ष्मण का बड़ा भाई पृथिवी पर देह को त्याग कर यहां से देवलोक का चला गया ॥ २३ ॥ अथवा क्या मुझ में कोई अवगुण है, वा क्या मेरे भाग्य का ही क्षय होगया, जो कि प्यारी सीता प्यारे राम से वियुक्त है ॥ २४ ॥ अथवा दुरात्मा राक्षसेन्द्र रावण ने उन शूरवीर राम लक्ष्मण दोनों भाइयों को धोखे से मरवा डाला है ॥ २५ सो मैं विदितात्मा प्यारे राम से त्यागी हुई पापी रावण के वश पड़ी हुई प्रणों को त्यागूंगी ॥२६॥

सर्ग १७ (श्लो० १०) हनुमान् का सीता से सम्भाषण का विचार

मूल—हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः । ततो बहुविधां चिन्तां चिन्तयामास वानरः ॥ १ ॥ यां कपीनां सहस्राणि सुबहून्ययुतानि च । दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते सेयमासादिता मया ॥ २ ॥ यदि ह्येवं सतीमेनां शोकोपहतचेतनाम् । अनाश्वास्य गमिष्यामि दोषवद्गमनं भवेत् ॥ ३ ॥ गते हि मयि तत्रेयं राजपुत्री यशस्विनी । परित्राणमपश्यन्ती जानकी जीवितं त्यजेत् ॥ ४ ॥ अनेन रात्रिशेषेण यदि नाश्वास्यते मया । सर्वथा नास्ति सन्देहः परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥ ५ ॥ रामस्तु यदि पृच्छेन्मां किं मां सीताब्रवीद्वचः । किमहं तं प्रतिब्रूयामसम्भाष्य सुमध्यमाम् ॥ ६ ॥ अन्तरं त्वहमासाद्य राक्षसीनामवस्थितः । शनैराश्वासयाम्यद्य सन्तापबहुलामिमाम् ॥ ७ ॥ कथं नु खलु वाक्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत च । इति संचिन्त्य हनुमांश्चकार मतिमान्मतिम् ॥ ८ ॥ राममक्लिष्टकर्माणं सुबन्धुमनुकीर्तयन् । नैनामुद्वेजयिष्यामि तद्बन्धुगतचेतनाम् ॥ ९ ॥ श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन्गिरम् । श्रद्धास्यति यथा सीता तथा सर्वं समादधे ॥ १० ॥

टीका—हनुमान् ने भी वह सारा वाक्य ठीक २ सुना, तब वह वानर अनेक प्रकार की सोच करता भया ॥ १ ॥ जिसको बहुत २ वानर सारी दिशाओं में ढूंढ रहे हैं, वह यह मैंने पाली है ॥ २ ॥ अब यदि मैं शोक से नष्ट चेतनावाली इस पतिव्रता को बिन तसल्ली दिये चला जाऊंगा, तो मेरा जाना दोषवाला होगा ॥ ३ ॥ मेरे वहां चले जाने पर यह यशस्विनी राजपुत्री जानकी परित्राण न देखती हुई जीवन को त्याग देगी ॥ ४ ॥ इसी रात्रिशेषमें यदि मैं इसे तसल्ली न दे सका, तो बिल्कुल सन्देह नहीं, कि यह जीवन त्याग देगी ॥ ५ ॥ और राम भी यदि

पूछेंगे, सीता ने मुझे क्या कहा, तो मैं इस सुमध्यमा से बात किये बिना उनको क्या उत्तर दूंगा ॥६॥ राक्षसियों से यहां दूरी पर खड़ा हुआ, इस बड़ी संत्रस्त हुई को धीरे २ तसल्ली देता हूं ॥ ७ ॥ कैसे यह मेरे वाक्य को सुने, और डरे नहीं, यह सोचकर मतिमान् हनुमान् ने यह विचार किया ॥८॥ सुखदायी कर्मोंवाले उसके बन्धु राम का कीर्त्तन करता हुआ इसको डरने से बचाऊंगा, क्योंकि इस का चित्त उसी बन्धु में लग रहा है ॥ ९ ॥ मीठी वाणी बोलता हुआ (राम के) सारे (कार्य) सुनाऊंगा, जिससे सीता विश्वास करेगी वैसे सब कुछ कहूंगा ॥ १० ॥

सर्ग १८ (व० ३१) हनुमान् का राम के गुण वर्णन

मूल–एवं बहुविधां चिन्तां चिन्तयित्वा महामतिः । संश्रवे मधुरं वाक्यं वैदेह्या व्याजहार ह ॥ १ ॥ राजा दशरथो नाम रथकुञ्जर-वाजिमान् । पुण्यशीलो महाकीर्त्तिरिक्ष्वाकूणां महायशाः ॥ २ ॥ तस्य पुत्रः प्रियो ज्येष्ठस्ताराधिपनिभाननः । रामो नाम विशेषज्ञः ज्येष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ३ ॥ रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षिता । रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परन्तपः ॥ ४ ॥ तस्य सत्याभिसन्धस्य वृद्धस्य वचनात्पितुः । सभार्यः सह च भ्रात्रा वीरः प्रव्राजितो वनम् ॥५॥ तेन तत्र महारण्ये मृगयांपरिधावता । राक्षसा निहताः शूरा बहवः कामरूपिणः ॥६॥ जनस्थानवधं श्रुत्वा निहतौ खरदूषणौ । ततस्त्वमर्षापहृता जानकी रावणेन तु ॥ ७ ॥ वञ्चयित्वा वने रामं मृगरूपेण मायया । स मार्गमाणस्तां देवीं रामः सीताम-निन्दिताम् ॥ ८ ॥ आससाद वने मित्रं सुग्रीवं नाम वानरम् । ततः स वालिनं हत्वा रामः परपुरञ्जयः ॥ ९ ॥ आयच्छत्कपिराज्यं तु सुग्रीवाय महात्मने । सुग्रीवेणाभिसन्दिष्टा हरयः कामरूपिणः ॥१०॥ दिक्षु सर्वासु तां देवीं विचिन्वन्तः सहस्रशः । अहं सम्पातिवचना-

च्छतयोजनमायतम् ॥ ११ ॥ तस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः समुद्रं वेगवान्प्लुतः । यथारूपां यथावर्णां यथालक्ष्मवतीं च ताम् ॥ १२ ॥ अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया । विररामैवमुक्त्वा स वाचं वानरपुङ्गवः ॥ १३ ॥ निशम्य सीता वचनं कपेश्च दिशश्च सर्वाः प्रदिशश्च वीक्ष्य । स्वयं प्रहर्षं परमं जगाम सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती ॥१४॥सा तिर्यगूर्ध्वं च तथा ह्यधस्तान्निरीक्षमाणा तमचिन्त्यबुद्धिम् । ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यं वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम् ॥ १५ ॥

टीका—इस प्रकार वह महामति अनेक प्रकार की चिन्ता करके सीता को सुनाई देते स्वर में मधुर वाक्य बोला ॥ १ ॥ इक्ष्वाकुओं का राजा दशरथ नामी रथ हाथी और घोड़ों का स्वामी पुण्यशील, महाकीर्त्ति महायशस्वी हुआ है ॥ २ ॥ उसका प्यारा ज्येष्ठ पुत्र चन्द्र तुल्यमुखवाला राम नाम, विशेषज्ञ, सब धनुष धारियों में श्रेष्ठ ॥ ३ ॥ अपने वृत्त की रक्षा करने वाला, अपने जन की रक्षा करने वाला, जीवलोक की रक्षा करने वाला, धर्म की रक्षा करने वाला, और शत्रुओं का तपानेवाला ॥ ४ ॥ वह सच्ची प्रतिज्ञावाले उस वृद्ध पिता के वचन से भार्या और भाई समेत बन को रवाना हुआ ॥ ५ ॥ वहां महावन में शिकार खेलते हुए उसने कामरूपी बहुत से शूरवीर राक्षस मारे ॥ ६ ॥ जनस्थान का वध और खर दूषण को मरा हुआ सुनकर क्रोध से रावण ने मायामृग द्वारा बन में राम को ठगकर जानकी को हर लिया, वह राम उस अनिन्दिता सीता को ढूंढता हुआ ॥ ७, ८ ॥ बन में सुग्रीव नाम बानर को मित्र बनाता भया, तब वह शत्रुओं के किले जीतने वाला राम बालि को मार कर ॥ ९ ॥ वानरों का राज्य महात्मा सुग्रीव को देता भया, सुग्रीव से आज्ञा दिये हुए, कामरूपी अनेक बानर उस देवी को ढूंढते हुए सब दिशाओं मैं गये, और मैं सम्पाति के कहने

से सौ योजन लम्बे ॥ १०,११ ॥ समुद्र को उस विशाल नेत्रोंवाली के हेतु बेग से पार हुआ। जैसी आकृतिवाली, जैसे रङ्गवाली और जैसे चिन्होंवाली ॥ १२ ॥ राम से मैंने वह सुनी थी, वह यह मैंने पाली है, इतना वचन कहकर वह वानरश्रेष्ठ चुप होगया ॥ १३ ॥ सीता वानर के वचन को सुनकर सारी दिशाओं प्रदिशाओं की ओर दृष्टि डालती हुई सर्वात्मा से राम को स्मरण करती हुई परम हर्ष को प्राप्त भई ॥ १४ ॥ वह इधर उधर ऊपर नीचे उस अचिन्त्य बुद्धिवाले को देखती हुई उदय होते हुए सूर्य की तरह स्थित सुग्रीव के मन्त्री पवनपुत्र को देखती भई ॥ १५ ॥

सर्ग १९ (व०३३,३४) हनुमान् का सीता के समीप आना और सीता का सन्देह

मूल—सोऽवतीर्य द्रुमात्तस्मात् प्रणिपत्योपसृत्य च। तामब्रवीन्महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः ॥ १ ॥ शिरस्यञ्जलिमाधाय सीतां मधुरया गिरा ॥२॥ अहं रामस्य सन्देशाद्देवि दूतस्तवागतः। वैदेहि कुशली रामः स त्वां कौशलमब्रवीत्॥३ ॥ यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद वेद-विदां वरः। स त्वां दाशरथी रामो देवि कौशलमब्रवीत् ॥ ४ ॥ लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्तेऽनुचरः प्रियः । कृतवाञ्छोकसन्तप्तः शिरसा तेऽभिवादनम् ॥ ५ ॥ सा तयोः कुशलं देवी निशम्य नरसिंहयोः। प्रतिसंहृष्टसर्वाङ्गी हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥६॥ कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मा । एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ ७ ॥ तयोः समागमे तस्मिन्प्रीतिरुत्पादिताद्भुता। परस्परेण चालापं विश्वस्तौ तौ प्रचक्रतुः ॥ ८ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः। सीताया शोकतप्तायाः समीपमुपचक्रमे ॥ ९ ॥ यथा यथा समीपं स हनूमानुपसर्पति। तथा तथा रावणं सा तं सीता परिशङ्कते ॥ १० ॥ अहो धिग्धिक्कृतमिदं कथितं हि

पदस्य मे । रूपान्तरमुपागम्य स एवायं हि रावणः॥ ११ ॥ अवन्दत महाबाहुस्ततस्तां जनकात्मजाम् । सा चैनं भयसंत्रस्ता भूयो नैनमुदैक्षत ॥१२॥तं दृष्ट्वा वन्दमानं च सीता शशिनिभानना । अब्रवीद्दीर्घमुच्छ्वस्य वानरं मधुरस्वरा॥१३॥मायां प्रविष्टो मायावी यदि त्वं रावणःस्वयम् । उत्पादयसि मे भूयः संतापं तन्न शोभनम् ॥१४॥स्वं परित्यज्य रूपं यः परिव्राजकरूपवान् । जनस्थाने मया दृष्टस्त्वं स एव हि रावणः ॥ १५ ॥ उपवासकृशां दीनां कामरूप निशाचर । संतापयसि मां भूयः सन्तापं तन्न शोभनम् ॥ १६ ॥ एतां बुद्धिं तदा कृत्वा सीता सा तनुमध्यमा । न प्रतिव्याजहाराथ वानरं जनकात्मजा ॥ १७ ॥

टीका-तब वह उस वृक्ष से उतर कर पास आ प्रणाम करके पवनपुत्र हनुमान् सिर पर हाथ बांधकर मधुर वाणी से उस सीता से बोला ॥ १, २ ॥ राम के सन्देश से हे देवि ! मैं तेरे पास दूत आया हूं, हे वैदेहि ! राम कुशल से हैं, और उन्होंने तुझे कुशल कहा है ॥३॥ जो वेद के जाननेवालों में श्रेष्ठ ब्राह्मअस्त्र को और वेदों को जानता है उस दाशरथि राम ने हे देवि तुझे कुशल कहा है ॥ ४ ॥ और महातेजस्वी लक्ष्मण जो तेरे पति का प्यारा साथी है उस शोक से तपे हुए ने तुझे अभिवादन किया है॥ ५ ॥ वह देवी उन दोनों नरसिंहों के कुशल को सुनकर खिले हुए सारे अङ्गोंवाली हनुमान् से बोली ॥ ६ ॥ हां यह लौकिक कहावत मुझे कल्याणवाली प्रतीत होती है कि जीते पुरुष को सौ वर्ष के पीछे भी आनन्द प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ उन दोनों के इस समागम में उन दोनों में बड़ी अद्भुत खुशी उत्पन्न हुई, और वह दोनों आपस में विश्वस्त होकर बातें करते भए ॥ ८ ॥ शोक से तपी हुई सीता के वचन को सुनकर पवनपुत्र हनुमान् उसके समीप २ होता गया ॥ ९ ॥

पर ज्यों २ हनुमान् सीता के समीप आता है त्यों २ (रावण से डरी हुई) सीता उसके रावण होने का संदेह करती है ॥ १०॥ अहो धिक् २ जो मैंने इसके साथ बातें की, यह तो वही राक्षस ही भेष बदलकर आया है ॥ ११ ॥ तब उस महाबाहु ने जनकपुत्री को प्रणाम किया, पर वह भय से डरी हुई फिर उसकी ओर नहीं देखती भई ॥ १२ ॥ उसको प्रणाम करता हुआ देखकर चन्द्रमुखी सीता लम्बा सांस भरकर मधुर स्वरवाली, वानर से यह बोली ॥ १३ ॥ यदि तू छल करके छलिया रावण फिर मुझे सन्ताप उत्पन्न करता है तो यह अच्छा नहीं ॥ १४ ॥ अपने रूप को त्यागकर संन्यासी के रूप में जो मैंने जनस्थान में देखा था, तू वही (मायावी) रावण है ॥ १५ ॥ उपवास से दुर्बल मुझ दीन को हे कामरूप निशाचर तू बार बार तपाता है, यह अच्छा नहीं ॥ १६ ॥ ऐसी बुद्धि करके वह तनुमध्यमा जनकतनया सीता (प्रणाम कर) उत्तर नहीं देती भई ॥ १७ ॥

सर्ग २० (व०३४, ३५, ३६) हनुमान और सीता का सम्वाद।

मूल—सीताया निश्चितं बुद्ध्वा हनूमान्मारुतात्मजः। श्रोत्रानुकूलैर्वचनैस्तदा तां सम्प्रहर्षयन् ॥ १ ॥ रामस्य च सखा देवि सुग्रीवो नाम वानरः। अहं सुग्रीवसचिवो हनूमान्नामवानरः ॥ २ ॥ त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाश्रित्य पराक्रमम्। नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि ॥ ३ ॥ यान्याभरणजालानि पातितानि महीतले। तानि रामाय दत्तानि मयैवोपहृतानि च ॥ ४ ॥ तेन देवप्रकाशेन देवेन परिदेवितम्। शयितं च चिरं तेन दुःखार्तेन महात्मना ॥५॥ स तवादर्शनादार्ये राघवः परितप्यते। महता ज्वलता नित्यमग्निनेवाग्निपर्वतः ॥ ६ ॥ काननानि सुरम्याणि नदीप्रस्रवणानि च। चरन्नरतिमाप्नोति त्वामपश्यन्नृपात्मजे ॥ ७ ॥ सत्वां मनुजशार्दूलः

क्षिप्रं प्राप्स्यति राघवः। समित्रबान्धवं हत्वा रावणं जनकात्मजे ॥ ८ ॥ वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः। रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यंगुलीयकम् ॥ ९ ॥ प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना। समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि ॥ १० ॥ गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषितम्। भर्तारमिव संप्राप्तं जानकी मुदिताभवत् ॥ ११ ॥ चारु तद्वदनं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम्। बभूव हर्षोदग्रं च राहुमुक्त इवोडुराट् ॥ १२ ॥ ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुः सन्देशहर्षिता। परितुष्टा प्रियं कृत्वा प्रशशंस महाकपिम् ॥ १३ ॥ विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम। येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम् ॥ १४ ॥ नहि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ। यस्य ते नास्ति संत्रासो रावणादपि संभ्रमः ॥ १५ ॥ दिष्ट्या च कुशली रामो धर्मात्मा सत्यसंगरः। लक्ष्मणश्च महातेजा सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ १६ ॥ कुशली यदि काकुत्स्थः किं न सागरमेखलाम्। महीं दहति कोपेन युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥ १७ ॥ अथवा शक्तिमन्तौ तौ सुराणामपि निग्रहे। ममैव तु न दुःखानामस्ति मन्ये विपर्ययः ॥ १८ ॥ कच्चिन्न व्यथते रामः कच्चिन्न परितप्यते। उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः ॥ १९ ॥ कच्चिन्न विगतस्नेहो विवासान्मयि राघवः। कच्चिन्मां व्यसनादस्मान्मोक्षयिष्यति राघवः ॥ २० ॥ कौशल्यायास्तथा कच्चित्सुमित्रायास्तथैव च। अभीक्ष्णं श्रूयते कच्चित्कुशलं भरतस्य च ॥ २१ ॥ कच्चिदक्षौहिणीं भीमां भरतो भ्रातृवत्सलः। ध्वजिनीं मन्त्रिभिर्गुप्तां प्रेषयिष्यति मत्कृते ॥ २२ ॥ रौद्रेण कच्चिदस्त्रेण रामेण निहतं रणे। द्रक्ष्याम्यल्पेन कालेन रावणं ससुहृज्जनम् ॥ २३ ॥ कच्चिन्न तद्धेमसमानवर्णं तस्याननं पद्मसमानगन्धि। मया विना शुष्यति शोकदीनं जलक्षये पद्ममिवातपेन ॥ २४ ॥ धर्मापदेशात्त्यजतः स्वराज्यं मां

चाप्यरण्यं नयतः पदातेः । नासीदुव्यथा यस्य न भीर्न शोकः क
च्चित्सधैर्यं हृदये करोति ॥ २८ ॥

टी०-सीता का निश्चय जानकर पवनपुत्र हनुमान् कानों के अनुकूल वचनों से उसे प्रसन्न करता भया ॥ १ ॥ हे देवि ! सुग्रीव नाम वानर राम का सखा है और मैं सुग्रीव का मन्त्री हनुमान् नाम बानर हूं हे देवि ! मैं ऐसा नहीं हूं, जैसा तू मुझे समझती हैं ॥३॥ जो भूषण समूह तूने पृथिवी पर गिराए थे, वह मैंने ही राम की भेंट किये ॥ ४ ॥ (जिनको देखकर) वह देवतुल्य राजा बहुत रोया, और दुःख से पीड़ित हुआ, वह महात्मा देर तक भूमि पर लेटा रहा ॥ ५ ॥ वह राघव तेरे अदर्शन से हे आर्ये नित्य जलती हुई बड़ी अग्नि से अग्निपर्वत की तरह तप रहा है ॥ ६ ॥ तुझे न देखता हुआ हे राजपुत्रि सुरम्य वनों और नदी के झरनों पर घूमता हुआ आनन्द नहीं पाता है ॥ ७ ॥ वह पुरुषवर राघव हे जनकपुत्री रावण को उसके मित्र बान्धवों समेत मार करके तुझे जल्दी प्राप्त होगा ॥८॥ हे महाभागे मैं बुद्धिमान् राम का दूत बानर हूं, हे देवि ! राम नाम से मुद्रित यह अंगूठी देख ॥९॥ उस महात्मा से दी हुई तेरे विश्वास के लिये लाया हूं तसल्ली कर, तेरा भलाहो, अब दुःखफल क्षीण होगया है ॥ १० ॥ भर्ता के हाथ से भूषित उस अंगूठी को ले करके देखती हुई जानकी पति के मिलने की तरह प्रसन्न हुई ॥ ११ ॥ लाल, श्वेत, विशाल नेत्रोंवाला उसका सुन्दर मुख राहु से छूटे चन्द्र की तरह हर्ष से निर्मल होगया ॥१२॥ तब वह लज्जावाली बाला भर्ता के सन्देश से हर्षित हुई सन्तुष्ट हुई आदर करके महाबानर प्रशंसा करती भई ॥१३॥ हे वानरोत्तम तू पराक्रमी है, समर्थ है, बुद्धिमान् है,

जिस तुझ अकेले ने राक्षसों का स्थान दबाया है ॥१४॥हे वानश्रेष्ठ मैं तुझे साधारण वानर नहीं समझती हूं, जिस तुझको रावण से भी डर वा घवराहट नहीं है ॥ १५ ॥ भाग्य से धर्मात्मा सच्ची प्रतिज्ञा वाला, राम और सुमित्रा का आनन्द बढ़ाने वाला महातेजस्वी लक्ष्मण कुशली है ॥ १६ ॥ राम यादि कुशली है, तो क्यों बढ़े हुए मलयाग्नि की तरह क्रोध से पृथिवी को नहीं जला देता है ॥ १८ ॥ अथवा वह दोनों तो देवताओं के जीतने में भी शक्तिमान् हैं, किन्तु जानती हूं, कि मेरे ही दुःखों का अभी अन्त नहीं है ॥ १८ ॥ क्या पुरुषोत्तम राम पीड़ित तो नहीं होते हैं, क्या संतप्त तो नहीं होते हैं, क्या अगले कार्यों को (मेरे छुड़ाने के लिए) कर रहे हैं ॥ १९ ॥ क्या दूर वास से राघव का मुझमें स्नेह तो नहीं घटा, क्या राघव मुझे इस विपत्ति से छुड़ाएगा ॥ २२ ॥ और क्या कौशल्या, सुमित्रा और भरत का कुशल जल्दी २ सुना जाता है ॥२१॥ क्या भ्रातृवत्सल भरत मेरी खातिर मन्त्रियों से रक्षा की हुई (सूर्य वंशियों के) झण्डेवाली सेना भेजेगा ॥२२॥ क्या वह जल्दी समय आएगा, जब कि मैं सुहृद्जनों समेत रावण को राम से रौद्रअस्त्र द्वारा मारा हुआ देखूंगी ॥२३॥ क्या सुवर्ण तुल्य वर्णवाला पद्मसमान गन्धवाला उसका मुख मेरे बिना शोक से दीन हुआ जल के क्षय में धूप से पद्म की तरह सूख तो नहीं गया है ॥२४॥ धर्म के नाम पर अपने राज्यको छोड़ते हुए और मुझे वन में पैदल साथ लाते हुए उस समय जिसको जैसे भय और शोक नहीं था, क्या वह उसी धैर्य को हृदय में रखे हुए है ॥२५॥

सर्ग २१ [व० ३७] सीता और हनुमान् का सम्वाद

मूल–सीताया वचनं श्रुत्वा मारुतिर्भीमविक्रमः। शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्याति

राघवः। चमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृक्षगणसंयुताम् ॥ २ ॥ तवादर्शन-
जेनार्ये शोकेन परिपूरितः । न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव
द्विपः ॥ ३ ॥ नैव दंशान्न मशकान्न कीटान्न सरीसृपान्। राघवोऽप-
नयेद्गात्रात्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥ ४ ॥ नित्यं ध्यानपरो रामो नित्यं
शोकपरायणः। नान्यच्चिन्तयते किंचित्स तु कामवशं गतः ॥ ५ ॥
अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः । सीतेति मधुरां वाणीं
व्याहरन्प्रतिबुध्यते ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा फलं वा पुष्पं वा यच्चान्यत्स्त्री-
मनोहरम् । बहुशो हा प्रियेत्येवं श्वसंस्त्वामभिभाषते ॥७॥ सा सीता
वचनं श्रुत्वा पूर्णचन्द्रनिभानना। हनुमन्तमुवाचेदं धर्मार्थसहितं वचः
॥ ८ ॥ अमृतं विषसंपृक्तं त्वया वानर भाषितम् । यच्च नान्यमना
रामो यच्च शोकपरायणः ॥ ९ ॥ ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा
सुदारुणे । रज्ज्वेव पुरुषं बद्ध्वा कृतान्तः परिकर्षति ॥१० ॥ विधि-
र्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम । सौमित्रिं मां च रामं च व्यसनैः
पश्य मोहितान् ॥११॥ राक्षसानां वधंकृत्वा सूदयित्वा च रावणम् ।
लङ्कामुन्मथितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः ॥ १२ ॥ स वाच्यः
सन्त्वरस्वेति यावदेव न पूर्यते । अयं सम्वत्सरः कालस्तावद्धि मम
जीवितम् ॥ १३ ॥ वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवंगम। रावणेन
नृशंसेन समयो यः कृतो मम ॥ १४ ॥ विभीषणेन च भ्रात्रा मम
निर्यातनं प्रति। अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत्कुरुते मतिम् ॥१५॥
ज्येष्ठा कन्या कला नाम विभीषणसुता कपे । तया ममैतदाख्यातं
मात्रा प्रहितया स्वयम् ॥१६॥ आशंसेयं हरिश्रेष्ठ क्षिप्रं मां प्राप्स्यते
पतिः । अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिंश्च बहवो गुणाः ॥ १७ ॥
उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता । विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति
वानर राघवे ॥ १८ ॥ चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां जघान यः।
जनस्थाने विना भ्रात्रा शत्रुः कस्तस्य नोद्विजेत् ॥ १९ ॥ इति

संकल्पमानां तां रामार्थे शोककर्शिताम् । अश्रुसम्पूर्णवदनामुवाच हनुमान्कपिः ॥ २० ॥ अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव सराक्षसात् । अस्माद्दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते ॥ २१ ॥ मैथिली तु हरि-श्रेष्ठाच्छ्रुत्वा वचनमद्भुतम् । हर्षविस्मितसर्वाङ्गी हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥ २ ॥ +भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर । नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम ॥ २३ ॥यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात् । अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती ॥ २४ +यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम् । मामितो गृह्य गच्छेत् तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥ २५ ॥

टीका—सीता के वचन को सुनकर भयङ्कर पराक्रम वाला हनुमान् हाथ जोड़े हुए माथे पर रखकर यह उत्तर वाक्य बोला ॥ १ ॥ हे देवि ! राघव मुझसे वचन सुनते ही वानर और ऋक्षों की बड़ी सेना लेकर जल्दी यहां आएगा ॥२॥ तेरे न दीखने के शोक से भरा हुआ राम, हे आर्ये सिंह से पीड़ित हाथी की तरह कहीं चैन नहीं पाता है ॥ ३ ॥ चित्त तेरी ओर लगे रहने के हेतु राम अपने शरीर से डांस, मच्छर, कीट और सरीसृपों को नहीं हटाता है ॥ ४ ॥ राम सदा चिन्तापरायण है, सदा शोकपरायण है, काम के वश पड़ा हुआ वह कुछ और नहीं सोचता है ॥५॥ राम लगातार अनिद्र रहता है, और सोया हुआ भी वह नरोत्तम "सीता" यह मधुर वाणी बोलता हुआ जाग उठता है ॥ ६ ॥ फल वा पुष्प वा और जो कुछ स्त्रियों को प्रिय है उसे देखकर अनेकबार "हा प्यारी" ऐसी आहें भरता हुआ बोलता है ॥७॥ पूर्णचन्द्रतुल्य मुखवाली सीता यह बचन सुनकर हनुमान् से धर्म अर्थ युक्त वचन बोली ॥ ८ ॥ हे वानर विष मिला अमृत तूने कहा है, कि राम का मन किसी दूसरी ओर नहीं, (यह अमृत)

और कि शोकपरायण है (यह विष है) ॥ ९ ॥ बड़े यश में वा दारुण विपद् में दैव पुरुष को मानों रस्सी बांधकर खींचता है ॥ १० ॥ दैव निःसन्दह रोका नहीं जासक्ता, राम लक्ष्मण और मुझको विपत्तियों से मोहित हुआ देख ॥ ११ ॥ राक्षसों को बध करके रावण को मारकर, और लङ्का को उलट पलट करके कब मुझे पति देखेगा ॥ १२ ॥ उन्हें कहना जल्दी करो, जब तक यह वर्ष पूरा नहीं होता है, तब तक ही मेरा जीवन है ॥१३॥ हे वानर यह दसवां महीना है, दो महीना शेष है, जो दुर्जन रावण ने मेरे लिये सङ्केत किया है, (इसके पीछे मार डालेगा) ॥ १४ ॥ उसके भाई विभीषण ने मेरे वापिस देने के लिये बहुत यत्न किया, पर रावण यह बुद्धि नहीं करता है ॥ १५ ॥ हे वानर स्वयं अपनी माता से भेजी हुई विभीषण की बड़ी कन्या कला ने यह मुझे बतलाया था ॥ १६ ॥ हे वानरश्रेष्ठ मुझे आशा है मुझे पति जल्दी प्राप्त होगा, क्योंकि मेरा अन्तरात्मा शुद्ध है, और राम में बहुत से गुण हैं ॥१७॥ हे वानर राम में उत्साह है, पौरुष, हृदय, दया, कृतज्ञता, पराक्रम और प्रभाव है ॥ १८ ॥ जिसने जनस्थान में बिना भाई के चौदह सहस्र राक्षसों को मारा, कौन उससे शत्रु नहीं कांपता है ॥ १९ ॥ ऐसे कहती हुई राम के लिए शोक से दुर्बल हुई सीता का मुख आंसुओं से भर गया, यह देख हनुमान् बोला ॥ २० ॥ अथवा मैं ही राक्षसों से प्राप्त हुए दुःख से तुझे अभी छुड़ाता हूं, हे अनिन्दिते मेरी पीठ पर सवार हो ॥ २१ ॥ जानकी वानरश्रेष्ठ से अद्भुत वचन सुनकर हर्ष से पुलकित सारे अङ्गों वाली हनुमान् से बोली ॥ २२ ॥ हे वानरोत्तम मैं पति की भक्ति का आदर करके राम के बिना किसी के शरीर को स्वतः स्पर्श करना नहीं चाहती ॥ २३ ॥ जो मैं बल से रावण के अङ्ग

स्पर्श को प्राप्त हुई हूं (हरने के समय) उसमें मैं असमर्थ, अनाथ बेबस हुई क्या करती ॥२४॥ यदि राम राक्षसों सहित रावण को मारकर मुझे यहां से लेजाए, तो वह उसके सदृश हो ॥२५॥

सर्ग २२ (व० ३८-४०) सीता के राम को सन्देश

मूल-ततः स कपिशार्दूलस्तेन वाक्येन तोषितः । सीतामुवाच तच्छ्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ १ ॥ युक्तरूपं त्वया देवि भाषितं शुभदर्शने । सदृशं स्त्रीस्वभावस्य साध्वीनां विनयस्य च ॥ २ ॥ एतत्ते देवि सदृशं पत्न्यास्तस्य महात्मनः । का ह्यन्या त्वामृते देवि ब्रूयाद्वचनमीदृशम् ॥३॥ श्रोष्यत चैव काकुत्स्थः सर्वं निरवशेषतः । अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद्राघवो हि तत् ॥ ४ ॥ ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम् । प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ ॥ ५ ॥ मणिं दत्त्वा ततः सीता हनूमन्तमथाब्रवीत् । अभिज्ञानमभिज्ञातमेतद्रामस्य तत्त्वतः ॥ ६ ॥ मणिं दृष्ट्वा तु रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति । वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च ॥ ७ ॥ स भूयस्त्वं समुत्साहचोदितो हरिसत्तम । अस्मिन्कार्यसमुत्साहे प्रचिन्तय यदुत्तरम् ॥ ८ ॥ स तथेति प्रतिज्ञाय मारुतिर्भीमविक्रमः । शिरसा वन्द्य वैदेहीं गमनायोपचक्रमे ॥ ९ ॥ ज्ञात्वा संप्रस्थितं देवी वानरं पवनात्मजम् । बाष्पगद्गदया वाचा मैथिली वाक्यमब्रवीत् ॥ १० ॥ हनूमन्सिंहसंकाशौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्ब्रूया अनामयम् ॥ ११ ॥ यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः । अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥ १२ ॥ इदं च तीव्रं मम शोकवेगं रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च । ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर १३

टीका-यह सुनकर उस वाक्य से सन्तुष्ट हुआ वाक्य निपुण वानर श्रेष्ठ सीता से यह वाक्य बोला ॥ १ ॥ हे शुभदर्शने देवि तूने स्त्री

स्वभाव के और पतिव्रताओं के वृत्त के ठीक सदृश कहा है ॥२॥ हे देवि यह तेरा उस महात्मा की पत्नी होने के सदृश वचन है, कौन तेरे बिना हे देवि ऐसा वचन कह सक्ती है ॥ ३ ॥ राम मुझसे यह सब पूरा २ सुनेंगे, अब मुझे कोई अभिज्ञान दे, जिसको राम पहचान लें ॥४॥ तब वस्त्र के नीचे से सुन्दर दिव्य चूड़ामणि (शिरोमणि) खोलकर "यह राम को देना" ऐसा कहती हुई सीता ने हनुमान् को दिया ॥ ५ ॥ मणि देकर तब सीता हनुमान् से बोली, यह अभिज्ञान राम का पूरी तरह जाना हुआ है ॥ ६ ॥ मणि को देख करके राम तीनों को स्मरण करेंगे, मेरी माता को, मुझको और दशरथ को ॥ ७ ॥ अब फिर तू उत्साह से प्रेरा हुआ हे वानरश्रेष्ठ इस कार्योत्साह में जो आगे करना है सोच ॥ ८ ॥ भीमपराक्रमवाला पवनपुत्र तथास्तु यह प्रतिज्ञा करके सिर से वैदेही को प्रणाम करके जाने को तय्यार हुआ ॥ ९ ॥ पवनपुत्र बानर को प्रस्थित होता जानकर आंसुओं से गद्गद बाणी से देवी मैथिली वाक्य बोली ॥ १० ॥ हे हनुमन् राम लक्ष्मण को, और मन्त्रियों समेत सुग्रीव को सारों को कुशल कहना ॥ ११ ॥ और जैसे वह महाबाहु राम इस दुःख समुद्र से मुझे पार करे, वैसा ठीक २ करना ॥१२॥ यह मेरा तीव्र शोक का वेग, इन राक्षसों से झिड़कें यह राम के समीप जाकर कहो, हे वानरश्रेष्ठ तेरा मार्ग शुभ हो ॥ १३ ॥

सर्ग २३ (व० ४१-४२) हनुमान् का अशोक वनिका को उजाड़ना और किंकरों से युद्ध

मूल—स च वाग्भिः प्रशस्ताभिर्गमिष्यन्पूजितस्तया । तस्माद्देशादपाक्रम्य चिन्तयामास वानरः ॥ १ ॥ अल्पशेषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा । त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थ इह दृश्यते ॥ २ ॥ कार्ये कर्मणि निर्वृत्ते यो बहून्यपि साधयेत् । पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं

कर्तुमर्हति ॥३॥ न ह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः। यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने ॥ ४ ॥ कथं नु खल्वद्य भवेत्सुखागतं प्रसह्य युद्धं मम राक्षसैः सह। तथैव खल्वात्मबलं च सारवत्समानयेन्मां च रणे दशाननः ॥ ५ ॥ इदमस्यनृशंसस्य नन्दनोपममुत्तमम्। वनं नेत्रमनःकान्तं नानाद्रुमलतायुतम् ॥ ६ ॥ इदं विध्वंसयिष्यामि शुष्कं वनमिवानलः। अस्मिन्भग्ने ततः कोपं करिष्यति स रावणः ॥७॥ ततस्तद्धनुमान्वीरो बभञ्ज प्रमदावनम्। मत्तद्विजसमाघुष्टं नानाद्रुमलतायुतम् ॥ ८ ॥ न बभौ तद्वनं तत्र दावानलहतं यथा। व्याकुलावरणा रेजुर्विह्वला इव ता लताः॥९॥ रावणस्य समीपं तु राक्षस्यो विकृताननाः। विरूपं वानरं भीमं रावणाय न्यवेदिषुः ॥ १० ॥ अशोकवनिकामध्ये राजन्भीमवपुः कपिः। सीतया कृतसंवादास्तिष्ठत्यमितविक्रमः ॥११॥ तस्योग्ररूपस्योग्रं त्वं दण्डमाज्ञातुमर्हसि। सीता संभाषिता येन वनं तेन विनाशितम् ॥१२॥ राक्षसीनां वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः चिताग्निरिव जज्वाल कपिसंवर्तितेक्षणः ॥ १३ ॥ तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः। दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ॥१४॥ आत्मनः सदृशान्वीरान्किङ्करान्नाम राक्षसान्। व्यादिदेश महातेजा निग्रहार्थं हनूमतः ॥१५॥ ते कपिं तं समासाद्य तोरणस्थमवस्थितम्। अभिपेतुर्महाभागाः पतङ्गा इव पावकम् ॥१६॥ मुद्गरैः पट्टिशैःशूलैः प्रासतोमरपाणयः। परिवार्य हनूमन्तं सहसा तस्थुरग्रतः ॥ १७ ॥ स तैः परिवृतः शूरैः सर्वतः स महाबलः। आससादायसं भीमं परिघं तोरणाश्रितम् ॥ १८ ॥ स हत्वा राक्षसान्वीरः किङ्करान्मारुतात्मजः। युद्धाकांक्षी महावीरस्तोरणे समवास्थितः ॥ १९ ॥ ततस्तस्माद्भयान्मुक्तः कतिचित्तत्र राक्षसाः। निहतान्किङ्करान्सर्वान्रावणाय न्यवेदयन् ॥ २० ॥

टीका—*जानेलगा वह वानर सीता से प्रशस्त वाणियों द्वारा पूजित किया हुआ उसदेश से दूर हटकर सोचने लगा ॥ १ ॥ यह कार्य अब थोड़ा सा रहगया है, इस काले नेत्रोंवाली को देख लिया है (अर्थात् यह प्रधान कार्य तो होगया है, अब शत्रु का बल देखना यह गौण कार्य शेष है) इसमें (साम, दाम, भेद) इन तीन उपायों को उलांघकर चौथा (दण्ड रूप) उपाय दीखता है ॥ २ ॥ जो मुख्य कार्य को करके उसके अविरोधी और भी बहुत से कार्यों को करले,वह कार्य करने के योग्य हुआ(कार्यों को) करता है ॥ ३ ॥ जगत् में छोटे से भी कार्य का पुरुष अकेला कारण साधन नहीं होता, जो अपने प्रयोजन को अनेक प्रकार से (साधना) जानता है, वह कार्य साधन में समर्थ होता है ॥ ४ ॥ कैसे अब आसान हो, कि राक्षसों के साथ प्रबल युद्ध हो, ताकि रावण रण में अपने सारवाले बल को मेरे मुकाबिले में लाए ॥ ५ ॥ सो यह इस निर्दय का नन्दन तुल्य बगीचा जो नेत्र और मन को प्यारा, नाना (वृक्ष लताओं से युक्त) है ॥ ६ ॥ इसको विध्वंस करूंगा, जैसे सूखे बन को अग्नि, इसके नष्ट होने पर रावण कोप करेगा ॥ ७ ॥ तब हनुमान् ने उस प्रमदाबन को तोड़ना आरम्भ किया, जिसमें मस्त पंछी बोल रहे थे, और अनेक बेल बूटों से युक्त था ॥ ८ ॥ तब वह बन बनाग्नि से नष्ट हुए की तरह शोभावाला न रहा, वृक्षों के टूटने से बेलें, व्याकुल स्त्रियों की तरह व्याकुल होकर गिरीं ॥ ९ ॥ तब विकृत मुखों वाली

---

* यहां से आगे जो हनुमान् के साथ युद्ध दिखलाया है, उसमें अत्युक्ति अवश्य है। सम्भव है, कि हनुमान् ने राक्षसों से द्वन्द्व युद्ध मांगा हो। द्वन्द्व युद्ध में एक के सामने एक ही खड़ा होता था, उसके हार जाने पर दूसरा सामने होसक्ता था ॥

राक्षसियें रावण के पास जाकर एक भयङ्कर विरूप वानर का आना उसे बतलाती भई ॥ १० ॥ हे राजन्! अशोक वानिका के मध्य में भयङ्कर, अपरिमित पराक्रमवाला वानर खड़ा है, जिसने सीता से बात चीत की है ॥ ११ ॥ उस क्रूर रूपवाले को क्रूर दण्ड की आप आज्ञा देने योग्य हैं, जिसने सीता से सम्भाषण किया और बन को नाश किया है ॥ १२ ॥ राक्षसियों के वचन को सुनकर राक्षसेश्वर रावण ने क्रोध से नेत्र पलटे और चिताग्नि की तरह जलने लगा ॥ १३ ॥ उस क्रुद्ध हुए के नेत्रों से जलते हुए दीपों से चिनगारियोंवाली तेल की बूंदों की तरह आंसुओं की बूंदें गिरीं ॥ १४ उस महा तेजस्वी ने अपने तुल्य अपने किंकर (नौकर) राक्षसों को हनुमान् के दबाने की आज्ञा दी ॥ १५ ॥ वह बाहर की डेउढी पर खड़े हुए उस वानर के पास पहुंचकर इसतरह उस पर टूट पड़े, जिसतरह पतिङ्गे अग्नि पर ॥१६॥ मुद्गर, पट्टिश, शूल और तोमर हाथों में लिए वह राक्षस सहसा हनुमान् को घेरकर उसके आगे खड़े होगए ॥ १७ ॥ उन शूरवीरों से चारों ओर से घिरे हुए उस महाबली ने बाहरीद्वार के पास स्थित लोहे का एक परिघ (मूसल) उठा लिया ॥१८॥ पवनपुत्र वीर उन किंकरों को मार कर वह महावीर युद्ध चाहता हुआ डेउढी पर स्थित रहा ॥ १९ ॥ तब उस भय से छूटे कई राक्षस सारे किंकरों का मरना रावण को जाकर निवेदन करते भए ॥ २० ॥

सर्ग २५ (व० ४४-४७) युद्ध में जम्बुमाली, सात मन्त्री सुतों, पांच सेना पतियों, और कुमार अक्ष का हनुमान् से बध।

मूल—संदिष्टो राक्षसेन्द्रेण प्रहस्तस्य सुतो बली । जम्बुमाली महादंष्ट्रो निर्जगाम धुनुर्धरः ॥ १ ॥ रथेन खरयुक्तेन तमागतमुदीक्ष्य सः । हनूमान्वेगसंपन्नो जहर्ष च ननाद च ॥ २ ॥ तं तोरणविट-

कूटस्थं हनूमन्तं महाकपिम् । जम्बुमाली महातेजा विव्याध निशितैः शरैः ॥ ३ ॥ स शरैः पूरिततनूः क्रोधेन महताऽऽवृतः । तमेव परिघं गृह्य भ्रामयामास वेगितः ॥ ४ ॥ अतिवेगो ऽतिवेगेन भ्रामयित्वा महोत्कटः । परिघं पातयामास जम्बुमालेर्महोरसि ॥ ५ ॥ स हतस्तरसा तेन जम्बुमाली महारथः । पपात निहतो भूमौ चूर्णिताङ्ग इव द्रुमः ॥ ६ ॥ जम्बुमालिं सुनिहतं किंकरांश्च महाबलान् । चुक्रोध रावणः श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ७ ॥ ततस्ते राक्षसेन्द्रेण चोदिता मन्त्रिणः सुताः । निर्ययुर्भवनात्तस्मात्सप्तसप्तार्चिवर्चसः ॥ ८ ॥ स कृत्वा निनदं घोरं त्रासयंस्तां महाचमूम् । चकार हनुमान्वेगं तेषु रक्षःसु वीर्यवान् ॥ ९ ॥ ततस्तेष्ववपन्नेषु भूमौ निपतितेषु च । तत्सैन्यमगमत्सर्वं दिशो दश भयार्दितम् ॥ १० ॥ हतान्मान्त्रिसुतान्बुद्ध्वा वानरेण महात्मना । स विरूपाक्षयूपाक्षौ दुर्धर्षं चैव राक्षसम् ॥ ११ ॥ प्रघसं भासकर्णं च पञ्च सेनाग्रनायकान् । संदिदेश दशग्रीवो वीरान्नयविशारदान् ॥ १२ ॥ ततः कपिस्तान्ध्वजिनीपतीन्रणे निहत्य वीरान्सबलान्सवाहनान् । तथैव वीरः परिगृह्य तोरणं कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ॥ १३ ॥ सेनापतीन्पञ्च स तु प्रमापितान्हनूमता सानुचरान्सवाहनान् । निशम्य राजा समरोद्धतोन्मुखं कुमारमक्षं प्रसमैक्षताक्षम् ॥ १४ ॥ स हेमनिष्काङ्गदचारुकुण्डलः समाससादाशुपराक्रमः कपिम् । तयोर्बभूवाप्रतिमः समागमः सुरासुराणामपि संभ्रमप्रदः ॥ १५ ॥ स तं समाविध्य सहस्रशः कपिर्महोरगं गृह्य इवाण्डजेश्वरः । मुमोच वेगात्पितृतुल्यविक्रमो महीतले संयति वानरोत्तमः ॥ १६ ॥ स भग्नबाहूरुकटीपयोधरः क्षरन्नसृङ्निर्मथितास्थिलोचनः । संभिन्नसंधिः प्रविकीर्णबन्धनो हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः ॥ १७ ॥

टीका—तब राक्षसेन्द्र से आज्ञा दिया हुआ, प्रहस्त का पुत्र बड़ी दाढ़वाला धनुर्धारी बली जम्बुमाली निकला ॥ १ ॥ खच्चरों से युक्त रथ पर चढ़कर उसे आया देख वेग से भरा हुआ हनुमान् प्रसन्न हुआ और गर्जा ॥ २ ॥ तब डेउढ़ी के विटङ्क पर स्थित उस महावानर को महातेजस्वी जम्बूमाली ने तीक्ष्ण तीरों से बींध दिया ॥ ३ ॥ तब वह तीरों से भरे शरीरवाला, बड़े क्रोध से भरा हुआ उसी मूसल को उठाकर वेग से घुमाता भया ॥ ४ ॥ बड़े वेगवाले उस प्रबल बानर ने घुमाकर उस मूसल को जम्बूमाली की छाती पर मारा ॥ ५ ॥ वेग से ताड़ना किया हुआ वह महारथी जम्बूमाली अङ्गों के चूर २ होजाने से वृक्ष की तरह भूमि पर गिरा ॥ ६ ॥ जम्बूमाली और महाबली किंकरों का हत हुआ सुन कर रावण क्रोध से भरगया, और उसके नेत्र लाल होगये ॥ ७ ॥ तब उस राक्षसेन्द्र से प्रेरे हुए अग्नितुल्य कान्तिवाले सात मन्त्री-पुत्र उस भवन से निकले ॥ ८ ॥ वह भयंकर नाद करके उस सेना को डराता भया, और वह वीर्यवान् उन राक्षसों में वेग करता भया ॥ ९ ॥ तब उनके मरने और भूमि पर गिरने पर भय से पीड़ित वह सारी सेना दशों दिशाओं में भाग गई ॥ १० ॥ महात्मा बानर से मंत्रीसुतों का मरना सुनकर रावण ने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर्ष, प्रघस, और भासकर्ण इन नीति निपुण सेनापतियों को आज्ञा दी ॥ ११, १२ ॥ तब वह वीर बानर उन सेनापतियों को सेना और वाहनों समेत मारकर प्रजा के नाश में काल की तरह डेउढ़ी पर उत्सव मनाता भया ॥ १३ ॥ उन पांच सेनापतियों को अनुचरों और वाहनों समेत मारा गया सुनकर राजा ने युद्ध के लिये तय्यार सामने खड़े हुए कुमार अक्ष को आज्ञा दी ॥ १४ ॥ वह सुवर्ण के हार बाहुबन्द और कुण्डलों वाला, तीव्र पराक्रमवाला

वानर के पास पहुंचा, उन दोनों का समागम अतुल हुआ जो देव दैत्यों को भी भय-प्रद था ॥ १५ ॥ पितृ तुल्य पराक्रम वाले उस वानर ने उसको बांधकर और जैसे गरुड़ बड़े सर्प को उठाता है, इस तरह उठाकर वेग से पृथिवी पर पटका ॥ १६ ॥ उसकी भुजा, रानें, कमर और छाती टूट गई, रुधिर वहने लगा, हड्डियां चूर २ होगई जोड़ और बन्धन टूट गये, ऐसा उस पवनपुत्र ने राक्षस को पृथिवी पर मार पटका ॥ १७ ॥

सर्ग २५ (व० ४८-४९) मेघनाद से युद्ध हनुमान् का बन्धना और रावण के दर्शन ॥

मूल-ततस्तु रक्षोधिपतिर्महात्मा हनुमताक्षे निहते कुमारे । मनः समाधाय स देवकल्पं समादिदेशेन्द्रजितं सरोषः ॥ १ ॥ ततस्तैः स्वगणैरिष्टैरिन्द्रजित्प्रतिपूजितः । युद्धोद्धतकृतोत्साहः संग्रामं सम्पद्यत ॥ २ ॥ श्रीमान्पद्मविशालाक्षो राक्षसाधिपतेः सुतः । निर्जगाम महातेजाः समुद्र इव पर्वणि ॥ ३ ॥ आयान्तं सरथं दृष्ट्वा पूर्णमिन्द्रध्वजं कपिः । ननाद च महानदं व्यवर्धत च वेगवान् ॥ ४ ॥ तावुभौ वेगसंपन्नौ रणकर्मविशारदौ । सर्वभूतमनोग्राहि चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥५॥ अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा तमस्त्रेणास्त्रतत्त्ववित् । निजग्राह महाबाहुं मारुतात्मजमिन्द्रजित् ॥ ६ ॥ तेन बद्धस्ततोऽस्त्रेण राक्षसेन स वानरः । अभवान्निर्विचेष्टश्च पपात च महीतले ॥ ७ ॥ ततस्ते राक्षसा दृष्ट्वा विनिश्चेष्टमरिंदमम् । बबन्धुः शणवल्कैश्च द्रुमचीरैश्च संहतैः ॥ ८ ॥ तं मत्तमिव मातङ्गं बद्धं कपिवरोत्तमम् । राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥९॥ उपोपविष्टं रक्षोभिश्चतुर्भिर्बलदर्पितम् । अपश्यद्राक्षसपतिं हनुमानतितेजसम् ॥ १ ॥ भ्राजमानं ततो दृष्ट्वा हनूमान्राक्षसेश्वरम् । मनसा चिन्तयामास तेजसा तस्य मोहितः ॥ ११ ॥ अहो रूपमहो धैर्यं महो

सत्त्व महो द्युतिः । अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता । यद्यधर्मो न बलवान्स्यादयं राक्षसेश्वरः । स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता॥१२॥अस्य क्रूरैर्नृशंसैश्च कर्मभिर्लोककुत्सितैः । सर्वे बिभ्यति खल्वस्माल्लोकाः सामरदानवाः ॥ १३ ॥

टीका—जब हनुमान् ने कुमार अक्ष को मार दिया, तब महात्मा राक्षसपति ने मन को एकाग्र करके देवतुल्य इन्द्रजित (मेघनाद) को आज्ञा दी ॥ १ ॥ तब अपने प्यारे गणों से पूजित हुआ इन्द्रजित युद्ध में उद्धत और उत्साहित होकर संग्राम को चला ॥ २ ॥ पद्मतुल्य विशाल नेत्रोंवाला, राक्षसाधिपति महातेस्वा श्रीमान् पर्व में समुद्र की तरह बाहर निकला ॥ ३ ॥ रथ पर चढ़कर आते हुए पूर्ण इन्द्र ध्वजवाले को देखकर वानर महानाद करता हुआ गर्जा, और फूल गया॥४॥रण कर्म में निपुण वह दोनों वेग से भरे हुए सब लोगों के मन को आकर्षण करनेवाला उत्तम युद्ध करते भए ॥ ५ ॥ यह अवध्य है ऐसा जानकर अस्त्र के जानने वाले इन्द्रजित ने उस महाबाहु पवनपुत्र को (ब्रह्म) अस्त्र से बांधा ॥ ६ ॥ तब राक्षस द्वारा उस अस्त्र से बांधा हुआ वानर निश्चेष्ट होगया, और पृथिवी पर गिर पड़ा ॥७ ॥ तब शत्रुओं के दमन करनेवाले को निश्चेष्ट देखकर वह राक्षस उसे सन की रस्सियों से और वृक्षों की छालों से बांधते भए ॥ ८ ॥ मत्त हाथी की तरह बद्ध उस वानरवर को राक्षस राक्षसेन्द्र रावण के पास ले गए ॥ ९ ॥ हनुमान् ने गर्वित अति तेजस्वी राक्षसपति को देखा, जिसके चारों ओर चार राक्षस (मुख्य मन्त्री) बैठे हैं ॥ १० ॥ तेज से भखते हुए उस राक्षस को देखकर उसके तेज से मोहित हुए हनुमान् ने मन में सोचा ॥ ११ ॥ अहो रूप अहो धैर्य अहो दिलेरी, अहो तेज, अहो राक्षसराज का सब लक्षणों से

युक्त होना ॥१२॥ यदि इसमें अधर्म प्रबल न हो, तो यह राक्षसपति इन्द्र सहित सुरलोक का भी राजा होने योग्य है॥ १३ ॥ किंतु इसके लोकनिन्दित निर्दय क्रूर कर्मों के हेतु इससे देव दानवों सहित सारे लोक कांप रहे हैं ॥ १४ ॥

सर्ग २६ (श्लो० ५०, ५१) हनुमान् और रावण का उत्तर प्रश्न ।

मूल—तमुद्वीक्ष्य महाबाहुः पिङ्गाक्षं पुरतः स्थितम् । स राजा रोषताम्राक्षः प्रहस्तं मन्त्रिसत्तमम् ॥ १ ॥ कालयुक्तमुवाचेदं वचो विपुलमर्थवत् । दुरात्मा पृच्छ्यतामेष कुतः किं वास्य कारणम् ॥२॥ वनभंगे च कोऽस्यार्थो राक्षसानां च तर्जने । रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत्॥३॥तत्त्वमाख्याहि मा ते भूद्भयं वानर मोक्ष्यसे ॥४॥तं समीक्ष्य महासत्त्वं सत्त्ववान्हरिसत्तमः।वाक्यमर्थवदव्यग्रस्तमुवाच दशाननम्॥५॥अहं सुग्रीवसन्देशादिह प्राप्तस्तवान्तिके । राक्षसेश हरीशस्त्वां भ्राता कुशलमब्रवीत् ॥ ६ ॥ भ्रातुः शृणु समादेशं सुग्रीवस्य महात्मनः । धर्मार्थसंहितं वाक्यमिह चामुत्र च क्षमम् ॥ ७ ॥ तद्भवान्दृष्टधर्मार्थस्तपः कृतपरिग्रहः । परदारान्महाप्राज्ञ नोपरोद्धुं त्वमर्हसि॥८ ॥ नहि धर्मविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु । मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः॥९॥कश्च लक्ष्मणमुक्तानां रामकोपानुवर्तिनाम् । शराणामग्रतः स्थातुं शक्तो देवासुरेष्वपि ॥ १० ॥ न चापि त्रिषु लोकेषु राजन्विद्येत कश्चन । राघवस्य व्यलीकं यः कृत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥ तत्त्रिकालहितं वाक्यं धर्म्यमर्थानुयायि च । मन्यस्व नरशार्दूले जानकी प्रतिदीयताम् ॥ १२ ॥ जनस्थानवधं बुद्ध्वा वालिनश्च वधं तथा । रामसुग्रीवसख्यं च बुद्ध्यस्व हितमात्मनः ॥ १३ ॥

टीका—पीले नेत्रों वाले सामने खड़े हुए उसको देखकर वह महाबाहु राजा क्रोध से लाल नेत्रों वाला हुआ मन्त्रिश्रेष्ठ प्रहस्त

से यह अवसर के योग्य अर्थ वाला बड़ा वचन बोला इस दुरात्मा से पूछिये, यह कहां से आया है, बाग को तोड़ने और राक्षसों को दबाने में इसका क्या प्रयोजन है, रावण की आज्ञा को सुन कर प्रहस्त वाक्य बोला ॥ १, २, ३ ॥ सच २ कहदे, तुझे भयमत हो, हे वानर तू छोड़ दिया जायगा ॥ ४ ॥ उस महा हृदय वाले रावण को देखकर महान् हृदय वाला वानरश्रेष्ठ सावधान हो अर्थ युक्त वाक्य बोला ॥ ५ ॥ मैं सुग्रीव के सन्देश से यहां तेरे पास आया हूं, हे राक्षसपति तेरे भाई वानर पति ने तुझे कुशल कहा है ॥ ६ ॥ अपने भाई महात्मा सुग्रीव के सन्देश को सुनिये,जो धर्म अर्थ से युक्त इस लोक परलोक की भलाई का वचन है ॥ ७ ॥ आप अर्थ के तत्त्व को जानते हैं, तप से आपके पास सब ऐश्वर्य है, हे महाप्राज्ञ आपको परस्त्री नहीं रोकनी चाहिये। ॥ ८ ॥ आप जैसे बुद्धिमान् धर्म विरुद्ध अनर्थ लाने वाले जड़ उखाड़ने वाले कर्मों में नहीं फंसते हैं, ॥ ९ ॥ लक्ष्मण से छोड़े हुए राम के क्रोध के अनुसारी बाणों के आगे देव और दैत्यों में से भी कौन ठहरसक्ता है ॥ १० ॥ हे राजन् तीनों लोकों में कोई भी ऐसा नहीं है, जो राम का अपराध करके सुख पाए ॥ ११ ॥ सो तीनों काल में हितकारी धर्मार्थ युक्त वचन को मानिये, जानकी नरश्रेष्ठ को वापिस दीजिये ॥१२॥ जन स्थान का बध तथा वाली का बध जानकर और राम सुग्रीव की मित्रता जानकर अपना हित समझ ॥ १३ ॥

सर्ग२७(व०५२,१३)हनुमान् की पूंछको आग लगाकर लंकामें घुमाना

मूल—स तस्य वचनं श्रुत्वा वानरस्य महात्मनः । आज्ञापयद्वधं तस्य रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥१॥ वधे तस्य समाज्ञप्ते रावणेन दुरात्मना निवेदितवतो दौत्यं नानुमेने विभीषणः ॥ २ ॥ राजन्धर्मविरुद्धं च

लोकवृत्तेश्च गर्हितम् । तव चासदृशं वीर कपेरस्य प्रमापणम् ॥ ३ ॥
साधुर्वा यदि वाऽसाधुः परैरेष समर्पितः । ब्रुवन्परार्थं परवान्न दूतो
वधमर्हति ॥ ४ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवो महात्मनः । देश-
कालहितं वाक्यं भ्रातुरुत्तरमब्रवीत् ॥ ५ ॥ सम्यगुक्तं हि भवता
दूतवध्या विगर्हिता । अवश्यं तु वधायान्यः क्रियतामस्य निग्रहः
॥ ६ ॥ कपीनां किल लाङ्गूलमिष्टं भवति भूषणम् । तदस्य दीप्य-
तां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु ॥ ७ ॥ ततः पश्यन्त्वमुं दीनमङ्गवैरू-
प्यकर्शितम् । सुमित्रज्ञातयः सर्वे बान्धवाः ससुहृज्जनाः ॥ ८ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसाः कोपकर्कशाः । वेष्टन्ते तस्य लाङ्गूलं
जीर्णैः कार्पासिकैः पटैः ॥ ९ ॥ तैलेन परिषिच्याथ तेऽग्निं तत्रोप-
पादयन् । सहस्त्रीबालवृद्धाश्च जग्मुः प्रीतिं निशाचराः ॥ १० ॥
ततस्ते संवृताकारं सत्त्ववन्तं महाकपिम् । परिगृह्य ययुर्हृष्टा राक्षसाः
कपिकुञ्जरम् ॥ ११ ॥ शङ्खभेरीनिनादैश्च घोषयन्तः स्वकर्मभिः ।
राक्षसाः क्रूरकर्माणश्चारयन्ति स्म तां पुरीम् ॥ १२ ॥ ततश्छित्त्वा
च तान्पाशान्वेगवान्वै महाकपिः । उत्पपाताथ वेगेन ननाद च
महाकपिः ॥ १३ ॥ पुरद्वारं ततः श्रीमाञ्शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ।
वीक्षमाणश्च ददृशे परिघं तोरणाश्रितम् ॥१४॥ स तं गृह्य महाबाहुः
कालायसपरिष्कृतम् । रक्षिणस्तान्पुनः सर्वान्सूदयामास मारुतिः॥१५

टीका—* महात्मा वानर के वचन को सुनकर क्रोध से मूर्च्छित हुए रावण ने उसके बध की आज्ञा दी॥१॥पर विभीषण ने इस में अनुमति

* यहांसे आगे लंका दाह का जो प्रकरण है, इस में बहुत ही अत्युक्ति प्रतीत होती है । यह असंभावित है, कि प्रबल राक्षसों की राजधानी में अकेला हनुमान् लोगों के घरो में फिर २ कर उनको जलाता फिरे,और पकड़ा न जाए । किञ्च हनुमान् ने जो उसके प्रबल योद्धाओं का पता लगाना चाहा था, वह द्वन्द्व युद्ध से मिल

नहीं दी, क्योंकि (हनुमान्) अपना दूत होना बतला चुका था ॥ २ ॥ (उसने कहा) इस बानर को मारना हे राजन् ! यह धर्म-विरुद्ध है, लोक वर्ताव से निन्दित है, और तेरे असदृश है ॥ ३ ॥ भला चाहे बुरा यह दूसरों से हमें सौंपा गया है, दूसरों के लिये कहता हुआ पराधीन दूत बध के योग्य नहीं होता है ॥ ४ ॥ उस महात्मा के वचन को सुनकर रावण भाई को देश काल के योग्य उत्तर वाक्य बोला ॥ ५ ॥ आपने ठीक कहा है, दूत का मारना निन्दित ही है, अवश्य इसके बध के स्थान कोई और दण्ड देना चाहिये ॥ ६ ॥ पूंछ बानरों का प्यारा भूषण होता है, वह इसकी जल्दी प्रदीप्त करो तब यह उस जली हुई के साथ जाए ॥ ७ ॥ तब अंग की विरूपता से दुर्बल दीन हुए इसको इसके मित्र ज्ञाति बान्धव और सुहृद् जन देखेंगे ॥८॥ उसके बचन को सुनकर क्रोध से प्रचण्ड राक्षस पुराने

चुका था। अब इसकी भी आवश्यकता न थी। हनुमान् वानर न था, किन्तु दूसरी जातियों के मुकाबिले में यह उस जाति का नाम था। इसलिये पूंछ का होना ही असंभव है, क्या फिर उसको आग लगाना। संभव यह है, कि रावण ने दूत होने से हनुमान् को अवध्य जान कर छोड़ दिया, पर जो हनुमान् ने वानरराज सुग्रीव की चढ़ाई की धमकी दी थी, उसके बदले में हनुमान् के सन्मुख वानर की पूंछ बनाकर जलाई गई, और इस तरह पर उस वानर जाति पर उपहास किया गया। जैसा कि अब रूस की आकृति रीछ बनाते हैं। हनुमान् जब छोड़ा गया, तो उसने इस जात्य-पमान का बदला यह लिया, कि वानर की पूंछ से ही बे मालूम किले को आगे लगाई, यह जितलाते हुए कि वानर की पूंछ ही तुम्हारे किलों को भस्मसात् करेगी। यह अभिप्राय इतने बड़े अलंकार में प्रकट किया है। वस्तुतः न हनुमान् की पूंछ थी, न उसने घूम २ कर एक २ घर जलाया, किन्तु एक ही जगह आग लगाई उस आग से पवन द्वारा फैलकर बहुत बड़ी हानि हुई ॥

कपासी कपड़ों से उसकी पूंछ को लपेटते भए ॥ ९ ॥ तेल से तर करके उसमें आग लगाते भए, ऐसा करके स्त्री, बाल, बूढ़े सब निशाचर प्रीति को प्राप्त हुए ॥ १० ॥ तब गूढ़ अभिप्राय वाले बड़े दिलवाले, उस महाबानर बानरश्रेष्ठ को पकड़कर राक्षस बहुत हर्षित हुए चले ॥ २१ ॥ शंख और भेरी की ध्वनियों के साथ उसके कर्म (राज द्रोह) का ढिंढोरा देते हुए क्रूरकर्मा राक्षस उसे लङ्का पुरी में घुमाते भए ॥ १२ ॥ तब वह वेगवान् महाबानर उन फांसों को काटकर, वेग से उछलकर निकल गया, और सिंहनाद करता भया ॥ १३ ॥ तब पर्वतशृङ्ग की तरह ऊंचे पुरद्वार को देखते हुए उस श्रीमान् ने बाहर के द्वार पर मूसल देखा ॥ १४ ॥ काले लोहे मे सजे हुए उसको पकड़कर उस पवनपुत्र ने फिर उन सारे रखवालों को मारा ॥ १५ ॥

सर्ग २८ (व०५४) लंका दाह।

मूल–वीक्षमाणस्ततो लङ्कां कपिः कृतमनोरथः। वर्धमानसमुत्साहः कार्यशेषमचिन्तयत् ॥ १ ॥ किं नु खल्ववशिष्टं मे कर्तव्यमिह सांप्रतम्। यदेषां रक्षसां भूयः संतापजननं भवेत् ॥ २ ॥ वनं तावत्प्रमथितं प्रकृष्टा राक्षसा हताः। बलैकदेशः क्षपितः शेषं दुर्गविनाशनम् ॥ ३ ॥ ततः प्रदीप्तलाङ्गूलः सविद्युदिव तोयदः। भवनाग्रेषु लङ्काया विचचार महाकपिः ॥ ४ ॥ गृहाद्गृहं राक्षसानामुद्यानानि च वानरः। वीक्षमाणो ह्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः ॥ ५ ॥ वर्जयित्वा महातेजा विभीषणगृहं प्रति। क्रममाणः क्रमेणैव ददाह हरिपुंगवः ॥ ६ ॥ तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः। गृहेष्वृद्धिमतामृद्धिं ददाह कपिकुञ्जरः ॥ ७ ॥ सर्वेषां समतिक्रम्य राक्षसेन्द्रस्य वीर्यवान्। आससादाथ लक्ष्मीवान्रावणस्य निवेशनम् ॥ ८ ॥ ततस्तस्मिन्गृहे मुख्ये नानारत्नविभूषिते।

मेरुमन्दरसंकाशे नाना मङ्गलशोभिते ॥९॥ प्रदीप्तमग्निमुत्सृज्य लाङ्गू
लाग्रे प्रतिष्ठितम्। ननाद हनुमान्वीरो युगान्तजलदो यथा ॥ १० ॥
प्रदीप्तमग्निं पवनस्तेषु वेश्मसु चारयन्। तानि काञ्चनजालानि
मुक्तामणिमयानि च ॥ ११ ॥ भवनानि व्यशीर्यन्त रत्नवन्ति
महान्ति च। तानि भग्नविमानानि निपेतुर्वसुधातले ॥ १२ ॥ संजज्ञे
तुमुलः शब्दो राक्षसानां प्रधावताम्। स्वे स्वे गृहपरित्राणे भग्नोत्सा-
होज्झितश्रियाम् ॥ १३ ॥ हनूमता वेगवता वानरेण महात्मना।
लङ्कापुरं प्रदग्धं तद्रुद्रेण त्रिपुरं यथा ॥ २४ ॥ भङ्क्त्वा वनं
महातेजा हत्वा रक्षांसि संयुगे। दग्ध्वा लङ्कापुरीं भीमां रराज स
महाकपिः ॥ १५ ॥ लङ्कां समस्तां संपीड्य लाङ्गूलाग्निं महाकपिः।
निर्वापयामास तदा समुद्रे हरिपुंगवः ॥ १६ ॥

टीका—बानर का मनोर्थ पूरा हुआ, उसने लङ्का की ओर देखा, उसका उत्साह बढ़ गया और उसने कार्यशेष का विचार किया ॥ १ ॥ अब क्या करना मुझे बाकी है, जो इन राक्षसों को फिर सन्तापजनक हो ॥ २ ॥ बगीचा विनाश किया, उत्तम राक्षस मारे, थोड़ी सी सेना भी मारी, अब किले (लङ्का) का नाश करना शेष है ॥ ३ ॥ यह सोच जलती हुई पुच्छवाला बिजलीवाले मेघके तुल्य वह महावानर लङ्का के भवनों की चोटियों पर घूमा ॥ ४ ॥ राक्षसों के घर से घर और घरों के बगीचों को देखता हुआ वह बानर निडर हो महलों पर घूमा ॥ ५ ॥ घूमते हुए महातेजस्वी बानरश्रेष्ठ ने बिभीषण के घर को छोड़कर क्रम से सब दाह कर दिये ॥६॥ महायशस्वी बानरश्रेष्ठ ने उन २ महा घरों में ऐश्वर्यवालों के ऐश्वर्य को दाह किया ॥ ७ ॥ तब वह वीर्यवान् सब के घरों को उलांघ कर राक्षसेन्द्र रावण के महल पर पहुंचा, तब नाना रत्नों से भूषित मेरु मन्दर के तुल्य, नाना मङ्गलों से शोभित, उस मुख्यगृह में

॥ ९ ॥ पुच्छ के अग्र पर स्थित जलती हुई अग्नि को छोड़कर वीर हनुमान् प्रलय के मेघ की तरह गर्जा ॥ १० ॥ पवन ने उस प्रदीप्त अग्नि को उन मन्दरों में फैला दिया, वह सुनहरी जालियों वाले मोती मणियों से युक्त ॥ ११ ॥ रत्नोंवाले बड़े २ भवन विनाश होगये, अटारियें टूट २ कर पृथिवी तलपर गिर पड़ीं ॥१२॥ राक्षसों का तुमल शब्द उत्पन्न हुआ, जो अपने २ घर के बचाव में दौड़ रहे थे, पर उत्साह टूटे हुए और शोभा से हीन हुए थे ॥ १३ ॥ वेगवाले वानर महात्मा हनुमान् ने वह लंका पुर दग्ध किया, जैसे रुद्र ने त्रिपुर दग्ध किया था ॥ १४ ॥ वह महातेजस्वी बन को तोड़कर युद्ध में राक्षसों को मारकर भयंकर लंकापुरी को दग्धकर शोभायमान हुआ ॥ १५ ॥ सारी लंका को पीड़ित करके उस बानरश्रेष्ठ ने पूंछ के अग्नि को समुद्र में जाकर बुझाया ॥१६॥

सर्ग २९ (व० ५७) हनुमान् का जाम्बवान् आदि के पास वापिस जाना

मूल—नदन्नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः । प्रवरान्राक्षसान्हत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ॥ १ ॥ आकुलां नगरीं कृत्वा व्यथयित्वा च रावणम् । अर्दयित्वा महावीरान्वैदेहीमभिवाद्य च ॥ २ ॥ आजगाम महातेजाः पुनर्मध्येन सागरम् । पर्वतेन्द्रं सुनाभं च समुपस्पृश्य वीर्यवान् ॥ ३ ॥ ज्यामुक्त इव नाराचो महावेगोऽभ्युपागमत् । स तं देशमनुप्राप्तः सुहृद्दर्शनलालसः ॥४॥ निशम्य नदतो नादं वानरास्ते समन्ततः । बभूवुरुत्सुकाः सर्वे सुहृद्दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ ५ ॥ जाम्बवान्स हरिश्रेष्ठः प्रीतिसंहृष्टमानसः । उपामन्त्र्य हरीन्सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ सर्वथा कृतकार्योऽसौ हनुमान्नात्र संशयः । न ह्यस्याकृतकार्यस्य नाद एवंविधो भवेत् ॥ ७ ॥ ते नगाग्राणि नगाग्राणि शिखराच्छिखराणि च । प्रहृष्टाः समपद्यन्त हनुमन्तं दिदृक्षवः ॥ ८ ॥ ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे वानरपुंगवाः । हनुमन्तं महा-

स्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥ ९ ॥ उपायनानि चादाय मूलानि च फलानि च । प्रत्यर्चयन्हरिश्रेष्ठं हरयो मारुतात्मजम् ॥ १० ॥ हनुमांस्तु गुरून्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा । कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः ॥११॥ स ताभ्यां पूजितः पूज्यः कपिभिश्च प्रसादितः । दृष्टा देवीति विक्रान्तः संक्षेपेण न्यवेदयत् ॥१२॥ ततो दृष्टेति वचनं महार्थममृतोपमम् । निशम्य मारुतेः सर्वे मुदिता वानराभवन् ॥ १३ ॥

टीका—बड़े नाद से गर्जता हुआ मेघ की ध्वनि तुल्य ध्वनि वाला वह महातेजस्वी प्रवर राक्षसों को मारकर अपना नाम विख्यात करके, नगरी को व्याकुल करके, रावण को तङ्ग करके, बड़े वीरों को पीड़ित करके, और सीता को अभिवादन करके फिर समुद्र के मध्य से पर्वतेन्द्र मैनाक को छूकर आया ॥१,२,३॥ ज्या से छूटे हुए तीर की तरह बड़े वेग से आया, वह सुहृदों के देखने की लालसा वाला उसी स्थान पर आपहुंचा ॥ ४ ॥ तब उस गर्जते हुए की ध्वनि को सुनकर वह वानर चारों ओर से सब अपने सुहृद् के देखने की इच्छा वाले हुए ॥ ५ ॥ वानरश्रेष्ठ जाम्बवान् अतीव प्रसन्न हुआ उन सब वानरों को बुलाकर यह वचन बोला ॥ ६ ॥ हनुमान् सर्वथा कृतकार्य होकर आया है, इसमें संशय नहीं, कार्य को किये बिना उसकी ऐसी गर्ज नहीं होसक्ती ॥ ७ ॥ तब प्रसन्न हुए सभी वानर हनुमान् को देखने की इच्छा से पर्वत की ऊंचाई से दूसरी ऊंचाई पर और चोटी से दूसरी चोटी पर पहुंचे ॥ ८ ॥ तब वह प्रसन्न मन हुए सभी वानरश्रेष्ठ महात्मा हनुमान् को घेर कर चारों ओर बैठ गये ॥ ९ ॥ फल मूल की भेंटें लिये वह वानर वानरश्रेष्ठ पवनपुत्र को पूजते भए ॥ १० ॥ हनुमान् ने जाम्बवान् आदि वृद्धों को और कुमार अङ्गद को प्रणाम किया ॥ ११ ॥

वह आदरणीय पराक्रमी उन दोनों (अङ्गद, जाम्ववान्) से आदृत हुआ और वानरों से प्रसन्न किया हुआ सीता दर्शन की सारी कथा संक्षेप से सुनाता भया ॥१२॥ तब "देखी है" इस अमृत तुल्य बड़े अर्थवाले वचन को सुनकर सारे वानर प्रसन्न हुए ॥ १३ ॥

सर्ग ३० (व० ६१, ६५) हनुमान् का राम के पास आकर सीता का संदेश देना ।

मूल—प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्र पुरःसराः । महेन्द्राग्रात्समुत्पत्य पुप्लुवुः प्लवगर्षभाः ॥ १ ॥ सर्वे राममतीकारे निश्चितार्था मनस्विनः । नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमशतायुतम् ॥२॥ यत्तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम् । यद्रक्षति महावीरः सदा दधिमुखः कपिः ॥३॥ ततः कुमारस्तान्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखान्कपीन् । अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं मधुभक्षणे ॥४॥ भक्षयन्त सुगन्धीनि मूलानि च फलानि च । जग्मुः प्रहर्षं ते सर्वे बभूवुश्च मदोत्कटाः ॥ ५ ॥ ततः प्रस्रवणं शैलं ते गत्वा चित्रकाननम् । प्रणम्य शिरसा रामं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ ६ ॥ युवराजं पुरस्कृत्य सुग्रीवमभिवाद्य च । प्रवृत्तिमथ सीतायाः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ७ ॥ तं मणिं काञ्चनं दिव्यं दीप्यमानं स्वतेजसा । दत्वा रामाय हनुमांस्ततः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ८ ॥ समुद्रं लङ्घयित्वाहं शतयोजनमायतम् । अगच्छं जानकीं सीतां मार्गमाणो दिदृक्षया ॥ ९ ॥ तत्र लङ्केति नगरी रावणस्य दुरात्मनः । दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे ॥ १० ॥ तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तः पुरे सती । त्वयि संन्यस्य जीवन्ती रामा राम मनोरथम् ॥ ११ ॥ दृष्टा मे राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः । अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ॥ १२ ॥ रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया । सा मया नरशार्दूल शनैर्विश्वासिता तदा ॥ १३ ॥ ततः संभाषिता देवी सर्वमर्थं

च दर्शिता । रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा हर्षमुपागता ॥१४॥ नियतः समुदाचारो भक्तिश्चास्याःसदा त्वयि । एवं मया महाभाग दृष्टा जनकनन्दिनी ॥१५॥ विज्ञाप्यःपुनरप्येषरामो वायुसुत त्वया । अखिलेन यथा दृष्टमिति मामाह जानकी ॥१६॥ एष निर्यातितः श्रीमान्मयाते वारिसंभवः । एनं दृष्ट्वा प्रमोदिष्ये व्यसने त्वामिवानघ ॥१७॥ जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज । ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं रक्षसां वशमागता ॥ १८ ॥ एवमुक्तो हनुमता रामो दशरथात्मजः । तं मणिं हृदये कृत्वा रुरोद सहलक्ष्मणः ॥१९॥ तं तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं राघवः शोककर्शितः । नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ २० ॥ यथैव धेनुः स्रवति स्नेहाद्वत्सस्य वत्सला । तथा ममापि हृदयं मणिश्रेष्ठस्य दर्शनात् ॥ २१ ॥ मणिरत्नमिदं दत्तं वैदेह्याः श्वशुरेण मे । वधूकाले यथा बद्धमधिकं मूर्ध्नि शोभते ॥ २२ ॥ इतस्तु किं दुःखतरं यमिमं वारिसम्भवम् । मणिं पश्यामि सौमित्रे वैदेहीमागतं विना ॥ २३ ॥ चिरं जीवति वैदेही यदि मासं धरिष्यति । क्षणं वीर न जीवेयं विना तामसितेक्षणाम् ॥ २४ ॥ नय मामपि तं देशं यत्र दृष्ट्वा मम प्रिया । न तिष्ठेयं क्षणमपि प्रवृत्तिमुपलभ्य च । ॥ २५ ॥ कथं सा मम सुश्रोणी भीरुभीरुः सती तदा । भयावहानां घोराणां मध्ये तिष्ठति रक्षसाम् ॥ २६ ॥

टीका—प्रीतिवाले हुए तब सब वानरश्रेष्ठ हनुमान् को आगे करके महेन्द्र की चोटी से उछलकर छलांगें मारते गए ॥ १ ॥ सब के सब राम का (रावण से) बदला लेने में निश्चित मनवाले मनस्वी, अनेक वृक्षों से पूर्ण नन्दन तुल्य बन (बगीचे) में आपहुंचे ॥२॥ जो मधुवन नामी बगीचा सुग्रीव का रक्षित था, और (सुग्रीव के मामा) महावीर दधिमुख वानर से पालित था ॥ ३ ॥ वहां कुमार (अंगद)ने जाम्बवान् आदि पूज्य वानरों को आदर पूर्वक महुओं

के खाने की आज्ञा दी ॥ ४॥ वह सुगन्धित मूल फलों को भक्षण करते हुए मस्त हुए परम हर्ष को प्राप्त भए ॥५॥ तब उन्होंने विचित्र बनों वाले प्रस्रवण पर्वत पर पहुंचकर महाबली राम और लक्ष्मण को सिर से प्रणाम करके ॥ ६ ॥ और युवराज अङ्गद को आगे करके सुग्रीव का अभिवादन कर सीता का समाचार कहना प्रारम्भ किया ॥७॥ दिव्य सुनहरी मणि जो अपने तेज से दीप्त होरही थी, वह राम को दे करके हनुमान् हाथ जोड़कर कहने लगा ॥ ८ ॥ सौ योजन लम्बे समुद्र को लंघकर देखने की इच्छा से जानकी सीता को ढूंढता हुआ गया ॥ ९ ॥ वहां दुरात्मा रावण की नगरी लङ्का है, जो दक्षिण समुद्र के दक्षिण तीर पर बसी है ॥ १० ॥ वहां रावण के अन्तःपुर में मैंने रमणी सती सीता तुझ में अपने मनोरथ को धारकर जीती हुई देखी है ॥ ११ ॥ राक्षसियों के मध्य में वार २ झिड़की जाती हुई देखी है, भूमि पर लेटी हुई जाड़े के आने पर पद्मिनी की तरह मुरझाए अङ्गोंवाली ॥ १२ ॥ रावण से अपने सतीत्व को बचाती हुई उसे मैंने हे नरश्रेष्ठ धीरे २ तसल्ली दी ॥ १३ ॥ तब मैंने देवी से सम्भाषण किया, और सारी बातें सुनाईं, वह राम सुग्रीव की मैत्री को सुनकर हर्ष को प्राप्त भई ॥ १४ ॥ सदा तेरे नाम का जप करती है उसकी भक्ति सदा तुझ में है, इस प्रकार हे महाभाग वह जनकनन्दिनी मैंने देखी है ॥ १५ ॥ मुझे जानकी ने फिर कहा, हे वायु सुत जैसा देखा है, वह सब राम को कहना ॥१६॥ यह शोभा वाली समुद्रिय मणि उसने दी है, हे निष्पाप ! तेरे दर्शन के तुल्य इस (आपकी दी मणि) के दर्शन करके दुःख में आनन्द मनाऊंगी॥१७॥ हे दशरथ सुत मैं (वर्तमान दशवें महीने के पीछे) महीना भर और जीवन धारण करूंगी, महीने के पीछे राक्षसों के बस में पड़ी जीती नहीं

रहूंगी ॥ १८ ॥ हनुमान् से ऐसे कहा हुआ, दशरथसुत उस मणि को हृदय पर रखकर लक्ष्मण समेत बहुत रोया ॥ १९ ॥ उस मणिश्रेष्ठ को देखकर शोक से दुर्बल राम आंसु भरे नेत्रों से सुग्रीव से यह बोला ॥ २० ॥ जैसे कपिलाधेनु बछड़े के आने से स्नेह से दूध उतारती है, इसी तरह इस मणि श्रेष्ठ के देखने से मेरा हृदय पिघल आया है ॥ २१ ॥ यह मणिरत्न विवाह के समय मेरे श्वसुर ने सीता को दिया था, जोकि सिर पर बांधा हुआ अधिक शोभायमान हुआ ॥ २२ ॥ इस से बढ़कर क्या दुःख होगा, जबकि इस समुद्रिय मणि को सीता के बिना आया देखता हूं ॥ २३ ॥ सीता चिर जियेगी, यदि महीना जीती रहेगी, हे वीर मैं उस काले नेत्रोंवाली के बिना क्षण भी नहीं जिउंगा ॥ २४ ॥ मुझे भी उसी जगह ले चल जहां मेरी प्यारी देखी है, उसका समाचार पाकर मैं क्षण भी नहीं ठहर सक्ता हूं ॥ २५ ॥ कैसे वह सुन्दर कमरवाली मेरी पतिव्रता अतीव भीरु भयङ्कर घोर राक्षसियों के मध्य में रहती है ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकिरामायणे सुन्दरकाण्डं

समाप्तम् ।

युद्धकाण्ड-लङ्काकाण्ड

सर्ग १ (व० १,२) हनुमान् को पुरस्कार और सेना समेत एक साथ समुद्र पार होने का प्रस्ताव

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं यथावदभिभाषितम् । रामः प्रीतिसमायुक्तो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥ कृतं हनूमता कार्यं सुमहद्भुवि दुर्लभम् । मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणीतले ॥ २ ॥ इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति । यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम् ॥ ३ ॥ एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः । मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनाः ॥४॥ इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्गो रामस्तं परिषस्वजे । हनूमन्तं कृतात्मानं कृतवाक्यमुपागतम् ॥ ५ ॥ ध्यात्वा पुनरुवाचेदं वचनं रघुसत्तमः । हरीणामीश्वरस्यापि सुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥ ६ ॥ सर्वथा सुकृतं तावत्सीतायाः परिमार्गणम् । सागरं तु समासाद्य पुनर्नष्टं मनो मम ॥ ७ ॥ कथं नाम समुद्रस्य दुष्पारस्य महाम्भसः । हरयो दक्षिणं पारं गमिष्यन्ति समागताः ॥ ८ ॥ तं तु शोकपरिद्यूनं रामं दशरथात्मजम् । उवाच वचनं श्रीमान्सुग्रीवः शोकनाशनम् ॥ ९ ॥ संतापस्य च ते स्थानं नहि पश्यामि राघव । प्रवृत्तावुपलब्धायां ज्ञाते च निलये रिपोः ॥१०॥ इमे शूराः समर्थाश्च सर्वतो हरियूथपाः । त्वत्प्रियार्थं कृतोत्साहा प्रवेष्टुमपि पावकम्॥ ११ ॥ सेतुरत्र यथा बध्येद्यथा पश्येम तां पुरीम् । तस्य राक्षसराजस्य तथा त्वं कुरु राघव ॥ १२ ॥ तदलं शोकमालम्ब्य क्रोधमालम्ब भूपते । निश्चेष्टाः क्षत्रिया मन्दाः सर्वे चण्डस्य बिभ्यति ॥ १३ ॥

अर्थ०—हनुमान् से यथावत कहे वाक्य को सुनकर प्रीति युक्त हुए राम उत्तर वाक्य बोले ॥ १ ॥ हनुमान् ने भूमि में दुर्लभ बहुत

बड़ा कार्य किया है, जो किसी दूसरे से पृथिवीतल पर मन से भी करना अशक्य है ॥ २ ॥ किन्तु इस दीन अवस्था में यह बात मेरे मन को बहुत ही चुभती है, कि मैं इस प्रिय करनेवाले के सदृश प्रिय नहीं कर सक्ता हूं ॥ ३ ॥ हां इस समय प्रेम से गले मिलना यही अपना सर्वस्व इस हनुमान् महात्मा को देता हूं ॥ ४ ॥ यह कहकर प्रीति से हर्षित अङ्गोंवाले, वाक्य को पूरा करके आए, जितेन्द्रिय हनुमान् को राम ने गले लगाया ॥ ५ ॥ फिर थोड़ी देर सोचकर राम वानरपति सुग्रीव के सुनते हुए यह वचन बोले ॥ ६ ॥ सीता का ढूंढना तो बड़ी अच्छी तरह होचुका, पर समुद्र को पाकर फिर मेरा मन डिगा जाता है ॥ ७ ॥ कैसे बड़े जल वाले दुष्पार समुद्र के पार दक्षिण तीर पर बानर इकट्ठे पहुंचेगे ॥ ८ ॥ तब श्रीमान् सुग्रीव शोक से दबे हुए दशरथ सुत राम को शोकनाशक वचन बोला ॥ ९ ॥ हे राघव जब कि सीता की सुध मिल गई, और शत्रु का घर जाना गया, तो अब मैं आपके शोक का स्थान नहीं देखता हूं ॥ १० ॥ यह शूरवीर समर्थ, वानर सेना-पति सब के सब आपका प्रिय करने के लिये अग्नि में भी प्रवेश करने का उत्साह रखते हैं (तब समुद्र का पार होना कौन बड़ी बात है) ॥ ११ ॥ सो हे राघव अब जैसे समुद्र के ऊपर पुल बन्धजाए और जैसे उस राक्षसराज की पुरी को देखें, वैसे आप करें ॥१२॥ इसलिये आप शोक को त्यागकर क्रोध का आलम्बन कीजिये, क्षत्रिय जो उद्योगी नहीं रहते, वह गिर जाते हैं, प्रचण्ड से ही सब डरते हैं ॥ १३ ॥

सर्ग २ (व० ४) लंका पर चढाई, समुद्रतक की यात्रा।

मूल०–ततोऽब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः । अस्मिन्मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय ॥ १ ॥ सीता श्रुत्वाभियानं मे आशा-

मेष्यति जीविते ॥ २ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनी-पतिः । व्यादिदेश महावीर्यो वानरान्वानरर्षभः ॥ ३ ॥ ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः । जगाम रामो धर्मात्मा ससैन्यो दक्षिणां दिशम् ॥ ४ ॥ आप्लुवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः । क्ष्वेलन्तो निनदन्तश्च जग्मुर्वै दक्षिणां दिशम् ॥ ५ ॥ पुरस्तादृषभो नीलो वीरः कुमुद एव च । पन्थानं शोधयन्ति स्म वानरैर्बहुभिः सह ॥ ६ ॥ मध्ये तु राजा सुग्रीवो रामो लक्ष्मण एव च । बलिभिर्बहुभिर्भीमैर्वृतः शत्रुनिवर्हणः ॥ ७ ॥ ततः पादपसंबाधं नानावनसमायुतम् । सह्यपर्वतमासाद्य वानरास्ते समारुहन् ॥ ८ ॥ काननानि विचित्राणि नदीप्रस्रवणानि च । पश्यन्नपि ययौ रामः सह्यस्य मलयस्य च ॥९॥ महेन्द्रमथ संप्राप्य रामो राजीवलोचनः । आरुरोह महाबाहुः शिखरं द्रुमभूषितम् ॥ १० ॥ ततः शिखरमारुह्य रामो दशरथात्मजः । कूर्ममीनसमाकीर्णमपश्यत्सलिलाकुलम् ॥११॥ ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च महागिरिम् । आसेदुरानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम् ॥१२॥ अथ धौतोपलतलां तोयौघैः सहसोत्थितैः । वेलामासाद्य विपुलां रामो वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥ एते वयमनुप्राप्ताः सुग्रीव वरुणालयम् । इहेदानीं विचिन्ता सा या नः पूर्वमुपस्थिता ॥ १४ ॥ तदिहैव निवेशोऽस्तु मन्त्रः प्रस्तूयतामिह । यथेदं वानरबलं परं पारमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥ स्वां स्वां सेनां समुत्सृज्य मा च कश्चित्कुतो व्रजेत् । गच्छन्तु वानराः शूराः ज्ञेयं छन्नं भयं च नः ॥ १६ ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवः सहलक्ष्मणः । सेनां निवेशयत्तीरे सागरस्य द्रुमायुते ॥ १७ ॥ विरराज समीपस्थं सागरस्य च तद्बलम् । मधुपाण्डुजलः श्रीमान्द्वितीय इव सागरः ॥ १८ ॥ दूरपारमसंबाधं रक्षोगणनिषेवितम् । पश्यन्तो वरुणावासं निषेदुर्हरियूथपाः ॥ १९ ॥ हसन्तमिव फेनौघैर्नृत्यन्त-

मिव चोर्मिभिः । चन्द्रोदय समुद्भूतं प्रतिचन्द्रसमाकुलम् ॥ २० ॥ सागरं चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम् । सागरं चाम्बरं चेति निर्विशेषमदृश्यत ॥२१॥ संपृक्तं नभसाप्यम्भः संपृक्तं च नभोऽम्भसा । तादृग्रूपे स्म दृश्येते तारारत्नसमाकुले ॥ २२॥ समुत्पतितमेघस्य वीचिमालाकुलस्य च । विशेषो न द्वयोरासीत्सागरस्याम्बरस्य च ॥

टीका—तब माहातेजस्वी सच्चे पराक्रमी राम बोले, हे सुग्रीव इसी समय चढ़ाई करने को तय्यार होना चाहिए ॥ १ ॥ सीता मेरी चढ़ाई को सुनकर जीवन की आशा धारेगी ॥२॥ राघव के वचन को सुनकर वानरश्रेष्ठ महाबली सेनापति सुग्रीव ने वानरों को (चढ़ाई की) आज्ञा दी ॥३॥ तब राम वानरराज से और लक्ष्मण से पूजित हुए सेना सहित दक्षिण दिशा को चले ॥४॥ कूदते फांदते गर्जते खम ठोकते और सिंहनाद करते हुए वानर दक्षिण दिशा को चले ॥५॥ आगे २ वीर ऋषभ, नील और कुमुद यह और बहुत से वानरों के साथ मार्ग को शोधते जारहे थे ॥ ६ ॥ मध्य में राजा सुग्रीव और शत्रुओं के मारनेवाले राम लक्ष्मण बहुत से भयङ्कर बलवानों से युक्त हुए गये ॥ ७ ॥ तब वृक्षों से भरे हुए नाना वनों से युक्त सह्य पर्वत को पाकर वह वानर उस पर चढ़ गए ॥ ८ ॥ सह्य और मलय के विचित्र वनों और नदियों के झरनों को देखते हुए राम गये ॥९॥ उसके पीछे महाबाहु कमलनेत्र राम महेन्द्र पर पहुंचकर वृक्षों से भूषित उसके शिखर पर चढ़े ॥ १० ॥ शिखर पर चढ़कर दशरथसुत राम ने कूर्म मछलियों से पूर्ण समुद्र के दर्शन किये ॥११॥ वह सब महापर्वत सह्य और मलय को उलांघकर क्रमशः भयङ्कर ध्वनिवाले समुद्र पर पहुंचे ॥ १२॥ अब समुद्र से उठे जल प्रवाहों से धोई हुई शिलाओं वाले विशाल किनारे पर पहुंचकर राम यह वचन बोले ॥ १३ ॥ हे

सुग्रीव यह हम समुद्र पर आगए हैं, यहां अब फिर वही पहली चिन्ता हमारे सामने है ॥ १४ ॥ सो यहां ही छावनी डालिए, और विचार कीजिये, जिससे कि यह वानर सेना परले पार पहुंच जाए ॥ १५ ॥ अपनी २ सेना को छोड़कर मत कोई कहीं जाए, हां कुछ चुने हुए वानर जाएं, और छिपे हुए भय (खतरे) का पता लगाते रहें ॥ १६ ॥ राम के वचन को सुनकर सुग्रीव और लक्ष्मण ने वृक्षों से भरे हुए सागर तीर पर सेना की छावनी डालदी ॥ १७ ॥ सागर के समीप टिकी हुई वह सेना ऐसी सुन्दर शोभायमान होती थी, मानों कि मधु के से पीले रङ्गवाला दूसरा शोभाशाली सागर है ॥ १८ ॥ दूर किनारे वाले, अथाह, राक्षस-गणों से सेवित सागर को देखते हुए वानर सेनापति टिके ॥१९॥ जो सागर के फेन समूह से मानों हंस रहा है, लहरों से नाच रहा है, और चन्द्र के उदय होने पर (लहर २ में पड़ते हुए) प्रतिचन्द्रों (चन्द्रप्रतिविम्बों) से भरा हुआ प्रतीत होता है ॥२०॥समुद्र आकाशके समान और आकाश समुद्र के समान होने से समुद्र और आकाश निर्विशेष (एक से) दीखते थे ॥२१॥ (समुद्र का) जल आकाश के (प्रतिविम्ब) से मिला हुआ, और आकाश (ऊंची लहरों के) जल से मिला हुआ, इसप्रकार दोनों तारे और रत्नों से भरे हुए एक से रूपवाले दीखते थे ॥२२॥ आकाश मेघमाला से भरा हुआ और समुद्र तरङ्गमाला से भरा हुआ होने से दोनों में विशेष नहीं था ॥ २३ ॥

सर्ग ३ (व० ६,७] रावण का राक्षसों के साथ विचार

मूल—लङ्कायां तु कृतं कर्म घोरं दृष्ट्वा भयावहम् । राक्षसेन्द्रो हनुमता शक्रेणेव महात्मना ॥ १ ॥ अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्ह्रिया किंचिदवाङ्मुखः । रामोऽभ्येति पुरीं लङ्कामस्माकमुपरोधकः ॥ २ ॥

वानराणां हि धीराणां सहस्रैः परिवारितः। तारिष्यति च सुव्यक्तं
राघवः सागरं सुखम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्नेवंविधे कार्ये विरुद्धे
वानरैः सह। हितं पुरे च सैन्ये च सर्वं संमन्त्र्यतां मम ॥ ४ ॥
इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसास्ते महाबलाः। ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे
रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ ५ ॥ सुमहन्नो बलं कस्माद्विषादं भजते
भवान्। त्वया भोगवतीं गत्वा निर्जिताः पन्नगा युधि ॥ ६ ॥ विनि-
पत्य च यक्षौघान्विक्षोभ्य विनिगृह्य च। त्वया कैलासशिखराद्वि-
मानमिदमाहृतम् ॥ ७ ॥ मयेन दानवेन्द्रेण त्वद्भयात्सख्यमिच्छता।
दुहिता तव भार्यार्थे दत्ता राक्षसपुंगव ॥ ८ ॥ तेषां वीर्यगुणोत्सा-
हैर्न समौ राघवौ रणे। प्रसह्य ते त्वया राजन्हताः समरदुर्जयाः॥९॥
तिष्ठ वा किं महाराज श्रमेण तव वानरान्। अयमेको महाराज
इन्द्रजित्क्षपयिष्यति ॥१०॥ राजन्नापदयुक्तेयमागता प्राकृताज्जनात्।
हृदि नैव त्वया कार्या त्वं वधिष्यसि राघवम् ॥ ११ ॥

(अब कवि लङ्का का वृतान्त कहता है)—

टीका—लङ्का में इन्द्रके तुल्य महात्मा हनुमान् से किये भय लाने वाले घोर कर्म को देखकर राक्षसेन्द्र ॥ २ ॥ लज्जा से मुख कुछ नीचे करके राक्षसों से बोला। सहस्रों धीर वानरों से घिरा हुआ राम हमारे रोकने के लिये लङ्का की ओर आरहा है यह स्पष्ट दिखाई देता है, कि राम आसानी से समुद्र पार भी होजाएगा ॥ २,३ ॥ वानरों के साथ ऐसे विरुद्ध कार्य के आने पर मेरे पुर और सेना के विषय में हित विचारिये ॥४॥ राक्षसेन्द्र से ऐसे कहे हुए महाबली राक्षस हाथ जोड़कर राक्षसेन्द्र रावण से बोले ॥५॥ हमारा बल (सेना) बहुत बड़ा है, आप क्यों उदास होते हैं, आपने भोगवती में जाकर नाग जीते हैं ॥ ६ ॥ आप यक्षों के समूहों को गिराकर हिलाकर और जीतकर कैलास की चोटी से विमान लाए हैं ॥७॥

दानवराज मयने आपके डर से मैत्री की इच्छा से आपकी पत्नी होने के अर्थ अपनी कन्या दी है ॥८॥ राम रण में उनके वीर्य और उत्साह के तुल्य नहीं, जो हे राजन् आपने युद्ध में दुर्जय लोग बल से जीते थे ॥ ९ ॥ अथवा हे महाराज आप ठहरे रहें, आपको श्रम से क्या, यह अकेला इन्द्रजित् सारे वानरों को मार खपाएगा ॥ १० ॥ हे राजन् यह एक प्राकृतजन के अनुचित विपत्ति आप मन में न रक्खें, आप सब को मारेंगे ॥११॥

सर्ग ४ (व० ९, १०) विभीषण की सीता को वापिस देने की रावण को सम्मति।

मूल—तान्गृहीतायुधान्सर्वान्वारयित्वा विभीषणः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं पुनः प्रत्युपवेश्य तान् ॥ १ ॥ अप्युपायैस्त्रिभिस्तात योऽर्थः प्राप्तुं न शक्यते। तस्य विक्रमकालांस्तान्युक्तानाहुर्मनीषिणः ॥२॥ प्रमत्तेष्वभियुक्तेषु दैवेन प्रहतेषु च । विक्रमास्तात सिद्ध्यन्ति परीक्ष्य विधिना कृताः॥ ३ ॥ अप्रमत्तं कथं तं तु विजिगीषुं बले स्थितम् । जितरोषं दुराधर्षं तं धर्षयितुमिच्छथ ॥ ४ ॥ समुद्रं लङ्घयित्वा तु घोरं नदनदीपतिम् । गतिं हनूमतो लोके को विद्यात्तर्कयेत वा ॥ ५ ॥ बलान्यपरिमेयानि वीर्याणि च निशाचराः । परेषां सहसावज्ञा न कर्तव्या कथंचन ॥ ६ ॥ नतुक्षमं वीर्यवता तेन धर्मानुवर्तिना । वैरं निरर्थकं कर्तुं दीयतामस्य मैथिली ॥ ७ ॥ प्रसादये त्वां बन्धुत्वात्कुरुष्व वचनं मम। हितं तथ्यं त्वहं ब्रूमि दीयतामस्य मैथिली ॥ ८ ॥ बिभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः । विसर्जयित्वा तान्सर्वान्प्रविवेश स्वकं गृहम् ॥९॥ ततः प्रत्यूषसि प्राप्ते भीमकर्मा विभीषणः। अग्रजस्यालयं वीरः प्रविवेश महाद्युतिः॥१०॥ स पूज्यमानो रक्षोभिर्दीप्यमानं स्वतेजसा । आसनस्थं महाबाहुर्ववन्दे धनदानुजम् ॥ ११ ॥ स रावणं महात्मानं विजने मन्त्रिसंनिधौ । उवाच हितमत्यर्थं वचनं हेतुनिश्चितम् ॥ १२ ॥ रोचये

वीर वैदेही राघवाय प्रदीयताम् । प्रापणे चास्य मन्त्रस्य निवृत्ताः सर्वमन्त्रिणः ॥ १३ ॥ अवश्यं च मया वाच्यं यद्दृष्टमथवा श्रुतम् । संविधाय यथान्यायं तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ १४ ॥ हितं महार्थं मृदु हेतुसंहितं व्यतीतकालायतिसम्प्रति क्षमम् । निशम्य तद्वाक्यमुपास्थितज्वरः प्रसङ्गवानुत्तरमेतदब्रवीत् ॥ १५ ॥ भयं न पश्यामि कुतश्चिदप्यहं न राघवः प्राप्स्यति जातु मैथिलीम् । सुरैः सहेन्द्रैरपि संगरे कथं ममाग्रतःस्थास्यति लक्ष्मणाग्रजः ॥ १६ ॥ इत्येवमुक्त्वा सुरसैन्यनाशनो महाबलः संयति चण्डविक्रमः । दशाननो भ्रातरमाप्तवादिनं विसर्जयामास तदा विभीषणम् ॥ १७ ॥

टीका--शस्त्र पकड़कर तय्यार हुए उनसब को रोककर विभीषण फिर उनको बिठलाकर वाक्य बोला ॥ १ ॥ हे तात जो काम तीन उपायों (साम, दाम, दण्ड) से न होसके, बुद्धिमान् पुरुष वहां पराक्रम दिखलाने का समय बतलाते हैं ॥ २ ॥ प्रमादी और दैव से मारे हुए शत्रुओं में पराक्रम फलते हैं, जब परीक्षा करके विधि से लगाए गए हों ॥ ३ ॥ पर तुम कैसे उस अप्रमादी बल में स्थित, जयशील, क्रोध को जीते हुए, दुर्धर्ष को दबाना चाहते हो ॥ ४ ॥ भयंकर नद नदियों के पति समुद्र को लंघकर हनुमान् का यहां आना लोक में कौन जान सक्ता, वा ख्याल कर सक्ता था ॥ ५ ॥ हे राक्षसो शत्रुओं के भी बल और वीर्य अपरिमेय हैं, किसी तरह भी उनकी एकाएक अवज्ञा नहीं करनी चाहिये ॥६॥ उस वीर्यवान् धर्मानुयायी के साथ निरर्थक बैर युक्त नहीं, उसे मैथिली दे दीजिये ॥ ७ ॥ बन्धु होने से आपको प्रसन्न करता हूं मेरा वचन मानिये, मैं हित और सत्य कहता हूं, सीता उसे दे दीजियए ॥ ८ ॥ विभीषण के वचन को सुनकर राक्षसेश्वर रावण उन सब को विसर्जन करके अपने घर में प्रविष्ट हुआ ॥ ९ ॥

दूसरे दिन प्रभात के समय भीषण कर्मोंवाला महातेजस्वी वीर विभीषण बड़े भाई के घर में प्रविष्ट हुआ ॥ १० ॥ राक्षसों से पूजित उस महाबाहु ने अपने तेज से दीप्यमान, आसन पर बैठे हुए, रावण को प्रणाम किया ॥ ११ ॥ और एकान्त में मन्त्रियों के समक्ष उसने महात्मा रावण को हेतुओं से निश्चित अतीव हितकारी वचन कहा ॥ १२ ॥ हे वीर मुझे यही पसन्द आता है, कि सीता राम को दे दीजिए, इस मन्त्र के आप तक पहुंचाने में सब मन्त्री रुकते हैं ॥ १३ ॥ पर मुझे अवश्य कहना चाहिए, जो मैंने समझा वा सुना है, सो जैसा ठीक हो, वैसा कीजिए ॥ १४ ॥ इस गम्भीर अर्थवाले नर्म हेतुओं से युक्त भूत भविष्यत् और वर्त्तमान में फलप्रद हित वचन को सुनकर विषयासक्त रावण ने सन्तप्त होकर यह उत्तर दिया ॥१५॥ मैं किसी से भय नहीं देखता हूं, राम कभी सीता को नहीं पाएगा, युद्ध में इन्द्र सहित देवताओं के साथ भी राम मेरे आगे कैसे खड़ा होगा ॥ १४ ॥ यह कहकर देवताओं की सेना के नाश करनेवाले रण में प्रचण्ड पराक्रमवाले महाबली रावणने सत्यवादी भाई विभीषण को विसर्जन किया॥१७॥

सर्ग ५ (व० १२) रावण का सभा करना

मूल–स बभूव कृशो राजा मैथिलीकाममोहितः । अतीव कामसंपन्नो वैदेहीमनुचिन्तयन् ॥ १ ॥ अतीतसमये काले तस्मिन्वै युधि रावणः । अमात्यैश्च सुहृद्भिश्च प्राप्तकालममन्यत ॥ २ ॥ स हेम-जालविततं मणिविद्रुमभूषितम् । उपगम्य विनीताश्वमारुरोह महा-रथम् ॥३॥ तमास्थाय रथश्रेष्ठं महामेघसमस्वनम् । प्रययौ रक्षसां श्रेष्ठो दशग्रीवः सभां प्रति ॥ ४ ॥ असिचर्मधरा योधाः सर्वायुध-धरास्ततः । राक्षसा राक्षसेन्द्रस्य पुरस्तात्संप्रतस्थिरे ॥ ५ ॥ नाना-विकृतवेषाश्च नानाभूषणभूषिताः । पार्श्वतः पृष्ठतश्चैनं परिवार्य

ययुस्तदा ॥ ६ ॥ राक्षसैः स्तूयमानः सञ्जयाशीर्भिररिंदमः। आससाद महातेजाः सभां विरचितां तदा ॥ ७ ॥ मन्त्रिणश्च यथामुख्या निश्चितार्थेषु पण्डिताः । अमात्याश्च गुणोपेताः सर्वज्ञा बुद्धिदर्शनाः ॥ ८ ॥ समीयुस्तत्र शतशः शूराश्च बहवस्तथा । सभायां हेमवर्णायां सर्वार्थस्य सुखाय वै ॥ ९ ॥ ततो महात्मा विपुलं सुयुग्यं रथं वरं हेमविचित्रिताङ्गम् । शुभं समास्थाय ययौ यशस्वी विभीषणः संसदमग्रजस्य ॥ १० ॥

टीका—सीता की कामना से मोहित वह राजा दुर्बल हुआ अत्यन्त कामना से भरा हुआ, सीता का ही चिन्तन करता हुआ ॥ १ ॥ अब समय बीत जाने पर रावण युद्ध में मन्त्री और सुहृदों के साथ सलाह का समय समझता भया ॥२॥ वह सुवर्ण की जालियों वाले मणि और गुलियों से भूषित सिधे हुए घोड़ों वाले महारथ पर आकर सवार हुआ ॥३॥ बड़े मेघ के तुल्य ध्वनि वाले उस रथ पर चढ़ कर वह राक्षसश्रेष्ठ रावण सभा की ओर गया ॥ ४ ॥ ढाल तलवार और सारे शस्त्रों से सजे हुए राक्षस योधे राक्षसेन्द्र के आगे २ चले ॥ ५ ॥ और नाना प्रकार के अलग २ वेषों वाले नाना भूषणों से भूषित योधे पार्श्वों से और पीछे से घेर कर चले ॥ ६ ॥ राक्षसों से जय की असीसें लेता हुआ शत्रुओं का दमन करने वाला, वह महातेजस्वी सजी हुई सभा में आया ॥ ७ ॥ निश्चित विषयों में निपुण मुख्य २ मन्त्री गुणों से युक्त, सर्वज्ञ, बुद्धिदर्शी, अमात्य (प्राइवेट मन्त्री) ॥८॥ सैकड़ों और अनेक शूरवीर उस सुनहरी सभा में सब विषयों की आसानी के लिये इकट्ठे हुए ॥ ९ ॥ तब महात्मा विभीषण सोने से विचित्रित अङ्गों वाले उत्तम घोड़ों वाले शुभ रथ पर चढ़कर बड़े भाई की सभा को गया ॥ १० ॥

सर्ग ६ (व० १३) राज सभा में राजा और मन्त्रियों का विचार।

मूल–स तां परिषदं कृत्स्नां समीक्ष्य समितिंजयः। प्रबोधयामास तदा प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥ १ ॥ सेनापते यथा ते स्युः कृतविद्याश्चतुर्विधाः। योधा नगररक्षायां तथा व्यादेष्टुमर्हसि ॥ २ ॥ ततो विनिक्षिप्य बलं सर्वं नगरगुप्तये। प्रहस्तः प्रमुखे राज्ञो निषसाद जगाद च ॥ ३ ॥ विहितं बहिरन्तश्च बलं बलवतस्तव। कुरुष्वाविमनाः क्षिप्रं यदभिप्रेतमस्ति ते ॥ ४ ॥ प्रहस्तस्य वचः श्रुत्वा राजा राज्यहितैषिणः। सुखेप्सुः सुहृदां मध्ये व्याजहार स रावणः ॥ ५ ॥ प्रियाप्रिये सुखे दुःखे लाभालाभे हिताहिते। धर्मकामार्थकृच्छ्रेषु यूयमर्हथ वेदितुम् ॥ ६ ॥ सर्वकृत्यानि युष्माभिः समारब्धानि सर्वदा। मन्त्रकर्मनियुक्तानि न जातु विफलानि मे ॥ ७ ॥+अदेया च यथा सीता वध्यौ दशरथात्मजौ। भवद्भिर्मन्त्र्यतां मन्त्रः सुनीतं चाभिधीयताम् ॥ ८ ॥ तस्य कामपरीतस्य निशम्य परिदेवितम्। कुम्भकर्णः प्रचुक्रोध वचनं चेदमब्रवीत् ॥९॥ सर्वमेतन्महाराज कृतमप्रतिमं तव। विधीयेत सहास्माभिरादावेवास्य कर्मणः ॥ १० ॥+न्यायेन राजकार्याणि यः करोति दशानन। न स संतप्यते पश्चान्निश्चितार्थमतिर्नृपः ॥ ११ ॥+अनुपायेन कर्माणि विपरीतानि यानि च। क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ १२ ॥ यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कर्माण्यभिचिकीर्षति। पूर्वं चापरकार्याणि स न वेद नयानयौ ॥ १३ ॥ त्वयेदं महदारब्धं कार्यमप्रतिचिन्तितम्। अहं समीकरिष्यामि हत्वा शत्रूंस्तवानघ ॥ १४ ॥ रावणं क्रुद्धमाज्ञाय महापार्श्वो महाबलः। मुहूर्तमनुसंचिन्त्य प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १५ ॥ कुम्भकर्णः सहास्माभिरिन्द्रजिच्च महाबलः। प्रतिषेधयितुं शक्तौ सवज्रमपि वज्रिणम् ॥ १६ ॥ इह प्राप्तान्वयं सर्वाञ्छत्रूंस्तव महाबल। वशं

शस्त्रप्रतापेन करिष्यामो न संशयः ॥ १७ ॥ एवमुक्तस्तदा राजा
महापार्श्वेन रावणः । तस्य संपूजयन्वाक्यमिदं वचनमब्रवीत॥१८॥
न मत्तो निर्गतान्बाणान्द्विजिह्वान्पन्नगानिव । रामः पश्यति सङ्ग्रामे
तेन मामभिगच्छति ॥ १९ ॥ तच्चास्य बलमादास्ये बलेन महता
वृतः । उदितः सविता काले नक्षत्राणां प्रभामिव ॥ २० ॥

टीका—वह रणों के जीतनेवाला, उस भरी सभा की ओर देखकर सेनापति प्रहस्त को आज्ञा देता भया ॥ १ ॥ हे सेनापते चारों प्रकार के (पैदल, घुड़सवार, हाथीसवार, और रथसवार) सुशिक्षित योधे नगर की रक्षा में तत्पर करो ॥ २ ॥ तब सारी सेना को नगर की रक्षा के लिये अलग २ लगाकर प्रहस्त राजा के सामने बैठगया और बोला ॥ ३ ॥ सेना के मालिक की सेना बाहर अन्दर लगादी है, आप निश्चिन्त होकर अपना अभिप्रेत कीजिये ॥ ४ ॥ राज्य के हितैषी प्रहस्त के वचन को सुनकर सुखाभिलाषी रावण सुहृदों के मध्य में, बोला ॥ ५ ॥ प्रिय, अप्रिय, सुख, दुःख हानि, लाभ, हित, अहित में, धर्म और अर्थ की कठिनाइयों में, आप जानने योग्य हैं ॥ ६ ॥ आपने सदा विचार पूर्वक मेरे सारे कार्य आरम्भ किये हैं, और कभी विफल नहीं हुए हैं ॥ ७ ॥ सीता देनी नहीं है, और दशरथ के दोनों पुत्रों को मारना है, यह सोच कर आप विचार कीजिये और सुनीति युक्त कहिये ॥८॥ कामके वस हुए (रावण) के रोने को सुनकर कुम्भकर्ण क्रुद्ध हुआ और यह वचन बोला ॥ ९ ॥ हे महाराज ! यह सब आपका अतुल काम है, इस काम की सलाह आरम्भ में ही हमारे साथ करनी थी ॥ १० ॥ हे रावण जो न्याय से राजकार्यों को करता है, वह निश्चित मति वाला राजा पीछे संतप्त नहीं होता है ॥ ११ ॥ बिना उपाय के जितने उलटे काम किये जाते हैं वह सब दूषित होजाते हैं, जैसे

अशुद्ध हृदयवालों की हवियें ॥ २ ॥ जो पहले करने योग्य कर्मों को पीछे करना चाहता है, और पीछे करनेवालों को पहले, वह नीति अनीति को नहीं जानता है ॥ १३ ॥ आपने यह विन सोचे बड़ा काम आरम्भ कर दिया है, हे निष्पाप ! अब मैं तेरे शत्रुओं को मारकर इसे ठीक करूंगा ॥१४॥ रावण को क्रुद्ध जानकर महाबली महापार्श्व थोड़ी देर सोचकर हाथ जोड़कर बोला ॥१५ महाबली कुम्भकर्ण और इन्द्रजित् हमें साथ लेकर वज्रवाले इन्द्र को भी रोकने में समर्थ हैं ॥ १६ ॥ सो हे महाबल यहां आए आपके सारे शत्रुओं को हम शस्त्र के प्रताप से बस में करेंगे ॥ १७ ॥ महापार्श्व से ऐसे कहा हुआ राजा रावण उसके वचन को पूजता हुआ यह वचन बोला ॥ १८ ॥ राम रण में मेरी ओर से निकले दो जिह्वा वाले सांपों के तुल्य बाणों को नहीं देखता है, इससे मेरी ओर आ रहा है ॥१९॥ सो मैं बड़ी सेना से युक्त हुआ इसकी सेना को नाशकर दूंगा, जैसे सूर्य समय पर उदय हुआ नक्षत्रों की प्रभा को ॥२०॥

सर्ग ७ (व० १४) विभीषण की सीता को वापिस देने की सम्मति ।

मूल—निशाचरेन्द्रस्य निशम्य वाक्यं स कुम्भकर्णस्य च गर्जितानि । विभीषणो राक्षसराजमुख्यमुवाच वाक्यं हितमर्थयुक्तम् ॥ १ ॥ वृतो हि बाह्वन्तरभोगराशिश्चिन्ताविषः सुस्मिततीक्ष्णदंष्ट्रः । पञ्चांगुली पञ्चशिरोऽतिकायः सीतामहाहिस्तव केन राजन् ॥ २ ॥ यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणा रामेरिता राक्षसपुंगवानाम् । वज्रोपमा वायुसमानवेगाः प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ ३ ॥ निशम्य वाक्यं तु विभीषणस्य ततः प्रहस्तो वचनं बभाषे । न नो भयं विद्म न दैवतेभ्यो न दानवेभ्योऽप्यथवा कदाचित् ॥ ४ ॥ कथं नु रामाद्भविता भयं नो नरेन्द्रपुत्रात्समरे कदाचित् ॥ ५ ॥ प्रहस्त वाक्यं त्वहितं निशम्य विभीषणो राजहितानुकाङ्क्षी । ततो महार्थं

वचनं बभाषे धर्मार्थकामेषु निविष्टबुद्धिः ॥ ६ ॥ वधस्तु रामस्य मया त्वया च प्रहस्त सर्वैरपि राक्षसैर्वा । कथं भवेदर्थविशारदस्य महार्णवं तर्तुमिवाप्लवस्य ॥ ७ ॥ धर्मप्रधानस्य महारथस्य इक्ष्वाकुवंशप्रभवस्य राज्ञः । पुरोऽस्य देवाश्च तथाविधस्य कृत्येषु शक्तस्य भवन्ति मूढाः ॥ ८ ॥ अयं च राजा व्यसनाभिभूतो मित्रैरमित्रप्रतिमैर्भवद्भिः । अन्वास्यते राक्षसनाशनार्थे तीक्ष्णः प्रकृत्या ह्यसमीक्ष्यकारी ॥ ९ ॥ इदं पुरस्यास्य सराक्षसस्य राज्ञश्च पथ्यं ससुहृज्जनस्य । सम्यग्घि वाक्यं स्वमतं ब्रवीमि नरेन्द्रपुत्राय ददातु मैथलीम् ॥ १० ॥ परस्य वीर्यं स्वबलं च बुद्ध्वा स्थानं क्षयं चैव तथैव वृद्धिम् । तथा स्वपक्षेऽप्यनुमृश्य बुध्या वदेत्क्षमं स्वामिहितं स मन्त्री ॥ ११ ॥

टीका—राक्षसेन्द्र के वचन को और कुम्भक की गर्जनाओं को सुनकर विभीषण राक्षसराज का हितकारी गम्भीर तात्पर्य वाला मुख्य बचन बोला ॥ १ ॥ हे राजन् ! यह सीता रूपी बड़ा सांप जिसकी छाती फण है, जिसकी ओर ख्यालही विष है, जिसकी मुसकराहट ही तीक्ष्ण दाढ़ें हैं, पांच अंगुलियें पांच सिर हैं, किस निमित्त आपने हाथ में पकड़ा है ॥ २ ॥ जब तक वायु के समान वेगवाले राम से प्रेरे हुए वज्र तुल्य बाण राक्षसवरों के सिरों को नहीं पकड़ते हैं तब तक ही सीता राम को दे दीजिये ॥ ३ ॥ विभिषण के वाक्य को सुनकर प्रहस्त बोला, हम न देवताओं से न दानावों से कभी भय समझते हैं ॥ ४ ॥ कैसे फिर हमें नरेन्द्रपुत्र राम से रण में कभी भय होसक्ता है ॥ ५ ॥ प्रहस्त के अहित वाक्य को सुनकर राजा का हित चाहनेवाला धर्म अर्थ काम में स्थित बुद्धिवाला विभीषण बड़े अर्थवाला वचन बोला ॥ ६ ॥ हे प्रहस्त राम जोकि अपना काम करने में बड़ा निपुण है, उसका

वध बिना नौका से समुद्र तरने की तरह मुझ से वा तुझसे वा सारे राक्षसों से कैसे हो सक्ता है ॥ ७ ॥ धर्म प्रधान, महारथी, इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए, अपने कार्यों में शक्तिमान् राजा राम के सामने देवता भी मूढ़ होजाते हैं ॥ ८ ॥ यह राजा व्यसनों के वश में हुआ स्वभाव से ही तीक्ष्ण और बिन सोचे करने वाला है, तिस पर शत्रु तुल्य आप जैसे मित्र राक्षसों के नाशार्थ उसे सलाह दे रहे हैं ॥९॥ यह इस पुर के तथा सुहृद जनों और दूसरे राक्षसों समेत राजा के लिये पथ्य ठीक वचन जो अपना मत है, कहता हूं, वह यह, कि सीता नरेन्द्रपुत्र को दे दीजिये ॥१०॥ शत्रु का बल, और अपना बल, देशकाल, क्षय और वृद्धि यह सब बातें बुद्धि से सोचकर जो स्वामी का हित योग्य वाक्य कहे, वही मन्त्री है ॥ ११ ॥

सर्ग ८ (श्लो० १५, १६) विभीषण और इन्द्रजित का विवाद

मूल–बृहस्पतेस्तुल्यमतेर्वचस्तन्निशम्य यत्नेन विभीषणस्य । ततो महात्मा वचनं बभाषे तत्रेन्द्रजिन्नैर्ऋतयूथमुख्यः ॥ १ ॥ किं नाम ते तात कनिष्ठ वाक्यमनर्थकं वै बहुभीतवच्च । अस्मिन्कुले योऽपि भवेन्न जातः सोऽपीदृशं नैव वदेन्न कुर्यात् ॥ २ ॥ सत्त्वेन वीर्येण पराक्रमेण धैर्येण शौर्येण च तेजसा च। एकः कुलेऽस्मिन्पुरुषो विमुक्तो विभीषणस्तातकनिष्ठः एषः ॥ ३ ॥ अथेन्द्रकल्पस्य दुरासदस्य महौजसस्तद्वचनं निशम्य । ततो महार्थं वचनं बभाषे विभीषणः शस्त्रभृतां वरिष्ठः ॥ ४ ॥ न तात मन्त्रे तव निश्चयोऽस्ति बालस्त्वमद्याप्यविपक्वबुद्धिः । तस्मात्त्वयाप्यात्मविनाशनाय वचोऽर्थहीनं बहु विप्रलप्तम् ॥ ५ ॥ धनानि रत्नानि सुभूषणानि वासांसि दिव्यानि मणींश्च चित्रान् । सीतां च रामाय निवेद्य देवीं वसेम राजन्निह वीतशोकाः ॥ ६ ॥ सुनिविष्टं हितं वाक्यमुक्तवन्तं विभी-

षणम् । अब्रवीत्परुषं वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥७॥ वसेत्सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च । न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना ॥ ८ ॥ नित्यमन्योन्यसंहृष्टा व्यसनेष्वाततायिनः । प्रच्छन्नहृदया घोरा ज्ञातयस्तु भयावहाः ॥ ९ ॥ श्रूयन्ते हस्तिभिर्गीताः श्लोकाः पद्मवने पुरा । पाशहस्तान्नरान्दृष्ट्वा शृणु त्वं गदतो मम ॥१०॥

टीका–बृहस्पति के तुल्य मतिवाले विभीषण के वचन को सुनकर राक्षसयूथ का मुखिया महात्मा इन्द्रजित् वचन बोला ॥ १० ॥ हे छोटे तात आप अति भीरु की तरह अनर्थक वाक्य कहते हैं(पौलस्त्य वंशियों की तो बात ही दूर है,पर) जो इस वंश में भी उत्पन्न न हुआ हो, वह भी न ऐसा कहेगा, न करेगा ॥ २ ॥ इस कुल में एक ही पुरुष सत्व, वीर्य, पराक्रम, धैर्य, शौर्य, और तेज से हीन हुआ है, और वह यह छोटा तात विभीषण है ॥ ३ ॥ तब इन्द्रसदृश दुर्जेय बड़े पराक्रमी के वचन को सुनकर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ विभीषण बड़े अर्थवाला वचन बोला ॥ ४ ॥ हे तात विचार में तेरी बुद्धि नहीं पहुंचती, तू बाल अपक बुद्धि है, इसी से तूने भी अपने नाश के लिये अर्थ से हीन बहुत बात कह डाली है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! हम धन, रत्न, भूषण, दिव्य वस्त्र, विचित्र मणियें और देवी सीता राम को अर्पण करके यहां वीतशोक हुए बसें ॥ ६ ॥ सुन्दर हित वाक्य कहते हुए विभीषण को काल से प्रेरा हुआ रावण कठोर वाक्य बोला ७ ॥ शत्रु के साथ, वा क्रुद्ध हुए नाग के साथ बसे, पर अपने शत्रु के सेवी मित्र के साथ न बसे ॥ ८ ॥ एक दूसरे की विपत्तियों में सदा प्रसन्न होने वाले वैरी ढके हुए हृदयवाले ज्ञाति के लोग बड़े भयानक होते हैं ॥ ९ ॥ कहावत है, कि पूर्वकाल पद्मवन में हाथियों ने हाथ में फांस लिये मनुष्यों को देखकर श्लोक गाए थे, उनको सुन ॥ १० ॥

+नाग्निर्नान्यानि शस्त्राणि न नः पाशा भयावहाः। घोराःस्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः ॥ ११ ॥ उपायमेते वक्ष्यन्ति ग्रहणे नात्र संशयः। कृत्स्नाद्भयाज्ज्ञातिभयं सुकष्टं विदितं च नः ॥ १२ ॥ विद्यते गोषु संपन्नं विद्यते ज्ञातितो भयम्। विद्यते स्त्रीषु चापल्यं विद्यते ब्राह्मणे तपः ॥ १३ ॥ ततो नेष्टमिदं सौम्य यदहं लोकसत्कृतः। ऐश्वर्यमभिजातश्च रिपूणां मूर्ध्नि च स्थितः ॥ १४ ॥ यथा पुष्करपत्रेषु पतितास्तोयबिन्दवः। न श्लेषमभिगच्छन्ति तथानार्येषु सौहृदम् ॥ १५ ॥ योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद्वाक्यमेतन्निशाचर। अस्मिन्मुहूर्ते नभवेत्त्वां तु धिक्कुलपांसन ॥ १६ ॥ इत्युक्तः परुषं वाक्यं न्यायवादी विभीषणः। उत्पपात गदापाणिश्चतुर्भिः सह राक्षसैः ॥ १७ ॥ अब्रवीच्च तदा वाक्यं जातक्रोधो विभीषणः सत्वं भ्रान्तोऽसि मे राजन्ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि ॥ १८ ॥ ज्येष्ठो मान्यः पितृसमो नच धर्मपथे स्थितः। इदं हि परुषं वाक्यं न क्षमाम्यग्रजस्य ते ॥ १९ ॥ सुनीतं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन। न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागताः ॥ २० ॥ +सुलभाःपुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः। अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ २१ ॥ तन्मर्षयतु यच्चोक्तं गुरुत्वाद्धितमिच्छता ॥ २२ ॥ आत्मानं सर्वथा रक्ष पुरीं चेमां सराक्षसाम्। स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव मया विना ॥ २३ ॥ निवार्यमाणस्य मया हितैषिणा न रोचते ते वचनं निशाचर। परान्तकाले हि गतायुषो नरा हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ॥ २४ ॥

टीका—कि हमारे लिये न आग्नि,न दूसरे शस्त्र,न फांसें,भयानक हैं,किन्तु यह घोर,स्वार्थ से प्रेरे हुए ज्ञाति के लोग हमारे लिये भय लाने वाले हैं ॥ ११ ॥ यह हमारे पकड़ने में उपाय बतलाएंगे, इसमें संशय

नहीं, सब भयों से ज्ञाति का भय हमें बड़ा डरावना प्रतीत होता है ॥ १२ ॥ गौओं में बहुत दूध, स्त्रियों में चञ्चलता, ब्राह्मणों में तप सम्भावित है, और ज्ञातियों से भय सम्भावित है ॥ १३ ॥ सो हे सौम्य यह तुझे प्रिय नहीं हुआ है, जो कि मैं लोक में आदृत हूं, ऐश्वर्य से पूर्ण हूं, और शत्रुओं के सिर पर (पाओं रखकर) ठहरा हुआ हूं ॥ १४ ॥ जैसे कमल के पत्तों पर पड़ी जल की बून्दें लगाव को प्राप्त नहीं होती हैं, वैसे अनार्यों में सौहार्द ॥ १५ ॥ हे निशाचर यदि और कोई इस समय ऐसा वाक्य कहता, तो वह जीता न रहता, तुझे तो धिक्कार है हे कुल कलङ्क ॥ १६ ॥ ऐसे कठोर वचन कहा हुआ न्यायवादी विभीषण गदा हाथ में लिये चार राक्षसों सहित उठ खड़ा हुआ ॥ १७ ॥ और क्रुद्ध हुआ विभीषण यह वाक्य बोला, तू भूला हुआ है हे राजन् ! कहो मुझे जो २ कुछ चाहता है ॥ १८ ॥ बड़ा भाई माननीय है, पितृ-तुल्य है, पर धर्म मार्ग पर स्थित नहीं है । मैं तुझ बड़े भाई के भी इतने कठोर वाक्य को नहीं सहसक्ता हूं ॥ १९ ॥ हे रावण हितैषी से उत्तम नीति युक्त कहे वाक्य को काल के बस में हुए अजितेन्द्रिय पुरुष स्वीकार नहीं करते हैं ॥ २० ॥ हे राजन् ! सदा प्रिय बोलने वाले पुरुष सुलभ हैं, अप्रिय पथ्य का कहने वाला और सुनने वाला दोनों दुर्लभ हैं ॥ २१ ॥ आप बड़े हैं, क्षमा कीजिये, जो आपका हित चाहते हुए, मैंने कहा है ॥ २२ ॥ सर्वथा अपनी और राक्षसों समेत इस पुरी की रक्षाकर, आपको स्वस्ति हो, मैं जाउंगा, आप मेरे बिना सुख से रहें ॥ २३ ॥ मैं हितैषी होकर रोकता हूं, हे राक्षस आपको मेरा वचन पसन्द नहीं आता है, दूर हुई आयु वाले पुरुष अन्तकाल के आने पर सुहृदों से कहे हित वाक्य को ग्रहण नहीं करते हैं ॥ २४ ॥

सर्ग ९ (व० १७, १८) विभीषण का रामकी शरण आना।

मूल—इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः। आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ १ ॥ स उवाच महाप्राज्ञः स्वरेण महता महान्। रावणो नाम दुर्वृत्तो राक्षसो राक्षसेश्वरः ॥ २ ॥ तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ॥ ३ ॥ तेन सीता जनस्थानाद्धृता हत्वा जटायुषम्। रुद्धा च विवशा दीना राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥ ४ ॥ तमहं हेतुभिर्वाक्यैर्विविधैश्च न्यदर्शयम्। साधु निर्यात्यतां सीता रामायेति पुनः पुनः ॥ ५ ॥ स च न प्रतिजग्राह रावणः कालचोदितः। उच्यमानं हितं वाक्यं विपरीत इवौषधम् ॥ ६ ॥ सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः। त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥ ७ ॥ निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने। सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥ ८ ॥ एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो लघुविक्रमः। लक्ष्मणस्याग्रतो रामं संरब्धमिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥ रावणस्यानुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः। चतुर्भिः सह रक्षोभिर्भवन्तं शरणं गतः ॥ १० ॥ राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या संदिष्टोऽयमिहागतः। महर्तुं मायया छन्नो विश्वस्ते त्वयि चानघ ॥ ११ ॥ सुग्रीवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा रामो महाबलः। समीपस्थानुवाचेदं हनूमत्प्रमुखान्कपीन् ॥ १२ ॥ +मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथंचन। दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥ १३ ॥ सुग्रीवस्त्वथ तद्वाक्यमाभाष्य च विमृश्य च। ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवः ॥ १४ ॥ स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः। ईदृशं व्यसनं प्राप्तं भ्रातरं यः परित्यजेत् ॥ १५ को नाम स भवेत्तस्य यमेष न परित्यजेत् ॥ १६ ॥

टीका—रावण का छोटा भाई रावण को यह कठोर बचन कहकर बहुत जल्दी वहां आया, जहां लक्ष्मण सहित राम थे ॥ १ ॥ वह

महान् महाप्राज्ञ ऊंचे स्वर से बोला, रावण नाम दुर्वृत्त राक्षस जो राक्षसों का राजा है ॥ २ ॥ मैं उसका छोटा भाई विभीषण हूं ॥ ३ ॥ वह (बड़ा भाई) जनस्थान से जटायु को मारकर सीता को हरलाया है, वह दीन बेबस हुई वहां रुकी है, और राक्षसियों से सुरक्षित है ॥ ४॥ मैंने उसे युक्तियुक्त अनेक वाक्यों से बार २ दर्शाया, कि सीता राम को दे दीजिये यही भला है ॥ ५ ॥ पर काल से प्रेरे रावण ने कहे हुए हित वाक्य को नहीं ग्रहण किया, जैसे निकट मृत्युवाला पुरुष औषध को ॥६॥ उलटा उसने मुझे कठोर कहा, और दास की तरह अपमानित किया, सो मैं स्त्री पुत्रों को छोड़कर राघव की शरण आया हूं ॥ ७ ॥ अब सारे लोगों को शरण देनेवाले महात्मा राघव को जल्दी बतलाओ, कि विभीषण आया है ॥ ८ ॥ यह सुनकर सुग्रीव जल्दी चलता हुआ लक्ष्मण के सामने जोश से भरा वचन राम से बोला ॥९॥ रावण का छोटा भाई विभीषण चार दूसरे राक्षसों सहित आपकी शरण आया है ॥ १० ॥ (मैं जानता हूं) रावण से भेजा हुआ, माया से ढका हुआ, कुटिल बुद्धि से यहां आया है, कि आपके विश्वस्त होने पर आप पर प्रहार करे ॥ ११ ॥ सुग्रीव के उस वाक्य को सुनकर महाबली राम अपने पास स्थित हनुमान् आदि वानरों से बोले ॥ १२ ॥ मित्रभाव से प्राप्त हुए को मैं कभी त्याग नहीं सक्ता यद्यपि उसका दोष हो, पर भलों से यह (शरणागत का त्याग) निन्दित है ॥ १३ ॥ सुग्रीव इस वाक्य को सुन और सोचकर तब शुभतर वाक्य बोला ॥ १४ ॥ चाहे यह निशाचर दुष्ट हो, वा अदुष्ट हो, पर ऐसे दुःख में जो भाई को त्याग सक्ता है ॥ १५ ॥ उसके लिये कौन हो सक्ता है, जिसको यह न त्यागेगा ॥ १६ ॥

सर्ग १० ( ) राम का विभीषण को स्वीकार करना।

मूल०वानराधिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा सर्वानुदीक्ष्य तु। इति होवाच काकुत्स्थो वाक्यं सत्यपराक्रमः ॥ १७ ॥ अनधीत्य च शास्त्राणि वृद्धाननुपसेव्य च। न शक्यमीदृशं वक्तुं यदुवाच हरीश्वरः ॥ १८ ॥ अस्ति सूक्ष्मतरं किंचिद्यथात्र प्रतिभाति मा। प्रत्यक्षं लौकिकं चापि वर्तते सर्वराजसु ॥ १९ ॥ अमित्रास्तत्कुलीनाश्च प्रातिदेश्याश्च कीर्तिताः। व्यसनेषु प्रहर्तारस्तस्माद्यमिहागतः ॥ २० ॥ यस्तु दोषस्त्वया प्रोक्तो ह्यादानेऽरिबलस्य च। तत्र ते कीर्तयिष्यामि यथाशास्त्रमिदं शृणु ॥ २१ ॥ न वयं तत्कुलीनाश्च राज्यकाङ्क्षी च राक्षसः। पण्डिता हि भविष्यन्ति तस्माद् ग्राह्यो विभीषणः ॥ २२ ॥ ऋषेः कण्वस्य पुत्रेण कण्डुना परमर्षिणा। शृणु गाथा पुरा गीता धर्मिष्ठा सत्यवादिना ॥२३॥+बद्ध्वाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्। न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप ॥ २४ ॥ +आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः। अरिः प्राणान्परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥२५॥ +एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे। अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम् ॥२६॥ +सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ २७ ॥ +आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया। विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ॥२८॥ रामस्य तु वचः श्रुत्वा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः। प्रत्यभाषत काकुत्स्थं सौहार्देनाभिपूरितः ॥२९॥ किमत्र चित्रं धर्मज्ञ लोकनाथशिखामणे। यत्त्वमार्यं प्रभाषेथाः सत्त्ववान्सत्पथे स्थितः ॥ ३० ॥ मम चाप्यन्तरात्मायं शुद्धं वेत्ति विभीषणम्। अनुमानाच्च भावाच्च सर्वतः सुपरीक्षितः ॥ ३१ ॥ तस्मात्क्षिप्रं सहास्माभिस्तुल्यो भवतु राघव। विभीषणो महाप्राज्ञः सखित्वं चाभ्युपैतु नः ॥ ३२ ॥

टीका--वानराधिपति के वचन को सुनकर, और सब की ओर देखकर सच्चे पराक्रमवाला राम यह वाक्य बोला ॥१७॥ शास्त्रों को पढ़े विना, और वृद्धों का सेवन किये विना, ऐसा नहीं कहा जासक्ता, जो वानरराज ने कहा है ॥१८॥ इसमें एक सूक्ष्म बात है, जैसा कि मुझे प्रतीत होता है, जो लौकिक है, सब राजाओं में प्रत्यक्ष है ॥१९॥ शत्रु उस कुल के और साथ वाले देश के होते हैं, जोकि व्यसनों में प्रहार किया करते हैं, इसलिये यह यहां आया है ॥२०॥ जो दोष आपने शत्रु सेना के ग्रहण करने में कहा है उसमें शास्त्रनुसार कहता हूं, सुनिये ॥२१॥ हम उसकी कुल के नहीं हैं, और विभीषण राज्याभिलाषी है, यह लोग समझदार होते है (भाई के विनाश में इसे राज्य मिलसक्ता है हमारे विनाश में नहीं) इसलिए विभीषण ग्राह्य है, ॥ २२ ॥ कण्व ऋषि के पुत्र सत्यवादी परमर्षि कण्डु ने पूर्वकाल में एक गाथा गाई है, सो सुन ॥ २३ ॥ दोनों हाथ जोड़े हुए दीन याचना करते हुए शरणागत शत्रु को भी हे परंतप दयाभाव के लिये कभी न मारे ॥ २४ ॥ चाहे पीड़ित हो, वा दृप्त हो शरणागत हुए शत्रुकी अपने प्राण त्यागकर भी बुद्धिमान्‌को रक्षा करनी चाहिये ॥२५॥ इसप्रकार शरणागत की रक्षा न करना बड़ा दोष है, स्वर्ग और यश का विरोधी और बल वीर्य का नाशक है ॥२६॥ एकबार ही जो "मैं तेरा हूं" ऐसी याचना करता हुआ शरणागत हुआ है, ऐसे सब लोगों को मैं अभय देता हूं, यह मेरा व्रत है ॥२७॥ इसे लेआ हे वानरश्रेष्ठ मैंने इसे अभय दिया है, विभीषण हो, यदि वा हे सुग्रीव स्वयम् रावण भी हो ॥ २८ ॥ राम के वचन को सुनकर वानरेश्वर सुग्रीव सौहार्द से भरा हुआ राम को उत्तर देता भया ॥ २९ ॥ हे धर्मज्ञ राजाओं के चूड़ामणि इस में क्या आश्चर्य है, जो सन्मार्ग में स्थित

शुद्ध हृदय आप आर्य बात कहते हैं ॥३०॥ मेरा भी अन्तरात्मा विभीषण को शुद्ध जानता है अनुमान से और हृदय के भाव से सब तरह सुपरीक्षित है ॥३१॥ इसलिये जल्दी वह महाप्राज्ञ विभीषण हमारे बराबर हो, हमारी मैत्री को प्राप्त हो ॥३२॥

सर्ग ११ (व० २९) विभीषण का शरणागत होना

मूल—राघवेणाभये दत्ते सन्नतो रावणानुजः। पादयोर्निपपाताथ चतुर्भिः सह राक्षसैः ॥ १ ॥ अब्रवीच्च तदा वाक्यं रामं प्रति विभीषणः। अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः ॥ २ ॥ भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः । परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च ॥३॥ भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥४॥ वचसा सान्त्वयित्वैनं लोचनाभ्यां पिबन्निव। आख्याहि मम तत्त्वेन राक्षसानां बलाबलम् ॥५॥ एवमुक्तं तदा रक्षो रामेणाक्लिष्टकर्मणा। रावणस्य बलं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥६॥ अवध्यः सर्वभूतानां गन्धर्वोरगपक्षिणाम्। राजपुत्र दशग्रीवो वरदानात्स्वयंभुवः ॥७॥ रावणानन्तरो भ्राता मम ज्येष्ठश्च वीर्यवान्। कुम्भकर्णो महातेजाः शक्रप्रतिबलो युधि ॥ ८ ॥ राम सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो यदि ते श्रुतः। कैलासे येन समरे मणिभद्रः पराजितः ॥९॥ संग्रामे सुमहद्व्यूहे तर्पयित्वा हुताशनम्। अन्तर्धानगतः श्रीमानिन्द्रजिद्धन्ति राघव ॥१०॥ महोदरमहापार्श्वौ राक्षसश्चाप्यकम्पनः। अनीकपास्तु तस्यैते लोकपालसमा युधि ॥११॥ विभीषणस्य तु वचस्तच्छ्रुत्वा रघुसत्तमः। अन्वीक्ष्य मनसा सर्वमिदं वचनमब्रवीत् ॥१२॥ यानि कर्मापदानानि रावणस्य विभीषण। आख्यातानि च तत्त्वेन ह्यवगच्छामि तान्यहम् ॥१३॥+अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सहात्मजम्। राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतच्छृणोतु मे

॥१४॥ रसातलं वा प्रविशेत्पातालं वापि रावणः । पितामहसकाशं वा न मे जीवन्विमोक्ष्यते ॥ १५॥ श्रुत्वा तु वचनं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः । शिरसा वन्द्य धर्मात्मा वक्तुमेवं प्रचक्रमे ॥१६॥ राक्षसानां वधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रधर्षणे । करिष्यामि यथाप्राणं प्रवेक्ष्यामि च वाहिनीम् ॥ १७ ॥ इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम् । अब्रवील्लक्ष्मणं प्रातः समुद्राज्जलमानय ॥१८॥ तेन चेमं महाप्राज्ञमभिषिञ्च विभीषणम् । राजानं रक्षसां क्षिप्रं प्रसन्ने मयि मानद ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तु सौमित्रिरभ्यषिञ्चद्विभीषणम् । मध्ये वानरमुख्यानां राजानं राजशासनात् ॥२०॥

टीका—राम से अभय दिये जाने पर झुका हुआ रावण का छोटा भाई चारों राक्षसों समेत पाओं पर आ गिरा ॥१॥ तब विभीषण ने राम के प्रति यह वाक्य कहा, मैं रावण का छोटा भाई हूं उससे अपमानित हुआ हूं ॥२॥ आप जोकि सब लोगों के शरण लेने योग्य हैं, उनकी शरण पड़ा हूं, मैंने लङ्का मित्र और धन सब छोड़ दिये हैं ॥३॥ आपके अधीन मेरा राज्य जीवित और सुख है । उसके इस वचन को सुनकर वाणी से उसको तसल्ली देकर और नेत्रों से मानों पीते हुए राम यह वचन बोले, मुझे राक्षसों का बलाबल ठीक २ कहो ॥४,५॥ सुखदायी कर्मोंवाले राम से ऐसे कहा हुआ वह राक्षस रावण का सारा बल कहने लगा ॥६॥ हे राजपुत्र रावण ब्रह्मा के वरदान से गन्धर्व नाग और पक्षी इन सब लोगों से अवध्य है ॥७॥ रावण से छोटा मेरा बड़ा भाई वीर्यवान् महातेजस्वी कुम्भकर्ण है, जो युद्ध में इन्द्र के प्रतिबल है ॥८॥ हे राम उसका सेनापति प्रहस्त आपने सुना होगा, जिसने कैलाश पर युद्ध में मणिभद्र को पराजित किया था ॥९॥ और हे राघव श्रीमान् इन्द्रजित् बड़े दलोंवाले संग्राम में

अग्नि को (होम से) तृप्त करके अदृश्य होकर (शत्रुओं को) मारा करता है ॥ १० ॥ महोदर, महापार्श्व और अकम्पन राक्षस यह युद्ध में लोकपालों के तुल्य उसके सेनानी हैं ॥ ११ ॥ विभीषण के बचन को सुनकर राम मन से सब सोचकर यह बचन बोले ॥ १२ ॥ हे विभीषण रावण की जो कर्म्म शक्तियां आपने बतलाई हैं, उनको मैं ठीक २ जानता हूं ॥ १३ ॥ मैं पुत्र समेत रावण को और प्रहस्त को मारकर तुझे राजा बनाऊंगा, यह मेरा सत्य सुनिये ॥ १४ ॥ रावण रसातल वा पाताल में प्रवेश कर जाए, अथवा ब्रह्मा के पास चला जाए,पर अब मुझ से वह जीता नहीं छूटेगा ॥ १५ ॥ सुखदायी कर्मोंवाले राम के बचन को सुन कर वह धर्मात्मा सिर से बन्दना करके फिर कहने लगा ॥ १६ ॥ राक्षसों के बध में और लङ्का के धर्षण में मैं अपने प्राणोंके अनुसार सहायता करूंगा, और सेना में प्रविष्ट हूंगा ॥ १७ ॥ ऐसे कहते हुए विभीषण को गले लगाकर प्रसन्न हुए राम लक्ष्मण से बोले, समुद्र से जल लाओ ॥१८॥ उस से हे मान के देनेवाले मेरी प्रसन्नता में इस महाप्राज्ञ विभीषण को राक्षसों के राजा होने के लिये जल्दी अभिषेक दो ॥१९॥ ऐसे कहे हुए लक्ष्मण ने वानर श्रेष्ठों के मध्य में राजाज्ञा से विभीषण को अभिषेक दिया

सर्ग १२ [ध०२२] समुद्र पर पुल बांधना

मूल—ततो विसृष्टा रामेण सर्वतो हरिपुङ्गवाः । उत्पेतुर्महारण्यं हृष्टाः शतसहस्रशः ॥१॥ ते नगान्नगसंकाशाःशाखामृगगणर्षभाः । बभञ्जुः पादपांस्तत्र प्रचकर्षुश्च सागरम् ॥ २ ॥ हस्तिमात्रान्महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः । पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च ॥ ३ ॥ प्रक्षिप्यमाणैरचलैः सहसा जलमुद्धृतम् । समुत्ससर्प चाकाशमवासर्पत्ततः पुनः ॥ ४ ॥ शिलानां क्षिप्यमाणानां

शैलानां तत्र पात्यताम् । बभूव तुमलः शब्दस्तदा तस्मिन्महोदधौ
॥ ५ ॥ स नलेन कृतः सेतुः सागरे मकरालये । शुशुभे शुभगः श्री-
मान्स्वातीपथ इवाम्बरे ॥६॥ दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ।
ददृशुर्देवगन्धर्वा नलसेतुं सुदुष्करम् ॥ ७ ॥ तमचिन्त्यमसह्यं च
ह्यद्भुतं लोमहर्षणम् । ददृशुः सर्वभूतानि सागरे सेतुबन्धनम् ॥ ८ ॥
विशालः सुकृतः श्रीमान्सुभूमिः सुसमाहितः । अशोभत माहान्सेतुः
सीमन्त इव सागरे ॥ ९ ॥ अग्रतस्तस्य सैन्यस्य श्रीमान्रामः सल-
क्ष्मणः । जगाम धन्वी धर्मात्मा सुग्रीवेण समन्वितः ॥ १० ॥ घोषेण
महता घोषं सागरस्य समुच्छ्रितम् । भीममन्तर्दधे भीमा तरन्ती
हरिवाहिनी ॥११॥ वानराणां हि सा तीर्णा वाहिनी नलसेतुना ।
तीरे निविविशे राज्ञा बहुमूलफलोदके ॥ १२ ॥ तदद्भुतम् राघवकर्म
दुष्करं समीक्ष्य देवाः सह सिद्धचारणैः । उपेत्य रामं सहसा महर्षि-
भिस्तमभ्यषिञ्चन्सुशुभैर्जलैः पृथक् ॥ १३ ॥ जयस्व शत्रून्नरदेव
मेदिनीं ससागरां पालय शाश्वतीः समाः । इतीव रामं नरदेवसत्कृतं
शुभैर्वचोभिर्विविधैरपूजयन् ॥ १४ ॥

टीका—तब राम से आज्ञा दिये हुए, सहस्रों वानरश्रेष्ठ प्रसन्न हुए सब ओर बड़े जङ्गल में गये ॥१॥ वह पर्वततुल्य वानरश्रेष्ठ पर्वतों से वृक्षों को तोड़कर समुद्र की ओर खींच लाये ॥ २ ॥ और वह महाबली महाकाय वानर हाथी जितने बड़े २ पत्थरों को और पर्वतों को यन्त्रों से उखाड़कर ढोते भए ॥ ३ ॥ फैंके जाते हुए पर्वतों से जल वेग से उठकर आकाश की ओर ऊंचा चढ़जाता और फिर नीचे आता ॥ ४ ॥ फैंकी जाती हुई शिलाओं और गिरते हुए पर्वतों का उस महासागर में तुमल शब्द होता था ॥५॥ इसप्रकार नल से बनाया, मगरों के घर समुद्र पर वह पुल आकाश में स्वातीपथ की तरह सुन्दर सुहावना शोभा पाता भया ॥ ६ ॥

दस योजन चौड़ा सौ योजन लम्बा बड़ा दुष्कर नल सेतु देव गन्धर्वों ने देखा ॥ ७ ॥ उस अचिन्त्य, असह्य, रोंगटे खड़े करनेवाले अद्भुत सेतु बन्ध को सब भूतों ने देखा ॥ ८ ॥ विशाल, सुन्दर बना हुआ शोभावाला, सुन्दर भूमिवाला, एक जैसा वह महान् सेतु सागर के सीमन्त (सेंधे) की तरह शोभायमान होता था ॥ ९ ॥ अब धर्मात्मा श्रीमान् राम धनुष धारे हुए लक्ष्मण और सुग्रीव के साथ उस सेना के आगे २ चले ॥ १० ॥ समुद्र से पार उतरती हुई बानर सेना महा ध्वनि से समुद्र की गम्भीर भयङ्कर ध्वनि को ढांप लेती भयी ॥ ११ ॥ वानरों की वह सेना नलसेतु से पार हुई, बहुत मूल फल और जलवाले तीर पर राजा ने छावनी डाली ॥ १२ ॥ राम के उस अद्भुत दुष्कर कर्म को देख सिद्ध और चारणों सहित देवता और महर्षि राम के पास आ शुभजलों से उसे अलग २ अभिषेक करते भये ॥ १३ ॥ हे नरदेव सागर समेत सारी पृथिवी को जीत, और अनेक वर्ष उसे पालन कर, इसप्रकार वह विविध शुभवचनों से मनुष्य और देवताओं से सत्कृत राम को पूजते भये ॥ १४ ॥

सर्ग१३[व०२५] रावणका शुकसारण के द्वारा रामसेनाका पता लगाना

मूल-सबले सागरं तीर्णे रामे दशरथात्मजे । अमात्यौ रावणः श्रीमानब्रवीच्छुकसारणौ ॥ १ ॥ समग्रं सागरं तीर्णं दुस्तरं वानरं बलम् । अभूतपूर्वं रामेण सागरं सेतुबन्धनम् ॥ २ ॥ भवन्तौ वानरं सैन्यं प्रविश्यानुपलक्षितौ । परिमाणं च वीर्यं च ये च मुख्याः प्लवङ्गमाः ॥ ३ ॥ ये पूर्वमभिवर्तन्ते ये च शूराः प्लवङ्गमाः । निवेशं च यथा तेषां वानराणां महात्मनाम् ॥ ४ ॥ रामस्य व्यवसायं च वीर्यं प्रहरणानि च । लक्ष्मणस्य च वीरस्य तत्त्वतो ज्ञातुमर्हथः

॥ ५ ॥ इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ।हरिरूपधरौ वीरौ प्रविष्टौ वानरं बलम् ॥ ६ ॥ निविष्टं निविशच्चैव भीमनादं महाबलम् । तद्बलार्णवमक्षोभ्यं ददृशाते निशाचरौ ॥ ७ ॥ तौ ददर्श महातेजाः प्रतिच्छन्नौ विभीषणः आचचक्षे स रामाय गृहीत्वा शुकसारणौ ॥ ८ ॥ तस्यैतौ राक्षसेन्द्रस्य मन्त्रिणौ शुकसारणौ । लङ्कायां समनुप्राप्तौ चारौ परपुरञ्जय ॥ ९ ॥ तौ दृष्ट्वा व्यथितौ रामं निराशौ जीविते तथा । कृताञ्जलिपुटौ भीतौ वचनं चेदमूचतुः ॥ १० ॥ आवामिहागतौ सौम्य रावणप्रहितावुभौ । परिज्ञातुं बलं सर्वं तादिदं रघुनन्दन ॥ ११ ॥ तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः । अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं सर्वभूतहिते रतः ॥ १२ ॥ यदि दृष्टं बलं सर्वं वयं वा सुसमाहिताः । यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम् ॥१३॥अथ किञ्चिददृष्टं वा भूयस्तद्द्रष्टुमर्हथः । विभीषणो वा कार्त्स्न्येन पुनः संदर्शयिष्यति ॥ १४ ॥ न चेदं ग्रहणं प्राप्य भेतव्यं जीवितं प्रति ।न्यस्तशस्त्रौ गृहीतौ च न दूतौ वधमर्हतः ॥ १५ ॥ प्रविश्य महतीं लङ्कां भवद्भ्यां धनदानुजः । वक्तव्यो रक्षसां राजा यथोक्तं वचनं मम ॥१६॥यद्बलं त्वं समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि । तद्दर्शय यथाकामं ससैन्यश्च सबान्धवः ॥ १७ ॥ श्वः काल्ये नगरीं लङ्कां सप्रकारां सतोरणाम् । रक्षसां च बलंपश्य शरैर्विध्वंसितं मया॥१८॥इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ । जयेति प्रतिनन्द्यैनं राघवं धर्मवत्सलम् ॥ १९ ॥आगम्य नगरीं लङ्कामब्रूतां राक्षसाधिपम् । विभीषणगृहीतौ तु वधार्थं राक्षसेश्वर ॥२०॥दृष्ट्वा धर्मात्मना मुक्तौ रामेणामिततेजसा ॥ २१ ॥ प्रहृष्टयोधा ध्वजिनी महात्मनां वनौकसां संप्रति योद्धुमिच्छताम् । अलं विरोधेन शमो विधीयतां प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ २२ ॥

टीका-दशरथसुत राम जब सेना समेत समुद्र पार हुए, तो रावण ने

शुक सारण इन दोनों मन्त्रियों को कहा ॥ १ ॥ वानरसेना सारे दुस्तर सागर से पार होगई है, राम ने सागर पर अभूतपूर्व पुल बान्ध लिया है ॥ २ ॥ तुम दोनों बेमालूम वानरों की सेना में प्रवेश करके सेना का परिमाण और मुख्य २ वानर—॥ ३ ॥ जो युद्ध में आगे लगने वाले हैं, और जो दूसरे शूरवीर वानर हैं, और जैसे उन महात्मा वानरों का निवेश (तरतीब) है ॥ ४ ॥ और राम का और वीर लक्ष्मण का व्यवसाय शक्ति और शस्त्र ठीक २ जानने योग्य हो ॥ ५ ॥ ऐसे आज्ञा दिये हुए शुक और सारण राक्षस वीर वानरों का रूप धारणकर वानरों की सेना में प्रविष्ट हुए ॥६॥ भयङ्कर गर्जती हुई बड़ी सेना कुछ व्यूह (सफ) बांध चुकी और कुछ बांध रही थी, जब कि उन दोनों राक्षसों ने उस अक्षोभ्य सेना के सागर को देखा ॥ ७ ॥ ढके हुए उन दोनों शुक सारण को विभीषण ने देख लिया, और राम को बतलाया ॥ ८ ॥ हे शत्रुओं के क़िलों को जीतने वाले ! यह राक्षसेन्द्र के मन्त्री शुक और सारण गुप्तचर होकर लङ्का से आए हैं ॥९॥ वह दोनों राम को देखकर दुःखित हो, और जीवित में निराश हो, हाथ बांधे डरते हुए यह वचन बोले ॥ १० ॥ हे सौम्य रघुनन्दन हम दोनों रावण से भेजे हुए इस सारे बल को जानने के लिये आए हैं ॥ ११ ॥ उनके वचन को सुनकर सब लोगों के हित में रत दशरथसुत राम हंसकर यह वाक्य बोले ॥ १२ ॥ यदि सारा बल और हमारी स्थिति को देख लिया है, यथोक्त कर लिया है, तो यथेच्छ जाइए ॥ १३ ॥ और यदि कुछ देखना रहगया हो, तो वह सारा देखलो, अथवा विभीषण ही तुम्हें सब कुछ दिखला देगा ॥ १४ ॥ पकड़ा जाने पर तुम्हें अपने जीवन के विषय में डर नहीं होना चाहिये, क्योंकि शस्त्र छोड़े हुए दूत बध के योग्य नहीं होते हैं ॥ १५ ॥

लङ्का में प्रवेश करके आपने कुबेर के छोटे भाई राक्षसों के राजा को यह मेरा बचन यथोक्त कहना ॥ १६ ॥ जिस बल का सहारा लेकर तूने मेरी सीता को हरा है, वह बल अब सेना और बान्धवों के साथ मिलकर यथारुचि दिखला ॥ १७ ॥ कल सवेरे कोट और डेवढ़ियों समेत लङ्का और राक्षसों की सेना को मेरे बाणों से नष्ट होता हुआ तू देखेगा ॥ १८ ॥ इस प्रकार सन्देश दिये हुए शुक सारण राक्षस "जय हो" इस प्रकार धर्मप्रिय राघव को प्रतिनन्दन करके ॥१९॥ लङ्का नगरी में आकर राक्षसपति से बोले, हे राक्षसेश्वर विभीषण ने हम दोनों बध के लिये पकड़ लिये ॥ २० ॥ पर देखकर अपरिमित तेजवाले धर्मात्मा राम ने छोड़ दिए ॥२१॥ इस समय युद्ध करना चाहते हुए वानर महात्माओं की सेना के सब योधे बड़े प्रसन्न हैं, विरोध मिटाइये, शान्ति कीजिये, जानकी दशरथसुत राम को दे दीजिये ॥ २२ ॥

सर्ग १४ (श० २६, २९, ३१) और गुप्तचरों से सेना का पता लगाना

मूल—तद्वचः सत्यमक्लीबं सारणेनाभिभाषितम् । निशम्य रावणो राजा पर्यभाषत सारणम् ॥ १ ॥ यदि मामभियुञ्जीरन्देवगन्धर्वदानवाः । नैव सीतामहं दद्यां सर्वलोकभयादपि ॥ २ ॥ एवमुक्त्वा तु सव्रीडौ तौ दृष्ट्वा शुकसारणौ । रावणं जयशब्देन प्रतिनन्द्याभिनिःसृतौ ॥३॥ अब्रवीच्च दशग्रीवः समीपस्थं महोदरम् । उपस्थापय मे शीघ्रं चारानिति निशाचरः ॥ ४ ॥ ततश्चाराः सन्त्वरिताः प्राप्ताः पार्थिवशासनात् । तानब्रवीत्ततो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ॥ ५ ॥ चरान्प्रत्ययिकाञ्शूरान्धीरान्विगतसाध्वसान् । इतो गच्छत रामस्य व्यवसायं परीक्षितुम् ॥ ६ ॥ चारास्तु ते तथेत्युक्त्वा प्रहृष्टा राक्षसेश्वरम् । कृत्वा प्रदक्षिणं जग्मुर्यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥७॥ ते सुवेलस्य शैलस्य समीपे रामलक्ष्मणौ । प्रच्छन्ना ददृशु-

गत्वा ससुग्रीवविभीषणौ ॥ ८ ॥ ततस्तमक्षोभ्यबलं लङ्कायां नृपतेश्चराः । सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयन् ॥ ९ ॥ ततः स मन्त्रयामास राक्षसैः सचिवैः सह । मन्त्रयित्वा तु दुर्धर्षः क्षमं यत्तदनन्तरम् ॥ १० ॥ विसर्जयित्वा सचिवान्प्रविवेश स्वमालयम् । विद्युज्जिह्वं च मायाज्ञमब्रवीद्राक्षसाधिपः ॥ ११ ॥ मोहयिष्यावहे सीतां मायया जनकात्मजाम् । शिरो मायामयं गृह्य राघवस्य निशाचर ॥ १२ ॥ मां त्वं समुपतिष्ठस्व महच्च सशरं धनुः । एवमुक्तस्तथेत्याह विद्युज्जिह्वो निशाचरः ॥ १३ ॥ दर्शयामास तां मायां सुप्रयुक्तां स रावणे । तस्य तुष्टोऽभवद्राजा प्रददौ च विभूषणम् ॥ १४ ॥ अशोकवनिकायां च सीतादर्शनलालसः । नैर्ऋतानामधिपतिः संविवेश महाबलः ॥१६॥ उपसृत्य ततः सीतां प्रहर्षं नाम कीर्तयन् । इदं च वचनं धृष्टमुवाच जनकात्मजाम् ॥ १९ ॥ सान्त्व्यमाना मया भद्रे यमाश्रित्य विमन्यसे । खरहन्ता स ते भर्त्ता राघवः समरे हतः ॥ १७ ॥ शृणु भर्तृवधं सीते घोरं वृत्रवधं यथा । समायातः समुद्रान्तं हन्तुं मां किल राघवः ॥ १८ ॥ वानरेन्द्रप्रणीतेन बलेन महता वृतः । सन्निविष्टः समुद्रस्य पीड्य तीरमथोत्तरम् ॥ १९ ॥ अथाध्वनि परिश्रान्तमर्धरात्रे स्थितं बलम् । सुखसुप्तं समासाद्य चरितं प्रथमं चरैः ॥ २० ॥ तत्प्रहस्तप्रणीतेन बलेन महता मम । बलमस्य हतं रात्रौ यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ २१ ॥ अथ सुप्तस्य रामस्य प्रहस्तेन प्रमाथिना । असक्तं कृतहस्तेन शिरश्छिन्नं महासिना ॥२२॥ एवं तव हतो भर्त्ता ससैन्यो मम सेनया । क्षतजार्द्रं रजोध्वस्तमिदं चास्याहृतंशिरः ॥ २३ ॥ ततः परमदुर्धर्षो रावणो राक्षसेश्वरः । सीतायामुपशृण्वन्त्यां राक्षसीमिदमब्रवीत् ॥ २४ ॥ राक्षसं क्रूरकर्माणं विद्युज्जिह्वं समानय । येन तद्राघवाशिरः संग्रामात्स्वयमाहृतम् ॥ २६ ॥ विद्युज्जिह्वस्तदा गृह्य शिरस्तत्स-

शरासनम् । प्रणामं शिरसा कृत्वा रावणस्याग्रतः स्थितः ॥ २६ ॥

टीका—सारण से कहे उस निडर सच्चे वचन को सुनकर राजा रावण सारण से बोला ॥ १ ॥ यदि देवता, गन्धर्व, दानव मिलकर भी मुझपर चढ़ाई करें, तौभी मैं सारे लोकों के भय से भी सीता नहीं दूंगा ॥ २ ॥ यह कहकर शुक और सारण को लज्जित हुए और जय शब्द कहकर बाहर चले गये देखकर ॥ ३ रावण राक्षस ने समीप स्थित महोदर को कहा, कि शीघ्र मेरे गुप्तचरों को उपस्थित करो ॥ ४ ॥ तब राजा की आज्ञा से गुप्तचर जल्दी आगए, विश्वासी, शूर, धीर, निडर गुप्तचरों को राक्षसाधिपति रावण ने "कहा" यहां से राम का व्यवसाय परखने के लिये जाओ ॥ ५,६ ॥ वह गुप्तचर तथास्तु कहकर प्रसन्न हुए राक्षसपति को प्रदक्षिणा करके वहां गये जहां राम लक्ष्मण समेत थे ॥ ७ ॥ वह सुवेल पर्वत के पास प्रच्छन्न जाकर राम लक्ष्मण और सुग्रीव और विभीषण को देखते भए ॥८॥ तब वह राजा के गुप्तचर लंका में आकर उसे बतलाते भए, कि राम ने सुवेल पर्वत के पास अ-थाह सेना की छावनी डालदी है ॥ ९ ॥ तब उसने अपने मन्त्री राक्षसों के साथ विचार किया, और उसके पीछे जो उचित है वह विचार कर ॥ १० ॥ मन्त्रियों को विसर्जन करके अपने महल में प्रविष्ट हुआ, और मायावी विद्युज्जिह्व से बोला ॥ ११ ॥ हम दोनों माया से जनकसुता सीता को मोहेंगे, इसलिये हे राक्षस तू राघव का मायामय सिर लेकर ॥ १२ ॥ और बाण समेत बड़ा धनुष लेकर जल्दी मेरे पास आ, ऐसे कहे हुए विद्युज्जिह्व राक्षसने तथास्तु कहा ॥ १३ ॥ और उसने रावण को बहुत अच्छी माया दिखलाई, राजा उसपर प्रसन्न हुआ और उसे भूषण दिया ॥१४॥ तब राक्षसों का अधिपति महाबली सीता के दर्शन की लालसा

से अशोकवानिका में प्रविष्ट हुआ ॥१५॥ तब सीता के पास जाकर हर्ष से अपना नाम बतलाता हुआ जनकसुता से यह ढीठ बचन बोला ॥ १६ ॥ मुझसे तसल्ली देने पर हे भद्रे तू जिसके सहारे से मेरा अपमान करती रही है, वह खरहन्ता तेरा भर्त्ता राघव युद्ध में मारा गया है ॥ १७ ॥ हे सीता वृत्रवध के तुल्य अपने भर्त्ता के बध को सुन, राम वानरपति से प्रेरित बड़ी सेना से घिरा हुआ मुझे मारने के लिए समुद्र के पार तक आपहुंचा, और समुद्र के उत्तरी किनारे को पीड़कर उसने छावनी डाली ॥ १८,१९ ॥ अब मार्ग की थकी हुई आधीरात के समय सुख से सोई हुई उस सेना को पाकर पहले मेरे गुप्तचरों ने काम किया ॥ २० ॥ फिर प्रहस्त से प्रेरी हुई मेरी बड़ी सेना ने रात्रि के समय उसकी सेना को मार दिया, जिसमें राम लक्ष्मण दोनों थे ॥ २१ ॥ उसी समय सोए हुए रामका सिर कृतहस्त प्रबल प्रहस्त ने तलवार से काटा ॥ २२ ॥ इस प्रकार तेरा भर्त्ता मेरी सेना ने मारा है, और रुधिर और धूलि से लिबड़ा हुआ उसका सिर यहां लायागया है ॥२३॥ तब परम दुर्धष राक्षसेश्वर रावण ने सीता के सुनते हुए राक्षसी से यह कहा ॥ २४ ॥ क्रूरकर्मा राक्षस विद्युज्जिह्व को ला, जो राम के सिर को स्वयम् संग्राम से लाया है ॥२५॥ तब विद्युज्जिह्व धनुष समेत उस सिर को लेकर सिर से प्रणाम करके रावण के आगे स्थित हुआ ॥ २६ ॥

सर्ग १५ (व० ३२) सीता का करुणामय विलाप।

मूल–सा सीता तच्छिरो दृष्ट्वा तच्च कार्मुकमुत्तमम् । नयने मुखवर्णं च भर्तुस्तत्सदृशं मुखम् ॥ १ ॥ केशान्केशान्तदेशं च तं च चूड़ामणिं शुभम् । एतैः सर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञाय सुदुःखिता ॥ २ ॥ विजगर्हेऽत्र कैकेयीं क्रोशन्तीं कुररी यथा। सकामा भव कैकेयि हतोऽयं

कुलनन्दनः ।३। कुलमुत्सादितं सर्वं त्वया कलहशीलया ॥४॥ एवमुक्ता तु वैदेही वेपमाना तपस्विनी । जगाम जगतीं बाला छिन्ना तु कदली यथा ॥ ५ ॥ सा मुहूर्तात्समाश्वस्य परिलभ्याथ चेतनाम् तच्छिरः समुपास्थाय विललापायतेक्षणा ॥ ६ ॥ हा हतास्मि महाबाहो वीरव्रतमनुव्रत । इमां ते पश्चिमावस्थां गतास्मि विधवा कृता ॥ ७ ॥+प्रथमं मरणं नार्या भर्तुर्वैगुण्यमुच्यते । सुवृत्तः साधुवृत्तायाः संवृत्तस्त्वं ममाग्रतः ॥ ८ ॥ किं मां न प्रेक्षसे राजन्किं वा न प्रतिभाषसे । बालां बालेन संप्राप्तां भार्यां मां सहचारिणीम्॥९॥+संश्रुतं गृह्णता पाणिं चरिष्यामीति यत्त्वया । स्मर तन्नाम काकुत्स्थ नय मामपि दुःखिताम् ॥ १० ॥ कस्मान्मामपहाय त्वं गतो गतिमतां वर। अस्माल्लोकादमुं लोकं त्यक्त्वा मामपि दुःखिताम् ॥ ११ ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः । अग्निहोत्रेण संस्कारं केन त्वं न तु लप्स्यसे ॥ १२ ॥ प्रव्रज्यामुपपन्नानां त्रयाणामेकमागतम् । परिप्रक्ष्यति कौशल्या लक्ष्मणं शोकलालसा ॥१३॥+मम हेतोरनार्याया अनघः पार्थिवात्मजः । रामः सागरमुत्तीर्य वीर्यवान्गोष्पदे हतः ॥ १४ ॥ अहं दाशरथेनोढा मोहात्स्वकुलपांसनी । आर्यपुत्रस्य रामस्य भार्या मृत्युरजायत ॥ १५ ॥+साधु घातय मां क्षिप्रं रामस्योपरि रावण । समानय पतिं पत्न्या कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥ १६ ॥+शिरसा मे शिरश्चास्य कायं कायेन योजय । रावणानुगमिष्यामि गतिं भर्तुर्महात्मनः ॥ १७ ॥ एवं लालप्यमानायां सीतायां तत्र राक्षसः । अभिचक्राम भर्तारमनीकस्थः कृताञ्जलिः ॥ १८ ॥ विजयस्वार्यपुत्रेति सोऽभिवाद्य प्रसाद्य च । न्यवेदयदनुप्राप्तं प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥ १९ ॥ अमात्यैः सहितः सर्वैः प्रहस्तस्त्वामुपस्थितः । किञ्चिदात्ययिकं कार्यं तेषां त्वं दर्शनं कुरु ॥ २० ॥ एतच्छ्रुत्वा दशग्रीवो राक्षसप्रतिवेदितम् । अशोकवनिकां

त्यक्त्वा मन्त्रिणां दर्शनं ययौ ॥ २१ ॥ अन्तर्धानं तु तच्छीर्षं तच्च कार्मुकमुत्तमम्।जगाम रावणस्यैव निर्याणसमनन्तरम् ॥ २२ ॥

टीका-सीता उस सिर, उत्तम धनुष, नेत्र, मुख का रङ्ग, पति के सदृश मुख, बाल, बालों के अन्तस्थान, और उस शुभ चूडामणि को देखकर इन सारे चिन्हों को पहचान कर अतीव दुःखित हुई ॥ १, २ ॥ और कूंज की तरह कुरलाती हुई वह कैकेयी को निन्दती भई ॥ ३ ॥ पूर्ण कामनावाली हो हे कैकेयि ! मारा गया है यह कुलनन्दन, तुझ कलहशीला ने सारा कुल नष्ट कर दिया है ॥ ४ ॥ इतना कहकर कांपती हुई वह तपस्विनी बाला कटे हुए केले की तरह भूमि पर आगिरी ॥ ५ ॥ कुछ देर पीछे होश में आ, उस सिर के पासही वह विशालनेत्रा विलाप करने लगी ॥ ६ ॥ हा मैं मारी गई, हे महाबाहो, हे वीरव्रत के अनुकूल चलनेवाले, मैं विधवा हुई इस तेरी अन्तिम अवस्था को देखती हूं ॥ ७ ॥ भर्त्ता का स्त्री से पहले मरना विगुण कहा जाता है, सो तू अच्छे आचरणवाला, अच्छे आचरणवाली मुझ से पहले मरा है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! क्यों तू अब मुझ सहचारिणी भार्या को जिस बाला को बाल होते हुए विवाहा था, न देखता है न बात करता है ॥ ९ ॥ मेरा हाथ पकड़ते हुए जो तूने प्रतिज्ञा की थी कि तेरे साथ विचरूंगा, हे काकुत्स्थ इसको स्मरण कर, मुझ दुःखिया को भी साथ लेचल ॥ १० ॥ कैसे तू हे गतिवालों में श्रेष्ठ मुझे छोड़कर इस लोक से उस लोक को गया है मुझ दुःखिया को त्यागकर ॥ ११ ॥ पूरी दक्षिणावाले अग्निष्टोमादि यज्ञों से आपने यजन किया है, ऐसा तू क्यों अब अग्निहोत्र से संस्कार नहीं पाएगा ॥ १२ ॥ वनवासको गए तीन में से अकेला आए लक्ष्मण को शोक से भरी हुई कौशल्या पूछेगी ॥ १३ ॥

हाय ! मुझ अनार्या की खातिर निष्पाप शक्तिमान् राजपुत्र राम सागर पार होकर गोष्पद (गौ के खुर) में मारा गया ॥ १४ ॥ राघव ने भूल से मुझ कुलनाशनी को विवाह लिया, आर्यपुत्र राम की भार्या उसकी मृत्यु बनी ॥ १५ ॥ हे रावण मुझे भले ही राम के ऊपर मार डाल, पत्नी को पति के साथ मिला उत्तम कल्याणकर ॥ १६ ॥ इसके सिर के साथ मेरे सिर को और धड़ के साथ धड़ को जोड़ दे, हे रावण मैं महात्मा भर्त्ता की गति की अनुगामिनी हूंगी ॥१७॥ इस प्रकार वहां सीता के विलपते हुए एक सैनिक राक्षस हाथ जोड़े हुए रावण के पास आया ॥१८॥ जय हो हे आर्यपुत्र ! इसप्रकार वह अभिवादन करके और प्रसन्न करके सेनापति प्रहस्त का आना बतलाता गया ॥ १९ ॥ मन्त्रियों सहित प्रहस्त आपके पास आया है, कुछ अत्यावश्यक कार्य है, उनको दर्शन दीजिये ॥२०॥ राक्षस से कहे इस वचन को सुन कर रावण अशोकवनिका को त्यागकर मन्त्रियों को जा मिला ॥२१॥ वह सिर और वह उत्तम धनुष रावण के निकल जाने के साथ ही छिप गया ॥२२॥

सर्ग १६ (व० ३३) सरमा का सीता को तसल्ली देना

मूल—सीतां तु मोहितां दृष्ट्वा सरमा नाम राक्षसी । आससादाथ वैदेहीं प्रियां प्रणयिनी सखी ॥ १ ॥ सा हि तत्र कृता मित्रं सीतया रक्ष्यमाणया । रक्षन्ती रावणादिष्टा सानुक्रोशा दृढव्रता ॥२॥ तां समाश्वासयामास सखी स्नेहेन सुव्रताम् । तव हेतोर्विशालाक्षि नहि मे रावणाद्भयम् ॥३॥ स संभ्रान्तश्च निष्क्रान्तो यत्कृते राक्षसेश्वरः। तत्र मे विदितं सर्वमभिनिष्क्रम्य मैथिलि ॥४॥ न शक्यं सौप्तिकं कर्तुं रामस्य विदितात्मनः ॥ ५ ॥+विक्रान्तो रक्षिता नित्यमात्मनश्च परस्य च। न हतो राघवः श्रीमान्सीते शत्रु-

निवर्हणः ॥६॥ अयुक्त बुद्धिकृतेन सर्वभूतविरोधना । एवं प्रयुक्ता रौद्रेण माया मायाविना त्वयि ॥७॥ शोकस्ते विगतः सर्वकल्याणं त्वामुपास्थिम् । ध्रुवं त्वां भजते लक्ष्मीः प्रियं ते भवति शृणु ॥ ८ ॥ उत्तीर्य सागरं रामः सह वानरसेनया । संनिविष्टः समुद्रस्य तीरमासाद्य दक्षिणम् ॥९॥ स तां श्रुत्वा विशालाक्षि प्रवृत्तिं राक्षसाधिपः । एष मन्त्रयते सर्वैः सचिवैः सह रावणः ॥१०॥ सभाजिता त्वं रामेण मोदिष्यसि महात्मना । सुवर्षेण समायुक्ता यथा सस्येन मेदिनी ॥ ११ ॥

टीका—सीता को मोहित देखकर सरमा नाम राक्षसी सीता की प्यारी सखी अपनी प्यारी सीता के पास पहुंची ॥ १ ॥ उस से रक्षा की जाती हुई सीता ने उसे अपनी सहेली बना लिया था, वह बड़ी दयावाली, दृढ़व्रत वाली रावण से आज्ञा दी हुई उस की रक्षा कर रही थी ॥२॥ सहेली के स्नेह से उसने उस सुव्रता को तसल्ली दी, तेरे अर्थ हे विशालनेत्रे मुझे रावण से भय नहीं ॥३॥ वह राक्षसपति घबराकर जिसलिये यहां से निकला है, और निकलकर जहां गया है हे मैथिलि मुझे सब विदित है ॥४॥ राम जो अपने आपको जानते हैं उनको सोए हुए को मारना नहीं होसक्ता है ॥५॥ वह विक्रमवाला नित्य अपनी और दूसरों की रक्षा करनेवाला, शत्रुओं को मारनेवाला, राम हे सीते मारा नहीं गया है ॥६॥ यह तो अयुक्त बुद्धि, और अयुक्त कार्योंवाले सब लोगों के विरोधी इस मायावी ने तेरे लिये माया प्रयोग की है ॥७॥ तेरा तो सारा शोक अब दूर होचुका, सारा कल्याण तुझे प्राप्त हुआ, तुझे लक्ष्मी अटल सेवन करेगी, हे भली अपना कल्याण सुन ॥८॥ राम वानरसेना के साथ सागर पार करके समुद्र के दक्षिण तीर पर छावनी डाले हुए हैं ॥ ९ ॥ हे विशालाक्षि

नेत्रे राक्षसों का पति यह समाचार सुनकर सारे मन्त्रियों के साथ विचार कर रहा है ॥ १० ॥ अब तू महात्मा राम से आदृत हुई जल्दी आनन्द मनाएगी, जैसे अच्छी वृष्टि से सुन्दर खेती के साथ पृथिवी ॥११॥

सर्ग १७ [व० ४१] राम का लंका को चारों द्वारों से रोकना और अंगद को भेजना

मूल–स तु कृत्वा सुवेलस्य मतिमारोहणं प्रति । लक्ष्मणानुगतो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥१॥ विभीषणं च धर्मज्ञमनुरक्तं निशाचरम् । सुवेलं साधुशैलेन्द्रमिमं धातुशतैश्चितम् ॥२॥ अध्यारोहामहे सर्वे वत्स्यामोऽत्र निशामिमाम् । लङ्कां चालोकयिष्यामो निलयं तस्य रक्षसः ॥ ३ ॥ ते त्वदीर्घेण कालेन गिरिमारुह्य सर्वतः । लङ्कां राक्षससंपूर्णां ददृशुर्हरियूथपाः ॥ ४ ॥ तां रात्रिमुषितास्तत्र सुवेले हरियूथपाः । लङ्कायां ददृशुर्वीरा वनान्युपवनानि च ॥ ५ ॥ अवतीर्य तु धर्मात्मा तस्माच्छैलात्स राघवः । परैः परमदुर्धर्षं ददर्श बलमात्मनः ॥ ६ ॥ तौ त्वदीर्घेण कालेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । रावणस्य पुरीं लङ्कामासेदतुररिन्दमौ ॥ ७ ॥ तां सुरैरपि दुर्धर्षां रामवाक्यप्रचोदिताः । यथानिर्देशं संपीड्य न्यविशन्त वनौकसः ॥ ८ ॥ लङ्कायास्तूत्तरद्वारं शैलशृङ्गमिवोन्नतम् । रामः सहानुजो धन्वी जुगोप च रुरोध च ॥ ९ ॥ नान्यो रामाद्धि तद्द्वारं समर्थः परिरक्षितुम् । रावणाधिष्ठितं भीमं वरुणेनेव सागरम् ॥ १० ॥ पूर्वं तु द्वारमासाद्य नीलो हरिचमूपतिः । अतिष्ठत्सह मैन्देन द्विविदेन च वीर्यवान् ॥११॥ अङ्गदो दक्षिणद्वारं जग्राह सुमहाबलः । ऋषभेण गवाक्षेण गजेन गवयेन च ॥१२॥ हनूमान्पश्चिमद्वारं ररक्ष बलवान्कपिः । प्रजङ्घतरसाभ्यां च वीरैरन्यैश्च सङ्गतः ॥ १३ ॥ रक्ष्यमे च स्वयं गुल्मे सुग्रीवः समतिष्ठत । सह सर्वैर्हरिश्रेष्ठैःसुवर्ण-

पवनोपमैः ॥ १४ ॥ पश्चिमेन तु रामस्य सुषेणः सहजाम्बवान् । अदूरान्मध्यमे गुल्मे तस्थौ बहुबलानुगः ॥ १५ ॥ राघवः संनिवेश्यैव स्वसैन्यं रक्षसां वधे । संमन्त्र्य मन्त्रिभिः सार्धं निश्चित्य च पुनःपुनः ॥ १६ ॥ विभीषणस्यानुमते राजधर्ममनुस्मरन् । अङ्गदं बालितनयं समाहूयेदमब्रवीत् ॥ १७ ॥ गत्वा सौम्य दशग्रीवं ब्रूहि मद्वचनात्कपे ॥ १८ ॥ बलेन येन वै सीतां मायया राक्षसाधम । मामतिक्रामयित्वा त्वं हृतवांस्तान्निदर्शय ॥ १९ ॥ अराक्षसमिमं लोकं कर्त्तास्मि निशितैः शरैः । न चेच्छरणमभ्येषि तामादाय तु मैथिलीम् ॥ २० ॥ नाहि राज्यमधर्मेण भोक्तुं क्षणमपि त्वया । ब्रवीमि त्वां हितं वाक्यं क्रियतामौर्ध्वदेहिकम् ॥ २१ ॥ इत्युक्तः स तु तारेयो रामेणाक्लिष्टकर्मणा । सोऽतिपत्य मुहूर्तेन श्रीमन्रावणमन्दिरम् ॥ २२ ॥ तद्रामवचनं सर्वमन्यूनाधिकमुत्तमम् । सामात्यं श्रावयामास निवेद्यात्मानमात्मना ॥ २३ ॥ ततः स रोषमापन्नः शशास सचिवांस्तदा । गृह्यतामिति दुर्मेधा वध्यतामिति चासकृत् ॥ २४ ॥ व्यथयन्राक्षसान्सर्वान्हर्षयंश्चापि वानरान् । स वानराणां मध्ये तु रामपार्श्वमुपागतः ॥ २५ ॥ रामस्तु बहुभिर्हृष्टैर्विनदद्भिः प्लवङ्गमैः । वृतो रिपुवधाकाङ्क्षी युद्धायैवाभिवर्तत ॥ २६ ॥

टीका—इधर लक्ष्मण सहित राम सुवेल पर चढ़ने का निश्चय करके सुग्रीव और धर्मज्ञ अनुरक्त विभीषण से यह बोले, अनेक धातुओं से भरे इस सुवेल पर्वत पर हम सब चढ़ें, यह रात यहां रहेंगे और लङ्का को देखेंगे जो उस राक्षस का निवास है ॥ १, २, ३ ॥ तब वह थोड़े काल में सब ओर से सुवेल पर चढ़कर राक्षसों से पूर्ण लङ्का को देखते भए ॥ ४ ॥ वह रात उस सुवेल पर्वत पर वास करके वानर यूथपति लङ्का में बन उपबनों को देखते भए ॥ ५ ॥ वह धर्मात्मा राम उस पर्वत से उतरकर शत्रुओं से परम दुर्धर्ष अपने बल को देखता

भया॥६॥तदनन्तर शत्रुओं के दमन करनेवाले दोनों भाई रामलक्ष्मण थोड़ेकाल में रावण की पुरी लङ्का में पहुंचे ॥ ७ ॥ राम की आज्ञा से प्रेरे हुए वानर देवताओं से भी दुर्धर्ष उस पुरी को पीडित करके डेरे जमा देते भए ॥ ८ ॥ पर्वत शिखर की तरह ऊंचे लङ्का के उत्तर द्वार को छोटे भाई सहित धनुर्धारी राम रक्षा करते भए और रोकते भए ॥ ९ ॥ क्योंकि और कोई वरुण से सागर की तरह रावण से अधिष्ठित उस द्वार की रक्षा में समर्थ नहीं होसक्ता था ॥ १० ॥ पूर्व द्वार पर पहुंचकर वीर्यवान् वानर सेनापति नील, द्विविद और मैन्द खड़ा हुआ ॥ ११ ॥ महाबली अङ्गद ने ऋषभ, गवाक्ष, गज, और गवय के साथ दक्षिण द्वार को ग्रहण किया ॥ १२ ॥ बलवान् हनुमान् प्रजंघ तरस और दूसरे वीरों के साथ पश्चिम द्वार की रक्षा करता भया ॥ १३ ॥ मध्य के गुल्म (मोरचे) पर स्वयं सुग्रीव गरुड और पवन तुल्य सारे वानर श्रेष्ठों के साथ खड़ा हुआ ॥ १४ ॥ राम के पश्चिम की ओर निकट ही बहुत सेना से युक्त जाम्बवान् समेत सुषेण मध्यम गुल्म में खड़ा हुआ ॥ १५ ॥ इसप्रकार राम राक्षसों के बध में अपनी सेना को लगाकर मन्त्रियों के साथ विचार करके और फिर २ निश्चय करके ॥ १६ ॥ बिभीषण की अनुमति में राजधर्म का स्मरण करता हुआ बालिपुत्र अङ्गद को बुलाकर बोला ॥१७ ॥ हे सौम्य वानर मेरे वचन से जाकर रावण को कहो ॥१८॥ हे राक्षसाधम! तू जिस बल के सहारे माया से मुझे दूर ले जाकर सीता को हरलाया है, वह अब दिखला ॥१९॥ मैं इस लोक को तीक्ष्ण तीरों से बिना राक्षसों के कर दूंगा, यदि तू उस मैथिली को लेकर शरण नहीं आता है ॥ २० ॥ अधर्म से तू राज्य को क्षण भी नहीं भोग सक्ता है, तुझे हित वाक्य कहता हूं अपना परलोक सुधारले ॥ २१ ॥ कोमल कर्मोंवाले राम से ऐसे

कहा हुआ वह तारा का पुत्र श्रीमान् जल्दी रावण के मन्दिर में पहुंचकर ॥ २२ ॥ पहले अपना आप बतलाकर फिर राम का वह उत्तम सन्देश मन्त्रियों समेत को अन्यूनाधिक सुनाता भया ॥ २३ ॥ तब रावण क्रोधवश हुआ मन्त्रियों को आज्ञा देता भया कि इसको पकड लो और बधकरो ॥ २४ ॥ पर वह सब राक्षसों को पीडा देताहुआ और सब वानरों को हर्षित करताहुआ वानरों के मध्य में राम के पास आया ॥ २५ ॥ राम भी बहुत से गर्जते हुए हृष्ट वानरों से घिरा हुआ, शत्रु का वध चाहता हुआ युद्ध के लिए ही तय्यार हुआ ॥ २६ ॥

सर्ग १८ (व० ४२) वानरों और राक्षसों की सेनाओं में युद्ध के बाजों का बजना और युद्ध का आरम्भ ।

मूल-निपीड्यमानां धर्मात्मा वैदेहीं मनुचिन्तयन् । क्षिप्रमाज्ञापयद्रामो वानरान्द्विषतां बधे ॥ १ ॥ ते ताम्रवक्त्रा हेमाभा रामार्थे सक्तजीविताः । प्रकाराग्राण्यसंख्यानि ममन्थुस्तोरणानि च ॥ २ ॥ परिखान्पूरयन्तश्च प्रसन्नसलिलाशयान् । पांसुभिः पर्वताग्रैश्च तृणैः काष्ठैश्च वानराः ॥ ३ ॥ आप्लुवन्तः प्लुवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लुवङ्गमाः । लङ्कां तामभिधावान्ति महावारणसंनिभाः ॥ ४ ॥ जयत्युरुबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः । राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥५॥ इत्येवं घोषयन्तश्च गर्जन्तश्च प्लुवङ्गमाः । अभ्यधावन्त लङ्कायाः प्राकारं कामरूपिणः ॥६॥ ततः कोपपरीतात्मा रावणो राक्षसेश्वरः । निर्याणं सर्वसैन्यानां द्रुतमाज्ञापयत्तदा ॥ ७ ॥ ततः प्रबोधिता भेर्यश्चन्द्रपाण्डुरपुष्कराः । हेमकोणैरभिहता राक्षसानां समंततः ॥८॥ विनेदुश्च महाघोषाः शङ्खाः शतसहस्रशः । राक्षसानां सुघोराणां मुखमारुतपूरिताः ॥ ९ ॥ ततो वानरसैन्येन मुक्तो नादः समन्ततः । मलयः पूरितो येन ससानुप्रस्थकन्दरः ॥ १० ॥ शङ्ख

दुन्दुभिनिर्घोषः सिंहनादस्तरस्विनाम् । पृथ्वीं चान्तरिक्षं च सागरं चाभ्यनादयत् ॥ ११ ॥ गजानां बृंहितैः सार्धं हयानां ह्रेषितैरपि । रथानां नेमिनिर्घोषैः रक्षसां पदनिःस्वनैः ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे घोरः संग्रामः समपद्यत । रक्षसां वानराणां च यथा देवासुरे पुरा ॥ १३ ॥ स संप्रहारस्तुमुलो मांसशोणितकर्दमः । रक्षसां वानराणां च संबभूवाद्भुतोपमः ॥ १४ ॥

टीका—पीडित हुई सीता को चिन्तन करते हुए उस धर्मात्मा राम ने बानरों को जल्दी शत्रुओं के मारने की आज्ञा दी ॥१॥ वह ताम्बे के मुखोंवाले सोने की आभावाले राम के अर्थ जीवन को त्यागने वाले (वानर) कोटों के अनेक किङ्गरों और डेवाढ़ियों को तोड़ देते भए ॥२॥ और निर्मल जलोंवाली खाइयों को धूल पत्थर तिनके और गेलियों से भर देते भए ॥३॥ कूदते फांदते और गर्जते हुए महाहाथियों के तुल्य वानर लंका के अभिमुख दौडते हैं ॥ ४ ॥ बड़े बलवाले रामकी जय हो, महाबली लक्ष्मण की जय हो, राम से पालित राजा सुग्रीव की जय हो, ॥५॥ इस प्रकार जय ध्वनि करते हुए और गर्जते हुए कामरूपी बानर लंका के कोट की ओर दौडने लगे ॥ ६ ॥ तब कोप से भरे मनवाले राक्षसपति रावण ने जल्दी सारी सेनाओं को चढाई की आज्ञा दी ॥ ७ ॥ तब सोने के दण्ड से ताडना की हुई चन्द्र तुल्य श्वेत पुष्करवाली राक्षसों की भेरियें चारों ओर बजने लगीं ॥ ८ ॥ और घोर राक्षसों के मुख वायु से पूरे हुए बड़ी ध्वनिवाले सैंकडों सहस्रों शङ्ख बजे ॥ ९ ॥ तब चारों ओर से बानरों की सेना ने सिंहनाद किया, जिस से मलय पर्वत भी चोटी प्रस्थ और कन्दराओं सहित भर गया ॥ १० ॥ शङ्ख और दुन्दुभियों की ध्वनि, शूरवीरों के सिंहनाद हाथियों की चिंघाडों घोडों की हिनहिनाहटों, रथों की नेमिकी

ध्वनियों और राक्षसों की पदध्वनियों से पृथिवी अन्तरिक्ष और सागर गूंज उठा ॥ ११, १२ ॥ इस अन्तर में राक्षसों और बानरों का घोर संग्राम हुआ जैसा पहले देव दैत्यों में हुआ था ॥१३॥ बानर राक्षसों का वह युद्ध मांस लहू के कीचड़ से अद्भुत उपमा वाला घमसान का हुआ ॥ १४ ॥

सर्ग १९ [व० ४३] घोर द्वन्द्व युद्ध और रात्रि युद्ध और अंगद से इंद्रजित् का पराजय

मूल—एतस्मिन्नन्तरे तेषामन्योन्यमभिधावताम् । रक्षसां वानराणां च द्वन्द्वयुद्धमवर्तत ॥१॥ युद्धयमानेव तेषां तु तदा वानररक्षसाम् । रविरस्तं गता रात्रिः प्रवृत्ता प्राणहारिणी ॥ २ ॥ अन्योन्यं बद्ध-वैराणां घोराणां जयमिच्छताम् । संप्रवृत्तं निशायुद्धं तदा वानर-रक्षसाम् ॥ ३ ॥ राक्षसोऽसीति हरयो वानरोऽसीति राक्षसाः । अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ ४ ॥ हत दारय चैहीति कथं विद्रवसीति च । एवं सुतुमुलः शब्दस्तस्मिन्सैन्ये तु शुश्रुवे ॥ ५ ॥ कालाः काञ्चनसंनाहास्तस्मिंस्तमसि राक्षसाः । संप्रदृश्यन्त शैलेन्द्रा दीप्तौषधिवना इव ॥६॥ तस्मिंस्तमसि दुष्पारे राक्षसाः क्रोधमूर्च्छिताः । परिपेतुर्महावेगा भक्षयन्तः प्लवङ्गमान् ॥ ७ ॥ वानरा बलिनो युद्धेऽक्षोभयन्राक्षसीं चमूम् । कुञ्जरान्कु-ञ्जरारोहान्पताकाध्वजिनो रथान् ॥ ८ ॥ लक्ष्मणश्चापि रामश्च शरैराशीविषोपमैः । दृश्यादृश्यानि रक्षांसि प्रवराणि निजघ्नतुः ॥९॥ तुरङ्गखुरविध्वस्तं रथनेमिसमुत्थितम् । रुरोध कर्णनेत्राणि युध्यतां धरणीरजः ॥ १० ॥ वर्तमाने तथा घोरे संग्रामे लोमहर्षणे । रुधि-रौघा महाघोरा नद्यस्तत्र विसस्रुवुः ॥ ११ ॥ ततस्ते राक्षसास्तत्र तस्मिंस्तमसि दारुणे । राममेवाभ्यवर्तन्त संहृष्टाःशरवृष्टिभिः ॥१२॥ ते तु रामेण बाणौघैः सर्वमर्मसु ताडिताः । युद्धादपसृतास्तत्र साव-

शेषायुषोऽभवन् ॥ १३ ॥ निमेषान्तरमात्रेण घोरैरग्निशिखोपमैः ।
दिशश्चकार विमलाःप्रदिशश्च महारथः॥१४॥ ये त्वन्ये राक्षसावीरा
रामस्याभिमुखे स्थिताः। तेऽपि नष्टाः समासाद्य पतङ्गा इव पावकम्
॥ १५ ॥ राक्षसानां च निनदैर्भेरीणां चैव निःस्वनैः । सा बभूव
निशा घोरा भूयो घोरतराभवत् ॥ १६ ॥ इन्द्रजित्तु रथं त्यक्त्वा
हताश्वो हतसारथिः । अङ्गदेन महायस्तस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १७ ॥
ततः प्रहृष्टाः कपयः ससुग्रीवाविभीषणाः । साधुसाध्विति नेदुश्च दृष्ट्वा
शत्रुं पराजितम् ॥ १८ ॥

टीका—इस अवसर में एक दूसरे की ओर दौड़ते हुए उन वानर और राक्षसों का द्वन्द्व युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ १ ॥ वानर और राक्षसों के युद्ध करतेही सूर्य अस्त को प्राप्त हुआ और प्राणहारिणी रात्रि प्रवृत्त हुई ॥ २ ॥ आपस में वैर बान्धे हुए जय चाहते हुए उन भयंकर वानर राक्षसों का रात्रियुद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ ३ ॥ उस भयावने अन्धेरे में " तू राक्षस है" ऐसा कहकर वानर "और तू वानर है" ऐसा कहकर राक्षस युद्ध में परस्पर मारते थे ॥ ४ ॥ उस सेना में मारो चीरं डाल इधर आ कैसे भागा जाता है,इसप्रकार तुमुल शब्द सुनाई देता था ॥ ५ ॥ उस अन्धेरे में काले सुनहरी कवचोंवाले राक्षस जलते हुए ओषधियों के बनोंवाले पर्वतों की तरह दीखते थे ॥ ६ ॥ उस अपार अन्धेरे में राक्षस क्रोध से मूर्च्छित हुए बड़े वेग के साथ वानरों पर हमला करके मानों उन को भक्षण किये जाते थे॥७॥और महाबली वानर युद्ध में राक्षसी सेना को, हाथियों हाथीसवारों और झण्डियां झण्डोंवाले रथों को क्षुब्ध करते भए ॥ ८ ॥ लक्ष्मण और राम भी नाग तुल्य बाणों से दृश्य अदृश्य चुने हुए राक्षसों को मारते भए ॥ ९ ॥ घोड़ों के खुरों से पिसी हुई और रथ की नेमियों से उड़ी पृथिवी की धूल

युद्ध करनेवालों के कान और नेत्रों को रोकती भई ॥ १० ॥ इसप्रकार रोंगटे खड़े करनेवाले घोर संग्राम के प्रवृत्त होने पर लहू के प्रवाहवाली नदियें बहने लगीं ॥ ११ ॥ तब वह राक्षस उस दारुण अन्धेरे में हर्षित हुए वाणों की वर्षा करते हुए राम की ओर झुके ॥ १२ ॥ राम ने वाणसमूहों से सारे मर्मों में उनको ऐसा ताड़न किया, कि युद्ध से भागकर उन्होंने अपनी आयु बचाई ॥१३॥ उस महारथी ने अग्नि ज्वाला जैसे वाणों से थोड़े ही समय में दिशाओं और प्रदिशाओं को विमल बना दिया ॥ १४ ॥ जो और राक्षस वीर राम के अभिमुख डटे रहे, वह आग में पतङ्गों की तरह वहीं नष्ट हुए ॥ १५ ॥ राक्षसों के सिंहनादों से और भेरियों की ध्वनियों से वह घोर निशा घोरतर बन गई ॥ १६ ॥ इधर अङ्गद ने इन्द्रजित् के घोड़े मार डाले, सारथि मारडाला, तब वह बड़ा क्रोधित हुआ रथ को त्यागकर वहीं छिपगया ॥१७॥ तब शत्रु को पराजित हुआ देखकर सुग्रीव विभीषण सहित सभी वानर प्रसन्न हुए साधु २ की ध्वनि करते भए ॥ १८ ॥

सर्ग २० (व० ४४) इन्द्रजित् का राम लक्ष्मण को नाग फांस में फांसना और वानर सेना में घबराहट।

मूल—इन्द्रजित्तु तदानेन निर्जित्य भीमकर्मणा। संयुगे वालिपुत्रेण क्रोधं चक्रे सुदारुणम् ॥ १ ॥ रामं च लक्ष्मणं चैव घोरैर्नागमयैः शरैः। बिभेद समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राघवौ ॥ २ ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां कूटयोधी निशाचरः। बबन्ध शरबन्धेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥३॥ राघवौ पतितौ दृष्ट्वा शरजालसमन्वितौ। बभूवुर्व्यथिताः सर्वे वानराः सविभीषणाः ॥४॥ इन्द्रजित्त्वात्मनः कर्म तौ शयानौ समीक्ष्य च। उवाच परमप्रीतो हर्षयन्सर्वराक्षसान् ॥५॥ दूषणस्य च हन्तारौ खरस्य च महाबलौ। सादितौ मामकैर्बाणैर्भ्रातरौ राम

लक्ष्मणौ ॥६॥ नेमौ मोक्षयितुं शक्यावेतस्मादिषुबन्धनात् । सर्वैरपि समागम्य सर्षिसङ्घैः सुरासुरैः ॥ ७ ॥ कृत्स्नयं यत्कृते लंका नदी वर्षास्विवाकुला । सोऽयं मूलहरोऽनर्थः सर्वेषां शमितो मया ॥८॥ हर्षेण तु समाविष्ट इन्द्राजित्समितिञ्जयः । प्रविवेश पुरीं लंकां हर्षयन्सर्वनैर्ऋतान् ॥ ९ ॥ रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा शरीरे सायकैश्चिते । सर्वाणि चाङ्गोपाङ्गानि सुग्रीवं भयमाविशत् ॥१०॥ तमुवाच परित्रस्तं वानरेन्द्रं विभीषणः । अलं त्रासेन सुग्रीव वाष्पवेगो निगृह्यताम् ॥ ११ नैतत्किञ्चन रामस्य न च रामो मुमूर्षति । नह्येनं हास्यते लक्ष्मीर्दुर्लभा या गतायुषाम् ॥१२॥ तस्मादाश्वासयात्मानं बलं चाश्वासय स्वकम् । यावत्सैन्यानि सर्वाणि पुनः संस्थापयाम्यहम् ॥ १३ ॥ इन्द्राजित्तु महामायः सर्वसैन्यसमावृतः । विवेश नगरीं लंकां पितरं चाभ्युपागमत् ॥ १४ ॥ तत्र रावणमासाद्य अभिवाद्य कृताञ्जलिः । आचचक्षे प्रियं पित्रे निहितौ रामलक्ष्मणौ ॥ १५ ॥ उत्पपात ततो हृष्टः पुत्रं च परिषस्वजे । रावणो रक्षसां मध्ये श्रुत्वा शत्रू निपातितौ ॥ १६ ॥ उपाघ्राय च तं मूर्ध्नि पप्रच्छ प्रीतमानसः । पृच्छते च यथावृत्तं पित्रे तस्मै न्यवेदयत् ॥ १७ ॥ यथा तौ शरबन्धेन निश्चेष्टौ निष्प्रभौ कृतौ ॥ १८ ॥

टीका—पर युद्ध में भीमकर्मा वालिपुत्र अङ्गद से जीते हुए इन्द्राजित ने बड़ा दारुण क्रोध किया ॥ १ ॥ युद्ध में क्रुद्ध हुआ वह भयङ्कर नागमय वाणों (बेहोश करनेवाले वाणों) से राम लक्ष्मण को सारे अङ्गों में भेदता भया ॥ २ ॥ सब लोगों से अदृश्य कूटयोधी राक्षस ने राम लक्ष्मण दोनों भाइयों को वाण फांस से फांस लिया ॥ ३ ॥ वाण समूह से युक्त दोनों राघवों को गिरा हुआ देखकर विभीषण समेत वानर सारे बड़े दुःखी हुए ॥४॥ इन्द्राजित तो अपने कर्म को, और उन दोनों को लटा हुआ देखकर परम

प्रसन्न हुआ सब राक्षसों को हर्षित करता हुआ बोला ॥ ५ ॥ खर और दूषण के मारने वाले दोनों भाई राम लक्ष्मण मेरे बाणों से पीड़ित हुए हैं ॥६॥ अब इनको इस बाणबन्धन से देव दैत्य और ऋषि समूह भी नहीं छुड़ा सकेंगे ॥७॥ जिसके निमित्त यह सारी लंका वर्षा में नदी की तरह आकुल थी, वह यह सब का मूल-हारी अनर्थ मैंने शान्त कर दिया है ॥८॥ इस प्रकार हर्ष से भरा हुआ युद्धों के जीतनेवाला इन्द्रजित सारे राक्षसों को प्रहर्षित करता हुआ लंकापुरी में प्रविष्ट हुआ ॥९॥ इधर राम लक्ष्मण के शरीर को और सारे अङ्ग उपाङ्गों को बाणों से भरा हुआ देखकर सुग्रीव को भय प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ उस डरे हुए वानरेन्द्र से विभीषण बोला, भय मतकर हे सुग्रीव आंसुओं के वेग को रोक ॥११॥ यह राम के लिये कुछ नहीं, राम मरनेवाले नहीं हैं, लक्ष्मी (शरीर की कान्ति) इनको नहीं त्याग रही, जोकि निकट मृत्युवालों के दुर्लभ होती है ॥ १२ ॥ सो अपने आपको और अपनी सेना को तसल्ली दे, जब तक कि मैं फिर सारी सेनाओं को अपने २ स्थान पर स्थापन करता हूं ॥१३॥ महामायावी इन्द्रजित् तो सारी सेनाओं से युक्त हुआ लंका नगरी में प्रविष्ट हुआ, और पिता के पास आया ॥१४॥ वहां रावण के पास हाथ जोड़ प्रणाम करके पिता को प्रिय बत-लाता भया कि राम लक्ष्मण मार दिए गए हैं ॥१५॥ सुन करके रावण राक्षसों के मध्य में प्रसन्न हुआ उठा और पुत्र को गले लगाया ॥१६॥ उसका सिर चूमकर प्रसन्न मन से पूछता भया पूछते हुए पिता को उसने यथावृत्त बतलाया ॥१७॥ कि शरबन्ध से बांधकर उनको चेष्टाशून्य और प्रभासे शून्य करदिया है ॥१८॥

सर्ग २१ (व० ४७-४८) सीता को रण में मूर्छित राम लक्ष्मण का दिखलाना

मूल—रावणश्चापि संहृष्टो विसृज्येन्द्रजितं सुतम्। आजुहाव ततः सीतारक्षिणी राक्षसीस्तदा ॥१॥ राक्षस्यस्त्रिजटा चापि शासनात्तमुपस्थिताः। ता उवाच ततो हृष्टो राक्षसी राक्षसाधिपः ॥ २ ॥ हताविन्द्रजिताख्यात वैदेह्या रामलक्ष्मणौ। पुष्पकं तत्समारोप्य दर्शयध्वं रणे हतौ ॥ ३ ॥ राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वा जग्मुर्यत्र पुष्पकम्। सीतामारोपयामासुर्विमानं पुष्पकं तदा ॥ ४ ॥ ततः सीता ददर्शोभौ शयानौ शरतल्पगौ। लक्ष्मणं चैव रामं च विसंज्ञौ शरपीडितौ ॥५॥ शरतल्पगतौ वीरौ तथाभूतौ नरर्षभौ। दुःखार्ता करुणं सीता सुभृशं विललाप ह ॥६॥ परिदेवयमानां तां राक्षसी त्रिजटाब्रवीत्। मा विषादं कृथा देवि भर्त्तायं तव जीवति ॥ ७ ॥ इदं तु सुमुहच्चित्रं शरैः पश्यस्व मैथिलि। विसंज्ञा पतितावेतौ नैव लक्ष्मीर्विमुञ्चति ॥८॥ सज शोकं च दुःखं च मोहं च जनकात्मजे। रामलक्ष्मणयोरर्थे नाद्य शक्यमजीवितुम् ॥ ९ ॥ श्रुत्वा तु वचनं तस्याः सीता सुरसुतोपमा। कृताञ्जलिरुवाचेमामेवमस्त्विति मैथिली ॥१०॥ विमानं पुष्पकं तत्तु सन्निवर्त्य मनोजवम्। दीना त्रिजटया सीता लंकामेव प्रवेशिता ॥११॥

टीका—रावण ने भी प्रसन्न हो पुत्र इन्द्रजित् को विसर्जन करके सीता की रखवाली राक्षसियों को बुलवाया ॥१॥ उसकी आज्ञा से त्रिजटा और सब राक्षसियें उपस्थित हुईं, तब प्रसन्न हुआ राक्षसाधिपति उन राक्षसियों से बोला ॥२॥ सीता को जाकर बतलाओ कि राम लक्ष्मण मारे गये हैं, और उसे पुष्पक विमान पर चढ़ाकर रण में मरे हुए दिखलाओ ॥३॥ राक्षसियें तथास्तु कहकर वहां गईं, जहां पुष्पक था, और वहां उन्होंने सीता को पुष्पकविमान पर

चढ़ाया ॥४॥ तब सीता ने राम लक्ष्मण दोनों को तीरों से पीड़ित और तीरों की शय्या पर मूर्छित लेटे हुए देखा ॥५॥ वहां वैसी अवस्था में उन दोनों नरश्रेष्ठ भाइयों को देखकर सीता दुःख से पीड़ित हुई अतीव विलाप करती भई ॥६॥ विलाप करती हुई सीता से त्रिजटा राक्षसी बोली, हे देवि ! विषाद मतकर, यह तेरा भर्त्ता जीता है॥७॥ हे मैथिलि यह बहुत बड़ा आश्चर्य देख, बाणों से बेहोश पड़े हुओं को भी लक्ष्मी नहीं छोड़ती है ॥ ८ ॥ हे जनकनान्दिनी दुःख शोक मोह को त्याग, राम लक्ष्मण के अर्थ आज अपना जीना मत त्याग ॥ ९ ॥ उसके वचन को सुनकर देवकन्यातुल्य सीता हाथ जोड़कर उसे कहती भई ऐसेही हो ॥ १० ॥ और मन तुल्य वेगवाले पुष्पक विमान को लौटाकर दीना हुई सीता को त्रिजटा ने फिर लङ्का में प्रवेश कराया ॥ ११ ॥

सर्ग २२ (व० ४९-५०) राम लक्ष्मण का स्वस्थ होना

मूल—ततः सर्वाण्यनीकानि स्थापयित्वा विभीषणः । आजगाम गदापाणिस्त्वरितं यत्र राघवः ॥ १ ॥ ततो मुहूर्ताद्गरुडं वैनतेयं महाबलम् । वानरा ददृशुः सर्वे ज्वलन्तामिव पावकम् ॥ २ ॥ वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः । सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः ॥ ३ ॥ तावुत्थाप्य महातेजा गरुडो वासवोपमौ । उभौ च सस्वजे हृष्टो रामश्चैनमुवाच ह ॥ ४ ॥ भवत्प्रसादाद् व्यसनं रावणिप्रभवं महत् । उपायेन व्यतिक्रान्तो शीघ्रं च बलिनौ कृतौ ॥५॥ यथा तातं दशरथं यथाजं च पितामहम् । तथा भवन्तमासाद्य हृदयं मे प्रसीदति ॥ ६ ॥ तमुवाच महातेजा वैनतेयो महाबलः । अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः ॥ ७ ॥ असुरा वा महावीर्या वानरा वा महाबलाः । नेमं मोक्षयितुं शक्ताः शरबन्धं सुदारुणम् ॥ ८ ॥ इमं श्रुत्वा तु विक्रान्तस्त्वरमाणोऽहमागतः । सहसै-

वावयोः स्नेहात्साखित्वमनुपालयन् ॥ ९ ॥ मोक्षितौ च महाघोरा-
दस्मात्सायकबन्धनात् । अप्रमादश्च कर्तव्यो युवाभ्यां नित्यमेव हि
॥ १० ॥+प्रकृत्या राक्षसाः सर्वे संग्रामे कूटयोधिनः। शूराणां शुद्ध-
भावानां भवतामार्जवं बलम् ॥ ११ ॥ तन्न विश्वसनीयं वो राक्ष-
सानां रणाजिरे । एतेनैवोपमानेन नित्यं जिह्मा हि राक्षसाः ॥१२॥
नीरुजौ राघवौ दृष्ट्वा ततो वानरयूथपाः । सिंहनादं तदानेदुर्मृद-
ङ्गाश्चाप्यवादयन् ॥ १३ ॥

टीका-तब सारी सेनाओं को स्थापन करके बिभीषण हाथ में गदा लिए जल्दी वहां आया, जहां राम थे ॥१॥ तब थोड़ी देर के पीछे उन्होंने जलते अग्नि की तरह तेजस्वी महाबली विनता के पुत्र गरुड (नागफासों के विष को हटानेवाले) को देखा ॥ २ ॥ गरुड से छुए हुए उन दोनों के सारे व्रण मिलगए, और जल्दी उन दोनों के शरीर सुन्दर रङ्गवाले और स्नेहवाले होगये ॥ ३ ॥ महातेजस्वी गरुड़ ने उन दोनों इन्द्र तुल्यों को उठाकर दोनों को गले लगाया, और प्रसन्न हुए राम उससे यह बोले ॥ ४ ॥ आपके प्रसाद से इन्द्रजित् से उत्पन्न किया बड़ा दुःखउपाय से मिटाया गया और हम बड़ी जल्दी बलवान् होगये हैं ॥ ५ ॥ जैसे पिता दशरथ और पितामह अज को इसी प्रकार आपको पाकर मेरा हृदय प्रसन्न होता है ॥ ६ ॥ इसके उत्तर में महातेजस्वी महाबली वैनतेय बोला हे काकुत्स्थ मैं आपका प्यारा मित्र बाहर विचरने वाला प्राण हूं ॥ ७ ॥ बड़े वीर राक्षस वा महाबली वानर इस अतीव दारुण शरबन्ध (नागफांस) को छुड़ा नहीं सक्ते थे ॥ ८ ॥ मैं इस शरबन्ध को सुनकर मित्रता का पालन करता हुआ आपके स्नेह से एकदम यहां आया हूं ॥ ९ ॥ इस घोर शरबन्ध से मैंने तुम्हें छुड़ा दिया है आगे को तुम दोनों सदा अप्रमत्त होकर रहो ॥१०॥

राक्षस सभी युद्ध में प्रकृति से कूटयोधी हैं, और आप जो शुद्ध भावना वाले शूरवीर हैं, आपका बल सरलता है ॥११॥ सो रणक्षेत्र में आपको राक्षसों का विश्वास नहीं करना चाहिये, इसी दृष्टान्त से राक्षसों को सदा कुटिल समझो ॥१२॥ वानर यूथपति राघवों को स्वस्थ देखकर सिंहनाद करतेभए, और मृदङ्ग बजातेभए ॥ १३ ॥

सर्ग २३ (व० ५१) रावण का धूम्राक्ष को युद्ध के लिये भेजना

मूल–तेषां तु तुमुलं शब्दं वानराणां महौजसाम् । नर्दतां राक्षसैः सार्धं तदा शुश्राव रावणः ॥१॥ तौ तु बुद्धौ शरैस्तीक्ष्णैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । अयं च सुमुहान्नादः शङ्कां जनयतीव मे ॥२॥ एवं च वचनं चोक्त्वा मन्त्रिणो राक्षसेश्वरः । उवाच नैऋतांस्तत्र समीपपरिवर्तिनः ॥३॥ ज्ञायतां तूर्णमेतेषां सर्वेषां च वनौकसाम् । शोककाले समुत्पन्ने हर्षकारणमुत्थितम् ॥ ४ ॥ तथोक्तास्ते सुसंभ्रान्ताः प्राकारमधिरुह्य च । ददृशुः पालितां सेनां सुग्रीवेण महात्मना ॥५॥ तौ च मुक्तौ सुघोरेण शरबन्धेन राघवौ । समुत्थितौ महाभागौ विषेदुः सर्वराक्षसाः ॥६॥ तदप्रियं दीनमुखा रावणस्य च राक्षसाः । कृत्स्नं निवेदयामासुर्यथावद्वाक्यकोविदाः ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां राक्षसेन्द्रो महाबलः । चिन्तारोषसमाक्रान्तो विवर्णवदनोऽभवत् ॥८॥ अब्रवीद्राक्षसां मध्ये धूम्राक्षं नाम राक्षसम् ॥९॥ बलेन महता युक्तो राक्षसैर्भीमविक्रमः । त्वं वधायाशु निर्याहि रामस्य सह वानरैः ॥१०॥ स निर्यातो महावीर्यो धूम्राक्षो राक्षसैर्वृतः । हसन्वै पश्चिमद्वाराद्धनूमान्यत्र तिष्ठति ॥११॥

टीका–राक्षसों सहित रावण ने उन गर्जते हुए महापराक्रमी वानरों के तुमुल शब्द को सुना ॥१॥ वह दोनों भाई राम लक्ष्मण तीक्ष्ण तीरों से बन्धे हुए हैं, और यह सुमहान् नाद मुझे शङ्का सी उत्पन्न करता है ॥२॥ यह वचन मन्त्रियों को कहकर वह राक्षसेश्वर

दूसरे पासवर्त्ती राक्षसों से बोला ॥३॥ जल्दी मालूम करो उन सारे बानरों के शोककाल में क्या हर्ष का कारण हुआ है ॥४॥ वैसे आज्ञा दिये हुए वह जल्दी से कोट पर चढ़कर महात्मा सुग्रीव से पालित सेना को देखते भए ॥५॥ और उन महाभाग राघवों को शरबन्ध से विमुक्त हो उठे हुए देखकर सारे राक्षस खिन्न होगए ॥ ६ ॥ वाक्यनिपुण वह राक्षस दीन मुख हुए वह सारा अप्रिय यथावत् निवेदन करते भए ॥ ७ ॥ उस बचन को सुनकर महाबली राक्षसेन्द्र चिन्ता और रोष से भरगया, और उसका मुख फीका होगया ॥८॥ वह राक्षसों के मध्य में धूम्राक्ष राक्षस से बोला ॥ ९ ॥ तू बड़ी सेना से और घोर पराक्रमवाले राक्षसों से युक्त हुआ वानरों को मारने के लिये जल्दी चढ़ाई कर ॥ १० ॥ वह महावीर्य धूम्राक्ष राक्षसों से घिरा हुआ हंसता हुआ पश्चिमद्वार से बाहर निकला, जिधर हनुमान् स्थित था ॥११॥

सर्ग २४ (व० ५२) हनुमान् का रण में धूम्राक्ष को मारना

मूल—धूम्राक्षं प्रेक्ष्य निर्यान्तं राक्षसं भीमविक्रमम् । विनेदुर्वानराः सर्वे प्रहृष्टा युद्धकाङ्क्षिणः ॥१॥ तेषां सुतुमुलं युद्धं संजज्ञे कपि-रक्षसाम् ॥ २ ॥ राक्षसास्त्वाभिसंक्रुद्धा वानरान्निशितैः शरैः । वि-व्यधुर्घोरसंकाशैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ३ ॥ ते भीमवेगा हरयो नर्दमानास्ततस्ततः । ममन्थू राक्षसान्वीरान्नामानि च बभाषिरे ॥४॥ राक्षसा मथिताः केचिद्वानरैर्जितकाशिभिः । प्रवेमू रुधिरं केचिन्मुखै रुधिरभोजनाः ॥५॥ केचिद्विनिहता भूमौ रुधिरार्द्रा वनौकसः । विदारितास्त्रिशूलैश्च केचिदान्त्रैर्विनिःसृताः ॥ ६ ॥ तत्सुभीमं महद्युद्धं हरिराक्षससंकुलम् । प्रबभौ शस्त्रबहुलं शिलापादपसंकुलम् ॥७ ॥ धूम्राक्षस्तु धनुष्पाणिर्वानरान्रणमूर्धनि । हसन्विद्रावया-

मास दिशस्ताञ्छरवृष्टिभिः ॥ ८ ॥ धूम्राक्षेणार्दितं सैन्यं व्यथितं प्रेक्ष्य मारुतिः । अभ्यवर्तत संक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥ ९ ॥ क्रोधाद्द्विगुणताम्राक्षः पितुस्तुल्यपराक्रमः । शिलां तां पातयामास धूम्राक्षस्य रथं प्रति ॥ १० ॥ आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदामुद्यम्य संभ्रमात् । रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत ॥ ११ ॥ सा प्रमथ्य रथं तस्य निपपात शिला भुवि ॥१२॥ स त्यक्त्वा तु रथं तस्य हनूमान्मारुतात्मजः । विद्राव्य राक्षसं सैन्यं धूम्राक्षमभिदुद्रुवे ॥१३॥ तमापतन्तं धूम्राक्षो गदामुद्यम्य वीर्यवान् । विनर्दमानः सहसा हनूमन्तमभिद्रवत् ॥ १४ ॥ तस्य क्रुद्धस्य रोषेण गदां तां बहुकण्टकाम् । पातयामास धूम्राक्षो मस्तकेऽथ हनूमतः ॥ १५ ॥ स कपिर्मारुतबलस्तं प्रहारमचिन्तयन् । धूम्राक्षस्य शिरोमध्ये गिरिशृङ्गमपातयत् ॥ १६ ॥ स विस्फारितसर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेणताड़ितः । पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव पर्वतः ॥ १७ ॥ धूम्राक्षं निहतं दृष्ट्वा हतशेषाः निशाचराः । त्रस्ता प्रविविशुर्लंकां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः ॥ १८ ॥

टीका—भीमविक्रमवाले धूम्राक्ष राक्षस को निकलता हुआ देखकर सारे वानर युद्ध चाहते हुए प्रहर्षित हो नाद करते भए ॥ १ ॥ फिर उन वानर राक्षसों का तुमुल युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥ २ ॥ राक्षस क्रुद्ध हुए भयानक कङ्कपत्रों वाले सीधा जाने वाले तीक्ष्ण तीरों से वानरों को वींधते भए ॥ ३ ॥ और भयङ्कर वेगोंवाले वानर गर्जते हुए वहां २ राक्षस वीरों को पीस डालते भए, और अपने नाम भाषण करते भए ॥ ४ ॥ जीतने से सोहते हुए वानरों से कई राक्षस पीस डालेगए पहले वह मुखों से रुधिर की कै करते भए जोकि (दूसरों का) रुधिर पीने वाले थे ॥ ५ ॥ इधर वानर कई रुधिर से भीगे हुए भूमि पर गिरे, कई त्रिशूलों से वींधे हुए अन्ताड़ियों

से अलग होगये ॥ ६ ॥ वानर और राक्षसों की भीड़वाले उस बड़े भयङ्कर महद् युद्ध में शस्त्र ही शस्त्र चमकते थे, और शिला और वृक्ष भरे पड़े थे, (जो वड़े २ बलवान् अपने २ प्रति द्वन्द्वी पर फैंकते थे) ॥७॥ धूम्राक्ष तो रणके मस्तक पर हंसता हुआ हाथ में धनुष लिये तीरों की वृष्टि से वानरों को दिशाओं में भगाने लगा ॥ ८ ॥ धूम्राक्ष से पीडित हुई सेना को दुःखित देख कर क्रुद्ध हुआ हनुमान् भारी शिला उठाकर सामने आया ॥९॥ क्रोधसे उसके नेत्र दुगने लाल होगए, और उस पिता तुल्य पराक्रमवाले ने उस शिला को धूम्राक्ष के रथपर फैंका ॥ १० ॥ वह उस आती हुई शिला को देखकर जल्दी गदा उठाकर वेग से रथसे उछलकर भूमि पर जाठहरा ॥ ११ ॥ वह शिला उसके रथ को चूर २ करके पृथ्वी पर गिरी ॥ १२ ॥ तब वायुपुत्र हनुमान् उसके रथ को त्यागकर राक्षसों की सेना को भगाकर फिर धूम्राक्ष की ओर दौडा ॥ १३ ॥ वीर्यवान् धूम्राक्ष गदा उठाकर गर्जता हुआ आते हुए हनुमान् की ओर दौडा ॥ १४ ॥ क्रोध से उस अनेक कांटोंवाली गदा को धूम्राक्ष ने क्रुद्ध हुए हनुमान् के सिर परमारा ॥१५॥ वायु के तुल्य बलवाला वह वानर उस प्रहार की परवाह न करके धूम्राक्ष के सिरपर बडा पत्थर फैंकता भया ॥ १६ ॥ शिला से ताडित हुए के सारे अङ्ग पिसगए, और वह टूटे हुए पर्वत की तरह सहसा भूमि पर गिरा ॥ १७ ॥ धूम्राक्ष को हत हुआ देखकर हत शेष राक्षस डरे हुए, वानरों से मारे जाते हुए लंका में प्रविष्ट हुए ॥ १८ ॥

सर्ग २५ ('१३-'१४) वज्रदंष्ट्र की चढाई और अंगद से उसका माराजाना ।

मूल-धूम्राक्षं निहतं श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः । अब्रवीद्राक्षसं क्रूरं वज्रदंष्ट्रं महाबलम् ॥ १ ॥ गच्छ त्वं वीर निर्याहि राक्षसैः परिवा-

रितः । जहि दाशरथिं रामं सुग्रीवं वानरैः सह ॥ २ ॥ तथेत्युक्त्वा द्रुततरं मायावी राक्षसेश्वरः । निर्जगाम बलैः सार्धं बहुभिः परिवारितः ॥ ३ ॥ निःसृतो दक्षिणद्वारादङ्गदो यत्र यूथपः । ततः प्रवृत्तं तुमुलं हरीणां राक्षसैः सह ॥ ४ ॥ रुधिरौघेण संछन्ना भूमिर्भयकरी तदा । हारकेयूरवस्त्रैश्च छत्रैश्च समलंकृता ॥ ५ ॥ कबन्धानि समुत्पेतुर्भीरूणां भीषणानि वै । भुजपाणिशिरश्छिन्नाश्छिन्नकायाश्च भूतले ॥ ६ ॥ ततो वानरसैन्येन हन्यमानं निशाचरम् । प्राभज्यत बलं सर्वं वज्रदंष्ट्रस्य पश्यतः ॥ ७ ॥ राक्षसान्भयवित्रस्तान्हन्यमानान्प्लवङ्गमैः । दृष्ट्वा स रोषताम्राक्षो वज्रदंष्ट्रः प्रतापवान् ॥ ८ ॥ प्रविवेश धनुष्पाणिस्त्रासयन्हरिवाहिनीम् । शरैर्विदारयामास कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ९ ॥ ततो हरिगणान्भग्नान्दृष्ट्वा वालिसुतस्तदा । क्रोधेन वज्रदंष्ट्रं तमुदीक्षन्तमुदैक्षत ॥ १० ॥ वज्रदंष्ट्रोऽङ्गदश्चोभौ योयुध्येते परस्परम् । चेरतुः परमक्रुद्धौ हरिमत्तगजाविव ॥ ११ ॥ जघ्नतुश्च तदान्योन्यं नर्दन्तौ जयकांक्षिणौ । व्रणैः समुत्थैः शोभेतां पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ १२ ॥ निर्मलेन सुधौतेन खड्गेनास्यमहाच्छिरः । जघान वज्रदंष्ट्रस्य वालिसूनुर्महाबलः ॥ १३ ॥ वज्रदंष्ट्रं हतं दृष्ट्वा राक्षसा भयमोहिताः । त्रस्ता ह्यभ्यद्रवंल्लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः ॥ १४ ॥

टीका—धूम्राक्ष को हत हुआ सुनकर राक्षसेन्द्र रावण ने क्रूर राक्षस महाबली वज्रदंष्ट्र को कहा ॥ १ ॥ जा तू हे वीर राक्षसों से घिरा हुआ बाहर निकल और दशरथसुत राम को और वानरों सहित सुग्रीव को मार ॥ २ ॥ तथास्तु कहकर मायावी राक्षसेश्वर बहुत से दल बल सहित बाहर निकला ॥ ३ ॥ वह दक्षिण द्वार से निकले जिधर अङ्गद यूथपति था, तब वानरों का राक्षसों के साथ तुमुल युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥४॥ तब रुधिर के प्रवाह से ढकी हुई और हार बाहु-

बन्द और वस्त्र और छत्रों से अलंकृत हुई वह भूमि भयावनी होगई ॥ ५ ॥ भीरुओं को डरानेवाले कबन्ध*प्रहार करने लगे, सैनिकों के भुजा हाथ सिर धड़ कट २ कर गिरने लगे ॥ ६ ॥ तब वानरों की सेना से मारी जाती हुई सारी राक्षस सेना वज्रदंष्ट्र के देखते देखते भागने लगी ॥ ७ ॥ वानरों से मारे जाते हुए और भय से डरे हुए राक्षसों को देखकर क्रोध से लाल नेत्रोंवाला प्रतापी बज्रदंष्ट्र ॥ ८ ॥ हाथ में धनुष लिये वानरों की सेना में प्रविष्ट हुआ, और कङ्कपत्रोंवाले सीधा जाने वाले बाणों से (वानरोंको) घायल करने लगा ॥९॥ तब बानरों को भागता हुआ देखकर वालि पुत्र (अङ्गद) देखते हुए बज्रदंष्ट्र को क्रोध से देखता भया ॥ १० ॥ वज्रदंष्ट्र और अङ्गद आपस में दोनों युद्ध में जुटे, और परम क्रुद्ध हुए शेर और मत्तगज की तरह विचरने लगे ॥ ११ ॥ जयाभिलाषी गर्जते हुए परस्पर प्रहार करते भए और उठे हुए ज़ख्मों से फूले हुए केसुओं की तरह प्रतीत होते थे ॥ १२ ॥ तब वालिपुत्र ने निर्मल धोई हुई तलवार से वज्रदंष्ट्र के बड़े सिर को काट डाला ॥ १३ ॥ वज्रदंष्ट्र को हतहुआ देखकर भय से मोहित और वानरों से ताड़े जाते हुए राक्षस लङ्का को भाग गए ॥ १४ ॥

सर्ग २६ (व० ५५-५६) सेनापति अकम्पन का युद्ध और हनुमान् से उसका माराजाना।

मूल—वज्रदंष्ट्रं हतं श्रुत्वा वालीपुत्रेण रावणः । बलाध्यक्षमुवाचेदं कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥ १ ॥ शीघ्रं निर्यान्तु दुर्धर्षा राक्षसा भीमविक्रमाः। अकम्पनं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रास्त्रकोविदम् ॥२॥ राक्षसैः संवृतो घोरैस्तदा निर्यात्यकम्पनः । नहि कम्पयितुं शक्यः सुरैरपि

---

* कबन्ध = सिरकटे धड़, जो सिर के कट जाने पर पहले वेग से कुछ देर लड़ते जाते हैं।

महामृधे ॥३॥ तेषां युद्धं महारौद्रं संजज्ञे कपिरक्षसाम् । रामरावण योरर्थे समभित्यक्तदेहिनः ॥ ४ ॥ रजश्चारुणवर्णाभं सुभीममभवद्भृशम् । उद्धृतं हरिरक्षोभिः संरुरोध दिशो दश ॥ ५ ॥ न ध्वजो न पताका वा चर्म वा तुरगोपिवा । आयुधं स्यन्दनो वापि ददृशे तेन रेणुना ॥ ६ ॥ शब्दश्च सुमहांस्तेषां नर्दतामभिधावताम् श्रूयते तुमुलो युद्धे न रूपाणि चकाशिरे ॥ ७ ॥ ततस्तु रुधिरौघेण सिक्तं ह्यपगतं रजः । शरीरशवसंकीर्णा बभूव च वसुन्धरा ॥८॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरा हरयः कुमुदो नलः । मैन्दश्च परमक्रुद्धश्चक्रुर्वेगमनुत्तमम् ॥ ९ ॥ कदनं सुमहच्चक्रुर्लीलया हरिपुङ्गवाः । ममन्थू राक्षसान्सर्वे नानाप्रहरणैर्भृशम् ॥१०॥ तद्दृष्ट्वा सुमहत्कर्म कृतं वानरसत्तमैः । दृष्ट्वा तु कर्म शत्रूणां सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥ ११ ॥ तत्रैव ताव-त्त्वरितो रथं प्रापय सारथे । एते च बलिनो घ्नन्ति सुबहून्राक्षसान्रणे ॥१२॥ एते च बलवन्तो वा भीमकोपाश्च वानराः । एतान्निहन्तुमिच्छामि समरश्लाघिनो ह्यहम् ॥ १३ ॥ ततः प्रचलिताश्वेन रथेन रथिनां वरः । हरीनभ्यपतद्दूराच्छरजालैरकम्पनः ॥ १४ ॥ अकम्पनशरैर्भग्नाः सर्व एवाभिदुद्रुवुः ॥ १५ ॥ तान्मृत्युवशमापन्नानकम्पनशरानुगान् । समीक्ष्य हनुमाञ्ज्ञातीनुपतस्थे महाबलः ॥१६॥ व्यवस्थितं हनूमन्तं ते दृष्ट्वा प्लवगर्षभाः । बभूवुर्बलवन्तो हि बलवन्तमुपाश्रिताः ॥ १७ ॥ अकम्पनस्तु शैलाभं हनुमन्तमवस्थितम् । महेन्द्र इव धाराभि शरैरभिववर्ष ह ॥ १८ ॥ अचिन्तयित्वा बाणौघञ्शरीरे पातितान्कपिः । अकम्पनवधार्थाय मनो दध्रे महाबलः ॥ १९ ॥ स प्रहस्य महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः । अभिदुद्राव तद्रक्षः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ २० ॥ तस्याथ नर्दमानस्य दीप्यमानस्य तेजसा । बभूव रूपं दुर्धर्षं दीप्तस्येव विभावसोः ॥ २१ ॥ तमापतन्तं संक्रुद्धं राक्षसानां भयावहम् । ददर्श कम्पनो वीरश्चु-

क्षोभ च ननाद च ॥ २२ ॥ स वृक्षेण हतस्तेन सक्रोधेन महात्मना।
राक्षसो वानरेन्द्रेण पपात च ममार च ॥२६॥ तं दृष्ट्वा निहतं भूमौ
राक्षसास्ते पराजिताः। लङ्कामभिययुस्त्रासाद्वानरैस्तैरभिद्रुताः॥२४॥

टीका—वज्रदंष्ट्र को बालिपुत्र से हत हुआ सुनकर रावण हाथ जोड़ कर सामने खड़े हुए सेनाध्यक्ष से बोला ॥ १ ॥ भयङ्कर पराक्रम वाले दुर्धर्ष राक्षस सब शस्त्र अस्त्रों के जानने वाले अकम्पन को आगे करके शीघ्र चढ़ाई करें ॥ २ ॥ तब घोर राक्षसों से घिरा हुआ अकम्पन चढ़ा, जिसको महायुद्ध में देवता भी कम्पा नहीं सक्ते हैं ॥ ३ ॥ उन वानर और राक्षसों का महारौद्र युद्ध प्रवृत्त हुआ, जो राम और रावण के अर्थ अपने देहों को त्यागे हुए थे ॥ ४ ॥ वानर और राक्षसों से उठाई धूल अतीव भयावनी होगई और उसने दशों दिशाओं को ढक लिया ॥ ५ ॥ उस धूल में ध्वजा पताका ढाल घोड़ा शस्त्र वा रथ नहीं दीखते थे ॥ ६ ॥ गर्ज २ कर दौड़ते हुए योद्धाओं का महान् तुमुल शब्द सुनाई देता था, रूप नहीं दीखते थे ॥ ७ ॥ तिस पीछे रुधिर के प्रवाह से सेचन की हुई धूल बैठ गई, और पृथिवी मृतक शरीरों से भर गई ॥ ८ ॥ इस अवसर में वीर वानर कुमुद नल और मैन्द परम क्रुद्ध हुए अत्यन्त वेग करते भए ॥ ९ ॥ उन वानरश्रेष्ठों ने बहुत विनाश किया, अनेक शस्त्रों से राक्षसों को बहुत पीस डाला॥१०॥ युद्ध में इस बड़े भारी तीव्र कर्म को देख कर अकम्पन क्रोध से मूर्छित हुआ सारथि से यह वाक्य बोला ॥ ११ ॥ हे सारथे वहीं मेरे रथ को जल्दी स्थापन कर, यह बलवान् वानर रण में सारे राक्षसों को मार रहे हैं ॥ १२ ॥ यह बल वाले भङ्कुर कोपवाले वानर हैं, इन को मैं मारना चाहता हूं, जो युद्ध में श्लघा वाले हैं ॥ १३ ॥ तब वह रथिवर अकम्पन दौड़ते हुए घोड़ों वाले रथ पर

दूर से बाणसमुह फेंकता हुआ बानरों पर आपड़ा ॥ १४ ॥ अकम्पन के बाणों से भगाए हुए सभी भाग निकले ॥ १५ ॥ अकम्पन के बाणों के साथ मृत्युवश को प्राप्त होते हुए उन ज्ञातियों को देखकर महाबली हनुमान् आ डटा ॥ १६ ॥ हनुमान् को आखडा हुआ देखकर वह वानरश्रेष्ठ बलवान् का सहारा पाकर फिर प्रबल होगए ॥१७॥ अकम्पन तो पर्वत तुल्य हनुमान् को खडा हुआ देखकर महेन्द्र पर्वत पर मेंह की धाराओं के तुल्य उस पर तीरों की धारा बरसाता भया ॥ १८ ॥ पर वह महाबली वानर शरीर पर गिरते हुए बाणों की परवाह न करके अकम्पन के बध में दृढ मन करता भया ॥ १९ ॥ वह महातेजस्वी पवनपुत्र हंस कर पृथ्वी को कम्पाता हुआ उस राक्षस की ओर दौड़ा ॥२०॥ तेज से चमकते हुए और गर्जते हुए उस का रूप जलते हुए अग्नि की तरह दुर्धर्ष होगया ॥ २१ ॥ राक्षसों के भयलाने वाले उसको क्रुद्ध हो आता हुआ देखकर अकम्पन बड़ा क्षुब्ध हुआ और गर्जा ॥ २२ ॥ पर वह उस महात्मा बानरेन्द्र से क्रोध के साथ वृक्ष से हत हुआ राक्षसेन्द्र गिरपड़ा और मरगया ॥ २३ ॥ उस को भूमि पर मरा देखकर पराजित हुए वह राक्षस उन वानरों से भगाए हुए डर से लंका को भाग गए ॥ २४ ॥

सर्ग२७(व०५७-५८) प्रहस्त का घोर संग्राम और नील से उसका वध

मूल—अकम्पनवधं श्रुत्वा क्रुद्धो वा राक्षसेश्वरः । उवाचात्महितं काले प्रहस्तं युद्धकोविदम् ॥ १ ॥ पुरस्योपनिविष्टस्य सहसा पीडितस्य ह । नान्ययुद्धात्प्रपश्यामि मोक्षं युद्धविशारदाः ॥ २ ॥ अहं वा कुम्भकर्णो वा त्वं वा सेनापतिर्मम । इन्द्रजिद्वा निकुम्भो वा वहेयुर्भारमीदृशम् ॥३॥ स त्वं बलमतः शीघ्रमादाय परिगृह्य च । विजयायाभिनिर्याहि यत्र सर्वे वनौकसः ॥ ४ ॥ रावणेनैवमुक्तस्तु

प्रहस्तो वाहिनीपतिः। राक्षसेन्द्रमुवाचेदमसुरेन्द्रमिवोशनाः ॥ ५ ॥ नहि मे जीवितं रक्ष्यं पुत्रदारधनानि च । त्वं पश्य मां जुहूषन्तं त्वदर्थे जीवितं युधि ॥ ६ ॥ आरुरोह रथं युक्तः प्रहस्तः सज्जकल्पितम् । लंकाया निर्ययौ तूर्णं बलेन महता वृतः ॥ ७ ॥ ततः प्रहस्तं निर्यान्तं दृष्ट्वा रणकृतोद्यमम् । उवाच सस्मितं रामो विभीषण मरिन्दमः ॥८॥ क एष सुमहाकायो बलेन महता वृतः । आगच्छति महावेगः किंरूपबलपौरुषः ॥ ९ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः । एष सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो नाम राक्षसः ॥ १० ॥ लंकायां राक्षसेन्द्रस्य त्रिभागबलसंवृतः । वीर्यवानस्त्रविच्छूरः सुप्रख्यातपराक्रमः ॥११॥ ततः प्रहस्तं निर्यान्तं भीमं भीमपराक्रमम् । ददर्श महती सेना वानराणां बलीयसाम् ॥ १२ ॥ तेषामन्योन्यमासाद्य संग्रामः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ बहवो राक्षसा युद्धे बहून्वानरपुङ्गवान् । वानरा राक्षसांश्चापि निजघ्नुर्बहवो बहून् ॥ १४ ॥ नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः । एते प्रहस्तसचिवाः सर्वे जघ्नुर्वनौकसः ॥ १५ ॥ तेषां निपततां शीघ्रं निघ्नतां चापि वानरान् । द्विविदो गिरिश्रृङ्गेण जघानैकं नरान्तकम् ॥१६॥ दुर्मुखः पुनरुत्थाय कपिः सविपुलद्रुमम् । राक्षसं विप्रहस्तं तु समुन्नतमपोथयत् ॥१७॥

टीका-अकम्पन के वध को सुनकर क्रुद्ध हुआ राक्षसेश्वर राजा युद्ध निपुण प्रहस्त से अपना हित वाक्य बोला॥ १ ॥ हे युद्ध निपुण यह पुर जिस के निकट शत्रु छावनी डाले हुए तंगकर रहा है इसका बचाव किसी दूसरे के युद्ध से नहीं देखता हूं ॥२॥ मैं वा कुम्भकर्ण, वा तू मेरा सेनापति वा इन्द्रजित्, वा निकुम्भ ऐसे भार को उठा सक्ते हैं ॥ ३ ॥ सो तू यहां से अपने अधीन सेना लेकर विजय के लिये चढ़ाई कर जहां सारे वानर हैं ॥४॥ रावण से ऐसे कहे हुए सेनापति प्रहस्त ने देवेन्द्र को बृहस्पति के

तुल्य राक्षसेन्द्र को यह कहा ॥५॥ मुझे जीवन वा पुत्र स्त्री और धन रक्षणीय नहीं हैं, युद्ध में तेरे लिये अपने जीवन को होम करता हुआ देख ॥६॥ तब सावधान हुआ प्रहस्त शस्त्रों से सजे हुए रथ पर आरूढ हुआ और जल्दी महती सेना से घिरा हुआ लंका से बाहर निकला ॥७॥ तब रण में किये उद्यम वाले प्रहस्त को बाहर निकलता हुआ देखकर शत्रुओं का दबाने वाला राम मुस-कराकर विभीषण से बोला ॥ ८ ॥ कौन यह बहुत बड़े डील डौल वाला बड़े वेग वाला बड़ी सेना से युक्त हुआ आ रहा है इस का रूप बल पौरुष क्या है ॥ ९ ॥ राघव के वचन को सुन कर विभीषण बोला, यह प्रहस्त नाम राक्षस उस का सेनापति है ॥ १० ॥ लंका में राक्षसेन्द्र की तीन भाग सेना का अध्यक्ष है, वीर्यवान्, अस्त्रवेत्ता, शूर, प्रसिद्ध पराक्रम वाला है ॥ ११ ॥ महा-बली वानरों की महती सेना ने राक्षसों को बड़ी सेना से घिरे हुए प्रहस्त को निकलते हुए देखा ॥ १२ ॥ उन का एक दूसरे के निकट आकर बहुत बड़ा संग्राम मचा ॥ १३ ॥ युद्ध में बहुत से राक्षसों ने बहुत से वानरों को और बहुत से वानरों ने बहुतसे राक्षसों को मार गिराया ॥ १४ ॥ नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत यह सारे प्रहस्त के मन्त्री वानरों को मारते भए ॥१५॥ वह जब झपट कर जल्दी वानरों को मार रहे थे, तो उन में से एक नरान्तक को द्विविद ने बड़ी शिला से मार गिराया ॥१६॥ फिर दुर्मुख वानर आगे बढ़ा और उस ने फुर्तीले समुन्नत राक्षस को विपुल वृक्ष से चूर २ कर दिया ॥१७॥

मूल—जाम्बवांस्तु सुसंक्रुद्धः प्रगृह्य महतीं शिलाम् । पातयामास तेजस्वी महानादस्य वक्षसि ॥ १८ ॥ अथ कुम्भहनुस्तत्र तारेणा-साद्य वीर्यवान् । वृक्षेण महता सद्यः प्राणान्सन्त्याजयद्रणे ॥१९॥

अमृष्यमाणस्तत्कर्म प्रहस्तो रथमाश्रितः। चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्वनौकसाम् ॥२०॥ प्रहस्त हि शरौघेण राक्षसो रणदुर्मदः। अर्दयामास संक्रुद्धो वानरान्परमाहवे ॥२१॥ वानराणां शरीरैस्तु राक्षसानां च मेदिनी। बभूवातिचिता घोरैः पर्वतैरिव संवृता ॥२२॥ सा मही रुधिरौघेण प्रच्छन्ना संप्रकाशते। संछन्ना माधवे मासि पलाशैरिव पुष्पितैः ॥२३॥ ततः सृजन्तं बाणौघान्प्रहस्तं स्यन्दने स्थितम्। ददर्श तरसा नीलो विधमन्तं प्लवङ्गमान् ॥ २४ ॥ समीक्ष्याभिद्रुतं युद्धे नीलमेवाभिदुद्रुव। नीलाय व्यसृजद्बाणान्प्रहस्तो वाहिनीपतिः॥२५॥ ततो रोषपरीतात्मा धनुस्तस्य दुरात्मनः। बभञ्ज तरसा नीलो ननाद च पुनः पुनः ॥ २६ ॥ विधनुः स कृतस्तेन प्रहस्तो वाहिनीपतिः। प्रगृह्य मुसलं घोरं स्यन्दनादवपुप्लुवे ॥२७॥ आजघान तदा नीलं ललाटे मुसलेन सः। प्रहस्तः परमायत्तस्ततः सुस्राव शोणितम् ॥२८॥ प्रहस्तस्य शिलां नीलो मूर्ध्नि तूर्णमपातयत्। बिभेद बहुधा घोरां प्रहस्तस्य शिरस्तदा ॥२९॥ स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः। पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः॥ ३० ॥ हते प्रहस्ते नीलेन तदकम्प्यं महाबलम्। राक्षसानामहृष्टानां लंकामभिजगाम ह ॥३१॥

टीका—फिर क्रुद्ध हुए तेजस्वी जाम्बवान्‌ने महती शिला उठाकर महानाद की छाती पर दे मारी ॥१८॥इसके अनन्तर तारने पहुंचकर वीर्यवान् कुम्भहनु के महावृक्ष से रण में प्राण छुड़ा दिये ॥१९॥ इस कर्म को न सहारता हुआ रथ पर चढ़ा हुआ प्रहस्त हाथ में धनुष लिये वानरों का घोर विनाश करता भया ॥ २० ॥ क्रुद्ध हुए रणदुर्मद उस राक्षस ने बड़े बाणसमूह से परम युद्ध में वानरों का बहुत तंग कर दिया ॥ २१॥ पृथिवी पर वानरों और राक्षसों के शरीर के ढेर लग गए, जैसाकि पृथिवी पर्वतों

से ढकी हो ॥२२॥ रुधिर के प्रवाह से ढकी हुई वह पृथिवी वैशाख मास में फूले हुए केसुओं से ढकी की तरह प्रतीत होती थी ॥ २३ ॥ तब नील ने रथ पर स्थित प्रहस्त को बाणों का प्रवाह छोड़ते हुए और वानरों को जल्दी मारते हुए देखा ॥२४॥ देखकर युद्ध में सामने आते हुए नील की तरफ ही प्रहस्त सेनापति दौड़ा और नील पर बाण छोड़ता भया ॥ २५ ॥ तब क्रोध से भरे हुए मन वाले नील ने उस दुरात्मा के धनुष को तोड़ दिया और बार २ सिंहनाद किया ॥ २६ ॥ इस प्रकार जब उस ने सेनापति प्रहस्त को धनुष रहित करदिया, तो वह घोर मूसल पकड़कर रथ से कूदा ॥ २७ ॥ उस मूसल से प्रहस्त ने बड़े उद्योग के साथ नील के सिर पर प्रहार किया उस से लहू बह निकला ॥२८॥ पर नील ने झटपट प्रहस्त के सिर पर घोर शिला दे मारी, जिसने प्रहस्त के सिर के अनेक टुकड़े कर दिये ॥ २९ ॥ उसके प्राण शोभा शक्ति इन्द्रिय सब नष्ट होगए और वह कटे मूलवाले वृक्ष की तरह सहसा पृथिवी पर आगिरा ॥ ३० ॥ नील द्वारा प्रहस्त के मारा जाने पर अप्रसन्न हुए राक्षसों की वह अकम्प्य बड़ी सेना लङ्का को भाग गई ॥ ३१ ॥

सर्ग २८ (व० ५९) रावण की स्वयं युद्ध के लिये चढ़ाई

मूल—संख्ये प्रहस्तं निहतं निशम्य क्रोधार्दितः शोकपरीतचेताः । उवाच तान्राक्षसयूथमुख्यानिन्द्रो यथा निर्जरयूथमुख्यान् ॥ १ ॥ सोऽहं रिपुविनाशाय विजयायाविचारयन् । स्वयमेव गमिष्यामि रणशीर्षं तदद्भुतम् ॥ २ ॥ अद्यतद्वानरानीकं रामं च सहलक्ष्मणम् । निर्दहिष्यामि बाणौघैर्वनं दीप्तैरिवाग्निभिः ॥ ३॥ स शंखभेरीपणवप्रणादैरास्फोटितक्ष्वेडितसिंहनादैः । पुण्यैः स्तवैश्चापि सुपूज्यमानस्तदा ययौ राक्षसराजमुख्यः ॥ ४ ॥ तद्राक्षसानीकमतिप्रचण्ड-

मालोक्य रामो भुजगेन्द्रबाहुः । विभीषणं शस्त्रभृतां वरिष्ठमुवाच
सेनानुगतः पृथुश्रीः ॥ ५ ॥ नानापताकाध्वजछत्रजुष्टं प्रासासि-
शूलायुधशस्त्रजुष्टम् । कस्येदमक्षोभ्यमभीरुजुष्टं सैन्यं महेन्द्रोपमनाग-
जुष्टम् ॥ ६ ॥ ततस्तु रामस्य निशम्य वाक्यं विभीषणः शक्रसमान-
वीर्यः । शशंस रामस्य बलप्रवेकं महात्मनां राक्षसपुङ्गवानाम् ॥७॥
यत्रैतदिन्दुप्रतिमं विभाति च्छत्रं सितं सूक्ष्मशलाकमग्रयम् । अत्रैव
रक्षोधिपतिर्महात्मा भूतैर्वृतो रुद्र इवाभवाति ॥८॥ प्रत्युवाच ततो
रामो विभीषणमरिन्दमः । अहो दीप्तमहातेजा रावणो राक्षसेश्वरः
॥ ९ ॥ आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिभिर्भाति रावणः । न व्यक्तं
लक्ष्यते ह्यस्य रूपं तेजःसमावृतम् ॥ १० ॥ सर्वे पर्वतसंकाशाः सर्वे
पर्वतयोधिनः । सर्वे दीप्तायुधधरा योधास्तस्य महात्मनः ॥ ११ ॥
दिष्ट्यायमद्य पापात्मा मम दृष्टिपथं गतः । अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि
सीताहरणसंभवम् ॥ १२॥ एवमुक्त्वा ततो रामो धनुरादाय वीर्य-
वान् । लक्ष्मणानुचरस्तस्थौ समुद्धृत्य शरोत्तमम् ॥ १३ ॥

टीका—युद्ध में प्रहस्त को सुन कर क्रोध से पीडित और शोक से भरे चित्तवाला रावण देवसमूहों के मुखियों से इन्द्र की तरह राक्षस समूहों के मुखियों से बोला ॥ १ ॥ सो मैं शत्रु के विनाश और अपने विजय के लिये कोई विचार न करता हुआ स्वयमेव उस अद्भुत रण के मस्तक पर जाऊंगा ॥ २ ॥ आज उस वानर-सेना को और रामलक्ष्मण को जलती हुई अग्नियों से बन की तरह बाण समूहों से दग्ध करूंगा ॥ ३ ॥ शंख भेरी नगारों की ध्वनियों से योद्धाओं के रानों और भुजाओं की ध्वनियों और सिंहनादों से और पवित्र स्तुतियों से पूजित हुआ वह राक्षस-राज गया ॥ ४ ॥ उस अति प्रचण्ड राक्षससेना को देखकर भुज-गेन्द्र तुल्य भुजाओं वाला सेना का साथी बड़ी शोभावाला राम

शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ विभीषण से बोला ॥ ५ ॥ नाना झण्डे झण्डियों और छत्र से सेवित, भाला, तलवार, शूल, शस्त्र, अस्त्र से सेवित, महेन्द्र पर्वत तुल्य हाथियों से युक्त, शूरवीरों से सेवित, यह किस का अथाह बल है ॥ ६ ॥ तब राम के वाक्य को सुनकर इन्द्र-तुल्य वीर्यवाला राक्षस महात्मा राक्षसवरों के बल का भेद कहता भया ॥ ७ ॥ जहां यह सूक्ष्म शलाकाओं वाला चन्द्रतुल्य श्वेत उत्तम छत्र प्रतीत होता है, यही वह महात्मा राक्षसपति रावण गणों से युक्त रुद्र की तरह चमक रहा है ॥ ८ ॥ तब शत्रुओं के दमन करनेवाले रामने विभीषण से प्रतिवचन कहा, अहो राक्षसेश्वर रावण जलते हुए बड़े तेज वाला है ॥ ९ ॥ रश्मियों से युक्त सूर्य के तुल्य रावण का तेज नहीं सहारा जाता है, तेज से ढकी हुई इसकी सूक्ष्म बनावट देखी नहीं जासक्ती है ॥ १० ॥ इस महात्मा के योधे सभी पर्वतों जैसे, पर्वतों से युद्ध करने वाले और चमकते हुए शस्त्रों को धारण किये हुए हैं ॥ ११ ॥ भाग्य से आज यह पापात्मा मेरे दृष्टिपथ हुआ है, आज इस पर सीताहरण से उत्पन्न हुए क्रोध को छोड़ूंगा ॥ १२ ॥ यह कहकर वीर्यवान् राम धनुष पकड़कर और उत्तम बाण निकालकर लक्ष्मण के साथ तय्यार हो ठहरा ॥ १३ ॥

सर्ग २९ (व० ५९) रावण और लक्ष्मण का युद्ध और लक्ष्मण की मूर्छा

मूल—तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य दुद्राव रक्षोधिपतिःहरीशः। महाहि-कल्पं शरमन्तकाभं समाददे राक्षसलोकनाथः ॥ १ ॥ बाणं महेन्द्रा-शनितुल्यवेगं चिक्षेप सुग्रीववधाय रुष्टः । स सायकार्तो विपरीत-चेताः कूजन्पृथिव्यां निपपात वीरः ॥ २ ॥ तं वीक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः ॥ ३ ॥ ततो महात्मा स धनु-

र्धनुष्मानादाय रामः सहसा जगाम । तं लक्ष्मणः प्राञ्जलिरभ्युपेत्य
उवाच रामं परमार्थयुक्तम् ॥ ४ ॥ काममार्य सुपर्याप्तो वधायास्य
दुरात्मनः । विधमिष्याम्यहं चैतमनुजानीहि मां विभो ॥ ५ ॥ तम-
ब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः । गच्छ यत्नपरश्चापि भव लक्ष्मण
संयुगे ॥६॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा संपरिष्वज्य पूज्य च । अभि-
वाद्य च रामाय ययौ सौमित्रिराहवे ॥ ७ ॥ स रावणं वारणहस्त-
बाहुं ददर्श भीमोद्यतदीप्तचापम् । प्रच्छादयन्तं शरवृष्टिजालैस्तान्वा-
नरान्भिन्नविकीर्णदेहान् ॥ ८ ॥ तमाह सौमित्रिरदीनसत्त्वो विस्फा-
रयन्तं धनुरप्रमेयम् । अवेहि मामद्य निशाचरेन्द्र न वानरांस्त्वं प्रति-
योद्धुमर्हसि ॥ ९ ॥ स तस्य वाक्यं प्रतिपूर्णघोषं ज्याशब्दमुग्रं च
निशम्य राजा । आसाद्य सौमित्रिमुपस्थितं तं रोषान्वितं वाचमुवाच
रक्षः ॥ १० ॥ दिष्ट्यासि मे राघव दृष्टिमार्गं प्राप्तोऽन्तगामी विप-
रीतबुद्धिः । अस्मिन्क्षणे यास्यसि मृत्युलोकं संसाद्यमानो मम
बाणजालैः ॥ ११ ॥ तमाह सौमित्रिरविस्मयानो विकत्थसे पाप-
कृतां वरिष्ठ ॥ १२ ॥ जानामि वीर्यं तव राक्षसेन्द्र बलं प्रतापं च
पराक्रमं च । अवस्थितोऽहं शरचापपाणिरागच्छ किं मोघविकत्थ-
नेन ॥ १३ ॥ स एवमुक्तः कुपितः ससर्ज रक्षोधिपः सप्त शरान्सु-
पुङ्खान् । तांल्लक्ष्मणः काञ्चनचित्रपुङ्खैश्चिच्छेद बाणैर्निशिताग्रधारैः
॥१४॥ तान्प्रेक्षमाणः सहसा निकृत्तान्निकृत्तभोगानिव पन्नगेन्द्रान्।
लङ्केश्वरः क्रोधवशं जगाम ससर्ज चान्यान्निशितान्पृषत्कान् ॥१५॥
स बाणवर्षं तु ववर्ष तीव्रं रामानुजः कार्मुकसंप्रयुक्तम् । क्षुरार्ध-
चन्द्रोत्तमकर्णभल्लैः शरांश्च चिच्छेद न चुक्षुभे च ॥ १६ ॥ स
बाणजालान्यपि तानि तानि मोघानि पश्यंस्त्रिदशारिराजः । वि-
सिस्मिये लक्ष्मणलाघवेन पुनश्च बाणान्निशितान्मुमोच ॥ १७ ॥
स लक्ष्मणो रावणसायकार्तश्चचाल चापं शिथिलं प्रगृह्य । पुनश्च

संज्ञां प्रतिलभ्य कृच्छ्राच्चिच्छेद चापं त्रिदशेन्द्रशत्रोः ॥ १८ ॥
निकृत्तचापं त्रिभिराजघान बाणैस्तदा दाशरथिः शिताग्रैः । स
सायकार्तो विचचाल राजा कृच्छ्राच्च संज्ञां पुनराससाद ॥ १९ ॥
जग्राह शक्तिं स्वयमुग्रशक्तिः स्वयंभुदत्तां युधि देवशत्रुः । चिक्षेप
शक्तिं तरसा ज्वलन्तीं सौमित्रये राक्षसराष्ट्रनाथः ॥ २० ॥ तामा-
पतन्तीं भरतानुजोऽस्त्रैर्जघान बाणैश्च हुताग्निकल्पैः । तथापि सा
तस्य विवेश शक्तिर्भुजान्तरं दाशरथेर्विशालम् ॥ २१ ॥ स शक्ति-
माञ्शक्तिसमाहतः सञ्जज्वाल भूमौ स रघुप्रवीरः । तं विह्वलन्तं
सहसाभ्युपेत्य जग्राह राजा तरसा भुजाभ्याम् ॥ २२ ॥ ततः क्रुद्धो
वायुसुतो रावणं समभिद्रवत् । आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन
मुष्टिना ॥ २३ ॥ तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः । जानु-
भ्यामगमद्भूमौ चचाल च पपात च ॥ २४ ॥ हनूमानथ तेजस्वी
लक्ष्मणं रावणार्दितम् । आनयद्राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम् २५

टीका—उस राक्षसपति को सहसा आता हुआ देखकर सुग्रीव उस की ओर दौड़ा, और राक्षसलोक के स्वामी ने महानाग के तुल्य यम रूप एक बाण छोड़ा ॥ १ ॥ और महेन्द्र के वज्र तुल्य वेगवाले उस बाण को सुग्रीव के बध के लिये फैंका, उस बाण से पीड़ित हुआ वह वीर पुकारता हुआ बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा ॥ २ ॥ उसको भूमि पर बेहोश गिरा हुआ देखकर राक्षस प्रहर्षित हुए युद्ध में गर्जते भए ॥ ३ ॥ तब धनुर्धारी महात्मा राम धनुष लेकर जल्दी उधर गये, पर लक्ष्मण राम से हाथ जोड़ यह उत्तम वचन बोला ॥ ४ ॥ बेशक इस दुरात्मा के मारने को आप सुपर्याप्त हैं, पर इसको मैं मारूंगा, हे विभो मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ५ ॥ महातेजस्वी सच्चे पराक्रमवाले राम ने उसे कहा, हे लक्ष्मण जा और युद्ध में यत्नपरायण हो ॥ ६ ॥ राम के बचन को सुनकर

गले लगकर पूजकर और अभिवादन करके लक्ष्मण युद्ध पर चढ़ा ॥ ७ ॥ उसने हाथी के सूंड तुल्य भुजावाले भयङ्कर तय्यार चमकते हुए धनुषवाले रावण को, बाणों की वर्षा से वानरों को ढांपता हुआ, और उनकी देहों को फोड़ता और बिखेरता हुआ, देखा ॥८॥ अप्रमेय धनुष को घुमाते हुए उससे उदार हृदय लक्ष्मण बोला मेरी ओर आ हे राक्षसेन्द्र तू वानरों से प्रतियुद्ध के योग्य नहीं है ॥ ९ ॥ वह राजा उसके पूर्ण ध्वनिवाले वाक्य को और ज्या शब्द को सुनकर और उस लक्ष्मण को सामने आया देखकर क्रोध से युक्त वचन बोला ॥ १० ॥ भाग्य से तू हे राघव मेरे दृष्टि मार्ग में आया है तू अब मरने लगा है और इसीलिये विपरीत-बुद्धि हुआ है, मेरे बाण समूहों से पीड़ित हुआ तू इसी क्षण मृत्यु लोक को प्राप्त होगा ॥ ११ ॥ लक्ष्मण हैरान न होता हुआ उससे बोला, हे पाप के करनेवालों में बढे हुए तू अपनी आप प्रशंसा करता है ॥ १२ ॥ हे राक्षसेन्द्र मैं तेरे वीर्य बल प्रताप और पराक्रम को जानता हूं, आजा, मैं हाथ में धनुष बाण लिये खडा हूं, व्यर्थ श्लाघा से क्या ॥ १३ ॥ ऐसे कहे हुए राक्षसपति ने कुपित होकर तेज नोकोंवाले सात बाण छोडे, पर लक्ष्मण ने सुनहरी विचित्र नोकों वाले तीक्ष्ण अग्र धारावाले बाणों से उनको काट दिया ॥ १४ ॥ जब लङ्केश ने उनको कटे हुए फणों वाले नागों की तरह सहसा कटते हुए देखा, तो वह क्रोध में आया, और उसने और तीक्ष्ण बाण छोडे ॥ १५ ॥ इधर लक्ष्मण ने अपने धनुष से तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की, और छुरे, अर्धचन्द्र, उत्तमकर्ण और भालों से उसके बाणों को काट दिया और घबराया नहीं ॥ १६ ॥ वह राक्षसराज उन २ बाण समूहों को व्यर्थ होता देखकर लक्ष्मण के लाघव से बडा हैरान हुआ और फिर तेज़ बाण छोडता भया ॥ १७ ॥

रावण के बाणों से पीड़ित हुआ लक्ष्मण कांप गया और उसके हाथ से धनुष ढीला होगया, फिर बड़ी कठिनता से होश में आ उस ने राक्षसराज के बाण को काट दिया॥ १८ ॥ उस के धनुष को काटकर लक्ष्मण तीक्ष्ण अग्रवाले तीव्र बाणों से उसे ताड़ता भया, बाणों से पीड़ित हुआ वह राजा विचल गया और बड़ी कठिनता से फिर होश में आया ॥ १९ ॥ अब युद्ध में स्वयं उग्र शक्तिवाले राक्षस ने ब्रह्मा से दी हुई शक्ति पकड़ी और राक्षस-राज्य के स्वामी ने जलती हुई वह शक्ति वेग से लक्ष्मण पर फैंकी ॥ २० ॥ उस आती हुई शक्ति को लक्ष्मण ने प्रज्वलित अग्नि तुल्य बाणों से ताडना किया, तथापि वह शक्ति लक्ष्मण की विशाल छाती में अन्दर प्रविष्ट होगई ॥ २१ ॥ वह शक्तिमान् शक्ति से ताडना किया हुआ रघुवीर भूमि पर गिरा उस व्याकुल को झट आकर राजा ने वेग से दोनों भुजाओं से उठा लिया ॥२२॥ उसी समय क्रुद्ध हुआ हनुमान् रावण की ओर दौडा, और क्रुद्ध होकर अपना वज्रतुल्य मुक्का उसकी छाती पर मारा ॥ २३ ॥ उस मुक्के के प्रहार से राक्षसेश्वर रावण कांपा और गोड़ों से भूमि पर गिरा ॥२४॥ इतने में तेजस्वी हनुमान् रावण से पीडित लक्ष्मण को दोनों भुजाओं से लेकर रामके पास लेआया ॥ २५ ॥

सर्ग ३० (व० ५९) राम से रावण का पराजय

रावणोऽपि महातेजाः प्राप्य संज्ञां महाहवे । आददेनिशितान्बाणाञ्जग्राह च महद्धनुः ॥१॥ आश्वस्तश्च विशल्यश्च लक्ष्मणः शत्रुसूदनः ॥ २ ॥ निपातितमहावीरां वानराणां महाचमूम् । राघवस्तु रणे दृष्ट्वा रावणं समभिद्रवत् ॥ ३ ॥ तस्याभिसंक्रम्य रथं सचक्रं साश्वध्वजच्छत्रमहापताकम् । ससारथिं साशनिशूलखड्गं रामः प्रचिच्छेद शितैः शराग्रैः ॥ ४ ॥ अथेन्द्रशत्रु स्तरसा जघान

बाणेन वज्राशनिसंनिभेन। भुजान्तरे व्यूढसुजातरूपे वज्रेण मेरुं
भगवानिवेन्द्रः ॥ ५ ॥ यो वज्रपाताशनिसंनिपातान्न चुक्षुभ नापि
चचाल राजा। स रामबाणाभिहतो भृशार्तश्चचाल चापं च मुमोच
वीरः ॥ ६ ॥ तं विह्वलन्तं प्रसमीक्ष्य रामः समाददे दीप्तमथार्धच-
न्द्रम्। तेनार्कवर्णं सहसा किरीटं चिच्छेद रक्षोधिपतेर्महात्मा ॥७॥
गतश्रियं कृत्तकिरीटकूटमुवाच रामो युधि राक्षसेन्द्रम् ॥ ८ ॥
कृतं त्वया कर्म महत्सुभीमं हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम्। तस्मात्परि
श्रान्त इति व्यवस्य न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि ॥ ९ ॥ प्रयाहि
जानामि रणार्दितस्त्वं प्रविश्य रात्रिंचरराज लङ्काम्। आश्वस्य
निर्याहि रथी सधन्वी तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्थः ॥ १० ॥
स एवमुक्तो हतदर्पहर्षो निकृत्तचापः स हताश्वसूतः। शरार्दितो
भग्नमहाकिरीटो विवेश लङ्कां सहसा स्म राजा ॥ ११ ॥

टीका—वह महातेस्वी उस बड़े युद्ध में फिर होश में आकर बडे धनुष और तीक्ष्ण बाणों को पकडता भया ॥१॥ उधर कुछ आराम पाकर शत्रुसूदन लक्ष्मण भी शल्यरहित हुआ ॥ २ ॥ तब राम रण में बानर सेना के बडे २ वीरों को गिरा हुआ देखकर रावण की ओर दौडे ॥ ३ ॥ और हमला करके उसके रथ उसके पहिये घोडे छत्र ध्वजा और झण्डा सारथि वज्र शूल और खड्ग को तीक्ष्ण बाणों से काट दिया ॥ ४ ॥ तब रामने वज्र और बिजली तुल्य बाण से रावण की सोने के भूषणवाली विशाल भुजा पर ताडना किया, जैसे भगवान् इन्द्र ने वज्र से मेरु को ॥ ५ ॥ वह वीर राजा (रावण) जो वज्रपात वा बिजली के पात से क्षुब्ध नहीं हुआ था, न हिला था, वह राम के बाण से अभिहत हुआ अत्यन्त पीडित होकर हिल गया, और उस के हाथ से धनुष छूट गया ॥६॥ उसको व्याकुल देख राम ने चमकता हुआ अर्धचन्द्र पकडा, उस

से उस महात्मा ने राक्षसपति के सूर्यतुल्य चमकवाले मुकुट को झट काट दिया ॥ ७ ॥ तब कटे हुए मुकुटसमूहवाले दूर हुई शोभावाले राक्षसेन्द्र से राम युद्ध में बोले ॥ ८ ॥ तूने बहुत बड़ा भयङ्कर कर्म किया है, तूने मेरे वीरों को मारा है, इसलिये थका हुआ जानकर वाणों से तुझ मृत्यु के वश नहीं लेजाता हूं ॥ ९ ॥ जो मैं जानता हूं तू रण से पीड़ित है, सो हे राक्षसराज लंका में प्रवेश करके तसल्ली पाकर रथ और धनुष के साथ फिर बाहर निकल, तब रथ पर स्थित हुआ तू मेरा बल देखेगा ॥ १० ॥ ऐसे कहा हुआ राजा जिसका दर्प और हर्ष दूर होगया है, धनुष टूट गया है, घोड़े और सारथि मारे गये हैं, बाणों से पीड़ित है, महा मुकुट टूट गया है, वह सहसा लङ्का में प्रविष्ट हुआ ॥ ११ ॥

सर्ग ३१ (व०६०-६२) कुम्भकर्णको जगाकर रणके लिये उत्साहित करना

मूल—समरे जितमात्मानं प्रहस्तं च निषूदितम् । ज्ञात्वा रक्षो भीमबलमादिदेश महाबलः ॥ १ ॥ द्वारेषु यत्नः क्रियतां प्राकारश्चाधिरुह्यताम् । निद्रावशसमाविष्टः कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ॥ २ ॥ सुप्तमुत्थाप्य भीमाक्षं भीमरूपपराक्रमम् । कुम्भकर्णमिदं वाक्यमूचू रावणचोदिताः ॥ ३ ॥ द्रष्टुं त्वां काङ्क्षते राजा सर्वराक्षसपुङ्गवः । गमने क्रियतां बुद्धिर्भ्रातरं संप्रहर्षय ॥ ४ ॥ कुम्भकर्णस्तु दुर्धर्षो भ्रातुराज्ञाय शासनम् । तथेत्युक्त्वा महावीर्यः शयनादुत्पपात ह ॥ ५ ॥ भ्रातुः स भवनं गच्छन्रक्षोबलसमन्वितः । कुम्भकर्णः पदन्यासैरकम्पयत मेदिनीम् ॥ ६ ॥ सोऽभिगम्य गृहं भ्रातुः कक्ष्यामभिविगाह्य च । ददर्शोद्विग्नमासीनं विमाने पुष्पके गुरुम् ॥ ७ ॥ अथ दृष्ट्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णमुपस्थितम् । तूर्णमुत्थाय संहृष्टः सन्निकर्षमुपानयत् ॥ ८ ॥ स भ्रात्रा संपरिष्वक्तो यथावच्चाभिनन्दितः । कुम्भकर्णः शुभं दिव्यं प्रतिपेदे वरासनम् ॥ ९ ॥

स तदासनमाश्रित्य रावणं वाक्यमब्रवीत् । किमर्थमहमादृत्य त्वया राजन्प्रबोधितः ॥१०॥ भ्रातरं रावणः क्रुद्धं कुम्भकर्णमवस्थितम् । रोषेण परिवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां वाक्यमब्रवीत् ॥ ११ ॥ ये राक्षसा मुख्यतमा हतास्ते वानरैर्युधि । वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कथञ्चन ॥ १२ ॥ तदेतद्भयमुत्पन्नं त्रायस्वेह महाबल । नाशय त्वमिमानद्य तदर्थं बोधितो भवान् ॥ १३ ॥ भ्रातुरर्थे महाबाहो कुरु कर्म सुदुष्करम् । त्वय्यस्ति मम च स्नेहः परा सम्भावना च मे ॥१४॥ कुरुष्व मे प्रियहितमेतदुत्तमं यथाप्रियं रणप्रिय बान्धवप्रिय । स्वतेजसा व्यथय सपत्नवाहिनीं शरद्घनं पवनइवोदितो महान् ॥१५॥

टीका—युद्ध में अपने आपको हारा हुआ, और प्रहस्त को मारा गया जानकर महाबली (रावण) ने भीमबल वाले एक राक्षस को आज्ञा दी ॥ १ ॥ द्वारों पर पूरा यत्न करो, और कोटों के ऊपर चढ़जाओ, और निद्रावश में पड़े कुम्भकर्ण को जगाओ ॥ १ ॥ रावण से प्रेरे हुए वह उस भीम नेत्रोंवाले भीमरूप और पराक्रम वाले कुम्भकर्ण को उठाकर यह वाक्य बोले ॥ ३ ॥ सब राक्षसों में श्रेष्ठ राजा आपके दर्शन चाहते हैं, सो चलने में बुद्धि कीजिये और भाई को प्रहर्षित कीजिये ॥ ४ ॥ महावीर्य दुर्धर्ष कुम्भकर्ण भाई की आज्ञा जानकर तथास्तु कहकर शयन से उठा ॥ ५ ॥ राक्षससेना से युक्त हो भाई के भवन को जाता हुआ वह अपने पाओं के रखने से पृथ्वी को कम्पा देताभया ॥६॥ वह भाई के घर पहुंचकर सारी डेवढ़ियों को लंघकर पुष्पक विमान पर बैठे हुए गुरु (बड़ेभाई) को उदास देखताभया ॥७॥ तब रावण कुम्भकर्ण को आया देखकर प्रसन्न हुआ जल्दी उठकर पास ले आया ॥८॥ वह कुम्भकर्ण भाई से गले लगाकर पूरा २ आनन्दित किया हुआ दिव्य शुभ बरासन को स्वीकार करता भया ॥९॥ वह उस

आसन पर बैठकर रावण से यह वाक्य बोला, हे राजन् किसलिये बड़े आदर से मुझे जगाया है ॥ १० ॥ रावण पास स्थित क्रोध में भरे हुए क्रोध से बदले हुए नेत्रों से युक्त भाई कुम्भकर्ण से यह वाक्य बोला ॥ ११ ॥ जो मुख्यतम राक्षस थे, वह वानरों ने युद्ध में मार डाले हैं, और वानरों का क्षय युद्ध में किसी तरह नहीं देखता हूं ॥ १२ ॥ सो यह भय उत्पन्न हुआ है, इस में हे महाबल रक्षा कर इनको अब तू मार इसलिये तुझे जगाया है ॥१३॥ भाई के अर्थ हे महाबाहो यह बड़ा दुष्कर कार्य कर, तुझ में मेरा स्नेह है, और बड़ी संभावना है ॥ १४ ॥ हे रण के प्यारे हे बन्धुओं के हितैषी अपनी प्रीति अनुसार यह प्रियहित कार्य कर, अपने तेज से शत्रु सेना को पीड़ित कर, जैसे बढ़ा हुआ महान् पवन मेघ को ॥ १५ ॥

सर्ग ३२ (व० ६२-६५) कुम्भकर्ण की युद्ध पर चढ़ाई

मूल–तस्य राक्षसराजस्य निशम्य परिदेवितम् । कुम्भकर्णो बभाषेदं वचनं प्रजहास च ॥ १ ॥ दृष्टो दोषो हि योऽस्माभिः पुरा मन्त्रविनिर्णये । हितेष्वनभियुक्तेन सोऽयमासादितस्त्वया ॥ २ ॥ प्रथमं वै महाराज कृत्यमेतदचिन्तितम् । केवलं वीर्यदर्पेण नानुबन्धो विचारितः ॥ ३ ॥+यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थितः । पूर्वं चोत्तरकार्याणि न स वेद नयानयौ ॥ ४ ॥ अलं राक्षसराजेन्द्र सन्तापमुपपद्यते । रोषं च संपरित्यज्य स्वस्थो भवितुमर्हसि ॥ ५ ॥ अवश्यं च हितं वाच्यं सर्वावस्थागतं मया । बन्धुभावादभिहितं भ्रातृस्नेहाच्च पार्थिव ॥ ६ ॥ सदृशं यच्च कालेऽस्मिन्कर्तुं स्नेहेन बन्धुना। शत्रूणां कदनं पश्य क्रियमाणंमया रणे ॥ ७ ॥ अहमुत्सादयिष्यामि शत्रूंस्तव महाबलान् । यदि शक्रो यदि यमो यदि पावकमारुतौ ॥ ८ ॥ चिन्तया तप्यसे राजन्किमर्थं मयि तिष्ठति ।

मुञ्च रामाद्भयं घोरं निहनिष्यामि संयुगे ॥ ९ ॥ एष निर्याम्यहं युद्धमुद्यतः शत्रुनिर्जये । इत्येवमुक्तः संहृष्टो निर्जगाम महाबलः ॥ १० ॥ आददे निशितं शूलं वेगाच्छत्रुनिबर्हणः । सर्वं कालायसं दीप्तं तप्तकाञ्चनभूषणम् ॥ ११ ॥ अथासनात्समुत्पत्य स्रजं मणिकृतान्तराम् । आबबन्ध महातेजाः कुम्भकर्णस्य रावणः ॥ १२ ॥ भ्रातरं संपरिष्वज्य कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् । प्रणम्य शिरसा तस्मै प्रतस्थे स महाबलः ॥ १३ ॥ पदातयश्च बहवो महासारा महाबलाः । अन्वयू राक्षसा भीमा भीमाक्षाः शस्त्रपाणयः ॥ १४ ॥

टीका—उस राक्षसराज के रोने को सुनकर कुम्भकर्ण यह वचन बोला और हंसा ॥ १ ॥ मन्त्र निर्णय में पहले जो दोष हमने देखा था, अपने हितवादियों (हम) पर विश्वास न करनेवाले आपको वह आ प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥ पहले ही यह काम हे महाराज बिन सोचे केवल वीर्य के दर्प से किया गया है, भाविफल नहीं विचारा गया॥३॥जो अपने ऐश्वर्य के सहारे पर पहले कामों को पीछे और पिछलों को पहले करता है, वह नीति अनीति को नहीं जानता है ॥ ४ ॥ तथापि हे राक्षसराजेन्द्र अब सन्ताप मतकर क्रोध को त्यागकर तू स्वस्थ होने योग्य है ॥ ५ ॥ सब अवस्थाओं में मुझे हित कहना उचित है, सो बन्धुभाव से और भ्रातृ स्नेह से हे पार्थिव मैंने कहा है ॥ ६ ॥ किन्तु इस समय जो एक बन्धु के लिये स्नेह करना उचित है, सो आप देखें रण में मैं शत्रुओं का नाश करता हूं ॥ ७ ॥ मैं तेरे महाबली शत्रुओं को उखाडूंगा, चाहे इन्द्र, यम, अग्नि वा मारुत भी हों ॥८॥ मेरे जीते जी हे राजन् तू क्यों परितप्त होता है, राम से घोर भय को त्याग मैं उसे युद्ध में मारूंगा ॥ ९ ॥ यह मैं शत्रु के जीतने में तय्यार होकर युद्ध के लिये निकलता हूं, यह कहकर वह महाबली हर्षित

हुआ बाहर निकला ॥ १० ॥ उस शत्रुओं के मारने वाले ने तीक्ष्ण शूल हाथ में पकड़ा, जो सारा चमकता हुआ काले लोहे का तपे हुए सोने के भूषणों वाला था ॥ ११ ॥ तब आसन से उठकर महातेजस्वी रावण ने मध्य २ में मणियों वाली (सोने की) माला कुम्भकर्ण को बांधी ॥ १२ ॥ वह महाबली भाई के गले मिलकर प्रदक्षिणा करके और सिर से प्रणाम करके प्रस्थित हुआ ॥ १३ ॥ महाबली चुने हुए बहुत से भयङ्कर भीम नेत्रों वाले प्यादे राक्षस हाथों में शस्त्र लिये उसके साथ गये ॥ १४ ॥

सर्ग ३३ (व० ६६-६७) कुम्भकर्ण का भयानक युद्ध

मूल—स लङ्घयित्वा प्राकारं गिरिकूटोपमो महान् । निर्ययौ नगरात्तूर्णं कुम्भकर्णो महाबलः ॥१॥ ननाद च महानादं समुद्रमभिनादयन् । वृक्षान्गृहीत्वा हरयः संप्रतस्थू रणाजिरे ॥२॥ निर्जघ्नुः परमक्रुद्धाः समदा इव कुञ्जराः । प्रांशुभिर्गिरिशृङ्गैश्च शिलाभिश्च महाबलाः ॥ ३ ॥ तस्य गात्रेषु पतिता भिद्यन्ते बहवः शिलाः । पादपाः पुष्पिताग्राश्च भग्नाः पेतुर्महीतले ॥ ४ ॥ सोऽपि सैन्यानि संक्रुद्धो वानराणां महौजसाम् । ममन्थ परमायत्तो वनान्यग्निरिवोत्थितः ॥ ५ ॥ लोहितार्द्रास्तु बहवः शेरते वानरर्षभाः । निरस्ताः पतिता भूमौ ताम्रपुष्पा इव द्रुमाः ॥ ६ ॥ तस्मिन्काले सुमित्रायाः पुत्रः परबलार्दनः । चकार लक्ष्मणः क्रुद्धो युद्धं परपुरञ्जयः ॥ ७ ॥ स कुम्भकर्णस्य शराञ्शरीरे सप्त वीर्यवान् । निचखानाददे चान्यान्विससर्ज च लक्ष्मणः ॥ ८ ॥ अथास्य कवचं शुभ्रं जाम्बूनदमयं शुभम् । प्रच्छादयामास शरैः संध्याभ्रमिव मारुतः ॥ ९ ॥ ततः स राक्षसो भीमः सुमित्रानन्दवर्धनम् । सावज्ञमेव प्रोवाच वाक्यं मेघौघनिःस्वनः ॥ १० ॥ प्रगृहीतायुधस्येह मृत्योरिव महामृधे । तिष्ठन्नप्यग्रतः पूज्यः किमु युद्धप्रदायकः ॥ ११ ॥ अद्य त्वयाहं सौमित्रे बालेनापि पराक्रमैः । तोषितो गन्तुमिच्छामि त्वामनु-

ज्ञाप्य राघवम् ॥१२॥ रामे मयात्र निहते येऽन्ये स्थास्यन्ति संयुगे । तानहं योधयिष्यामि स्वबलेन प्रमाथिना ॥ १३ ॥ इत्युक्तवाक्यं तद्रक्षः प्रोवाच प्रहसन्निव । एष दाशरथी रामास्तिष्ठत्यद्रिरिवाचलः ॥ १४ ॥ इति श्रुत्वा ह्यनादृत्य लक्ष्मणं च निशाचरः । राममेवाभिदुद्राव कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १५ ॥

टीका—पर्वत के शिखर तुल्य महान् महाबली कुम्भकर्ण कोट को लंघ कर जल्दी नगर से बाहर आया ॥१॥ समुद्र को गुंजाते हुए उसने महानाद किया, और वानर वृक्षों को लेकर रण के मैदान में आ डटे ॥ २ ॥ और मदमत्त हाथियों की तरह परम क्रूर हुए वह महाबली ऊंचे पर्वत शिखरों से और शिलाओं से (कुम्भकर्ण को) ताड़ते भए ॥३॥ पर उसके अङ्गोंपर पड़ी बहुतसी शिलाएं टूट जाती हैं, और फूले हुए अङ्गों वाले वृक्ष टुकड़े होकर पृथिवी पर गिर पड़ते हैं ॥ ४ ॥ वह भी क्रुद्ध हुआ महापराक्रमी वानरों की सेना को पूरे वेग से मथन करता भया जैसे उत्पन्न हुआ अग्नि बनों को ॥ ५ ॥ लहू से भीगे हुए बहुत से वानर लेट गए, कटकर लाल फूलोंवाले वृक्षों के तुल्य पृथिवी पर गिरे ॥ ६ ॥ उस समय शत्रुओं की सेना को पीड़नेवाला, शत्रुओं के किलों को जीतने वाला, सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण क्रुद्ध हुआ युद्ध करने लगा ॥७॥ उस वीर्यवान् लक्ष्मण ने कुम्भकर्ण के शरीर में सात बाण गाड़ दिये और फिर और लिये और छोड़े ॥८॥ और उसके चमकते हुए सुनहरी सुन्दर कवच को बाणों से ढांप दिया, जैसे सन्ध्या के मेघ को वायु ॥९॥ तब मेघघटा की सी ध्वनिवाला वह भीम राक्षस सुमित्रा के आनन्द बढ़ाने वाले (लक्ष्मण) से अनादर सहित वाक्य बोला ॥१०॥ महायुद्ध में जब मैं शस्त्र उठाकर खड़ा होजाऊं, तो मेरे सामने खड़ा होनेवाला भी पूजा के योग्य है, क्या फिर

युद्ध देनेवाला ॥ ११ ॥ आज तूने हे सौमित्रे ! बालक ने भी अपने पराक्रमों से मुझे सन्तुष्ट किया है, किन्तु तुझसे अनुज्ञा लेकर राम की ओर जाना चाहता हूं ॥ १२ ॥ जब मैं यहां युद्ध में राम को मार लूंगा, तो जो और सामने खड़े होंगे, उनको भी मथ डालने वाले अपने बल से युद्ध कराऊंगा ॥ १३ ॥ ऐसा वाक्य कह चुके उस राक्षस को (लक्ष्मण) मुस्कराकर बोला, यह दशरथसुत राम पर्वत की तरह अचल खड़ा है ॥ १४ ॥ यह सुनकर वह निशाचर लक्ष्मण का अनादर करके (पाओं से) मानों पृथिवी को कम्पाता हुआ रामकी ही ओर दौड़ा ॥१५॥

सर्ग ३४ (व० ६७) कुम्भकर्ण का राम से बध

मूल—अथ शृङ्गं समाविध्य भीमं भीमपराक्रमः । चिच्छेद राम मुद्दिश्य बलवानन्तकोपमः ॥ १ ॥ अप्राप्तमन्तरा रामः सप्तभिस्तमजिह्मगैः । शरैः काञ्चनचित्राङ्गैश्चिच्छेद भरताग्रजः ॥ २ ॥ प्रहस्य विकृतं भीमं स मेघस्तनितोपमम् । कुम्भकर्णो महातेजा राघवं वाक्य मब्रवीत् ॥ ३ ॥ नाहं विराधो विज्ञेयो न कबन्धः खरो न च । न बाली न च मारीचः कुम्भकर्णः समागतः ॥ ४ ॥ पश्य मे मुद्गरं भीमं सर्वं कालायसं महत् । अनेन निर्जिता देवा दानवाश्च पुरा मया ॥ ५ ॥ यैः सायकैः सालवरा निकृत्ता बाली हतो वानरपुङ्गवश्च । ते कुम्भकर्णस्य तदा शरीरं वज्रोपमानं व्यथायांप्रचक्रुः ॥ ६ ॥ स वारिधारा इव सायकांस्तान्पिबञ्शरीरेण महेन्द्रशत्रुः । जघान रामस्य शरप्रवेगं व्याविध्य तं मुद्गरमुग्रवेगं ॥ ७ ॥ वायव्यमादाय ततोऽपरास्त्रं रामः प्रचिक्षेप निशाचराय । समुद्गरं तेन जहार बाहुं स कृत्तबाहुस्तुमुलं ननाद ॥ ८ ॥ तं छिन्नबाहुं समवेक्ष्य रामः समापतन्तं सहसा नदन्तम् । द्वावर्धचन्द्रौ निशितौ प्रगृह्य चिच्छेद पादौ युधि राक्षसस्य ॥ ९ ॥

अथाददे सूर्यमरीचिकल्पं सब्रह्मदण्डान्तककालकल्पम्। अरिष्टमैन्द्रं निशितं सुपुङ्खं रामः शरं मारुततुल्यवेगम् ॥ १० ॥ स सायको-राघवबाहुचोदितो दिशः स्वभासा दश संप्रकाशयन् । चकर्त रक्षो धिपतेः शिरस्तदा यथैव वृत्रस्य पुरा पुरन्दरः ॥ ११ ॥ प्रहर्षमी-युर्बहवश्च वानराः प्रबुद्धपद्मप्रतिमैरिवाननैः । अपूजयन्राघवमिष्ट-भागिनं हते रिपौ भीमबले नृपात्मजम् ॥ २१ ॥ स कुम्भकर्णं सुरसैन्यमर्दनं महत्सु युद्धेषु कदाचनाजितम् । ननन्द हत्वा भरता ग्रजो रणे महासुरं वृत्रमिवामराधिपः ॥ १३ ॥

टीका—तब भीमपराक्रमवाले,बलवान् यम तुल्य उस (कुम्भकर्ण) ने श्रृङ्ग घुमाकर राम की ओर फैंका ॥ १ ॥ भरत के बडे भाई राम ने सुनहरी चित्र अङ्गोंवाले, सीधा जानेवाले सात बाणों से उसको पहुंचने से पहिले मध्य में ही टुकड़े कर दिया ॥ २ ॥ तब महातेजस्वी कुम्भकर्ण मेघ की कड़क के तुल्य भयानक विकृत हंसकर राघव से यह वाक्य बोला ॥ ३ ॥ मुझे विराध न जानना, न कबन्ध, न खर, न बाली, न मारीच. मैं कुम्भकर्ण आया हूं ॥ ४ ॥ मेरे इस भयङ्कर बडे मुद्गर को देख, जो सारा लोहमय है, इससे मैंने पहले देवता और दानव जीते हैं ॥५॥ उसी समय कुम्भकर्ण के वज्र जैसे शरीर को (रामके) वह बाण बींधने लगे, जिनसे साल वृक्ष छेदे गये थे और वानरश्रेष्ठ वाली मारा गया था ॥ ६ ॥ वह इन्द्रशत्रु जलधाराओं की तरह उन बाणों को शरीर से पीता हुआ उस उग्र वेगवाले मुद्गर को घुमाकर राम के बाणों के वेग को तोड डालता भया ॥ ७ ॥ तब राम ने और वायव्य अस्त्र लेकर निशाचर की ओर फैंका, उस से मुद्गर सहित उसकी भुजा को उड़ा दिया, भुजा के कट जाने से वह तुमुल गर्जा ॥ ८ ॥ कटी हुई भुजावाले सहसा झपटते हुए और

गर्जते हुए उसको देखकर रामने दो तीक्ष्ण अर्धचन्द्र (बाण) लेकर युद्ध में उसके दोनों पाओं काट डाले ॥ ९ ॥ तब राम ने सूर्य की किरणों के तुल्य ब्रह्मदण्ड और यम के सदृश, वायुतुल्य वेगवाला शत्रुओं का अशुभ देनेवाला अच्छी नोकवाला तीक्ष्ण ऐन्द्र बाण लिया ॥ १० ॥ वह बाण राम की भुजा से प्रेरा हुआ अपने प्रकाश से दसों दिशाओं को चमकाता हुआ राक्षसपति के सिर को इसतरह काट देता भया जैसे पहले इन्द्र ने वृत्र के सिर को काटा था ॥ ११ ॥ भीम बल वाले शत्रु के मरने पर बानर सभी हर्ष को प्राप्त हुए। उनके मुख पद्मों की तरह खिल गये और वह अभीष्ट लाभ किये हुए नृपसुत राम की पूजा करते भए ॥ १२ ॥ देवताओं की सेना मारनेवाले, बड़े रणों में पहले कभी न जीते गये उस महाराक्षस कुम्भकर्ण को मारकर भरत का बड़ा भाई आनन्दित हुआ जैसे वृत्र को मारकर इन्द्र ॥ १३ ॥

सर्ग ३९ (व० ६८) कुम्भकर्ण की मृत्यु पर लंका में शोक।

मूल—कुम्भकर्णं हतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना। राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥ १ ॥ श्रुत्वा विनिहतं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम्। रावणः शोकसंतप्तो मुमोह च पपात च ॥ २ ॥ पितृव्यं निहतं श्रुत्वा देवान्तकनरान्तकौ। त्रिशिराश्चातिकायश्च रुरुदुः शोकपीडिताः ॥ ३ ॥ भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा। महोदरमहापार्श्वौ शोकाक्रान्तौ बभूवतुः ॥ ४ ॥ ततः कृच्छ्रात्समासाद्य संज्ञां राक्षसपुङ्गवः। कुम्भकर्णवधाद्दीनो विललापाकुलेन्द्रियः ॥ ५ ॥ हा वीर रिपुदर्पघ्न कुम्भकर्ण महाबल। त्वं मां विहाय वै दैवाद्यातोऽसि यमसादनम् ॥६॥ मम शल्यमनुद्धृत्य बान्धवानां महाबल। शत्रुसैन्यं प्रताप्यैकः क्व मां संत्यज्य गच्छसि ॥ ७ ॥ इदानीं खल्वहं नास्मि यस्य मे पतितो भुजः। दक्षिणोऽयं समाश्रित्य

न बिभेमि सुरासुरान् ॥८॥ यस्य ते वज्रनिष्पेषो न कुर्याद्व्यसनं सदा । स कथं रामबाणार्तः प्रसुप्तोऽसि महीतले ॥ ९ ॥ राज्येन नास्ति मे कार्यं किं करिष्यामि सीतया । कुम्भकर्णविहीनस्य जीविते नास्ति मे मतिः ॥ १० यद्यहं भ्रातृहन्तारं न हन्मि युधि राघवम् । ननु मे मरणं श्रेयो न चेदं व्यर्थजीवितम् ॥ ११ ॥

टीका—महात्मा राम से कुम्भकर्ण को मारा गया देखकर राक्षस राक्षसेन्द्र रावण को बतलाते भये ॥ १ ॥ युद्ध में महाबली कुम्भकर्ण को मरा सुनकर रावण शोक से संतप्त हुआ मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ॥ २ ॥ चचा को मरा सुनकर देवान्तक, नरान्तक त्रिशिरा और अतिकाय (यह रावण के पुत्र थे) शोक से पीड़ित हुए रोते भए ॥ ३ ॥ शुभ कर्मोंवाले राम से भाई को मरा सुनकर महोदर और महापार्श्व (कुम्भकर्ण के विमातृज भाइयों) को बड़ा शोक हुआ ॥ ४ ॥ तिस पीछे बड़ी कठिनता से चेतनता को पाकर वह राक्षसवर कुम्भकर्ण के बध से दीन हुआ आकुलेन्द्रिय हो विलाप करने लगा ॥ ५ ॥ हा वीर शत्रुओं के दर्प को तोड़ने वाले महाबली कुम्भकर्ण तू मुझे छोड़कर दैव से यम के घर गया है ॥ ६ ॥ मेरे और बान्धवों के शल्य को निकाले बिना हे महाबल शत्रु सेना को तपाकर मुझे त्यागकर अकेला कहां जाता है ॥ ७ ॥ अब मैं नहीं हूं, जिसकी दाईं भुजा गिर गई, जिसके सहारे से मैं देव दैत्यों से नहीं डरता था ॥ ८ ॥ जिस तुझको वज्र की चोट भी दुःख नहीं देती थी, वह कैसे राम के बाणों से पीड़ित हुआ पृथ्वी पर सोरहा है ॥ ९ ॥ मुझे राज्य से कार्य नहीं, सीता से मैं क्या करूंगा, कुम्भकर्ण से हीन हुए की मेरी जीने में मति ही नहीं ॥१०॥ यदि भाई के मारनेवाले राम को युद्ध में न मारूं, तो मरना ठीक है, न कि यह व्यर्थ जीना ॥ ११ ॥

सर्ग ३६ (व० ६९) नरान्तक आदि की चढ़ाई

मूल—एवं विलपमानस्य रावणस्य दुरात्मनः । श्रुत्वा शोकाभिभूतस्य त्रिशिरा वाक्यमब्रवीत ॥ १ ॥ कामं तिष्ठ महाराज निर्गमिष्याम्यहं रणे । उद्धरिष्यामि ते शत्रून्गरुडः पन्नगानिव ॥ २ ॥ श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं देवान्तकनरान्तकौ । अतिकायश्च तेजस्वी बभूवुर्युद्धहर्षिताः ॥३ ॥ ततोऽहमहमित्येव गर्जन्तो नैर्ऋतर्षभाः । रावणस्य सुता वीराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥ ४ ॥ सर्वे सुबलसम्पन्नाः सर्वे विस्तीर्णकीर्तयः । सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्ते स्म निर्जिताः ॥ ५ ॥ स पुत्रान्संपरिष्वज्य भूषयित्वा च भूषणैः । आशीर्भिश्च प्रशस्ताभिः प्रेषयामास वै रणे ॥ ६ ॥ युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ चापि रावणः । रक्षणार्थं कुमाराणां प्रेषयामास संयुगे ॥ ७ ॥ तेऽभिवाद्य महात्मानं रावणं लोकरावणम् । कृत्वा प्रदक्षिणं चैव महाकायाः प्रतस्थिरे ॥ ८ ॥ तान्गजैश्च तुरङ्गैश्च रथैश्चाम्बुदनिःस्वनैः । अनूत्पेतुर्महात्मानो राक्षसाः प्रवरायुधाः ॥ ९ ॥ मरणं वापि निश्चित्य शत्रूणां वा पराजयम् । इति कृत्वा मतिं वीराः संजग्मुः संयुगार्थिनः ॥ १० ॥ शूलमुद्गरखड्गैश्च जघ्नुः प्रासैश्च शक्तिभिः । अन्योन्यं पातयामासुः परस्परजयैषिणः ॥ ११ ॥ ते वानरा गर्वितहृष्टचेष्टाः संग्राममासाद्य भयं विमुच्य । युद्धं स्म सर्वे सह राक्षसैस्ते नानायुधाश्चक्रुरदीनसत्त्वाः ॥ १२ ॥ ततो हयं मारुततुल्यवेगमारुह्य शक्तिं निशितां प्रगृह्य । नरान्तको वानरसैन्यमुग्रं महार्णवं मीन इवाविवेश ॥ १३ ॥ स तस्य ददृशे मार्गो मांसशोणितकर्दमः । पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृतः ॥ १४ ॥ यावद्विक्रमितुं बुद्धिं चक्रुः प्लवगपुङ्गवाः । तावदेतानतिक्रम्य निर्बिभेद नरान्तकः ॥१५॥ न शेकुर्धर्षितुं वीरा न स्थातुं स्पन्दितुं कुतः । उत्पतन्तं स्थितं यान्तं सर्वान्विव्याध वीर्यवान् ॥ १६ ॥ वज्रनिष्पेषसदृशं प्रास-

स्याभिनिपातनम् । न शेकुर्वानराः सोढुं ते विनेदुर्महास्वनम् ॥१७॥

टीका—इसप्रकार विलपते हुए शोक से दबे हुए दुरात्मा रावण को त्रिशरा बोला ॥ १ ॥ आप ठहरें हे राजन् मैं रण में निकलूंगा सांपों को गरुड़ की तरह तेरे शत्रुओं को विनाश करूंगा ॥ २ ॥ त्रिशरा के वाक्य को सुनकर देवान्तक नरान्तक और तेजस्वी अतिकाय भी युद्ध के लिये हर्षित हुए ॥३ ॥ तब वह इन्द्रतुल्य पराक्रमवाले वीर रावणसुत राक्षसवर "मैं मारूंगा, मैं मारूंगा" इस प्रकार गर्जते हुए ॥ ४ ॥ सभी सुबल से सम्पन्न, सभी फैले हुए यशवाले, सभी युद्ध में पहुंचकर कभी न हारेहुए निकले॥५॥रावण पुत्रों को गले लगाकर भूषणों से भूषित करके और उत्तम आशीर्वादों से युक्त करके रण में भेजता भया ॥६॥ और उन कुमारों की रक्षा के लिये युद्ध में उन्मत्त (महोदर) और सदामस्त (महापार्श्व) इन दोनों भाइयों को साथ भेजता भया ॥ ७ वह बड़े डील वाले लोकों के रुलानेवाले महात्मा रावण को अभिवादन करके, और प्रदक्षिणा करके प्रस्थित हुए ॥ ८ ॥ उनके पीछे और बहुत से महात्मा राक्षस उत्तम शस्त्र लिय हाथी, घोड़े और मेघ की ध्वनिवाले रथों से चले ॥ ९ ॥ मरना वा शत्रु की पराजय निश्चय करके युद्धार्थी वह वीर गये ॥१०॥ शूल, मुद्गर, तलवार भाले और बर्छियों से एक दूसरे को गिराने लगे ॥११॥ अभिमानी प्रसन्न चेष्टावाले अदीन हृदय वह वानर संग्राम को पाकर भय को छोड़कर नाना शस्त्र लिये राक्षसों से युद्ध करने लगे॥१२॥ तब वायुतुल्य वेगवाले घोड़े पर चढ़कर और तीक्ष्ण बर्छी पकड़कर नरान्तक महासागर में मीन की तरह उग्र वानरसेना में प्रविष्ट हुआ ॥१३॥ उसका वह मार्ग मांस और लहू के कीचड़वाला गिरे हुए पर्वताकार वानरों से घिरा हुआ दीखने लगा ॥ २४ ॥ वानरश्रेष्ठ जब तक अपना विक्रम दिखलाने की

प्रति करते हैं, इतने में उनपर आक्रमण करके नरान्तक उनको टुकड़े २ कर देता है ॥ १५ ॥ वीर उसके सामने न बोल सके न खड़े होसके, लड़ना तो कहां, उस वीर्यवान् ने दौड़ते खड़े चलते सब को बींध दिया ॥ १६ ॥ वज्र से पीस डालने के तुल्य भाले की चोट को वानर न सहसके, वह जोर से चिल्लाए ॥ १७ ॥

सर्ग ३७ (व०६९) अंगद और नरान्तक का युद्ध और नरान्तक का बध

मूल—प्रेक्षमाणः स सुग्रीवो ददृशे हरिवाहिनीम् । नरान्तक भयत्रस्तां विद्रवन्तीं यतस्ततः ॥ १ ॥ विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा स ददर्श नरान्तकम् । गृहीतप्रासमायान्तं हयपृष्ठप्रतिष्ठितम् ॥२॥ दृष्ट्वोवाच महातेजाः सुग्रीवो वानराधिपः। कुमारमङ्गदं वीरं शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥३॥ गच्छैनं राक्षसं वीरं योऽसौ तुरगमास्थितः। भक्षयन्तं परबलं क्षिप्रं प्राणैर्वियोजय ॥४॥ स भर्तुर्वचनं श्रुत्वा निष्पपाताङ्गदस्तदा । अनीकान्मेघसंकाशादंशुमानिव वीर्यवान् ॥५॥ नरान्तकमभिक्रम्य वालिपुत्रोऽब्रवीद्वचः । तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिर्हरिभिस्त्वं करिष्यसि ॥ ६ ॥ अस्मिन्वज्रसमस्पर्शं प्रासं क्षिप ममोरसि । अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रचुक्रोध नरान्तकः ॥७॥ स प्रासमाविध्य तदाङ्गदाय समुज्ज्वलन्तं सहसोत्ससर्ज । स वालिपुत्रोरसि वज्रकल्पे बभूव भग्नो न्यपतच्च भूमौ ॥ ८ ॥ तलं समुद्यम्य स वालिपुत्रस्तुरङ्गमस्याभिजघान मूर्ध्नि । स तस्य वाजी निपपात भूमौ तलप्रहारेण विकीर्णमूर्धा ॥९॥ नरान्तकः क्रोधवशं जगाम हतं तुरङ्गं पतितं समीक्ष्य । स मुष्टिमुद्यम्य महाप्रभावो जघान शीर्षे युधि वालिपुत्रम् ॥१०॥ अथाङ्गदो मृत्युसमानवेगं संवर्त्य मुष्टिं गिरिशृङ्गकल्पम् । निपातयामास तदा महात्मा नरान्तकस्योरसि वालिपुत्रः ॥११॥ स मुष्टिनिर्भिन्ननिमग्नवक्षा ज्वाला वमञ्शोणितदिग्धगात्रः । नरान्तको भूमितले पपात यथाचलो वज्रनिपातभग्नः ॥ १२ ॥ अथाङ्गदो राम-

मनःप्रहर्षणं सुदुष्करं तं कृतवान्हि विक्रमम् । विसिस्मिये सोऽप्यथ
भीमकर्मा पुनश्च युद्धे स बभूव हर्षितः ॥ १३ ॥

टीका—सुग्रीव ने दृष्टि डालकर वानरसेना को देखा, कि नरांतक के भय से डरी हुई इधर उधर भाग रही है ॥१॥ सेना को भागता हुआ देखकर उसने हाथ में भाला लिये घोड़े की पीठ पर सवार नरान्तक को आते देखा ॥२॥ देखकर महातेजस्वी वानराधिपति सुग्रीव इन्द्रतुल्य पराक्रमवाले वीर कुमार अङ्गद से बोला ॥ ३ ॥ यह जो घोड़े पर स्थित राक्षसवीर हमारी सेना को दबाए जाता है, इसकी ओर जा, और जल्दी प्राणों से वियुक्तकर ॥४॥ स्वामी के वचन को सुनकर वीर्यवान् अङ्गद मेघ के मध्य से सूर्य की तरह सेना के मध्य से निकला ॥५॥ नरान्तक के पास जाकर बालि-पुत्र यह बचन बोला, ठहर, इन साधारण बानरों से तू क्या करेगा ॥ ६ ॥ इस मेरी छाती पर वज्रतुल्य स्पर्शवाले भाले को फैंक, अङ्गद के इस बचन को सुनकर नरान्तक बडे क्रोध में आया ॥७॥ उसने चमकते हुए भाले को घुमाकर वेग से अङ्गद की ओर फैंका वह वज्र जैसी बालिपुत्र की छाती पर टुकड़े २ होगया और भूमि पर गिर पड़ा ॥८॥ तब बालिपुत्र ने तली जोडकर घोडे के सिर पर मारी, तली की चोट से वह उसका घोडा सिर फैंककर भूमि पर गिर पड़ा ॥९॥ नरान्तक घोडे को हत हुआ और गिरा हुआ देखकर क्रोधवश हुआ, और उस महाप्रभाव ने मुक्का जोडकर वाली-पुत्र अङ्गद के सिर पर मारा ॥ १० ॥ तब अङ्गद ने मृत्युतुल्य वेगवाला पर्वतशृङ्ग तुल्य मुक्का जोड़ कर नरान्तक की छाती पर मारा ॥ ११ ॥ मुक्के से उसकी छाती टूट गई, और अन्दर धस गई, (चोट के हेतु) ज्वाला निकली, और रुधिर से उसका शरीर भरगया, और वह वज्र की चोट से टूटे पर्वत की तरह भूमितल

पर गिरपड़ा ॥१२॥ अङ्गद ने राम के मन को हर्षित करनेवाला यह बड़ा दुष्कर विक्रम का काम किया, राम भी उससे आश्चर्य हुआ, और भीमकर्मा अङ्गद फिर युद्ध के लिये तय्यार हुआ ॥१३॥

सर्ग ३८ (व ७०) देवान्तक, महोदर त्रिशिरा और महापार्श्व का बध

मूल—नरान्तकं हतं दृष्ट्वा चुक्रुशुर्नैर्ऋतर्षभाः । देवान्तकस्त्रिमूर्धा च पौलस्त्यश्च महोदरः ॥१॥ आरूढो मेघसंकाशं वारणेन्द्रं महोदरः । वालिपुत्रं महावीर्यमभिदुद्राव वेगवान् ॥ २ ॥ भ्रातृव्यसनसंतप्तस्तदा देवान्तको बली । आदाय परिघं घोरमङ्गदं समभिद्रवत् ॥ ३ ॥ स त्रिभिर्नैर्ऋतश्रेष्ठैर्युगपत्समभिद्रुतः । न विव्यथे महातेजा वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥ ५ ॥ ततोऽङ्गदं परिक्षिप्तं त्रिभिर्नैर्ऋतपुङ्गवैः । हनूमानथ विज्ञाय नीलश्चापि प्रतस्थतुः ॥ ६ ॥ स विजृम्भितमालोक्य हर्षाद् देवान्तको बली । परिघेणाभिदुद्राव मारुतात्मजमाहवे ॥७॥ तमापतन्तमुत्पत्य हनूमान्कपिकुञ्जरः । आजघान तदा मूर्ध्नि वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ ८ ॥ स मुष्टिनिष्पिष्टविभिन्नमूर्धा निर्वान्तदन्ताक्षिविलम्बिजिह्वः । देवान्तको राक्षसराजसूनुर्गतासुरुर्व्यां सहसा पपात ॥ ९ ॥ महोदरस्तु संक्रुद्धः नीलस्योपर्यपातयत् । गिरौ वर्षं तडिच्चक्रं स गर्जन्निव तोयदः ॥ १० ॥ ततः स शैलाभिनिपातभग्नो महोदरस्तेन महाद्रिपेन । व्यामोहितो भूमितलं गतासुः पपात वज्राभिहतो यथाद्रिः ॥ ११ ॥ पितृव्यं निहतं दृष्ट्वा त्रिशिराश्चापमाददे । हनूमन्तं च संक्रुद्धो विव्याध निशितैः शरैः ॥ १२ ॥ अथ शक्तिं समासाद्य कालरात्रिमिवान्तकः । चिक्षेपानिलपुत्राय त्रिशिरा रावणात्मजः ॥ १३ ॥ दिवः क्षिप्तामिवोल्कां तां शक्तिं क्षिप्तामसङ्गताम् गृहीत्वा हरिशार्दूलो बभञ्ज च ननाद च ॥ १४ ॥ ततः खड्गं समुद्यम्य त्रिशिरा राक्षसोत्तमः । निचखान तदा खड्गं वानरेन्द्रस्य वक्षसि ॥ १५ ॥ खड्गप्रहाराभिहतो हनूमान्मारुतात्मजः । आजघान त्रिमूर्धानं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥ १६ ॥ स

तलाभिहतस्तेन स्रस्तहस्ताम्बरो भुवि । निपपात महातेजास्त्रिशिरा-
स्त्यक्तचेतनः ॥ १७ ॥ हतं त्रिशिरसं दृष्ट्वा युद्धोन्मत्तं तथैव च ।
हतौ प्रेक्ष्य दुराधर्षौ देवान्तकनरान्तकौ ॥ १८ ॥ चुकोप परमामर्षी
मत्तो राक्षसपुङ्गवः । जग्राहार्चिष्मतीं चापि गदां सर्वायसीं तदा
॥ १९ ॥ गदामादाय संक्रुद्धो मत्तो राक्षसपुङ्गवः । हरीन्समभि-
दुद्राव युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥ २० ॥ अथर्षभः समुत्पत्य वानरो
रावणानुजम् । मत्तानीकमुपागम्य तस्थौ तस्याग्रतो बली ॥२१॥
अभिदुद्राव वेगेन गदां तस्य महात्मनः । तां गृहीत्वा गदां भीमा-
माविध्य च पुनः पुनः ॥ २२ ॥ मत्तानीकं महात्मा स जघान रण-
मूर्धनि । स स्वया गदया भग्नो विशीर्णदशनेक्षणः ॥ २३ ॥ निप-
पात तदा मत्तो वज्राहत इवाचलः ॥ २४ ॥

टीका--नरान्तकको मरा देखकर राक्षसश्रेष्ठ देवान्तक, त्रिशिरा और पौलस्त्य महोदर पुकार उठे ॥ १ ॥ महोदर मेघतुल्य हस्तिराज पर सवार हो वेग से महावीर्य बालीपुत्र की ओर दौड़ा ॥ २ ॥ और भाई के दुःख से तपा हुआ बलवान् देवान्तक भी घोर परिघ लेकर अङ्गद की ओर दौड़ा ॥ ३ ॥ उत्तम घोड़ों से युक्त सूर्य तुल्य चमकवाले रथ पर चढ़कर त्रिशिरा वीर बालिपुत्र अङ्गद की ओर दौड़ा ॥ ४ ॥ इन तीन राक्षस श्रेष्ठों से एक साथ हमला किया हुआ महातेजस्वी प्रतापी बालिपुत्र व्यथित नहीं हुआ ॥ ५ ॥ पर इन तीन राक्षसवरों से अङ्गद को घिरा हुआ जानकर हनूमान् और नील आगे बढ़े ॥ ६ ॥ बली देवान्तक युद्ध में हनूमान् को तय्यार देख परिघ लेकर उसकी ओर दौड़ा ॥ ७ ॥ उस आते हुए को वानरश्रेष्ठ हनुमान् ने वज्रतुल्य मुक्के से सिर पर प्रहार किया ॥८॥ मुक्के की चोट से उसका सिर टूट गया, दान्त आंखें और लम्बी जिह्वा बाहर निकल आई, राक्षसराज का पुत्र देवान्तक

निष्प्राण होकर वेग से भूमि पर गिर पड़ा ॥९॥ महोदर क्रुद्ध हुआ नील के ऊपर बिजलियों के चमकवाली बाणों की बर्षा बरसाता भया जैसे कि गर्जता हुआ मेघ पर्वत पर बरसाता है ॥१०॥ तिस पीछे शैल की चोट से तोड़ा हुआ महोदर मूर्छित हो निष्प्राण हो हाथी से भूमितल पर गिरा, जैसे वज्र से तोड़ा हुआ पर्वत गिरता है ॥११ चचा को मरा देख त्रिशिरा ने धनुष लिया और क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण बाणों से हनुमान् को बींध दिया ॥ १२ ॥ और यम की कालरात्रि की तरह बर्छी लेकर रावणसुत त्रिशिरा ने हनुमान् पर फैंकी ॥ १३ ॥ आकाश से निकली उल्का की तरह बेरोक आती हुई उस शक्ति को पकड़कर उसे वानरवर ने टुकड़े कर दिया और गर्जा ॥ १४ ॥ तब राक्षसोत्तम त्रिशिरा ने खड्ग उठाकर वानरेन्द्र की छाती पर घोंपा ॥ १५ ॥ खड्ग के प्रहार से अभिहत हुए वीर्यवान् पवनपुत्र हनुमान् ने त्रिशिरा की छाती पर तली मारी ॥ १६ ॥ तली से ताड़ना किया हुआ वह महा तेजस्वी बेहोश हो भूमि पर गिर पड़ा ॥ १७ ॥ त्रिशिरा, महोदर, दुर्धर्ष नरान्तक और देवान्तक को मरा देखकर ॥ १८ ॥ महा क्रोधी राक्षसवर महापार्श्व कुपित हुआ और उसने चमकती हुई लोहमयी गदा ली ॥ १९ ॥ गदा को लेकर जलते हुए प्रलयाग्नि के तुल्य क्रुद्ध हुआ राक्षसवर महापार्श्व बानरों की ओर दौड़ा ॥२०॥ तब बली वानर ऋषभ रावण के छोटे भाई महापार्श्व की सेना में आ उसके सामने आडटा ॥ २१ ॥ और वेग से दौड़ा और उस महात्मा की उस गदा को लेकर बार २ घुमाकर ॥२२॥ रण के मैदान में महापार्श्व को ताडता भया। वह अपनी गदा से ही मारा हुआ फूटे हुए दांतों आखोंवाला महापार्श्व वज्राहत पर्वत की तरह नीचे गिरा ॥ २३, २४ ॥

सर्ग ३९ (व० ७०) अतिकाय का लक्ष्मण से वध ॥

मूल-भ्रातॄंश्च निहितान्दृष्ट्वा शक्रतुल्यपराक्रमान् । पितृव्यौ चापि संदृश्य समरे संनिपातितौ ॥१॥ अतिकायोऽद्रिसंकाशो अभिदुद्राव वानरान् । नाम संश्रावयामास ननाद च महास्वनम् ॥ २ ॥ ततोऽतिकायो बलवान्प्रविश्य हरिवाहिनीम् । विस्फारयामास धनुर्ननाद च पुनः पुनः ॥३॥ स राक्षसेन्द्रो हरियूथमध्ये नायुध्यमानं निजघान कश्चित् । उत्पत्य रामं सधनुःकलापी सगर्वितं वाक्यमिदं बभाषे ॥४॥ रथे स्थितोऽहं शरचापपाणिर्न प्राकृतं कञ्चन योधयामि । यस्यास्ति शक्तिर्व्यवसाययुक्तो ददातु मे क्षीप्रमिहाद्य युद्धम् ॥ ५ ॥ तत्तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य चुकोप सौमित्रिरमित्रहन्ता । अमृष्यमाणश्च समुत्पपात उवाच वाक्यं च ततो बृहच्छ्रीः ॥६॥ कर्मणा सूचयात्मानं न विकत्थितुमर्हसि । पौरुषेण तु यो युक्तः स तु शूर इति स्मृतः ॥ ७ ॥ सर्वायुधसमायुक्तो धन्वी त्वं रथमास्थितः । शरैर्वा यदि वाप्यस्त्रैर्दर्शयस्व पराक्रमम् ॥ ८ ॥ ततोऽतिकायः कुपितश्चापमारोप्य सायकम् । लक्ष्मणाय प्रचिक्षेप संक्षिपन्निव चाम्बरम् ॥९॥ समापतन्तं निशितं शरमाशीविषोपमम् । अर्धचन्द्रेण चिच्छेद लक्ष्मणः परवीरहा ॥ १० ॥ एवं त्रीन्पञ्च सप्तेति सायकान्राक्षसर्षभः । आददे संदधे चापि विचकर्षोत्ससर्ज च ॥११॥ ततस्तान्राक्षसोत्सृष्टाञ्शरौघान्राघवानुजः । असंभ्रान्तः प्रचिच्छेद निशितैर्बहुभिः शरैः ॥१२॥ आग्नेयेन तदास्त्रेण योजयामास सायकम् । अतिकायाय चिक्षेप कालदण्डमिवान्तकः ॥ १३ ॥ आग्नेयास्त्राभिसंयुक्तं दृष्ट्वा बाणं निशाचरः । उत्ससर्ज तदा बाणं रौद्रं सूर्यास्त्रयोजितम् ॥ १४ ॥ तावुभावम्बरे बाणावन्योन्यमभिजघ्नतुः । तावन्योन्यं विनिर्दह्य पेततुः पृथिवीतले ॥१५॥ ततोऽतिकायः संक्रुद्धस्त्वाष्ट्रमैषीकमुत्सृजत् । ततश्चिच्छेद

सौमित्रिरस्त्रमैन्द्रेण वीर्यवान् ॥ १६ ॥ याम्येनास्त्रेण संक्रुद्धो योजयामास सायकम् । वायव्येन तदस्त्रेण निजघान स लक्ष्मणः ॥१७॥ तं ब्रह्मणोऽस्त्रेण नियुज्य चापे शरं सपुङ्खं यमदूतकल्पम् । सौमित्रिरिन्द्रारिसुतस्य तस्य ससर्ज बाणं युधि वज्रकल्पम् ॥ १८ ॥ तं प्रेक्षमाणः सहसातिकायो जघान बाणैर्निशितैरनेकैः । स सायकस्तस्य सुपर्णवेगस्तथातिवेगेन जगाम पार्श्वम् ॥ १९ ॥ तमागतं प्रेक्ष्य तदातिकायो बाणं प्रदीप्तान्तककालकल्पम् । जघान शक्त्यृष्टिगदाकुठारैः शूलैः शरैश्चाप्यविपन्नचेष्टः ॥ २० ॥ तान्यायुधान्यद्भुतविग्रहाणि मोघानि कृत्वा स शरोऽग्निदीप्तः । प्रगृह्य तस्यैव किरीटजुष्टं तदातिकायस्य शिरो जहार ॥ २० ॥ तच्छिरः सशिरस्त्राणं लक्ष्मणेषुप्रमर्दितम् । पपात सहसा भूमौ शृङ्गं हिमवतो यथा ॥ २२ ॥

टीका—इन्द्र तुल्य पराक्रमवाले तीनों भाइयों को मरा देखकर और युद्ध में दोनों चचों को गिरा देखकर ॥१॥ पर्वत तुल्य अतिकाय वानरों की ओर दौड़ा, उसने अपना नाम सुनाया और बड़ा ऊंचा गर्जा ॥ २ ॥ तब बलवान् अतिकाय ने वानरसेना में प्रविष्ट होकर धनुष घुमाया और घोर सिंहनाद किया ॥ ३ ॥ वह राक्षसेन्द्र वानरयूथ के मध्य में अपने साथ युद्ध न करते हुए किसी को नहीं मारता भया और धनुषधारे हुए उछलकर राम के पास आ यह सगर्व वाक्य बोला ॥ ४ ॥ धनुषबाण हाथ में लेकर रथ पर स्थित हुआ, मैं साधारण के साथ युद्ध नहीं करता हूं, जिसकी शक्ति हो, वह दृढ़ होकर मुझे आज युद्ध देवे ॥ ५ ॥ उसके वाक्य को सुनकर शत्रुओं के मारनेवाला लक्ष्मण क्रुद्ध हुआ, वह न सहारता हुआ उछला और वह बड़ा शोभावाला वाक्य बोला ॥ ६ ॥ कर्म से अपना आप दिखला, अपनी श्लाघा नहीं करनी चाहिये, जो पौरुष से युक्त है, वह शूर माना गया है ॥ ७ ॥ सारे शस्त्रों से युक्त हुआ

धनुष धारे हुए तू रथ पर स्थित है, बाणों से वा अस्त्रों से अपना पराक्रम दिखला ॥ ८ ॥ तब कुपित हुआ अतिकाय धनुष में बाण जोड़कर लक्ष्मण की ओर फेंकता भया, मानों (बाण के वेग से मध्य के) आकाश को समेटता हुआ ॥ ९ ॥ अग्नितुल्य आते हुए उस तीक्ष्ण बाण को शत्रु वीरों के मारनेवाले लक्ष्मण ने अर्धचन्द्र से काट दिया ॥ १० ॥ तब राक्षसश्रेष्ठ ने एक, तीन, पांच और सात बाण क्रमशः लिये जोड़े खींचे और छोड़े ॥ ११ ॥ राक्षस से छोड़े उन बाणसमूहों को राम के छोटे भाई ने बिना घबराए तीक्ष्ण बाणों से काट दिया ॥ १२ ॥ तब लक्ष्मण ने बाण जोड़ कर आग्नेय अस्त्र से अतिकाय की ओर फेंका, जैसे यम कालदण्ड को ॥ १३ ॥ तब राक्षस आग्नेयास्त्र से जुड़े बाण को देखकर सूर्यास्त्र में जोड़कर रौद्र बाण को छोड़ता भया ॥ १४ ॥ वह दोनों बाण आकाश में आपस में टकराए, और एक दूसरे को दग्ध करके पृथिवी तल पर गिरे ॥ १५ ॥ तब क्रुद्ध हुए अतिकाय ने त्वाष्ट्रबाण छोड़ा, उस अस्त्र को वीर्यवान् लक्ष्मण ने ऐन्द्र से काट दिया ॥ १६ ॥ और उसने क्रुद्ध होकर याम्य अस्त्र से बाण को जोड़ा, लक्ष्मण ने उसे वायव्य अस्त्र से काट दिया ॥ १७ ॥ अब लक्ष्मण ने यमदूत के तुल्य नोकवाला बाण ब्रह्मअस्त्र के साथ धनुष में जोड़ा, और वह वज्रतुल्य बाण अतिकाय की ओर छोड़ा ॥ १८ ॥ उसको देखते हुए अतिकाय ने अनेक तीक्ष्ण बाणों से ताड़ना किया, तथापि वह गरुड़ तुल्य वेगवाला बाण अति वेग से उसके पास पहुंचा ॥ १९ ॥ प्रचण्ड यम और काल के तुल्य उस बाण को आया देखकर फुर्तीले अतिकाय ने शक्ति, ऋष्टि, गदा, कुठार, शूल और तीरों से ताड़ना किया ॥२०॥ उन सब अद्भुत आकृति वाले शस्त्रों को व्यर्थ करके अग्नि से दीप्त वह

बाण अतिकाय के सिर को उड़ा ले गया ॥ २१ ॥ लक्ष्मण के बाण से उड़ाया हुआ उसका सिर टोप समेत हिमालय की चोटी तुल्य सहसा भूमि पर गिरपड़ा ॥ २२ ॥

सर्ग ४० (व० ७२-७६) कम्पन प्रजंघ शोणिताक्ष का अंगदादि से युद्ध में बध ॥

मूल-ततो हतान्राक्षसपुङ्गवांस्तान्देवान्तकादित्रिशिरोऽतिकायान् । रक्षोगणास्तत्र हतावशिष्टास्ते रावणाय त्वरिताः शशंसुः ॥ १ ॥ स कुम्भं च निकुम्भं च कुम्भकर्णात्मजावुभौ । प्रेषयामास संक्रुद्धो राक्षसैर्बहुभिः सह ॥ २ ॥ यूपाक्षः शोणिताक्षश्च प्रजङ्घः कम्पनस्तथा । निर्ययौ कौम्भकर्णाभ्यां सह रावणशासनात् ॥ ३ ॥ तदृष्ट्वा बलमायान्तं राक्षसानां दुरासदम् । संचचाल प्लवङ्गानां बलमुच्चैर्ननाद च ॥४॥ प्रवृत्ते संकुले तस्मिन्वीरे घोरजनक्षये । अङ्गदः कम्पनं वीरमाससाद रणोत्सुकः ॥ ५ ॥ आहूय सोऽङ्गदं कोपात्ताडयामास वेगितः । गदया कम्पनः पूर्वं स चचाल भृशाहतः ॥ ६ ॥ स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी चिक्षेप शिखिरे गिरेः । अर्दितश्च प्रहारेण कम्पनः पतितो भुवि ॥ ७ ॥ ततस्तु कम्पनं दृष्ट्वा शोणिताक्षो हतं रणे । रथेनाभ्यपतत्क्षिप्रं तत्राङ्गदमभीतवत् ॥ ८ ॥ सोऽङ्गदं निशितैर्बाणैस्तदा विव्याध वेगितः । क्षुरक्षुरप्रनाराचैर्वत्सदन्तैः शिलीमुखैः ॥९॥ कर्णिशल्यविपाठैश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ॥ १० ॥ अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रः प्रतापवान् । धनुरुग्रं रथं बाणान् ममर्द तरसाबली ॥ ११ ॥ शोणिताक्षस्ततः क्षिप्रमासिचर्म समाददे । तं क्षिप्रतरमाप्लुत्य परामृश्याङ्गदो बली । करेण तस्य तं खङ्गं समाच्छिद्य ननाद च ॥ १२ ॥ तं प्रगृह्य महाखङ्गं विनद्य च पुनः पुनः । वालिपुत्रोऽभिदुद्राव रणशीर्षे परानरीन् ॥ १३ ॥ आयसीं तु गदां गृह्य स वीरः कान-

काङ्गदः। शोणिताक्षः समाश्वस्य तमेवानुपपात ह ॥ १४ ॥ प्रजङ्घस्तु महावीरो यूपाक्षसहितो बली। गदयाभिययौ क्रुद्धो बालिपुत्रं महाबलम् ॥ १५ ॥ अङ्गदं परिरक्षन्तौ मैन्दो द्विविद एव च। तस्य तस्थतुरभ्याशे परस्परादद्दृक्षया ॥ १६ ॥ त्रयाणां वानरेन्द्राणां त्रिभी राक्षसपुङ्गवैः। संसक्तानां महद्युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ॥ १७ ॥ उद्यम्य विपुलं खड्गं परमर्मविदारणम्। प्रजङ्घो बालिपुत्राय अभिदुद्राव वेगितः ॥ १८ ॥ तमभ्याशगतं दृष्ट्वा वानरेन्द्रो महाबलः। बाहुं चास्य सनिस्त्रिंशमाजघान स मुष्टिना ॥ १९ ॥ बालिपुत्रस्य घ तेन स पपात क्षितावसिः ॥ २० ॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ खड्गं मुसलसन्निभम्। मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः ॥ २१ ॥ स ललाटे महावीर्यमङ्गदं वानरर्षभम्। आजघान महातेजाः स मुहूर्तं चचाल ह ॥ २२ ॥ स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी बालिपुत्रः प्रतापवान्। प्रजङ्घस्य शिरः कायात्पातयामास मुष्टिना ॥ २३ ॥ स यूपाक्षोऽश्रुपूर्णाक्षः पितृव्ये निहते रणे। अवरुह्य रथात्क्षिप्रं क्षीणेषुः खड्गमाददे ॥ २४ ॥ द्विविदः शोणिताक्षं तु विददार नखैर्मुखे। निष्पिपेष स वीर्येण क्षितावाविध्य वीर्यवान् ॥२५॥ यूपाक्षमभिसंक्रुद्धो मैन्दो वानरपुङ्गवः। पीडयामास बाहुभ्यां पपात स हतः क्षितौ ॥२६॥

टीका—राजा (रावण) ने जब उनका मरना सुना, तो उनके नेत्र आंसुओं से डुबडुबाने लगे, और पुत्र और भाइयों के भयङ्कर नाश को सोचकर वह गहरी सोच में पड़ा ॥ १ ॥ उसने क्रुद्ध होकर कुम्भकर्ण के दोनों पुत्र कुम्भ और निकुम्भ को बहुत से राक्षसों के साथ भेजा ॥ २ ॥ तथा रावण की आज्ञा से कुम्भकर्ण के पुत्रों के साथ यूपाक्ष, शोणिताक्ष प्रजङ्घ और कम्पन निकले ॥३॥ राक्षसों के उस दुर्धर्ष बल को आता देखकर वानरों की सेना ऊंचा गर्जती हुई चली ॥४॥ भयङ्कर जनक्षय करनेवाले उस संग्राम के

प्रवृत्त होने पर रणोत्साही अङ्गद वीर कम्पन के सम्मुख गया ॥ ५ ॥ कम्पन ने भी अङ्गद को आह्वान (चैलंज) दिया, और कोप में वेग से उसे गदा से ताड़ना किया, अङ्गद उस प्रबल चोट से उखड़ गया ॥ ६ ॥ पर उस तेजस्वी ने जल्दी होश सम्भालकर पर्वत शिखर फैंका, कम्पन उस प्रहार से पीड़ित होकर पृथ्वी तल पर गिर पड़ा ॥ ७ ॥ तब कम्पन को रण में मरा देखकर शोणिताक्ष जल्दी अभीतवत् अङ्गद पर जा झपटा॥८॥ उसने वेगसे अङ्गद को तीक्ष्ण बाणों क्षुर, क्षुरप्र, नराच, वत्सदन्त शिलीमुख, कर्ण, शल्य, विपाठ इन बहुत से बाणों से बींध दिया ॥ ९, १० ॥ वह बींधे हुए अङ्गोंवाला बली प्रतापी बालिपुत्र अङ्गद उसके उग्र धनुष रथ और बाणों को बल से नष्ट करता भया ॥११॥ तब शोणिताक्ष ने हाथ में झटपट तलवार ली, पर बली अङ्गद ने बहुत तेज़ी से उछलकर और उसे आगे धरकर उसके हाथ से तलवार छीन ली और गर्जा ॥ १२ ॥ उस बड़ी तलवार को पकड़कर और बार २ गर्जकर बालिपुत्र रण के मैदान में शत्रुओं की ओर दौड़ा ॥ १३ ॥ तब शोणिताक्ष होश सम्भालकर लोहे की गदा लेकर उसी के पीछे गया ॥ १४ ॥ और महावीर बली प्रजङ्घ और यूपाक्ष भी गदा लेकर क्रुद्ध हुए महाबली बालिपुत्र अङ्गद की ओर गए ॥ १५ ॥ अङ्गद की रक्षा करते हुए मैन्द और द्विविद भी अपना प्रतिद्वन्द्वी चाहते हुए अङ्गद के निकट खड़े होगये ॥ १६ ॥ तीन राक्षस श्रेष्ठों से जुटे हुए तीन वानरों का रोंगटे खड़े करनेवाला भारी युद्ध हुआ ॥१७॥ शत्रु के मर्म पीड़नेवाले विशाल खड्ग को उठाकर प्रजङ्घ वेग से बालिपुत्र की ओर दौड़ा ॥ १८ ॥ उसको निकट आया देखकर महाबली वानरेन्द्र ने तलवारवाली उसकी भुजा पर मुक्के की चोट

दी ॥ १९ ॥ वालिपुत्र की चोट से वह तलवार भूमि पर गिर पड़ी ॥२०॥ मुसलतुल्य उस खड्ग को भूमि पर गिरा हुआ देख कर उस महाबली ने वज्रतुल्य मुक्का बनाया ॥ २१ ॥ और उससे उस महातेजस्वी महाबली वानरश्रेष्ठ अङ्गद को ताड़नाकिया, वह थोड़ी देर घबराया ॥ २२ ॥ पर होश सम्भालकर तेजस्वी प्रतापी बालीपुत्र ने मुक्के से प्रजंघ का सिर उसके शरीर से गिरा दिया ॥ २३ ॥ रण में चचा के मरने पर आंसुओं से भरे नेत्रोंवाला यूपाक्ष रथ से उतरा, और बाणों के समाप्त होजाने से उसने खड्ग लिया ॥ २४ ॥ इधर द्विविद्ने शोणिताक्ष के मुख को नखों से फाड़कर,उस वीर्यवान् ने अपने बल से उसे भूमि पर फैंककर पीस डाला ॥ २५ ॥ और यूपाक्ष को क्रुद्ध हुए मैन्द ने दोनों भुजाओं से ऐसा पीड़ा कि वह मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ २६ ॥

सर्ग ४१ (व०७६, ७७) कुम्भ का सुग्रीव से और निकुम्भ का हनुमान् से वध ॥

मूल–हतप्रवीरा व्यथिता राक्षसेन्द्रचमूस्तथा । जगामाभिमुखी सा तु कुम्भकर्णात्मजो यतः ॥ १ ॥ निपातितमहावीरां दृष्ट्वा रक्षश्चमूं तदा । कुम्भः प्रचक्रे तेजस्वी रणे कर्म सुदुष्करम् ॥ २ ॥ तांस्तु दृष्ट्वा हरिगणाञ्शरदृष्टिभिरर्दितान् । अभिदुद्राव सुग्रीवः कुम्भकर्णात्मजं रणे ॥३॥ ततः कुम्भः समुत्पत्य सुग्रीवमभिपात्य च । आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ ४ ॥ स तत्राभिहतस्तेन सुग्रीवो वानरर्षभः । स मुष्टिं पातयामास कुम्भस्योरसि वीर्यवान् ॥ ५ ॥ स तु तेन प्रहारेण विह्वलो भृशपीडितः । निपपात तदा कुम्भो गतार्चिरिव पावकः ॥ ६ ॥ निकुम्भो भ्रातरं दृष्ट्वा सुग्रीवेण निपातितम् । प्रदहन्निव कोपेन वानरेन्द्रमुदैक्षत ॥ ७ ॥ आददे परिघं धीरो महेन्द्रशिखरोपमम् । यमदण्डोपमं भीमं रक्षसां भय-

नाशनम् ॥ ८ ॥ राक्षसा वानराश्चापि न शेकुः स्पन्दितुं भयात् । हनूमांस्तु विवृत्योरस्तस्थौ प्रमुखतो बली ॥ ९ ॥ हनूमानुन्ममाथाशु निकुम्भं मारुतात्मजः । निक्षिप्य परमायत्तो निकुम्भं निष्पिपेष च ॥ १० ॥ परिगृह्य च बाहुभ्यां परिवृत्य शिरोधराम् । उत्पाटयामास शिरो भैरवं नदतो महत् ॥ ११ ॥

टीका—उन वीरों के मरने से दुःखित हुई राक्षससेना उस ओर गई जहां कुम्भकर्ण का पुत्र था ॥ १ ॥ जिस में से महावीर गिर चुके हैं, ऐसी राक्षससेना को देखकर तेजस्वी कुम्भ ने रण में बड़ा दुष्कर कर्म आरम्भ किया ॥ २ ॥ उन वानरसमूहों को बाणों से पीड़ित देखकर सुग्रीव रण में कुम्भकर्ण के पुत्र की ओर दौड़ा ॥ ३ ॥ तब कुम्भ कूदा और उसने क्रुद्ध हो सुग्रीव को गिराकर वज्रतुल्य मुक्के से उसकी छाती पर प्रहार किया ॥ ४ ॥ उससे प्रहार किये हुए वानरश्रेष्ठ वीर्यवान् सुग्रीव ने कुम्भ की छाती पर मुक्का मारा ॥ ५ ॥ उस प्रहार से व्याकुल हुआ अतीव पीड़ित हुआ कुम्भ दूर हुई लाटवाले अग्नि की तरह (निस्तेज) होकर गिर पड़ा ॥ ६ ॥ भाई को सुग्रीव से गिराया देखकर क्रोध से मानों दग्ध करते हुए निकुम्भ ने वानरेन्द्र की ओर देखा ॥ ७ ॥ उस वीर ने महेन्द्र की चोटी तुल्य, यमदण्ड के तुल्य, भयानक और राक्षसों के भय का नाशक परिघ लिया ॥ ८ ॥ मारे भय के राक्षस और वानर फर्क नहीं सके, किन्तु बली हनुमान् छाती आगे करके सामने खड़ा हुआ ॥ ९ ॥ पवनपुत्र हनुमान् ने निकुम्भ को मथ डाला, और नीचे फैंककर निकुम्भ को पीस डाला ॥ १० ॥ दोनों भुजाओं को पकड़कर और उसकी गर्दन मरोड़कर भयानक गर्जते हुए के सिर को तोड़ दिया ॥ ११ ॥

सर्ग ४२ (व०७८-७९) खरपुत्र मकराक्षका युद्ध और राम से बध

मूल–निकुम्भं निहतं दृष्ट्वा कुम्भं च विनिपातितम्। रावणः परमामर्षी प्रजज्वालानलो यथा ॥१॥ नैर्ऋतः क्रोधशोकाभ्यां द्वाभ्यां तु परिमूर्छितः। खरपुत्रं विशालाक्षं मकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥ गच्छ पुत्र मयाज्ञप्तो बलेनाभिसमन्वितः। राघवं लक्ष्मणं चैव जहि तौ सवनौकसौ ॥ ३ ॥ सोऽभिवाद्य दशग्रीवं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्। निर्जगाम गृहाच्छुभ्राद्रावणस्याज्ञया बली ॥ ४ ॥ निर्गतं मकराक्षं ते दृष्ट्वा वानरपुङ्गवाः। आप्लुत्य सहसा सर्वे योद्धुकामा व्यवस्थिताः ॥ ५ ॥ तद्युद्धमभवत्तत्र समेत्यान्योन्यमोजसा। खरराक्षसपुत्रस्य सूनोर्दशरथस्य च ॥ ६ ॥ राममुक्तांस्तु बाणौघान्राक्षसस्त्वाच्छिनद्रणे। रक्षोमुक्तांस्तु रामो वै नैकधा प्राच्छिनच्छरैः ॥ ७ ॥ ततः क्रुद्धो महाबाहुर्धनुश्चिच्छेद संयुगे। अष्टाभिरथ नाराचैः सूतं विव्याध राघवः ॥ ८ ॥ भित्त्वा रथं शरै रामो हत्वा अश्वानपातयत्। विरथो वसुधास्थः स शूलं जग्राह पाणिना ॥ ९ ॥ स क्रोधात्प्राहिणोत्तस्मै राघवाय महात्मने। बाणैश्चतुर्भिराकाशे शूलं चिच्छेद राघवः ॥ १० ॥ तच्छूलं निहतं दृष्ट्वा मकराक्षो निशाचरः। मुष्टिमुद्यम्य काकुत्स्थं तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ११ ॥ स तं दृष्ट्वापतन्तं तु प्रहस्य रघुनन्दनः। पावकास्त्रं ततो रामः संदधे तु शरासने ॥ १२ ॥ तेनास्त्रेण हतं रक्षः काकुत्स्थेन तदा रणे। संछिन्नहृदयं तत्र पपात च ममार च ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा ते राक्षसाः सर्वे मकराक्षस्य पातनम्। लङ्कामेव प्रधावन्त रामबाणभयार्दिताः ॥१४ ॥

टीका–निकुम्भ और कुम्भ को मारा गया सुनकर परम क्रोधी रावण अग्नि की तरह जल उठा ॥१॥ क्रोध और शोक से मूर्छित हुए उस राक्षस ने विशाल नेत्रोंवाले खर के पुत्र मकराक्ष को प्रेरा ॥ ५ ॥ जा हे पुत्र ! मुझ से आज्ञा दिया हुआ तू सेना समेत जाकर वानरों

समेत राम और लक्ष्मण को मार ॥ ३ ॥ वह बली रावण को अभिवादन और प्रदक्षिणा करके रावण की आज्ञा से शुभ्रग्रह से निकला ॥ ४ ॥ मकराक्ष को निकला देखकर वानरवर सभी उछलकर युद्ध के लिये सफें बांधकर तैयार होगए ॥ ५ ॥ आपस में मिलकर खर राक्षस के पुत्र और दशरथ के पुत्र का प्रबल युद्ध हुआ ॥ ६ ॥ राम से छोड़ बाणसमूहों को राक्षस काट देता भया, और राक्षस से छोड़े बाणों को राम अपने बाणों से नाना प्रकार से काट देते भए ॥ ७ ॥ तब क्रुद्ध हुए महाबाहु राम ने आठ बाणों से युद्ध में उसके धनुष को काट दिया, और सारथि को बींध दिया ॥८॥ राम ने बाणों से रथ को फोड़ दिया, घोड़ों को गिरा दिया, तब प्यादा होकर उस राक्षस ने त्रिशूल पकड़ा ॥ ९ ॥ क्रोध से उसने वह त्रिशूल राम की ओर फैंका, राम ने उस त्रिशूल को आकाश में चार बाणों से टुकड़े कर दिया ॥ १० ॥ शूल को टूटा देखकर मकराक्ष निशाचर मुक्का ऊंचा करके "ठहर ठहर" कहता हुआ राम की ओर दौड़ा ॥ ११ ॥ उसको आता देखकर राम ने हंसकर बाण में आग्नेयास्त्र जोड़ा ॥ १२ ॥ उस अस्त्र से राम से मारा हुआ वह छिन्नहृदय होकर गिर पड़ा, और मर गया ॥ १३ ॥ राक्षस मारे मकराक्ष को गिरता देखकर राम के बाणों के भय से पीड़ित हुए लङ्का को ही भाग गये ॥ १४ ॥

सर्ग ४३ (व० ८०-८१) इन्द्रजित का रण में आना और मायामयी सीता को मारना

मूल—मकराक्षं हतं श्रुत्वा रावणः समितिञ्जयः । आदिदेशाथ संक्रुद्धो रणायेन्द्रजितं सुतम् ॥ १ ॥ जहि वीर महावीर्यौ भ्रातरौ राम-लक्ष्मणौ । अदृश्यो दृश्यमानो वा सर्वथा त्वं बलाधिकः ॥ २ ॥

त्वमप्रतिमकर्माणमिन्द्रं जयसि संयुगे। किं पुनर्मानुषौ दृष्ट्वा न वधिष्यसि संयुगे ॥ ३ ॥ तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रतिगृह्य पितुर्वचः । यज्ञभूमौ स विधिवत्पावकं जुहवेन्द्राजित् ॥ ४ ॥ क्रोधताम्रेक्षणः शूरो निर्जगामाथ रावणिः। स पश्चिमेन द्वारेण निर्ययौ राक्षसैर्वृतः ॥ ५ ॥ इन्द्राजित्तु रथे स्थाप्य सीतां मायामयीं तदा। मोहनार्थं तु सर्वेषां वानराभिमुखो ययौ ॥ ६ ॥ तां स्त्रियं पश्यतां तेषां ताडयामासराक्षसः। क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजितां रथे ॥ ७ ॥ गृहीतमूर्धजां दृष्ट्वा हनूमान् मारुतात्मजः । अब्रवीत्परुषं वाक्यं क्रोधाद्रक्षोधिपात्मजम्॥८॥ दुरात्मन्नात्मनाशाय केशपक्षे परामृशः। धिक्त्वां पापसमाचारं यस्य ते मतिरीदृशी ॥ ९ ॥ नृशंसानार्य दुर्वृत्त क्षुद्र पापपराक्रम। अनार्यस्येदृशं कर्म घृणा ते नास्ति निर्घृण ॥ १० ॥ सीतां हत्वा तु न चिरं जीविष्यासि कथञ्चन । वधार्हकर्मणा तेन मम हस्तगतो ह्यसि ॥ ११ ॥ ये च स्त्रीघातिनां लोका लोकवध्यैश्च कुत्सिताः।इह जीवितमुत्सृज्य प्रेत्य तान्प्रति लप्स्यसे ॥ १२ ॥ इति ब्रुवाणो हनुमान्सायुधैर्हरिभिर्वृतः । अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धो राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥ १३ ॥ आपतन्तं महावीर्यं तदनीकं वनौकसाम्। रक्षसां भीमकोपानामनीकेनन्यवारयत् ॥१४॥ हनूमन्तं हरिश्रेष्ठमिन्द्रजित्प्रत्युवाच ह ॥ १५ ॥ सुग्रीवस्त्वं च रामश्च यन्निमित्तमिहागताः । तां वधिष्यामि वैदेहीमद्यैव तव पश्यतः ॥ १६ ॥ इमां हत्वा ततो रामं लक्ष्मणं त्वां च वानर । सुग्रीवं च वधिष्यामि तं चानार्यं विभीषणम् ॥ १७ ॥ न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद्ब्रवीषि प्लवङ्गम । पीडाकरममित्राणां यच्च कर्तव्यमेव तत् ॥ १८ ॥ तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं च ताम् । शितधारेण खड्गेन निजघानेन्द्रजित्स्वयम् ॥ १९ ॥ ततः खड्गेन महता हत्वा तामिन्द्रजित्स्वयम्। हृष्टः स रथमास्थाय ननाद च महास्वनम् ॥२०॥

टीका—मकराक्ष को हत हुआ सुनकर युद्धों के जीतनेवाले रावण ने क्रुद्ध होकर अपने पुत्र इन्द्रजित को रण के लिये आज्ञा दी ॥ १ ॥ हे वीर उन महावीर्य दोनों भाई राम लक्ष्मण को, अदृश्य होकर वा दृश्यमान हुआ मार, सर्वथा तू बल में अधिक है ॥ २ ॥ तू अतुल्य कर्मोंवाले इन्द्र को युद्ध में जीत सक्ता है, क्या फिर उन दोनों मनुष्यों को देखकर युद्ध में नहीं मारेगा ॥ ३ ॥ राक्षसेन्द्र से ऐसे कहा हुआ पिता की आज्ञा को स्वीकारकर इन्द्रजित युद्धभूमि में गया, और उसने यथाविधि अग्नि में होम किया ॥ ४ ॥ क्रोध से लाल नेत्रोंवाला शूर रावणपुत्र राक्षसों से घिरा हुआ पश्चिम द्वार से बाहर निकला ॥ ५ ॥ वह इन्द्रजित् मयामयी सीता को रथ पर स्थापन करके सब को धोखा देने के लिये वानरों के अभिमुख गया ॥ ६ ॥ माया से रथ पर जोड़ी हुई राम राम पुकारती हुई उस स्त्री को उनके देखते हुए राक्षस ने ताड़ना किया ॥ ७ ॥ बालों से पकड़ी को देखकर पवनपुत्र हनुमान् क्रोध से राक्षसपति के पुत्र को यह कठोर वाक्य बोला ॥ ८ ॥ हे दुरात्मन् तू अपने नाश के लिये इसके बालों को छूता है, धिक्कार तुझ पापाचार वाले को जिसकी मति ऐसी है ॥ ९ ॥ हे नृशंस, हे अनार्य, हे दुर्वृत्त, हे क्षुद्र, हे पाप पराक्रमवाले, ऐसा कर्म अनार्य का होता है, हे निर्दय तुझे दया नहीं है ॥ १० ॥ सीता को मारकर इस कर्म से हे वध योग्य ! तू मेरे हाथ में पड़ा हुआ देर तक जीता नहीं रहेगा ॥ ११ ॥ जो स्त्रीघातियों के लोक हैं, जो लोक बध्यों (चोरादि) से भी निन्दित हैं, तू यहां जीवन छोडकर मरकर उनको प्राप्त होगा ॥ १२ ॥ यह कहता हुआ हनुमान् क्रुद्ध हुआ हाथों में शस्त्र धारे वानरों से घिरा हुआ राक्षसेन्द्र के पुत्र की ओर दौड़ा ॥ १३ ॥ आती हुई वानरों की

उस बड़ी शक्तिवाली सेना को इन्द्राजित् ने भयङ्कर क्रोधवाले राक्षसों की सेना से रोका और वानरश्रेष्ठ हनुमान् को उत्तर दिया ॥ १४, १५ ॥ सुग्रीव तू और राम जिस निमित्त यहां आए हो, उस वैदेही को आज तेरे सामने मारूंगा ॥ १६ ॥ इसको मार कर हे वानर फिर राम लक्ष्मण को तुझको सुग्रीव को और उस अनार्य विभीषण को मारूंगा ॥ १७ ॥ स्त्री मारने योग्य नहीं, यह जो तू कहता है हे वानर! सो जो शत्रुओं को दुःखदायी हो, वह करनाही चाहिये ॥ १८ ॥ यह कहकर रोती हुई उस मायामयी सीता को इन्द्राजित् ने स्वयं तीक्ष्णधारा वाले खड्ग से काट दिया ॥ १९ ॥ स्वयं बड़े खड्ग से उसे मारकर प्रसन्न हुआ इन्द्राजित् रथ पर खड़ा होकर बड़ी ध्वनि से गर्जा ॥ २० ॥

सर्ग ७४ (व० ८२-८४) सीता का वध सुनकर राम का शोक और विभीषण का उस के असली भेद को खोलना

मूल—अभिपेतुश्च गर्जन्तो राक्षसान्वानरर्षभाः। परिवार्य हनूमन्तमन्वयुश्च महाहवे ॥ १ ॥ स तैर्वानरमुख्यैस्तु हनूमान्सर्वतो वृतः। हुताशन इवार्चिष्मानदहच्छत्रुवाहिनीम् ॥ २ ॥ स सैन्यमभिवीक्ष्याथ वानरार्दितमिन्द्राजित्। प्रगृहीतायुधः क्रुद्धः परानभिमुखो ययौ ॥ ३ ॥ स शरौघानवसृजन्स्वसैन्येनाभिसंवृतः। जघान कपिशार्दूलान्सुबहून्दृढविक्रमः ॥ ४ ॥ हनूमान्कदनं चक्रे रक्षसां भीमकर्मणाम्। सन्निवार्य परानीकमब्रवीत्तान्वनौकसः ॥ ५ ॥ त्यक्त्वा प्राणान्विचेष्टन्तो रामप्रियचिकीर्षवः। यन्निमित्तं हि युध्यामो हता सा जनकात्मजा ॥ ६ ॥ इममर्थं हि विज्ञाप्य रामं सुग्रीवमेव च। तौ यत्प्रतिविधास्येते तत्करिष्यामहे वयम् ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा वानरश्रेष्ठो वारयन्सर्ववानरान्। शनैः शनैरसंत्रस्तः सबलः संन्यवर्तत ॥ ८ ॥ ततः प्रेक्ष्य हनूमन्तं व्रजन्तं तत्र राघवम्। स होतुकामो दुष्टात्मा

गतश्चैसं निकुम्भिलाम् ॥ ९ ॥ राघवश्चापि विपुलं तं राक्षसवनौकसाम् । श्रुत्वा संग्रामनिर्घोषं जाम्बवन्तमुवाच ह ॥ १० ॥ सौम्य नूनं हनुमता कृतं कर्म सुदुष्करम् । श्रूयते च यथा भीमः सुमहानायुधस्वनः ॥ ११ ॥ तद्गच्छ कुरु साहाय्यं स्वबलेनाभिसंवृतः ॥ १२ ॥ ऋक्षराजस्तथेत्युक्त्वा स्वेनानीकेन संवृतः । आगच्छत्पश्चिमं द्वारं हनूमान्यत्र वानरः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा पथि हनूमांश्च तदृक्षबलमुद्यतम् । नीलमेघनिभं भीमं संनिवार्य न्यवर्तत ॥ १४ ॥ स तेन सह सैन्येन सन्निकर्षं महायशाः । शीघ्रमागम्य रामाय दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥ १५ ॥ समरे युध्यमानानामस्माकं प्रेक्षतां च सः । जघान रुदतीं सीतामिन्द्रजिद्रावणात्मजः ॥ १६ ॥ उद्भ्रान्तचित्तस्तां दृष्ट्वा विषण्णोऽहमरिन्दम । तदहं भवतो वृत्तं विज्ञापयितुमागतः ॥ १७ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्छितः । निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ १८ ॥ राममाश्वासमाने तु लक्ष्मणे भ्रातृवत्सले । निक्षिप्य गुल्मान्स्वस्थाने तत्रागच्छद्विभीषणः ॥ १९ ॥ व्रीडितं शोकसंतप्तं दृष्ट्वा रामं विभीषणः । पुष्कलार्थमिदं वाक्यं विसंज्ञं राममब्रवीत् ॥ २० ॥ वानरान्मोहयित्वा तु प्रतियातः स राक्षसः । मायामयीं महाबाहो तां विद्धि जनकात्मजाम् ॥ २१ ॥ चैत्यं निकुम्भिलामद्य प्राप्य होमं करिष्यति । हुतवानुपयातो हि देवैरपि सवासवैः ॥ २२ ॥ दुराधर्षो भवत्येष संग्रामे रावणात्मजः ॥ २३ ॥ तेन मोहयता नूनमेषा माया प्रयोजिता । विघ्नमन्विच्छता तत्र वानराणां पराक्रमे ॥ २४ ॥ ससैन्यास्तत्र गच्छामो यावत्तन्न समाप्यते । त्यजेमं नरशार्दूल मिथ्यासंतापमागतम् ॥ २५ ॥ इह त्वं स्वस्थहृदयस्तिष्ठ सत्त्वसमुच्छ्रितः । लक्ष्मणं प्रेषयास्माभिः सह सैन्यानुकर्षिभिः ॥ २६ ॥ एष तं नरशार्दूलो रावणिं निशितैः शरैः । त्याजयिष्यति तत्कर्म ततो बध्यो भविष्यति ॥ २७ ॥

टीका–तब उस महायुद्ध में वानरश्रेष्ठ गर्जते हुए हनुमान् के साथ राक्षसों के ऊपर टूट पड़े ॥ १ ॥ उन वानर मुख्यों से सब ओर घिरा हुआ वह हनुमान् लाटोंवाली अग्नि की तरह शत्रु सेना को दग्ध करता भया ॥ २ ॥ इधर इन्द्रजीत वानरों से पीड़ित सेना को देखकर शस्त्र पकड़कर क्रोध से भरा हुआ शत्रुओं के अभिमुख गया ॥ ३ ॥ अपनी सेना के साथ मिलकर उसने बाणों के समूह छोड़े, उस दृढ़ विक्रमवाले ने बहुत से वानरश्रेष्ठों को मार डाला ॥४॥ हनुमान् ने तो उन भीमकर्मा राक्षसों का विनाश करके उस शत्रुसेना को पीछे हटा दिया, और फिर उन वानरों से बोला ॥५॥ हम राम का प्रिय करना चाहते हुए प्राणों को छोड़कर लड़ रहे हैं, पर जिसके निमित्त हम लड़ रहे हैं, वह जनकसुता मारी गई है ॥ ६ ॥ यह बात राम और सुग्रीव को जितलाकर फिर जो कुछ वह प्रतिकार करेंगे वह हम करेंगे ॥ ७ ॥ यह कहकर वानरश्रेष्ठ सारे वानरों को हटाकर धीरे २ निर्भय सेना समेत लौटा ॥ ८ ॥ हनुमान् को राम की ओर आता देखकर वह दुष्टात्मा होम की इच्छासे निकुम्भिलाचैत्य (पूजा स्थान) को गया ॥९॥ उधर राघव ने राक्षस और वानरों की उस विपुल संग्रामध्वनि को सुनकर जाम्बवान् को कहा ॥१०॥ हे सौम्य हनुमान् ने निःसंदेह बड़ा दुष्कर कर्म किया है, जैसा कि शस्त्रों की बहुत बड़ी भयङ्कर ध्वनि सुनाई दे रही है ॥ ११ ॥ सो तू अपनी सेना के साथ जा उसकी सहायता कर ॥ १२ ॥ ऋक्षराज तथास्तु कहकर अपनी सेना समेत पश्चिम द्वार की ओर आया, जहां हनुमान् वानर था ॥ १३ ॥ मार्ग में हनुमान् नील मेघ तुल्य भयानक उद्यत हुई उस सेना को देखकर उसे भी साथ लौटा लाया ॥ १४ ॥ वह महायशस्वी उस सेना के साथ जल्दी राम के पास आ दुःखित हुआ उसे यह वाक्य बोला

॥ १५ ॥ संग्राम में युद्ध करते हुए रावणसुत इन्द्रजित ने हमारे देखते हुए रोती हुई सीता को मारडाला है ॥ १६ ॥ उसको देखकर घबराए हुए मनवाला उदास हुआ मैं हे शत्रुदमन यह वृत्तान्त आपको बतलाने के लिये आया हूं ॥ १७ ॥ उसके वचन को सुन कर राम शोक से मूर्छित हुआ कटी जड़ वाले वृक्ष की तरह भूमि पर गिरपड़ा ॥ १८ ॥ उससमय भ्रातृ-वत्सल लक्ष्मण के राम को तसल्ली देते हुए विभीषण अपने२ स्थान पर मोर्चे लगाकर वहां आया ॥ १९ ॥ लज्जित हुए और शोक से तपे हुए राम को देखकर विभीषण घबराए हुए रामसे गम्भीर तात्पर्यवाला यह वाक्य बोला ॥ २० ॥ वानरों को धोखा देकर वह राक्षस वापिस चला गया है, हे राघव उस सीता को तू मायामयी जान २१ ॥ वह अब निकुम्भिला चैत्य में जाकर होम करेगा, होम करके आया हुआ वह रावणसुत संग्राम में इन्द्रसहित देवताओं से भी दुराधर्ष होजाता है ॥ २२, २३ ॥ इसलिए धोखा देते हुए उसने यह माया की है, जिससे कि वानरों के पराक्रम में विघ्न पड़े ॥ २४ ॥ हम सेना सहित वहां जाते हैं, जब तक कि वह (हवन) समाप्त नहीं होता है, हे नरश्रेष्ठ तू इस मिथ्या आए सन्ताप को त्याग ॥ २५ ॥ यहां आप स्वस्थ हृदय होकर दिलेरी से ठहरे रहें, और लक्ष्मण को सेना सहित हमारे साथ भेजिये ॥ २६ ॥ हे नरशार्दूल यह उस रावणसुत से तीक्ष्ण तीरों द्वारा वह कर्म छुड़वा देगा, तब वह वध्य होगा ॥ २७ ॥

सर्ग ४५ (व० ८१) लक्ष्मण की मेघनाथ पर चढ़ाई ॥

मूल—ततो धैर्यमवष्टभ्य रामः परपुरञ्जयः । विभीषणमुपासीन-मुवाच कपिसन्निधौ ॥ १ ॥ नैर्ऋताधिपते वाक्यं यदुक्तं ते विभीषण । भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥ २ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा बभाषेऽथ विभीषणः । यथाज्ञप्तं महाबाहो त्वया गुल्म-

निवेशनम् ॥ ३ ॥ तत्तथानुष्ठितं वीर त्वद्वाक्यसमनन्तरम् । तान्य-
नीकानि सर्वाणि विभक्तानि समन्ततः ॥ ४ ॥ विन्यस्ता यूथपाश्चैव
यथान्यायं विभागशः । भूयस्तु मम विज्ञाप्यं तच्छृणुष्व महाप्रभो
॥ ५ ॥ त्यज राजन्निमं शोकं मिथ्यासन्तापमागतम् । यदियं त्यज्यतां
चिन्ता शत्रुहर्षविवर्धिनी ॥ ६ ॥ उद्यमः क्रियतां वीर हर्षः समुप-
सेव्यताम् । प्राप्तव्या यदि ते सीता हन्तव्याश्च निशाचराः ॥ ७ ॥
साध्वयं यातु सौमित्रिर्बलेन महता वृतः । निकुम्भिलायां संप्राप्य
हन्तुं रावणिमाहवे ॥ ८ ॥ स एष किल सैन्येन प्राप्तः किल निकु-
म्भिलाम् । यद्युत्तिष्ठेत्कृतं कर्म हतान्सर्वांश्च विद्धि नः ॥ ९ ॥
वधायेन्द्रजितो राम संदिशस्व महाबलम् । हते तस्मिन्हतं विद्धि
रावणं ससुहृद्गणम् ॥१०॥ राघवस्तु रिपोर्ज्ञात्वा मायावीर्यं दुरात्मनः ।
लक्ष्मणं कीर्त्तिसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥ ११ हनूमत्प्रमुखैश्चैव
यूथपैः सह लक्ष्मण । जाम्बवेनर्क्षपतिना सह सैन्येन संवृतः ॥१२॥
जहि तं राक्षससुतं मायाबलसमन्वितम् । अयं त्वां सचिवैः सार्धं
महात्मा रजनीचरः ॥ १३ ॥ अभिज्ञस्तस्य मायानां पृष्ठतोऽनुग-
मिष्यति ॥ १४ ॥ सोऽभिवाद्य गुरोः पादौ कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
निकुम्भिलामभिययौ चैत्यं रावणिपालितम् ॥ १५ ॥

टीका—तब धैर्य धारकर शत्रुओं के किले जीतनेवाले रामने हनु-
मान् के सामने पास बैठे विभीषण से कहा ॥ १ ॥ हे राक्षसा-
धिपते विभीषण जो वाक्य तूने कहा है, वह मैं फिर सुनना चाहता
हूं, कहो जो तुझे अभीष्ट है ॥ २ ॥ राघव के वचन को सुनकर
विभीषण बोला, हे महाबाहो जैसे आपने मोर्चाबन्दी की आज्ञा
दी थी ॥ ३ ॥ हे वीर वह आपके वाक्य के अनन्तर ही वैसे कर
दी गई है, सारी सेनाएं चारों ओर बांट दी गई हैं ॥ ४ ॥ और
यूथपति भी अलग २ अपनी २ जगह लगा दिये गये हैं, किन्तु

यह मेरी और विनति है महाप्रभो सुनिये ॥ ५ ॥ हे राजन् इस शोक को त्यागिये जो कि मिथ्या सन्ताप आया है, शत्रुओं के हर्ष को बढ़ाने वाली यह चिन्ता छोड़ दीजिये ॥ ६ ॥ हे वीर यदि सीता को पाना है और राक्षसों को मारना है, तो उद्यम कीजिये और हर्ष में रहिये ॥ ७ ॥ यह लक्ष्मण बड़ी सेना से युक्त हो, निकुम्भिला में पहुंच, रावणसुत को युद्ध में मारने के लिये चढ़ाई कर ॥ ८ ॥ क्योंकि वह सेना समेत निकुम्भिला को गया है, यदि कर्म (अभिचार होम) पूरा करके उठा, तो हम सब को मरा जानिये ॥९॥ सो (अभिचार होम पूरा होने से पहिले ही) इन्द्रजित् को मारने के लिये हे राम महाबली (लक्ष्मण) को आज्ञा दीजिये, उसके मारने पर रावण को सुहृद्गणों समेत मरा जानिये ॥ १० ॥ तब राघव दुरात्मा शत्रु के मायावीर्य को जानकर कीर्तिसम्पन्न लक्ष्मण से यह वचन बोला ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण हनुमान् आदि यूथपतियों के सहित और सेना समेत ऋक्षपति जाम्बवान् के साथ जाकर ॥१२॥ माया बल से युक्त उस राक्षस सुत को मार, और यह महात्मा राक्षस जो उसकी माया का जाननेवाला है, यह अपने मन्त्रियों सहित तेरे पीछे जाएगा ॥१३॥ (यह आज्ञा पाकर लक्ष्मण) गुरु के पाओं को प्रणाम कर और प्रदक्षिणा करके रावणसुत से पालित निकुम्भिला चैत्य को गया ॥ १४ ॥

सर्ग ४६ (व० ८६) इन्द्रजित् और हनुमान् का युद्ध

मूल—अथ तस्यामवस्थायां लक्ष्मणं रावणानुजः । परेषामहितं वाक्यमर्थसाधकमब्रवीत् ॥ १ ॥ यदेतद्राक्षसानीकं मेघश्यामं विलोक्यते । तस्यानीकस्य महतो भेदने यत लक्ष्मण ॥ २ ॥ राक्षसेंद्रसुतोऽप्यत्र भिन्ने दृश्यो भविष्यति । अभिद्रवाशु यावद्वै नैतत्कर्म समाप्यते ॥ ३ ॥ विभीषणवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः । ववर्ष

शरवर्षेण राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥ ४ ॥ ऋक्षाः शाखामृगाश्चैव द्रुमप्रवरयोधिनः । । अभ्यधावन्त सहितास्तदनीकमवस्थितम् ॥ ५ ॥ ऋक्षवानरमुख्यैश्च महाकायैर्महाबलैः । रक्षसां युध्यमानानां महद्भयमजायत ॥ ६ ॥ स्वमनीकं विषण्णं तु श्रुत्वा शत्रुभिरर्दितम् । उदतिष्ठत दुर्धर्षः स कर्मण्यननुष्ठिते ॥ ७ ॥ वृक्षान्धकारान्निर्गम्य जातक्रोधः स रावणिः । आरुरोह रथं सज्जं पूर्वयुक्तं सुसंयतम् ॥ ८ ॥ स ददर्श कपिश्रेष्ठमचलोपममिन्द्रजित् । सूदमानमसन्त्रस्तमामित्रान् पवनात्मजम् ॥ ९ ॥ स सारथिमुवाचेदं याहि यत्रैष वानरः । क्षयमेव हि नः कुर्याद्राक्षमानामुपेक्षितः ॥ १० ॥ इत्युक्तः सारथिस्तेन ययौ यत्र स मारुतिः । वहन्परमदुर्धर्षं स्थितमिन्द्रजितं रणे ॥ ११ ॥ सोऽभ्युपेत्य शरान्खड्गान्पट्टिशासिपरश्वधान् । अभ्यवर्षत दुर्धर्षःकपिमूर्धनि राक्षसः ॥ १२ ॥ तानि शस्त्राणि घोराणि प्रतिगृह्य स मारुतिः । रोषेण महताविष्टो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १३ ॥ युध्यस्व यदि शूरोऽसि रावणात्मज दुर्मते । । वायुपुत्रं समासाद्य न जीवन्प्रतियास्यसि ॥ १४ ॥ बाहुभ्यां संप्रयुध्यस्व यदि मे द्वन्द्वमाहवे । वेगं सहस्व दुर्बुद्धे ततस्त्वं रक्षसां वरः ॥ १५ ॥ हनूमन्तं जिघांसन्तं समुद्यतशरासनम् । रावणात्मजमाचष्टे लक्ष्मणाय विभीषणः ॥ १६ ॥ यः स वासवनिर्जेता रावणस्यात्मसम्भवः । स एष रथमास्थाय हनूमन्तं जिघांसति ॥ १७ ॥ तमप्रतिमसंस्थानैः शरैः शत्रुनिवारणैः । जीवितान्तकरैर्घोरैः सौमित्रे रावणिं जहि ॥ १८ ॥

टीका--अब उस अवस्था में रावण के छोटे भाई ने शत्रुओं का अहित और अपना अर्थ साधक वाक्य लक्ष्मण को कहा ॥ १ ॥ जो यह मेघसमान काली राक्षस सेना दीखती है, इस बड़ी सेना के दल तोड़ने में हे लक्ष्मण यत्न कर ॥२॥ राक्षसेन्द्र का पुत्र भी इसके टूटने पर यहां दिखलाई देगा, तेजी से धावा करो, जब तक कि

यह कर्म समाप्त नहीं होता है ॥ ३ ॥ विभीषण के वचन को सुनकर शुभ लक्षणोंवाले लक्ष्मण ने राक्षसेन्द्र के पुत्र की ओर तीरों की वर्षा आरम्भ की ॥४॥ बड़े वृक्षों से युद्ध करनेवाले ऋक्ष और वानर भी सामने खड़ी उस सेना पर मिलकर धावा करते भए ॥५॥ बड़े शरीरों वाले बड़े बली ऋक्ष और वानरों से युद्ध करते हुए राक्षसों को बड़ा भय उत्पन्न हुआ ॥६॥ अपनी सेना को शत्रुओं से पीड़ित और विनाश सुनकर वह दुर्धर्ष (इन्द्राजित) कर्म को पूरा किये बिना उठ खड़ा हुआ ॥ ७ ॥ वृक्षों के अन्धकार से निकलकर उत्पन्न हुए क्रोधवाला वह रावणसुत पहले ही जोड़े हुए अच्छी तरह सजे हुए रथ पर आरूढ़ हुआ ॥ ८॥ उस इन्द्राजित ने पर्वतसमान (देहवाले),निडर होकर शत्रुओं को मारते हुए वानरश्रेष्ठ पवनसुत को देखा ॥ ९ ॥ उसने सारथि से कहा, चलो जहां यह वानर है, यह उपेक्षा किया हुआ राक्षसों को क्षय ही कर डालेगा ॥ १० ॥ ऐसे कहा हुआ सारथि रथ पर स्थित परम दुर्धर्ष इन्द्राजित को लिये वहां पहुंचा, जहां पवनपुत्र था ॥ ११ ॥ सामने होकर वह दुर्धर्ष राक्षस वानर के माथे पर बाण, खड्ग, पट्टिश, तलवार और कुल्हाड़ों की वर्षा करता भया ॥ १२ ॥ उन भयङ्कर शस्त्रों को रोककर वह पवनपुत्र बड़े क्रोध से भरा हुआ यह वाक्य बोला ॥१३॥ हे रावणसुत हे दुर्मते युद्धकर यदि तू सूरमा है, पवन पुत्र को मिलकर अब तू जीता नहीं लौटेगा ॥१४॥ यदि रण में भुजाओं से मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध करे और मेरे वेग को सहारे, तब तू राक्षसों में श्रेष्ठ है ॥१५॥ तब धनुष उठाकर हनुमान् को मारना चाहते हुए रावणसुत को देखकर विभीषण ने लक्ष्मण को कहा ॥ १६ ॥ जो इन्द्र के जीतनेवाला रावणसुत है, वह यह रथ पर चढ़कर हनुमान् को मारना चाहता है॥१७॥उस रावणसुत को तू हे

लक्ष्मण शत्रुओं के रोकनेवाले, जीवन का अन्त करनेवाले अनुपम बाणों से मार ॥ १८ ॥

सर्ग ४७ (व० ८७) इन्द्रजित् और विभीषण की बातचीत

मूल—एवमुक्त्वा तु सौमित्रिं जातहर्षो विभीषणः। धनुष्पाणिं तमादाय त्वरमाणो जगाम सः ॥ १ ॥ अविदूरं ततो गत्वा प्रविश्य तु महद्वनम् । अदर्शयत तत्कर्म लक्ष्मणाय विभीषणः ॥ २ ॥ नीलजीमूतसंकाशं न्यग्रोधं भीमदर्शनम् । तेजस्वी रावणभ्राता लक्ष्मणाय न्यवेदयत ॥ ३ ॥ इहोपहारं भूतानां बलवान्रावणात्मजः । उपहृत्य ततः पश्चात्संग्राममभिवर्तते ॥ ४ ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां ततो भवति राक्षसः । निहन्ति समरे शत्रून्बध्नाति च शरोत्तमैः ॥५॥ तमप्रविष्टं न्यग्रोधं बलिनं रावणात्मजम् । विध्वंसय शरैर्दीप्तैः सरथं साश्वसारथिम् ॥ ६ ॥ तथेत्युक्त्वा महातेजाः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः । बभूवावस्थितस्तत्र चित्रं विस्फारयन्धनुः ॥ ७ ॥ स रथेनाग्निवर्णेन बलवान्रावणात्मजः । इन्द्रजित्कवची खड्गी सध्वजः प्रत्यदृश्यत ॥ ८ ॥ तमुवाच महातेजाः पौलस्त्यमपराजितम् । समाह्वये त्वां समरे सम्यग्युद्धं प्रयच्छ मे ॥ ९ ॥ एवमुक्तो महातेजः मनस्वी रावणात्मजः । अब्रवीत्परुषं वाक्यं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम् ॥१०॥ इह त्वं जातसंवृद्धः साक्षाद्भ्राता पितुर्मम । कथं द्रुह्यसि पुत्रस्य पितृव्यो मम राक्षस ॥ ११ ॥ न ज्ञातित्वं न सौहार्दं न जातिस्तव दुर्मते । प्रमाणं न च सौदर्यं न धर्मो धर्मदूषण॥१२॥+शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः । यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ॥१३॥+नैतच्छिथिलया बुद्ध्या त्वं वेत्सि महदन्तरम् । क्व च स्वजनसंवासः क्व च नीचपराश्रयः ॥१४॥ +गुणवान्वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा । निर्गुणः स्वजनः श्रेयान्यः परः पर एव सः ॥१५॥+यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते । स स्वपक्षे क्षयं

याते पश्चात्तेनेव हन्यते ॥ १६ ॥ इत्युक्तः भ्रातृपुत्रेण प्रत्युवाच विभीषणः। अजानन्निव मच्छीलं किं राक्षस विकत्थसे ॥१७॥+ धर्मात्प्रच्युतशीलं हि पुरुषं पापनिश्चयम्। त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा ॥१८॥+परस्वहरणे युक्तं परदाराभिमर्शकम्। त्याज्यमाहुर्दुरात्मानं वेश्म प्रज्वलितं यथा ॥ १९ ॥+परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम्। सुहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥ २० ॥ महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः। अभिमानश्च रोषश्च वैरत्वं प्रतिकूलता ॥ २१ ॥ एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्वर्यनाशनाः ॥ २२ ॥ दोषैरेतैः परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव। नेयमस्ति पुरी लङ्का न च त्वं न च ते पिता ॥ २३ ॥ अतिमानश्च बालश्च दुर्विनीतश्च राक्षस। बद्धस्त्वं कालपाशेन ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि ॥ २४ ॥ प्रवेष्टुं न त्वया शक्यं न्यग्रोधं राक्षसाधम। धर्षयित्वा च काकुत्स्थ न शक्यं जीवितुं त्वया ॥ २५ ॥

टीका—यह कहकर उत्पन्न हुए हर्षवाला विभीषण धनुष हाथ में लिए लक्ष्मण को लेकर जल्दी करता हुआ उधर गया ॥१॥ थोड़ी दूर जाकर बड़े वनमें प्रविष्ट होकर विभीषण ने लक्ष्मण को वह कर्म दिखलाया ॥ २ ॥ तेजस्वी रावणभ्राता ने भयङ्कर दर्शन वाला नील मेघतुल्य एक बड़ लक्ष्मण को बतलाया ॥ ३ ॥ कि यहां बलवान् रावणसुत भूतबलि करके पीछे संग्राम पर चढ़ता है ॥४॥ तब यह राक्षस सब लोगों के अदृश्य होकर युद्ध में शत्रुओं को उत्तम बाणों से मारता है और बांधता है ॥५॥ इस बड़ से दूर ही स्थित उस बली रावणसुत को जलते हुए बाणों से रथ सारथि और घोड़ों समेत विध्वंस कर ॥६॥ तथास्तु कहकर मित्रों का आनन्द बढ़ानेवाला लक्ष्मण विचित्र धनुष को टङ्कारता हुआ वहीं (बड़ के द्वार पर) डट गया ॥७॥ तब बलवान् रावणसुत इन्द्रजित् कवच पहने और खड्ग

धारे हुए ध्वजा समेत अग्निबाण के साथ देखा गया (लक्ष्मण के धनुष की ध्वनि सुनकर पीछे लौटा) ॥८॥ महातेजस्वी (लक्ष्मण) पहले कभी न हारे हुए उस राक्षस से बोला, मैं तुझे युद्ध में आव्हान करता हूं. मुझे भली भांति युद्ध दे ॥ ९ ॥ ऐसे कहा हुआ महातेजस्वी मनस्वी रावणसुत वहां विभीषण को देखकर कठोर वाक्य बोला ॥ १० ॥ यहां तू जन्म लेकर बढ़ा हुआ मेरे पिता का साक्षात् भ्राता मेरा चचा होकर हे राक्षस तू कैसे द्रोह करता है ॥ ११ ॥ न जन्म न सौहार्द न जात्यभिमान हे दुर्मते तुझे प्रमाण है, न सगा भाई होना न धर्म हे धर्मदूषण ॥ १२ ॥ हे दुर्बुद्धे तू शोचनीय और साधुओं से निन्दनीय है, जो तू अपने जन को छोड़कर शत्रु का भृत्य बना है ॥ १३ ॥ तू अपनी दुर्बल बुद्धि से इस बड़े भेद को नहीं देखता है, कहां अपने जनों में वास और कहां नीच पराश्रय ॥ १४ ॥ परजन गुणवान् और स्वजन निर्गुण भी हो तो निर्गुण अपना जन अच्छा है, जो बेगाना है वह बेगाना ही है ॥ १५ ॥ जो अपने पक्ष को छोड़कर परपक्ष का सेवन करता है, वह अपने पक्ष के क्षय होने पर पीछे उन्हीं से मारा जाता है ॥१६॥ भ्रातृपुत्र से ऐसा कहा हुआ विभीषण उत्तर देता भया, मेरे शील को न जानते हुए की तरह हे राक्षस क्या तू अपनी श्लाघा करता है ॥१७॥ धर्म से गिरे हुए शीलवाले पाप निश्चय वाले पुरुष को त्यागकर सुख को प्राप्त होता है जैसे हाथ से सांप को ॥ १८ ॥ परधन के हरने में तय्यार, परस्त्री को दबानेवाले, दुरात्मा को आग लगे घर की तरह त्याज्य कहते हैं ॥ १९ ॥ परधन को हरना, परस्त्री को दबाना, और सुहृदों की अति शङ्का यह तीनों दोष क्षय लानेवाले हैं ॥ २० ॥ महर्षियों का बध, सब देवताओं से लड़ाई, अभिमान, क्रोध, वैर, और सदा

उलटा चलना ॥ २१ ॥ यह दोष मेरे भाई के जीवन और ऐश्वर्य के नाशक हैं ॥ २२ ॥ इन दोषों से मैंने तेरा पिता अपना भाई त्यागा है, न यह पुरी लङ्का है, न तू है, न तेरा पिता है ॥२३॥ अति बाल दुर्विनीत हे राक्षस ! तू कालपाश से बन्धा हुआ कहो जो २ चाहता है ॥२४॥ हे राक्षसाधम ! अब तू इस बड़ के नीचे नहीं प्रवेश कर सक्ता ॥ २५ ॥

सर्ग ४८ (व० ८८–९०) मेघनाद का लक्ष्मण से वध

मूल—विभीषणवचः श्रुत्वा रावणिः क्रोधमूर्छितः । ससर्ज निशितान्बाणानिन्द्रजित्समितिञ्जयः ॥ १ ॥ स बभूव महाभीमो नरराक्षससिंहयोः । विमर्दस्तुमुलो युद्धे परस्परजयैषिणोः ॥२॥ उभौ परमदुर्जेयावतुल्यबलतेजसौ । युयुधाते महात्मानौ तदा केसरिणाविव ॥ ३ ॥ बहूनवसृजन्तौ हि मार्गणौघानवस्थितौ । नरराक्षसमुख्यौ तौ प्रहृष्टावभ्ययुध्यताम् ॥४॥ तयोरथ महान्कालो व्यतीयाद्युध्यमानयोः । न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं चाप्यभिजग्मतुः ॥५॥नह्यादानं न संधानं धनुषो न परिग्रहः । न विप्रमोक्षो बाणानां न विकर्षो न विग्रहः ॥ ६॥ न मुष्टिप्रतिसन्धानं न लक्ष्यप्रतिपादनम् । अदृश्यत तयोस्तत्र युध्यतोः पाणिलाघवात् ॥७॥ ताभ्यामुभाभ्यां तरसा प्रसृष्टैर्विशिखैः शितैः । निरन्तरमिवाकाशं बभूव तमसा वृतम् ॥ ८ ॥ अथ राक्षससिंहस्य कृष्णान्कनकभूषणान् । शरैश्चतुर्भिः सौमित्रिर्विव्याध चतुरो हयान् ॥ ९ ॥ ततोऽपरेण भल्लेन सूतस्य विचरिष्यतः । लाघवाद्राघवः श्रीमाञ्शरः कायादपाहरत् ॥ १० ॥ स हताश्वो महातेजा भूमौ तिष्ठन्निशाचरः । इन्द्रजित्परमक्रुद्धः संप्रजज्वाल तेजसा ॥ ११ ॥ पातयामास बाणौघैः शतशोऽथ सहस्रशः । स मण्डलीकृतधनू रावणिः समितिञ्जयः ॥ १२ ॥ ततः समरकोपेन ज्वलितो रघुनन्दनः । चिच्छेद कार्मुकं

तस्य दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ १३ ॥ सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सज्जं
चक्रे त्वरन्निव । तदप्यस्य त्रिभिर्बाणैर्लक्ष्मणोनिरकृन्तत ॥१४॥
ततः क्रुद्धो महातेजा इन्द्रजित्समितिंजयः । आग्नेयं संदधे दीप्तं
सलोकं संक्षिपन्निव ॥ १५ ॥ सौर्येणास्त्रेण तं वीरो लक्ष्मणः पर्य-
वारयत् । अस्त्रं निवारितं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्छितः ॥ १६ ॥
आददे निशितं बाणमासुरं शत्रुदारणम् । माहेश्वरेण द्युतिमांस्त-
दस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥१७॥ अथैन्द्रमस्त्रं सौमित्रिः संयुगेष्वपराजितम् ।
शरश्रेष्ठं धनुः श्रेष्ठे विकर्षन्निदमब्रवीत् ॥ १८॥ धर्मात्मा सत्यसंधश्च
रामो दाशरथिर्यदि । पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वस्तदेनं जहि रावणिम् ॥१९॥
इत्युक्त्वा बाणमाकर्णं विकृष्य तमजिह्मगम् । लक्ष्मणः समरे वीरः
ससर्जेन्द्रजितं प्रति ॥ २० ॥ तच्छिरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलित-
कुण्डलम् । प्रमथ्यन्द्रजितः कायात्पातयामास भूतले ॥ २१ ॥ दुद्रु-
वुर्बहुधा भीता राक्षसाः शतशो दिशः । त्यक्त्वा प्रहरणान्सर्वे पट्टिशा-
सिपरश्वधान् ॥२२॥ यथास्तं गत आदित्ये नावतिष्ठन्ति रश्मयः ।
तथा तस्मिन्निपतिते राक्षसास्ते गता दिशः ॥ २३ ॥ विभीषणो
हनूमांश्च जाम्बवांश्चर्क्षयूथपः । विजयेनाभिनन्दन्तस्तुष्टुवुश्चापि-
लक्ष्मणम् ॥ २४ ॥

टीका--विभीषण के बचन को सुनकर क्रोध से मूर्छित हुआ युद्धों का जीतनेवाला रावणसुत इन्द्रजित तीक्षण बाण छोड़ता भया ॥१॥ युद्ध में परस्पर जीतने की इच्छावाले नरसिंह और राक्षस-सिंह का वह बड़ा भयङ्कर तुमुल संघर्ष हुआ ॥ २ ॥ दोनों परम दुर्जेय अतुल्य बल तेजवाले महान् आत्मा बबर शेरों की तरह युद्ध कर रहे थे ॥३॥ खड़े होकर बहुत से बाण समूहों को छोड़ते हुए वह नर मुख्य और राक्षस मुखिया बड़े हर्ष से युद्ध करते भए ॥४॥ युद्ध करते हुए उन्हें बहुत काल बीत गया, न युद्ध से विमुख होते

हैं, न थकते हैं ॥ ५ ॥ वहां युद्ध करते हुए उन दोनों की हाथ की फुर्ती से न बाणों का लेना न जोड़ना, न धनुष का बदलना, न बाणों का छोड़ना, न खींचना, न अलग२ करना, न मुट्ठी का जोड़ना, न लक्ष्य को भेदना दीखता है ॥ ६, ७ ॥ किन्तु बल से छोड़े हुए उन दोनों के तीक्ष्ण तीरों से अन्धकार से ढके की तरह आकाश निरवकाश प्रतीत होता है ॥ ८ ॥ अन्ततः लक्ष्मण ने चार बाणों से सोने के भूषणोंवाले काले राक्षससिंह के चारों घोड़े वींध दिये ॥ ९ ॥ तब दूसरे भाले से विचरते हुए सारथि का तेज़ी से उसके शरीर से सिर उड़ा दिया ॥ १० ॥ मरे घोड़ोंवाला महातेजस्वी राक्षस इन्द्रजित भूमि पर स्थित हुआ परम क्रुद्ध हुआ तेज से जलने लगा ॥ ११ ॥ वह युद्धों का जीतने वाला रावणसुत क्रुद्ध हुआ धनुष को गोल खींचकर बड़ी तेजी के साथ वानरों को मारने लगा ॥ १२ ॥ तब युद्ध के कोप से जलते हुए लक्ष्मण ने हाथ की तेजी दिखलाते हुए उसका धनुष तोड़ डाला ॥ १३ ॥ उसने बड़ी तेजी से दूसरा तय्यार धनुष पकड़ लिया, लक्ष्मण ने वह भी उसका तीन बाणों से तोड़ डाला ॥ १४ ॥ तब युद्ध के जीतनेवाले महातेजस्वी इन्द्राजित ने मानों सारे लोक को संहार करते हुए जलता हुआ आग्नेय अस्त्र जोड़ा ॥ १५ ॥ वीर लक्ष्मण ने उसको सौर्य अस्त्र से हटा दिया, उस अस्त्र को हटाया देखकर क्रोध से मूर्छित हुए रावणसुत ने शत्रुओं के फोड़ने वाला तीक्ष्ण आसुर बाण लिया, तेजस्वी लक्ष्मण ने उसको माहेश्वर अस्त्र से रोक दिया ॥ १६, १७ ॥ अब लक्ष्मण युद्ध में अपराजित बाण श्रेष्ठ ऐन्द्र अस्त्र को धनुष श्रेष्ठ में खींचकर यह बोला ॥ १८ ॥ दशरथसुत राम यदि धर्ममूर्त्ति, सच्ची प्रतिज्ञा वाला और युद्ध में अप्रतिद्वन्द्व है, तब तू इस रावणसुतको मार ॥ १९ ॥ यह कहकर उस सीधा जाने वाले बाण को कान तक खींचकर

वीर लक्ष्मण ने युद्ध में इन्द्राजित के प्रति छोड़ा ॥२०॥ वह बाण चमकते हुए कुण्डलों वाले शोभावाले उसके सिर को टोप समेत इन्द्राजित् के शरीर से उड़ाकर भूतल पर गिरा देता भया ॥२१॥ राक्षस सभी भयभीत हुए अपने पट्टिश तलवार और कुल्हाड़ों को छोड़कर दिशाओं को भाग गए ॥२२॥ जैसे सूर्य के अस्त होने पर रश्मियें नहीं ठहरती हैं वैसे उसके गिरने पर राक्षस दिशाओं को चले गये ॥२३॥ विभीषण, हनुमान्, और ऋक्षयूथपति जाम्बवान् विजय से आनन्दित होते हुए लक्ष्मण की स्तुति करते भये ॥२४॥

सर्ग४९ (व०९१) इन्द्राजित को जीतकर लक्ष्मणका राम के पास जाना

मूल—रुधिरक्लिन्नगात्रस्तु लक्ष्मणः शुभलक्षणः। बभूव हृष्टस्तं हत्वा शत्रुजेतारमाहवे ॥ १ ॥ आजगाम ततः शीघ्रं यत्र सुग्रीवराघवौ। विभीषणमवष्टभ्य हनूमन्तं च लक्ष्मणः ॥ २ ॥ रावणेस्तु शिरश्छिन्नं लक्ष्मणेन महात्मना। न्यवेदयत रामाय तदा हृष्टो विभीषणः ॥३॥ उपवेश्य तमुत्सङ्गे परिष्वज्यावपीडितम्। भ्रातरं लक्ष्मणं स्निग्धं पुनः पुनरुदैक्षत ॥४॥ मूर्ध्निचैनमुपाघ्राय भूयः संस्पृश्य च त्वरन्। उवाच लक्ष्मणं वाक्यमाश्वास्य पुरुषर्षभः ॥ ५ ॥ कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकर्मणा। अद्य मन्ये हते पुत्रे रावणं निहतं युद्धि ॥ ६ ॥ छिन्नो हि दक्षिणो बाहुः स हि तस्य व्यपाश्रयः। विभीषणहनूमद्भ्यां कृतं कर्म महद्रणे ॥ ७ ॥ बलव्यूहेन महता निर्यास्यति हि रावणः। बलव्यूहेन महता श्रुत्वा पुत्रं निपातितम् ॥ ८ ॥ तं पुत्रवधसन्तप्तं निर्यान्तं राक्षसाधिपम्। बलेनावृत्य महता निहनिष्यामि दुर्जयम् ॥ ९ ॥ स तं भ्रातरमाश्वास्य परिष्वज्य च राघवः। रामः सुषेणं मुदितः समाभाष्येदमब्रवीत ॥ १० ॥ विशल्योऽयं महाप्राज्ञः सौमित्रिर्मित्रवत्सलः। यथा भवति सुस्वस्थस्तथा त्वं समुदाचर ॥११॥ एवमुक्तः स रामेण महात्मा हरियूथपः। लक्ष्मणाय

ददौ नस्तः सुषेणः परमौषधम् ॥ १२ ॥ स तस्य गन्धमाघ्राय वि-
शल्यः समपद्यत । तदाऽनिर्वेदनश्चैव संरुद्धप्राण एव च ॥ १३ ॥
विभीषणमुखानां च सुहृदां राघवाज्ञया । सर्ववानरमुख्यानां
चिकित्सामकरोत्तदा ॥ १४ ॥

टीका—रुधिर से लिबड़े अङ्गोंवाला शुभलक्षण लक्ष्मण उस शत्रुओं के जीतनेवाले को युद्ध में मारकर प्रसन्न हुआ ॥ १ ॥ विभीषण और लक्ष्मण को साथ लिए लक्ष्मण जल्दी वहां आया, जहां राम और सुग्रीव थे ॥ २ ॥ तब प्रसन्न हुए विभीषण ने महात्मा लक्ष्मण से काटा हुआ रावणसुत का सिर राम को निवेदन किया ॥३॥ राम उस को गोदी में लेकर और दृढ़ आलिङ्गन करके उस प्यारे भाई लक्ष्मण को बार २ देखता भया ॥ ४ ॥ माथे पर उसे चूमकर और फिर आलिङ्गन करके उसे तसल्ली देते हुए राम यह वाक्य बोले ॥ ५ ॥ बड़ा दुष्कर काम करते हुए तूने परम कल्याण का काम किया है, पुत्र के मारा जाने पर अब मैं मानता हूं, रावण युद्धमें मारा गया है ॥६॥ उसकी दाईं भुजा तूने काट डाली है, क्योंकि यह उसका बड़ा सहारा था, विभीषण और हनुमान् ने भी रण में बड़ा काम किया है ॥७॥ अब बड़े सेना समूह सहित पुत्र को मरा सुनकर रावण सेना समूह के साथ युद्ध के लिए निकलेगा ॥८॥पुत्र-वध से तपे हुए बड़ी सेना के साथ बाहर निकले उस दुर्जय राक्षसपति को अब मैं मारूंगा ॥ ९ ॥ इस प्रकार राम भाई को तसल्ली देकर और गले लगाकर प्रसन्न हुआ सुषेण को सम्बोधनकर यह बोला ॥ १० ॥ मित्रों के प्यारे महाप्राज्ञ लक्ष्मण को शल्यरहित कीजिये, जैसे यह पूरा स्वस्थ हो, वैसा काम कीजिये ॥११॥ महात्मा राम से ऐसे कहा हुआ वानर यूथपति सुषेण लक्ष्मण की नासिका में परम औषध देता भया ॥ १२ ॥ वह उसके गन्ध को सूंघकर

विशल्य हुआ, पीड़ा से रहित हुआ और उस का बल स्थिर हुआ ॥ १३ ॥ और राम की आज्ञा से अपने सुहृद् विभीषण और दूसरे सारे मुख्य वानरों की चिकित्सा करता भया ॥ १४ ॥

सर्ग १० (व०९२) इन्द्रजित् के वध को सुनकर रावण का असीम क्रोध

मूल—ततः पौलस्त्यसचिवाः श्रुत्वा चेन्द्रजितोवधम् । आचचक्षु रभिज्ञाय दशग्रीवाय सत्वराः ॥ १ ॥ स तं प्रतिभयं श्रुत्वा वधं पुत्रस्य दारुणम् । घोरमिन्द्रजितः संख्ये कश्मलं प्राविशन्महत् ॥२॥ उपलभ्य चिरात्संज्ञां राजा राक्षसपुङ्गवः । पुत्रशोकाकुलो दीनो विललापाकुलेन्द्रियः ॥ ३ ॥ प्रकृत्या कोपनं ह्येनं पुत्रस्य पुनराधयः । दीप्तं संदीपयामासुर्घर्मेऽर्कमिव रश्मयः॥४॥तस्य प्रकृत्या रक्ते च रक्ते क्रोधाग्निनाऽपि च । रावणस्य महाघोरे दीप्ते नेत्रे बभूवतुः ॥ ५ ॥ स पुत्रवधसंतप्तः क्रूरः क्रोधवशं गतः । समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या सीतां हन्तुं व्यवस्यत ॥ ६ ॥ पर्यवेक्ष्य तु ताम्राक्षः सुघोरो घोरदर्शनः । दीनो दीनस्वरान्सर्वांस्तानुवाच निशाचरान् ॥ ७ ॥ मायया मम वत्सेन वञ्चनार्थं वनौकसाम् । किञ्चिदेव हतं तत्र सीतेयमिति दर्शितम् ॥ ८ ॥ तदिदं तथ्यमेवाहं करिष्ये प्रियमात्मनः । वैदेहीं नाशयिष्यामि क्षत्रबन्धुमनुव्रताम्॥९॥इत्येवमुक्त्वा सचिवान्खड्गमाशु परामृशत् । निष्पपात स वेगेन सहसा यत्र मैथिली ॥१०॥ मैथिली रक्ष्यमाणा तु राक्षसीभिरनिन्दिता । ददर्श राक्षसं क्रुद्धं निस्त्रिंशवरधारिणम्॥११॥सीता दुःखसमाविष्टा विलपन्तीदमब्रवीत् । यथायं मामभिक्रुद्धः समभिद्रवति स्वयम् ॥ १२ ॥ वधिष्यति सनाथां मामनाथामिव दुर्मतिः । एतस्मिन्नन्तरे तस्य अमात्यः शीलवाञ्छुचिः ॥ १३ ॥ सुपार्श्वो नाम मेधावी रावणं रक्षसां वरम् । निवार्यमाणः सचिवैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥ कथं नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुज । हन्तुमिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद्धर्ममपास्य च

॥ १५ ॥ वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मनिरतस्तथा । स्त्रियः कस्माद्वधं वीर मन्यसे राक्षसेश्वर ॥ १६ ॥ मैथिलीं रूपसम्पन्नां प्रत्यवेक्षस्व पार्थिव । तस्मिन्नेव सहास्माभिराहवे क्रोधमुत्सृज ॥ १७ ॥ अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशी । कृत्वा निर्याह्यवाभ्यां विजयाय बलैर्वृतः ॥ १८ ॥ हत्वा दाशरथिं रामं भवान्प्राप्स्यति मैथिलीम् । ॥ १९ ॥ स तद् दुरात्मा सुहृदा निवेदितं वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः । गृहं जगामाथ ततश्च वीर्यवान्पुनः सभां च प्रययौ सुहृद्वृतः ॥ २० ॥

टीका--तब रावण के दूत इन्द्राजित के वध को सुनकर और पता लगाकर रावण को बतलाते भए ॥ १ ॥ युद्ध में पुत्र इन्द्राजित के घोर वधरूप प्रतिभय को सुनकर उसे बड़ा शोक उत्पन्न हुआ ॥२॥ देर के पीछे होश सम्भालकर राक्षसश्रेष्ठ राजा पुत्र के शोक से घबराया हुआ व्याकुल इन्द्रियोंवाला, दीन हो विलाप करने लगा ॥ ३ ॥ प्रकृति से ही क्रोधी इस रावण को पुत्र पीड़ाएं चमके हुए को चमकाती भईं, जैसे गर्मी में सूर्य की किरणें ॥४॥ स्वभाव से ही रावण के लाल नेत्र क्रोध की अग्नि से और भी लाल हुए महाभयङ्कर हो जलने लगे ॥५॥ वह पुत्र के वध से संतप्त हुआ क्रोध के अधीन हुआ क्रूर रावण बुद्धि से सोचकर सीता के मारने का इरादा करता भया ॥ ६ ॥ वह लाल नेत्रोंवाला घोर दृष्टिवाला महाघोर दीन हुआ, दीन स्वर वाले उन राक्षसों को देखकर बोला ॥ ७ ॥ मेरे बेटे ने वानरों को धोखा देने के लिये 'यह सीता है' ऐसे दिखलाते हुए वहां कुछ मारा है ॥८॥ सो मैं सच कर दिखलाऊंगा' यही मुझे प्रिय है, सीता को मार डालूंगा, जो उस क्षत्रबन्धु राम के अनुव्रता है ॥ ९ ॥ मन्त्रियों को ऐसा कहकर उसने जल्दी तलवार हाथ में ली और वेग से निकल वहां आया, जहां

सीता थी ॥ १० ॥ राक्षसियों से रक्षा की हुई अनिन्दता सीताने उत्तम तलवार लिये क्रुद्ध हुए उस राक्षसको देखा॥११॥दुःखसेभरी हुई सीता विलाप करती हुई यह बोली, जैसे यह क्रुद्ध हुआ स्वयं मेरी ओर दौड़ा आरहा है ॥ १२ ॥यह दुर्मति मुझ सनाथा को अनाथा की तरह मारेगा। इसी अवसर में उसका मन्त्री शीलवान् शुचि बुद्धिमान् सुपार्श्व दूसरे मन्त्रियों से रोका हुआ भी राक्षसवर रावण को यह वचन बोला ॥ १३, १४ ॥ कैसे हे रावण कुवेर के साक्षात् भाई होकर क्रोध से धर्म छोड़कर सीता को मारना चाहते हो ॥ १५ ॥ वेदविद्या और व्रत में स्नात अपने कर्म में रत आप हे वीर राक्षसेश्वर कैसे स्त्री का वध पसन्द करते हैं ॥१६॥ हे राजन् रूपसम्पन्ना मैथिली की रखवाली कर, और हमारे साथ युद्ध में उसी (राघव) पर क्रोध छोड़ ॥ १७ ॥ आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है, आज ही तय्यारी करके कल अमावस्या में सेना समेत विजय के लिये चढ़ाई कर ॥१८॥ आप भयङ्कर राम को मारकर सीता को प्राप्त होंगे ॥ १९ ॥ वह दुरात्मा रावण सुहृद से बतलाए धर्मयुक्त वचन को स्वीकार कर घर गया, उस के पीछे सुहृदों समेत सभा में गया ॥ २० ॥

सर्ग ५१ (व० ९३--१००) रावण का घोर युद्ध उसके शक्ति बाण से लक्ष्मण की मूर्छा

मूल--स प्रविश्य सभां राजा दीनः परमदुःखितः । निषसादासने मुख्ये सिंहः क्रुद्ध इव श्वसन् ॥ १ ॥ अब्रवीच्च स तान्सर्वान्बल मुख्यान्महाबलः। सर्वे भवन्तः सर्वेण हस्त्यश्वेन समावृताः ॥ २ ॥ निर्यात रथसङ्घैश्च प्रवृट्काल इवाम्बुदाः । भवद्भिः श्वो निहन्तास्मि रामं लोकस्य पश्यतः ॥ ३ ॥ प्रतिपूज्य यथान्यायं रावणं ते महारथाः । तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे भर्तु र्विजयकांक्षिणः ॥ ४ ॥ ततः प्रजविताश्वेन रथेन स महारथः । द्वारेण निर्ययौ तेन यत्र तौ

रामलक्ष्मणौ ॥ ५ ॥ वानराणामपि चमूर्युद्धायैवाभ्यवर्तत । अन्यो-न्यमाह्वयानानां क्रुद्धानां जयमिच्छताम् ॥६॥ ततः क्रुद्धो दशग्रीवः शरैः काञ्चनभूषणैः । वानराणामनीकेषु चकार कदनं महत् ॥७॥ निकृत्तशिरसः केचिद्रावणेन वलीमुखाः । केचिद्विच्छिन्नहृदयाः केचित्पार्श्वेषु दारिताः ॥ ८ ॥ तथा तैः कृत्तगात्रैस्तु दशग्रीवेण मार्गणैः । बभूव वसुधा तत्र प्रकीर्णा हरिभिस्तदा ॥ ९ ॥ प्लवङ्गानामनीकानि महाभ्राणीव मारुतः । संययौ समरे तस्मिन्विधमन्रावणः शरैः ॥ १० ॥ ततो राक्षसशार्दूलो विद्राव्य हरिवाहिनीम् । स ददर्श ततो रामं तिष्ठन्तमपराजितम् ॥ ११ ॥ स राघवं समासाद्य क्रोधसंरक्तलोचनः । व्यसृजच्छरवर्षाणि रावणो राक्षसेश्वरः ॥ १२ ॥ शरधारास्ततो रामो रावणस्य धनुश्च्युताः । दृष्ट्वैवापतिताः शीघ्रं भल्लाञ्जग्राह सत्वरम् ॥ १३ ॥ ताञ्छरौघांस्ततो भल्लैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद राघवः । दीप्यमानान्महाघोराञ्छरानाशीविषोपमान् ॥ १४ ॥ राघवो रावणं तूर्णं रावणो राघवं तथा । अन्योन्यं विविधैस्तीक्ष्णैः शरवर्षैर्ववर्षतुः ॥ १५ ॥ चेरतुश्च चिरं चित्रं मण्डलं सव्यदक्षिणम् । बाणवेगात्समुत्क्षिप्तावन्योन्यमपराजितौ ॥ १६ ॥

टीका—वह राजा दीन परम दुःखित हुआ, सभा में प्रवेश करके क्रुद्ध हुए शेर की तरह सांस लेता हुआ मुख्य आसन के ऊपर बैठ गया ॥१॥ और वह महाबली उन सारे सेनापतियों से बोला, सब सम्पूर्ण हाथी घोड़ों और रथ समूहों से युक्त होकर (युद्ध पर) चढ़ो जैसे बरसात में मेघ, कल तुम्हारे साथ मैं दुनिया के देखते हुए राम को मारूंगा ॥२,३॥ तिस पर वह महारथी रावण को यथायोग्य पूजकर मालिक का विजय चाहते हुए सब हाथ बान्धकर खड़े होगये ॥४॥ फिर वेगवाले घोड़ों से युक्त रथ से वह महारथी उस द्वार से निकला जिधर राम लक्ष्मण थे ॥५॥ उधर से भी एक दूसरे को आव्हान देते हुए

क्रुद्ध हुए जय चाहते हुए वानरों की सेना भी युद्ध के लिये ही तय्यार हुई ॥ ६ ॥ तब क्रुद्ध हुआ रावण सोने के भूषणोंवाले बाणों से बानरों की सेना में बड़ा विनाश करता भया ॥ ७ ॥ रावण ने कई वानरों के सिर काट दिये, कइयों के हृदय तोड़ दिए और कइयों की पसलियें फोड़ दीं ॥ ८ ॥ रावण से बाणों द्वारा कटे शरीरोंवाले उन वानरों से वहां पृथ्वी भर गई ॥ ९ ॥ जैसे पवन मेघों को उड़ाता है, इसतरह वानरों की सेनाओं को तीरों से उड़ाता हुआ रावण बढ़ता गया ॥ १० ॥ तब राक्षसेश्वर ने वानरसेना को भगा करके कभी न पराजित हुए राम को खड़ा देखा ॥ ११ ॥ राम के पास आकर क्रोध से लाल नेत्रोंवाला राक्षसेश्वर रावण बाणों की वर्षा छोड़ता भया ॥ १२ ॥ रावण के धनुष से निकलीं बाण धाराओं को आता देखकर राम ने जल्दी भाले पकड़ लिये ॥ १३ ॥ उन बाणसमूहों को राम ने तीक्ष्ण भालों से काट दिया, जोकि विषैले सर्प के तुल्य बड़े भयङ्कर चमकते आरहे थे ॥ १४ ॥ राम रावण पर और रावण राम पर अनेक तीक्ष्ण बाणों की झड़ी बांध देते भए ॥ १५ ॥ न हारने वाले वह दोनों बाण के वेग से एक दूसरे को परे हटाते हुए देर तक दाएं बाएं के विचित्र मण्डलों से विचरते भए ॥ १६ ॥

मूल—गवाक्षितमिवाकाशं बभूव शरवृष्टिभिः। महावेगैः सुतीक्ष्णाग्रैर्गृध्रपत्रैः सुवाजितैः ॥१७॥ उभौ हि येन व्रजतस्तेन तेन शरोर्मयः। ऊर्मयो वायुना विद्धा जग्मुःसागरयोरिव॥१८॥ एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राघवस्यानुजो बली। लक्ष्मणः सायकान्सप्त जग्राह परवीरहा ॥१९॥ तैः सायकैर्महावेगैः रावणस्य महाद्युतिः। ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेद नैकधा ॥ २० ॥ सारथेश्चापि बाणेन शिरोज्वलितकुण्डलम्। जहार लक्ष्मणः श्रीमान्नैर्ऋतस्य महाबलः ॥ २१ ॥

नीलमेघनिभांश्चास्य सदश्वान्पर्वतोपमान् । जघानाप्लुत्य गदया रावणस्य विभीषणः ॥ २२ ॥ हताश्वात्तु तदा वेगादवप्लुत्य महारथात् । कोपमाहारयत्तीव्रं भ्रातरं प्रति रावणः ॥ २३ ॥ ततः शक्तिं महाशक्तिः प्रदीप्तामशनिमिव । विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ २४ ॥ अप्राप्तामेव तां बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद लक्ष्मणः । सम्पपात त्रिधा छिन्ना शक्तिः काञ्चन मालिनी ॥ २५ ॥ ततः सम्भाविततरां कालेनापि दुरासदाम् । जग्राह विपुलां शक्तिं दीप्यमानां स्वतेजसा ॥ २६ ॥ सा वेगिता बलवता रावणेन दुरात्मना । जज्वाल सुमहातेजा दीप्ताशनिसमप्रभा ॥ २७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणस्तं विभीषणम् । प्राणसंशयमापन्नं तूर्णमभ्यवपद्यत ॥ २८ ॥ तं विमोक्षयितुं वीरश्चापमायम्य लक्ष्मणः । रावणं शक्तिहस्तं वै शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २९ ॥ कीर्यमाणः शरौघेण विसृष्टेन महात्मना । स प्रहर्तुं मनश्चक्रे विमुखीकृतविक्रमः ॥ ३० ॥ मोक्षितं भ्रातरं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन स रावणः । लक्ष्मणाभिमुखस्तिष्ठन्निदं वचनमुब्रवीत् ॥ ३१ ॥ मोक्षितस्ते बलश्लाघिन्यस्मादेवं विभीषणः । विमुच्य राक्षसं शक्तिस्त्वयीयं विनिपात्यते ॥ ३२ ॥ इत्येवमुक्त्वा तां शक्तिममोघां शत्रुघातिनीम् । लक्ष्मणाय समुद्दिश्य चिक्षेप च ननाद च ३२

टीका—बड़े वेगवाले सुतीक्ष्ण अग्रों वाले सुवेग के उत्पादक गृध्रपत्रों वाले बाणों की वर्षा से आकाश झरोखों वाला सा होगया ॥१७॥ दोनों जिस २ (मण्डलचार) से चलते हैं, उस २ से बाणों की लहरें वायुसे चलाई दो सागरोंकी लहरोंकी तरह चलती हैं ॥१८॥ इस अवसर में क्रुद्ध हुए राम के छोटे भाई शत्रुवीरों के हन्ता बलवान् लक्ष्मण ने सात बाण लिये ॥ १९ ॥ बड़े वेगवाले उन बाणों से उस महातेजस्वी ने मनुष्य के सिरवाले उसके झण्डे को अनेक टुकरे कर डाला ॥ २० ॥ और राक्षस के, जलती

हुई कुण्डलोंवाले सारथि, के सिर को भी श्रीमान् महाबली लक्ष्मण ने हरलिया ॥ २१ ॥ और विभीषण ने उछलकर गदा से रावण के पर्वत तुल्य नीले मेघ जैसे उत्तम घोड़ों को मार डाला ॥ २२ ॥ तब वह हत हुए घोड़ोंवाले महारथ से वेग से उछलकर भाई के प्रति तीव्र क्रोध लाता भया ॥ २३ ॥ उस बड़ी शक्तिवाले प्रतापी राक्षसेन्द्र ने विभीषण पर जलती हुई बिजली की तरह बरछी फैंकी ॥ २४ ॥ लक्ष्मण ने पहुंचेने से पहिले ही उसे तीन बाणों से काट दिया,तब सोने की मालावाली वह शक्ति तीन टुकड़े होकर गिरी ॥ २५ ॥ तब उसने बड़ी आदर वाली, काल से भी दुःसह, अपने तेज से जलती हुई एक और बड़ी शक्ति पकड़ी ॥ २६ ॥ बलवान् दुरात्मा रावण ने जब उसे वेग से घुमाया, तो वह जलती बिजली के तुल्य चमकवाली, बड़े तेजवाली हो जल उठी ॥ २७ ॥ इस अवसर में वीर लक्ष्मण प्राण संशय में पड़े विभीषण की जल्दी रक्षा करता भया ॥ २८ ॥ उसको छुड़वाने के लिये वीर लक्ष्मण ने धनुष उठाकर हाथ में शक्ति लिये रावण पर बाणों की वर्षा आरम्भ की ॥२९॥महात्मा से छोड़े बाणसमूह की बूछाड़ से रावण का (भाई को मारने का) पराक्रम कुण्ठित होगया और उसने (लक्ष्मण पर)-प्रहार करने का मन किया ॥ ३० ॥ रावण ने जब देखा कि उसके भाई को लक्ष्मण ने छुड़ा लिया है, तो वह लक्ष्मण के ही अभिमुख खड़ा होकर यह वचन बोला ॥ ३१ ॥ हे बल से सराहनीय जिस से तूने विभीषण को छुड़ाया है, इस से विभीषण को छोड़कर अब यह बरछी तुझ पर ही गिराई जाती है ॥३२॥ यह कहकर उसने उस शत्रु घातिनी अमोघ शक्ति को लक्ष्मण को लक्ष्य करके फैंका, और गर्जा

मूल—सा क्षिप्ता भीमवेगेन वज्राशनिसमस्वना । शक्तिरभ्य-

पतद्वेगाल्लक्ष्मणं रणमूर्धनि ॥ ३४ ॥ न्यपतत्सा महावेगा लक्ष्मणस्य महोरसि। जिह्वेवोरगराजस्य दीप्यमाना महाद्युतिः ॥ ३५ ॥ ततो रावणवेगेन सुदूरमवगाढया । शक्त्या विभिन्नहृदयः पपात भुवि लक्ष्मणः ३६ ॥ तां कराभ्यां परामृश्य रामः शक्तिं भयावहाम् । बभञ्ज समरे क्रुद्धो बलवान्विचकर्ष च ॥ ३७ ॥ तस्य निष्कर्षतः शक्तिं रावणेन बलीयसा । शराः सर्वेषु गात्रेषु पातिता मर्मभेदिनः ॥ ३८ ॥ अचिन्तयित्वा तान्बाणान्समाश्लिष्य च लक्ष्मणम् । अब्रवीच्च हनूमन्तं सुग्रीवं च महाकपिम् ॥ ३९ ॥ लक्ष्मणं परिवार्यैव तिष्ठध्वं वानरोत्तमाः । पराक्रमस्य कालोऽयं संप्राप्तो मे चिरेप्सितः ॥ ४० ॥ पापात्मायं दशग्रीवो वध्यतां पापनिश्चयः । काङ्क्षितं चातकस्येव घर्मान्ते मेघदर्शनम् ॥ ४१ ॥ अस्मिन्मुहूर्ते न चिरात्सत्यं प्रतिशृणोमि वः । अरावणमरामं वा जगद्द्रक्ष्यथ वानराः ॥ ७२ ॥ अद्य कर्म करिष्यामि यल्लोकाः सचराचराः। सदेवाः कथयिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥४३॥ एवमुक्त्वा शितैर्बाणैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः। आजघान रणे रामो दशग्रीवं समाहितः ॥ ४४ ॥ तथा प्रविद्धैर्नाराचर्मुसलैश्चापि रावणः। अभ्यवर्षत्तदा रामं धाराभिरिव तोयदः ॥ ४५ ॥ रामरावणमुक्तानामन्योन्यमभिनिघ्नताम् । वराणां च शराणां च बभूव तुमलः स्वनः ॥ ४६ ॥ विकीर्यमाणः शरजालवृष्टिर्महात्मना दीप्तधनुष्मतार्दितः । भयात्प्रदुद्राव समेत्य रावणो यथानिलेनाभिहतो बलाहकः ॥ ४७ ॥

टीका—भयानक वेगवाले से फैंकी हुई वज्र और बिजली के तुल्य ध्वनिवाली वह शक्ति रण के मस्तक पर वेग से लक्ष्मण पर आगिरी ॥ ३४ ॥ वह बड़े वेगवाली नागराज की जिह्वा के तुल्य चमकती हुई बड़े तेजवाली (शक्ति) लक्ष्मण की विशाल छाती में खुभ गई ॥ ३५ ॥ तब रावण के वेग से कारी लगी उस

शक्ति से फूटे हृदयवाला लक्ष्मण भूमि पर गिर पड़ा ॥ ३६ ॥ क्रुद्ध हुए बलवान् राम ने उस भयावह शक्ति को दोनों हाथों से पकड़कर खींच लिया और तोड़ डाला ॥ ३७ ॥ जब वह शक्ति को खींच रहा था, तो महाबली रावण ने राम के सारे अङ्गों पर मर्म भेदी बाण छोड़े ॥ ३८ ॥ उन बाणों की परवाह न कर और लक्ष्मण को गले लगाकर राम हनुमान् और सुग्रीव से बोले ॥ ३९ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! लक्ष्मण को इसीतरह घेरकर खड़े रहो, मेरा यह चिर से चाहा हुआ पराक्रम का समय आया है ॥४०॥ यह पापात्मा पाप निश्चयवाला, रावण वध को प्राप्त हो, गर्मी के अन्त में पपीहे को मेघ दर्शन की तरह इसका दर्शन मुझे चिर से वाञ्छित है ॥ ४१ ॥ इससमय सच्ची प्रतिज्ञा करता हूं हे वानरो ! जगत् को रावण के वा राम के विना देखोगे ॥ ४२ ॥ आज वह कार्य करूंगा, जिसको चर अचर समेत और देवताओं समेत सभी लोक कहा करेंगे, जब तक भूमि रहेगी॥४॥यह कहकर सावधान हो तपे हुए सोने के भूषणोंवाले तीक्ष्णवाणों से राम ने रावण पर प्रहार किये ॥४४॥ तथा रावण भी प्रबल वींधने वाले बाणों और मूसलों से, धाराओं से मेघ की तरह, राम पर वर्षा करता भया ॥ ४५ ॥ राम और रावण से छोड़े हुए, एक दूसरे को काटते हुए उत्तम वाणों की तुमल ध्वनि होती हुई ॥ ४६ ॥ पर अन्ततः चमकते हुए धनुषवाले महात्मा राम के बाणसमूह की बर्षा से बिखरा हुआ, पीडित हुआ, रावण भय से पवन से चलाए मेघ की तरह भाग निकला ॥ ४७ ॥

सर्ग ५२ (व० १०१) हनुमान् का ओषधि पर्वत को लाना और सुषेण की चिकित्सा से लक्ष्मण की मूर्च्छा का छूटना

मूल—शक्त्या निपातितं दृष्ट्वा रावणेन बलीयसा । लक्ष्मणं समरे शूरं

शोणितौघपरिप्लुतम् ॥१॥ विसृजन्नेव बाणौघान्सुषेणमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ एष रावणवीर्येण लक्ष्मणः पतितो भुवि । सर्पवच्चेष्टते वीरो मम शोकमुदीरयन् ॥३॥ शोणितार्द्रमिमं वीरं प्राणैः प्रियतरं मम । पश्यतो मम का शक्तिर्योद्धुं पर्याकुलात्मनः ॥ ४ ॥ अयं स समरश्लाघी भ्राता मे शुभलक्षणः । यदि पञ्चत्वमापन्नः प्राणैर्मे किं सुखेन वा ॥ ५ ॥ लज्जतीव हि मे वीर्यं भ्रश्यतीव कराद्धनुः । सायका व्यवसीदन्ति दृष्टिर्बाष्पवशं गता ॥ ६ ॥ + किं मे युद्धेन किं प्राणैर्युद्धकार्यं न विद्यते । यत्रायं निहतः शेते रणमूर्धनि लक्ष्मणः ॥ ७ ॥ + यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः । अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम् ॥ ८ ॥+देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः । तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥९॥ किं नु वक्ष्यामि कौसल्यां मातरं किं नु कैकयीम् । भरतं किं नु वक्ष्यामि शत्रुघ्नं च महाबलम् ॥ १० ॥ +सह तेन वनं यातो विना तेनागतः कथम् । इहैव मरणं श्रेयो न तु बन्धुविगर्हणम् ॥ ११ ॥ +किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि । येन मे धार्मिको भ्राता निहतश्चाग्रतः स्थितः ॥ १२ ॥ हा भ्रातर्मनुजश्रेष्ठ शूराणां प्रवर प्रभो । एकाकी किं नु मां त्यक्त्वा परलोकाय गच्छसि ॥ १३ ॥ विलपन्तं च मां भ्रातः किमर्थं नावभाषसे । उत्तिष्ठ पश्य किं शेषे दीनं मां पश्य चक्षुषा ॥ १४ ॥ शोकार्तस्य प्रमत्तस्य पर्वतेषु वनेषु च । विषण्णस्य महाबाहो समाश्वासयिता मम ॥ १५ ॥ राममेवं ब्रुवाणं तु शोकव्याकुलितेन्द्रियम् । आश्वासयन्नुवाचेदं सुषेणः परमं वचः ॥ १६ ॥ त्यजेमां नरशार्दूल बुद्धिं वैक्लव्यकारिणीम् । नैव पञ्चत्वमापन्नो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धन ॥ १७ ॥ नह्यस्य विकृतं वक्त्रं न च श्यामत्वमागतम् । सुप्रभं च प्रसन्नं च मुखमस्य निरीक्ष्यताम्

टीका—महाबली राम संग्राम में शूर लक्ष्मण को शक्ति से गिराया

हुआ, और रुधिर प्रवाह से भीगा हुआ, देखकर ॥ १ ॥ बाण समूहों को छोड़ता हुआ ही राम सुषेण से बोला ॥ २ ॥ यह वीर लक्ष्मण रावण के वीर्य से भूमि पर गिरा हुआ, सर्पवत् लोटता हुआ मेरे शोक को बढ़ा रहा है ॥३॥ मेरे प्राणों से अधिक प्यारे इस वीर को लहू से भीगा हुआ देखकर मेरा मन घबराता है मैं क्या युद्ध कर सक्ता हूं ॥ ४ ॥ युद्ध में सराहनीय शुभलक्षणों वाला यह मेरा भाई यदि मृत्यु को प्राप्त हुआ, तो मुझे प्राणों से वा सुख से क्या ॥ ५ ॥ मेरी शक्ति मानों लज्जित होरही है, मेरे हाथ से धनुष फिसल रहा है, बाण उदास होरहे हैं, और दृष्टि आसुओं से भरी है ॥ ६ ॥ मुझे युद्ध से क्या और प्राणों से क्या, अब युद्ध का फल नहीं है, जब कि यह लक्ष्मण रण के मस्तक पर हत हुआ पड़ा है ॥७॥ जैसे यह महातेजस्वी बन को चलते समय मेरे साथ चला है, वैसे ही मैं भी यम के घर इसके साथ जाऊंगा ॥ ८ ॥ देश २ में स्त्रियें हैं, और देश २ में बन्धु होते हैं, किन्तु उस देश को नहीं देखता हूं, जहां सहोदर भाई हो ॥ ९ ॥ क्या मैं माता कौशल्या को कहूंगा, क्या कैकेयी को कहूंगा, भरत तथा महाबली शत्रुघ्न को क्या कहूंगा ॥१०॥ उसके साथ बन को गया अब विना उसके कैसे आया, यहां ही मरना अच्छा है, पर बन्धुओं से निन्दा अच्छी नहीं ॥ ११ ॥ क्या मैंने अन्य जन्म में दुष्कृत कर्म किया है, जिससे मेरा धार्मिक भाई मरा हुआ आगे पड़ा है ॥ १२ ॥ हा भ्राता, हा मनुष्यवर, हा शूरों में श्रेष्ठ क्यों मुझे छोड़कर तू अकेला परलोक को जाता है ॥ १३ ॥ उठ देख क्यों लेटा है, आंख खोलकर मुझ दीन को देख ॥ १४ ॥ पर्वतों और बनों में शोक से पीडित हुए पागल हुए उदास हुए मुझको हे महाबाहो तू तसल्ली देता रहा है ॥ १५ ॥ शोक से व्याकुल

इन्द्रियोंवाले राम के ऐसा कहते हुए सुषेण तसल्ली देता हुआ यह परम वाक्य बोला ॥ १६ ॥ हे नरशार्दूल घबराहट करनेवाली इस बुद्धि को त्याग, लक्ष्मी के बढ़ानेवाला लक्ष्मण मृत्यु को नहीं प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥ इसका मुख विकृत नहीं हुआ न श्याम हुआ है, इसका अच्छी कान्तिवाला प्रसन्न मुख देखिये ॥ १८ ॥

मूल—पद्मपत्रतलौ हस्तौ सुप्रसन्ने च लोचने । नेदृशं दृश्यते रूपं गतासूनां विशांपते ॥ १९ ॥ सोच्छ्वासं हृदयं वीर कम्पमानं मुहुर्मुहुः ॥ २० ॥ एवमुक्त्वा महाप्राज्ञः सुषेणो राघवं वचः । समीपस्थमुवाचेदं हनूमन्तं महाकपिम् ॥ २१ ॥ सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतं हि महोदयम् । दक्षिणे शिखरे जातां महौषधिमिहानय ॥२२॥ विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा । सञ्जीवकरणीं वीर सन्धानीं च महौषधीम् ॥२३॥ इत्येवमुक्तो हनुमान् गत्वा चौषधिपर्वतम् । चिन्तामभ्यगमच्छ्रीमानजानंस्ता महौषधीः ॥ २४ ॥ तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना मारुतेरमितौजसः । इदमेव गमिष्यामि गृहीत्वा शिखरं गिरेः ॥ २५ ॥ अस्मिंस्तु शिखरे जातामोषधिं तां सुखावहाम् । प्रतर्केणावगच्छामि सुषेणो ह्येवमब्रवीत् ॥ २६ ॥ अगृह्य यदि गच्छामि विशल्यकरणीमहम् । कालात्ययेन दोषः स्याद्वैक्लव्यं च महद्भवेत् ॥२७॥इति संचिन्त्य हनुमान् त्रिः प्रकम्प्य गिरेस्तटम् । गृहीत्वा हरिशार्दूलो हस्ताभ्यां समतोलयत् ॥ २८ ॥ समागम्य महावेगः संन्यस्य शिखरं गिरेः । विश्रम्य किञ्चिद्धनुमान्सुषेणमिदमब्रवीत् ॥२९॥ ओषधीर्नावगच्छामि ता अहं हरिपुङ्गव । तदिदं शिखरं कृत्स्नं गिरेस्तस्याहृतं मया ॥३०॥ एवं कथयमानं तु प्रशस्य पवनात्मजम् । सुषेणो वानरश्रेष्ठो जग्राहोत्पाट्य चौषधीः ॥ ३१ ॥ ततः संक्षोदयित्वा तामोषधिं वानरोत्तमः । लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतिः ॥ ३२ ॥ सशल्यः स समाघ्राय लक्ष्मणः पर-

वीरहा । विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात् ॥ ३३ ॥ तमु-
त्थितं तु हरयो भूतलात्प्रेक्ष्य लक्ष्मणम् । साधु साध्विति सुप्रीता
लक्ष्मणं प्रत्यपूजयन् ॥३४॥ एह्येहीत्यब्रवीद्रामो लक्ष्मणं परवीरहा।
सस्वजे गाढमालिङ्ग्य बाष्पपर्याकुलेक्षणः॥३५॥अब्रवीच्च परिष्वज्य
सौमित्रिं राघवस्तदा। दिष्ट्या त्वां वीर पश्यामि मरणात्पुनरागतम् ३६
नहि मे जीवितेनार्थः सीतया च जयेन वा । को हि मे जीवितेना-
र्थस्त्वयि पञ्चत्वमागते ॥ ३७ ॥ इत्येवं ब्रुवतस्तस्य राघवस्य महा-
त्मनः । खिन्नः शिथिलया वाचा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३८ ॥
तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय पुरा सत्यपराक्रम । लघुः कश्चिदिवासत्त्वो
नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ३९ ॥ नहि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां सत्य-
वादिनः । लक्षणं हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम् ॥ ४० ॥ नैरा-
श्यमुपगन्तुं च नालं ते मत्कृतेऽनघ । वधेन रावणस्याद्य प्रतिज्ञा-
मनुपालय ॥ ४१ ॥

टीका—पद्मपत्र के तुल्य (रक्त) इसके हस्ततल हैं, और नेत्र बडे निर्मल हैं, हे प्रजाओं के मालिक, मरे हुए का ऐसा रूप नहीं दीखता है ॥ १ ॥ और हे वीर बार २ कांपता हुआ इसका हृदय उच्छ्वास सहित है ॥ २० ॥ महाप्रज्ञ सुषेण राम को यह वचन कहकर समीप स्थित महावानर हनुमान् से यह बोला ॥ २१ ॥ हे सौम्य ? शीघ्र यहां से महोदय पर्वत को जाकर दक्षिण शिखर पर उत्पन्न हुई विशल्य करणी (हृदय के शल्य को दूर करनेवाली) सावर्ण्य करणी (पहले जैसा रङ्ग लानेवाली) सञ्जीवकरणी (जीवन देने वाली) और सन्धानी (टूटी हड्डियों को जोडनेवाली) महौषधियों को यहां ला ॥ २२,२३ ॥ ऐसे कहा हुआ श्रीमान् हनुमान् महौषधि पर्वत पर जाकर उन महौषधियों को न जानता हुआ सोच में पडा ॥ २४ ॥ उस अमित पराक्रमवाले पवनपुत्र को यह

बुद्धि उत्पन्न हुई, कि पर्वत के इस शिखर को ही लेजाऊंगा ॥२५॥ सुषेण ने जैसा कि कहा था, उससे निश्चय करता हूं, कि वह सुख लानेवाली ओषधि इसी पर्वतशिखर पर होसक्ती है ॥ २६ ॥ यदि विशल्यकरणी को लिये बिना चला जाऊं, तो यूं ही समय टलजाने से दोष होगा, और बड़ी घबराहट होगी ॥ २७ ॥ यह सोचकर हनुमान् ने तीन बार पर्वत के शिखर को हिलाकर दोनों हाथों से तोला ॥ २८ ॥ हनुमान् पर्वत के शिखर को लेकर उड़ा और वह बड़े वेगवाला आकर सुषेण से यह बोला ॥ २९ ॥ हे वानरश्रेष्ठ मैं उन ओषधियों को नहीं पहचानता हूं, इसलिये यह उस पर्वत का सारा शिखर लेआया हूं ॥ ३० ॥ ऐसा कहते हुए पवनपुत्र की प्रशंसा करके वानरश्रेष्ठ सुषेण ने ओषधियों को उखाड़ लिया ॥ ३१ ॥ तब उस औषधि को पीसकर महातेजस्वी वानरोत्तम सुषेण ने लक्ष्मण को नसवार दी ॥३२॥ शत्रु वीरों का मारनेवाला वह लक्ष्मण इसके सूंघने से पूर्व शल्यवाला था, सूंघकर शल्य रहित, पीड़ा रहित हुआ भूमि तल से शीघ्र उठ खड़ा हुआ ॥ ३३ ॥ भूमि तल से उठे लक्ष्मण को देखकर वानर बड़े प्रसन्न हो साधु साधु कहकर लक्ष्मण को आदर करते भए ॥३४॥ शत्रु वीरों के मारनेवाले राम ने "आ आ" यह कहकर लक्ष्मण को गाढ़ आलिङ्गन किया और उसके नेत्रों से आंसुओं की धारा बहने लगी ॥ ३५ ॥ लक्ष्मण को आलिङ्गन करके राम बोले, भाग्य से हे वीर तुझे मरने से फिर आया देखता हूं ॥ ३६ ॥ मुझे जीने से, वा सीता से, वा विजय से प्रयोजन नहीं, मुझे जीने से क्या प्रयोजन, यदि तू मृत्यु को प्राप्त हो ॥३७॥ महात्मा राम के ऐसा कहते हुए दुर्बल लक्ष्मण शिथिल वाणी से यह वाक्य बोला ॥३८॥ हे सच्चे पराक्रमवाले पहले वह (रावण वध की) प्रतिज्ञा करके अब आप किसी हलके

निःसत्व पुरुष की तरह ऐसा कहने योग्य नहीं है ॥३९॥ सत्यवादी झूठी प्रतिज्ञा नहीं करते हैं, प्रतिज्ञा का पालन महत्त्व का लक्षण है ॥४०॥ हे निष्पाप ! मेरे अर्थ आपको निराश नहीं होना चाहिये, रावण के बध से आज उस प्रतिज्ञा को पालन करो ॥ ४१ ॥

सर्ग ५३ (व० १०२,१०३) घोर युद्ध और रावण की मूर्छा

मूल—लक्ष्मणेन तु तद्वाक्यमुक्तं श्रुत्वा स राघवः। सन्दधे परवीरघ्नो धनुरादाय वीर्यवान् ॥ १ ॥ अथान्यं रथमास्थाय रावणो राक्षसाधिपः। अभ्यधावत काकुत्स्थं स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥ २ ॥ दशग्रीवो रथस्थस्तु रामं वज्रोपमैः शरैः। आजघान महाशैलं धाराभिरिव तोयदः ॥ ३ ॥ दीप्तपावकसंकाशैः शरैः काञ्चनभूषणैः। अभ्यवर्षद्रणे रामो दशग्रीवं समाहितः ॥ ४ ॥ स तु तेन तदा क्रोधात्काकुत्स्थेनार्दितो भृशम्। रावणः समरश्लाघी महाक्रोधमुपागमत् ॥ ५ ॥ स दीप्तनयनोऽमर्षाच्चापमुद्यम्य वीर्यवान्। अभ्यर्दयत्सुसंक्रुद्धो राघवं परमाहवे ॥ ६ ॥ बाणधारासहस्रैस्तु सतोयद इवाम्बरात्। राघवं रावणो बाणैस्तटाकमिव पूरयन् ॥ ७ ॥ स शोणितसमादिग्धः समरे लक्ष्मणाग्रजः। दृष्टः फुल्ल इवारण्ये सुमहान्किंशुकद्रुमः ॥८॥ शराभिघातसंरब्धः सोऽभिजग्राह सायकान्। काकुत्स्थः सुमहातेजा युगान्तादित्यवर्चसः ॥ ९ ॥ ततः क्रोधसमाविष्टो रामो दशरथात्मजः। उवाच रावणं वीरः प्रहस्य परुषं वचः ॥ १० ॥ शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च। श्लाघनीयं महत्कर्म यशस्यं च कृतं त्वया ॥ ११ ॥ यदि मत्सन्निधौ सीता धर्षिता स्यात्त्वया बलात्। भ्रातरं तु खरं पश्येस्तदा मत्सायकैर्हतः ॥ १२ ॥ दिष्ट्यासि मम मन्दात्मंश्चक्षुर्विषयमागतः। अद्य त्वां सायकैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥ १३ ॥ इत्येवं स वदन्वीरो रामः शत्रुनिबर्हणः। राक्षसेन्द्रं समीपस्थं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १४ ॥

बभूव द्विगुणं वीर्यं बलं हर्षश्च संयुगे। रामस्यास्त्रबलं चैव शत्रोर्निधनकाङ्क्षिणः ॥ १५ ॥प्रादुर्बभूवुरस्त्राणि सर्वाणि विदितात्मनः। प्रहर्षाच्च महातेजाः शीघ्रहस्ततरोऽभवत् ॥ १६ ॥ शुभान्येतानि चिह्नानि विज्ञायात्मगतानि सः। भूय एवार्दयद्रामो रावणं राक्षसान्तकृत् ॥ १७ ॥ हरीणां चाश्मनिकरैः शरवर्षैश्च राघवात्। हन्यमानो दशग्रीवो विघूर्णहृदयोऽभवत् ॥ १८ ॥ यदा च शस्त्रं नारेभे न चकर्ष शरासनम्। नास्य प्रत्यकरोद्वीर्यं विक्लवेनान्तरात्मना ॥ १९ ॥ सूतस्तु रथनेताऽस्य तदवस्थं निरीक्ष्य तम्। शनैर्युद्धादसम्भ्रान्तो रथं तस्यापवाहयत् ॥ २० ॥

टीका—लक्ष्मण से कहे इस वाक्य को सुनकर शत्रु वीरों के मारने वाले वीर्यवान् राम ने धनुष लेकर तीर जोड़ा ॥ १ ॥ उसी समय दूसरे रथ पर चढ़कर राक्षसाधिपति रावण राम की ओर दौड़ा, जैसे राहु सूर्य की ओर ॥ २ ॥ रावण रथ पर बैठकर वज्र तुल्य बाणों से राम पर ताड़ना करता भया, जैसे मेघ धाराओं से महा पर्वत को ताड़ता है ॥ ३ ॥ राम भी सावधान होकर सोने के भूषणोंवाले जलते हुए अग्नि के तुल्य बाणों से रावण पर वर्षा करते भये ॥ ४ ॥ उस समय क्रोध में आए राम से अतीव पीड़ित हुआ, युद्धश्लाघी रावण महाक्रोध को प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥ क्रोध से उसके नेत्रों से अग्नि बरसने लगी, अतीव क्रुद्ध हुए उस वीर्यवान् ने धनुष उठाकर उस परम युद्ध में राम को पीड़ित किया ॥ ६ ॥ जिस तरह मेघ आकाश से जल की धाराओं से तालाब को भर देता है, इस तरह रावण ने बाणों की सहस्र धाराओं से राम को भर दिया ॥ ७ ॥ युद्ध में रुधिर से लिबड़ा हुआ लक्ष्मण का वह बड़ा भाई बन में फूले हुए बड़े केसू की तरह दीखता था ॥ ८ ॥ बाणों की चोट से जोश में आए हुए महातेजस्वी राम ने प्रलयकाल

के सूर्य तुल्य कान्तिवाले बाण पकड़े ॥ ९ ॥ तब क्रोध से भरे हुए दशरथसुत वीर राम ने हंसकर रावण को यह कठोर वचन कहा ॥ १० ॥ तू जो कुबेर का भाई शूरमा और सेनाओं से युक्त है, तूने बड़ा सराहनीय और यश के देनेवाला भारी काम किया है ॥ ११ ॥ यदि मेरे सामने तू बल से सीता को दबाता, तब मेरे बाणों से हत हुआ तू अपने भाई खर को देखता ॥ १२ ॥ भाग्य से हे मन्दात्मन् तू मेरे नेत्रों के सामने आया है, आज तुझे तीक्ष्ण बाणों से यम के घर पहुंचाता हूं ॥ १३ ॥ इस प्रकार कहते हुए शत्रुओं के मारनेवाले वीर राम ने निकट पहुंचे रावण पर बाणों की झड़ी बांध दी ॥ १४ ॥ शत्रु को मारना चाहते हुए राम का युद्ध में वीर्य बल हर्ष और अस्त्रबल दुगना होगया ॥ १५ ॥ उस विदितात्मा को सारे अस्त्र प्रकट होगये, और प्रहर्ष से उस महातेजस्वी का हाथ बड़ा ही शीघ्र होगया ॥ १६ ॥ राक्षसों का अन्त करनेवाले राम ने इन शुभ चिन्हों को आत्मा में देखकर रावण को बहुत ही पीड़ित किया ॥ १७ ॥ वानरों की पत्थरों की वर्षा से, और राम के बाणों की वर्षा से ताड़ित हुआ रावण बेकल हृदय होगया ॥ १८ ॥ जब वह बेकल हृदय से शस्त्र न पकड़ सका न धनुष उठा सका, न राम के बल का सामना कर सका ॥ १९ ॥ तब इसके रथ का नेता सारथि उसे इस अवस्था में देखकर बिना घबराए चुपचाप उसके रथ को युद्ध से निकाल लेगया ॥ २० ॥

सर्ग ५४ (व० १०४) मूर्च्छा से उठकर रावण के वीर योग्य वचन

मूल—स तु मोहात्संक्रुद्धः कृतान्तबलचोदितः । क्रोधसंरक्तनयनो रावणः सूतमब्रवीत् ॥ १ ॥ किमर्थं मामवज्ञाय मच्छन्दमनवेक्ष्य च । त्वया शत्रुसमक्षं मे रथोऽयमपवाहितः ॥२॥ +त्वयाद्य हि ममानार्य चिरकालमुपार्जितम् । यशो वीर्यं च तेजश्च प्रत्ययश्च विनाशितः

॥ ३ ॥+शत्रोः प्रख्यातवीर्यस्य रञ्जनीयस्य विक्रमैः। पश्यतो युद्ध-
लुब्धोऽहं कृतः कापुरुषस्त्वया ॥ ४ ॥+नहि तद्विद्यते कर्म सुहृदो
हितकाङ्क्षिणः। रिपूणां सदृशं त्वेतद्यत्त्वयैतदनुष्ठितम् ॥ ५ ॥+नि-
वर्तय रथं शीघ्रं यावन्नापैति मे रिपुः। यदि वाध्युषितोऽसि त्वं
स्मर्यते यदि मे गुणः ॥ ६॥ एवं परुषमुक्तस्तु हितबुद्धिरबुद्धिना।
अब्रवीद्रावणं सूतो हितं सानुनयं वचः ॥ ७ ॥ न भीतोऽस्मि न
मूढोऽस्मि नोपजप्तोऽस्मि शत्रुभिः। न प्रमत्तो न निःस्नेहो विस्मृता
न च सत्क्रिया ॥ ८ ॥ मया तु हितकामेन यशश्च परिरक्षता।
स्नेहप्रसन्नमनसा हितमित्यप्रियं कृतम् ॥ ९ ॥ नास्मिन्नर्थे महाराज
त्वं मां प्रियहिते रतम्। कश्चिल्लघुरिवानार्यो दोषतो गन्तुमर्हसि
॥ १० ॥ श्रूयतां प्रतिदास्यामि यन्निमित्तं मया रथः। नदीवेग
इवाम्भोभिः संयुगे विनिवर्तितः ॥११॥ श्रमं तवावगच्छामि महता
रणकर्मणा। नहि ते वीरसौमुख्यं प्रकर्षं नोपधारये ॥ १२ ॥
रथोद्वहनखिन्नाश्च भग्ना मे रथवाजिनः। दीना घर्मपरिश्रान्ता गावो
वर्षहता इव ॥ १३ ॥ तत्र विश्रामहेतोस्तु तथैषां रथवाजिनाम्।
रौद्रं वर्जयता खेदं क्षमं कृतमिदं मया ॥१४॥ आज्ञापय यथातत्त्वं
वक्ष्यस्यरिनिषूदन। तत्करिष्याम्यहं वीर गतानृण्येन चेतसा
॥ १५ ॥ सन्तुष्टस्तेन वाक्येन रावणस्तस्य सारथेः। प्रशस्यैनं बहु-
विधं युद्धलुब्धोऽब्रवीदिदम् ॥ १६ ॥+रथं शीघ्रमिमं सूत राघवा-
भिमुखं नय। नाहत्वा समरे शत्रून्निवर्तिष्यति रावणः ॥ १७ ॥
एवमुक्त्वा रथस्थस्य रावणो राक्षसेश्वरः। ददौ तस्य शुभं ह्येकं ह-
स्ताभरणमुत्तमम् ॥ १८ ॥ ततो द्रुतं रावणवाक्यचोदितः प्रचोद-
यामास हयान्स सारथिः। स राक्षसेन्द्रस्य ततो महारथः क्षणेन
रामस्य रणाग्रतोऽभवत् ॥ १९ ॥

टीका—मूर्छा से युक्त हुआ क्रुद्ध हुआ यम के बल से प्रेरा हुआ

रावण क्रोध से नेत्र लाल करके सूत से बोला ॥ १ ॥ किसलिये तू मेरी अवज्ञा करके मेरे अभिप्राय को न जानकर शत्रु के सामने से मेरे रथ को ले आया है ॥ २ ॥ तूने आज हे अनार्य ! चिरकाल से उपार्जित मेरा यश, वीर्य, तेज और विश्वास विनाश कर दिया है ॥ ३ ॥ प्रख्यात वीर्यवाले, पराक्रमों से प्रसन्न करनेवाले शत्रु के सामने तूने मुझ युद्ध के लोभी को कायर बना दिया है ॥४॥ हित चाहनेवाले सुहृद् का यह काम नहीं होसक्ता है, यह तो शत्रुओं के सदृश है, जो तूने किया है ॥ ५ ॥ मेरे रथ को जल्दी लौटा, जब तक कि मेरा शत्रु पीछे नहीं हट जाता, यदि तू मेरे पास देर से रहा है, वा मेरा उपकार स्मरण है ॥ ६ ॥ इसप्रकार उस अबुद्धि से कठोर कहा हुआ वह हितबुद्धि सूत रावण से नम्रता सहित हित वचन बोला ॥ ७ ॥ न मैं डराहुआ हूं, न मूढ़ हूं, न शत्रुओं से फोड़ा गया हूं, न प्रमत्त हूं, न स्नेह रहित हूं, न आप के उपकार मुझे भूले हुए हैं ॥ ८ ॥ मैंने तो स्नेह से आर्तहृदय होकर यश की रक्षा करते हुए हित की कामना से हित जानकर यह आप का अप्रिय किया है ॥ ९ ॥ इस विषय में हे महाराज आपके प्रिय हित में रत मुझको आप किसी नीच अनार्य की तरह दोषवाला न समझें ॥ १० ॥ सुनिये जिस निमित्त मैंने युद्ध में रथ को वापिस लौटाया है, जैसे (ज्वार भाटा के समय) समुद्र के जलों से नदी का वेग उलटा चलाया जाता है ॥ ११ ॥ इस बड़े युद्ध में आपको थका हुआ जाना, और आपके बल की वृद्धि और प्रकर्ष नहीं देखा ॥ १२ ॥ और मेरे रथ के घोड़े भी रथ के उठाने से थके टूटे और गर्मी से घबराये हुए वर्षा से तङ्ग की हुई गौओं की तरह दीन हारहे थे ॥ १३ ॥ आपके तथा इन रथ के घोड़ों के विश्राम के निमित्त क्रूर थकावट को मिटाते हुए मैंने यह कर्म किया है

॥१४॥ आज्ञा दीजिये, हे शत्रुओं के मारनेवाले जैसा आप कहेंगे वैसा कृतज्ञ मनसे करूंगा ॥ १५ ॥ सारथि के इस वाक्य से प्रसन्न हुआ युद्ध लोभी रावण बहुविध उसकी प्रशंसा करके यह बोला ॥ १६ ॥ हे सूत शीघ्र इस रथ को राम के सम्मुख ले चल, रावण युद्ध में शत्रुओं को मारे बिना नहीं लौटेगा ॥ १७ ॥ यह कहकर रावण ने सारथि को एक उत्तम हस्तभूषण दिया ॥१८॥ तब जल्दी रावण के वाक्य से प्रेरे हुए सारथि ने घोड़ों को हांका, और वह राक्षसेन्द्र का महारथ क्षण में रामकेसम्मुख आखड़ा हुआ॥

सर्ग ५५ (व० १०६,१०७) राम रावण का लगातार घोर युद्ध ॥

मूल—तदुपोढं महद्युद्ध मन्योन्यवधकांक्षिणोः । परस्पराभिमुखयो-र्दृप्तयोरिव सिंहयोः ॥ १ ॥ ततो राक्षससैन्यं च हरीणां च महद्बलम् । प्रगृहीतप्रहरणं निश्चेष्टं समवर्तत ॥ २ ॥ सम्प्रयुद्धौ तु तौ दृष्ट्वा बलवन्नरराक्षसौ । व्याक्षिप्तहृदयाः सर्वे परं विस्मयमागताः ॥ ३ ॥ रक्षसां रावणं चापि वानराणां च राघवम् । पश्यतां विस्मिताक्षाणां सैन्यं चित्रमिवाबभौ ॥४॥ जेतव्यमिति काकुत्स्थो मर्तव्यमिति रावणः । धृतौ स्ववीर्यसर्वस्वं युद्धेऽदर्शयतां तदा ॥५॥ रामश्चिक्षेप तेजस्वी केतुमुद्दिश्य सायकम् । जगाम स महीं भित्त्वा दशग्रीवध्वजं शरः ॥ ६ ॥ ध्वजस्योन्मथनं दृष्ट्वा रावणः स महाबलः । संप्रदीप्तोऽभवत्क्रोधादमर्षात्प्रदहन्निव ॥ ७ ॥ स रोषवशमापन्नः शरवर्षं ववर्ष ह । तद्वर्षमभवद्युद्धे नैकशस्त्रमयं महत् ॥ ८ ॥ प्रहसन्निव काकुत्स्थः सन्दधे निशिताञ्छरान् । स मुमोच ततो बाणाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ ९ ॥ प्रायुध्येतामविच्छिन्नमस्यन्तौ सव्यदक्षिणम् । चक्रतुश्च शरैर्घोरैर्निरुच्छ्वासमिवाम्बरम् ॥ १० ॥ +सागरं सागराकारं गगनं गगनोपमम् । रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव॥११॥एवं ब्रुवन्तो ददृशुस्तद्युद्धं रामरावणम्॥१२॥देवदा-

नवयक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम्। पश्यतां तन्महद्युद्धं सर्वरात्रमवर्तत॥

टीका—एक दूसरे के सम्मुख हुए एक दूसरे का बध चाहते हुए उन दोनों का दृप्त शेरों की तरह महत्व युद्ध प्रवृत्त हुआ॥१॥राक्षसों की सेना और वानरों की बहुत बड़ी सेना शस्त्र पकड़े हुए भी निश्चेष्ट खड़ी रही ॥२॥उन दोनों बलवान् नर और राक्षस को प्रबल युद्ध में लगे देख कर सबके हृदय उधर खिंच गये और परम विस्मय को प्राप्त हुए॥३॥ राक्षसों की सेना रावण को और वानरों की सेना राम को विस्मित आंखों से देखती हुई चित्रवत् प्रतीत होती थी ॥ ४ ॥ जीतना है यह राम और मरना है यह रावण निश्चय किये हुए युद्ध में अपने वीर्य का सर्वस्व दिखलाते भये ॥ ५ ॥ तेजस्वी राम ने रावण के झण्डे का उद्देश्य करके बाण फैंका, वह बाण रावण की ध्वजा को काटकर पृथ्वी पर गिरा ॥६॥ ध्वजा का कटना देखकर महाबली रावण क्रोध और अमर्ष से मानों दाह करता हुआ चमक उठा ॥ ७ ॥ क्रोध के वश हुआ वह बाणों की वर्षा बरसाता भया, वह वर्षा युद्ध में अनेक शस्त्रों से भरी हुई बड़ी भारी हुई ॥ ८ ॥ हंसते हुए राम ने भी तीक्ष्ण बाणों को जोड़ा और अनेकानेक बाण छोड़े ॥ ९ ॥ दाएं बाएं दोनों ओर बाणों को फैंकते हुए वह प्रबल युद्ध करने लगे, और घोर बाणों से उन्होंने आकाश को निरवकाश बना दिया ॥ १० ॥ आकाश आकाश के तुल्य है और सागर सागर के तुल्य है, राम और रावण का युद्ध राम और रावण के तुल्य है ॥ ११ ॥ ऐसा कहते हुए लोग राम और रावण के युद्ध को देखते भए ॥ ॥ १२ ॥ देव, दानव, यक्ष, राक्षस, पिशाच और नागों के देखते हुए वह भारी युद्ध सब दिन इसी तरह होता रहा ॥ १३ ॥

सर्ग ९६ (व० १०८) अगस्त्य बाण से रावण का बध

मूल—यं तस्मै प्रथमं प्रादादगस्त्यो भगवानृषिः । ब्रह्मदत्तं महद्बाणममोघं युधि वीर्यवान् ॥ १ ॥ ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वमिन्द्रार्थममितौजसा । दत्तं सुरपतेः पूर्वं त्रिलोकजयकांक्षिणः ॥ २ ॥ अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाबलः । वेदप्रोक्तेन विधिना सन्दधे कार्मुके बली ॥ ३ ॥ स रावणाय संक्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् । चिक्षेप परमायत्तः शरं मर्मविदारणम् ॥ ४ ॥ स वज्र इव दुर्धर्षो वज्रिबाहुविसर्जितः । कृतान्त इव चावार्यो न्यपतद्रावणोरसि ॥ ५ ॥ स विसृष्टो महावेगः शरीरान्तकरः परः । बिभेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥ ६ ॥ रुधिराक्तः स वेगेन शरीरान्तकरः शरः । रावणस्य हरन्प्राणान्विवेश धरणीतलम् ॥ ७ ॥ तस्य हस्ताद्धतस्याशु कार्मुकं चापि सायकम् । निपपात सह प्राणैर्भ्रश्यमानश्च जीवितात् ॥ ८ ॥ गतासुर्भीमवेगस्तु नैर्ऋतेन्द्रो महाद्युतिः । पपात स्यन्दनाद्भूमौ वृत्रो वज्रहतो यथा ॥ ९ ॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषा निशाचराः । हतनाथा भयत्रस्ताः सर्वतः संप्रदुद्रुवुः ॥१०॥ ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः । वदन्तो राघवजयं रावणस्य च तद्वधम् ॥११॥ ततस्तु सुग्रीवविभीषणाङ्गदाः सुहृद्विशिष्टा सहलक्ष्मणास्तदा । समेत्य हृष्टा विजयेन राघवं रणेऽभिरामं विधिनाभ्य पूजयन् ॥१२॥ स तु निहतरिपुः स्थिरप्रतिज्ञः स्वजनबलाभिवृतो रणे बभूव । रघुकुलनृपनन्दनो महौजास्त्रिदशगणैरभिसंवृतो महेन्द्रः ॥ १३ ॥

अर्थ—अब ब्रह्मा से दिया वह अमोघ महाबाण जिसे अपरिमित पराक्रमवाले ब्रह्मा ने पहले इन्द्र के लिये रचा, और त्रिलोकी को जीतना चाहते इन्द्र को दिया था, और जो कि भगवान् अगस्त्य ने पहले राम को दिया था ॥ १, २ ॥ महाबली राम ने उस महाबाण

को अभिमन्त्रण करके धनुर्वेद में कही विधि से उस धनुष में जोड़ा ॥३॥ अब धनुष को ज़ोर से खींचकर क्रुद्ध हुए राम ने परम प्रयत्न के साथ मर्म तोड़नेवाला वह बाण रावण की ओर फेंका ॥४॥ इन्द्र से छोड़े वज्र की तरह वह दुर्धर्ष यम की तरह न रोका जाने वाला बाण रावण की छाती में जा खुभा ॥५॥ उस महावेगवाले शरीर का अन्त करनेवाले छोड़े हुए उत्तम बाण ने दुरात्मा रावण का हृदय फोड़ दिया ॥ ६ ॥ रुधिर से लिबड़ा हुआ शरीर का अन्त करनेवाला वह बाण रावण के प्राणों को हरकर वेग से पृथिवी-तल में प्रविष्ट हुआ ॥ ७ ॥ हत हुए रावण के हाथ से प्राणों के साथ उसका धनुष और बाण गिरा और वह जीवन से अलग हुआ ॥ ८ ॥ दूर हुए प्राणोंवाला भीमवेग महातेजस्वी वह राक्षसेन्द्र वज्र से हत हुए वृक्ष की तरह रथ से भूमि पर गिर पड़ा ॥९॥ उसको भूमि पर गिरा देखकर हतशेष राक्षस मालिक के मरने से भय से डरे हुए सब ओर भाग गये ॥१०॥ तब जय से प्रकाशने वाले वानर प्रसन्न हुए राघव का जय और रावण का क्षय कहते हुए गर्जते भए ॥ ११ ॥ तब सुहृदों समेत सुग्रीव विभीषण अङ्गद और लक्ष्मण प्रसन्न हुए मिल करके रण में विजय से सुहावने राम को विधि से पूजते भए ॥१२ ॥ वह रघुकुल का राजकुमार शत्रु को मारकर स्थिर प्रतिज्ञावाला रण में अपने जनों से घिरा हुआ देवगणों से घिरे हुए महेन्द्र की तरह हुआ ॥ १३ ॥

सर्ग ५७ (व० १०९) विभीषण का शोक और राम का तसल्ली देना

मूल—भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा शयानं निर्जितं रणे । शोकवेगपरीतात्मा विललाप विभीषणः ॥ १ । +आदित्यः पतितो भूमौ मग्नस्तमसि चन्द्रमाः । चित्रभानुः प्रशान्तार्चिर्व्यवसायो निरुद्यमः ॥ २ ॥ अस्मिन्निपतिते वीरे भूमौ शस्त्रभृतां वरे । किं शेषमिह लोकस्य

गतसत्त्वस्य सम्प्रति ॥ ३ ॥ वदन्तं हेतुमद्वाक्यं परिदृष्टार्थनिश्चयम् । रामः शोकसमाविष्टमित्युवाच विभीषणम् ॥ ४ ॥+नायं विनष्टो निश्चेष्टः समरे चण्डविक्रमः । अत्युन्नतमहोत्साहः पतितोऽयमशङ्कितः॥ ५ ॥ नैवं विनष्टाः शोच्यन्ते क्षत्रधर्मव्यवस्थिताः । वृद्धिमाशंसमाना ये निपतन्ति रणाजिरे ॥ ६ ॥+नैकान्तविजयो युद्धे भूतपूर्वः कदाचन । परैर्वा हन्यते वीरः परान्वा हन्ति संयुगे ॥७॥ +इयं हि पूर्वैः संदिष्टा गतिः क्षत्रियसम्मता । क्षत्रियो निहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः ॥ ८ ॥ तदेवं निश्चयं दृष्ट्वा तत्त्वमास्थाय विज्वरः । यदिहानन्तरं कार्यं कल्प्यं तदनुचिन्तय ॥ ९ ॥ तमुक्तवाक्यं विक्रान्तं राजपुत्रं विभीषणः । उवाच शोकसंतप्तो भ्रातुर्हितमनन्तरम् ॥ १० ॥+अनेन दत्तानि वनीपकेषु भुक्ताश्च भोगा निभृताश्च भृत्याः । धनानि मित्रेषु समर्पितानि वैराण्यमित्रेषु निपातितानि ॥ ११ ॥+एषोऽहिताग्निश्च महातपाश्च वेदान्तगः कर्मसु चाग्र्यशूरः । एतस्य यत्प्रेतगतस्य कृत्यं तत्कर्तुमिच्छामि तव प्रसादात् ॥ १२ ॥ स तस्य वाक्यैः करुणैर्महात्मा सम्बोधितः साधु विभीषणेन । आज्ञापयामास नरेन्द्रसूनुः स्वर्गीयमाधानमदीनसत्त्वः ॥ १३ ॥+मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम् । क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥ १४ ॥

टीका—भाई को रण में पराजित हो लेटा हुआ मरा हुआ देखकर शोक के वेग से भरे मन वाला विभीषण विलाप करता भया ॥१॥ सूर्य भूमि पर गिरा है, चन्द्रमा अन्धकार में डूबा है, अग्नि की ज्वाला ठण्डी होगई है, कारोबार उद्यम हीन हुआ है ॥२॥ जब कि शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ यह वीर भूमि पर पड़ा है, अब सारहीन हुए इस लोक का शेष क्या रहा ॥३॥ ऐसा यथार्थ युक्तियुक्त वाक्य कहते हुए शोक से भरे हुए विभीषण को राम बोले ॥ ४ ॥ यह

युद्ध में प्रचण्ड विक्रमवाला निश्चेष्ट होकर नहीं मरा है, अपितु बहुत बड़े उन्नत उत्साहवाला निडर लड़ता हुआ (दैव से) गिरा है ॥५॥ इसप्रकार मरे हुए जो क्षात्रधर्म में स्थित होकर अपना जय चाहते हुए रण के मैदान में गिरते हैं, वह शोक के योग्य नहीं होते हैं ॥ ६ ॥ युद्ध में नियत विजय कभी किसी का नहीं हुआ है, युद्ध में वीर पुरुष या शत्रुओं से मारा जाता है, वा शत्रुओं को मार लेता है ॥ ७ ॥ यह गति (जो इसने पाई है) बड़ों की कही हुई क्षत्रियों में पूजित है, युद्ध में मरा हुआ क्षत्रिय शोक के योग्य नहीं होता, यह निश्चय है ॥ ८ ॥ सो इस प्रकार निश्चय जानकर दृढ़ होकर शोकरहित हुआ जो अनन्तर कार्य करना है उसका विचार कर ॥ ९ ॥ विक्रमी राजपुत्र (राम) के ऐसा कहने पर शोक से तपा हुआ विभीषण भाई का आगे करने योग्य हित कहता भया ॥ १० ॥ इसने पात्रों में दान दिये हैं, भोग भोगे हैं, पालने योग्यों का पालन किया है, मित्रों में धन बांटे हैं, शत्रुओं से वैर चुकाए हैं ॥ ११ ॥ यह आहिताग्नि महा तपस्वी वेदान्त का जाननेवाला, कर्म में निपुण था, अब इस मरे हुए का जो कर्तव्य है, वह आप की कृपा से करना चाहता हूं ॥ १२ ॥ विभीषण ने जब करुण वाक्यों से उस महात्मा को यह जितलाया, तो अदीन हृदय वह राजपुत्र (राम) स्वर्ग के योग्य विधि की आज्ञा देता भया ॥ १३ ॥ वैर मरण तक होते हैं, हमारा प्रयोजन होचुका, इसका संस्कार कीजिये, मेरा भी यह वैसा है, जैसा तेरा है

सर्ग ५८ (व० ११०, १११) रावण की स्त्रियों का विलाप

मूल—रावणं निहतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना । अन्तःपुराद्विनिष्पेतू राक्षस्यः शोककर्शिताः ॥ १ ॥ उत्तरेण विनिष्क्रम्य द्वारेण सह राक्षसैः । प्रविश्यायोधनं घोरं विचिन्वन्त्यो हतं पतिम् ॥ २ ॥

ताः पतिं सहसा दृष्ट्वा शयानं रणपांसुषु । निपेतुस्तस्य गात्रेषु छिन्ना वनलता इव ॥ ३ ॥ बहुमानात्परिष्वज्य काचिदेनं रुरोद ह । चरणौ काचिदालम्ब्य काचित्कण्ठेऽवलम्ब्य च ॥ ४ ॥ उत्क्षिप्य च भुजौ काचिद्भूमौ सुपरिवर्तते । हतस्य वदनं दृष्ट्वा काचिन्मोहमुपागमत् ॥ ५ ॥ काचिदङ्के शिरः कृत्वा रुरोद मुख-मीक्षती । स्नापयन्ती मुखं बाष्पैस्तुषारैरिव पङ्कजम् ॥ ६ ॥ दश-ग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाचिन्त्यकर्मणा । पतिं मन्दोदरी तत्र कृपणा पर्यदेवयत् ॥ ७ ॥ ननु नाम महाबाहो तव वैश्रवणानुज । क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं त्रस्यत्यपि पुरन्दरः ॥ ८ ॥ ऋषयश्च महान्तोऽपि गन्धर्वाश्च यशस्विनः । ननु नाम तवोद्वेगाच्चारणाश्च दिशो गताः ॥ ९ ॥ स त्वं मानुषमात्रेण रामेण युधि निर्जितः । न व्यपत्रपसे राजन्किमिदं राक्षसेश्वर ॥ १० ॥+विनाशस्तव रामेण संयुगे नोप-पद्यते । सर्वतः समुपेतस्य तव तेनाभिमर्षणम् ॥११॥ +अप्राप्य तं चैव कामं मैथिलीसङ्गमे कृतम् । पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ॥ १२ ॥ तदेव यन्न दग्धस्त्वं धर्षयंस्तनुमध्यमाम् । देवा बिभ्यति ते सर्वे सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥ १३ ॥ मैथिली सह रामेण विशोका विहरिष्यति । अल्पपुण्या त्वहं घोरे पतिता शोकसागरे ॥ १४ ॥ कैलासे मन्दरे मेरौ तथा चैत्ररथे वने । देवोद्यानेषु सर्वेषु विहृत्य सहिता त्वया ॥ १५ ॥ विमानेनानुरूपेण याम्यतुलया श्रिया । पश्यन्ती विविधान्देशांस्तांस्तांश्चित्रस्रगम्बरा ॥ १६ ॥ भ्रंशिता कामभोगेभ्यः सास्मि वीर वधात्तव । नैवान्येवास्मि संवृत्ता धिग्राज्ञां चञ्चलां श्रियम् ॥ १७ ॥ पिता दानवराजो मे भर्ता मे राक्षसेश्वरः । पुत्रो मे शक्रनिर्जेता इत्यहं गर्विता भृशम् ॥ १८ ॥ दृप्तारिमथनाः क्रूराः प्रख्यातबलपौरुषाः । अकुतश्चिद्भया नाथा ममेत्यासीन्मतिर्ध्रुवा ॥१९॥ तेषामेवंप्रभावाणां युष्माकं राक्षसर्षभाः ।

कथं भयमसंबद्धं मानुषादिदमागतम् ॥ २० ॥ यास्त्वया विधवा राजन्कृता नैकाः कुलस्त्रियः । पतिव्रताधर्मरता गुरुशुश्रूषणे रताः ॥ २१ ॥ ताभिः शोकाभितप्ताभिः शप्तः परवशं गतः । त्वया विप्रकृताभिश्च तदा शप्तं तदागतम् ॥२२॥ प्रवादः सत्यमेवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप । पतिव्रतानां नाकस्मात्पतन्त्यश्रूणि भूतले ॥ २३ ॥ नीलजीमूतसंकाश पीताम्बर शुभाङ्गद । स्वगात्राणि विनिक्षिप्य किं शेषे रुधिरावृतः ॥ २४ ॥ यातुधानस्य दौहित्रीं किं मां न प्रतिभाषसे । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे नवे परिभवे कृते ॥ २५ ॥ धिगस्तु हृदयं यस्या ममेदं न सहस्रधा । त्वयि पञ्चत्वमापन्ने फलते शोकपीडितम् ॥ २६ ॥ इत्येवं विलपन्ती सा बाष्पपर्याकुलेक्षणा । स्नेहोपस्कन्नहृदया तदा मोहमुपागमत् ॥२७॥ तथागतां समुत्थाप्य सपत्न्यस्तां भृशातुराः । पर्यवस्थापयामासू रुदत्यो रुदतीं भृशम् ॥२८

टीका—महात्मा राघव से रावण को मरा देखकर शोक से दुर्बल राक्षसियें अन्तःपुर से निकलीं ॥ १ ॥ राक्षसों के साथ उत्तर द्वार से निकलकर भयानक रण में प्रवेश करके मरे पति को ढूंढती भईं ॥ २ ॥ वह रण की धूल में लेटे हुए पति को सहसा देखकर कटी हुई बनलता की तरह उसके अङ्गों पर गिर पड़ीं ॥ ३ ॥ कोई इसे बहुनान से आलिङ्गन करके रोने लगी, कोई पांओं पकड़ कर, और कोई गले लगकर ॥४॥ कोई भुजायें फैंककर भूमि पर लौटती है, कोई मरे के मुख को देखकर मूर्छित होगई है ॥५॥ कोई गोद में उसका सिर करके मुख को देखती हुई ओस से कमल की तरह आंसुओं से उसके मुख को स्नान कराती हुई रोरही है ॥ ६ ॥ अचिन्त्य कर्मोंवाले राम से रावण को मरा देखकर (उसकी ज्येष्ठ पत्नी) मन्दोदरी वहां विलाप करती भई ॥ ७ ॥ हे कुबेर के छोटे भाई हे महाबाहो क्रुद्ध हुए तेरे सामने खड़ा

होने में इन्द्र भी डरता था ॥ ८ ॥ बड़े २ ऋषि और यशस्वी गन्धर्व और चारण भी तेरे डर से दिशाओं को भागते थे ॥ ९ ॥ सो तू मानुषमात्र से जीता हुआ हे राजन् नहीं लजाता है, हे राक्षसेश्वर यह क्या ॥ १० ॥ सेना के अग्र में सारी शक्तियों से युक्त तुझ को दबाना यह राम का काम हो मैं नहीं विश्वास करती ॥ ११ ॥ हे मेरे स्वामी तू सीता के समागम की कामनाको बिना प्राप्त किये निःसन्देह उस पतिव्रता के तप से दग्ध किया गया है ॥१२॥ उस सूक्ष्म कमरवाली को दबाता हुआ जो उसीसमय तू दग्ध नहीं किया गया है, (यह उस माहात्म्य से, कि जिससे) इन्द्र और अग्नि समेत देवता भी तुझ से डरते हैं ॥ १३ ॥ सीता शोक रहित हुई राम के साथ आनन्द मनाएगी, किन्तु मैं मन्दभाग्या शोक-सागर में डूबी हूं ॥ १४ ॥ कैलास मन्दर मेरु चैत्ररथ बन और देवताओं के सब बगीचों में जो अतुल शोभा से विचित्र माला वस्त्र पहने हुए विविध देशों को देखती हुई सुन्दर विमान पर तेरे साथ घूमती थी ॥ १५,१६ ॥ वही मैं हे वीर तेरे बध से सारे कामभोगों से भ्रष्ट हुई हूं, वही मैं अब मानो और सी होगई हूं, राजाओं की चञ्चल लक्ष्मी को धिक्कार है ॥ १७ ॥ मुझे यह बड़ा गर्व था, मेरा पिता दानवों का राजा है, भर्त्ता राक्षसों का मालिक है, और पुत्र इन्द्र का जीतने वाला है ॥१८॥ मेरी यह अटल मति थी, कि मेरे नाथ दृप्त शत्रुओं के मारनेवाले बड़े उग्र प्रसिद्ध बल पौरुषवाले किसी से न डरनेवाले हैं ॥ १९ ॥ ऐसे प्रभाववालों को हे राक्षसश्रेष्ठो ! कैसे तुम्हें मनुष्य से यह अचानक भय प्राप्त हुआ ॥२०॥ हे राजन् जो तूने अनेक कुलीन स्त्रियें विधवा की हैं, जो पतिव्रता धर्मरत, और बड़ों की सेवा में तत्पर थीं ॥२१॥ उन शोक से तपी हुइयों ने जो तुझे शाप दिया इससे तू शत्रु के वश पड़ा है

॥ २२ ॥ हे नृप ! यह कहावत जो प्रायः लोक में प्रसिद्ध है, तेरे विषय में सत्य निकली है, कि पतिव्रताओं के आंसू पृथ्वी पर बिना अनर्थ लाये नहीं गिरते ॥ २३ ॥ हे नीलमेघ के सदृश हे पीत वस्त्रोंवाले, हे सुन्दर बाहुबन्द बाले, क्यों तू अपने अङ्गों को फैंककर रुधिर से लिबड़ा हुआ लेट रहा है ॥२४॥ मुझ यातुधान (सुमाली) की दोहती से क्यों नहीं बोलता है, उठ २ इस नये अनादर के होने पर क्यों लेट रहा है ॥ २५ ॥ धिक्कार है मेरे हृदय को जो तेरे मरने पर शोक से पीड़ित होकर अनेक टुकड़े नहीं होजाता है ॥ २६ ॥ इस प्रकार विलपती हुई आंसुओं से व्याकुल नेत्रोंवाली स्नेह से दबे हृदयवाली वह मूर्छित होगई ॥२७॥ ऐसी अवस्था से उठाकर अतीव पीड़ित हुई उसकी सपत्नियें रोती हुई उस अत्यन्त रोती हुई को तसल्ली देती भई ॥ २८ ॥

सर्ग ५९ (व० १११) रावण का दाह संस्कार ॥

मूल—एतस्मिन्नन्तरे रामो विभीषणमुवाच ह । संस्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्रीगणः परिसान्त्व्यताम् ॥ १ ॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणो विभीषणः । संस्कारयितुमारेभे भ्रातरं रावणं हतम् ॥२॥ स प्रविश्य पुरीं लङ्कां राक्षसेन्द्रो विभीषणः । रावणस्याग्निहोत्रं तु निर्यापयति सत्वरम् ॥ ३ ॥ शकटान्दारुरूपाणि अग्नीन्वै याजकांस्तथा । तथा चन्दनकाष्ठानि काष्ठानि विविधानि च ॥ ४ ॥ अगुरूणि सुगन्धीनि गन्धांश्च सुरभींस्तथा । ततो माल्यवता सार्धं क्रियामेव चकार सः ॥ ५ ॥ सौवर्णीं शिविकां दिव्यामारोप्य क्षौमवाससम् । रावणं राक्षसाधीशमश्रुपूर्णमुखा द्विजाः ॥ ६ ॥ उत्क्षिप्य शिविकां तां तु विभीषणपुरोगमाः । दक्षिणाभिमुखाः सर्वे गृह्य काष्ठानि भेजिरे ॥७॥ अग्नयो दीप्यमानास्ते तदाध्वर्युसमीरिताः शरणाभिगताः सर्वे पुरस्तात्तस्य ते ययुः ॥ ८ ॥ अन्तःपुराणि

सर्वाणि रुदमानानि सत्वरम् । पृष्ठतोऽनुययुस्तानि प्लवमानानि सर्वतः ॥ ९ ॥ रावणं प्रयते देशे स्थाप्य ते भृशदुःखिताः । चितां चन्दनकाष्ठैश्च पद्मकोशीरचन्दनैः ॥१०॥ ब्राह्म्या संवर्तयामासू राङ्कवास्तरणावृताम् । प्रचक्रू राक्षसेन्द्रस्य पितृमेधमनुत्तमम् ॥११॥ स ददौ पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः । स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान्दर्भविमिश्रितान् ॥१२॥ उदकेन च संमिश्रान्प्रदाय विधिपूर्वकम् । ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वयित्वा पुनः पुनः ॥ १३ ॥ गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं ततः ॥ १४ ॥ प्रविष्टासु पुरीं स्त्रीषु राक्षसेन्द्रो विभीषणः । रामपार्श्वमुपागम्य समतिष्ठद्विनीतवत्

टीका—इस अवसर में राम ने विभीषण को कहा, भाई का संस्कार करो और स्त्रीगण को तसल्ली दो ॥ १ ॥ राघव के वचन को सुनकर जल्दी करता हुआ विभीषण मरे भाई रावण के संस्कार करने की तय्यारी करता भया ॥ २ ॥ राक्षसेन्द्र विभीषण लङ्कापुरी में प्रवेश करके जल्दी रावण के अग्निहोत्र को बाहर लाया ॥ ३ ॥ छकड़े, उज्ज्वल समिधाएं, अग्नियें, याजक, चन्दन की लकड़ियें और भिन्न लकड़ियें ॥ ४ ॥ सुगन्धित अगर और सुगन्धित वस्तुएं (लेकर आया) और माल्यवान् के साथ कर्म किया ॥ ५ ॥ सोने की दिव्य पालकी पर रेशमी वस्त्र युक्त राक्षसपति रावण को चढ़ाकर आंसुओं से पूर्ण मुखवाले ब्राह्मण (ले गये) ॥ ६ ॥ पालकी को उठाकर विभीषण आदि सब लकड़ियें लेकर दक्षिणाभिमुख गए ॥ ७ ॥ अध्वर्यु से दीप्यमान अग्नियों को कुंडों समेत उसके आगे २ ले जारहे थे ॥ ८ ॥ और स्त्रियें सब रोती हुई सब ओर से उसके पीछे २ गई ॥ ९ ॥ रावण को शुद्ध स्थान पर स्थापन करके अतीव दुःखित हुए वह चन्दन की लकड़ियों से पद्मक और उशीर चन्दन से नीचे मगान बिछाकर

वेद मार्गानुसार चिता बनाते भए और राक्षसेन्द्र की उत्तम अन्त्येष्टि करते भए ॥ १०, ११ ॥ विभीषण ने विधि पूर्वक उसे अग्नि दी और स्नान करके गीले वस्त्र से विधि पूर्वक जल और दर्भ से मिश्रित तिल (तिलाञ्जलि) देकर स्त्रियों को तसल्ली दी, वार २ उनको तसल्ली देकर "आप अब जाएं" विभीषण के ऐसा कहने पर वह नगर में प्रविष्ट हुईं ॥१२,१३,१४॥ स्त्रियों के नगर में प्रविष्ट होने पर राक्षसेन्द्र विभीषण रामके पास जाकर विनीतवत् स्थित हुआ

सर्ग ६० (व० ११२) विभीषण का लंका में राज्याभिषेक

मूल—अथोवाच स काकुत्स्थः समीपपरिवर्तिनम् । सौमित्रिं मित्र-सम्पन्नं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ १ ॥ विभीषणमिमं सौम्य लङ्का-यामभिषेचय । अनुरक्तं च भक्तं च तथा पूर्वोपकारिणम् ॥ २ ॥ एष मे परमः कामो यदिमं रावणानुजम् । लङ्कायां सौम्य पश्ये-यमभिषिक्तं विभीषणम् ॥ ३ ॥ एवमुक्तस्तु सौमित्री राघवेण महात्मना । तथेत्युक्त्वा सुसंहृष्टः सौवर्णं घटमाददे ॥ ४ ॥ तं घटं वानरेन्द्राणां हस्ते दत्त्वा मनोजवान् । व्यादिदेश महासत्त्वः समुद्र-सलिलं तदा ॥ ५ ॥ अतिशीघ्रं ततो गत्वा वानरास्ते मनोजवाः । आगतास्तु जलं गृह्य समुद्राद्वानरोत्तमाः ॥ ६ ॥ ततस्त्वेकं घटं गृह्य संस्थाप्य परमासने । घटेन तेन सौमित्रिरभ्यषिञ्चद्विभीषणम् ॥ ७ ॥ अभ्यषिञ्चंस्तदा सर्वे राक्षसा वानरास्तदा । प्रहर्षमतुलं गत्वा तुष्टुवू राममेव हि ॥ ८ ॥ दृष्ट्वाभिषिक्तं लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् । राघवः परमां प्रीतिं जगाम सहलक्ष्मणः ॥ ९ ॥ सान्त्वयित्वा प्र-कृतयस्ततो राममुपागमत् ॥ १० ॥ ततः शैलोपमं वीरं प्राञ्जलिं प्रणतं स्थितम् । उवाचेदं वचो रामो हनूमन्तं प्लवङ्गमम् ॥ ११ ॥ अनुज्ञाप्य महाराजमिमं सौम्य विभीषणम् । प्रविश्य नगरीं लङ्कां कौशलं ब्रूहि मैथिलीम् ॥ १ ॥ वैदेह्या मां च कुशलं सुग्रीवं च

सहलक्ष्मणम् । आचक्ष्व वदतां श्रेष्ठ रावणं च हतं रणे ॥ १३ ॥ प्रियमेतदिहाख्याहि वैदेह्यास्त्वं हरीश्वर । प्रतिगृह्य तु सन्देशमुपावर्तितुमर्हसि ॥ १४ ॥

टीका—तब राम समीपवर्ती, मित्रोंवाले, शुभलक्षणों वाले सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण से बोले ॥ १ ॥ हे सौम्य ! इस मेरे अनुरक्त भक्त पूर्वोपकारी विभीषण को लङ्का में जाकर अभिषेक दो ॥ २ ॥ यह मेरी परम कामना है, कि हे सौम्य ! रावण के छोटे भाई विभीषण को लङ्का में अभिषिक्त हुआ देखूं ॥३॥ महात्मा राम से ऐसे कहा हुआ लक्ष्मण तथास्तु कहकर प्रसन्न हो सोने का घड़ा लेता भया ॥ ४ ॥ उस घड़े को उस महा हृदयवाले ने वानरेन्द्रों के हाथ में देकर मन तुल्य वेगवाले उन बानरों को समुद्र का जल लाने की आज्ञा दी ॥ ५ ॥ वह मन तुल्य वेगवाले वानरोत्तम अति शीघ्र जाकर समुद्र का जल ले आये ॥ ६ ॥ तब लक्ष्मण ने एक घड़ा लेकर विभीषण को सिंहासन पर बिठलाकर उस घट से अभिषिक्त किया ॥ ७ ॥ तब सारे राक्षसों ने और वानरों ने उसे अभिषेक दिया, और सब अतुल हर्ष को प्राप्त होकर राम की प्रशंसा करते भए ॥८॥ राक्षसेन्द्र विभीषण को लङ्का में अभिषिक्त देखकर राम लक्ष्मण समेत परमप्रीति को प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ और विभीषण प्रकृतियों को तसल्ली देकर फिर राम के पास आया ॥ १० ॥ तब हाथ जोड़कर झुककर खड़े हुए पर्वत जैसे वीर हनुमान् वानर को राम यह वचन बोले ॥ ११ ॥ हे सौम्य महाराज विभीषण से अनुज्ञा लेकर लङ्का नगरी में प्रवेश करके सीता को कुशल कहो ॥ १२ ॥ हे कहनेवालों में श्रेष्ठ पहले सीता का कुशल पूछकर फिर मेरा लक्ष्मण का और सुग्रीव का कुशल और रावण का मरना कहो ॥ १३ ॥ हे वानरेश्वर यह प्रिय जाकर सीताको कहो, और उससे सन्देश लेकर वापिस आ ॥१४॥

सर्ग ६१ (व० ११३) हनुमान् का सीता को विजयका संदेश देना

मूल–इति प्रतिसमादिष्टो हनूमान्मारुतात्मजः । प्रविवेश पुरीं लङ्का मनुज्ञाप्य विभीषणम् ॥ १ ॥ ततस्तेनाभ्यनुज्ञातो हनूमान्वृक्षवाटिकाम् । संप्रविश्य यथान्यायं सीताया विदितो हरिः ॥ २ ॥ ददर्श मृजया हीनां राक्षसीभिः परीवृताम् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा समागतं देवी हनूमन्तं महाबलम् । तूष्णीमास्त तदा दृष्ट्वा स्मृत्वा हृष्टाभवत्तदा ॥ ४ ॥ सौम्यं तस्या मुखं दृष्ट्वा हनूमान्प्लवगोत्तमः । रामस्य वचनं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ५ ॥ वैदेहि कुशली रामः सुग्रीवः सहलक्ष्मणः । कुशलं त्वाह सिद्धार्थो हतशत्रुरमित्रजित् ॥ ६ ॥ विभीषणसहायेन रामेण हरिभिः सह । निहतो रावणो देवि लक्ष्मणेन च वीर्यवान् ॥ ७ ॥ प्रियमाख्यामि ते देवि भूयश्च त्वां सभाजये । तव प्रभावाद्धर्मज्ञे महात्रामेण संयुगे ॥ ८ ॥ लब्धोऽयं विजयः सीते स्वस्था भव गतज्वरा । रावणश्च हतः शत्रुर्लङ्का चैव वशीकृता ॥ ९ ॥ मया ह्यलब्धनिद्रेण धृतेन तव निर्जये । प्रतिज्ञैषा विनिस्तीर्णा बद्ध्वा सेतुं महोदधौ ॥ १० ॥ संभ्रमश्च न कर्तव्यो वर्तन्त्या रावणालये । विभीषणविधेयं हि लङ्कैश्वर्यमिदं कृतम् ॥ ११ तदाश्वसिहि विस्रब्धं स्वगृहे परिवर्तसे । अयं चाभ्येति संहृष्टस्त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ॥ १२ ॥ एवमुक्ता तु सा देवी सीता शशिनिभानना । प्रहर्षेणावरुद्धा सा व्याहर्तुं न शशाक ह ॥ १३ ॥ ततोऽब्रवीद्धरिवरः सीतामप्रतिजल्पतीम् । किं त्वं चिन्तयसे देवि किं च मां नाभिभाषसे ॥ १४ ॥ एवमुक्ता हनुमता सीता धर्मपथे स्थिता । अब्रवीत्परमप्रीता बाष्पगद्गदया गिरा ॥ १५ ॥ प्रियमेतदुपश्रुत्य भर्तुर्विजयसंश्रितम् । प्रहर्षवशमापन्ना निर्वाक्यास्मि क्षणान्तरम् ॥१६॥+न च पश्यामि सदृशं पृथिव्यां तव किञ्चन । सदृशं यत्प्रियाख्याने तव दत्त्वा भवेत्सुखम् ॥ १७ ॥ हिरण्यं वा सुवर्णं

वा रत्नानि विविधानि च । राज्यं वा त्रिषु लोकेषु एतन्नार्हति भाषितम् ॥ १८ ॥ एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवंगमः । प्रगृहीताञ्जलिर्हर्षात्सीतायाः प्रमुखे स्थितः ॥१९॥ भर्तुः प्रियहिते युक्ते भर्तुर्विजयकांक्षिणि । स्निग्धमेवंविधं वाक्यं त्वमेवार्हस्यनन्दिते ॥ २० ॥ अथोवाच पुनः सीतामसंभ्रान्तो विनीतवत् ॥ २१ ॥ इमास्तु खलु राक्षस्यो यदि त्वमनुमन्यसे । हन्तुमिच्छामि ता सर्वा याभिस्त्वं तर्जिता पुरा ॥२२॥ इत्युक्ता सा हनुमता कृपणा दीनवत्सला । हनुमन्तमुवाचेदं चिन्तयित्वा विमृश्य च ॥२३॥+राजसंश्रयवश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया । विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम ॥२४॥+भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्ताद्दुष्कृतेन च । मयैतत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥२५॥+प्राप्तव्यं तु दशायोगान्मयैतदिति निश्चितम् । दासीनां रावणस्याहं मर्षयामीह दुर्बला ॥

टीका—ऐसे आज्ञा दिया हुआ पवनपुत्र हनुमान् विभीषण से अनुज्ञा लेकर लङ्का में प्रविष्ट हुआ ॥१॥ तब उस से आज्ञा दिया हुआ, सीता का पहचाना हुआ हनुमान् वानर विनीतवत वृक्षवाटिका में प्रविष्ट हो, शृङ्गार से शून्य राक्षसियों से परिवारित सीता को देखता भया ॥ २, ३ ॥ महाबली हनुमान् को आया देखकर वह देवी चुप रही और देखकर और स्मरण करके बड़ी प्रसन्न हुई ॥ ४॥ उसके मुख को सौम्य देखकर वानरोत्तम हनुमान् राम का सारा वचन कहने लगा ॥ ५ ॥ हे सीता राम लक्ष्मण और सुग्रीव कुशली हैं, शत्रुओं के जीतनेवाले ने शत्रुओं को मारकर कृतकार्य होकर मुझे कुशल कहा है ॥६॥ विभीषण की सहायता से वानरों के और लक्ष्मण के साथ मिलकर हे देवि राम ने वीर्यवान् रावण को मारा है ॥७॥ तुझे प्रिय कहता हूं, हे देवि बढ़कर तेरी पूजा करता हूं, तेरे प्रभाव से हे धर्म के जाननेवाली राम ने यह युद्ध

में विजय पाया है,अब सन्ताप को त्यागकर स्वस्थ हो, रावण जो शत्रु था, वह मारा गया है और लङ्का वश में की गई है ॥ ८,९ ॥ तेरे वापिस जीतने में निश्चय किये हुए मैंने बिन निद्रा पाए महा सागर पर पुल बांधकर यह प्रतिज्ञा पूरी की है ॥१०॥ रावण के घर में रहती हुई तू अब मत घबराए, यह लङ्का का ऐश्वर्य अब विभीषण के अधीन किया गया है ॥ ११ ॥ सो विश्वस्त होकर तसल्ली कर,तू अपने घर में है, यह प्रसन्न हुआ (विभीषण) तेरे दर्शन को आरहा है ॥ १२ ॥ ऐसे कही हुई चन्द्रमुखी देवी सीता प्रहर्ष से रुकी हुई कुछ कह न सकी ॥ १३ ॥ तब वह वानरवर प्रति वचन न देती हुई सीता से बोला, हे देवि तू किस सोच में है, क्यों मेरे साथ नहीं बोलती है ॥ १४ ॥ धर्मपथ में स्थित सीता हनुमान् से ऐसे कही हुई परम प्रसन्न हुई(प्रेमकी) आंसुओं से गद्गद बाणी से बोली ॥ १५ ॥ यह प्रिय जो मेरे भर्त्ता के विजय से सम्बद्ध है, इसे सुनकर प्रहर्ष के वश हुई मैं थोड़ी देर निर्वाक्य हुई हूं ॥ १६ ॥ और न मैं सारी पृथिवी में इस प्रिय कहने के तुल्य वस्तु देखती हूं, जो तुझे देकर सुखी होउं ॥ ७ ॥ सोना वा भूषण वा विध रत्न वा तीनों लोक का राज्य भी इस कथन के योग्य नहीं ॥१८॥ सीता से ऐसे कहा हुआ वानर हाथ जोड़ कर सीता के सन्मुख खड़ा हुआ हर्ष से उत्तर देता भया ॥ १९ ॥ हे भर्ता के प्रिय हित में युक्त, हे भर्ता का प्रिय चाहनेवाली ऐसा स्नेह से भरा हुआ वाक हे अनिन्दिते तूही कहने योग्य है ॥ २० ॥ इतना कहकर असंभ्रान्त विनीतवत् फिर सीता से बोला ॥२२॥ यदि आप स्वीकार करें, तो इन राक्षसियों को जो तुझे झिडका करती थीं जरा ताडना करदूं ॥२२॥ ऐसे कही हुई कृपणा दीनों की प्यारी सोच विचारकर हनुमान् से यह बोली ॥२३॥ राजा

के आश्रय से उसके वश में पड़ी हुई दूसरे की आज्ञा से सब कुछ करती हुई पराधीनदासियों पर हे वानरोत्तम कौन क्रोधकरे ॥२४॥ भाग्य की विषमता से अपने पूर्वले किसी पाप से मैंने यह सब पाया है, क्योंकि अपना किया ही भोगा जाता है ॥२५॥ दशा के योग से मैंने यह पाना ही था, यह निश्चित है, सो मैं (जो पहले) दुर्बल (थी अब) रावण की दासियों को क्षमा करती हूं ॥ २६ ॥

मूल—आज्ञप्ता राक्षसेनेह राक्षस्यस्तर्जयन्ति माम्। हते तस्मिन्न कुर्वन्ति तर्जनं मारुतात्मज ॥२७॥+न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् । समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥२८॥ +पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा । कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥ २९ ॥ एवमुक्तस्तु हनुमान्सीतया वाक्यकोविदः । प्रत्युवाच ततः सीतां रामपत्नीमनिन्दिताम् ॥ ३० ॥ युक्ता रामस्य भवती धर्मपत्नी गुणान्विता । प्रतिसंदिश मां देवि गमिष्ये यत्र राघवः ॥ ३१ ॥ एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा । साब्रवीद्द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं भक्तवत्सलम् ॥ ३२ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान्मारुतात्मजः । हर्षयन्मैथिलीं वाक्यमुवाचेदं महामतिः ॥ ३३ ॥ पूर्णचन्द्रमुखं रामं द्रक्ष्यस्यद्य सलक्ष्मणम् । स्थितमित्रं हतामित्रं शचीवेन्द्रं सुरेश्वरम् ॥ ३४ ॥ तामेवमुक्त्वा भ्राजन्तीं सीतां साक्षादिव श्रियम्। आजगाम महातेजा हनूमान्यत्र राघवः ॥ ३५ ॥

टीका—राक्षस से आज्ञा दी हुई राक्षसियें मुझे झिड़कती थीं, अब राक्षस के मरने पर हे पवनपुत्र नहीं झिड़कती हैं ॥२७॥ दूसरे पापियों के पाप को दूसरा नहीं ले लेता अपना धर्म रखना चाहिये, चारित्र ही भलों का भूषण होता है ॥ २८ ॥ भले हों चाहे बुरे हों अथवा बध के योग्य भी हों, सबपर दया बर्तनी चाहिये, कोई ऐसा नहीं, जो कभी अपराधी न हो ॥२९॥ सीता से ऐसे कहा हुआ वाक्य-

निपुण हनुमान् प्रशस्त रामपत्नी सीता से बोला ॥ ३० ॥ आप ऐसे गुणों से युक्त राम की योग्य धर्मपत्नी हैं, हे देवि! मुझे सन्देश दे. जाऊंगा, जहां राम है, ॥ ३१ ॥ हनुमान् से ऐसे कही हुई जनकसुता सीता बोली, भक्तवत्सल भर्ता को देखना चाहती हूं ॥३२॥ उसके उस बचन को सुनकर महामति पवनपुत्र हनुमान् सीता को हर्षित करता हुआ यह वाक्य बोला ॥ ३३ ॥ पूर्णचन्द्र तुल्य मुखवाले, स्थित मित्रोंवाले और नष्ट हुए शत्रुओंवाले राम को लक्ष्मण समेत आज देखेगी, जैसे इन्द्राणी इन्द्र को ॥ ३४ ॥ साक्षात् लक्ष्मी की तरह चमकती हुई उसको ऐसा कहकर महातेजस्वी हनुमान् वहां आया जहां राम थे ॥ ४५ ॥

सर्ग ६२ (व० ११४) विभीषण का सीता को राम के पास लाना

मूल–तमुवाच महाप्राज्ञः सोऽभिवाद्य प्लवङ्गमः । रामं कमलपत्राक्षं वरं सर्वधनुष्मताम् ॥ १ ॥ यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां यः फलोदयः । तां देवीं शोकसंतप्तां द्रष्टुमर्हसि मैथिलीम् ॥ २ ॥ सा हि शोकसमाविष्टा बाष्पपर्याकुलेक्षणा । मैथिली विजयं श्रुत्वा द्रष्टुं त्वामभिकांक्षति ॥३॥ पूर्वकात्प्रत्ययाच्चाहमुक्तो विश्वस्तया तया । द्रष्टुमिच्छामि भर्तारमिति पर्याकुलेक्षणा ॥ ४ ॥ एवमुक्तो हनुमता रामो धर्मभृतांवरः । आगच्छत्सहसा ध्यानमीषद्बाष्पपरिप्लुतः ॥५॥ स दीर्घमभिनिःश्वस्य जगतीमवलोकयन् । उवाच मेघसंकाशं विभीषणमुपस्थितम् ॥६॥ दिव्याङ्गरागां वैदेहीं दिव्याभरणभूषिताम् । इह सीतां शिरःस्नातामुपस्थापय मा चिरम् ॥७॥ एवमुक्तस्तु रामेण त्वरमाणो विभीषणः । प्रविश्यान्तः पुरं सीतां स्त्रीभिः स्वाभि रचोदयत् । ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वोवाच विभीषणः ॥८॥ दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरण भूषिता । यानमारोह भद्रं ते भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥९॥ एवमुक्ता तु वैदेहि प्रत्युवाच विभीषणम् । अस्नात्वा

द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसेश्वर ॥ १ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः । यथाह रामो भर्ता ते तत्तथा कर्तुमर्हसि ॥११॥

टीका—वह महाप्राज्ञ वानर अभिवादन करके कमलपत्र तुल्य नेत्रों वाले सारे धनुषधारियों में श्रेष्ठ राम से बोला ॥ १ ॥ जिसके निमित्त यह सारा आरम्भ है, जो आप के उद्योगों का फल है, उस शोक संतप्त देवी मैथिली को आप देखने योग्य हैं ॥ २ ॥ वह शोक से भरी हुई आंसुओं से भरे हुए नेत्रों वाली मैथिली आपका विजय सुनकर आपको देखना चाहती है ॥ ३ ॥ पहले विश्वास से विश्वस्त होकर उसने मुझे आंसु भरकर कहा, भर्ता को देखना चाहती हूं ॥ ४ ॥ हनुमान् से ऐसे कहा हुआ धनुर्धारियों में श्रेष्ठ राम कुछ आंसु भरकर सहसा सोच में पड़ गया ॥ ५ ॥ वह लम्बा सांस भरकर पृथिवी की ओर देखकर पास स्थित मेघ सदृश विभीषण से बोला ॥ ६ ॥ दिव्य अंगराग लगाए हुए दिव्य भूषणों से भूषित सीता को सिर स्नान कराकर जल्दी यहां ला ॥ ७ ॥ राम से ऐसे कहा हुआ विभीषण जल्दी अन्तःपुर में प्रविष्ट हो अपनी स्त्रियों से सीता को प्रेरता भया और महाभागा सीता को देखकर उसने कहा ॥ ८ ॥ हे सीता दिव्य अङ्गराग लगा, दिव्य भूषणों से भूषित होकर यान पर चढ, तेरा भला हो भर्ता तुझे देखना चाहता है ॥ ९ ॥ ऐसे कही हुई सीता विभीषण को कहन लगी, हे राक्षसेश्वर विना न्हाए भर्ता को देखना चाहती हूं ॥ १० ॥ उसके वचन को सुनकर विभीषण ने कहा, जैसे तेरे भर्ता राम ने कहा है, वैसा तुझे करना चाहिये ॥ ११ ॥

मूल—तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली पतिदेवता । भर्तृभक्त्या वृता साध्वी तथेति प्रत्यभाषत ॥ १२ ॥ ततः सीतां शिरः स्नातां संयुक्तां प्रति कर्मणा । महार्हाभरणोपेतां महार्हाम्बरधारिणीम् ॥ १३ ॥ आरोप्य

शिबिकां सीतां राक्षसैर्वहनोचितैः। राक्षसैर्बहुभिर्गुप्तामाजहार वि-
भीषणः ॥ १४ ॥ तामागतामुपश्रुत्य रक्षोगृहचिरोषिताम्। रोषं
हर्षं च दैन्यं च राघवः प्राप शत्रुहा ॥ १५ ॥ ततो यानगतां सीतां
सविमर्शो विचारयन्। विभीषणमिदं वाक्यमहृष्टो राघवोऽब्रवीत्
॥ १६ ॥ राक्षसाधिपते सौम्य नित्यं मद्विजये रत। वैदेही सन्निकर्षं
मे क्षिप्रं समभिगच्छतु ॥ १७ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य
विभीषणः। तूर्णमुत्सारणं तत्र कारयामास धर्मवित् ॥ १८ ॥
कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः। उत्सारयन्तस्तान्योधान्स-
मन्तात्परिचक्रमुः ॥ १९ ॥ उत्सार्यमाणान्दृष्ट्वाथ जगत्यां जातसंभ्र-
मान्। दाक्षिण्यात्तदमर्षाच्च वारयामास राघवः ॥ २० ॥ किमर्थं
मामनादृत्य क्लिश्यतेऽयं त्वया जनः। निवर्तयैनमुद्वेगं जनोऽयं
स्वजनो मम ॥२१॥+न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारास्तिरस्क्रिया।
नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियः ॥ २२ ॥+व्यसनेषु न कृ-
च्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयम्वरे। न क्रतौ नो विवाहे वा दर्शनं दूष्यते
स्त्रियः ॥ २३ ॥ सैषा विपद्गता चैव कृच्छ्रेण च समन्विता। दर्शने
नास्ति दोषोऽस्या मत्समीपे विशेषतः ॥ २४ ॥ विसृज्य शिबिकां
तस्मात्पद्भ्यामेवापसर्पतु। समीपे मम वैदेहीं पश्यन्त्वेते वनौकसः
॥ २५ ॥ एवमुक्तस्तु रामेण सविमर्शो विभीषणः। रामस्योपान-
यत्सीतां सन्निकर्षं विनीतवत् ॥ २६ ॥ लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु
गात्रेषु मैथिली। विभीषणेनानुगता सीता भर्तारं साभ्यवर्तत ॥२७॥
विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता। उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्यं
सौम्यतरानना ॥ २८ ॥

टीका—उसके वचन को सुनकर पतिदेवता पतिव्रता सीता भर्ता की भक्ति से युक्त हुई "तथास्तु" कहती भई ॥१२॥ तब सिर न्हाई हुई समाधान युक्त बहुमूल्य वस्त्र धारण की हुई सीता को विभीषण

पालकी उठाने वाले बहुत राक्षसों से पालकी पर चढ़वाकर बहुत से राक्षसों से सुरक्षित को लाया ॥१३,१४॥राक्षस के घर में देर तक रहकर उसको आई सुनकर शत्रुओं के मारनेवाला राम रोष, हर्ष, और दीनता को प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ तब सीता के यान पर स्थित हुए ही सोच विचार कर न हर्षित हुए राम ने विभीषण को यह वाक्य कहा ॥ १६ ॥ हे राक्षसाधिपते हे मेरे विजय में रत सौम्य! सीता जल्दी मेरे पास आवे ॥ १८ ॥ राम के इस वचन को सुनकर मर्यादा का जानने वाला विभीषण जल्दी लोगों को हटाता भया ॥ १८ ॥ झर्झर ध्वनिवाली छड़ियें हाथ में लिये पगड़ियें पहने हुए कञ्चुकीजन उन योधों को हटाते हुए चारों ओर घूमने लगे ॥ १९ ॥ उनको हटाया जाता देखकर जिनमें घबराहट उत्पन्न होरही है, उदारभाव से और इस के न सहारने से राम ने उसे रोक दिया ॥ २० ॥ कि क्यों मुझे अनादर करके इन लोगों को तंग करते हो, इस उद्वेग को दूर करो, यह जन मेरे अपने जन हैं ॥ २१ ॥ न घर न वस्त्र न भित्ति (दीवार) स्त्रियों का परदा हैं, न ऐसे काम (लोगों को परे हटा देना आदि) परदा हैं, यह राजसत्कार है, स्त्री का परदा केवल उसका वृत्त है ॥२२॥ न विपत्ति में, न कष्ट में, न युद्ध में, न स्वयम्वर में, न यज्ञ में, न विवाह में स्त्री का दर्शन दूषित है ॥ २३ ॥ सो यह विपत्ति में है, और कष्ट से युक्त है, अतएव इसके देखने मे दोष नहीं है विशेषतः मेरे पास होने में ॥ २४ ॥ इसलिये पालकी को छोड़कर पैदल ही सीता मेरे पास आवे, और यह वानर देखें ॥ २५ ॥ राम से ऐसे कहा हुआ सोच में पड़ा हुआ विभीषण सीता को विनीतवत् राम के पास लाया ॥ २६ लज्जा से अपने अङ्गों में लीन होती हुई सीता विभीषण से अनुगत हुई भर्ता के पास आई ॥ २७ ॥ पति

जिसके लिये देवता है, वह सौम्यतर मुखवाली सीता विस्मय, हर्ष और स्नेह से पति के सौम्य मुख को देखती भई ॥ २८ ॥

सर्ग ६३ (वा० ११५) राम का सीता के स्वीकार से इनकार

मूल–तां तु पार्श्वे स्थितां प्रह्वां रामः संप्रेक्ष्य मैथिलीम् । हृदयान्तर्गतं भावं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥ एषासि निर्जिता भद्रे शत्रुं जित्वा रणाजिरे । पौरुषाद्यदनुष्ठेयं ममैतदुपपादितम् ॥ २ ॥ गतोऽस्म्यन्तममर्षस्य धर्षणा सम्प्रमार्जिता । अवमानश्च शत्रुश्च युगपन्निहतौ मया ॥ ३ ॥ अद्य मे पौरुषं दृष्टमद्य मे सफलः श्रमः । अद्य तीर्णप्रतिज्ञोऽहं प्रभवाम्यद्य चात्मनः ॥४॥ या त्वं विरहिता नीता चलचित्तेन रक्षसा । दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण मया जितः ॥५॥+संप्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति । कस्तस्य पौरुषेणार्थो महताप्यल्पचेतसः ॥ ६ ॥ लङ्घनं च समुद्रस्य लङ्कायाश्चापि मर्दनम् । सफलं तस्य च श्लाघ्यमद्य कर्म हनूमतः ॥ ७ ॥ युद्धे विक्रमतश्चैव हितं मन्त्रयतस्तथा । सुग्रीवस्य ससैन्यस्य सफलोऽद्य परिश्रमः ॥८॥ विभीषणस्य च तथा सफलोऽद्य परिश्रमः । विगुणं भ्रातरं त्यक्त्वा यो मां स्वयमुपस्थितः ॥ ९ ॥ इत्येवं वदतः श्रुत्वा सीता रामस्य तद्वचः । मृगीवोत्फुल्लनयना बभूवाश्रुपरिप्लुता ॥ १० ॥ पश्यतस्तां तु रामस्य समीपे हृदयप्रियाम् । जनवादभयाद्राज्ञो बभूव हृदयं द्विधा ॥ ११ ॥ सीतामुत्पलपत्राक्षीं नीलकुञ्चितमूर्धजाम् । अवदद्वै वरारोहां मध्ये वानररक्षसाम् ॥ १२ ॥ यत्कर्तव्यं मनुष्येण धर्षणां प्रतिमार्जता । तत्कृतं रावणं हत्वा मयेदं मानकांक्षिणा ॥ १३ ॥ निर्जिता जीवलोकस्य तपसा भावितात्मना । अगस्त्येन दुराधर्षा मुनिना दक्षिणेव दिक् ॥ १४ ॥ विदितश्चास्तु भद्रं ते योऽयं रणपरिश्रमः । सुतीर्णः सुहृदां वीर्यान्न त्वदर्थं मया कृतः ॥ १५ ॥ रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वतः । प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्गं

च परिमार्जिता ॥ १६ ॥ प्राप्तचारित्रसन्देहा मम प्रतिमुखे स्थिता । दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढ़ा ॥ १७ ॥ कः पुमांस्तु कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम् । तेजस्वी पुनरादद्यात्सुहृल्लोभेन चेतसा ॥ १८ ॥ रावणाङ्कपरिक्लिष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा । कथं त्वां पुनरादद्यां कुलं व्यपादिशन्महत् ॥ १९ ॥

टीका—अब पास स्थित उस विनीता सीता को देखकर राम हृदय के अन्दर के भाव कहने लगे॥१॥हे भद्रे! यह तू रण के मैदान में शत्रु को मारकर जीती गई है, पौरुष से जो करने योग्य था, वह मैंने कर दिया है ॥ २ ॥ अमर्ष के अन्त पर पहुंच गया हूं, धर्षणा (हतक) मिटा दी है, अपमान और शत्रु दोनों एक साथ गिरा दिए है ॥ ३ ॥ आज मेरा पौरुष प्रतीत हुआ है, आज मेरा श्रम सफल हुआ है, आज मैं प्रतिज्ञा को पूर्ण करके अपने आपका मालिक हुआ हूं ॥ ४ ॥ जो तू मुझसे रहित हुई चलचित्त राक्षस से हरी गई, यह दैवकृत दोष मैंने मनुष्य के पराक्रम से जीत लिया है ॥५॥ प्राप्त हुए अपमान को जो अपने तेज से दूर नहीं करता है, उस लघु चित्त वाले के बड़े भी पौरुष से क्या फल ॥ ६ ॥ समुद्र का लंघना और लङ्का का मर्दन यह हनुमान् का सहरानीय कर्म आज सफल हुआ है ॥ ७ ॥ युद्ध में विक्रम दिखलाते हुए और हित सोचते हुए सुग्रीव का आज परिश्रम सफल हुआ है ॥ ८ ॥ तथा विभीषण का परिश्रम आज सफल हुआ है जो विगुण भाई को त्यागकर स्वयं मुझे उपस्थित हुआ ॥९॥ इस प्रकार कहते हुए राम के वचन को सुनकर मृगी की तरह खिले नेत्रोंवाली (सीता अपने)आंसुओं से भीग गई ॥१०॥ उस हृदय की प्यारी को अपने पास देखकर लोकनिन्दा के भय से राजा का हृदय संदिग्ध हुआ ॥ ११ ॥ कमल तुल्य नेत्रोंवाली काले कुंचे हुए बालोंवाली

वरारोहा सीता को वानर और राक्षसों के मध्य में कहने लगा ॥१२॥ धर्षणा (अपमान)को दूर करते हुए मनुष्य का जो काम होना चाहिये वह मान की रक्षा करते हुए मैंने रावण को मारकर कर दिया है ॥ १३ ॥ सब लोगों की पहुंच से परे दक्षिण दिशा जैसे शुद्धात्मा अगस्त्य मुनिने तप से जीती थी वैसे तू मुझसे जीती गई है ॥१४॥ तुझे विदित हो, तेरा भला हो कि जो यह रण का परिश्रम सुहृदों की शक्ति से मैंने पार किया है, यह तेरे अर्थ नहीं ॥ १५ ॥ किन्तु अपने वृत्त और अपवाद की रक्षा करते हुए और प्रख्यात अपने वंश की नीचता को दूर करते हुए मैंने किया है ॥ १६ ॥ जिसके चरित्र में सन्देह (का अवसर) हुआ है वह मेरे सामने स्थित हुई नेत्र रोगी को दीपक की तरह तू निःसन्देह प्रतिकूल है ॥ १७ ॥ कौन कुलीन तेजस्वी पुरुष परगृह में रही स्त्री को सुहृद के लोभी चित्त से फिर ग्रहण करे ॥ १८ ॥ रावण के अङ्क से तंग की हुई और दुष्ट दृष्टि से देखी हुई तुझको अपना कुल बड़ा कहता हुआ कैसे फिर ग्रहण करूं ॥ १९ ॥

सर्ग ६४ (व० ११६) सीता का परीक्षार्थ अग्नि में प्रवेश

मूल–एवमुक्ता तु वैदेही परुषं रोमहर्षणम् । राघवेण सरोषेण श्रुत्वा प्रव्यथिताभवत् ॥ १ ॥ प्रविशन्तीव गात्राणि स्वानि सा जनकात्मजा । वाक्शरैस्तैः सशल्येव भृशमश्रूण्यवर्तयत् ॥ २ ॥ ततो बाष्पपरिक्लिन्नं प्रमार्जन्ती स्वमाननम् । शनैर्गद्गदया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥३॥ किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम् । रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ॥ ४ ॥ न तथास्मि महाबाहो यथा मामवगच्छसि । प्रत्ययं गच्छ मे स्वेन चारित्रेणैव ते शपे ॥ ५ ॥ यदहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो । कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति ॥ ६ ॥ मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि

वर्तते। पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरा ॥७॥+सह संवृद्ध-भावेन संसर्गेण च मानद। यदि तेऽहं न विज्ञाता हता तेनास्मि शाश्वतम् ॥ ८ ॥+न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये मम निपीडितः। मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम् ॥ ९ ॥ इति ब्रुवन्ती रुदती बाष्पगद्गदभाषिणी। उवाच लक्ष्मणं सीता दीनं ध्यानपराणम् ॥ १० ॥ चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम्। मिथ्यापवादोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥११॥ अप्रीतेन गुणैर्भर्त्रा त्यक्ताया जनसंसदि। या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥ १२ ॥ एवमुक्तस्तु वैदेह्या लक्ष्मणः परवीरहा। अमर्षवशमापन्नो राघवं समुदैक्षत ॥१३॥ स विज्ञाय मनश्छन्दं रामस्याकारसूचितम्। चितां चकार सौमित्रिर्मते रामस्य वीर्यवान् ॥ १४ ॥ नहि रामं तदा कश्चित्कालान्तकयमोपमम्। अनुनेतुमथो वक्तुं द्रष्टुं वाप्यशकत्सुहृत् ॥ १५ ॥ अधोमुखं स्थितं रामं ततः कृत्वा प्रदक्षिणम्। उपावर्तत वैदेही दीप्यमानं हुताशनम् ॥ १६ ॥ प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली। बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः॥१७॥ +यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्। तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥ १८ ॥+ यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः। तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥ १९ ॥ एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम्। विवेश ज्वलनं दीप्तं निःशङ्केनान्तरात्मना ॥ २० ॥ जनश्च सुमहांस्तत्र बालवृद्धसमाकुलः। ददर्श मैथिलीं दीप्तां प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥ २१ ॥ सा तप्तनवहेमाभा तप्तकाञ्चनभूषणा। पपात ज्वलनं दीप्तं सर्वलोकस्य सन्निधौ ॥ २२ ॥ ददृशुस्तां महाभागां प्रविशन्तीं हुताशनम्। ऋषयो देवगन्धर्वा यज्ञे पूर्णाहुतीमिव ॥२३॥ प्रचुक्रुशुः स्त्रियः सर्वास्तां दृष्ट्वा हव्यवाहने। पतन्तीं संस्कृतां मन्त्रैर्वसोर्धारामिवाध्वरे ॥ २४ ॥

तस्यामग्नौ विशन्त्यां तु हाहेति विपुलः स्वनः। रक्षसां च वानराणां च संबभूवाद्भुतोपमः ॥ २९ ॥

टीका—इस प्रकार क्रुद्ध हुए राम से रोंगटे खड़े करनेवाला कठोर वाक्य सुनकर सीता बहुत दुःखित हुई ॥ १ ॥ (मारे लज्जा के) अपने अङ्गों में मानों वह लीन होती हुई जनकसुता उन वाणीरूप बाणों से शल्यवाली की तरह बहुत २ आंसुएं बहाती भई ॥ २ ॥ तब आंसुओं से भीगे हुए अपने मुख को पोंछती हुई गद्गदवाणी से धीरे२ भर्ता से यह बोली॥३॥कैसे आप मुझे कानों के लिये कठोर ऐसा असदृश रूखा वाक्य सुनाते हैं, जैसे कोई प्राकृत किसी प्राकृता स्त्री को ॥४॥ हे महाबाहो ! मैं वैसी नहीं हूं, जैसा मुझे आप जानते हैं, मेरे ऊपर विश्वास कर, अपने चरित्र से ही तेरे सामने शपथ करती हूं ॥ ५ ॥ बेबस हुई जो उसके अङ्गस्पर्श को प्राप्त हुई हूं, हे प्रभो इस में मेरी इच्छा का होना नहीं, इस में दैव का अपराध है ॥ ६ ॥ मेरे अधीन जो मेरा हृदय है वह तुझ में वर्तता है, पराधीन अङ्गों में असमर्थ हुई मैं क्या करूं ॥ ७ ॥ एक साथ दोनों का परस्पर प्रेम बढ़ने से और इकट्ठा रहने से हे मान के देनेवाले यदि तुझे ज्ञात नहीं हुई, तो मैं सदा के लिए मारी गई ॥८॥बालकपन में पकड़े हुए मेरे हाथ को भी आपने प्रमाण नहीं किया, मेरी भक्ति और शील सब कुछ पीछे कर दिया॥९॥ ऐसे कहती हुई रोती हुई आंसुओं से गद्गद बोलती हुई सीता ध्यानपरायण दीन लक्ष्मण से बोली ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण मेरी चिता बना जो इस विपद का औषध है, मिथ्या अपवाद से धब्बा लगाई हुई मैं जीना नहीं चाहती ॥ ११ ॥ गुणों से अप्रसन्न हुए भर्ता से जनसभा में त्यागी हुई की जो उचित गति है, मैं अग्नि में प्रवेश करूंगी ॥ १२ ॥ सीता से ऐसे कहा हुआ शत्रु वीरों का

मारनेवाला लक्ष्मण क्रोधवश हुआ राम की ओर देखता भया ॥ १३ ॥ वह आकार से जितलाए हुए राम के अन्तरीय भाव को जानकर वीर्यवान् लक्ष्मण राम की सम्मति में उसकी चिता बनाता भया ॥ १४ ॥ उस समय काल मृत्यु यम के तुल्य राम को कोई सुहृद् न तमल्ली दे सका, न कह सका, न देख सका ॥ १५ ॥ तब नीचे मुख करके स्थित राम की प्रदक्षिणा करके सीता प्रदीप्यमान अग्नि के समीप आई ॥ १६ ॥ देवताओं को और ब्राह्मणों को प्रणाम करके सीता हाथ जोड़कर अग्नि के समीप यह बोली ॥ १७ ॥ जैसे मेरा हृदय राम से कभी नहीं फिसला है, वैसे लोक का साक्षी अग्नि मुझे सब ओर से पवित्र कर दिखलाए ॥ १८ ॥ यदि शुद्ध चारित्रवाली मुझको राम दुष्ट जानते हैं, तो लोक का साक्षी अग्नि मुझे सब ओर से पवित्र करे ॥ १९ ॥ ऐसा कहकर वैदेही अग्नि की परिक्रमा करके जलती हुई अग्नि में निःशङ्क मन से प्रविष्ट हुई ॥ २० ॥ वहां बालवृद्ध से युक्त बहुत बड़े जनसमुदाय ने सीता को जलते हुए अग्नि में प्रवेश करते हुए देखा ॥ २१ ॥ वह तपे हुए नए सोने के तुल्य तपे हुए सोने के भूषणोंवाली सब लोगों के सामने जलती हुई अग्नि में गिरी ॥ २२ ॥ यज्ञ में पूर्णाहुति की तरह अग्नि में प्रवेश करती हुई उसको ऋषि देव और गन्धर्वों ने देखा ॥ २३ ॥ सब स्त्रियें यज्ञ में मन्त्रों से संस्कृतवसोर्धारा (लंबी घृत धारा) की तरह अग्नि में गिरती हुई को देख कर चिल्लाई ॥२४॥ उस के अग्नि में प्रवेश करते हुए राक्षसों और वानरों की विपुल अद्भुत सी ध्वनि हुई २५

सर्ग ६९ (व० ११८) सीता की अग्नि में शुद्धि

मूल—+अक्लिष्टमाल्याभरणां तथारूपामनिन्दिताम् । ददौ रामाय वैदेहीमङ्के कृत्वा विभावसुः ॥ १ ॥ अब्रवीत्तु तदा रामं साक्षी

लोकस्य पावकः । एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते ॥ २ ॥ नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा । सुवृत्ता वृत्तशौटीर्य न त्वामसचरच्छुभा ॥३॥ प्रलोभ्यमाना विविधं तर्ज्यमाना च मैथिली । नाचिन्तयत तद्रक्षस्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥४॥ विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व मैथिलीम् । न किंचिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते ॥५॥ ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वैवं वदतां वरः । दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा हर्षव्याकुललोचनः ॥६॥ एवमुक्तो महातेजा धृतिमानुरुविक्रमः । उवाच त्रिदशश्रेष्ठं रामो धर्मभृतां वरः ॥ ७ ॥ अवश्यं चापि लोकेषु सीता पावनमर्हति । दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तः पुरे शुभा ॥ ८ ॥ बालिशो बत कामात्मा रामो दशरथात्मजः । इति वक्ष्यति मां लोको जानकीमविशोध्य हि ॥ ९ ॥+अनन्यहृदयां सीतां मच्चित्तपरिरक्षिणीम् । अहमप्यनुगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥१०॥ इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा । रावणो नातिवर्तेत वेलामिव महोदधिः ॥ ११ ॥ न च शक्तः सदुष्टात्मा मनसापि हि मैथिलीम् । प्रधर्षयितुमप्राप्यां दीप्तामग्निशिखामिव ॥१२॥+नेयमर्हति वैक्लव्यं रावणान्तःपुरे सती । अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा ॥१३॥+विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा । न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा ॥१४॥ इत्येवमुक्त्वा विजयी महाबलःप्रशस्यमानः स्वकृतेन कर्मणा । समेत्य रामः प्रियया महायशा सुखं सुखार्होऽनुबभूव राघवः ॥१५॥

टीका—उसी समय उस चिता को ठंडा करके ज्यों की त्यों उस अनिन्दता वैदेही को गोद में लेकर अग्नि ने राम के समर्पण किया ॥१॥ और वह लोक साक्षी अग्नि राम से बोला,हे राम यह तेरी वैदेही है, इसमें पाप नहीं है ॥ २ ॥ यह अच्छे आचरणवाली भली न बाणी से, न मन से, न बुद्धि से, न नेत्र से वृत्ताभिमानी तुझको उलांघी

है ॥ ३ ॥ भान्ति २ के प्रलोभन दी हुई और धमकियें दी हुई मैथिली ने तुझ में लगे अन्तरात्मा से उस राक्षस की परवाह नहीं की ॥ ४ ॥ शुद्ध भावनावाली निष्पाप मैथिली को स्वीकारकर, इसे कुछ नहीं कहना मैं तुझे आज्ञा देता हूं * ॥ ५ ॥ तब यह सुनकर कहनेवालों में श्रेष्ठ धर्मात्मा राम प्रसन्न मन हुआ हर्ष से व्याकुल नेत्रोंवाला थोड़ी देर ध्यान करता भया ॥ ६ ॥ ऐसे कहा हुआ महातेजस्वी धैर्यवाला बड़े पराक्रमवाला धर्मधारियों में श्रेष्ठ राम देवश्रेष्ठ (अग्नि) से बोला ॥ ७ ॥ अवश्य सीता लोक में शोधन के योग्य थी, क्योंकि यह भली रावण के अन्तःपुर में दीर्घकाल रही है ॥८॥ क्योंकि बिन शोधे यदि मैं जानकी को स्वीकार करता, तो मुझ लोक कहता, दशरथसुत राम शोक ! कामाधीन मूर्ख है ॥९॥ मैं भी जनकसुता को न दूसरे में हृदय वाली मुझ में चित्त द्वारा (सब दोषों से) अपने आपकी रक्षक जानता हूं ॥ १० ॥ इस विशाल नेत्रोंवाली को भी जो अपने तेज से रक्षित है रावण उलांघ नहीं सक्ता था, जैसे महासागर वेला को ॥ ११ ॥ प्रदीप्त अग्नि शिखा की तरह धर्षण करने को अशक्य मैथिली को वह दुष्टात्मा मन से भी दबा नहीं सक्ता ॥ १२ ॥ यह सती रावण के अन्तःपुर में घबराने योग्य नहीं है, सूर्य की प्रभा की तरह सीता मुझसे भिन्न नहीं है ॥ १३ ॥ तीनों लोक में शुद्ध जनकसुता मैथिली को मैं त्याग नहीं सक्ता, जैसे जितेन्द्रिय पुरुष कीर्त्ति को ॥१४॥ ऐसा कहकर विजयी महाबली महायशस्वी सुख के योग्य राम अपने कर्म से प्रशंसा किया जाता हुआ प्रिया से सङ्गत हुआ सुख अनुभव करता भया ॥ १५ ॥

सर्ग ९६ (व० १२१) राम का अयोध्या जाने का अनुज्ञा मांगना

मूल–तां रात्रिमुषितं रामं सुखोदितमरिन्दमम् । अब्रवीत्प्राञ्जलि-

---

* यह अग्नि का कहना अलङ्कार से है, अग्नि में इस प्रकार की शुद्धि पर देखो बालकाण्ड पृष्ठ १९ की टिप्पनी ॥

वाक्यं जयं पृष्ठा विभीषणः ॥१॥ +स्नानानि चाङ्गरागाणि वस्त्रा-
ण्याभरणानि च। चन्दनानि च माल्यानि दिव्यानि विविधानि च
॥ २ ॥ अलंकारविदश्चैता नार्यः पद्मनिभेक्षणाः। उपस्थितास्त्वां
विधिवत्स्नापयिष्यन्ति राघव ॥३॥ एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच
विभीषणम्। हरीन्सुग्रीवमुख्यांस्त्वं स्नानेनोपनिमन्त्रय ॥ ४ ॥ स
तु ताम्यति धर्मात्मा मम हेतोः सुखोचितः। सुकुमारो महाबाहुर्भरतः
सत्यसंश्रयः ॥ ५ ॥ तं विना कैकेयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम्। न मे
स्नानं बहुमतं वस्त्राण्याभरणानि च ॥६॥ एतत्पश्य यथाक्षिप्रं प्रति-
गच्छाम तां पुरीम्। अयोध्यां गच्छतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः ॥७॥
एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः। अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि
तां पुरीं पार्थिवात्मज ॥८॥ पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसन्नि-
भम्। मम भ्रातुः कुबेरस्य रावणेन बलीयसा ॥९॥ हृतं निर्जित्य
संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम्। त्वदर्थं पालितं चेदं तिष्ठत्यतुलविक्रम
॥ १० ॥ तदिदं मेघसंकाशं विमानमिह तिष्ठति। येन यास्यसि
यानेन त्वमयोध्यां गतज्वरः ॥११॥ अहं ते यद्यनुग्राह्यो यदि स्मरसि
मे गुणान्। वस तावदिह प्राज्ञ यद्यस्ति मयि सौहृदम् ॥ १२ ॥
प्रीतियुक्तस्य विहितां ससैन्यः ससुहृद्गणः। सत्क्रियां राम मे ता-
वद्गृहाण त्वं मयोद्यताम् ॥१३॥ एवमुक्तस्ततो रामः प्रत्युवाच
विभीषणम्। रक्षसां वानराणां च सर्वेषामेव शृण्वताम् ॥ १४ ॥
पूजितोऽस्मि त्वया वीर साचिव्येन परेण च। सर्वात्मना च चेष्टाभिः
सौहार्देन परेण च ॥ १५ ॥ न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः ॥१६॥ मां निवर्तयितुं योऽसौ
चित्रकूटमुपागतः। शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया ॥१७॥
उपस्थापय मे शीघ्रं विमानं राक्षसेश्वर। कृतकार्यस्य मे वासः कथं
स्यादिह सम्मतः ॥ १८ ॥ एवमुक्तस्तु रामेण राक्षसेन्द्रो विभीषणः।
विमानं सूर्यसंकाशमाजुहाव त्वरान्वितः ॥१९॥

टीका—वह रात रहकर सुख से जागे शत्रुओं के दबानेवाले राम को विभीषण जयदेव कहकर हाथ जोड़कर यह वाक्य बोला॥१॥ स्नान के साधन (तैल आदि) अङ्गराग वस्त्र भूषण चन्दन और विविध दिव्य मालाएं ॥ २ ॥ और अलंकार के जाननेवाली पद्म तुल्य नेत्रोंवाली यह स्त्रियें उपस्थित हुई हे राघव आपको विधिवत् स्नान कराएंगी ॥ ३ ॥ ऐसे कहा हुआ राम विभीषण को उत्तर देता भया, सुग्रीव आदि वानरों को तू स्नान का निमन्त्रण दे॥४॥ मेरे हेतु तो वह सुखों के योग्य सुकुमार महाबाहु सच्ची प्रतिज्ञावाला धर्मात्मा भरत दुःखित होरहा है ॥ ५ ॥ उस कैकेयीपुत्र भरत के विना मुझे स्नान वस्त्र और भूषण बहुमत नहीं है ॥६॥ यह देख जिसतरह अब जल्दी यहां से अयोध्यापुरी को जाएं, जाने वाले को यह मार्ग बड़ा दुर्गम है ॥ ७ ॥ ऐसे कहा हुआ विभीषण राम से बोला, एक दिन में हे राजपुत्र! तुझे अयोध्या में पहुंचाऊंगा ॥ ८ ॥ तेरा भला हो, सूर्य तुल्य पुष्पक नाम विमान मेरे भाई कुबेर से जो बलवान् रावण ने ॥९॥ संग्राम में जीतकर छीना था जो इच्छा से चलनेवाला दिव्य उत्तम है, हे अतुल विक्रमवाले यह तेरे लिये तय्यार खड़ा है ॥ १० ॥ सो यह मेघ तुल्य विमान यहां स्थित है, जिस यान से तू विना क्लेश के अयोध्यापुरी को जाएगा ॥ ११ ॥ पर मैं यदि आपका अनुग्राह्य हूं यदि मेरे गुणों को आप स्मरण करते हैं, यदि मुझ में सौहार्द है, तो हे प्राज्ञ यहां रहिये ॥ १२ ॥ प्रीतियुक्त मुझसे किये मेरे इस सत्कार को हे राम सेना के और सुहृद्गण के साथ स्वीकार कीजिये ॥ १३ ॥ ऐसे कहा हुआ राम विभीषण को सब राक्षसों और वानरों के सुनते हुए उत्तर देता भया ॥ १४ ॥ हे वीर तेरे परम मन्त्रित्व से और सर्वात्मा से जो तूने युद्ध में काम किये हैं उनसे और परम

सौहार्द से मैं आपसे पूजा गया हूं ॥ १५ ॥ हे राक्षसेश्वर मैं तेरे इस वचन को न मानूं ऐसा न होता, किन्तु भाई भरत को देखने के के लिये मेरा मन जल्दी कराता है ॥ १६ ॥ जो मुझे लौटाने के लिये चित्रकूट आया, और सिर से याचना करते हुए जिसके वचन को मैंने नहीं किया ॥ १७ ॥ सो हे राक्षसेन्द्र शीघ्र मेरे लिए विमान उपस्थित कर, कृतकार्य का मेरा यहां रहना कैसे संमत होसक्ता है ॥ १८ ॥ राम से ऐसे कहे हुए राक्षसेन्द्र विभीषण ने जल्दी सूर्य तुल्य विमान मंगवाया ॥ १९ ॥

सर्ग ६७ (स० १२२) राम का सीता लक्ष्मण और दूसरे साथियों समेत पुष्पक पर चढना ॥

मूल—उपस्थितं तु तं कृत्वा पुष्पकं पुष्पभूषितम् । अविदूरे स्थितो राममित्युवाच विभीषणः ॥ १ ॥ तमब्रवीन्महातेजा इदं स्नेहपुरस्कृतम् ॥ २ ॥ कृतप्रयत्नकर्माणः सर्व एव वनौकसः । रत्नैरर्थैश्च विविधैः संपूज्यन्तां विभीषण ॥ ३ ॥ सहामीभिस्त्वया लङ्का निर्जिता राक्षसेश्वर । हृष्टैः प्राणभयं त्यक्त्वा संग्रामेष्वनिवर्तिभिः ॥४॥ एवमुक्तस्तु रामेण वानरांस्तान्विभीषणः । रत्नार्थसंविभागेन सर्वानेवाभ्यपूजयत् ॥५॥ ततस्तान्पूजितान्दृष्ट्वा रत्नार्थैर्हरियूथपान् । आरुरोह तदा रामस्तद्विमानमनुत्तमम् ॥ ६ ॥ अंकेनादाय वैदेहीं लज्जमानां मनस्विनीम् । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता ॥७॥ अब्रवीत्स विमानस्थः पूजयन्सर्ववानरान् । सुग्रीवं च महावीर्यं काकुत्स्थः सविभीषणम् ॥८॥ मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरर्षभाः । अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं प्रतिगच्छत ॥ ९ ॥ यत्तु कार्यं वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च । कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवताऽधर्मभीरुणा ॥ १० ॥ किष्किन्धां प्रति याह्याशु स्वसैन्येनाभिसंवृतः । स्वराज्ये वस लंकायां मया दत्ते विभीषण ॥ ११ ॥ अयोध्यां प्रति,यास्याभि

राजधानी पितुर्मम । अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि सर्वानामन्त्रयामि वः
॥ १२ ॥ एवमुक्तस्तु रामेण हरीन्द्रा हरयस्तथा । ऊचुः प्राञ्जलयः
सर्वे राक्षसश्च विभीषणः ॥ १३ ॥ अयोध्यां गन्तुमिच्छामः सर्वा-
न्नयतु नो भवान् । मुद्युक्ता विचरिष्यामो वनान्युपवनानि च
॥ १४ ॥ दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्हं कौसल्यामभिवाद्य च । आचिरादा-
गमिष्यामः स्वगृहान्नृपसत्तम ॥ १५ ॥ एवमुक्तस्तु धर्मात्मा वानरैः
सविभीषणैः । अब्रवीद्वानरान्रामः ससुग्रीवविभीषणान् ॥ १६ ॥
प्रियात्प्रियतरं लब्धं यदहं ससुहृज्जनः । सर्वैर्भवद्भिः सहितः प्रीतिं
लप्स्ये पुरीं गतः ॥ १७ ॥ क्षिप्रमारोह सुग्रीव विमानं सह वानरैः ।
त्वमप्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्र विभिषण ॥ १८ ॥ ततः स पुष्पकं
दिव्यं सुग्रीवः सहवानरैः । आरुरोह मुदा युक्तः सामात्यश्च विभीषणः
॥ १९ ॥ तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौवेरंपरमासनम् । राघवेणाभ्यनुज्ञात-
मुत्पपात विहायसम् ॥ २० ॥ खगतेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्व-
ता । प्रहृष्टश्च प्रतीतश्च बभौ रामः कुबेरवत् ॥ २१ ॥

टीका—पुष्पों से भूषित उस पुष्पक को उपस्थित करके दोनों हाथ जोड़कर विनीत राक्षसेश्वर जल्दी करता हुआ राम से बोला, क्या करूं । तब उसको महातेजस्वी (राम) ने स्नेह पूर्वक उत्तर दिया ॥ १,२ ॥ जिन्होंने बड़े प्रयत्न के साथ युद्ध किया है, इन सारे वानरों को हे विभीषण विविध रत्नों से और धनों से पूज ॥ ३ ॥ यह जो प्राणों का भय त्यागकर युद्धोत्साह वाले संग्रामों में न लौटने वाले हैं इनके साथ हे राक्षसेश्वर तूने लंका जीती है ॥ ४ ॥ राम से ऐसे कहा हुआ विभीषण उन सभी वानरों को पूजता भया ॥५॥ तब रत्नों से और धनों से उन वानरसेनापतियों को पूजित देखकर राम उस अत्युत्तम विमान पर चढ़ा ॥ ६ ॥ लजाती हुई मनस्विनी सीता को अंक में लेकर और पराक्रमी

धनुषधारी लक्ष्मण भाई के साथ (चढ़ा) ॥ ७ ॥ विमान पर स्थित हुआ राम सारे वानरों से पूजता हुआ महावीर्य सुग्रीव और विभीषण से बोला ॥ ८ ॥ हे वानरश्रेष्ठो ! आपने यह मित्रकार्य किया है मुझ से अनुज्ञा दिये हुए आप सब यथेष्ट जाइए ॥ ९ ॥ जो एक स्निग्ध हितो मित्र का काम है, वह हे सुग्रीव ! तूने धर्म के भय से पूर्ण किया है ॥ १० ॥ सो अब तू अपनी सेना से युक्त जल्दी किष्किन्धा को जा, और तू हे विभीषण मुझसे दिये अपने राज्य में लंका में बस ॥ ११ ॥ मैं अपने पिताकी राजधानी अयोध्या को लौटूंगा, आपसे अनुज्ञा चाहता हूं, आप सब से पूछता हूं ॥१२॥ राम से ऐसे कहे हुए वह सब वानर और वानरपति और राक्षस विभीषण हाथ जोड़कर बोले ॥ १३ ॥ हम अयोध्या को जाना चाहते हैं, आप हम सबको लेचलें, आनन्द से बन उपवनों में विचरेंगे ॥ १४ ॥ और आपको अभिषेक से भीगा हुआ देखकर और माता कौसल्या को अभिवादन करके हे नृपवर जल्दी अपने घरों को जाएंगे ॥१५॥ विभीषण से और वानरों से ऐसे कहा हुआ वह धर्मात्मा राम सुग्रीव और विभीषण से और सारे वानरों से मुस्करा करके बोला ॥ १६ ॥ यह एक प्रिय से दूसरा अधिक प्रिय मुझे मिला है, जो मैं सुहृदजनों (भरत आदि) के साथ आप सब के सहित पुरी में पहुंचकर प्रीति को प्राप्त हूंगा ॥ १७ ॥ हे सुग्रीव जल्दी वानरों सहित विमान पर आरूढ़ हो, और हे राक्षसेन्द्र विभीषण तू भी मन्त्रियों सहित आरूढ़ हो ॥ १८ ॥ तब आनन्द युक्त हुआ सुग्रीव वानरों सहित और विभीषण मन्त्रियों सहित उस दिव्य पुष्पक पर आरूढ़ हुआ ॥ १९ ॥ उन सब के आरूढ़ होजाने पर वह कुबेर का उत्तम आसन राम से अनुज्ञा दिया हुआ आकाश की ओर उड़ा ॥२०॥

अकाश में चलते हुए चमकते हुए उस हंस युक्त (मुख में हंसों की आकृतिवाले) विमान पर प्रसन्न वदन और प्रसन्न चित्त राम कुबेर तुल्य सोहता भया ॥२१॥

सर्ग ६८ (व० १२३) राम का विमान पर से सीता को मार्ग के दृश्य दिखलाना

मूल—पातयित्वा ततश्चक्षुः सर्वतो रघुनन्दनः । अब्रवीन्मैथिलीं सीतां रामः शशिनिभाननाम् ॥ १ ॥ कैलासशिखराकारे त्रिकूटशिखरे स्थिताम् । लङ्कामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा॥२॥ एतदायोधनं पश्य मांसशोणितकर्दमम् । हरीणां राक्षसानां च सीते विशसनं महत् ॥ ३ ॥ एष दत्तवरः शेते प्रमाथी राक्षसेश्वरः । कुम्भकर्णोऽथ निहतः प्रहस्तश्च निशाचरः ॥ ४ ॥ धूम्राक्षश्चात्र निहतो वानरेण हनूमता । लक्ष्मणेनेन्द्रजिच्चात्र रावणिर्निहतो रणे ॥ ५ ॥ एतत्तु दृश्यते तीर्थं समुद्रस्य वरानने । यत्र सागरमुत्तीर्य तां रात्रिमुषिता वयम् ॥ ६ ॥ एष सेतुर्मया बद्धः सागरे लवणार्णवे । तव हेतोर्विशालाक्षि नलसेतुः सुदुष्करः ॥ ७ ॥ पश्य सागरमक्षोभ्यं वैदेहि वरुणालयम् । अपारमिव गर्जन्तं शङ्खशुक्तिसमाकुलम् ॥ ८ ॥ हिरण्यनाभं शैलेन्द्रं काञ्चनं पश्य मैथिलि । एतत्कुक्षौ समुद्रस्य स्कन्धावारनिवेशनम् । ९ । अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः । एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ॥१०॥ सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येनच पूजितम् । अत्रराक्षसराजोऽयमाजगाम विभीषणः ॥११ एषा सा दृश्यते सीते किष्किन्धा चित्रकानना । सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र बाली मया हतः ॥ १२ ॥ अथ दृष्ट्वा पुरीं सीतां किष्किन्धां बालिपालिताम् । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रामं प्रणयसाध्वसा ॥१३॥ सुग्रीवप्रियभार्याभिस्ताराप्रमुखतो नृप । गन्तुमिच्छे सहायोध्यां राजधानीं त्वया सह ॥ १४ ॥

एवमुक्तोऽथ वैदेह्या प्राप्य संस्थाप्य राघवः। विमानं प्रेक्ष्य सुग्रीवं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १५ ॥ स्त्रीभिः परिवृताः सर्वे ह्ययोध्यां यान्तु सीतया। प्रविश्यान्तः पुरं शीघ्रं तारामुद्वीक्ष्य सोऽब्रवीत् ॥ १६ ॥ तारया चाभ्यनुज्ञाता सर्वा वानरयोषितः। अध्यारोहन्विमानं तत्सीतादर्शनकांक्षया ॥ १७ ॥ ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं विमानं प्रेक्ष्य राघवः। ऋष्यमूकसमीपे तु वैदेहीं पुनरब्रवीत् ॥ १८ ॥

टीका—तब रघुकुलनन्दन राम सब ओर दृष्टि डालकर चन्द्र तुल्य मुखवाली मैथिलि सीता से बोले ॥ १ ॥ हे वैदेहि! कैलास शिखर के तुल्य इस त्रिकूट शिखर पर स्थित विश्वकर्मा से निर्मित लङ्का को देख ॥ २ ॥ इस युद्ध स्थान को देख जहां वानरों का और राक्षसों का बड़ा बध हुआ और मांस और लहू का कीचड़ बहा ॥ ३ ॥ यहां वह तंग करनेवाला राक्षसपति सोया है, यहां कुम्भकर्ण और प्रहस्त राक्षस मरा है ॥ ४ ॥ यहां हनुमान् वानर ने धूम्राक्ष को मारा है, यहां लक्ष्मण ने रण में रावण के पुत्र इन्द्रजित् को मारा है ॥५॥ हे सुमुखि यह समुद्र का वह घाट दीखता है जहां हम समुद्र से पार उतरकर रात रहे थे ॥ ६ ॥ यह खारी समुद्र पर पुल बंधवाया है, हे विशालाक्षि जो बड़ा दुष्कर नलसेतु है ॥ ७ ॥ हे वैदेहि! वरुण के घर इस अक्षोभ्य समुद्र को देख, और जो अपार सा है शंख और सीपियों से भरा हुआ गर्ज रहा है ॥८॥ हे मैथिलि! समुद्र की कुक्षि में इस चमकते हुए मैनाक पर्वत को देख, यह समुद्र के इस ओर सेना की छावनी का स्थान है ॥ ९ ॥ यहां पहिले विभू महादेव की कृपा हुई यह इस बड़े सागर का वह बड़ा घाट है, जो सेतुबन्ध नाम से ख्यात त्रिलोकी में आदृत होगा, यहां यह राक्षसराज विभीषण आकर मिला ॥ १०,११ ॥ हे सीते यह विचित्र वनोंवाली किष्किन्धा दीखती है, जो रमणीय

सुग्रीव की पुरी है, जहां मैंने बाली को मारा ॥ १२ ॥ तब बाली से पालित किष्किन्धापुरी देखकर सीता प्रेम और डर से राम से विनीत वाक्य बोली ॥१३॥ हे नृप ! तारा आदि सुग्रीव की स्त्रियों के साथ आपके साथ राजधानी अयोध्या को जाना चाहती हूं ॥ १४ ॥ ऐसा हो यह कहकर किष्किन्धा में पहुंचकर विमान को ठहराकर राम सुग्रीव को देखकर यह वाक्य बोले ॥ १५ ॥ आप सब स्त्रियों से युक्त सीता के साथ अयोध्या को चलें, तब वह शीघ्र अन्तःपुर में प्रविष्ट हो तारा को देखकर यह कहता भया ॥ १६ ॥ तारा से आज्ञा दी हुई सब वानर पत्नियें वस्त्र भूषण पहनकर प्रदक्षिणा करके सीता के दर्शन की इच्छा से विमान पर आरूढ़ हुई ॥ १७ ॥ उनके साथ शीघ्र उठे विमान को देखकर राघव ऋष्यमूक के समीप सीता से फिर बोले ॥ १८ ॥

मूल—दृश्यतेऽसौ महान्सीते सविद्युदिव तोयदः । ऋष्यमूको गिरिवरः काञ्चनैर्धातुभिर्वृतः ॥ १९ ॥ अत्राहं वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण समागतः । समयश्च कृतः सीते वधार्थं वालिनो मया ॥ २० ॥ एषा सा दृश्यते पम्पा नलिनी चित्रकानना । त्वया विहीनो यत्राहं विललाप सुदुःखितः ॥ २१ ॥ अस्यास्तीरे मया दृष्टा शबरी धर्मचारणी । अत्र योजनबाहुश्च कबन्धो निहतो मया ॥ २२ ॥ दृश्यतेऽसौ जनस्थाने श्रीमान्सीते वनस्पतिः । जटायुश्च महातेजास्तत्र हतो विलासिनि ॥ २३ ॥ रावणेन हतो यत्र पक्षिणां प्रवरो बली ॥ २४ ॥ एतत्तदाश्रमपदमस्माकं वरवर्णिनि । पर्णशाला तथा चित्रा दृश्यते शुभदर्शने ॥ २५ ॥ यत्र त्वं राक्षसेन्द्रेण रावणेन हृता बलात् । एषा गोदावरी रम्या प्रसन्नसलिला शुभा ॥ २६ ॥ अगस्त्यस्याश्रमश्चैष दृश्यते कदलीवृतः । दृश्यते चैव वैदेहि शरभङ्गाश्रमो महान् ॥२७॥ एते ते तापसा देवि दृश्यन्ते तनुमध्यमे । अत्रिः कुलपतिर्यत्र

सूर्यवैश्वानरोपमः ॥२८॥ अस्मिन्देशे महाकायो विराधो निहतो मया।
अत्र सीते त्वया दृष्टा तापसी धर्मचारिणी ॥ २९ ॥ असौ सुतनु
शैलेन्द्रश्चित्रकूटः प्रकाशते । अत्र मां कैकेयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः
॥ ३० ॥ एषा सा यमुना रम्या दृश्यते चित्रकानना । भरद्वाजा-
श्रमः श्रीमान्दृश्यते चैव मैथिलि ॥ ३१ ॥ इयं च दृश्यते गङ्गा
पुण्या त्रिपथगा नदी । शृङ्गवेरपुरं चैतद्गुहो यत्र सखा मम ॥३२॥
एषा सा दृश्यते सीते राजधानी पितुर्मम ॥ ३३ ॥ ततस्ते वानराः
सर्वे राक्षसा सविभीषणाः। उत्पत्योत्पत्य संहृष्टास्तां पुरीं ददृशुस्तदा ३४

अर्थ—हे सीते ! यह जो सुन्दरी धातुओं से युक्त बिजलीवाले मेघ की तरह महान् पर्वत ऋष्यमूक दीखता है ॥ १९ ॥ यहां मैं वानर सुग्रीव के साथ मिला, और बाली के मारने के लिये सङ्केत किया ॥२०॥ यह वह विचित्र बनों वाली पम्पा सरसी है, तुझ से हीन हुआ जहां मैं अतीव दुःखित हो विलाप करता भया ॥२१॥ इसके किनारे पर मैंने धर्मचारिणी भीलनी देखी, यहां मैंने योजनबाहु कबन्ध को मारा ॥२२॥ वह जो हे सीते जनस्थान में शोभावाला वनस्पति दीखता है, यह वह है जहां हे विलासिनि ! तेरे कारण पक्षिप्रवर महातेजस्वी जटायु को रावण ने मारा था ॥२३, २४॥ और हे वरवर्णिनि यह हमारा आश्रमपद है, और हे शुभदर्शने वह विचित्र पर्णशाला दीखती है ॥ २५ ॥ जहां राक्षसेन्द्र रावण ने तुझे बल से हरा, यह सुहावनी निर्मल जलवाली सुंदर गोदावरी है ॥२६॥ यह केलों से ढका हुआ अगस्त्य का आश्रम दीखता है और हे वैदेहि यह शरभङ्ग का महान् आश्रम दीखता है ॥ २७ ॥ हे तनुमध्यमे देवि ! यह वह तपस्वी दीखते हैं, जहां सूर्य और अग्नि तुल्य (तेजस्वी) अत्रि कुलपति है ॥ २८ ॥ इस स्थान पर मैंने महाकाय विराध मारा था, यहां हे सीते तूने धर्मचारिणी तपस्विनी

(अत्रि पत्नी) देखी थी ॥ २९ ॥ हे सुतनु यह पर्वतवर चित्रकूट प्रकाशता है, यहां मुझे कैकेयी का पुत्र प्रसन्न करने के लिये आया था ॥३०॥ यह विचित्र वर्नो वाली रमणीय यमुना दीखती है, और हे वैदेहि! यह श्रीमान् भरद्वाजाश्रम है ॥३१॥ यह तीन मार्गों वाली पवित्र गङ्गानदी दीखती है, यह शृङ्गवेरपुर है जहां मेरा सखा गुह है ॥३२॥ यह हे सीते मेरे पिता की राजधानी दीखती है ॥ ३३ ॥ तब वह सारे वानर और विभीषण सहित राक्षस प्रसन्न हुए उठ २ कर उस पुरी को देखते भए ॥ ३४ ॥

सर्ग ६९ (व०१२५,१२६) हनुमान् का भरत के पास संदेश लेकर जाना

मूल—अयोध्यां तु समालोक्य चिन्तयामास राघवः । उवाच धीमांस्तेजस्वी हनूमन्तं प्लवङ्गमम् ॥ १ ॥ अयोध्यां त्वरितो गत्वा शीघ्रं प्लवगसत्तम । जानीहि कच्चित्कुशली जनो नृपतिमन्दिरे ॥२॥ भरतस्तु त्वया वाच्यः कुशलं वचनान्मम । सिद्धार्थं शंस मां तस्मै सभार्यं सहलक्ष्मणम् ॥३॥ जित्वा शत्रुगणान्रामः प्राप्य चानुत्तमं यशः । उपायाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ॥ ४ ॥ स गत्वा दूरमध्वानं त्वरितः कपिकुञ्जरः । आससाद द्रुमान्फुल्लान्नन्दिग्रामसमीपमगान् ॥५॥ क्रोशमात्रे त्वयोध्याया श्चीरकृष्णाजिनाम्बरम् । ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् ॥ ६ ॥ जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्शितम् । फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम् ॥ ७ ॥ समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम् । नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम् ॥ ८ ॥ पादुके ते पुरस्कृत्य प्रशासन्तं वसुन्धराम् । चातुर्वर्ण्यस्य लोकस्य त्रातारं सर्वतो भयात् ॥ ९ ॥ उपस्थितममात्यैश्च शुचिभिश्च पुरोहितैः । बलमुख्यैश्च युक्तैश्च काषायाम्बरधारिभिः ॥१०॥ नहि ते राजपुत्रं तं चीरकृष्णाजिनाम्बरम् । परिभोक्तुं व्यवस्यन्ति पौरा वै धर्मवत्सलाः ॥ ११ ॥ तं धर्ममिव

धर्मज्ञं देहबन्धमिवापरम् । उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान्मारुतात्मजः
॥ १२ ॥ वसन्तं दण्डकारण्ये यं त्वं चीरजटाधरम् । अनुशोचसि
काकुत्स्थ स त्वां कौशलमब्रवीत ॥ १३ ॥ प्रियमाख्यामि ते देव
शोकं त्यज सुदारुणम् । अस्मिन्मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह सङ्गतः
॥१४॥ निहत्य रावणं रामः प्रतिलभ्य च मैथिलीम् । उपयाति
समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ॥ ५ ॥ लक्ष्मणश्च महातेजा वैदेही
च यशस्विनी । सीता समग्रा रामेण महेन्द्रेण शची यथा ॥ १६ ॥
एवमुक्तो हनुमता भरतः कैकयीसुतः । पपात सहसा हृष्टो हर्षान्मो-
हमुपागमत् ॥ १७ ॥ ततो मुहूर्तादुत्थाय प्रत्याश्वस्य च राघवः ।
हनूमन्तमुवाचेदं भरतः प्रियवादिनम् ॥ १८॥ अशोकजैः प्रीतिमयैः
कपिमालिङ्ग्य संभ्रमात् । सिषेच भरतः श्रीमान्विपुलैरश्रुबिन्दुभिः
॥१९॥ देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः । प्रियाख्यानस्य
ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम् ॥ २० ॥ बहूनि नाम वर्षाणि
गतस्य सुमहद्वनम् । शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम्
॥ २१ ॥ कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति माम् । एति
जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ २२ ॥

टीका—अयोध्या को देखकर राम सोचते भए, और तब वह बुद्धिमान् हनुमान् वानर से बोले ॥ १ ॥ हे वानरश्रेष्ठ शीघ्र अयोध्या में जाकर जान, कि राजा के घर में सब लोग कुशली हैं ॥ २ ॥ भरत को मेरे वचन से कुशल कहना, और उसे लक्ष्मण समेत और भार्या समेत मेरा कृतकार्य होकर आना कहना॥ ३॥ शत्रुगणों को जीत कर और बड़े उत्तम यश को पाकर कृत कृत्य हुआ राम महाबली मित्रों के साथ समीप आ गया है ॥ ४ ॥ वह तेज़ वानरवर दूर मार्ग जाकर नन्दिग्राम के समीप फूले हुए वृक्षों में पहुंचा ॥ ५ ॥ अयोध्या से कोस भर वरे चीर और काला मृगान धारे हुए

आश्रमवासी दीन दुर्बल भरत को देखता भया ॥ ६ ॥ जटा धारे हुए मल से लिबड़े अङ्गोंवाले भाई को विपद् से दुर्बल फल फूल के खाने वाले दान्त ब्रह्मचारी तपस्वी ॥ ७ ॥ ऊंचे जटा भार वाले बकले और मृगान के वस्त्रोंवाले नियमवाले शुद्धात्मा ब्रह्मर्षि तुल्य तेजवाले ॥ ८ ॥ उन पादुकों को आगे करके पृथिवी का शासन करते हुए चारों वर्णों के सब भयों से रक्षक ॥९॥ पवित्र मन्त्री और पवित्र पुरोहितों और सावधान सेनापतियों से युक्त जोकि सभी काषाय वस्त्र पहने हुए हैं ॥ १० ॥ क्योंकि चीर और काले मृगान के वस्त्रों से युक्त उस राजपुत्र को त्यागकर धर्म के प्यारे पौरजन भोगों को नहीं चाहते थे ॥ ११ ॥ वह जो धर्म का जाननेवाला मानों धर्मरूप है धर्म ही मानों दूसरा देह (मनुष्य देह) धारे हुए है उसे हाथ जोड़कर पवनपुत्र हनुमान् वाक्य बोला ॥१२॥ दण्डकवन में रहते हुए चीर जटाधारी जिस राम के पीछे तू शोक में है, उसने तुझे कुशल कहा है ॥ १३ ॥ हे देव प्रिय कहता हूं, सुदारुण शोक को त्याग, थोड़ी देर में तू भाई राम से मिलेगा ॥ १४ ॥ राम रावण को मारकर और सीता को पाकर सफल हुआ महाबली मित्रों के साथ निकट आया है ॥ १५ ॥ महातेजस्वी लक्ष्मण और यशस्विनी वैदेही सीता राम के साथ सङ्गत है, जैसे इन्द्र के साथ इन्द्राणी ॥ १६ ॥ हनुमान् से ऐसे कहा हुआ कैकेयीसुत भरत सहसा हृष्ट हुआ गिर पड़ा, और हर्ष से मोह को प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ फिर जल्दी भरत उठकर और तसल्ली पाकर प्रियवादी हनुमान् से यह वचन बोला ॥१८॥ श्रीमान् भरत संभ्रम से वानर को आलिङ्गन कर हर्ष से निकले प्रीतिमय विपुल अश्रुबिन्दुओं से हनुमान् को सेचन करता भया ॥ १९ ॥ तू देवता है वा मनुष्य है, मेरे ऊपर

कृपा से यहां आया है, इस प्रिय वार्ता के कहनेवाले को हे सौम्य ! क्या प्रिय दूं (इस प्रिय वार्ता के तुल्य कुछ नहीं देखता हूं) ॥२०॥ उस बड़े बन को गये मेरे नाथ को बहुत वर्ष होगए हैं, आज मैं अपने नाथ का प्रीति उत्पन्न करनेवाला नाम कीर्तन सुनता हूं॥२१॥ अब यह लौकिक कहावत मुझे कल्याणी प्रतीत होती है, कि जीते मनुष्य को सौ वर्ष के भी पीछे आनन्द प्राप्त होता है॥२२॥

सर्ग ७० (व० १२७) भरत मिलाप ॥

मूल-श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतः सत्यविक्रमः । हृष्टमाज्ञापयामास शत्रुघ्नं परवीरहा ॥ १ ॥ राजदारास्तथामात्याः सैन्याः सेनाङ्गनागणाः । ब्राह्मणाश्च सराजन्याः श्रेणीमुख्यास्तथा गणाः ॥ २ ॥ अभिनिर्यान्तु रामस्य द्रष्टुं शशिनिभं मुखम् । ततो यानान्युपारूढा सर्वा दशरथस्त्रियः ॥ ३ ॥ द्विजातिमुख्यैर्धर्मात्मा श्रेणीमुख्यैः सनैगमैः । माल्यमोदकहस्तैश्च मन्त्रिभिर्भरतो वृतः ॥ ४ ॥ शङ्खभेरीनिनादैश्च वन्दिभिश्चाभिनन्दितः । आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविदः ॥ ५ ॥ पाण्डुरं छत्रमादाय शुक्लमाल्योपशोभितम् । शुक्ले च बालव्यजने राजार्हे हेमभूषिते ॥ ६ ॥ उपवासकृशो दीनश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः । प्रत्युद्ययौ तदा रामं महात्मा सचिवैःसह ॥७॥ ततो हर्षसमुद्भूतो निःस्वनो दिवमस्पृशत् । स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तिते ॥८॥ रथकुञ्जरवाजिभ्यस्तेऽवतीर्य महीं गताः । ददृशुस्तं विमानस्थं नराः सोममिवाम्बरे ॥ ९ ॥ ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदा । ववन्दे प्रणतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् ॥ १० ॥ ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद्विमानमनुत्तमम् । हंसयुक्तं महावेगं निपपात महीतलम् ॥ ११ ॥ आरोपितो विमानं तद्भरतः सत्यविक्रमः । राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ॥ १२ ॥ तं समुत्थाप्य काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपथं गतम् । अङ्के भरतमारोप्य मुदितः

परिषस्वजे ॥ १३ ॥ ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परन्तपः । अ-थाभ्यवादयत्प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ॥ १४ ॥ सुग्रीवं कैकयी-पुत्रं जाम्बवन्तमथाङ्गदम् । मैन्दं च द्विविदं नीलमृषभं चैव सस्वजे ॥१५ ॥ सुषेणं च नलं चैव गवाक्षं गन्धमादनम् । शरभं पनसं चैव परितः परिषस्वजे ॥ १६ ॥ अथाब्रवीद्राजपुत्रः सुग्रीवं वानर-र्षभम् । परिष्वज्य महातेजा भरतो धर्मिणां वरः ॥ १७ ॥ त्वमस्माकं चतुर्णां वै भ्राता सुग्रीव पञ्चमः । सौहृदाज्जायते मित्रमपकारोऽरि-लक्षणम् ॥ १८ ॥ विभीषणं च भरतः सान्त्ववाक्यमथाब्रवीत् । दिष्ट्या त्वया सहायेन कृतं कर्म सुदुष्करम् ॥ १९ ॥ शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम् । सीतायाश्चरणौ वीरो विनया-दभ्यवादयत् ॥२०॥ रामो मातरमासाद्य विवर्णां शोककर्शिताम् । जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रहर्षयन् ॥ २१ ॥ अभिवाद्य सुमित्रां च कैकयीं च यशस्विनीम् । स मातॄश्च ततः सर्वाः पुरो-हितमुपागमत् ॥ २२ ॥ स्वागतं ते महाबाहो कौसल्यानन्दवर्धन । इति प्राञ्जलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन् ॥ २३ ॥+पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम् । चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित् ॥ २४ ॥ अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः । एतत्ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया ॥ २५ ॥+अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः । यत्त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम् ॥२६॥ अवेक्षतां भवान्कोशं कोष्ठागारं गृहं बलम् । भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुणं मया ॥ २७ ॥ तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृ-वत्सलम् । मुमुचुर्वानरा बाष्पं राक्षसश्च विभीषणः ॥ २८ ॥ ततः प्रहर्षाद्भरतमङ्कमारोप्य राघवः । ययौ तेन विमानेन ससैन्यो भर-ताश्रमम् ॥२९॥ भरताश्रममासाद्य ससैन्यो राघवस्तदा । अवतीर्य विमानाग्रादवतस्थे महीतले ॥३०॥

टीका—इस परम आनन्द को सुनकर सच्चे पराक्रमवाला शत्रु वीरों का मारनेवाला भरत हृष्ट हुए शत्रुघ्न को आज्ञा देता भया ॥१॥ राजस्त्रियें, मन्त्री, सैनिक, सैनिकों का स्त्रीगण, ब्राह्मण और राज कुमार तथा श्रेणियों (कम्पनियों) के मुखिया लोग ॥ २० ॥ राम का चन्द्र तुल्य मुख देखने के लिये निकलें, तब दशरथ की सब स्त्रियां यानों पर आरूढ़ हुईं ॥३॥ धर्मात्मा भरत ब्राह्मण-मुखियों से, श्रेणी मुखियों से, देशान्तर के व्यापारियों से और माल्य मोदक हाथ में लिये मन्त्रियों से युक्त हुआ ॥ ४ ॥ शङ्ख भेरियों से और स्तुति पाठकों से अभिनन्दित हुआ, आर्य (राम) के खड़ाओं को सिर पर धारण किये वह धर्मनिपुण ॥ ५ ॥ श्वेतमाला से शोभित श्वेत छत्र लेकर और सुवर्ण से भूषित राजयोग्य दो चंवर लेकर ॥ ६ ॥ उपवासों से दुर्बल दीन चीर और काला मृगान धारे हुए वह महात्मा मन्त्रियों के सहित प्रत्युद्गमन करता भया (पेशवाई को गया) ॥ १७ ॥ तब (राम के निकट आने पर) स्त्री, बाल, युवा, और वृद्धों के हर्ष से उठी ध्वनि द्यौ को स्पर्श करती भई, जब "यह राम है" ऐसे कहा गया ॥८॥ तब वह सारे रथों, हाथियों और घोड़ों से उतरकर पृथिवी पर होगये, और विमानस्थ राम को आकाश में चन्द्र की तरह देखते भए ॥९॥ तब मेरु पर स्थित सूर्य की तरह विमान की चोटी पर स्थित भाई राम को भरत झुककर प्रणाम करता भया ॥ १० ॥ उसी समय राम से आज्ञा दिया हंस युक्त बड़े वेगवाला वह विमान महीतल पर उतरा ॥ ११ ॥ विमान पर चढ़ाया हुआ सच्चे पराक्रमवाला भरत राम को पाकर प्रसन्न हुआ फिर प्रणाम करता भया ॥१२॥ देर पीछे दृष्टिपथ में आए भरत को उठाकर गोद में लेकर मुदित हुए राम उसे आलिङ्गन करते भए

॥ १३ ॥ तब लक्ष्मण और सीता के पास शत्रुओं के तपाने वाला भरत प्रसन्न हो अपना नाम उच्चारण करता हुआ प्रणाम करता भया ॥ १४ ॥ तदन्तर वह भरत, सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील, और ऋषभ को गले लगाता भया ॥ १५ ॥ तथा सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ, और पनस को आलिङ्गन करता भया ॥ १६ ॥ फिर वह महा तेजस्वी धर्मीवर भरत वानरश्रेष्ठ सुग्रीव को आलिङ्गन करके बोला ॥ १७ ॥ हे सुग्रीव तू हमारा पांचवां भाई है, सौहार्द (उपकार) से मित्र होता है और अपकार शत्रु का लक्षण है ॥ १८ ॥ और विभीषण को भरत यह तसल्ली का वाक्य बोला, भाग्य से तुझ साथी (की सहायता) से बड़ा दुष्कर कर्म किया गया है ॥ १९ ॥ तब शत्रुघ्न राम और लक्ष्मण को अभिवादन कर विनय से सीता के चरणों को अभिवादन करता भया ॥ २० ॥ राम विवर्णा शोक से दुर्बल माता के पास आकर झुका हुआ माता के मन को प्रसन्न करता हुआ चरण पकड़ता भया ॥ २१ ॥ सुमित्रा को और यशस्विनी कैकेयी को सारी माताओं को प्रणाम करके पुरोहित के पास आया (आ प्रणाम किया) ॥ २२ ॥ नगर के सभी लोग हाथ जोड़कर "हे महाबाहो कौसल्या के आनन्द के बढ़ाने वाले आप का आना शुभ हो" यह कहते भए ॥ २३ ॥ अब धर्म का जानने वाला भरत स्वयं वह खड़ावें लेकर नरेन्द्र के चरणों से युक्त करता भया ॥ २४ ॥ और हाथ जोड़ कर राम से बोला, यह आप का सारा राज्य अमानत मैंने प्रत्यर्पण किया है ॥ २५ ॥ आज मेरा जन्म कृतार्थ है, मेरा मनोरथ पूरा हुआ, जो तुझ राजा को अयोध्या में फिर आया देखता हूं ॥ २६ ॥ अब आप कोश भण्डार घर, बल (सेना) का निरीक्षण करें आप के तेज से मैंने सब दश

गुणा कर दिया है ॥ २७ ॥ ऐसा कहते हुए उस भ्रातृवत्सल भरत को देखकर वानरों के और राक्षस विभीषण के प्रेमाश्रु निकल आए ॥ २८ ॥ तब महर्ष से भरत को गोद में लेकर राम भरत के साथ और सेना के साथ भरत के आश्रम को गए ॥२९॥ भरत के आश्रम में पहुंचकर सेनासहित राम विमान के अग्र से उतरकर महीतल पर ठहरे ॥ ३० ॥

सर्ग ७१ (व० १२८) राम का अयोध्या में प्रवेश

मूल—शिरस्यञ्जलिमाधाय कैकयीनन्दिवर्धनः । बभाषे भरतो ज्येष्ठं रामं सत्यपराक्रमम् ॥ १ ॥ जगदद्याभिषिक्तं त्वामनुपश्यतु राघव । प्रतपन्तमिवादित्यं मध्याह्ने दीप्ततेजसम् ॥ २ ॥ भारतस्य वचः श्रुत्वा रामः परपुरञ्जयः । तथेति प्रतिजग्राह निषसादासने शुभे ॥ ३ ॥ ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः श्मश्रुवर्धनाः । सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्यवारयन् ॥ ४ ॥ पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महाबले । सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे ॥ ५ ॥ विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः । महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन् ॥ ६ ॥ प्रतिकर्म च रामस्य कारयामास वीर्यवान् । लक्ष्मणस्य च लक्ष्मीवानिक्ष्वाकुकुलवर्धनः ॥ ७ ॥ प्रतिकर्म च सीतयाः सर्वा दशरथस्त्रियः । आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम् ॥ ८ ॥ ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभनम् । चकार यत्नात्कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला ॥९॥ ततः शत्रुघ्नवचनात्सुमन्त्रो नाम सारथिः । योजयित्वाभिचक्राम रथं सर्वाङ्गशोभनम् ॥ १० ॥ अग्न्यर्कामलसंकाशं दिव्यं दृष्ट्वा रथं स्थितम् । आरुरोह महाबाहू रामः परपुरञ्जयः ॥ ११ ॥ सुग्रीवो हनूमांश्चैव महेन्द्रसदृशद्युती । स्नातौ दिव्यनिभैर्वस्त्रैर्जग्मतुः शुभकुण्डलौ ॥ १२ ॥ सर्वाभरणजुष्टाश्च ययुस्ताः शुभकुण्डलाः । सुग्रीवपत्न्यः सीता च द्रष्टुं नगरमुत्सुकाः

॥ १३ ॥ अयोध्यायां च सचिवा राज्ञो दशरथस्य च । पुरोहितं पुरस्कृत्य मन्त्रयामासुरर्थवत् ॥ १४ ॥ सर्वमेवाभिषेकार्थं महार्हस्य महात्मनः । कर्तुमर्हथ रामस्य यद्यन्मङ्गलपूर्वकम् ॥ १५ ॥ इति ते मन्त्रिणः सर्वे सन्दिश्य च पुरोहितः । नगरान्निर्ययुस्तीर्णं रामदर्शन-बुद्धयः ॥ १६ ॥ हरियुक्तं सहस्राक्षो रथमिन्द्र इवानघः । प्रययौ रथमास्थाय रामो नगरमुत्तमम् ॥ १७ ॥ जग्राह भरतो रश्मीञ्छ-त्रुघ्नश्छत्रमाददे । लक्ष्मणो व्यजनं तस्य मूर्ध्नि संवीजयंस्तदा ॥१८॥ श्वेतं च वालव्यजनं जगृहे परितः स्थितः । अपरं चन्द्रसंकाशं रा-क्षसेन्द्रो विभीषणः ॥१९॥ ददृशुस्ते समायान्तं राघवं सपुरःसरम् । विराजमानं वपुषा रथेनातिरथं तदा ॥ २० ॥ ते वर्धयित्वा का-कुत्स्थं रामेण प्रतिनन्दिताः । अनुजग्मुर्महात्मानं भ्रातृभिः परि-वारितम् ॥ २१ ॥ अमात्यैर्ब्राह्मणैश्चैव तथा प्रकृतिभिर्वृतः । श्रिया विरुरुचे रामो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥ २२ ॥ सख्यं च रामः सुग्रीवे प्रभावं चानिलात्मजे । वानराणां च तत्कर्म ह्याचचक्षेऽथ मन्त्रिणाम् ॥ २३ ॥ श्रुतिमानितद् ख्याय रामो वानरसंयुतः । हृष्टपुष्टजना-कीर्णामयोध्यां प्रविवेश सः ॥ २४ ॥ ततो ह्यभ्युच्छ्रयन्पौराःपता-काश्च गृहेगृहे । ऐक्ष्वाकाध्युषितं रम्यमाससाद पितुर्गृहम् ॥ २५ ॥

टीका—दोनों हाथ सिर पर जोड़े हुए कैकेयी के आनन्द को बढ़ाने वाला भरत सच्चे पराक्रमवाले ज्येष्ठ भाई राम से बोला ॥ १ ॥ जगत् आज आपको हे राघव अभिषिक्त हुआ मध्याह्न में दीप्त तेजवाले सूर्य की तरह तपता हुआ देखे ॥ २ ॥ भरत के वचन को सुनकर शत्रुओं के किलों को जीतनेवाला राम तथास्तु कह कर स्वीकार करता भया, और शुभ आसन पर बैठगया ॥ ३ ॥ तब शत्रुघ्न के कहने से निपुण सुखहस्त और शीघ्रकारी डाढ़ी

वनानेवाले * (नाई) (बाल बनाने और न्हलाने के लिए) राम के चारों ओर बैठगये ॥ ४ ॥ पहले भरत, महाबली लक्ष्मण, वानरेन्द्र सुग्रीव, और राक्षसेन्द्र विभीषण के स्नान करने पर ॥ ५ ॥ राम जटाओं को शोध (कटवा) स्नानकर विचित्र माल्य अनुलेपन लगा, बहुमूल्य वस्त्रों से युक्त हुआ, शोभा से जलता हुआ स्थित हुआ ॥ ६ ॥ वीर्यवान् लक्ष्मीवान् शत्रुघ्न राम का और लक्ष्मण का प्रसाधन (वस्त्र भूषणों से सजावट) करता भया ॥ ७ ॥ सीता का बड़ा मनोहर प्रसाधन दशरथ की स्त्रियां स्वयं करती भईं, (नकि नाइन से करवाती भईं) ॥ ८ ॥ तब पुत्रवत्सला कौसल्या सारी वानरपत्नियों को प्रयत्न से प्रसाधन करती भई ॥ ९ ॥ (यह सब भरत के आश्रम पर हुआ, अब अयोध्या में प्रवेश दिखलाते हैं) तब शत्रुघ्न के वचन से सारथि सुमन्त्र सर्वाङ्ग शोभन रथ को जोड़कर लेआया ॥ १० ॥ अग्नि सूर्य के तुल्य निर्मल प्रकाशवाले इस रथ को स्थित देखकर शत्रुओं के किलों को जीतनेवाला महाबाहु राम आरूढ़ हुआ ॥ ११ ॥ महेन्द्र तुल्य तेजवाले सुग्रीव और हनुमान् स्नान किये हुए दिव्य वस्त्रों से युक्त शुभ कुण्डलों से युक्त साथ चले ॥ १२ ॥ सारे भूषणों से भूषित शुभ कुण्डलोंवाली सुग्रीव की पत्नियां और सीता भी नगर देखने की उत्कण्ठा वाली साथ गईं ॥ १३ ॥ इधर अयोध्या में राजा दशरथ के मन्त्री पुरोहित को मुख्य करके आवश्यक सारा विचार करते भए ॥ १४ ॥ जय के योग्य महात्मा राम के अभिषेक के लिये मङ्गल पूर्वक सब कुछ तय्यार करो ॥१५॥ यह वह मन्त्री और पुरोहित (भृत्यों को) आज्ञा देकर राम के दर्शन की बुद्धि से जल्दी नगर से बाहर निकले ॥ १६ ॥ उधर राम

* प्राचीन आर्य्य डाढी मुंडवाते थे ।

रथ पर चढ़कर उत्तम नगर की ओर गया ॥ १७ ॥ भरत ने (घोड़ों की) बागें पकड़ीं, शत्रुघ्न ने छत्र पकड़ा, लक्ष्मण उस के मस्तक पर चँवर करता था ॥ १८ ॥ एक ओर चन्द्र तुल्य चंवर राक्षसेन्द्र विभीषण ने पकड़ा ॥ १९ ॥ वह (गरवासी) शरीर से शोभा पाते हुए अतिरथी राम को रथ से आता हुआ देखते भए, जिसके आगे सैनिक चल रहे हैं ॥ २० ॥ वह राम को बधाई देकर राम से प्रतिनन्दित हुए भाइयों से परिवारित महात्मा के पीछे २ गये ॥ २१ ॥ मन्त्रियों से ब्राह्मणों से और प्रकृतियों से युक्त हुआ राम नक्षत्रों से चन्द्रमा की तरह शोभा से चमकता भया ॥ २२ ॥ राम मन्त्रियों को सुग्रीव की मित्रता, पवनपुत्र का प्रभाव और वानरों का कर्म कहते भए ॥ २३ ॥ तेजस्वी राम यह कहकर हृष्ट पुष्ट जनों से भरी अयोध्या में प्रविष्ट हुआ ॥ २५ ॥ तब पुर के लोग घर २ में झंडियां खड़ी करते भए, और वह राजपुत्र रमणीय पितृगृह में पहुंचा ॥ २५ ॥

सर्ग ७२ (व० १२८) राम का राज्याभिषेक

मूल—ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह । रामं रत्नमये पीठे ससीतं सन्न्यवेशयत् ॥ १ ॥ वसिष्ठो विजयश्चैव जाबालिरथ काश्यपः। कात्यायनो गौतमश्च वामदेवस्तथैवच ॥२ ॥ अभ्यषिञ्चन्नरव्याघ्रं प्रसन्नेन सुगन्धिना । सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा ॥ ३ ॥ ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः पूर्वं कन्याभिर्मन्त्रिभिस्तथा। योधैश्चैवाभ्यषिञ्चंस्ते संप्रहृष्टैः सनैगमैः ॥ ४ ॥ ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं किरीटं रत्नशोभितम् । तस्यान्ववाये राजानः क्रमाद्येनाभिषेचिताः ॥ ५ ॥ किरीटेन ततः पश्चाद्वसिष्ठेन महात्मना । ऋत्विग्भिर्भूषणैश्चैव समयोक्ष्यत राघवः ॥ ६ ॥ छत्रं तस्य च जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम् । श्वेतं च वालव्यजनं सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥ ७ ॥ अपरं

चन्द्रसंकाशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥ ८ ॥ प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृ-
तुश्चाप्सरोगणाः अभिषेके तदर्हस्य तदा रामस्य धीमतः ॥ ९ ॥
सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा । ददौ शतवृषान्पूर्वं द्विजेभ्यो
मनुजर्षभः ॥ १० ॥ त्रिंशत्कोटीर्हिरण्यस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुनः ।
नानाभरणवस्त्राणि महार्हाणि च राघवः ॥ ११ ॥ अर्करश्मिप्रति
काशां काञ्चनीं मणिविग्रहाम् । सुग्रीवाय स्रजं दिव्यां प्रायच्छन्म-
नुजाधिपः ॥ १२ ॥ वैदूर्यमयचित्रे च चन्द्ररश्मिविभूषिते । वालि
पुत्राय धृतिमानङ्गदायाङ्गदे ददौ ॥१३॥ मणिप्रवरजुष्टं तं मुक्ताहार-
मनुत्तमम् । सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम् ॥ १५ ॥ अव
मुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी । अवैक्षत हरीन्सर्वान्भर्तारं
च मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ तामिङ्गितज्ञः संप्रेक्ष्य बभाषे जनकात्मजाम् ।
प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भामिनि ॥ १६ ॥ अथ सा वायु-
पुत्राय तं हारमसितेक्षणा ॥ १७ ॥ हनूमांस्तेन हारेण शुशुभे वा-
नरर्षभः । चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाचलः ॥१८ ॥ सर्वे
वानरवृद्धाश्च ये चान्ये वानरोत्तमाः । वासोभिर्भूषणैश्चैव यथार्हं
प्रतिपूजिताः ॥ १९ ॥ विभीषणोऽथ सुग्रीवो हनूमाञ्जाम्बवांस्तथा ।
सर्वे वानरमुख्याश्च रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ २० ॥ यथार्हं पूजिताः
सर्वे कामैरत्नैश्च पुष्कलैः । प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम्॥२१॥
सुग्रीवो वानरश्रेष्ठो दृष्ट्वा रामाभिषेचनम् । पूजितश्चैव रामेण कि-
ष्किन्धां प्राविशत्पुरीम् ॥ २२ ॥ विभीषणोऽपि धर्मात्मा सह
तैर्नैरृतर्षभैः । लब्ध्वा कुलधनं राजा लङ्कां प्रायान्महायशाः ॥२३॥

टीका—तब ब्राह्मणों के साथ शुद्ध वृद्ध वसिष्ठ राम को सीता
समेत रत्नमय पीठ पर बिठलाता भया ॥ १ ॥ वसिष्ठ, विजय,
जाबालि, काश्यप, कात्यायन, गौतम और वामदेव ॥ २ ॥ निर्मल
सुगन्धित जल से नरश्रेष्ठ का अभिषेक करते भये, जैसे वसु इन्द्र

का ॥३॥ पहले ऋत्विज ब्राह्मणों के साथ फिर कन्याओं, मन्त्रियों योद्धाओं और प्रसन्न मन सौदागरों के साथ वह अभिषेक करते भए ॥ ४ ॥ अब वह रत्न से शोभित मुकुट जो पहले ब्रह्मा ने रचा था, और राम के वंश के राजा क्रमशः जिससे अभिषिक्त हुए थे ॥ ५ ॥ उस मुकुट से महात्मा वसिष्ठ (के हाथों) से राम युक्त किया गया, और ऋत्विजों से भूषणों से युक्त किया गया ॥६॥ शत्रुघ्न ने श्वेत शुभ छत्र पकड़ा और वानरेश्वर सुग्रीव ने कोमल चंवर पकड़ा ॥ ७ ॥ और एक चन्द्र तुल्य चंवर राक्षसेन्द्र विभीषण ने पकड़ा ॥ ८ ॥ अभिषेक के योग्य उस बुद्धिमान् राम के अभिषेक में देव गन्धर्व गाते भए, और अप्सरागण नाचते भए ॥ ९ ॥ एक लाख धेनु और गौ और सौ सांड उस मनुजवर ने ब्राह्मणों को दिये ॥ १० ॥ तीस करोड़ सोने का सिक्का और बहुमूल्य भान्ति २ के भूषण वस्त्र ब्राह्मणों को दिये ॥ ११ ॥ सूर्य की रश्मियों के तुल्य, मणियों से जड़ित सोने की दिव्यमाला उस नरपति ने सुग्रीव को दी ॥ १२ ॥ सब्ज मणि से चित्रित चन्द्र रश्मियों से भूषित दो अङ्गद (बाहुबन्द) उस धृतिमान् ने बालि-पुत्र अङ्गद को दिये ॥१३॥ फिर उत्तम मणियों से जटित चन्द्र किरणों के तुल्य अत्युत्तम मोतियों का हार राम ने सीता को दिया ॥ १४ ॥ जनकनन्दिनी कंठ से हार उतारकर बार २ सारे वानरों की ओर और भर्ता की ओर देखती भई ॥ १५ ॥ तब इङ्गित के जाननेवाले राम उस जनकसुता से बोले, हे सुभगे यह हार उसे दे, जिस पर हे सुन्दरी तूं प्रसन्न है ॥ १६ ॥ तब वह काले नेत्रोंवाली उस हार को पवनपुत्र को देती भई॥१७॥वानरवर हनुमान् उस हार से ऐसे सोहता भया, जैसे चन्द्र किरण के समूह से गौर श्वेत बादल से पर्वत ॥ १८ ॥ सारे वानर वृद्ध और दूसरे

वानरवर वस्त्रों और भूषणों से यथायोग्य पूजे गये ॥ १९ ॥ विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, तथा दूसरे सारे मुख्य वानर शुभकर्मा राम से यथायोग्य प्यारी वस्तुओं से और पुष्कल रत्नों से पूजे गए और सभी प्रसन्न मन हुए अपने २ स्थान को गये ॥२०, २१ ॥ वानरश्रेष्ठ सुग्रीव राम का अभिषेक देखकर राम से पूजित हुआ किष्किन्धा पुरी में प्रविष्ट हुआ ॥ २२ ॥ धर्मात्मा विभीषण भी उन राक्षसवरों के साथ अपने कुल के धर्म (लङ्का के राज्य) को पाकर लङ्का को गया ॥ २३ ॥

सर्ग ७३ (व० १२८) रामका राज्य काल

मूल—सराज्यमखिलं शासन्निहतारिर्महायशाः । राघवः परमोदारः शशास परया मुदा ॥ १ ॥ उवाच लक्ष्मणो रामं धर्मज्ञं धर्मवत्सलः ॥ २ ॥ आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमां गां पूर्वराजाध्युषितां बलेन । तुल्यं यथा त्वं पितृभिःपुरस्तात्तैर्यौवराज्ये धुरमुद्वहस्व ॥ ३ ॥ सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो यदा न सौमित्रिरुपैति योगम् । नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये ततोऽभ्यषिञ्चद्भरतं महात्ममा ॥ ४ ॥ राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम् । ईजे बहुविधैर्यज्ञैः ससुतभ्रातृबान्धवः ॥ ५ ॥ न पर्यदेवान्विधवा न च व्यालकृतं भयम् । न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति ॥ ६ ॥ निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत् । न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥ ७ ॥ सर्वं मुदितमेवासीत्सर्वो धर्मपरोऽभवत् । राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन्परस्परम् ॥ ८ ॥ नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिताः । कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ॥९॥ स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः । आसन्प्रजा धर्मपरा रामे शासति नानृताः ॥ १० ॥

टीका—अब वह महायशस्वी परम उदार राघव परम मोद के

साथ सारे राज्यका शासन करता हुआ धर्मप्रिय राम धर्मज्ञ लक्ष्मण से बोला ॥ १,२ ॥ हे धर्मज्ञ पूर्व राजों से बल से जीती हुई इस पृथिवी को मेरे साथ शासन कर पूर्व कालीन अपने पितरों के तुल्य यौवराज्य की धुरा को उठा ॥३॥ पूरे बल से प्रेरा हुआ भी जब लक्ष्मण यौवराज्य नहीं चाहता है, तब वह महात्मा यौवराज्य में भरत को अभिषिक्त करता भया ॥ ३ ॥धर्मात्मा राम भी इस अत्युत्तम राज्य को पाकर सुत भाई और बांधवों समेत अनेक प्रकार के यज्ञ करता भया ॥ ५ ॥ राम के राज्य शासन करते हुए न कहीं विधवाओं का रोना सुनाई दिया, न सांपों का भय हुआ, न रोग का भय हुआ ॥ ६ ॥ लोक दस्युओं से शून्य हुआ, कोई अनर्थ में नहीं पड़ता था, और न वृद्ध बालों के मरण संस्कार करते थे ॥ ७ ॥ सभी प्रसन्न थे, सभी धर्मपरायण थे, राम को लक्ष्य रखकर आपस के सब वैर विरोध मिट गये ॥ ८ ॥ वृक्ष पक्की जड़ोंवाले सदा फूले फले थे, मेघ समय पर बरसता, पवन सुखदायी चलता ॥ ९ ॥ सब अपने २ कर्मों से सन्तुष्ट हुए अपने २ कर्मों में लगे रहते, राम के शासन करते हुए सब प्रजाएं धर्मपरायण थीं झूठी न थीं ॥ १० ॥

सर्ग ८४ (ब० १२८) रामायण महात्म्य

मूल—धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां विजयावहम् । आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥१॥ यः शृणोति सदा लोके नरः पापात्प्रमुच्यते । पुत्रकामश्च पुत्रान्वै धनकामो धनानि च ॥ २ ॥ लभते मनुजो लोके श्रुत्वा रामाभिषेचनम् । महीं विजयते राजा रिपूंश्चाप्यधितिष्ठति ॥३॥ राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च। भरतेन च कैकेयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रियः ॥ ४ ॥ श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति। रामस्य विजयं चेमं सर्वमाक्लिष्टकर्मणः

॥५॥ शृणोति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् । श्रद्दधानो जितक्रोधो दुर्गाण्यतितरत्यसौ ॥ ६ ॥ विजयेत महीं राजा प्रवासी स्वस्तिमान्भवेत् । स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान्सूयुरनुत्तमान् ॥ ७ ॥ पूजयंश्च पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम् । सर्वपापैः प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ८ ॥ प्रणम्य शिरसा नित्यं श्रोतव्यं क्षत्रियैर्द्विजात् । ऐश्वर्यं पुत्रलाभश्च भविष्यति न संशयः ॥ ९ ॥ एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः । प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ १० ॥ कुटुम्बवृद्धिं धनधान्यवृद्धिं स्त्रियश्च मुख्याः सुखमुत्तमं च । श्रुत्वा शुभं काव्यमिदं महार्थं प्राप्नोति सर्वां भुवि चार्थसिद्धिम् ॥११॥ आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं सौभ्रातृकं बुद्धिकरं शुभं च । श्रोतव्यमेतन्नियमेन सद्भिराख्यानमोजस्करमृद्धिकामैः ॥ १२ ॥

टीका—धर्म यश और आयु के बढ़ाने वाला और राजाओं को विजय दिलाने वाला यह ऋषिप्रणीत आदि काव्य पहले बाल्मीकि ने किया ॥ १ ॥ जो पुरुष इस लोक में सदा इसे सुनता है, वह पाप से छूट जाता है, रामाभिषेक को सुनकर पुत्रकामी पुत्र को और धनकामी धन को पाता है, राजा पृथिवी को जीतता है, और शत्रुओं को दवाता है ॥२,३॥ जैसे राम से उसकी माता लक्ष्मण से सुमित्रा और भरत से कैकेयी वैसे सब स्त्रियें जीवित पुत्रोंवाली होती हैं ॥ ४ ॥ पवित्र कर्मोंवाले राम के इस सारे विजय रूप रामायण को सुनकर दीर्घायु को प्राप्त होता है॥ ५ ॥ जो क्रोध को त्यागकर श्रद्धावान् हुआ वाल्मीकि से किये इस काव्य को सुनता है, वह सब कठिनाइयों को तर जाता है,॥ ६ ॥ राजा पृथिवी को जीतता है प्रवासी कल्याणवान् होता है, रजस्वला स्त्रियें सुनकर अत्युत्तम पुत्रों को जन्म देती हैं ॥ ७ ॥

इस पुरातन इतिहास का आदर करता हुआ और पढ़ता हुआ सारे पापों से छूट जाता है और दीर्घआयु को पाता है ॥ ८ ॥ क्षत्रियों को सदा सिर झुकाकर ब्राह्मण से सुनना चाहिए ऐश्वर्य और पुत्र लाभ होगा इस में संशय नहीं ॥ ९ ॥ इसप्रकार यह आख्यान पहले हुआ है, तुम्हारा भला हो, सब विश्वस्त होकर कहो विष्णु का बल बढ़े ॥ १० ॥ गम्भीर अर्थवाले इस शुभ काव्य को सुन कर कुटुम्ब की वृद्धि धन धान्य की वृद्धि मुख्य स्त्रियें और उत्तम सुख और सम्पूर्ण अर्थ सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ आयु आरोग्य और यश के देनेवाला, भ्रातृभाव के बढ़ानेवाला बुद्धि-कारी और यशकारी यह शुभ आख्यान ऋद्धि चाहनेवाले सत् पुरुषों को नियम से सुनना चाहिये ॥ १२ ॥

युद्ध काण्ड समाप्त हुआ ।

श्रीबाल्मीकि कृत रामायण समाप्त हुआ *

---

* बालकाण्ड पृष्ठ २३ की टिप्पणी में स्पष्ट प्रमाणों से हम दिखला चुके है, कि वाल्मीकि मुनि ने युद्ध काण्ड तक ही रामायण रचा है, उत्तर काण्ड प्रक्षिप्त है । यहां भी युद्ध-काण्ड की समाप्ति में राम का राज्य काल और रामायण का महात्म्य वर्णन कर देने से यहां ही रामायण की समाप्ति प्रतीत होती है । सो उत्तर काण्ड निःसंदेह प्रक्षिप्त है, तथापि उत्तर काण्ड की कथा हमारे पाठकों को अज्ञात न रहे, इसलिए आगे केवल भाषा में उत्तर काण्ड की कथा लिखते हैं ।

उत्तर काण्ड।

सर्ग १–मुनियों के दर्शन और वेदवती की कथा।

जब रामचन्द्रजी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर और उसी अवसर में रावण को मारकर फिर अयोध्या में आकर राजसिंहासन पर आरूढ हुए, तब उनको बधाई देने के लिये पूर्व दिशा से कौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य, गालव और मेधातिथि का पुत्र कण्व, और दक्षिण दिशा से, आत्रेय, नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, अत्रि, सुमुख और विमुख, और पश्चिमदिशा से नृषङ्ग, कवषी, धौम्य, कौशेक, तथा उत्तरदिशा से वासिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज, यह ऋषि अपने शिष्यों समेत आए। तथा दूर निकट से सभी राजे और राजकुमार आए। रामचन्द्रजी के पूछने पर अगस्त्यमुनि ने बतलाया, कि रावण ने पहले तप से बल पाया, फिर कुबेर को जीतकर उससे पुष्पक विमान छीना, और फिर पुष्पक विमान पर चढ़कर दिग्विजय किया। बड़े २ राजों को और इन्द्र को भी जीता। इसी विजययात्रामें उसने हिमालय के एक वन में तप करती हुई एक दिव्यमूर्ति कन्या देखी। नाम उसका वेदवती था। उसे देखकर रावण मोहित होगया। अपनी रानी बनाने के लिए उसे रावण ने बहुतेरा ललचाया, फुसलाया, धमकाया, डराया। जब किसी तरह भी उसने न माना, तब रावण ने उसे बालों से पकड़ लिया। बालों को हाथ लगतेही वेदवती का क्रोध भड़क उठा, उसने अपने हाथ के प्रबल झटके के साथ रावण से छुए बालों को उखाड़कर फैंक दिया, और झट जलती हुई अग्नि में कूदकर अपने सुवर्णमय जीवन को कुन्दन कर दिखलाया। उस जीवन को छोड़ते समय स्वभावतः उसके मुख से यह सरस्वती प्रकट हुई॥

यस्मात् तु धर्षिता चाहं त्वया पापात्मना वने ।
तस्मात् तव वधार्थं हि समुत्पत्स्याम्यहं पुनः ॥

जिससे तुझ पापात्मा ने बन में मेरी धर्षणा की है, इस से तेरे वध के लिये मैं फिर उत्पन्न हूंगी ॥ वही वेदवती हे राजन् महात्मा जनक के कुल में उत्पन्न हुई यह सीता है ।

सर्ग २—सहस्रबाहु से रावण का पराजय

रामचन्द्रजी ने अगस्त्य से फिर पूछा, हे भगवन् । क्या उस समय कोई राजा ऐसा नहीं था, जो रावण का दर्प तोड़ता ! भगवान् अगस्त्य ने उत्तर दिया । हां, दो राजे थे, जिन्होंने रावण को नीचा दिखलाया । एक माहिष्मती नगरी का राजा कृतवीर्य का पुत्र सहस्रबाहु अर्जुन । अर्जुन नर्मदानदी में जलक्रीड़ा का आनन्द मना रहा था, कि रावण पुष्पक पर चढ़ कर वहीं पहुंचा, और अर्जुन को युद्ध के लिये आह्वान किया । दोनों शूरवीरों का बड़ी देर तक घोर युद्ध हुआ, अन्ततः रावण अर्जुन से घुमाकर मारी गदाकी चोट से ऐसा व्याकुल हुआ, कि पीठ न दिखलाता हुआ भी पिछले पाओं कुछ पीछे हट गया, और नीचे बैठ गया । अर्जुन ने झट रावण को बांध लिया । प्रहस्त ने रावण को छुड़ाने का बहुत यत्न किया, पर वह छुड़ा न सका । अर्जुन रावण को बांधकर माहिष्मती में लेगया । यह सुनकर रावण का दादा पुलस्त्य माहिष्मती में अर्जुन के पास गया । इस वृद्धि अतिथि को आदर सत्कार करके अर्जुन ने कहा, भगवन् ! क्या कार्य है, आज्ञा दीजिये । वह बोला

नरेन्द्राम्बुजपत्राक्ष पूर्णचन्द्रनिभानन ।
अतुलं ते बलं येन दशग्रीवस्त्वया जितः ॥
पुत्रस्य यशः पीतं नाम विश्रावितं त्वया ।

मद्वाक्याद् याच्यमानोऽद्य मुञ्च वत्स दशाननम् ॥

हे नरेन्द्र हे कमलपत्र तुल्य नेत्रोंवाले हे चन्द्रतुल्य मुखवाले तेरा बल अतुल है, जिस तूने रावण को जीता है। मेरे पोते का यश तूने पी लिया है, और अपना नाम जगत् में प्रसिद्ध किया है अब मेरे वाक्य से याचना किया हुआ तू हे वत्स रावण को छोड़दे

अतिथि की याचना सुन कर अर्जुन कुछ नहीं बोल सका किन्तु रावण को छोड़ दिया ॥

सर्ग ३-बाली से रावण का पराजय

दूसरा बाली है, जिसने रावण को जीता। बालि के बल की चर्चा सुनकर रावण किष्किन्धा में पहुंचा, बाली उस समय सन्ध्या उपास रहा था। पुष्पक से उतरकर रावण जो बाली की ओर बढ़ा, तो बाली ने भी उसे देख लिया, और उसके अभिप्राय को जान लिया। पर उसे कुछ घबराहट नहीं हुई। उसने रावण को ऐसी बेपरवाही से देखा, जैसे शेर शशक को वा गरुड़ सर्प को देखता है। वह अचल बैठा रहा। जब रावण पास आया, तो उसे बगल में दबाकर सन्ध्योपासन करता रहा। सन्ध्या उपास कर उसे छोड़ दिया, और हंसते हुए पूछा कि आप कहां से आए हैं। रावण बाली के बल पर ऐसा मोहित हुआ, कि उसने अपना नाम बतलाकर कहा, कि युद्ध के अभिप्राय से आपके पास आया था ॥

सोऽहं दृष्टबलस्तुभ्यामिच्छामि हरिपुंगव ।
त्वया सह चिरं सख्यं सुस्निग्धं पावकाग्रतः ॥

हे वानर श्रेष्ठ मैंने तेरा बल देख लिया है, अब मैं तेरे साथ अग्नि के सन्मुख सदा की स्नेह भरी मित्रता चाहता हूं ॥

तब अग्नि प्रज्वलित करके वह दोनों एक दूसरे के भाई बने, हाथ मिलाए और गले लगे। तिस पीछे रावण किष्किन्धा में एक महीना रह कर फिर लङ्का को चला गया।

सर्ग ४–जनक युधाजित् प्रतर्दन, और दूसरे राजाओं तथा सुग्रीव विभीषण को विदाई

इसी प्रकार कई दिनों तक ऋषिमुनि आनन्दोत्सव करके रामचन्द्रजी को आशीर्वाद देकर चले गए। तब रामचन्द्रजी ने कुछ रत्न आगे रखकर मिथिलाधिपति जनक से हाथ जोड़कर विनती की कि आप के उग्र तेज से रावण मारा गया है। इक्ष्वाकुओं का और जनकों का अतुल प्रेम और सम्बन्ध है। आप के इस आगमनका बहुत अनुगृहीत हूं। अब आप अपनी प्रजा को जाकर आनन्दित करें। भरत आप को छोड़ने जाएगा। जनक ने तथास्तु कहा, और वह रत्न वापिस देकर कहा, कि यह मैं अपनी कन्याओं को देता हूं। यह कह कर जनक भरत के साथ चला गया।

फिर रामचन्द्रजी ने केकय देश के राजा अपने मामा (भरत के सगे मामा) युधाजित् के आगे रत्न रखकर अभिवादन कर और प्रदक्षिणा करके लक्ष्मण को साथ देकर विदा किया। युधाजित् ने वह रत्न तो राम को ही देदिये, और प्रदक्षिणा करके लक्ष्मण के साथ प्रस्थित हुआ॥

तब राम ने अपने मित्र काशिपति प्रतर्दन को विदा करते हुए कहा, मैं आपका कृतज्ञ हूं, कि आपने भरत के साथ मेरी सहायता के लिये जो उद्योग किया, उससे आपने मेरे साथ प्रीति और सौहार्द दिखलाया है॥

इसके पीछे और तीन सौ अधीन राजों को राम ने आदर सत्कार के साथ विदा किया॥

जब भरत और लक्ष्मण बहुत सी भेंट पूजा लेकर वापिस आगये, तो राम ने सुग्रीव और विभीषण और दूसरे वानर सेनापतियों को बहुत बड़े रत्न दिए, और हनुमान् और अंगद को अपने निज के भूषणों से भूषित किया और बिदा किया॥

सर्ग ५-सीता की गर्भ वासना

इष्ट मित्रों को विदाकर राम प्रजा की सुख वृद्धि में लगे। प्रतिदिन धर्म कार्यों को करके राज्यकार्यों में लग जाते। इसीतरह जाड़े के दिन बीते, वसन्त प्रवृत्त हुआ। तब एक दिन राम धर्म कार्य करके अन्तःपुर में गये। इधर सीता भी देवकार्य करके अपनी सभी सासों की एक सी पूजा करके अन्तःपुर में आई। उसे देख राम को अतुल हर्ष हुआ, क्योंकि सीता के अब सन्तति होनेवाली थी। राम बड़े प्रेम से सीता से बोले :-

अपत्यलाभो वैदेहि त्वय्ययं समुपस्थितः।
किमिच्छसि वरारोहे कामः किं क्रियतां तव।

हे वैदेहि! यह सन्तति का लाभ तुझमें प्राप्त हुआ है हे वरारोहे तू क्या चाहती है, कौनसी तेरी कामना पूरी की जाए॥

पति के इस प्रीति वचनको सुनकर सीता मुस्कराकर बोली।

तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टु मिच्छामि राघव।
गंगातीरोपविष्टाना मृषीणा मुग्रतेजसाम्॥

हे राघव गङ्गातीर पर रहनेवाले उग्र तेजवाले ऋषियों के पुण्य तपोबनो को देखना चाहती हूं।

राम ने तथास्तु कहकर कहा, कि कल ही तू अवश्य जा सकेगी॥

सर्ग६-राक्षस के घर रही सीता को फिर घर में लेआने की पुरमें चर्चा

अब राम अपने निज के मन्दिर में आए, वहां इष्ट मित्रों से उपहास कथाओं के प्रसंग में राम ने पूछा, कि पुर के लोगों में मेरे वा भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के और सीता और मेरी माताओं के विषय में क्या बात चीत होती है। तब उन में से भद्र हाथ जोड़कर बोला, हे राजन्! पुरवासी प्रायः रावण को

जीतने की कथायें करते हैं। फिर राम ने कहा, भद्र पुरवासी जो कुछ शुभ वा अशुभ कहते हैं, वह सभी कहो। भद्र हाथ जोड़कर फिर बोला, हे राजन्! सुनिये जो कुछ पुरवासी शुभ अशुभ कहते हैं, राम ने बड़ा आश्चर्य काम किया है, जो समुद्र में पुल बांधा है, यह काम न पहले दैत्यों से होसका है, न देवताओं से होसका है। और दूसरा वानर और ऋक्षों को बस में किया है, और रावण को उस की सेना समेत मारा है। इन कामों की बड़ाई करते हैं। पर साथही यह भी सुनाई देता है, कि राक्षस के घर में गई सीता को रामने फिर स्वीकार करलिया है, यह अनुचित हुआ है। अतः—

अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति।
यथा हि कुरुते राजा प्रजा तमनुवर्तते॥

हमें भी अपनी स्त्रियों के विषय में सब कुछ सहारना होगा, क्योंकि राजा जैसा करते हैं, प्रजाएं उसके पीछे चलती हैं।

सर्ग ७—लक्ष्मण को सीता के त्याग की आज्ञा।

यह सुनते ही राम को एक चोट सी लगी, गोष्ठी को विसर्जन किया, और स्वयम् शोक और विचार में डूब गया। देर तक गहरे विचार में पड़ा रहकर अपने मनमें एक निश्चय करके उसी समय भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न को बुलवाया। उन्होंने आकर देखा, कि सन्ध्या कालीन सूर्य की तरह राम का मुख तेज से हीन है। और नेत्रों से आंसू छमाछम गिर रहे हैं। वह प्रणाम करके सामने खड़े होगये। रामने आंसू पोंछकर उनको आसनों पर बिठलाया॥

जब वह बैठ गये, तो राम सूखते हुए मुख से बोले। भाइयो सब ध्यान देकरसुनो, सीता के विषय में पुरवासियों में यह चर्चा चल रही है, कि वह राक्षस के घर में रही है। यह लोकनिन्दा

मेरे मर्मों को चीरती है। मैं इक्ष्वाकु महात्माओं के कुल में उत्पन्न हुआ हूं, और सीता भी जनक महात्माओं के सत्कुल में उत्पन्न हुई है। हे लक्ष्मण तू जानता है, कि जिसतरह सीता रावण ने हरी, और जैसे रावण को विध्वंस किया। उस समय मेरे मन में आया, कि लंका में रही सीता को कैसे घर लेचलूं। तब सीता जलती अग्नि में प्रविष्ट हुई। और तेरे सामने हे लक्ष्मण सीता को अग्नि ने शुद्ध कर दिखलाया। मेरा अन्तरात्मा भी सीता को शुद्ध बतलाता है। पर अब यह अपवाद असह्य है। मैंने यशस्वी इक्ष्वाकुवंश में अपकीर्ति उत्पन्न करदी है। इस जैसा मुझे कभी कोई दुःख नहीं हुआ है। सो हे लक्ष्मण! कल प्रभात के समय तू सीता को रथ पर चढ़ाकर गंगा से पार वाल्मीकि के आश्रम के निकट त्यागकर चला आ। हे भ्राताओ मेरी इस मति को कोई मत रोको, यदि मेरे शासन में स्थित हो, तो मेरे इस शासन का मान करो। आजही सीता ने मुझे कहा है, कि गंगा तीर पर मैं आश्रमों को देखना चाहती हूं। सो उसे आश्रमों के देखने के लिये वहां छोड़ आ। यह कहते हुए राम के नेत्र आंसुओं में डुबडुबाए, और वह ठण्डा सांस भर कर उठ खड़े हुए॥

सर्ग ८—लक्ष्मण का सीता को त्याग के लिये लेजाना और सीता का भोलापन

रात बीती, प्रभात हुई। लक्ष्मण सुमन्त्र से रथ जुड़वा कर सीता के निकट गया और कहा। हे देवि! राजाज्ञा से आज आपके लिये यह रथ आया है, आप गंगा तीर पर चलकर ऋषियों के आश्रमों को देखेंगी॥

एवमुक्ता तु वैदेही लक्ष्मणेन महात्मना।
प्रहर्षमतुलं लेभे गमनं चाप्यरोचयत्॥

वासांसिच महार्हाणि रत्नानि विविधानि च ।
गृहीत्वा तानि वैदेहि गमनायोपचक्रमे ॥
इमानि मुनिपत्नीनां दास्याम्याभरणानि च ।
वस्त्राणि च महार्हाणि धनानि विविधानि च ॥

महात्मा लक्ष्मण से ऐसे कही हुई सीता अतुल हर्ष को प्राप्त भई, और जाना पसन्द करती भई । बहुमूल्य वस्त्र और भान्ति भान्ति के रत्न लेकर सीता जाने को तय्यार हुई कि यह भूषण और यह बहुमूल्य वस्त्र और यह विविध धन मैं मुनिपत्नियों को दूंगी ॥

अयोध्या से चलकर रात को वह गोमती के तीर पर एक आश्रम में रहे । दूसरे दिन सवेरे चलकर दोपहर को गंगा पर पहुंचे । अभी तक लक्ष्मण अपने आप को रोके हुए था, पर अब इस गंगा से पार सीता को त्यागना है, यह मन में आने से बहुत रोया। सीता लक्ष्मण को आतुर देखकर भोले भाव में कहने लगी ॥

जाह्नवीतीरमासाद्य चिराभिलषितं मम ।
हर्षकाले किमर्थं मां विषादयसि लक्ष्मण ॥
नित्यं त्वं राम पार्श्वेषु वर्तसे पुरुषर्षभ ।
कच्चिद्विना कृतस्तेन द्विरात्रं शोकमागतः ॥
ममापि दयितो रामो जीवितादपि लक्ष्मण ।
नैवाहमेवं शोचामि मैवं त्वं बालिशो भव ॥
तारयस्व च मां गंगां दर्शयस्व च तापसान् ।
ततो मुनिभ्यो वासांसि दास्याम्याभरणानि च ।
ततः कृत्वा महर्षीणां यथार्ह मभिवादनम् ।

तत्र चैकां निशामुष्य यास्यामस्तां पुरीं पुनः ॥
ममापि पद्मपत्राक्षं सिंहोरस्कं कृशोदरम् ।
त्वरते हि मनो द्रष्टुं रामं रमयतां वरम् ॥

हे लक्ष्मण गंगा तीर पर जिसकी मुझे चिर से अभिलाषा थी पहुंचकर हर्ष के समय में किस लिये मुझे उदास करता है। हे नरश्रेष्ठ सदा तू राम के पास रहता है क्या उससे अलग होकर दो ही दिन में इतने शोक को प्राप्त हुआ है। हे लक्ष्मण मुझे भी राम जीवन से भी प्यारा है,पर मैं शोक में नहीं हूं,तू भी बालक न बन। मुझे गंगा से पार उतार और मुनियों के दर्शन करा, तब मैं मुनियों को वस्त्र और भूषण दूंगी। वहां महर्षियों को यथायोग्य अभिवादन करके और एक रात रहकर फिर पुरी को जाएंगे। मेरा मन भी उस पद्मपत्र तुल्य नेत्रों वाले शेरकी छाती वाले कृश पेटवाले आनन्द देने वालों में श्रेष्ठ राम को देखने की जल्दी कर रहा है ॥

सर्ग ९-त्याग के स्थान पर लक्ष्मण का विलाप और सीता के वचन

अब वह नौका से गंगा पार उतरे। वाल्मीकि के आश्रम से कुछ दूर लक्ष्मण हाथ जोड़कर सीता से कहने लगा:—

हृद्गतं महच्छल्यं यस्मादार्येण धीमता ।
अस्मिन्निमित्ते वैदेहि लोकस्य वचनीकृतः ॥
श्रेयोहि मरणं मेऽद्य मृत्युर्वायत्परो भवेत् ।
न चास्मिन्नीदृशेकार्येनियोज्यो लोकनन्दिते ॥
प्रसीद च न मे पापं कर्तुमर्हासि शोभने ।
इत्यञ्जलिकृतो भूमौ निपपात सलक्ष्मणः ॥

मेरे हृदय में यह भारी शल्य है, कि बुद्धिमान् आर्य ने इस कार्य में मुझे लोक का निन्दनीय बना दिया है। मेरा आज मरना अच्छा है, वा मृत्यु से भी परे जो कुछ हो, किन्तु इस निन्दित कार्य में मुझे नियुक्त नहीं करना था। प्रसन्न हो हे शोभने! मेरा दोष न जान, यह कहकर हाथ जोड़े हुए लक्ष्मण भूमि पर गिरपड़ा॥

इसप्रकार लक्ष्मण को रोता हुआ, और अपनी मृत्यु चाहता हुआ देखकर सीता बड़ी उदास होकर बोली॥

किमिदं नावगच्छामि ब्रूहि तत्त्वेन लक्ष्मण।
पश्यामि त्वां न च स्वस्थमपि क्षेमं महीपतेः॥
शापितोऽसि नरेन्द्रेण यत् त्वं सन्तापमागतः।
तद्ब्रूयाः सन्निधौ मह्यमहमाज्ञापयामि ते॥

यह क्या, मैं नहीं जानती हे लक्ष्मण मुझे ठीक २ कहो। मैं तुझे स्वस्थ नहीं देखती हूं, क्या राजा को तो कुशल है। तुझे राजा की शपथ है, तुझे जिससे सन्ताप होरहा है, वह बात मेरे सामने कहो, मैं तुझे आज्ञा देती हूं॥

सीता से आज्ञा दिया हुआ लक्ष्मण सिर नीचे कर रुकते हुए कंठ से यह वाक्य बोलाः—

श्रुत्वा परिषदो मध्ये ह्यपवादं सुदारुणम्।
पुरे जनपदे चैव त्वत्कृते जनकात्मजे॥
रामः सन्तप्तहृदयो मां निवेद्य गृहं गतः।
न तानि वचनीयानि मया देवि तवाग्रतः॥
यानि राज्ञा हृदि न्यस्तान्यमर्षात् पृष्ठतः कृतः।
सा त्वं नृपतिना त्यक्ता निर्दोषा मम सन्निधौ॥

परापवाद भीतेन ग्राह्यं देवि न तेऽन्यथा ।
आश्रमान्तेषु च मया त्यक्तव्या त्वं भविष्यसि ॥
राज्ञः शासनमादाय तथैव किल दौर्हृदम् ।
तदेतज्जाह्नवीतीरे ब्रह्मर्षीणां तपोवनम् ।
पुण्यं च रमणीयं च मा विषादं कृथाः शुभे ॥
राज्ञो दशरथस्यैव पितुर्मे मुनिपुंगवः ।
सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमहायशाः ॥
पादच्छाया मुपागम्य सुखमस्य महात्मनः ।
उपवासपरैकाग्रा वस त्वं जनकात्मजे ॥
पतिव्रतात्वमास्थाय रामं कृत्वा सदा हृदि ।
श्रेयस्ते परमं देवि तथा कृत्वा भविष्यति ॥

हे जनकसुते देश में और पुर में तेरे लिए फैले अपवाद को सभा के मध्य में सुन कर । राम सन्तप्त हृदय हुआ मुझे बतलाकर घर गया । हे देवि ! वह बातें मैं तेरे सामने नहीं कह सक्ता हूं । जो राजा ने हृदय में रखी हैं, मैं वह नहीं सह सक्ता, इस लिये वह अपवाद नहीं कहता हूं । सो निर्दोषा तू मेरे सामने लोकापवाद के डर से राजा से त्यागी गई है । हे देवि ! इसे अन्यथा न समझना । आश्रम के निकट मैंने तुझे छोड़ना है । राजा की आज्ञा से और वैसेही तेरी भी गर्भाभिलाषा है । सो यह गंगा के किनारे ब्रह्मर्षियों का तपोवन है । पवित्र और रमणीय है, हे शुभे ! विषाद मत कर । यह महायशस्वी मुनिवर वाल्मीकि मेरे पिता राजा दशरथका परम सखा है । इस महात्माकी पादच्छाया के आश्रय उपवास परायण हुई, हे जनकात्मजे ! पतिव्रताभाव

को पकड़कर राम को सदा हृदय में सुख से बसा । ऐसा करने से हे देवि ! तेरा परम कल्याण होगा ॥

सर्ग १०—सीता का विलाप और संदेश

लक्ष्मण के दारुण वचन को सुनकर सीता मूर्छा खाकर गिर पड़ी । कुछ देर बेसुरत रहकर सुरत में आ लक्ष्मण से बोली :—

मामकेयं तनूर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण ।
धात्रा यस्यास्तथा मेऽद्य दुःखमूर्तिः प्रदृश्यते ॥
किं नु पापं कृतं पूर्वं को वा दारैर्वियोजितः ।
याहं शुद्धसमाचारा त्यक्ता नृपतिना सती ॥
पुराऽहमाश्रमे वासं रामपादानुवर्तिनी ।
अनुरुध्याऽपि सौमित्रे दुःखे च परिवर्तिनी ॥
सा कथं ह्याश्रमे सौम्य वत्स्यामि विजनीकृता ।
आख्यास्यामि च कस्याहं दुःखं दुःखपरायणा ॥
किं नु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म चासत्कृतं प्रभो ।
कस्मिन् वा कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना ॥
नखल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीजले ।
त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते ॥
यथाज्ञं कुरु सौमित्रे त्यज मां दुःखभागिनीम् ।
निदेशे स्थीयतां राज्ञः शृणु चेदं वचो मम ॥

हे लक्ष्मण मेरा यह शरीर निःसन्देह धाता ने दुःख के लिये रचा है, जिसकी आज यह दुःख की मूर्त्ति दिखलाई देती है । मैंने पूर्व क्या पाप किया है, वा किसको स्त्रियों से वियुक्त किया

है, जो मैं शुद्ध आचारवाली पतिव्रता पति से त्यागी गई हूं। पहले मैं हे लक्ष्मण रोकी जाकर भी दुःख सहती हुई भी राम की पादच्छाया होकर आश्रम में वास करती भई। सो मैं हे सौम्य! कैसे अब इष्टजन से अलग हुई, आश्रम में बसूंगी और किस को मैं दुःखिया अपना दुःख कहूंगी। और क्या मैं मुनियों में कहूंगी हे प्रभु! कि मैंने क्या असत्कर्म किया है। वा किस निमित्त मुझे राम महात्मा ने त्यागा है। हे लक्ष्मण अभी मैं गंगा के प्रवाह में अपना जीवन क्या न त्याग देती, किन्तु मेरे स्वामी का राजवंश शून्य होजाएगा। तू आज्ञानुसार कर, हे लक्ष्मण! मुझे दुःख भागिनी को त्याग, राजा की आज्ञा में स्थित हो, और मेरा यह वचन सुन॥

श्वश्रूणामविशेषेण प्राञ्जलि प्रग्रहेण च।
शिरसा वन्द्य चरणौ कुशलं ब्रूहि पार्थिवम्॥
वक्तव्यश्चापि नृपतिर्धर्मेषु सुसमाहितः।
जानासि च यथा सीता शुद्धा तत्त्वेन राघव॥
भक्त्या च परयायुक्ता हिता च तव नित्यशः।
यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः॥
मया च परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमागतिः।
वक्तव्यश्चैव नृपतिर्धर्मेण सुसमाहितः॥
यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा।
परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात् कीर्तिरनुत्तमा॥
यत्तु पौरजने राजन् धर्मेण समवाप्नुयात।
अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ॥

यथापवादः पौराणां तथैव रघुनन्दन ।
पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ॥
प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तुः कार्यं विशेषतः ।
इति मद्वचनाद्रामो वक्तव्यो मम संग्रहः ।

मेरी सारी सासों को एक जैसे हाथ जोड़कर और सिर से उनके चरण छूकर कुशल कहो और राजा को कुशल कहो। और सारे धर्मों में सावधान राजा को यह कहना। हे राघव तू ठीक २ जानता है, कि सीता शुद्ध है, परम भक्ति से युक्त है, और सदा तेरे हित में है। जो तेरा अपवाद उठा है, वह मुझे दूर करना चाहिये, क्योंकि तू मेरी परमगति है। और धर्म से सावधान राजा को यह कहना कि जैसे भाइयों में बर्तो, वैसे ही सदा पुर के लोगों में वर्तना। हे राजन् पुर के लोगों में धर्म के बर्ताव से जो पुण्य मिलता है, वही परम धर्म है, उसी से राजा का उत्तम यश है। हे नरश्रेष्ठ मैं अपने शरीर का शोक नहीं करती हूं, हे रघुनन्दन जैसे पुर के लोगों में तेरा अपवाद न हो, वैसे रहो। पति स्त्री का देवता है, पति बन्धु है, पति गुरु है, इसलिये मुझे विशेष करके प्राणों से भी बढ़कर भर्ता का प्रिय करना चाहिये। यह मेरे वचन से राम को मेरा सन्देश कहना ॥

सर्ग ११–सीता का विलाप और सीता पर वाल्मीकि की दया।

लक्ष्मण रोता हुआ, सीता की प्रदक्षिणा कर और प्रणाम करके वापिस नौका से पार उतर आया और :—

मुहुर्मुहुः परावृत्य दृष्ट्वा सीता मनाथवत् ।
चेष्टन्तीं परतीरस्थां लक्ष्मणः प्रययावथ ॥
दूरस्थं रथमालोक्य लक्ष्मणं च मुहुर्मुहुः ।

निरीक्षमानां तु द्विग्नां सीतां शोकः समाविशत् ॥

सा दुःख भारावनता यशस्विनी यशोधरानाथ मपश्यती सती । रुरोद सा! बर्हिणनादिते वने महास्वनं दुःखपरायणा सती ॥

दूसरे किनारे पर अनाथ की तरह लेटती हुई सीता को बार २ गर्दन फेरकर देखता हुआ लक्ष्मण चला गया । दूर २ जाते हुए रथ को और लक्ष्मण को बार २ देखकर उद्विग्न हुई सीता को शोक ने आन घेरा । दुःख के बोझ से दबी हुई यश धारने वाली यशस्विनी अपना कोई नाथ न देखती हुई दुःख से भरी हुई वह पतिव्रता मोरों से गूंजते हुए उस बन में धाड़े मार २ कर रुदन करती भई ॥

सीता को रोती देखकर मुनियों के बालक वाल्मीकि के पास गये और कहाः—

नद्यास्तु तीरे भगवन् वरस्त्री कापि दुःखिता ।
दृष्टाऽस्माभिः प्ररुदिता दृढं शोकपरायणा ।
अनर्हा दुःखशोकाना मेका दीना अनाथवत् ।

हे भगवन् नदी के किनारे पर एक उत्तम स्त्री हमने देखी है, जो दुःख और शोक के योग्य नहीं है, वह अकेली दीन हुई अनाथ की तरह दुःख और शोक से भरी हुई अत्यन्त रुदन कर रही है ॥

वाल्मीकि करुणा करके जो उठकर आए, तो उन्हों ने सीता को देखकर अपने तेज से उसके चित्त को आल्हादित करते हुए मधुर बाणी से कहाः—

स्नुषा दशरथस्य त्वं रामस्य महिषी प्रिया।
जनकस्य सुता राज्ञः स्वागतं ते पतिव्रते।
आयान्ती चासि विज्ञाता मया धर्मसमाधिना।
कारणं चैव सर्वं मे हृदयेनोपलक्षितम्।
अपापां वेझि सीते त्वां तपोलब्धेन चक्षुषा।
विस्रब्धा भव वैदेहि साम्प्रतं मयि वर्तसे।

तू दशरथ की स्नुषा राम की प्यारी पटरानी राजा जनक की पुत्री है, हे पतिव्रते तुझे स्वागत हो। मैंने धर्मसमाधि से तेरे आने को जान लिया है, और कारण भी सारा मुझे हृदय से मालूम होगया है। हे सीते तप से पाई दिव्यदृष्टि से मैं तुझे निष्पाप जानता हूं, विश्वस्त हो हे वैदेहि अब तू मेरे पास है॥

यह कहकर मुनि ने उसे अर्घ्य दिया, और फिर अपने साथ मुनिपत्नियों के पास लेगया, और मुनिपत्नियों से कहाः—

सीतेयं समनुप्राप्ता पत्नी रामस्य धीमतः।
स्नुषा दशरथस्यैषा जनकस्य सुता सती।
अपापा पतिना त्यक्ता परिपाल्या मया सदा।
इमां भवत्यः पश्यन्तु स्नेहेन परमेण हि।
गौरवान्मम वाक्याच्च पूज्या वोऽस्तु विशेषतः।

यह सीता आई है, जो बुद्धिमान् राम की पत्नी दशरथ की स्नुषा और राजा जनक की पुत्री है। यह निर्दोष पति से त्यागी हुई, मुझ से सदा पालने योग्य है। इसको आप सब परम स्नेह से देखें, गौरव से और मेरे बचन से यह विशेषतः आपसे पूज्य हो।

सर्ग १२–लवणासुर से तंग आए मुनियों का राम की शरण आना ।

निरपराध सीता को त्यागकर राम को जो दुःख हुआ, वह वर्णन से बाहर है, चारदिन तक वह अपने मन्दिर से बाहर नहीं निकले । चौथे दिन जब दोपहर को लक्ष्मण वापिस आया, और उसने बतलाया, कि सीता को वाल्मीकि ने अपने आश्रम में लेलिया है, तो रामचन्द्र अन्दर शोक से भरे रहकर भी अपना कर्तव्य जान राजकार्यों में पूर्ववत् प्रवृत्त हुए । इसीतरह शीत बीत गया और बसन्त ऋतु आया । एक दिन रामचन्द्रजी सवेरे दैवकार्य करके जब राज-कार्य में प्रवृत्त हुए, तो यमुना तीर वासी मुनिजन भृगुगोत्री च्यवन को आगे करके दरबार में पहुंचे । उन्होंने फल मूल राम को भेंट दिये । राम ने बड़े आदर से स्वीकार करके उनको बिठलाया और कहा ॥

किमागमनकार्यं वः किं करोमि समाहितः ।
आज्ञाप्योऽहं महर्षीणां सर्वं कामकरः सुखम् ॥

आपके आनेका क्या प्रयोजन है, मैं सावधान होकर क्या करूं, मैं महर्षियों की आज्ञा पा सुख से सारी इच्छाओं के लिये प्रयत्न करनेवाला हूं ॥

ऋषि बोले, हे महाराज लवण राक्षस ने मधुवनवासी ऋषियों को बहुत तंग कर रखा है । हम बहुत से राजाओं के पास रक्षा के लिये गये हैं, पर उसके साथ युद्ध को कोई तय्यार नहीं हुआ । यह सुनकर कि आपने रावण को मारा है, आपको रक्षक जान आपके पास आए हैं ॥

ऋषियों को उसके मारने का वचन देकर रामचन्द्रजी पास स्थित भरत और शत्रुघ्न से बोले, यह काम तुममें से किसके हिस्से में आए । यह आज्ञा सुनते ही भरत आसन से उठ खड़ा हुआ, परउसी

समय शत्रुघ्न ने प्रणाम करके राम से यह बिनती की कि आर्य (भरत) ने आपसे शून्य राज्य का तपस्वी बनकर पालनकिया है, और बहुत क्लेश उठाए हैं। अब यह अनुग्रह इस दास पर कीजिये। शत्रुघ्न के भ्रातृ-प्रेम और उत्साह का आदर करके राम ने उसका जाना स्वीकार किया। और साथ ही मधुरा (मधुनगर) का राजा बनाकर अयोध्या में ही उस को राजतिलक देदिया। एक अपना बाण देकर और चार सहस्र घुड़ सवार और दो सहस्र हाथी सवार देकर विदा किया॥

सर्ग १३-शत्रुघ्न का वाल्मीकी के आश्रम में रात्रिवास और कुशलव की उत्पत्ति

शत्रुघ्न दो रातें मार्ग में रहकर तीसरी रात वाल्मीकि के आश्रम में जाकर रहा। जिस रात को शत्रुघ्न वाल्मीकी के आश्रम में रहा, उसी रात सीता के दो पुत्र उत्पन्न हुए। आधीरात के समय यह शुभ समाचार वाल्मीकि को मिला, और यह कर्णामृत शत्रुघ्न ने भी सुना। वाल्मीकि ने एक कुशा की मुट्ठी मध्य में से काट कर वृद्धा स्त्रियों को दी, और कहा, कि इस के अग्रभाग से बड़े लड़के का मार्जन करो और मूल से छोटे का। अग्र को कुश और मूल को लव कहते हैं। इसीसे उनका नाम भी कुश और लव हुआ।

सर्ग १४-शत्रुघ्न का लवण को जीतना और मधुरा की रौनक

वहां से चलकर शत्रुघ्न सात रातें मार्ग में रहा, आठवीं रात मधुरा के निकट यमुना तीर पर रहा। वहां शत्रुघ्न ने लवण का समय-विभाग च्यवन से पूछा, तो मालूम हुआ कि वह सवेरे कुछ साथी साथ लेकर आखेटको चला जाताहै। यही अच्छा अवसर जान सवेरे जब वह वनमें शिकार को गया हुआ था, तो शत्रुघ्न ने मुधरा को जा घेरा। जब लवण आया, तो शत्रुघ्न ने उसे द्वन्द्व युद्ध का आह्वान

दिया। दोनों में बड़ा घोर युद्ध हुआ। देखने वाले सब देख २ कर अचम्भित होते थे, अन्ततः शत्रुघ्न ने वह बाण जो राम ने उसे दिया था, उस अमोघ बाण से लवण को मारकर नीचे गिरा दिया

मधुरा जो अर्द्धचन्द्राकार से यमुना तीर पर बसी थी, उस की रौनक को अब शत्रुघ्न ने बहुत बढ़ाया। प्रजा बहुत प्रसन्न थी। व्यवहार बढ़े हुए थे॥

सर्ग १५–शत्रुघ्न का राम को मिलना

इसप्रकार मधुरा को पालन करते हुए शत्रुघ्न को बारह वर्ष बीत गये। तब अपने मन्त्रियों और कुछ सेना को साथ लेकर रामचन्द्रजी के दर्शन के लिये अयोध्या आए। मार्ग में वाल्मीकी के आश्रम में उन्होंने वाल्मीकिकृत रामायण सुना। जिसमें सारा राम का चरित्र प्रत्यक्षवत् वर्णित था। दूसरे दिन अयोध्या में आ शत्रुघ्न ने रामचन्द्रजी के और दूसरे भाइयों के दर्शन किये। शत्रुघ्न ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, कि महाराज मुझे बारह वर्ष आपसे वियुक्त हुए होगये हैं। मैं देर तक आप से अलग नहीं रह सक्ता। रामचन्द्रजीने उसे कहा, हे वीर उदास मत हो, यह क्षत्रियों का काम नहीं, क्षत्रिय परदेश में दुःखी नहीं होते, धर्म से प्रजा का पालन क्षत्रिय का धर्म है। सो यहां सात दिन रहकर वहां जाकर अपनी प्रजा का पालन करो, और समय समय पर आकर मिलते रहो। तब सात दिन के पीछे रामचन्द्रजी ने शत्रुघ्न को फिर अपने राज्य में भेज दिया॥

सर्ग १६–रामचन्द्रजी का अश्वमेध यज्ञ करना

अब रामचन्द्रजी ने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। यज्ञ का स्थान गोमती के किनारे नैमिषवन निश्चित हुआ। सब

गये। भरत और शत्रुघ्न राजों के सत्कार में,सुग्रीव अपने साथियों सहित ब्राह्मणों के सत्कार में और विभीषण ऋषियों और तपस्वियों के सत्कार में नियुक्त किया गया। राजों के लिये बहुमूल्य सजे हुए डेरों के घर बने। पुण्य ऋषिवाड़ों में और ब्राह्मणों के घरों में वेद की ध्वनि होने लगी और यज्ञ का धूप सुगन्धि फैलाने लगा। लक्ष्मण के अधिकार में अश्वमेध का घोड़ा छोड़ा गया, सब अपने २ कार्य में दत्तचित्त होगये, सुवर्ण मयी सीता यजमानपत्नी के स्थान स्थित हुईः—

न निःसृतं भवत्योष्ठाद्वचनं यावदर्थिनाम्।
तावद् वानररक्षोभिर्दत्तमेवाभ्यदृश्यत॥
ये च तत्र महात्मानो मुनयश्चिरजीविनः।
नास्मरंस्तादृशं यज्ञं दानौघसमलंकृतम्॥
यः कृत्यवान् सुवर्णेन सुवर्णं लभते स्म सः।
वित्तार्थी लभते वित्तं रत्नार्थी रत्नमेव च॥
सर्वत्र वानरास्तस्थुः सर्वत्रैव च राक्षसाः।
वासोधनान्नकामेभ्यः पूर्णहस्ताददुर्भृशम्॥
ईदृशो राजसिंहस्य यज्ञः सर्वगुणान्वितः।
संवत्सरमथो साग्रं वर्तते न च हीयते॥

अर्थियों के होंटों से जब तक वचन नहीं निकलता है, तभी तक वह वस्तु वानरों और राक्षसों से दी हुई ही देखी जाती है। जो वहां चिरंजीवी महात्मा मुनि थे, उनको दान समूह से शोभायमान ऐसा कोई यज्ञ पहले का स्मरण नहीं आता था। जो सोने से अर्थी होता, वह सोना पाता, धनार्थी धन पाता, और रत्नार्थी

रत्न ही पाता। सर्वत्र वानर स्थित थे, सर्वत्र राक्षस स्थित थे। वह वस्त्र, धन और अन्न चाहने वालों को भरे हाथों से बहुत देते थे। ऐसा उस राजसिंह का सारे गुणों से युक्त यज्ञ बरस भर से ऊपर हुआ, कुछ त्रुटि नहीं आई॥

सर्ग १७—वाल्मीकि का अश्वमेध में आगमन और कुशलव को रामायण गाने की आज्ञा

इस यज्ञ में वाल्मीकि मुनि भी अपने शिष्यों समेत आए। और सुन्दर एकान्त स्थान में अपना वास स्थिर किया। वाल्मीकि मुनि अपने दो चुने हुए शिष्यों कुश और लव से बोले। बेटा जाओ, सम्पूर्ण रामायण काव्य को आनन्द से गाते फिरो। पवित्र ऋषिवाड़ों में ब्राह्मणों के घरों में गलियों में राजमार्गों में और राजाओं के भवनों में गाओ। विशेषतः राम के भुवन के द्वार पर जाकर, कि जहां ऋत्विज् कर्म कर रहे हैं गाओ॥

इमानि च फलान्यत्र स्वादूनि विविधानि च।
जातानि पर्वताग्रेषु आस्वाद्यास्वाद्यगायताम्॥
न यास्यथः श्रमं वत्सौ भक्षयित्वा फलान्यथ।
मूलानि च सुमृष्टानि न रागात् परिहास्यथः।
यदि शब्दापयेद्रामः श्रवणाय महीपतिः।
ऋषीणामुपविष्टानां यथायोगं प्रवर्तताम्।
दिवसे विंशतिः सर्गा गेयाः सुमधुरया गिरा।
प्रमाणैर्बहुभिस्तत्र यथोद्दिष्टं मया पुरा।
लोभश्चापि न कर्तव्यः स्वल्पोपि धनवाञ्छया।
किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलाशिनां सदा।

यदि पृच्छेत् स काकुत्स्थः युवां कस्येति दारकौ।
वाल्मीकेरथ शिष्यौ द्वौ ब्रूतमेवं नराधिपम् ।
इमास्तन्त्रीः सुमधुरा स्थानं वाऽपूर्वदर्शनम् ।
मूर्छयित्वा सुमधुरं गायतां विगतज्वरौ ।
आदि प्रभृति गेयं स्यान्नचावज्ञाय पार्थिवम् ।
पिता हि सर्व भूतानां राजा भवति धर्मतः ।
तद्युवा हृष्टमनसौ श्वः प्रभाते समाहितौ ।
गायतं मधुरं गेयं तन्त्रीलयसमन्वितम् ।

यह भान्ति २ के फल जो बड़े स्वादु हैं, पर्वतों की चोटियों पर उत्पन्न हुए हैं, इनको खा खाकर गाओ। हे बेटा! यह फल और यह कन्द खाकर न तुम थकोगे, न तुम्हारे कण्ठ की मधुरता में भेद आएगा। यदि महीपाति राम ऋषियों के बैठे हुए सुनने के लिये तुम्हें बुलाए, तो यथायोग्य गाओ। एक दिन में बीस सर्ग बहुत से प्रामाणों के साथ जैसा कि मैंने तुम्हें बतलाया है, बड़ी मीठी वाणी से गाओ। धन की इच्छा से थोड़ा भी लोभ नहीं करना आश्रम में रहनेवालों को धन से क्या, जो सदा फल मूल खाने वाले हैं। यदि राम तुमसे पूछे, कि तुम किसके लड़के हो, तो तुम राजा को यह उत्तर दो कि हम दोनों वाल्मीकि के शिष्य हैं। यह बड़ी मीठी ध्वनिवाली (बीणा की) तारें हैं,यह अपूर्व स्वरों के प्रकट होने का स्थान है, इससे मूर्छना का प्रकट करते हुए बड़ा मधुर गाओ। आरम्भ से लेकर गाना, और राजा की अवज्ञा नहीं करना (दूसरी जगह की तरह राजा के सामने हंसी आदिक नहीं करना) क्योंकि राजा धर्म से सब भूतों का पिता होता है।

सो तुम दोनों कल प्रभात के समय एकाग्र और प्रसन्न मन हुए तार और लय से युक्त मधुर गाना गाओ ॥

सर्ग १८–कुशलव का राम के सम्मुख रामायण गाना और राम से दिये पारितोषिक का परित्याग करना ॥

सो दूसरे दिन प्रभात के समय कुश और लव स्नानकर अग्निहोत्र करके रामायण को गाते हुए फिरने लगे। तार और लय से युक्त इस अपूर्व गीत को दोनों बालकों से सुनकर राम को बड़ा विस्मय हुआ। राम ने उन दोनों को बुला लिया, और कर्म के अवसर में छन्द स्वर तार राग के जाननेवालों के सामने उन का गाना सुनने लगेः–

ततः प्रवृत्तं मधुरं गान्धर्वमतिमानुषम् ।
न च तृप्तिं ययुः सर्वे श्रोतारो गेयसम्पदा ।
हृष्टा मुनिगणाः सर्वे पार्थिवाश्च महौजसः ।
पिबन्त इव चक्षुर्भिः पश्यन्ति स्म मुहुर्मुहुः ।
ऊचुः परस्परं चेदं सर्व एव समाहिताः ।
उभौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद् बिम्बमिवोद्धृतौ ।
जटिलौ यदि न स्यातां वल्कलधरौ यदि ।
विशेषं नाधिगच्छामो गायतो राघवस्य च ।

तब मनुष्यरागियों से बढ़ा चढ़ा हुआ, मधुर गाना प्रवृत्त हुआ। गेय वस्तु की महिमा से श्रोताजन तृप्ति को नहीं प्राप्त होते हैं। सब मुनिगण और सभी महापराक्रमी राजे प्रसन्न हुए आखों से मानों उनको बार २ पीते हुए बार २ देखते थे। सभी सावधान होकर यह कहते थे, दोनों राम के ए॰ सदृश हैं, मानों बिम्ब से दूसरे

बिम्ब लिए गए है। यदि जटा और बकले पहने हुए न हों, तो इन गानेवालों में और राम में हम कोई विशेष नहीं देखते हैं॥

जब वह बीस सर्ग गाचुके, तो उन्होंने गाना बन्द किया। राम का इशारा पाकर लक्ष्मण ने उनके आगे मुहरों के ढेर किये:—

दीयमानं सुवर्णं तु नागृह्णीयातां कुशीलवौ।
ऊचतुश्च महात्मानौ किमनेनेति विस्मितौ।
वन्येन फलमूलेन निरतौ वनवासिनौ।
सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने।

दिए हुए सुवर्ण को ग्रहण न करके महात्मा कुश और लव विस्मित होकर बोले, इससे हमें क्या। हम तो वनवासी जङ्गली हैं फल मूल मे प्रेम रखते हैं, इस सुन्दर रङ्ग के सोने से हम वन में क्या करेंगे॥

उनके इस वचन को सुनकर सभी श्रोते और राम अतीव विस्मित हुए। राम ने पूछा, तुम किसके हो, और यह काव्य किस ने रचा है। उन्होंने ने उत्तर दिया, हम वाल्मीकिमुनि के शिष्य हैं, यह काव्य उन्हीं की कृति है। महाराज यदि सारा सुनने का विचार है, तो कर्म के अवसर पर प्रतिदिन सुनो। राम ने बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया, तब वह मुनि शिष्य चले गये। और राम अपने कर्मों में प्रवृत्त हुए॥

सर्ग १९—सीता को साथ लेकर वाल्मीकि का राम के पास आना, और सीता के धर्मभाव का विश्वास दिलाना॥

उस गीत में राम ने कुश और लव को सीता के पुत्र जानकर और यज्ञ द्रष्टा ऋषि मुनि और राजाओं का अभिप्राय जानकर वाल्मीकि मुनि के पास दूत भेजे। कि सीता यदि शुद्ध

आचारवाली है, तो महामुनि की अनुमति में यहां आकर सब के सम्मुख अपनी शुद्धि प्रकट करे। वाल्मीकि ने उत्तर दिया। जैसा राम कहते हैं, वैसा ही सीता करेगी, क्योंकि पति स्त्री का देवता है। दूतों के वापिस सन्देश लाने पर रामने सब को विसर्जन करते हुए कहा, कि आप सब कल सीता की शपथ को सुनें॥

दूसरे दिन सवेरे राम सब ऋषि मुनि और राजे यज्ञ स्थान में आए। तब वाल्मीकि मुनि प्रविष्ट हुए, उन के पीछे २ सीता आई। तब उस जनसमुदाय के मध्य में प्रविष्ट होकर वाल्मीकि मुनि उच्चध्वनि से बोले हे रामः—

इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी।
अपवादात् परित्यक्ता ममाश्रमसमीपतः॥
इमौ तु जानकीपुत्रा वुभौ च यमजातकौ।
सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद् ब्रवीमिते॥
प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौतु तव पुत्रकौ॥
मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम्।
तस्याहं फल मश्नामि अपापा मैथिली यदि॥
इयं शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता।
लोकापवाद भीतस्य प्रत्ययं तव दास्यति॥

हे दशरथसुत! यह धर्मचारिणी अच्छे व्रतोंवाली सीता है। जोकि अपवाद से डरकर तूने मेरे आश्रम के समीप त्यागी है। और यह दोनों जोड़े उत्पन्न हुए जानकी के पुत्र हैं, यह तेरे ही दोनों दुर्धर्ष पुत्र हैं, तुझे सत्य कहता हूं। हे राम मैं प्रचेता का दसवां

पुत्र हूं, मुझे अपनी इतनी आयु में एक भी झूठ बोला हुआ स्मरण नहीं। मैं कहता हूं, यह तेरे पुत्र हैं। यदि सीता निष्पापा है, तो मैं जो मन वाणी और कर्म से पाप से सदा बचा हूं, उस का फल भोगूं। यह भी शुद्ध अचारवाली निष्पापा पति देवतावाली सीता लोक निन्दा से डरे हुए तुझ को विश्वास देगी॥

सर्ग २०—सीता का पृथिवी में प्रवेश

वाल्मीकि के ऐसा कहने पर राम बोले, हे ब्रह्मन्! मुझे आप के निष्काम वाक्यों से ही प्रत्यय है, और सीता पहले प्रत्यय देचुकी है, पर लोकापवाद बलवान् है, इस से मैंने शुद्ध जान कर भी इस का त्याग किया, वह आप क्षमा करने योग्य हैं। तब मुनिकी आज्ञा से सीता काषाय वस्त्र पहने हुए, हाथ जोड़े हुए, नीचे मुख किए हुए और नीची दृष्टि किए हुए, विश्वास देने के लिए तय्यार हुई। पर सीता क्या अब राज्य भोगना चाहती है, इस लिए विश्वास देती है। नहीं नहीं, जिस पतिव्रता ने अपने जीवनपण से अपने धर्मकी रक्षा की थी वह अपने ऊपर लगे मिथ्या कलङ्क से अत्यन्त अपमानित हुई अपने उज्ज्वल सतीत्व को साथ लेकर इस दुनिया से ही विदाई चाहती है। सो वह पतिव्रता अपने भक्तों की लाज रखनेवाले भगवान् के आगे सिर झुकाकर यों बोलीः—

यथाऽहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातु मर्हति।
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।
यथैतत्सत्य मुक्तं मे वेद्मि रामात् परं न च।

तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ।

यदि मैं राम से भिन्न किसी को मन से भी चिन्तन नहीं करती हूं, तो मुझे पृथ्वी देवी विवर (अपने अन्दर प्रवेश के लिये रन्ध्र=छिद्र) देने की कृपा करे। मन वाणी और कर्म से यदि मैं राम को ही पूजती हूं तो पृथ्वी देवी मुझे विवर देने की कृपा करे। यदि यह मैं सत्य कहती हूं कि राम से भिन्न दूसरे को मैं नहीं जानती हूं, तो पृथ्वी देवी मुझे विवर देने की कृपा करेः—

इस तरह तीनबार जब उस सती, पर दुःखिया, सीता के मुख से यही बचन निकला, तो देखनेवालों ने आश्चर्य युक्त होकर देखा, कि पृथ्वी फट गई, और एक सिंहासन बाहर निकल आया, सीता उस पर बैठ गई, आकाश से पुष्प वृष्टि हुई। सीता पृथ्वी में इस तरह समा गई, मानों वहां थी ही नहीं। यह अद्भुत देखकर सभी संमोहित होगए। और राम एक छड़ी का सहारा लिए खड़े हुए दीन मन हुए नीचे सिर किये अतीव दुःखित हुए छमाछम रोरहे हैं। वह देरतक रोकर क्रोध और शोक से भरे हुए यह बचनबोले।

अभूतपूर्वं शोकं मे मनः स्प्रष्टुमिवेच्छति ।
पश्यतो मे यथा नष्टा सीता श्री रिव रूपिणी ।
देवि निर्यात्यतां सीता विवरं वा प्रयच्छ मे ।
पाताले नाकपृष्ठे वा वसेयं सहितस्तया ॥

मेरे मन को अब पहले कभी न अनुभव किया हुआ शोक छूना चाहता है, जब कि मेरे देखते हुए सीता जो मानों रूपवती लक्ष्मी थी नष्ट होगई। हे पृथिवी देवि! मेरी अमानत सीता मुझे दे, वा मुझे विवर दे, चाहे पाताल में वा स्वर्ग में मैं उसके साथ बसूं।

तब फिर आकाशवाणी हुई :—

राम राम न सन्तापं कर्तुमर्हसि सुव्रत ।
स्वर्गे ते संगमो भूयो भविष्यति न संशयः ॥

हे राम ! हे राम हे अच्छे व्रतोंवाले ! तुझे सन्ताप नहीं करना चाहिये, स्वर्ग में फिर तेरा समागम होगा, संशय नहीं ॥

यह सुन राम कुश और लव को लेकर पर्णशाला में आए, सारी रात सीता के शोक में उन को बीती ॥

सर्ग २१–राम का राज्य शासन और माताओं की मृत्यु

तिस पीछे यज्ञ को समाप्त करके रामने यज्ञ में आए ऋषि मुनि और राजाओं को सत्कार पूर्वक विदा किया, और स्वयं भाईयों और कुश लव समेत अयोध्या में प्रविष्ट हुआ । सीता के बिना राम को जगत शून्य प्रतीत होता था, शोक से दबा हुआ कहीं शान्ति नहीं पाता था । तथापि अपने अधिकार में पूरा सावधान था । अतएव :—

नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधिः प्राणिनां तथा ।
नानर्थो विद्यते कश्चिद् रामे राज्यं प्रशासति ॥
काले वर्षति पर्जन्यः सुभिक्षं विमला दिशः ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णं पुरं जनपदास्तथा ॥

समय पर मेघ बरसता, सदा सुभिक्ष रहता, दिशाएं निर्मल रहतीं, पुर और देश हृष्ट पुष्ट जनों से भरे थे, अकाल में कोई न मरता, न प्राणियों को रोग होता, न कोई और उपद्रव होता । जब कि राम राज्य शासन करते थे ॥ फिर कुछ समय पीछे राम की माताएं कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी भी स्वर्ग को सिधारीं

सर्ग २२–राजा युधाजित का राम को संदेश

कुछ समय पीछे केकयदेश के राजा भरत के मामा युधाजित ने अपने पुरोहित अङ्गिरस के पुत्र गार्ग्य को रामचन्द्र जी के पास भेजा। रामचन्द्र जी ने भरतके सहित एक कोस आगे जाकर उसका सत्कार किया। गार्ग्य ने युधाजित से भेजे बहुत से घोड़े, कम्बल और अद्भुत वस्त्र राम को भेंट किये। गार्ग्य को आदर सत्कारपूर्वक रामचन्द्रजी ने मामाजी का कुशल पूछकर पूछा, कि मामा जी ने क्या आज्ञा दी है। गार्ग्य बोले, युधाजित ने यह सन्देश दिया है, कि मेरे राज्य के साथ मिलता हुआ सिन्धुनद के दोनों ओर गन्धर्वों का देश है, जिनका राजा शैलूष है। देश बड़ा सुन्दर फल मूल से सजा हुआ है। यह लोग बहुत ऊंचे आए हुए हैं। और यहां किसी दूसरे की पहुंच नहीं, हे महाबाहो! आप इसको बस में करें॥

सर्ग २३–भरत की गन्धर्व देश पर चढ़ाई और तक्षशिला और पुष्कलावत की बुनियाद

रामने स्वीकार किया, और भरत के दोनों पुत्र **तक्ष** और **पुष्कल** को तिलक दे कर भरत को कहा, कि हे भरत सेना लेकर और इन दोनों कुमारों को साथ लेकर युधाजित के पास जाओ, युधाजित के साथ मिलकर गन्धर्वदेश को जीत कर वहां का राज्य इन दोनों कुमारों को बांट देकर फिर मेरे पास आओ॥

भरत आज्ञा पाकर चले। पन्द्रह दिन मार्ग में रहकर वह कैकेयदेश में पहुंचे। फिर वहां से युधाजित और भरत दोनों सेना सहित गन्धर्व देश पर चढ़े। गन्धर्वों ने बड़ी वीरता से इस सेना को स्वीकार किया सात दिन महाभयंकर युद्ध हुआ, लहू की नदियां बह निकलीं, पर दोनों पलड़ों मे से कोई नीचे नहीं झुका। आठवें दिन भरत

की सेना ने संवर्त अस्त्र चलाना आरम्भ कर दिया, जिसका प्रति संहार गन्धर्व नहीं जानते थे, अतएव वह बहुत जल्दी पराजित होगए। उनको जीतकर भरत ने उनके देश में दो पुर (किले) डाले। एक तक्ष के नाम पर तक्षशिला, दूसरा पुष्कल के नाम पर गान्धार देश में पुष्कलावत। भरत पांच वर्ष वहां ठहरा, इतने में उस देश पर पूरा शासन जम गया, और दोनों पुर भी बहुत बड़ी रौनक पकड़ गये। इन दोनों राजधानियों में दोनों कुमारों को स्थापन कर और राज्य बांट देकर भरत अयोध्या में वापिस आया॥

सर्ग २४–लक्ष्मण के पुत्र अंगद और चन्द्रकेतु को राजतिलक और अंगदीयपुर और चन्द्रकान्तपुर की बुनियाद

अब रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण को कहा, कि यह धर्मप्रिय तेरे दोनों पुत्र अंगद और चन्द्रकेतु हैं, इनको अब राजतिलक देना है, कोई देश ध्यान में लाओ, जो बड़ा रमणीय और उपद्रवों से शून्य हो, और जहां न किसी राजा को पीड़ा हो, न आश्रमों का विनाश हो, जिससे हम किसी के अपराधी भी न हों। तब भरत ने कहा, महाराज! पश्चिमोत्तर में कारुपथदेश रमणीय और नीरोग है। भरत की बात को रामचन्द्रजी ने पसन्द किया। दोनों कुमारों को तिलक देकर लक्ष्मण के साथ अंगद को और भरत के साथ चन्द्रकेतु को भेज दिया। कारुपथ का पश्चिमी भाग अङ्गद और लक्ष्मण ने जीता, और उत्तरीय भाग चन्द्रकेतु और भरत ने। अङ्गद के नाम पर अङ्गदीयपुर, और उत्तर में चन्द्रकेतु के नाम पर चन्द्रकान्तपुर बसाया गया। बरस भर वहां रहकर भरत और लक्ष्मण अयोध्या में वापिस आए॥

अब एक दिन एक तपस्वी राजद्वार पर आया कि मैं अपरिमित शक्तिवाले महाऋषि का दूत कार्यवश राम के दर्शन को आया हूं, सुनकर जल्दी लक्ष्मण ने अन्दर जाकर राम से निवेदन किया। राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण तपस्वी को अपने साथ अन्दर ले आया। तपस्वी का चेहरा तेज से भख रहा था, और आखों से सूर्य की तरह किरणें निकल रही थीं। राम ने उसे सौवर्ण आसन पर बिठलाया, कुशल पूछा, और कहा कि आप किस कार्य से आए हैं, कहिये। तपस्वी ने कहा, कि एकान्त में कहूंगा, जहां तीसरा कोई न हो, और यदि कोई हमारे बातचीत करते हुए आए, वा हमें देखे, तो वह तुझसे त्याग दिया जाए। राम ने यही बात लक्ष्मण को कहकर द्वार पर खड़ा होने की आज्ञा दी, और द्वारपाल को द्वार से विसर्जन कर दिया॥

अब राम ने कहा, हे तपस्वी निःशंक होकर कहो, वह बात मेरे हृदय में भी है। तपस्वी बोला, आप जिस कार्य के लिये आए थे, वह कर चुके हैं। अब आपका यहां कर्तव्य शेष नहीं है। रामने उत्तर दिया, बहुत अच्छा, मैं जहां से आया हूं वहां जाउंगा॥

सर्ग २६–दुर्वासा का प्रवेश और लक्ष्मण का त्याग

उनके ऐसी बातचीत करते हुए दुर्वासा ऋषि राम के दर्शन के लिये द्वार पर आया। उसने द्वार पर स्थित लक्ष्मण को कहा, कि जल्दी राम को मेरा आना बतलाओ। लक्ष्मण हाथ जोड़कर बोला, भगवन्! थोड़ी देर प्रतीक्षा कीजिये। क्योंकि राम इस समय कार्य व्यग्र हैं। दुर्वासा को क्रोध आगया, उसने कहा, कि यदि तू अभी मेरा आना रामको नहीं बतलाता है, तो मैं तुझे तेरी सन्तान इस पुर और इस सारे देश को शाप दूंगा। लक्ष्मण ने

सोचा, कि अकेले का मरना अच्छा है, सबको दुःख न पहुंचे यह सोच उसने राम को जा निवेदन किया। राम तपस्वी को विसर्जन कर बाहर आए, और हाथ जोड़ कर दुर्वासा को कहा, भगवन्! क्या आज्ञा है। मुनि ने कहा, बहुत देर तपस्या करके आज मैंने व्रत धारण करना है, मुझे खाने को दे, जो कुछ तय्यार है। राम ने उसे भोजन खिलाया, और वह खाकर आश्रम को चला गया॥

पर उस प्रतिज्ञा को स्मरण कर राम अत्यन्त शोक में जापड़े। तब लक्ष्मण बोला, हे महाबाहो! आप सन्ताप न करें, काल की गति ही ऐसी थी:—

यदि प्रीतिर्महाराज यद्यनुग्राह्यता मयि।
जहि मां निर्विशङ्कस्त्वं धर्मं वर्धय राघव॥

यदि मेरे ऊपर प्रीति है, यदि मेरे ऊपर अनुग्रह है, तो हे राघव मुझे निःशंक त्यागिये और धर्म को बढ़ाइये॥

राम ने उसी सोच में मन्त्रियों को बुलवाया और सारा वृत्तान्त सुनाया। यह सुन कर सब चुप रहे, किन्तु पुरोहित वसिष्ठ बोले:—

त्यजैनं बलवान् कालो मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः।
प्रतिज्ञायां हि नष्टायां धर्मो हि विलयं व्रजेत्॥

काल बलवान् है, अब इस को त्यागो, प्रतिज्ञा को मत वृथा करो, प्रतिज्ञा के नष्ट होने पर धर्म का लय होजायगा॥

पुरोहित की आज्ञा पाकर राम लक्ष्मण से बोले:—

विसर्जये त्वां सौमित्रे मा भूद् धर्मविपर्ययः

विसर्जन करता हूं. तुझे हे लक्ष्मण, ताकि धर्म का लोप न हो

राम के कहते ही लक्ष्मण उठ खड़ा हुआ और वह घर न जाकर सीधा सरयू के किनारे पर चला गया। वहां आचमन कर सारे इन्द्रियों को रोककर अन्तिम समाधि लगाकर देह को छोड़दिया

सर्ग २७–राम का शोक कुश और लव को राजातिलक और
कुशावती और श्रावस्ती की बुनियाद

लक्ष्मण को त्यागकर राम दुःख और शोक से भर गया उसने पुरोहित और मन्त्री और पुर के लोगों को बुला कर कहा, कि मैं भरत को तिलक देकर बन को जाऊंगा। भरत यह सुन कर मूर्छित होगया, और होश में आकर यह बोला :—

सत्येनाहं शपे राजन् स्वर्गभोगेन चैव हि।
न कामये यथा राज्यं त्वां विना रघुनन्दन॥

हे राजन! मैं सत्य की और स्वर्ग के भोग की शपथ करता हूं कि हे रघुनन्दन मैं तेरे बिना राज्य नहीं चाहता हूं॥

सो आप कुश और लव को राज्य दें, तब राम ने उस समय कुश को कोशल देश और लव को उत्तर कोशल में भेज दिया। कुश ने बिन्ध्याचल के किनारे कुशावती नगरी बसाई और लव ने श्रावस्ती। अयोध्यावासी युवकजन कुश और लव के साथ चले गये और वृद्ध नरनारी सब रामके साथ जाने को तय्यारहुए।

सर्ग २८–शत्रुघ्न का राम के पास आना

अब रामने शत्रुघ्न के पास दूत भेजे, जिन्हों ने यह सन्देश जा दिया, कि राम ने इस तरह पर लक्ष्मण का त्याग किया है, और कुश और लव को अभिषिक्त करके अब अयोध्या सहित बन जाते हैं। यह सुन शत्रुघ्न ने काञ्चन पुरोहित को और पुरवा-

सियों को बुलाकर वृत्तान्त सुनाया । और अपने दोनों पुत्रों में से सुबाहु को मधुरा में, और शत्रुघाती को वैदिश में अभिषिक्त करके आप अयोध्या में चला आया। राम को प्रणामकर बोला, हे महाराज! दोनों कुमारों को तिलक देकर मैं अभी आपके साथ जाने को निश्चय करके आया हूं। मेरा यह दृढ़ निश्चय है॥

सर्ग २९–पुरवासियों सहित राम का महाप्रस्थान और परमगति

अब दूसरे दिन प्रभात के समय राम ने महाप्रस्थान किया, आगे २ अग्निहोत्र, ब्राह्मण और वाजपेय यज्ञों के छत्र। पीछे २ राम भरत शत्रुघ्न अपने अन्तःपुरों समेत । उनके पीछे सब पौर जन स्त्री पुरुष॥

न तत्र कश्चिद्दीनो वा व्रीडितो वापि दुःखितः।
हृष्टं समुदितं सर्वं बभूव परमाद्भुतम्॥
द्रष्टुकामोऽथ निर्यान्तं रामं जानपदो जनः।
यः प्राप्तः सोपि दृष्ट्वैव स्वर्गायानुगतो जनः॥

कोई उनमें दीन लज्जित वा दुःखिया नहीं था, किन्तु सभी प्रसन्न समुदित थे, यह बड़ा अद्भुत हुआ । राम को जाता हुआ देखने के लिये जो देश वासी पुरुष बाहर निकला, वह भी देख कर स्वर्ग के लिये साथ ही होलिया॥

डेढ़ योजन जाकर वह सरयू नदी पर पहुंचे। और उस नदी में समाधिस्थ हो परमधाम को प्राप्त हुए॥

उत्तर काण्ड समाप्त हुआ

ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ



शरतचन्द्र शर्म्मा
मैनेजर
कार्य्यालय आर्ष ग्रन्थावली लाहौर ।

सूचीपत्र

संस्कृत के अनमोल रत्न

अर्थात् वेदों, उपनिषदों, दर्शनों, धर्मशास्त्रों और इतिहास ग्रन्थों के शुद्ध, सरल और प्रामाणिक भाषा अनुवाद ।

ये भाषानुवाद पं० राजाराम जी प्रोफैसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर के किये ऐसे बढ़िया हैं, कि इन पर गवर्नमैन्ट और यूनीवर्सिटी से पं० जी को बहुत से इनाम मिले हैं । योग्य २ विद्वानों और समाचारपत्रों ने भी इनकी बहुत बड़ी प्रशंसा की है । इन प्राचीन माननीय ग्रन्थों को पढ़ो और जन्म सफल करो ॥

(१) श्री वाल्मीकि रामायण—भाषा टीका समेत । वाल्मीकि कृत मूल श्लोकों के साथ २ श्लोकवार भाषा टीका है । टीका बड़ी सरल है । इस पर ७००) इनाम मिला है । भाषा टीका समेत इतने बड़े ग्रन्थ का मूल्य केवल ६।)

(२) महाभारत—इस की भी टीका रामायण के तुल्य ही है । दो भागों में छपा है । प्रथम भाग ६।।) द्वितीयभाग ६।) दोनों भाग १२)

(३) भगवद्गीता—पद पद का अर्थ, अन्वयार्थ और व्याख्यान समेत । भाषा बड़ी सुपाठ्य और सुबोध । इस पर ३००) इनाम मिला है मूल्य २।), गीता हमें क्या सिखलाती है मूल्य ।–)

(४) गीता गुटका—सरल भाषा टीका समेत ।।)

(५) ११ उपनिषदें—भाषा भाष्य सहित—

१—ईश उपनिषद्	≡)
२—केन उपनिषद्	≡)
३—कठ उपनिषद्	।≡)
४—प्रश्न उपनिषद्	।–)
५, ६—मुण्डक और माण्डूक्य दोनों इकट्ठी	।=)
७—तैत्तिरीय उपनिषद्	।।)
८—ऐतरेय उपनिषद्	≡)
९—छान्दोग्य उपनिषद्	२।)
१०—बृहदारण्यक उपनिषद्	२।)
११—श्वेताश्वतर उपनिषद्	।–)
उपनिषदों की शिक्षा	२।)
उपनिषदों की भूमिका	।–)

(६) मनुस्मृति—मनुस्मृति पर टीकाएं तो बहुत हुई हैं, पर यह

टीका अपने ढंग में सब से बढ़ गई है। क्योंकि एक तो संस्कृत की सारी पुरानी टीकाओं के भिन्न २ अर्थ इस में दे दिये हैं। दूसरा इसका हर एक विषय दूसरी स्मृतियों में जहां २ आया है, सारे पते दे दिये हैं। तिस पर भी मूल्य केवल ३।) है।

(७) **निरुक्त**—इस पर भी २००) इनाम मिला है ४।।)

८—योगदर्शन	१।।)	१७—आर्य पञ्चमहायज्ञपद्धति	।–)
९—वेदान्त दर्शन	४)	१८—स्वाध्याय यज्ञ	१)
१०—वैशेषिक दर्शन	१।।)	१९—वेदोपदेश	१)
११—सांख्य शास्त्र के तीन प्राचीन ग्रन्थ	।।।)	२०—वैदिक स्तुति प्रार्थना	≡)
१२—नवदर्शन संग्रह	१।)	२१—पारस्कर गृह्यसूत्र	१।।।)
१३—आर्य-दर्शन	१।।)	२२—बाल व्याकरण, इस पर २००) इनाम मिला है	।।)
१४—न्याय प्रवेशिका	।।=)	२३—सफल जीवन	।।)
१५—आर्य-जीवन	१।।)	२४—प्रार्थना पुस्तक	–)।।
१६—दिव्य जीवन	१)		

२५—वात्स्यायन भाष्य सहित न्याय दर्शन भाष्य ४)

२६—नल दमयन्ती—नल और दमयन्ती के अद्वितीय प्रेम, विवाह विपद् तथा दमयन्ती के धैर्य कष्ट और पातिव्रत्य का वर्णन।)

वेद मनु और गीता के उपदेश	–)।।	सामवेद के क्षुद्र सूत्र	।।)
वेद और महाभारतके उपदेश	–)।।	वैदिक आदर्श	)।।
वेद और रामायण के उपदेश	–)।।	पञ्जाबी संस्कृत शब्दशास्त्र	।=)
अथर्ववेद का निघण्टु	।।।=)		

शंकराचार्य का जीवन चारित्र और उनके शास्त्रार्थ तथा कुमारिलभट्ट का जीवन चारित्र ।।।) औशनस धनुर्वेद ।) उपदेश सप्तक ।।–) शास्त्र रहस्य प्रथमभाग ।।) शास्त्र रहस्य दूसरा भाग ।।।) शताब्दी शतक ≡) चितसुखी १।।) ऊपर लिखी सब पुस्तकें सुनहरी जिल्दों में भी मिल सकती है। कीमत प्रत्येक जिल्द ।।)

नोट—कार्यालय की इन अपनी पुस्तकों के सिवाय और भी सब प्रकार पुस्तकें रियाअत से भेजी जाती हैं।